पं. किसन लाल शर्मा

असली प्राचीन
रावण संहिता

लंकाधिपति रावण के रहस्य-चमत्कार भरे जीवनवृत्त के साथ ही शिवोपासना व विभिन्न तंत्र साधनाओं की जानकारी

पं. किसन लाल शर्मा

असली प्राचीन
रावण संहिता

लंकाधिपति रावण के रहस्य-चमत्कार भरे जीवनवृत्त के साथ ही शिवोपासना व विभिन्न तंत्र साधनाओं की जानकारी

वह राक्षस था—रक्ष संस्कृति का रक्षक...विश्व को जीतना चाहता था वह! देव उसके बंदी थे, उसने अपने बाहुबल से तीनों लोकों पर विजय पा ली थी। वह परम विद्वान था...ज्ञाता था अंग-उपांगों सहित चारों वेदों का। फिर भी दुष्कर्मों में प्रवृत्त हुआ। अभिमान ने भटका दिया उसे या फिर जब विजय की मूर्च्छा टूटी तब तक काफी आगे बढ़ चुका था वह—पीछे जाना असंभव था।
राम के हाथों मृत्यु को वरण किया—यह समझदारी थी उसकी।

शस्त्र-शास्त्र ज्ञाता लंकाधिपति रावण के जीवन में उतार-चढ़ाव की अनूठी गाथा है इस ग्रंथ में।
शिवोपासक दशकंधर, अजेय, राक्षसराज, महान योद्धा, वेदांतविग्रह, लंकाधिपति, शासक, देव-मुनि विरोधी, मायावी, तंत्र-मंत्र के परम ज्ञाता, औषध विज्ञान के रहस्यों के जानकार, दैवज्ञ रावण के जीवन के कुछ अनछुए पहलुओं की झलक।

सरल-सुगम भाषा में संग्रह
करने योग्य एक प्राचीन ग्रंथ

प्रकाशक :
मनोज पब्लिकेशन्स
761, मेन रोड, बुराड़ी, दिल्ली-110084
फोन : 27611116, 27611349, 27611546
मोबाइल : 9868112194
ईमेल : info@manojpublications.com
(For online shopping visit our website)
वेबसाइट : www.manojpublications.com

शोरूम :
मनोज पब्लिकेशन्स
1583-84, दरीबा कलां, चांदनी चौक, दिल्ली-110006
फोन : 23262174, 23268216, मोबाइल : 9818753569

चेतावनी: पुस्तक में दी गई सामग्री का उद्देश्य आपको विषय की जानकारी देना मात्र है। इसमें दी गई साधनाओं व औषधि संबंधी जानकारी को हमने प्रामाणिक प्राचीन स्रोतों से लिया है। हमने प्रयास किया है कि कोई त्रुटि न हो, फिर भी इसे नकारा नहीं जा सकता। इसलिए इन साधनाओं और औषधियों के निर्माण में किसी अनुभवी साधक व वैद्य का परामर्श जरूर लें। किसी भी तरह की हानि के लिए लेखक, प्रकाशक किसी तरह से उत्तरदायी नहीं होंगे।

ISBN : 978-81-8133-050-5

नौवां संस्करण : 2017

रावण संहिता : पं. किसनलाल शर्मा

रावण संहिता

शस्त्र-शास्त्रज्ञ, मायावी दशानन के जीवन चरित के साथ
शिवोपासना, उड्डीश-क्रियोड्डीश तंत्र, अर्क प्रकाश
कुमार तंत्र एवं ज्योतिष संबंधी कुछ विशेष योग

ज्योतिष महामहोपाध्याय

पंडित किसनलाल शर्मा

मनोज पब्लिकेशन्स

पुस्तक के बारे में

'काले और सफेद तानों-बानों से बुनी होती जिंदगी की चादर,' यह बात जिसने भी कही है, साधारण-सी लगने पर भी गुह्य दार्शनिक रहस्यों पर आधारित है। मनुष्य शरीर का मिलना गवाह है इस बात का कि पुण्य भी हैं और पाप भी।

लंकापति रावण की जन्मकुण्डली
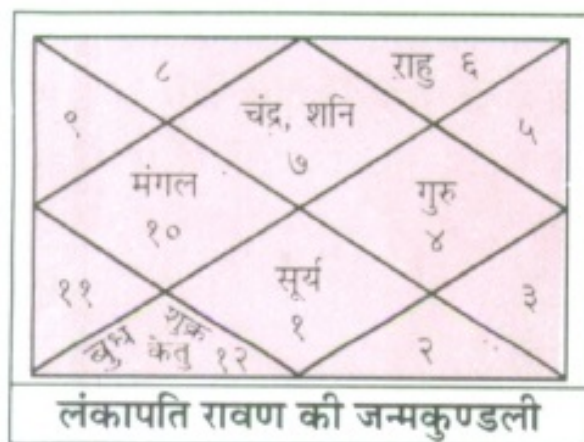
रावण ऋषि पुत्र था। वह पुलस्त्य का पोता था और विश्रवा का पुत्र। उसकी मां राक्षसराज सुमाली की बेटी थी। राक्षस गुह्य विद्याओं के जानकार थे। वे जानते थे कि ऋषि वीर्य को किस विशिष्ट काल में धारण कराने पर राक्षसों के हितों का साधक जन्म लेगा। उसी समय कैकसी ने विश्रवा से प्रणय-याचना की थी। रावण और कुंभकर्ण का जन्म राक्षसों की हित-रक्षा के लिए राक्षस प्रमुखों द्वारा करवाया गया था; ऐसा कहना गलत न होगा।

तप और अहं का सम्मिश्रण था राक्षसों में। रावण भी इससे अछूता कैसे रह सकता था। अपने जीवन में उसने सिर्फ विजय को ही याद रखा, हार को तो उसने दुःस्वप्न की तरह भूलने की ही कोशिश की।

शास्त्रों का परम ज्ञाता था रावण, फिर क्या विष्णु के रामरूप में अवतार लेने की बात उससे छिपी थी? विद्वानों का ऐसा मत है कि इस बात को जानते हुए ही रावण ने राम से विरोध किया। तामसी शरीर की विवशता थी, इसीलिए अपमानित करके उसने विभीषण को राम के पास भेज दिया।

अपनी गलतियों को जानते हुए भी उन्हें अस्वीकारना रावण की विवशता थी—देवताओं से समझौता उस जाति के हित और सम्मान की रक्षा नहीं करता था; जिसमें उसका जन्म हुआ था, जिसके विजय अभियान का नेतृत्व उसके हाथों में था। योद्धा को भी तो योगी की गति प्राप्त होती है।

प्रकाश भेद डालता है, घने अंधकार को। यह सिद्धांत अनुभव सिद्ध है, लेकिन इतिहास की इस सच्चाई को भी नकारा नहीं जा सकता कि बुराई ने सदा ही अच्छाई को ढका है। 'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं,' ऐसा कहने के बाद भी क्या हम ऐसा कर पाते हैं? शायद नहीं! तभी तो रावण की तमोगुणी राक्षसी वृत्तियों की कालिमा ने उसके उजले पक्ष को ढक दिया। इस ग्रंथ में शस्त्र-शास्त्र ज्ञाता महाबली रावण के उसी उजले पक्ष को उजागर किया गया है।

यह ग्रंथ पांच खंडों में विभाजित है। **प्रथम खंड** में है रावण का संपूर्ण जीवन वृत्त। इसे मूल संस्कृत के साथ सरल हिंदी में दिया गया है। मूल को जहां से उद्धृत किया गया है, उसके अनुसार यह अंश वाल्मीकीय रामायण का अंश है। मूल का परित्याग हमने इसलिए नहीं किया, ताकि संस्कृत भाषा का साहित्यिक आनंद भी पाठक ले सकें। **दूसरे खंड** में उन साधनाओं की चर्चा है, जो शिवोपासना से संबंधित हैं। प्रणव व पंचाक्षर साधना के साथ ही इसमें लिंग स्थापना और शिवपूजन की शास्त्रीय विधियां दी गई हैं। **तीसरे खंड** में तंत्र-मंत्र साधनाओं के रहस्यों को उजागर किया गया है। तंत्र का एक भाग है वनस्पतियों के चमत्कारी प्रयोग। तंत्र का यह भाग आयुर्वेद से संबंधित होता हुआ भी उससे बिलकुल भिन्न है। रावण तंत्र का ज्ञाता था। वह जानता था कि यदि बच्चे स्वस्थ एवं नीरोग नहीं होंगे, तो कोई भी समाज सशक्त नहीं होगा। इसीलिए उसने जहां स्वस्थ, रोगमुक्त तथा दीर्घायु बनाने वाले अंकों की चर्चा की, वहीं नवजात शिशुओं व उनकी माताओं के स्वास्थ्य के भी नुस्खे दिए। योद्धा के लिए औषधि ज्ञान जरूरी है, रावण उसका भी परम ज्ञाता था। इस ग्रंथ के **चतुर्थ खंड** से उसके इसी औषधि संबंधी ज्ञान का संकेत मिलता है। **पंचम खंड** में ज्योतिष के विशेष योगों की चर्चा है। इस खंड में ऐसी सामग्री का समावेश नहीं किया गया है, जो 'भृगु संहिता' जैसे ग्रंथों में प्राप्त हैं। विदित हो कि बाजार में उपलब्ध 'लाल किताब' का संबंध भी रावण से ही है। इस पुस्तक में ज्योतिष, हस्तरेखा और सामुद्रिक शास्त्र का समावेश है। यदि आपकी रुचि ज्योतिष में है, तो यह पुस्तक आपके लिए उपयोगी है—इसमें नयापन है।

सटीक और उपलब्ध पूर्ण जानकारी देना हमारा उद्देश्य है। इस कसौटी पर यह ग्रंथ खरा उतरे, यही हमारा प्रयास रहा है। हम कहां चूके हैं, इसकी जानकारी का स्वागत है। संशोधित संस्करण में अवश्य सुधार किया जाएगा।

उचित मूल्य और उच्चतम गुणवत्ता में इसे प्रकाशित करने के लिए श्री सावन गुप्ता को साधुवाद! आशीर्वाद!

—पंडित किसनलाल शर्मा

'वेद विद्या भवन'
1481, शुक्रवार पेठ,
पुणे-400002
दूरभाष : 4472616, 530960

प्रथम खंड

रावण चरित

शिव उपासना

द्वितीय खंड

शिव उपासना

❑ पंचाक्षर मंत्र एवं पंचावरण पूजन ❑ शिवयोगी के प्रकार ❑ शिवज्ञान का प्राकट्य ❑ शिवभक्तों के पूजन की महत्ता ❑ षडध्वशोधन विधि ❑ योग विवेचन ❑ श्रीशिवपंचाक्षर स्तोत्रम् ❑ शिवताण्डव स्तोत्रम् ❑ द्वादश ज्योतिर्लिंग स्तोत्रम् ❑ बारह ज्योतिर्लिंगों का परिचय ❑ शिव-लीला

तृतीय खंड

तंत्र-मंत्र साधना

❑ तंत्र एक समग्र साधना ❑ तंत्र में भक्ति तत्त्व ❑ शुद्ध सत्व भाव ❑ भेद और अभेदवादी तांत्रिक दृष्टियां ❑ तंत्र की वैज्ञानिक प्रामाणिकता ❑ तंत्र और योग ❑ शिव साधना की विशिष्ट पद्धति ❑ मंत्र जप साधन ❑ विभिन्न मुद्राएं ❑ उपासना रहस्यम् ❑ विभिन्न सिद्धियों का स्वरूप ❑ तांत्रिक साधना विविध सोपान

❑ **उड्डीश तंत्र** (पूर्वार्द्ध) ❑ प्रायोगिक षट्कर्म

❑ **उड्डीश तंत्र** (उत्तरार्द्ध)

क्रियोड्डीश तंत्र —प्रथमः पटलः द्वितीयः पटलः, तृतीयः पटलः, चतुर्थः पटलः, पंचमः पटलः, षष्ठमः पटलः, सप्तमः पटलः, अष्टमः पटलः, नवमः पटलः, दशमः पटलः, एकादशः पटलः, द्वादशः पटलः, त्रयोदशः पटलः, चतुर्दशः पटलः, पंचदशः पटलः, षोडशः पटलः, सप्तदशः पटलः, एकोनविंशतितमः पटलः ❑ देवी-साधना मंत्र

चतुर्थ खंड

अर्क चिकित्सा

पंचम खंड

ज्योतिष योग

प्रथम खंड
रावण चरित

रावण जीवनवृत्त

इस खण्ड में सबसे पहले लंकाधिपति रावण के परिवारजन, पूर्वजों, उनके स्वयं के जन्म तथा जीवनवृत्त का उल्लेख किया गया है। दशरथ पुत्र रामचन्द्र ने रावण के जीवनवृत्त के बारे में महर्षि अगस्त्य से प्रश्न किया था, तब अगस्त्य जी ने उन्हें जो उत्तर दिया था, उसी को यहां पर प्रस्तुत किया जा रहा है—

रावण का कुल

अगस्त्य उवाच—

शृणु राम तथा वृत्तं तस्य तेजाबलं महत् ।
जघान् शत्रून् येनासौ न च वध्यः सशत्रुभिः ।।1।।

अगस्त्य जी ने कहा— हे राम! इन्द्रजीत (मेघनाद) के महान बल-साहस का तेज सुनो, जिसके द्वारा वह अपने शत्रुओं को मार गिराता था और कोई शत्रु उसे नहीं मार पाता था।

तावत् ते रावणस्येदं कुल जन्म च राघव ।
वरप्रदानं च तथा तस्मै दत्तं ब्रवीमि ते ।।2।।

हे राघव! इसका पूर्ण वर्णन करने से पहले मैं आपको रावण के कुल और वर-प्राप्ति के संबंध में बताता हूं।

दादा महर्षि पुलस्त्य

पुरा कृतयुगे राम प्रजापति सुतः प्रभुः ।
पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादिव पितामहः ।।3।।

हे राम! प्राचीन समय में सतयुग में प्रजापति ब्रह्माजी के एक पुत्र 'पुलस्त्य' थे। वह ब्रह्मर्षि पुलस्त्य ब्रह्माजी के समान ही तेजस्वी और शूरवीर थे।

नानुकीर्त्या गुणास्तस्य धर्मतः शीलतस्तथः ।
प्रजापतेः पुत्र इति वक्तुं शक्यं हि नामतः ।।4।।

उनके गुण, शील और धर्म का पूर्ण वर्णन करना संभव नहीं लगता। उनके विषय में केवल इतना कहना ही पूर्ण है कि वह प्रजापति ब्रह्माजी के पुत्र थे।

प्रजापति सुतत्वेन देवानां वल्लभो हि सः ।
इष्टः सर्वस्य लोकस्य गुणैशुभ्रैर्महामतिः ।।5।।

वह प्रजापति ब्रह्माजी के पुत्र होने के कारण सभी देवताओं के प्रिय थे। वह गुणवान, बुद्धिमान, सर्वप्रिय तथा श्रेष्ठ थे।

स तु धर्म प्रसंगेन मेरोः पार्श्वे महागिरेः ।
तृणाबिन्द्वाश्रमं गत्वाप्यवसन्मुनिपुङ्गवः ।।6।।

एक बार वह धार्मिक यात्रा के लिए महागिरि सुमेरु पर्वत के पास राजर्षि तृणविन्दु के आश्रम में गए और वहीं पर रहने लगे।

तपस्तेपे स धर्मात्मा स्वाध्याय नियतेन्द्रियः ।
गत्वाऽऽश्रमपदं तस्य विघ्नं कुर्वन्ति कन्यकाः ।।7।।

वह दानवीर-धर्मात्मा तपस्या करते हुए, स्वाध्याय और जितेंद्रिय में संलग्न रहते थे। परन्तु कुछ कन्याएं उनके आश्रम में पहुंच कर उनकी तपस्या में विघ्न पैदा करती थीं।

ऋषि पन्नगकन्याश्च राजर्वितनयाश्च याः ।
क्रीडन्त्योऽप्सरसश्चैव तं देशमुपपेदिरे ।।8।।

राजर्षियों, नागों और ऋषियों की कन्याएं तथा कुछ अन्य अप्सराएं भी खेल-खिलाव करती हुईं उनके आश्रम के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती थीं।

सर्वर्तुषूपभोग्यत्वाद् रम्यत्वात् काननस्य च ।
नित्यशस्तास्तु तं देशंगत्वा क्रीडन्ति कन्यकाः ।।9।।

सभी ऋतुओं में यह वन रमणीय तथा सेवनीय था। अतः वे सभी कन्याएं हर रोज वहां जाकर भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रीड़ाएं करती थीं।

देशस्य रमणीयत्वात् पुलस्त्यो यत्र स द्विजः ।
गायन्त्यो वादयन्त्यश्च लासयन्त्यस्तथैव च ।।10।।

जिस स्थान पर ब्राह्मण श्रेष्ठ पुलस्त्यजी रहते थे, वह तो अत्यधिक रमणीय था। अतः सभी कन्याएं उस स्थान पर पहुंच कर प्रतिदिन नृत्य, गायन, वादन करती थीं।

मुनेस्तपस्विनस्तस्य विघ्नं चक्रुरनिन्दिताः ।
अथ रुष्टो महातेजा व्याजहार महामुनिः ।।11।।

अपनी इन विभिन्न गतिविधियों द्वारा वे सभी कन्याएं मुनि के तप में बाधा एवं विघ्न पैदा करती थीं। इस कारण ही एक दिन महामुनि महातेजस्वी कुछ क्रोधित हो उठे।

यामे दर्शनमागच्छेत् सागर्भं धारयिष्यति ।
तास्तु सर्वाः प्रतिश्रुत्य तस्य वाक्यं महात्मनः ।।12।।

अतः उन्होंने यह घोषणा कर दी कि कल से मुझे इस स्थान पर जो कन्या दिखाई पड़ेगी, वह गर्भवती हो जाएगी। उनके इस वाक्य को सुनकर वे सभी कन्याएं भयभीत हो गईं।

ब्रह्मशापभयाद् भीतास्तं देशं नोपचक्रमुः ।
तृण बिन्दोस्तु राजर्षेस्तनया न शृणोति तत् ।।13।।

उस ब्रह्मशाप के भय से डरकर उन्होंने उस आश्रम क्षेत्र में जाना छोड़ दिया। किन्तु राजर्षि तृणविन्दु की कन्या ने ऋषि के इस शाप को नहीं सुना था।

गत्वाऽऽश्रमपदं तत्र विचचार सुनिर्भया ।
ना चापश्यच्च सा तत्र कांचिदभ्यागतां सखीम् ।।14।।

वह कन्या अगले दिन भी बिना किसी भय के उस आश्रम में जाकर विचरण करने लगी।

उसने देखा कि वहां उसकी कोई भी अन्य सखी नहीं है।

तस्मिन् काले महातेजाः प्राजापत्यो महानृषिः ।
स्वाध्यायमकरोत् तत्र तपसा भावितः स्वयम् ।।15।।

उस समय वहां प्रजापति के पुत्र महातेजस्वी महान् ऋषि पुलस्त्यजी अपनी तपस्या में संलग्न होकर वेदों का स्वाध्याय कर रहे थे।

सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्ट्वा वै तपसो निधिम् ।
अभवत् पाण्डुदेहा सा सुव्यंजित शरीरजा ।।16।।

उनकी वेदों की आवाज सुनकर वह उसी ओर चली गई और वहां उसने तपोनिधि मुनिजी को देखा। महर्षि पुलस्त्यजी को देखते ही उस कन्या का शरीर पीला पड़ गया और वह गर्भवती हो गई।

वभूव च समुद्विग्ना दृष्ट्वा तद्दोषमात्मतः ।
इदं मे किंत्विति ज्ञात्वा पितुर्गत्वाऽऽश्रमे स्थिता ।।17।।

उस भयंकर दोष को अपने शरीर में देखकर वह राजकन्या घबरा गई। तदुपरान्त वह यह सोचती हुई कि मुझे यह क्या हो गया है, अपने पिता के आश्रम में जा पहुंची।

तां तु दृष्ट्वा तथाभूतां तृणबिन्दुरथाब्रवीत् ।
किं त्वमेतत्वसदृशं धारयस्यात्मनो वपुः ।।18।।

कन्या की स्थिति को देखकर तृणविन्दु ने पूछा—तुम्हारे शरीर की यह दशा कैसे हो गई?

सा तु कृत्वाञ्जलिं दीना कन्योवाच तपोधनम् ।
न जाने कारणं तात् येन मे रूपमीदृशम् ।।19।।

उस समय उस दीनभावापन्न कन्या ने अपने तपस्वी पिता से हाथ जोड़कर कहा—हे तात! मैं उस वजह को नहीं जानती जिसके कारण मेरा शरीर ऐसा हो गया है।

किं तु पूर्वं गतास्म्येका महर्षेर्भावितात्मनः ।
पुलस्त्यस्याश्रमं दिव्यमन्वेष्टुं स्वसखीजनम् ।।20।।

कुछ समय पहले अपनी सखियों को ढूंढ़ती हुई मैं महर्षि पुलस्त्य के आश्रम में गई थी।

न च पश्याम्यहं तत्र कांचिदभ्यागतां सखीम् ।
रूपम्य तु विपर्यासं दृष्ट्वा त्रासादिहागता ।।21।।

परन्तु वहां पर मैंने अपनी किसी भी सहेली को नहीं पाया। उस समय ही मेरा शरीर ऐसा विकृत हो गया। यह देखकर मैं भय के कारण यहां चली आई हूं।

तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः ।
ध्यानं विवेश तच्चापि अपश्यदृषिकर्मजम् ।।22।।

राजर्षि तृणविन्दु अपनी घोर तपस्या के कारण स्वयं प्रकाशित थे। जब उन्होंने अन्तर ध्यान होकर देखा तो उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह सब कुछ ऋषि पुलस्त्य के कारण हुआ है।

स तु विज्ञाय तं शापं महर्षेर्भावितात्मनः ।
गृहीत्वा तनयां गत्वा पुलस्त्यमिदमब्रवीत् ।।23।।

महर्षि के शाप को जानने के बाद वे अपनी पुत्री के साथ महामुनि पुलस्त्यजी के आश्रम में

जा पहुंचे और उनसे कहने लगे।

भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम् ।
भिक्षां प्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम् ।।24।।

हे भगवान्! यह मेरी पुत्री अपने गुणों से विभूषित है। हे महर्षि! इसे आप स्वयं अपने आप प्राप्त होने वाली भिक्षा के रूप में ग्रहण कर लें।

तपश्चरणयुक्तस्य श्राम्यमाणेन्द्रियस्य ते ।
शुश्रूषणपरा नित्यं भविष्यति न संशयः ।।25।।

आप तपस्या तथा आराधना करने के कारण थकान का अनुभव करते होंगे। यह आपकी सेवा में संलग्न रहेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तं ब्रुवाणं तु तद् वाक्यं राजर्षिं धार्मिकं तदा ।
जिघृक्षुरब्रवीत् कन्यां बाढमित्येव स द्विजः ।।26।।

धर्मात्मा राजर्षि के इस कथन पर, ब्रह्मर्षि पुलस्त्यजी ने उस कन्या को ग्रहण करने की इच्छा प्रकट करते हुए कहा—बहुत अच्छा।

दत्वा तु तनयां राजा स्वमाश्रमपदं गतः ।
सापि तत्रावसत् कन्या तोषयन्ती पतिं गुणैः ।।27।।

उस समय राजर्षि तृणविन्दु अपनी कन्या को महर्षि को सौंपकर अपने आश्रम लौट पड़े। उसके बाद वह कन्या अपने गुणों और बुद्धि की सहायता से अपने पति को संतुष्ट रखने का प्रयास करती हुई वहां रहने लगी।

तस्यास्तु शीलवृत्ताभ्यां तुतोष मुनिपुङ्गवः ।
प्रीतः स तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह ।।28।।

उस कन्या ने अपने सदाचरण और शील व्यवहार से मुनिश्रेष्ठ को संतुष्ट कर दिया। उसके कारण एक दिन महातेजस्वी मुनिवर पुलस्त्य ने प्रसन्न होकर उससे कहा।

परितुष्टोऽस्मिसुश्रोणि गुणानां सम्पदा भृशम् ।
तस्माद् देवि ददाम्यद्यपुत्रमात्मसमं तव ।।29।।

हे सुन्दरी! मैं तुम्हारे गुणों और व्यवहार के संपत्ति रूपी भण्डार से बहुत प्रसन्न हूं, अतः हे देवी! मैं तुम्हें अब एक ऐसा पुत्र प्रदान करूंगा जो ठीक मेरे जैसा ही होगा।

उभयोर्वंशकर्तारं पौलस्त्य इति विश्रुतम् ।
यस्मात् तु विश्रुतो वेदस्त्वयेहाध्यतो मम ।।30।।

माता-पिता दोनों के कुलों की प्रतिष्ठा को बढ़ावा देने वाला वह बालक ‘पौलस्त्य’ के नाम से प्रसिद्ध होगा। जब मैं वेद-पाठ कर रहा था, उस समय विशेष रूप से तुमने उसे श्रवण किया था।

तस्मात् सविश्रवा नाम भविष्यति न संशयः ।
एवमुक्ता तु सा देवी प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।।31।।

अतः उस बालक का नाम ‘विश्रवा’ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। महर्षि के यह कहने पर वह देवी अत्यन्त प्रसन्न हुई।

अचिरेणैव कालेनासूत विश्रवसं सुतम् ।
त्रिपु लोकेषु विख्यातं यशोधर्मसमन्वितम् ।।32।।

कुछ समय के बाद उस देवी ने विश्रवा नामक पुत्र को जन्म दिया जो धर्म, यश एवं परोपकार से समन्वित होकर तीनों लोकों में अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ।

श्रुतिमान् समदर्शी च व्रताचाररतस्तथा ।
पितेव तपसा युक्तो ह्यभवद् विश्रवा मुनिः ।।33।।

'विश्रवा' नाम के यह मुनि वेदज्ञ, व्रत, आचारों और समदर्शी का पालन करने वाले ठीक अपने पिता के समान ही महान् तेजस्वी थे।

अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
अचिरेणैव कालेन पितवे तपसि स्थितः ।।34।।

महर्षि पुलस्त्य के यह पुत्र मुनिश्रेष्ठ विश्रवा कुछ ही वर्ष बाद पिता की भांति तपस्या करने में संलग्न हो गए।

सत्यवान् शीलवान् दान्तः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ।
सर्वभोगेष्वसंसक्तो नित्यधर्मपरायणः ।।35।।

वे सत्यवादी, सदैव ही धर्म में तत्पर रहने वाले, स्वाध्यायी, पवित्र, परायण, जितेन्द्रिय एवं शीलवान् आदि सभी प्रकार के गुणों से संलिप्त थे।

ज्ञात्वा तस्य तु तद् वृत्तं भरद्वाजो महामुनिः ।
ददौ विश्रवसे भार्यां स्वसुतां देववर्णिनीम् ।।36।।

महामुनि विश्रवा के इन महान गुणों तथा सद्वृत्तों के बारे में जानकारी पाकर महामुनि भारद्वाज ने देवाङ्गनाओं के समान अपनी सुन्दर कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया।

प्रतिगृह्यतु धर्मेण भरद्वाजसुतां तदा ।
प्रजान्वीक्षिकया बुद्धया श्रेयो ह्यास्य विचिन्तयन् ।।37।।

मुनिश्रेष्ठ धर्मज्ञ विश्रवा ने महर्षि भारद्वाज की कन्या को प्रसन्नतापूर्वक तथा धर्मानुसार ग्रहण किया। फिर जन-प्रजा के हित-चिन्तन करने वाली बुद्धि द्वारा जन-कल्याण की कामना करते हुए —

मुदापरमया युक्तो विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
स तस्यां वीर्यसम्पन्नमपत्यं परमाद्भुतम् ।।38।।

उन्होंने उस कन्या के गर्भ से एक पराक्रमी तथा अद्भुत पुत्र उत्पन्न किया, जो उनके समान ही समस्त गुणों से सम्पन्न था।

सौतेले भाई वैश्रवण

जनयामास धर्मज्ञः सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्वृतम् ।
तस्मिञ्जाते तु संहृष्टः स बभूव पितामहः ।।39।।

उस बालक में सभी ब्राह्मणोचित्त गुण विद्यमान थे। बालक के जन्म से महर्षि पितामह पुलस्त्य मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए।

दृष्ट्वा श्रेयस्करीं बुद्धिं धनाध्यक्षो भविष्यति ।
नाम चास्याकरोत् प्रीतः सार्थं देवर्षिभिस्तदा ।।40।।

उन्होंने अपनी तपस्याशक्ति द्वारा ध्यान करके देखा तो उनको ज्ञात हुआ कि यह बालक आगे चलकर धनाध्यक्ष होगा तथा कल्याणप्रद बुद्धि वाला होगा। इस बात को जानने के बाद महर्षि पुलस्त्य ने प्रसन्न होकर अन्य देवर्षियों के साथ मिलकर उस बालक का नामकरण कर दिया।

यस्माद् विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद् विश्रवा इव ।
तस्माद् वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः ।।41।।

वे बोले कि मेरे पुत्र विश्रवा का यह पुत्र उसके गुणों के समान ही है, अतः यह 'वैश्रवण' नाम से सुप्रसिद्ध होगा।

स तु वैश्रवणस्तत्र तपोवनगतस्तदा ।
अवर्धताहुति हुतो महातेजा यथानलः ।।42।।

इसके पश्चात् वैश्रवण (जो कुबेर नाम से प्रसिद्ध हुए) उस तपोवन में रहते हुए हवनकुण्ड में प्रज्वलित आग के समान महा तेजस्वी और तपस्वी के रूप में बढ़ने लगे।

तस्याश्रमपदस्थस्य बुद्धिर्जज्ञे महात्मनः ।
चरिष्ये परमं धर्मं धर्मो हि परमागतिः ।।43।।

आश्रम में रहते हुए महात्मा वैश्रवण के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि वे वहां उत्तम धर्म का आचरण करें, क्योंकि धर्म-कर्म का काम ही परमगति है।

स तु वर्ष सहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।
पवित्रतो नियमैरुग्रैश्चकार सुमहत्तपः ।।44।।

उन्होंने उस महावन में रहकर कठोर तपस्या करने का निश्चय किया तथा उन्होंने अत्यंत कठोर नियमों में बंधकर एक सहस्र वर्षों तक कठोर-महान तपस्या की।

पूर्णे वर्ष सहस्रान्ते तं त विधिमकल्पयत् ।
जलाशी मारुताहारो निराहा स्तथैव च ।।45।।

एक वर्ष पूरा हो जाने पर वह तपस्या करने की नयी-नयी विधि का प्रयोग करते थे। वह केवल पानी पीकर ही रहते थे। बाद में केवल हवा को ही अपना भोजन बना लिया। अंत में उन्होंने बिना कुछ खाए-पिए घोर तपस्या की।

एवं वर्ष सहस्राणि जग्मुस्तान्येकवर्षवत् ।
अथ प्रीतो महातेजाः सेन्द्रैः सुरगणैः सह ।।46।।
गत्वातस्याश्रमपदं ब्रह्मेदं वाक्यमब्रवीत् ।
परितुष्टोऽस्मि ते वत्स कर्मणानेन सुव्रत ।।47।।

इस प्रकार उन्होंने अनेक वर्षों को एक वर्ष की भांति ही बिता दिया। उनकी इस तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने ब्रह्माजी के साथ उस आश्रम में पहुंचकर कहा—हे वत्स! तुम बहुत ही उत्तम धर्म का पालन कर रहे हो। मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूं।

वरं वृणीष्व भद्रं ते वरार्हस्त्वं महामते ।
अथाब्रवीद वैश्रवणः पितामहमुपस्थितम् ।।48।।

हे महामने! तुम्हारा कल्याण हो। हे भद्र! तुम कोई वरदान मांगो, क्योंकि तुम इस वरदान के पात्र हो। यह सुनकर वैश्रवण ने अपने पास खड़े पितामह से कहा—

भगवंल्लोकपालत्वमिच्छेयं लोकरक्षणम् ।

अथाब्रवीद् वैश्रवणं परितुष्टेन चेतसा ।।49।।

हे भगवान्! मैं जनता की रक्षा करने के लिए उनका लोकपाल बनना चाहता हूं। वैश्रवण के मुंह से निकले इन शब्दों को सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी का मन अत्यधिक प्रसन्न हो गया।

ब्रह्मासुरगणैः सार्धं बाढमित्येव हृष्टवत् ।
अहं वै लोकपालानां चतुर्थं सृष्टुमुद्यतः ।।50।।

उस समय ब्रह्माजी ने देवताओं के साथ मिलकर कहा—बहुत अच्छा! मैं भी सृष्टि के चौथे लोकपाल की तैयारी में था।

यमेन्द्रवरुणानां च पदं यत् तव चेप्सितम् ।
तदगच्छ वत धर्मज्ञ निधीशत्वमवाप्नुहि ।।51।।

जिस प्रकार यम, वरुण तथा इन्द्र को लोकपाल के पद प्राप्त हैं, उसी तरह का पद तुम्हें भी मिलेगा। तुम इस पद को स्वीकार करके निधियों के स्वामी या प्रतिनिधि बन जाओ।

शक्राम्बुपयमानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि ।
एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसंनिभम् ।।52।।
प्रति गृहृणीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामः सर्व एव यथागतम् ।।53।।

उन्होंने कहा—वरुण, यम तथा इन्द्र की तरह तुम चौथे लोकपाल होगे। सूर्य के समान यह जो तेजस्वी 'पुष्पक' नाम का विमान है, इसे तुम अपनी सवारी के रूप में ग्रहण अर्थात् स्वीकार करो और देवताओं के समान बन जाओ। हे तात! तुम्हारा कल्याण हो। जिस प्रकार हम सब आए थे, अब उसी प्रकार जा रहे हैं।

कृतकृत्या वयं तात दत्त्वा तव वरद्वयम् ।
इत्युक्त्वा स गतो ब्रह्मा स्वस्थानं त्रिदशैः सह ।।54।।

तुमको यह दो वरदान देकर हम अपने को कृत-कृत समझते हैं। इतना कुछ कहने के बाद प्रजापति ब्रह्माजी अन्य देवताओं को साथ लेकर देव लोक की ओर चल दिए।

गतेषु ब्रह्म पूर्वेषु देवेष्वथ नभस्तलम् ।
धनेशः पितरं प्राह प्राञ्जलिः प्रयतात्मवान् ।।55।।
भगवंल्लब्धवानस्मि वरमिष्टं पितामहात् ।
निवासनं न मे देवो विदधे स प्रजापतिः ।।56।।

ब्रह्माजी तथा अन्य देवताओं के चले जाने के बाद वैश्रवण ने अपने दोनों हाथों को जोड़कर अपने पिता से विनम्रतापूर्वक कहा—हे भगवान्! मैंने आज पितामह ब्रह्माजी से अभीष्ट वरदान प्राप्त किया है, लेकिन प्रजापति ब्रह्माजी ने मेरा कोई निवास स्थान नहीं बताया।

तं पश्य भगवन् कंचिन्निवासं साधु मे प्रभो ।
न च पीडा भवेद् यत्र प्राणिनो यस्य कस्यचित् ।।57।।

अतः अब आप ही मेरे लिए निवास स्थान की खोज कीजिए, जो अच्छा हो तथा जहां मेरे रहने से किसी भी प्राणी को कोई कष्ट न हो।

एवमुक्तस्तु पुत्रेण विश्रवा मुनि पुंगवः ।
वचनं प्राह धर्मज्ञ श्रूयतामिति सत्तम ।।58।।

दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ।
तस्याग्रे तु विशाला सा महेन्द्रस्य पुरी यथा ।।59।।

मुनिश्रेष्ठ विश्रवा ने अपने पुत्र के इन शब्दों को सुनकर कहा—हे धर्मज्ञ! हे साधु! तुम मेरी बात सुनो! दक्षिणी समुद्र तट पर ‘त्रिकूट’ नाम का पर्वत है। उस पर्वत पर एक विशाल नगरी बसी हुई है, जो इन्द्रपुरी अमरावती के समान ही सुन्दर तथा आकर्षक है।

लङ्का नामपुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ।
राक्षसानां निवासार्थे यथेन्द्रस्यामरावती ।।60।।

‘लङ्का’ नामक उस रमणीय पुरी को विश्वकर्मा ने असुरों के निवास के लिए बनाया था। वह इन्द्र की अमरावती पुरी की तरह ही है।

तत्र त्वं वस भद्रं ते लङ्कायां नात्र संशयः ।
हेम प्राकारपरिखा यन्त्र शस्त्रसमावृता ।।61।।

हे भद्र! उस लङ्का में जाकर तुम निःसंदेह बस जाओ। वह नगरी यंत्र और शस्त्रों से सुरक्षित तथा स्वर्ण की चहारदीवारी से युक्त है।

वैश्रवण का लंका वास

रमणीया पुरी सा हि रुक्मवैदूर्यतोरणा ।
राक्षसैः सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयार्दितैः ।।62।।

स्वर्ण और नीलम निर्मित कारकों वाली वह रमणीय नगरी है। पूर्वकाल में भगवान् विष्णु के भय के कारण असुर इसे त्याग कर चले गए थे।

शून्यांरक्षो गणैः सर्वे रसातलतलं गतैः ।
शून्य सम्प्रति लङ्का सा प्रभुस्तस्या न विद्यते ।।63।।

वे समस्त असुर रसातल की तलहटी में चले गए थे। उस समय से वह लङ्का नगरी अब तक सूनी पड़ी है। उसका कोई स्वामी नहीं है।

स त्वं तत्र निवासाय गच्छ पुत्र यथा सुखम् ।
निर्दोषस्तत्र ते वासो न बाधस्तत्र कस्यचित् ।।64।।

अतः हे पुत्र! तुम वहां सुखपूर्वक रहने के लिए प्रस्थान करो। वहां रहने में न तो किसी प्रकार की विघ्न या बाधा है और न ही कोई दोष है।

एतच्छ्रुत्वा स धर्मात्मा धर्मिष्ठं वचनं पितुः ।
निवासयामास तदा लङ्का पर्वतमूर्धनि ।।65।।

अपने पिता द्वारा धर्मयुक्त वचनों को सुनकर धर्मात्मा वैश्रवण ने त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई उस लङ्कापुरी नामक नगरी में जाकर रहना शुरू कर दिया।

नैर्ऋतानां सहस्रैस्तु हृष्टैः प्रमुदितैः सदा ।
अचिरेणैव कालेन सम्पूर्णातस्य शासनात् ।।66।।

वैश्रवण अर्थात् कुबेर के उस स्थान पर जाकर रहते ही वह नगरी कुछ ही दिनों में हृष्ट-पुष्ट एवं सहस्रों नैर्ऋतों (असुरों की एक जाति) से भर गई। वे सभी वहां धर्मात्मा वैश्रवण के अधीन

सुखपूर्वक रहने लगे।

स तु तत्रावसत् प्रीतो हृष्टैः नेर्ऋतर्षभः ।
समुद्र परिखायां स लङ्कायां विश्रवात्मजः ।।67।।

समुद्र की तरह खाई वाली उस लङ्कापुरी में विश्रवा के पुत्र धर्मात्मा वैश्रवण असुरों के स्वामी बनकर सुख के साथ रहने लगे।

काले काले तु धर्मात्मा पुष्पकेण धनेश्वरः ।
अभ्यागच्छद् विनीतात्मा पितरं नातरं च हि ।।68।।

समय-समय पर विनीत स्वभाव वाले धर्मात्मा वैश्रवण पुष्पक विमान में बैठकर अपने माता-पिता से मिलने चले जाते थे।

सदैव गन्धर्वगणैरभिष्टु तस्तथाप्सरोनृत्य विभूषितालयः ।
गभस्तिभिः सूर्य इवावभासयन् पितुः समीपं प्रययौ स वित्तपः ।।69।।

गन्धर्वगण तथा देवता उनकी स्तुति किया करते थे। उनकी नगरी का भवन सुंदर अप्सराओं के नृत्य से विभूषित रहता था। सूर्य के समान प्रकाशित धर्मात्मा वैश्रवण एक बार स्वयं अपना प्रकाश बिखेरते हुए अपने पिता के पास गए।

श्रुत्वागस्त्येरितं वाक्यं रामो विस्मयमागतः ।
कथमासीत् तु लङ्कायां सम्भवो राक्षसा पुरा ।।70।।

भगवान् रामचन्द्र को महामुनि अगस्त्य के वाक्यों को सुनकर बड़ा विस्मय हुआ। वह यह सोचने लगे कि पूर्वकाल में लङ्का में राक्षसों की उत्पत्ति कैसे हुई थी।

ततः शिरः कम्पयित्वा त्रेताग्नि सम विग्रहम् ।
तमगस्त्यं मुहुर्दृष्ट्वा स्मयमानोऽभ्यभाषत ।।71।।

इसके बाद रामचन्द्रजी ने अपना सिर हिलाते हुए त्रिविध अग्नियों के समान तेजस्वी शरीर वाले महामुनि अगस्त्यजी की ओर देखा तथा कहा—

भगवन् पूर्वामप्येषा लङ्काऽऽसीत् पिशिताशिनाम् ।
श्रूत्वेवं भगवद्वाक्यं जातो मे विस्मयः परः ।।72।।

हे भगवान्! यह सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है कि यह लङ्कापुरी पहले मांसभक्षी असुरों का निवास स्थल थी।

असुरों की उत्पत्ति

पुलस्त्यवंशादुद्भूता राक्षसा इति नः श्रुतम् ।
इदानीनन्यतश्चापि सम्भवः कीर्तितस्त्वया ।।73।।

मैं तो केवल यही सोचता था कि असुरों की उत्पत्ति पुलस्त्यजी के कुल से ही हुई है, परन्तु आपने किसी अन्य कुल से भी असुरों का उत्पन्न होना बताया है।

रावणात् कुम्भकर्णाच्च प्रहस्ताद् विकटादपि ।
रावणस्य च पुत्रेभ्यः किं नु ते बलवन्तराः ।।74।।

उन्होंने कहा—क्या वे सभी राक्षस रावण, कुम्भकर्ण, प्रहस्त, विकट तथा रावण के पुत्रों से

बढ़कर भी बलशाली थे।

क एषां पूर्वको ब्रह्मन् किं नामा च बलोत्कटः ।
अपराधं च कं प्राप्य विष्णुना द्राविताः कथम् ।।75।।

हे ब्रह्मान्! इन असुरों का पूर्वज कौन था और उस अपार बलशाली का नाम क्या था? विष्णुजी ने उनके कौन से अपराध को देखकर उन्हें मार भगाया था?

एतद् विस्तरतः सर्वं कथयस्व ममानघ ।
कुतूहलमिदं मह्यं नुद भानुर्यथा तमः ।।76।।

हे निष्पाप! इन सभी बातों के बारे में आप मुझे विस्तारपूर्वक बताइए। जिस प्रकार सूर्य अंधकार का नाश करता है, उसी भांति आप मेरे इन प्रश्नों का निवारण कीजिए।

राघवस्य वचः श्रुत्वा संस्कारालंकृतं शुभम् ।
अथ विस्मयमानस्तमगस्त्यः प्राह राघवम् ।।77।।

अगस्त्यजी को मन में यह सोचकर अत्यंत आश्चर्य हुआ कि सर्वज्ञ होते हुए भी राघव मुझसे यह सब कुछ क्यों पूछ रहे हैं? उसके बाद उन्होंने कहना शुरू किया—

प्रजापतिः पुरा सृष्ट्वा अपः सलिलसम्भवः ।
तासां गोपायने सत्त्वानसृजत् पद्मसम्भवः ।।78।।

पूर्वकाल में जल द्वारा उत्पन्न हुए कमल पर प्रकट प्रजापति ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम जल की सृष्टि की। उसके बाद उसकी रक्षा करने के लिए विभिन्न प्रकार के जल-जीव उत्पन्न किए।

ते ते सत्वाः सत्त्वकर्तारं विनीतवदुपस्थिताः ।
कि कुर्म इति भाषन्तः क्षुत्पिपासाभयार्पिताः ।।79।।

यदि जल-जीव भूख और प्यास के कारण व्याकुल हों तो क्या करें? वे जल-जीव यह कहते हुए अपने उत्पन्नकर्ता ब्रह्माजी के पास विनीत भाव से जाकर खड़े हो गए।

प्रजापतिस्तु तान् सर्वान् प्रत्याह प्रहसन्निव ।
आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानद ।।80।।

हे सम्मानदायक राघवेन्द्र! ब्रह्माजी ने उन सबको हंसकर संबोधित करते हुए कहा—यत्न करके इस जल की रक्षा करो।

रक्षामिति तत्रान्यैर्यक्षाम इति चापरैः ।
भुङ्क्षिताभुङ्क्षितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत् ।।81।।

इस बात को सुनकर भूखे-प्यासे जीव-जन्तुओं में से कुछ ने कहा—हम इस जल की रक्षा करेंगे। कुछ ने कहा—हम इस जल का यक्षण (पूजन) करेंगे। तत्पश्चात् ब्रह्माजी बोले—

रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः ।
यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु वः ।।82।।

तुम सबमें से जिन्होंने 'रक्षण' करने की बात कही है, वे सभी 'राक्षस' नाम से प्रसिद्ध होंगे तथा जिन्होंने 'यक्षण' की बात कही है, वे सब 'यक्ष' के नाम से प्रसिद्ध होंगे। इस प्रकार वे जीव 'राक्षस' तथा 'यक्ष' दो जातियों में विभक्त हो गए।

तत्र हेति प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसाधिपौ ।
मधुकैटभसंकाशौ बभूवतुररिदंमौ ।।83।।

उनमें से 'हेति' और 'प्रहेति' नाम के दो भाई राक्षस जाति के राजा (स्वामी) बने। वे मधु-कैटभ के समान शत्रुओं का दमन करने में शक्तिशाली थे।

प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र तपोपवनगतस्तदा ।
हेतिर्दारक्रियार्थे तु परं यत्नमपाकरोत् ।।84।।

उनमें प्रहेति राजा धर्मात्मा था, अतः वह तपस्या करने के उद्देश्य से तपोवन में चला गया। लेकिन हेति राजा ने स्त्री को पाने के लिए बहुत प्रयत्न किया।

सकालभगिनी कन्यां भयां नाम महाभयाम् ।
उदावहमेयात्मा स्वयमेव महामतिः ।।85।।

वह बहुत अधिक बुद्धिमान और आत्मबल से सम्पन्न था। उसने काल की कुमारी बहन (भया) से स्वयं याचना करके विवाह किया, जो स्वयं ही महाभयानक थी।

स तस्यां जनयामास हेती राक्षसपुंगवः ।
पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो विद्युत्केशमिति श्रुतम् ।।86।।

उसने राक्षसराज हेति के द्वारा एक पुत्र को जन्म दिया। 'विद्युत्केश' नाम के उस पुत्र के कारण हेति पुत्रवानों में श्रेष्ठ समझा जाने लगा।

विद्युत्केशो हेति पुत्रः स दीप्तार्कसमप्रभः ।
व्यवर्धत महातेजास्तोयमध्य इवाम्बुजम् ।।87।।

उसका पुत्र विद्युत्केश प्रदीप्त सूर्य के समान प्रकाशवान था। वह परम तेजस्वी बालक जल में कमल की तरह दिन-रात बढ़ने लगा।

स यदा यौवनं भद्रमनुप्राप्तो निशाचरः ।
ततो दारक्रियां तस्य कर्तुं व्यवसितः पिता ।।88।।

श्रेष्ठ निशाचर विद्युत्केश जब युवावस्था में पहुंचा तो उसके पिता ने उसका विवाह करने का निश्चय किया।

संध्यादुहितरं सोऽथ संध्यातुल्यां प्रभावतः ।
वरयामास पुत्रार्थं हेतु राक्षस पुंगवः ।।89।।

उसने उसकी माता के समान प्रभावशालिनी सन्ध्या की पुत्री का उसके लिए चयन किया।

अवश्यमेव दातव्या परस्मै सेति संध्यया ।
चिन्तयित्ना सुता दत्ता विद्युत्केशाय राघव ।।90।।

सन्ध्या के मन में यह विचार आया कि मुझे अपनी पुत्री का विवाह तो करना ही है, फिर विद्युत्केश के साथ ही क्यों न हो जाए। यह निर्णय कर उसने अपनी पुत्री विद्युत्केश को सौंप दी।

संध्यायास्तनयां लब्ध्वा विद्युत्केशो निशाचरः ।
रमते स तथा सार्धं पौलोभ्यां मध्ववानिव ।।91।।

विद्युत्केश ने सन्ध्या की पुत्री को पाकर उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया, जैसा इन्द्र पुलोम-पुत्री शची के साथ करते थे।

केनचित्त्वथ कालेन राम सालकटङ्कटा ।
विद्युत्केशाद् गर्भमाप धनराजि रिव्ययर्णवात् ।।92।।

हे राम! जिस प्रकार मेघों की पंक्ति समुद्र से जल ग्रहण करती है, उसी प्रकार संध्या की पुत्री 'सालकटङ्कटा' ने विद्युत्केश द्वारा गर्भ धारण किया।

ततः सा राक्षसी गर्भं घनगर्भसमप्रभम् ।
प्रसूता मन्दरं गत्वा गङ्गा गर्भमिवाग्निजम् ।।93।।

तत्पश्चात् उस राक्षसी ने मन्दराचल पर्वत पर जाकर विद्युत जैसी कान्ति वाले पुत्र को जन्म दिया, जिस प्रकार गंगा ने अग्नि के द्वारा छोड़े गए शिव के तेज समान रूपी गर्भ (कुमार कार्तिकेय) को उत्पन्न किया था।

समुत्सुज्य तु सा गर्भं विद्युत्केशरतार्थिनी ।
रेमे तु सार्धं पतिना विस्मृत्य सुतमात्मजम् ।।94।।

फिर वह पति विद्युत्केश के साथ रति-क्रीड़ा करने के लिए नवजात शिशु को छोड़कर चल पड़ी तथा पुत्र का ध्यान भुलाकर अपने पति के साथ रमण करने लगी।

उत्सृष्टस्तु तदा गर्भो धनशब्द समस्वनः ।
तयो शिशुः शरदर्कसम द्युतिः ।।95।।

उस माता द्वारा वहां छोड़ा गया बालक बादलों की भांति गरजने लगा। तत्पश्चात् उस बालक के शरीर की कान्ति शरद्कालीन सूर्य की भांति प्रतीत होने लगी।

निधायास्ये स्वयं मुष्टिं रुरोद शनकैस्तदा ।
ततो वृषभमास्थाय पार्वत्या सहितः शिवः ।।96।।

वह नवजात बालक अपने हाथों को मुंह में डालकर धीरे-धीरे रोने लगा। उस समय भगवान शिव माता पार्वती के साथ बैल पर बैठे हुए थे।

वायुमार्गेण गच्छन् वै शुश्राव रुदितस्वनम् ।
अपश्यदुमया सार्ध रुदन्तं राक्षसात्मजम् ।।97।।

वे दोनों वायुमार्ग से जा रहे थे, तभी उन्हें वहां एक बालक के रोने की आवाज सुनाई दी। तब उन दोनों ने उस राक्षस-पुत्र की ओर देखा।

कारुण्यभावात् पार्वत्या भवस्त्रिपुरसूदनः ।
तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव वयः समम् ।।98।।

पार्वतीजी की उस बालक के प्रति करुणा एवं ममता उत्पन्न हुई। इस पर शिवजी ने उस बालक को उसकी मां की आयु के समान वयस्क बना दिया।

अमरं चैव तं कृत्वा महादेवोऽक्षरोऽव्ययः ।
पुरमाकाशगं प्रादात् पार्वत्याः प्रियकाम्यया ।।99।।

पार्वती का प्रिय होने के कारण उन्होंने उस राक्षस-पुत्र को एक नगर के समान के आकार का आकाशचारी विमान देकर, अमर भी बना दिया।

राक्षसियों को वरदान

उमयापि वरो दत्तो राक्षसीनां नृपात्मज ।
सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च ।।100।।

सद्य एव वयः प्राप्तिं मातुरेव वयः समम् ।।101।।

हे राजपुत्र! इसके पश्चात् पार्वतीजी ने यह वरदान दिया कि आज से राक्षसियां शीघ्र ही गर्भ धारण कर लिया करेंगी और उनके द्वारा जन्मा बालक उसी समय शीघ्रता से अपनी मां की आयु के बराबर वयस्क बन जाएगा।

ततः सुकेशो वरदान गर्वितः, श्रियं प्रभो प्राप्य हरस्य पार्श्वतः ।
चचार सर्वत्र महान् महामतिः, खगं पुरं प्राप्य पुरंदरो यथा ।।102।।

वरदान के बल से गर्वित तथा भगवान शिव के ऐश्वर्य को प्राप्त करके, वह सुकेश नामक राक्षस आकाशचारी विमान में विराजमान होकर, देवराज इन्द्र की भांति सारी जगह विचरण करने लगा।

सुकेश धार्मिकं दृष्ट्वा वरलब्धं च राक्षसम् ।
ग्रामणी नाम गन्धर्वो विश्वावसुसम प्रभः ।।103।।

सुकेश को विश्वासु के समान तेजस्वी, धार्मिक एवं वर प्राप्त देखकर 'ग्रामणी' नाम की गन्धर्व ने—

तस्य देववती नाम द्वितीया श्रीरिवात्मजा ।
त्रिषु लोकेषु विख्याता रूपयौवनशालिनी ।।104।।
तां सुकेशाय धर्मात्मा ददौ रक्षः श्रियं यथा ।
वरदान् कृतैश्वर्यं सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ।।105।।

अपनी पुत्री 'देववती' को जो लक्ष्मी के समान दिव्य स्वरूप वाली थी और रूप-यौवन के कारण तीनों लोकों में प्रसिद्ध थी—राक्षसों की राजलक्ष्मी की भांति उसे सुकेश के हाथों सौंप दिया अर्थात् उसका विवाह राक्षस पुत्र सुकेश के साथ कर दिया। वह देववती नामक कन्या भी वरदान के रूप में मिले ऐश्वर्य की भांति पति को पाकर—

आसीद् देववती तुष्टा धनं प्राप्येव निर्धनः ।
स तया सह संयुक्तो रराज रजनीचरः ।।106।।

इस प्रकार संतुष्ट अर्थात् तृप्त हो गई, जैसे किसी निर्धन व्यक्ति को धन का ढेर मिल गया हो। उसके साथ रहते हुए वह राक्षसराज भी—

अज्जनादभि निष्क्रान्तः करेण्वेव महागजः ।
ततः काले सुकेशेस्तु जनयामास राघव ।।107।।
त्रीन् पुत्राञ्जनयामास त्रेताग्निसमविग्रहान् ।
माल्यन्तं सुमालिं च मालिं च बालिनां वरम् ।।108।।

इस प्रकार सुशोभित होने लगा, जिस प्रकार महागज के साथ कोई हथिनी सुशोभित होती है। हे राघव! इसके पश्चात् सुकेश ने देववती के गर्भ से अग्नि-समान तीन तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया। उन तीनों के नाम माल्यवान, सुमाली तथा माली थे। वे तीनों सर्वशक्तिमानों एवं बलधारियों में श्रेष्ठ थे।

त्रींस्त्रिनेत्र समान् पुत्रान् राक्षसान् राक्षसाधिपः ।
त्रयो लोका इवाव्यग्राः स्थितास्त्रय इवाग्नयः ।।109।।

शिवजी के समान शक्तिशाली उन तीनों को देखकर राक्षसराज सुकेश बहुत प्रसन्न हुआ। वे

तीनों पुत्र अग्नियों के समान तेजस्वी तथा तीनों लोकों के समान सुस्थिर थे।

त्रयो मन्त्रा इवात्युग्रास्त्रयो घोरा इवामयाः ।
त्रयः सुकेशस्य सुतास्त्रेताग्नि सम तेजसः ।।110।।

तीनों रोगों के समान भयंकर तथा मन्त्रों के समान उग्र थे। वे तीनों पुत्र त्रिविध अग्नियों के समान तेजस्वी थे।

विवृद्धिमगमस्तत्र व्याधयोजेक्षिता इव ।
वरप्राप्तिं पितुस्ते तु ज्ञात्वैश्वर्यं तपोबलात् ।।111।।

जिस प्रकार उपेक्षित किए जाने पर रोग बढ़ने लगता है, उसी प्रकार वह तीनों राक्षसराज पुत्र भी बढ़ने लगे। जब उन्हें यह पता चला कि उनके पिता ने घोर तपस्या करके वर प्राप्त किया था—

तपस्तप्तुं गता मेरुं भ्रातरः कृतनिश्चयाः ।
प्रगृह्य नियमान् घोरान् राक्षसा नृपसत्तमः ।।112।।

तो वे तीनों भाई भी तपस्या करने का निश्चय करके मेरु पर्वत की ओर चले गए। हे नृपश्रेष्ठ! वे तीनों कठोर एवं दृढ़ नियमों का पालन करते हुए वहां तपस्या करने लगे।

विचेरुस्ते तपो घोरं सर्वभूत भयावहम् ।
सत्यार्जवशमोपेतैस्तपोभिर्भुवि दुर्लभैः ।।113।।

उनकी उस तपस्या से सभी प्राणी भयभीत थे। भूमि अर्थात् पृथ्वी पर आर्जव, सत्य, शम आदि से युक्त होकर—

संतापयन्तस्त्रील्लोकान् सदेवासुरमानुषान् ।
ततो विभुश्चतुर्वक्त्रो विमानवरमाश्रितः ।।114।।

घोर तपस्या द्वारा उन तीनों ने देवताओं, असुरों और मनुष्यों को संतप्त कर दिया। उस समय प्रजापति चतुर्मुख ब्रह्माजी विमान पर सवार होकर वहां पहुंचे।

सुकेशपुत्रानामन्त्र्य वरदोऽस्मीत्यभाषत ।
ब्रह्माणं वरदं ज्ञात्वा सैन्द्रेर्देवगणैर्वृतम् ।।115।।
ऊचुः प्रांजलयः सर्वे वेषमाना इव द्रुमाः ।
तपसाऽऽराधितो देव यदि नो दिशसे वरम् ।।116।।

उन्होंने सुकेश के तीनों पुत्रों से कहा—मैं तुम्हें वर देने के लिए आया हूं। इन्द्र तथा अन्य देवताओं से घिरे ब्रह्माजी वरदान देने आए हैं, यह जानकर वे तीनों पेड़ की भांति कांपते हुए बोले—हे देव! यदि हमारी तपस्या से संतुष्ट तथा प्रसन्न होकर आप हमें वर देने आए हैं—

अजेयाः शत्रुहन्तारस्तथैव चिरजीविनः ।
प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुवृताः ।।117।।

तो आप हमको शत्रु-नाशक, अजेय तथा चिरंजीवी होने के साथ-साथ यह वरदान दें कि हम तीनों एक-दूसरे के अनुकूल तथा प्रभावशाली बने रहें।

एवं भविष्यथेत्युक्त्वा सुकेशतनयान् विभुः ।
स ययौ ब्रह्मलोकाय ब्रह्मा ब्राह्मणवत्सलः ।।118।।

उनकी बात सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही होगा। इसके पश्चात् ब्राह्मण वत्सल

ब्रह्माजी ब्रह्मलोक को चले गए।

वरं लब्ध्वा तु ते सर्वे राम रात्रिंचरास्तदा ।
सुरासुरान् प्रबाधन्ते वरदान सुनिर्भयाः ।।119।।

हे राम! वरदान पाकर वे तीनों राक्षस देवताओं और असुरों सभी को निर्भय होकर कष्ट देने लगे।

तैर्बाध्यमानास्त्रिदशाः सर्षिसंघाः सचारणाः ।
त्रातारं नाधिगच्छन्ति निरयस्था यथा नराः ।।120।।

जिस प्रकार नरक लोक में पड़े हुए मनुष्य असहाय हो जाते हैं, उसी प्रकार उनके द्वारा सताए गए ऋषि-वृन्द एवं चारण भी असहाय हो गए।

अथ ते विश्वकर्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम् ।
ऊचुः समेत्य संहृष्टा राक्षसा रघुसत्तम ।।121।।

हे रघुकुलमणि! प्रसन्नता और उत्साह से भरकर एक दिन उन तीनों ने शिल्पकारों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा से कहा—

ओजस्तेजोबलवतां महतामात्मतेजसा ।
गृहकर्ता भवानेव देवानां हृदयेप्सितम् ।।122।।

हे महामने! जो बल, तेज तथा ओज से सम्पन्न होने के कारण महान् बने हैं, आप अपनी शक्ति द्वारा उन देवताओं के निमित्त मनोनुकूल भवनों का निर्माण करते हैं।

अस्माकमपि तावत् त्वं गृहं कुरु महामते ।
हिमवन्तमुपाश्रित्य मेरुं मन्दरमेव वा ।।123।।

अतः अब आप हमारे लिए भी मेरु, हिमालय या मन्दराचल पर्वत के ऊपर भगवान् शिव के भवन की भांति एक विशाल एवं दिव्य निवास स्थान का निर्माण करें।

महेश्वर गृहप्रख्यं गृहं नः क्रियतां महत् ।
विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजः ।।124।।
निवासं कथयामास शक्रस्येवामरावतीम् ।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नामपर्वतः ।।125।।

यह बात सुनकर विश्वकर्माजी ने उन्हें एक ऐसा निवास स्थल बताया जो इन्द्र की अमरावतीपुरी के समान था। उन्होंने कहा—दक्षिण समुद्र तट के किनारे ‘त्रिकूट’ नाम का एक पर्वत है।

सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयो राक्षसेश्वरः ।
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसन्निभे ।।126।।
शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्न चतुर्दिशि ।
त्रिशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ।।127।।
स्वर्णप्रकार संवीता हेमतोरण संवृता ।
मयालङ्केतिनगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ।।128।।

हे राक्षसेश्वर! दूसरा ‘सुवेल’ नाम का पर्वत है। उस पर्वत के मध्य में बादल के समान नीलवर्ण है। उसको चारों तरफ से इस प्रकार टांका गया है कि वहां पर कोई पक्षी भी न प्रवेश

कर पाए। वहां पर सौ योजन लंबी तथा तीस योजन चौड़ी, स्वर्ण-प्राचीर (चहारदीवारी) और स्वर्ण निर्मित तोरणों (फाटकों) वाली 'लङ्का' नाम की नगरी है, जिसको मैंने इन्द्र की आज्ञा पर बनाया था।

लंकानगरी

तस्यां वसत दुर्धर्षा यूयं राक्षसपुंगवाः ।
अमरावतीं समासाद्य सेन्द्रा इव दिवौकसः ।।129।।
लङ्कादुर्गं समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृताः ।
भविष्यथ दुराधार्षाः शत्रूणां शत्रुसूदनाः ।।130।।
विश्वकर्मषवचः श्रुत्वा ततस्ते राक्षसोत्तमाः ।
सहस्रानुचरा भूत्वा गत्वा तामवसन् पुरीम् ।।131।।
दृढ़ प्राकार परिखा हेमैर्गृहशतैर्वृताम् ।
लङ्कामवाप्य ते हृष्टा न्यवसन् रजनीचराः ।।132।।

हे दुर्धर्ष राक्षसपुंगवो! उस नगरी में जाकर तुम सभी उसी प्रकार निवास करो, जिस प्रकार इन्द्र अन्य देवताओं के साथ अमरावती में करते हैं। हे शत्रुजयी वीरो! जब तुम बहुत सारे राक्षसों के साथ उस नगरी में निवास करोगे, तो तुम शत्रुओं के लिए अजेय बन जाओगे। विश्वकर्मा के इन वचनों को सुनकर वे राक्षस अपने साथियों तथा अनुचरों के साथ उस लङ्का नगरी की ओर चल पड़े। उस नगरी की खाई और चहारदीवारी बहुत मजबूत थी। उसमें अनेक स्वर्ण निर्मित भवन थे। उस लङ्का नगरी को देखते ही वे राक्षस वहां प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।

एतस्मिन्नेव काले तु यथाकामं च राघव ।
नर्मदा नाम गन्धर्वी वभूव रघुनन्दन ।।133।।
तस्या कन्यात्रयं ह्यासीद्रध्रीश्रीकीर्ति समद्युति ।
ज्येष्ठ क्रमेण सा तेषां राक्षसानाम राक्षसी ।।134।।
कन्यास्ताः प्रददौ हृष्टाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
त्रयाणां राक्षसेन्द्राणां तिस्रो गन्धर्वकन्यकाः ।।135।।
दत्ता मात्रा महाभागा नक्षक्षे भगदैवते ।
कृतदारास्तु ते राम सुकेशतनयास्तदा ।।136।।
चिक्रीडुः सहभार्याभिरप्सरोभिरिवामराः ।
ततो माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी ।।137।।
स तस्या जनयामास यदपत्यं निबोध तत् ।
वज्रमुष्टिर्विरुपाक्षो दुर्मुखश्चैव राक्षसः ।।138।।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च मत्तोन्मतौ तथैव च ।
अनला चाभवत् कन्या सुन्दर्यो राम सुन्दरी ।।139।।
सुमालिनोऽपि भार्याऽऽसीत् पूर्णचन्द्रनिभानना ।
नाम्ना केतुमती राम प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।।140।।
सुमाली जनयामास यदपत्यं निशाचरः ।

केतुमत्यां महाराज तन्निबोधानुपूर्वशः ।।141।।

हे रघुनन्दन, राघव! उस काल में 'नर्मदा' नाम की एक गन्धर्वी भी थी। उसकी तीन कन्याएं थीं जो श्री, कीर्ति और ह्री के समान द्युतिमान थीं। उसने राक्षस जाति का न होते हुए भी अपनी तीनों पुत्रियों का विवाह ज्येष्ठ आदि क्रम से सुकेश राक्षस के तीनों पुत्रों के साथ कर दिया। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली वे तीनों कन्याएं बहुत अधिक प्रसन्न थीं। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उन तीनों कन्याओं का विवाह सुकेश के पुत्रों के साथ हुआ। हे राम! जिस प्रकार अप्सराओं के साथ देवतागण क्रीड़ा करते हैं, उसी प्रकार सुकेश के तीनों पुत्र भी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ भोग-विलास का सुखोपभोग करने लगे। उन तीनों में माल्यवान् की सुन्दर पत्नी का नाम 'सुन्दरी' था। सुन्दरी ने गर्भ से जिन पुत्रों को जन्म दिया, उनके नाम—विरुपाक्ष, वज्रमुष्टि, दुर्भुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त एवं उन्मत्त थे। उसने अपने गर्भ से एक कन्या को भी जन्म दिया जिसका नाम 'अनला' था। सुमाली की पत्नी भी चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली थी। हे राम! उसका नाम 'केतुमती' था और उसका पति उसे अपने प्राणों से भी अधिक चाहता था। केतुमती ने जिन संतानों को अपने गर्भ से जन्म दिया, उनका परिचय भी देता हूं। हे महाराज! आप सुनिए।

प्रहस्तोऽकम्पनश्चैव विकटः कलिकामुखः ।
धूम्राक्षश्चैव दण्डश्च सुपार्श्वश्च महाबलः ।।142।।
संह्रादिः प्रघसश्चैव भासकर्णश्च राक्षसः ।
राका पुष्पोत्कटा चैव कैकसी च शुचिस्मिताः ।।143।।
कुम्भीनसी च इत्येते सुमालेः प्रसवाः स्मृताः ।।144।।

उसके पुत्रों के नाम प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस तथा भास्कर्ण थे। और मोहक मुस्कान वाली राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी एवं कुम्भीनसी नामक चार पुत्रियां थीं।

मालेस्तु वसुदा नाम गन्धर्वी रूपशालिनी ।
भार्यासीत् पद्मपत्राक्षी स्वक्षी यक्षीवरोपमा ।।145।।
सुमालेरनुजस्तस्यां जनयामास यत् प्रभो ।
अपत्यं कथ्यमानं तु मया त्वं शृणु राघव ।।146।।
अनलश्चानिलश्चैव हरः सम्पातिरेव च ।
एते विभीषणामात्या मालेयास्ते निशाचराः ।।147।।

माली की रूपशालिनी गन्धर्वी पत्नी का नाम 'वसुदा' था। वह कमल जैसी विशाल नेत्रों वाली और श्रेष्ठ राक्षस-पत्नियों के समान सुन्दर थी। हे राघव! हे प्रभो! माली की पत्नी ने अपने गर्भ से जिन संतानों को जन्म दिया, उनके बारे में सुनें। अनल, अनिल, हर और सम्पाति—ये चारों माली के पुत्र थे जो बाद में विभीषण के मन्त्री बने।

असुरों द्वारा उत्पीड़न

ततस्तु ते राक्षस पुङ्गवास्त्रयो, निशाचरैः पुत्र शतैश्च संवृताः ।
सुरान् सहेन्द्रानृषिनाग यक्षान् बबाधिरे तान् बहुवीर्यदर्पिताः ।।148।।

जगद्भ्रमन्तोऽनिलवद् दुरासदा, रणेषु मृत्यु-प्रतिमानतेजसः ।
वर प्रदानादपि गर्विता भृशं, क्रतु क्रियाणां प्रशमंकराः सदा ।।149।।

वे तीनों राक्षस अपने सैकड़ों पुत्रों तथा अनेक राक्षसों के साथ रहते हुए अपने बल के अहंकार में इन्द्रादि देवताओं, ऋषियों, नागों तथा यक्षों को कष्ट देने लगे। वे हमेशा वायु की तरह विश्व भर में भ्रमण करते रहते थे। वे युद्ध के समय साक्षात् मृत्यु-तुल्य प्रतीत होने वाले परम तेजस्वी थे। वरदान आदि प्राप्त करने के कारण वे घमण्डी हो गए थे तथा हमेशा यज्ञादि क्रियाओं को तबाह करने में संलग्न रहते थे।

तैर्वध्यमाना देवाश्च ऋषयश्च तपोधनाः ।
भयार्ताः शरणं जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम् ।।150।।
जगत्सृष्ट्यन्त कर्तारमजमव्यक्त रूपिणम् ।
आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम् ।।151।।
ते समेत्य तु कामारि त्रिपुरारि त्रिलोचनम् ।
ऊचुः प्रांजलयो देवा भयगद्गदभाषिणः ।।152।।
सुकेश पुत्रैर्भगवन् पितामह वरोद्धतैः ।
प्रजाध्यक्ष प्रजा सर्वाबाध्यन्ते रिपुबाधनैः ।।153।।
शरण्यान्य शरण्यानि ह्याश्रमाणि कृतानि नः ।
स्वर्गाच्च देवान् प्रच्याव्य स्वर्गे क्रीडन्ति देववत् ।।154।।
अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराऽहम् ।
अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम् ।।155।।
इति माली सुमाली य माल्यवांश्चैव राक्षसाः ।
बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुरःसराः ।।156।।
तन्नोदेव भयार्तानामभयं दातुमर्हसि ।
अशिवं वपुरास्थाय जहि वै देवकण्टकान् ।।157।।
इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वेः कपर्दीनीललोहितः ।
सुकेशं प्रति सापेक्षः प्राह देवगणान् प्रभुः ।।158।।
अहं तान्न हनिष्यामि ममावध्या हितेऽसुराः ।
किं तु मन्त्रं प्रदास्यामि यो वै तान् निहनिष्यति ।।159।।

उन राक्षसों से भयभीत एवं पीड़ित होकर सभी देवता और तपस्वी-ऋषि महादेव की शरण में पहुंचे, जो संसार का संहार करने वाले, अजन्मा तथा अव्यक्तरूपधारी परम गुरु हैं। उन त्रिपुरारि, कामारि, त्रिलोचन शिवजी के पास जाकर उन देवताओं ने हाथ जोड़ प्रार्थना करते हुए कहा—हे भगवान्! हे प्रजानाथ! ब्रह्माजी का वरदान पाकर सुकेश के तीनों पुत्र संपूर्ण जनता अर्थात् प्रजा को शत्रु पीड़क साधनों द्वारा कष्ट पहुंचा रहे हैं। हमारे आश्रम जो दूसरों को शरण देते थे, उनको उजाड़ डाला है; स्वर्ग से सभी देवताओं को भगा दिया है और स्वयं वहां देवताओं की जगह उनके समान क्रीड़ा कर रहे हैं। 'हम ही विष्णु हैं, हम ही रुद्र हैं, हम ही ब्रह्मा हैं तथा हम ही इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य और वरुण हैं।' यह कहते हुए माल्यवान्, सुमाली, माली और उनके अनेक दुर्जेय राक्षस सैनिक हमें बहुत कष्ट दे रहे हैं। हे देव! हम सभी उनके भय के कारण डरे हुए हैं। अतः हमारी रक्षा करने के लिए आप रौद्र रूप धारण कर उन राक्षसों का संहार कीजिए।

सभी देवताओं और ऋषियों के यह कहने पर नील-लोहित, जटाजूटधारी शंकरजी ने सुकेश के प्रति पक्षपात करते हुए कहा—हे देवताओ! मैं उनका संहार नहीं कर पाऊंगा क्योंकि वह मेरे द्वारा अवध्य हैं, लेकिन तुम सबको उस व्यक्ति के पास जाने को अवश्य कहूंगा जो इन सब राक्षसों का संहार कर सकेंगे।

एतमेव समुद्योगं पुरस्कृत्य महर्षयः ।
गच्छध्वं शरणं विष्णुं हनिष्यति स तान् प्रभुः ।।160।।
ततस्तु जयशब्देन प्रतिनन्द्य महेश्वरम् ।
विष्णोः समीपमाजग्मुर्निशाचरभयार्दिताः ।।161।।
शङ्ख चक्र धरं देवं प्रणम्य बहुमान्य च ।
ऊचुः सम्भ्रान्तवद् वाक्यं सुकेशतनयान् प्रति ।।162।।
सुकेशतनयैर्देव त्रिभिस्त्रेताग्निसन्निभैः ।
आक्रम्य वरदानेन स्थानान्यपहृतानि नः ।।163।।
लङ्कानाम पुरी दुर्गा त्रिकूट शिखरे स्थिता ।
तत्र स्थिताः प्रबाधन्ते सर्वान् नः क्षणदाचराः ।।164।।
स त्वमस्मद्धितार्थाय जहि तान् मधुसूदन ।
शरणं त्वां वयं प्राप्ता गतिर्भव सुरेश्वर ।।165।।
चक्रकृत्तास्यकमलान् निवेदय पमाय वै ।
यो येष्वऽभयदोऽस्माकं नान्योऽस्ति भवता विना ।।166।।
राक्षसान् समरे हृष्टान् सानुबन्धान् मदोद्धतान् ।
नुदत्वं नो भयं देव नीहारमिव भास्करः ।।167।।

हे महर्षियो! तुम इस कार्य के लिए इसी क्षण भगवान् विष्णु के पास चले जाओ। वह उनका अवश्य ही नाश करेंगे। यह बात सुनकर शिवजी की जय-जयकार करते हुए सभी देवता और ऋषि भगवान् विष्णु के पास चले गए। चक्रधारी देव विष्णुजी को नमस्कार तथा उनके प्रति अभिनंदन का भाव व्यक्त करने के उपरान्त देवताओं और ऋषियों ने सुकेश के पुत्रों के संबंध में भयभीत होकर कहा—सुकेश के तीनों पुत्र अग्नि के समान परम तेजस्वी हैं। उन्होंने ब्रह्माजी के वरदान के बल पर आक्रमण कर हमसे हमारे स्थान छीन लिए हैं। त्रिकूट पर्वत के शिखर पर लङ्का नाम की दुर्गम नगरी है। वहां पर रहकर ये राक्षस हम सभी को बहुत कष्ट तथा पीड़ा पहुंचाते हैं। अतः हे मधुसूदन! आप हमारा कल्याण एवं हमारी रक्षा करने के लिए उनका संहार कीजिए। हे सुरेश्वर! हम सभी आपकी शरण में आए हैं। आप हमें अपने चरणों में आश्रय दें। आप अपने चक्र द्वारा उनके मस्तकों को काटकर यमराज को भेंट कर दें। आपके अलावा ऐसा कोई भी नहीं है, जो हमारी रक्षा कर सके। वे तीनों तथा उनसे संबंधित सभी राक्षस महाधूर्त और क्रूर हैं। अब आप युद्धक्षेत्र में उनका संहार करके हमारे भय को उसी प्रकार दूर करने का कष्ट करें जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश, अंधकार को नष्ट अर्थात् दूर करता है।

राक्षसों का विनाश

इत्येवं दैवतैरक्तो देवदेवो जनार्दनः ।

अभयं भयदोऽरीणां दत्त्वा देवानुवाच ह ।।168।।
सुकेशं राक्षसं जाने ईशानवरदर्पितम् ।
तांश्चास्य तनयाञ्जाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान् ।।169।।
तानहं समतिक्रान्तमर्यादान् राक्षसाधमान् ।
निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः ।।170।।
इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
यथावासं ययुर्हृष्टाः प्रशंसन्तो जनार्दनम् ।।171।।
विबुधानां समुद्योगं माल्यवांस्तु निशाचरः ।
श्रुत्वा तौ भ्रातरौ वीराविदं वचनमब्रवीत् ।।172।।
अमरा ऋषयश्चैव संगम्य किल शङ्करम् ।
अस्मद्वधं परीप्सन्त इदं वचनमब्रुवन् ।।173।।
सुकेशतनया देव वरदान बलोद्धताः ।
बाधन्तेऽस्मान् समुद्दृप्ता धोररूपाः पदे पदे ।।174।।
राक्षसैरभिभूतः स्मो न शक्ताः स्म प्रजापते ।
स्वेषु सद्मसु संस्थातुं भयात् तेषां दुरात्मनाम् ।।175।।
तदस्माकं हितार्थाय जहि तांश्च त्रिलोचन ।
राक्षसान् हुंकृतेनैव दह प्रदहतां वर ।।176।।
इत्येवं त्रिदशैरुक्तो निशम्यान्धकसूदनः ।
शिरः करं च धुन्वान इदं वचनमब्रवीत् ।।177।।
अवध्या मम ते देवाः सुकेशतनया रणे ।
मन्त्रं तु वः प्रदास्यामि यस्तान् वे निहनिष्यति ।।178।।
योऽसौ चक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः ।
हरिर्नारायणः श्रीमान्शरणं तं प्रपद्यथ ।।179।।
हरादवाप्य ते मन्त्रं कामारिमभिवाद्य च ।
नारायणालयं प्राप्य तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ।।180।।

देवताओं और ऋषियों के यह कहने पर शत्रुओं के लिए मृत्युदायक देवाधिदेव जनार्दन विष्णु ने उनको अभयदान देते हुए कहा—शिवजी द्वारा प्रदत्त वरों के बल से युक्त सुकेश राक्षस तथा उसके तीनों पुत्रों को मैं भी जानता हूं, जिनमें से बड़े का नाम माल्यवान् है। उन तीनों अधर्मियों ने धर्म की नीति को तोड़ा है। अब मैं क्रोधित हूं और उनका विनाश करूंगा। तुम सभी अब पूर्ण रूप से निश्चिंत हो जाओ। भगवान् विष्णु द्वारा यह आश्वासन दिए जाने पर सभी देवतागण और ऋषि प्रसन्न होकर, उनकी जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान को चले गए।

देवताओं और ऋषियों द्वारा किए गए इस प्रयत्न की सूचना पाकर, राक्षस माल्यवान् ने अपने दोनों छोटे भाइयों को संबोधित करते हुए कहा—सभी देवतागण और ऋषि मिलकर भगवान शिव के पास गए थे और उनसे हमारा संहार करने की प्रार्थना करते हुए कहा कि हे देव! आपके वरदानों से उद्धत बने सुकेश के पुत्र हमें भयंकर कष्ट पहुंचा रहे हैं। हे प्रजापते! उन दुष्टों एवं दुरात्माओं से पराजित होकर हम अशक्त हो चुके हैं। उनके भय तथा पीड़ाओं के कारण हम अपने स्थानों पर नहीं रह पाते। अतः हे त्रिलोचन! हमारे हित के लिए तथा हमारा कल्याण करने

के लिए आप उन्हें अपने क्रोध से जलाकर भस्म कर दें क्योंकि आपका स्थान भस्मकर्ताओं में मुख्य है। ऋषियों और देवताओं द्वारा यह कहे जाने पर अन्धक नामक राक्षस का संहार करने वाले शिवजी ने अपने सिर तथा हाथों को हिलाते हुए कहा—हे देवताओ! सुकेश के पुत्रों का संहार मेरे हाथों नहीं हो सकता, अतः मैं तुम्हें उस शक्ति के पास जाने की सलाह देता हूं, जो युद्ध क्षेत्र में उन्हें मार सकता है। जिनके हाथों में चक्र और गदा विद्यमान हैं और जो पीताम्बरधारी हैं, उन हरि, नारायण, जनार्दन की शरण में तुम सब जाओ। सभी देवता और ऋषि कामशत्रु शंकरजी का निर्देश पाकर, उनको प्रणाम करके नारायण के स्थान पर जा पहुंचे और उन्हें सारा वृत्तांत सुना डाला।

ततो नारायणोनोक्ता देवा इन्द्रपुरोगमाः ।
सुरारींस्तान् हनिष्यामि सुरा भवतु निर्भयाः ।।181।।
देवानां भयभीतानां हरिणा राक्षसर्षभौ ।
प्रतिज्ञातो वधोऽस्माकं चिन्त्यतां यदिहक्षमम् ।।182।।
हिरण्यकशिपोर्मृत्युरन्येषां च सुरद्विषाम् ।
नमुचिः कालनेमिश्च संह्रादो वीरसत्तमः ।।183।।
राधेयो बहुमायी च लोकपालोऽथ धार्मिकः ।
यमलार्जुनौ च हार्दिक्यः शुभश्चैव निशुम्भकः ।।184।।
असुरा दानवाश्चैव सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्तेऽपराजिताः ।।185।।
सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं सर्वे मायाविदस्तथा।
सर्वे सर्वास्त्रकुशलाः सर्वे शत्रु भयंकराः ।।186।।
नारायणेन निहिताः शतशोऽथ सहस्रशः ।
एतज्ज्ञात्वा तु सर्वेषां क्षमंकर्तुमिहार्हथ ।
दुःखं नारायणं जेतुं यो नो हन्तुमिहेच्छति ।।187।।

तब विष्णुजी ने इन्द्रादि देवताओं और ऋषियों से कहा—हे देवताओ! मैं उन देव शत्रुओं का संहार करूंगा। इसलिए अब तुम सब निश्चिंत हो जाओ। हे राक्षस श्रेष्ठो! इस प्रकार भयभीत देवताओं और ऋषियों के समक्ष नारायण ने हमारा वध करने की प्रतिज्ञा की है, अतः अब हम सबको अपने कर्तव्य पर विचार करना चाहिए। हिरण्यकशिपु और अन्य देव-द्रोहियों की मृत्यु भगवान् विष्णु द्वारा ही हुई है। नमुचि, कालनेमि, वीरश्रेष्ठ सह्रांद, अनेक प्रकार की मायाएं जानने वाला राघये, धर्मात्मा लोकपाल यमलार्जुन, शुम्भ, हार्दिक्य और निशुम्भ आदि सत्त्ववान् महाबलवान् दानवों एवं राक्षसों में ऐसा कोई भी नहीं है जो युद्ध भूमि में विष्णु से अपराजित रहा हो। वे सभी दानव व राक्षस मायावी थे। सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण थे और सैकड़ों युद्ध कर चुके थे। सभी शत्रुओं के लिए भयंकर सिद्ध होते थे। ऐसे सहस्र राक्षसों को हरि ने मार डाला। इन सभी बातों को जानने के बाद हमारे लिए जो उचित निर्णय हो, उस पर विचार-विमर्श करना चाहिए। जो भगवान् विष्णु हमारा वध करना चाहते हैं, उन पर विजय पाना अत्यन्त कठिन है।

युद्ध का ताण्डव

ततः सुमाली माली च श्रुत्वा माल्यवतो वचः ।
ऊचतुर्भ्रातरं ज्येष्ठमश्विनाविव वासवम् ।।188।।
स्वधीनं दत्तमिष्टं च ऐश्वर्ये परिपालितम् ।
आयुर्निरामयं प्राप्तं सुधर्मः स्थापितः पथि ।।189।।
देवसागरमक्षोभ्यं शस्त्रैः समवगाह्य च ।
जिता द्विषो ह्यप्रतिमास्तन्नो मृत्युकृतं भयम् ।।190।।
नारायणश्च रुद्रश्च शक्रश्चापि यमस्तथा ।
अस्माकं प्रमुखे स्थातुं सर्वेविभ्यति सर्वदा ।।191।।
विष्णोर्द्वेषस्य नास्त्येव कारणं राक्षसेश्वरः ।
देवानामेव दोषेण विष्णोः प्रचलितं मनः ।।192।।
तस्मादद्यैव सहिताः सर्वेऽन्योन्यसमावृताः ।
देवानेव जिघांसामो येभ्यो दोषः समुत्थितः ।।193।।
एवं सम्मन्त्र्य बलिनः सर्वसैन्यसमावृताः ।
उद्योगं घोषार्यत्वा तु सर्वे नैर्ऋतपुंगवाः ।।194।।
युद्धाय निर्ययुः क्रुद्धा जम्भवृत्रादयो यथा ।
इति ते राम संम्मन्त्र्य सर्वोद्योगेन राक्षसाः ।।195।।
युद्धायनिर्ययुः सर्वे महाकाया महाबलाः ।
स्यन्दनैर्वारणैश्चैव ह्यैश्च करि न्निभैः ।।196।।
खरैर्गोभिरथोष्ट्रैश्च शिशुमारैर्भुजंगमैः ।
मकरैः कच्छपैर्मीनैर्विहंगैर्गरुडोपमैः ।।197।।
सिंहैर्व्याघ्रैर्वराहैश्च सृमरैश्चमरैरपि ।
त्यक्त्वा लङ्का गताः सर्वे राक्षसा बलगर्विताः ।।198।।
प्रयाता देवलोकाय योद्धुं दैवतशत्रवः ।
लङ्का विपर्ययं दृष्ट्वा यानि लङ्कालयान्यथ ।।199।।
भूतानि भयदर्शीनि विमनस्कानि सर्वशः ।
रथोत्तमैरुह्यमानाः शतशोऽथ सहस्रशः ।।200।।
प्रयाता राक्षसास्तूर्णं देवलोकं प्रयत्नतः ।
रक्षसामेव मार्गेण दैवतान्यपचक्रमुः ।।201।।

माली और सुमाली माल्यवान् के वचनों को सुनकर इस प्रकार बोले, जैसे देवराज इन्द्र से अश्विनी कुमार वार्तालाप कर रहे हों। उन दोनों ने अपने बड़े भाई से कहा—हमने अपने स्वपराक्रम द्वारा अभीप्सित वस्तुएं प्राप्त की हैं। व्याधि-रहित आयु प्राप्त की है। ऐश्वर्य का उपभोग किया है और कर्तव्य-पालन की भी स्थापना की है। हमने समुद्र के समान देवताओं की सेना में अवगाहन करके उसे विक्षुब्ध भी किया है और अकल्पनीय समझी जाने वाली शक्तियों पर विजय भी प्राप्त की है। शत्रुओं के साथ युद्ध करते समय हमें मृत्यु का भय नहीं हुआ। रुद्र, इन्द्र तथा यमराज भी युद्ध में हमारे सामने खड़े होने में हमेशा डरते रहे हैं। हे राक्षसेश्वर! विष्णुजी

के हृदय में भी हमारे प्रति कोई द्वेष नहीं है, केवल देवताओं द्वारा चुगली करने के कारण उनका मन हमारी ओर से मुड़ सा गया है। अतः हम सभी एक-दूसरे की रक्षा करते हुए साथ-साथ चलें। जिन देवताओं के कारण यह उपद्रव खड़ा हुआ है, उन्हें मार डालें।

इस प्रकार उन राक्षसों ने अपनी संपूर्ण सेना को एकत्रित करके, युद्ध के लिए अपनी तैयारी की घोषणा कर दी। वे सभी जम्भ और वृत्र आदि राक्षसों की तरह क्रोधित होकर युद्ध के लिए चल पड़े। हे राम! वे सभी इस प्रकार का विचार-विमर्श करके पूरी तैयारी के साथ हाथी, घोड़े, रथ, गधे, ऊंट, बैल, शिश्मार सर्प, मगर, कच्छप, मछली, गरुड़ जैसे केमवान् पक्षी, सिंह, हरिण, वराह और नीलगाय आदि वाहनों पर सवार होकर लङ्का को छोड़कर चल दिए। वे सभी असुर अपने बाहुबल के घमण्ड में चूर थे। जब वे देवताओं के देवलोक की ओर चले, तो उस लङ्का नगरी में निवास करने वाले अन्य प्राणी उन अपशकुनों को देखकर भयभीत और खिन्न हो उठे। दूसरी ओर जब रथों पर सवार सैकड़ों राक्षसों ने प्रयत्नपूर्वक देवलोक में प्रवेश किया तो उस समय देवता भी भय के कारण गुप्त मार्गों से निकलकर देवलोक से बाहर चले आए।

भौमाश्चैवान्तरिक्षाश्च कालाज्ञप्ता भयावहाः ।
उत्पाता राक्षसेन्द्राणामभावाय सुमत्थिताः ।।202।।
अस्थिनी मेधा ववृषुरुष्णं शोणितमेव च ।
वेलां समुद्राश्चोत्क्रान्ताश्चेलुश्चाप्यथ भूधराः ।।203।।
अट्टहासान् विमुञ्चन्तो घननादसमस्वनाः ।
वाश्यन्त्यश्च शिवास्तत्र दारुणं घोरदर्शनाः ।।204।।
सम्पतन्त्यथ भूतानि दृश्यन्ते च यथा क्रमम् ।
गृध्रचक्रं महच्चात्र प्रज्वालोद्गारभिर्मुरवैः ।।205।।
रक्षोगणस्योपरिष्टात् परिभ्रमति कालवत् ।
कपोता रक्तपादाश्च सरिका विद्रुता ययुः ।।206।।
काका वाश्यन्तितत्रैव विडाला वै द्विपादयः ।
उत्पातांस्ताननादृत्य राक्षसा बलदर्पिताः ।।207।।
यान्त्येव न निवर्तन्ते मृत्यु पाशावपाशिताः ।
माल्यवांश्च सुमाली च माली य सुमहाबलः ।।208।।
पुरासरा राक्षसानां ज्वलिता इव पावकाः ।
माल्यवन्तं तु ते सर्वे माल्यवन्तमिवाचलम् ।।209।।
निशाचरा आश्रयन्ति धातारमिव देवताः ।
तद्बलं राक्षसेन्द्राणां महाभ्रघननादितम् ।।210।।
जयेप्सया देवलोकं ययौ मालिवशे स्थितम् ।
राक्षसानां समुद्योगं तं तु नारायणः प्रभुः ।।211।।
देवदूतादुषश्रुत्य चक्रे युद्धे तदा मनः ।
स सज्जायुध तूणीरो वैनतेयोपरि स्थितः ।।212।।
आसाद्य कवचं दिव्यं सहस्त्रार्कसमद्युति ।
आबद्ध्य शरसम्पूर्णे इषुधी विमले तदा ।।213।।
श्रोणिसूत्रं च खङ्गं च विमलं कमलेक्षणः ।

शङ्ख चक्रगदाशार्ङ्गखङ्गान्चैव वरायुधान् ।।214।।
सुपर्ण गिरि संकाशं वैनतेयमथास्थितः ।
राक्षसानामभवाय ययौ तूर्णतरं प्रभुः ।।215।।
सुपर्ण पृष्ठे स बभौ श्यामः पीताम्बरो हरिः ।
कांचनस्य गिरेः शृंङ्गे सार्डत्तोयदो यथा ।।216।।

उस काल की संभावना से पृथ्वी और आकाश में कई भयंकर उत्पात प्रकट हुए जो राक्षसराजों की सूचना दे रहे थे। घने बादल हड्डियों और खून की वर्षा करने लगे। समुद्र अपनी सीमा का अतिक्रमण कर गए और पर्वत हिलने लग गए। बादल के समान गरजने वाले लोग विकट अट्टहास कर उठे और खतरनाक दिखाई पड़ने वाली गीदड़ियां दारुण स्वर में रोने लगीं। पृथ्वी आदि तरह के भूत उठते-गिरते और विलीन होते हुए नजर आने लगे। विशालकाय गिद्धों के झुण्ड अपने मुख द्वारा आग उगलते राक्षसों के ऊपर काल की तरह मंडराने लगे। तोता, मैना, कबूतर आदि पक्षी नगर छोड़कर भागने लगे। वहां पर पशु आर्त्तनाद करने लगे और बिल्लियां गुर्राने लगीं। काल पाश होते हुए भी वे राक्षस अपने बल के घमण्ड में मत्त थे। वे अपने अत्याचारों और उत्पातों की अवहेलना करते हुए युद्ध करने के उद्देश्य से आगे बढ़ते जा रहे थे। माल्यवान्, सुमाली तथा माली तीनों प्रज्वलित अग्नि के समान परम तेजस्वी शरीर वाले थे तथा सभी राक्षसों का नेतृत्व करते हुए आगे-आगे चल रहे थे। जिस प्रकार देवतागण ब्रह्माजी का आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार उन सभी राक्षसों ने माल्यवान् पर्वत के समान बलशाली राक्षसराज माल्यवान् का आश्रय ले रखा था। विजय पाने के उद्देश्य से राक्षसों की वह सेना मेघों के समान देवलोक की ओर बढ़ती चली जा रही थी। उस समय वह राक्षस सेना माली सेनापति के नियंत्रण में थी।

इधर देवदूत द्वारा राक्षसों की युद्ध की तैयारी का समाचार सुनकर भगवान् विष्णु भी युद्ध करने के लिए तैयार हो गए। इसके पश्चात् विष्णुजी सूर्य के समान दीप्तिमान् कवच धारण करके तथा दिव्य बाणों से भरे हुए तरकश लेकर युद्ध के लिए तत्पर हो गए। उन्होंने अपने शरीर पर चमचमाते हुए तीरों से भरे दो तूणीर बांध रखे थे। उन महान् परम तेजस्वी विष्णुजी ने कमर में पट्टी बांध रखी थी जिसमें एक चमचमाती हुई तलवार लटकी थी। इस प्रकार श्री नारायण शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा खड्ग आदि श्रेष्ठ शस्त्रों को धारण कर सुंदर पंखों वाले पक्षिराज गरुड़ पर सवार हो दुष्ट राक्षसों का संहार करने के लिए शीघ्रतापूर्वक चल दिए। गरुड़ पर सवार नील वर्ण पीताम्बरधारी श्री नारायण हरि ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो मेरु पर्वत के शिखर पर विद्युत के साथ मेघ शोभायमान हो।

राक्षस सेना क्षुब्ध हुई

ससिद्ध देवर्षिमहोरगैश्च गन्धर्वयक्षैरुपगीयमानः ।
समाससादासुरसैन्य शत्रुश्चक्रासि शार्ङ्गायुध शङ्खपाणिः ।।217।।
सुपर्णपक्षानिलनुन्नपक्षं भ्रमत्पताकं प्रविकीर्णशस्त्रम् ।
चचाल तद्राक्षस राजसैन्यं चलोपलं नीलमिवाचलाग्रम् ।।218।।
ततः शितैः शोणितमांसरूषितैर्युगान्तवैश्वानरतुल्य विग्रहैः ।

निशाचराः सम्परिवार्य माधवं वरायुधैर्निर्बिभिदुः सहस्रशः ।।219।।

उस समय बड़े-बड़े ऋषि, यक्ष, नाग, गन्धर्व आदि विष्णुजी के गुण गा रहे थे। राक्षसों की सेना के लिए शत्रु बने श्री नारायण हरि हाथों में चक्र, गदा, खड्ग, शार्ङ्ग धनुष तथा शंख आदि लेकर वहां पहुंच गए। गरुड़ के पंखों से उत्पन्न तीव्र वायु के झोंकों से राक्षस सेना क्षुब्ध हो उठी। राक्षस सैनिकों के हाथों से शस्त्र आदि गिर गए और उनके रथों की पताकाएं चक्कर खाकर गिरने लगीं। राक्षस सेना ठीक उसी प्रकार कांपने लगी, जिस प्रकार किसी पर्वत का नील-शिखर अपनी शिलाओं को बिखेरता है। राक्षसों के अस्त्र-शस्त्र, रक्त और मांस के टुकड़ों में सने हुए, प्रलयकालीन अग्नि के समान दिखाई दे रहे थे। सभी राक्षस भगवान् विष्णु को चारों तरफ से घेर कर उन पर अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे।

नारायण गिरि ते तु गर्जन्तो राक्षसाम्बुदाः ।
अर्दयन्तोऽस्त्रवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः ।।220।।
श्यामावदातस्तैर्विष्णु र्नीलैर्नक्तंचरोत्तमैः ।
वृतोऽञ्जनगिरीवायं वर्षमाणैः पयोधरैः ।।221।।
शलभा इव केदारं मशका इव पावकम् ।
यथामृतघटं दंशा मकरा इव चार्णवम् ।।222।।
तथा रक्षोधनुर्मुक्ता वज्रानिलमनोजवाः ।
हरिं विशन्ति स्म शरा लोका इव विपर्यये ।।223।।
स्यन्दनैः स्यन्दनगता गजैश्च गजमूर्धगाः ।
अश्वारोहास्तथाश्वैश्च पादाताश्चाम्बरे स्थिताः ।।224।।
राक्षसेन्द्रा गिरिनिभाः शरैः शक्त्यृष्टि तोमरैः ।
निरुच्छ्वासं हरिं चक्रुः प्राणयामा इव द्विजम् ।।225।।
निशाचरैस्ताड्यमानो मीनैरिव महोदधिः ।
शार्ङ्गमायम्य दुर्धर्षो राक्षसेभ्योऽसृजच्छरान् ।।226।।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्वज्रकल्पैर्मनोजवैः ।
चिच्छेद विष्णुर्निशितैः शतशोऽथ सहस्रशः ।।227।।
विद्राव्य शंरवर्षेण वर्षं वायुरिवोत्थितम् ।
पांचजन्यं महाशङ्खं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः ।।228।।
सोऽम्बुजो हरिणा ध्मातः सर्वप्राणेन शङ्खराट् ।
ररास भीमनिर्ह्रास्त्रैलोक्यं व्यथपन्निव ।।229।।
शङ्खराजरवः सोऽथ त्रासयामास राक्षसान् ।
मृगाराज इवारण्ये समदानिव कुञ्जरान् ।।230।।
न शेकुरश्वाः संस्थातुं विमदाः कुञ्जराऽभवन् ।
स्यन्दनेभ्यश्चुता वीराः शङ्खरावितदुर्बलाः ।।231।।

गर्जना करते हुए राक्षसों ने अस्त्र रूपी जल की वर्षा से नारायण रूपी पर्वत को आच्छादित कर दिया, जिस प्रकार बादल जल की बूंदों से पर्वत को आप्लावित कर देते हैं। श्री नारायण का उत्तम नीलवर्ण वाला शरीर पर्वत के समान सुशोभित था। उनको राक्षसों ने चारों ओर से इस प्रकार घेर लिया था, जिस प्रकार मेघों ने अज्जनगिरि को घेर रखा हो। जैसे धान के खेत में टिड्डी

दल, अग्नि में पतंगे, शहद से भरे घड़े में मधुमक्खियां तथा समुद्र में मगरमच्छ घुस जाते हैं, ठीक उसी प्रकार राक्षस सैनिकों के धनुषों से, वायु, वज्र और मन के वेग के समान बाण भगवान् विष्णु के शरीर में प्रवेश कर इस प्रकार विलुप्त हो गए, जैसे प्रलयकाल में सभी लोक श्री हरि में विलय हो जाते हैं। हाथी सवार हाथी पर, रथी अपने रथों पर तथा अश्वारोही अपने घोड़ों पर एवं पैदल ज्यों के त्यों सभी आकाश में स्थित थे। उन राक्षसों के शरीर विशाल पर्वतों के समान थे।

राक्षसों ने बाण, तोमर, शक्ति आदि की वर्षा करके श्री विष्णु को सांस लेने तक को दूभर कर दिया, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राणायाम में द्विजगण श्वास को रोक देते हैं। जैसे मछलियां समुद्र के किनारे अपनी पूंछ से प्रहार करती हैं, ठीक वैसे ही राक्षस श्री विष्णु के शरीर पर प्रहार कर रहे थे। इसके पश्चात् श्री नारायण ने अपने शार्ङ्गधनुष द्वारा उन दुर्धर्ष राक्षसों पर बाणों की वर्षा कर दी। भगवान् विष्णु द्वारा छोड़े गए उन बाणों ने हजारों-सैकड़ों राक्षसों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। जिस प्रकार वायु का झोंका घिरे हुए बादलों को उड़ा देता है, उसी प्रकार श्री विष्णु ने बाणों की वर्षा द्वारा राक्षसों को भगाने के बाद अपना 'पाञ्चजन्य' नामक शंख बजाया। जब श्री नारायण ने समुद्र से उत्पन्न हुए उस शंख को अपनी पूर्ण प्राणशक्ति से बजाया तो उसकी भयंकर आवाज सुनकर तीनों लोक व्यथित हो उठे। जिस प्रकार जंगल में सिंह की दहाड़ सुनकर हिरण भयभीत हो जाते हैं, उसी प्रकार उस शंखराज की आवाज सुनकर सभी राक्षस भयभीत हो गए। वीर सैनिक भय के कारण रथ से नीचे गिर पड़े।

विष्णु द्वारा वज्र प्रहार

शार्ङ्गचाप विनिर्मुक्ता वज्रतुल्याननाः शराः ।
विदार्य तानि रक्षांसि सुपङ्खा विविशुः क्षितिम् ।।232।।
भिद्यमानाः शरैः संख्ये नारायण करच्युतैः ।
नियेत् राक्षसा भूमौ शैला वज्रहता इव ।।233।।
व्रणानि परगात्रेभ्यो विष्णुचक्र कृतानि हि ।
असृक् क्षरन्ति धाराभिः स्वर्णधारा इवाचलाः ।।234।।
शङ्खराजरवश्चापि शार्ङ्गचापरवस्तथा ।
राक्षसानां रवांश्चापि ग्रसते वैष्णवोरवः ।।235।।
तेषां शिरोधरान् धूताञ्छरध्वजधनूषि च ।
रथान् पताकास्तूणीरांश्चच्छेद स हरिः शरैः ।।236।।
सूर्यादिव करा घोरा वायोर्धा इव सागरात् ।।237।।
पर्वतादिव नागेन्द्रा धारौधा इव चाम्बुदात् ।।238।।
तथा शार्ङ्गविनिर्मुक्ताः शरा नारायणेरिताः ।
निर्धावन्तीषवस्तूर्ण शतथोऽथ सहस्रशः ।।239।।
द्वीपिनेव यथा श्वानः शुना मार्जारको यथा ।
मार्जारेण यथा सर्पाः सर्पेण च यथारवः ।।240।।
तथा ते राक्षसाः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
द्रवन्ति द्राविताश्चान्ये शायिताश्च महीतले ।।241।।

राक्षसानां सहस्राणि निहत्य मधुसूदनः ।
वरिजं शरयामास तोयदं सुरराडिव ।।242।।
नारायण शस्त्रस्तं शङ्खनाद सुविह्वलम् ।
ययौ लङ्कामभिमुखं प्रभग्नं राक्षसं बलम् ।।243।।
प्रभग्ने राक्षसबले नारायण शराहते ।
सुमाली शरवर्षेण निववार रणे हरिम् ।।244।।
स तु तं छादयामास नीहार इव भास्करम् ।
राक्षसाः सत्त्व सम्पन्नाः पुनर्धैर्यं समादधुः ।।245।।
अथऽसोऽभ्यपतद् रोषाद् राक्षसो बल दर्पितः ।
महानादं प्रकुर्वाणो राक्षसाञ्जीव यन्निव ।।246।।
उत्क्षिप्य लम्बाभरणं धुन्वन् करमिव द्विपः ।
ररास राक्षसो हर्षात् सतडित्तोयदो यथा ।।247।।
सुमालेर्नर्दतस्तस्य शिरो ज्वलित कुण्डलम् ।
चिच्छेदयन्तुरश्वाश्च भ्रान्तास्तस्य तु रक्षसः ।।248।।
तैरश्वैर्भ्राम्यते भ्रान्तैः सुमाली राक्षसेश्वरः ।
इन्द्रियाश्वैः परिभ्रान्तै धृतिहीनो यथा नरः ।।249।।
ततो विष्णुं महाबाहुं प्रपतन्तं रणाजिरे ।
हृते सुमालेरश्वैश्च रथे विष्णुरथं प्रतिः ।।250।।

शार्ङ्ग धनुष से छोड़े हुए उन सुंदर पंखों वाले बाणों के अग्रभाग वज्रतुल्य थे। वह राक्षसों को मारने के पश्चात् पृथ्वी में धंस जाते थे। श्री विष्णु द्वारा छोड़े गए उन बाणों से विशाल शरीर वाले राक्षस वज्र-प्रहार से आहत पर्वतों की भांति धराशायी होने लगे। भगवान् विष्णु द्वारा चक्र से शत्रुओं पर किए गए घावों से रक्त इस प्रकार टपक रहा था, जैसे पर्वतों से गेरू युक्त पानी के झरने बहते हैं। शार्ङ्गधनुष की टंकार, शंखराज की ध्वनि और श्री विष्णु का गर्जन—इन सभी सम्मिलित शब्द ने राक्षसों के मनोबल को दबा कर रख दिया। भगवान् विष्णु ने अपने बाणों द्वारा राक्षसों के बाणों, ध्वजाओं, धनुषों, रथों, पताकाओं, तूणीरों और राक्षसों के हिलते हुए मस्तकों को काट डाला। जिस प्रकार समुद्र से जल का प्रवाह, सूर्य से भयंकर किरणें, पर्वतों से बड़े-बड़े सांप और बादलों से जल की धाराएं उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार भगवान् विष्णु द्वारा छोड़े गए हजारों-सैकड़ों बाण तुरन्त ही एक तरफ से दूसरी तरफ दौड़ने लगे। जिस प्रकार शरभ से सिंह, सिंह से हाथी, हाथी से बाघ, बाघ से चीता, चीता से कुत्ता, कुत्ते से बिलाव, बिलाव से सांप तथा सांप से चूहे डर कर भाग जाते हैं, उसी प्रकार श्री विष्णु द्वारा पीड़ित सभी राक्षस भय के कारण भागने लगे। उस भगदड़ में अनेक राक्षस पूरी तरह धराशायी हो गए। राक्षसों का वध करने के पश्चात् भगवान् विष्णु ने शंख को ध्वनि से उसी प्रकार परिपूर्ण कर दिया, जिस प्रकार देवराज इन्द्र जल से बादलों को परिपूर्ण कर देते हैं। भगवान् विष्णु के बाणों तथा शंखनाद से त्रस्त एवं भयभीत होकर सभी राक्षस लङ्का की ओर भाग गए।

विष्णु के बाणों से राक्षस सेना को भागता हुआ देखकर, सुमाली ने युद्धक्षेत्र में भयंकर बाणों की वर्षा करके विष्णुजी को युद्धक्षेत्र में आगे बढ़ने से रोक दिया। जिस प्रकार कोहरा सूर्य की रोशनी को ढक देता है, उसी प्रकार सुमाली ने अपने बाणों द्वारा श्री विष्णु को रोक दिया। यह

दृश्य देखकर शक्तिशाली असुरों ने पुनः धैर्य धारण कर लिया। बल से पूर्ण उस राक्षस ने भयंकर गर्जना करते हुए अपने राक्षस सैनिकों में नव-जीवन का संचार कर दिया। जिस प्रकार हाथी अपनी सूंड ऊपर उठाकर चिंघाड़ता है, उसी प्रकार वह राक्षस अपनी आभूषण युक्त भुजा को ऊपर उठाकर हिलाने तथा गरजने लगा, मानो बिजली युक्त जल पूर्ण बादल गरज रहे हों। तब विष्णुजी ने उस राक्षस के सारथी के कुण्डलों से सुशोभित मस्तक को काट डाला। परिणामस्वरूप उस राक्षस के रथ के घोड़े अनियंत्रित होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। उन राक्षसों के घोड़ों के चक्कर काटने के कारण वह राक्षस भी उसी प्रकार चक्कर काटने लगा, जिस प्रकार इन्द्रियरूपी अश्वों के भटकने पर बुद्धि भटक जाती है। श्री विष्णु द्वारा युद्ध क्षेत्र में किए गए प्रहारों से राक्षसराज सुमाली के रथ के घोड़ों को चक्कर काटता हुआ देखकर—

सुदर्शन चक्र का कमाल

माली चाभ्यद्रवद युक्तः प्रगृह्य सशरं धनुः ।
मालेर्धनुश्च्युता बाणाः कार्तस्वरविभूषिताः ।।251।।
विविशुर्हरिमासाद्य क्रौंञ्चं पत्ररथा इव ।
अर्धमानः शरैः सोऽथ मालिमुक्तैः सहस्रशः ।।252।।
चक्षुभे न रणे विष्णुर्जितेन्द्रिय इवाधिभिः ।
अथ मौर्वीस्वनं श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः ।।253।।
मालिनं प्रति बाणौघान् ससर्जासिगदाधरः ।
ते मालिदेहमासाद्य वज्रविद्युत्प्रभाः शरा ।।254।।
पिबन्ति रुधिरं तस्या नागा इव सुधारसम् ।
मालिनं विमुखं कृत्वा शङ्खचक्रगदाधरः ।।255।।
मालिमौलिं ध्वजं चापं वाजिनश्चाप्यपातयत् ।
विरथस्तु गदां गुह्य माली नक्तंचरोत्तमः ।।256।।
आयुप्लुवे गदापाणिर्गिर्यग्रादिव केसरी ।
गदया गरुडेशानमीशानमिव चान्तकः ।।257।।
ललाटदेशोऽभ्यहनद वज्रेणेन्द्रो यथाचलम् ।
गदयाभिहतहस्तेन मालिनागरुडो भृशम् ।।258।।
रणात् पराङ्मुख देवं कृतवान् वेदनातुरः ।
पराङ्मुखो कृते देवे मालिना गरुडेन वै ।।259।।
उदतिष्ठन्महान्शब्दो रक्षसामभिनर्दताम् ।
रक्षसा रुवता राबं श्रुत्वा हरिहयानुजः ।।260।।
तिर्यगास्थाय संक्रुद्धः पक्षीशे भगवान् हरिः ।
पराङ्मुखोऽप्युत्ससर्ज मालेश्चक्रं जिघांसया ।।261।।

उसके छोटे भाई माली ने धनुष-बाण उठाकर श्री विष्णु पर आक्रमण किया। माली के धनुष द्वारा छोड़े गए बाण तीव्रता के साथ श्री विष्णु के शरीर में उसी तरह घुस गए, जिस प्रकार क्रौंच पर्वत के छिद्रों में पक्षी घुस जाते हैं। माली द्वारा छोड़े गए बाणों के श्री विष्णु के शरीर में लगने

पर उनका ठीक उसी प्रकार कोई अहित नहीं हुआ, जिस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति अपनी मानसिक चिन्ताओं से विचलित नहीं होता। उसके बाद धनुष की टंकार को सुनकर भगवान् श्री विष्णु ने माली पर बाणों की वर्षा कर दी। बिजली की तरह चमकदार और वज्र की तीक्ष्णता के समान उसके बाण इस तरह रक्त पीने लगे, जिस प्रकार नागगण अमृत का पान करते हैं।

इसके बाद श्री विष्णु ने माली को पीठ दिखाकर भाग जाने के लिए विवश कर दिया। राक्षसराज माली रथहीन हो जाने पर इस प्रकार कूदा, जैसे कोई शेर छलांग लगाकर पर्वत से नीचे उतर आया हो। जिस प्रकार यमराज ने अपनी गदा से शिव पर और इन्द्र ने वज्र से पर्वतों पर प्रहार किया था, ठीक उसी प्रकार माली ने विष्णुजी के वाहन गरुड़ पर अपनी गदा से प्रहार किया। जब माली ने अपनी गदा से गरुड़ पर प्रहार किया तो वह पीड़ा से छटपटा उठे तथा उन्होंने स्वयं युद्ध क्षेत्र से पराङ्मुख होकर विष्णुजी को भी विमुख जैसा कर दिया। माली द्वारा गरुड़ सहित श्री विष्णु को युद्ध क्षेत्र से विमुख देखकर राक्षसगण प्रसन्नता से परिपूर्ण होकर जोर-जोर से गरजने लगे, जिसके परिणामस्वरूप भारी शब्द गूंज उठा। राक्षसों की गर्जना सुनकर इन्द्र के छोटे भाई श्री विष्णु क्रोधित होकर गरुड़ की पीठ पर तिरछे हो गए। उन्होंने पराङ्मुख होकर माली का वध करने के उद्देश्य से पीछे की ओर मुड़कर अपना सुदर्शन चक्र चला दिया।

तत् सूर्य-मण्डलाभासं स्वभासा भासयन् नभः ।
कालचक्रनिभं चक्रं मालेः शीर्षमपातयत् ।।262।।
तच्छिरो राक्षसेन्द्रस्य चक्रोत्कृत्तं विभीषणम् ।
पपात् रुधिरोद्गारि पुरा राहुशिरो यथा ।।263।।
ततः सुरैः सम्प्रहृ ष्टैः सर्वप्राणसमीरितः ।
सिंहनादरवो मुक्तः साधु देवेतिवादिभिः ।।264।।
मालिनं निहतं दृष्ट्वा सुमाली माल्यवानपि ।
सबलौ शोकसंतप्तौ लङ्कामेव प्रधावितौ ।।265।।
गरुडस्तु समाश्वस्तः सन्निवृत्य यथा पुरा ।
राक्षसान् द्रावयामास पक्षवातेन कोपितः ।।266।।
चक्रकृत्तास्यकमला गदासंचूर्णितोरसः ।
लाङ्गलग्लापितग्रीवा मुसलैर्भिन्न मस्तकाः ।।267।।
केचिच्चैवासिना छिन्नास्तथान्ये शरताडिताः ।
नियेतुरम्बात् तूर्णं राक्षसाः सागराम्भसि ।।268।।

सूर्यमण्डल के समान दीप्तिमान और कालचक्र के समान उस सुदर्शन चक्र ने आकाश को प्रकाशित करते हुए राक्षस माली के मस्तक को काट दिया। राक्षस माली का मस्तक सुदर्शन चक्र द्वारा कटकर ठीक उसी प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ा जिस प्रकार पूर्वकाल में राहु का मस्तक रक्त की धारा गिराता हुआ कटकर गिर गया था। इसके पश्चात् सभी देवतागण प्रसन्न होकर अपनी संपूर्ण शक्ति द्वारा 'धन्य-धन्य' कहने तथा सिंहनाद करने लगे। माली को मरा देखकर माल्यवान् और सुमाली शोक संतप्त तथा भयभीत होकर अपनी राक्षस सेना सहित लङ्कापुरी की ओर भाग गए। दूसरी तरफ गरुड़ की पीड़ा भी कम हो गई थी, अतः वह भी वहां लौट आए। फिर क्रोधित होकर अपने पंखों के झोंकों से राक्षस सेना को खदेड़ने लगे। सुदर्शन चक्र के प्रभाव से अनेक राक्षसों के सिर कट गए थे। गदा के प्रहार से वक्षः स्थल चूर-चूर हो गए थे। गरुड़ की पूंछ

के प्रहार से गरदनें उड़ गईं तथा मूसलों की मार के कारण मस्तक फट गए। अनेक राक्षसों की तलवारों के टुकड़े-टुकड़े हो गए थे। अनेक राक्षस बाणों के प्रहार द्वारा घायल होकर समुद्र में गिर पड़े।

राक्षसों का नाश

नारायणोऽपीषुवराशनीभिर्विदारयामास धनुर्विमुक्तैः ।
नक्तंचरान् धूतविमुक्तकेशान् यथाशनीभिः सतडिन्महाभ्रः ।।269।।
भिन्नातपत्रं पतमानशस्त्रं शरैपध्वस्तविनीतवेषम् ।
विनिःसृतान्त्रं भयलोल नेत्रं बलं तदुन्मत्ततरं बभूव ।।270।।
सिंहार्दितानामिव कुंजराणाम् निशाचराणां सह कुंजराणाम् ।
रवाश्च वेगाश्च समं बभूवुः पुराणसिंहेन विमर्दितानाम् ।।271।।
ते वार्यमाणा हरिबाणजालैः स्वबाणजालानि समुत्सृजन्तः ।
धावन्ति नक्तं चरकालमेघा वायुप्रणुन्ना इव काल मेघाः ।।272।।
चक्रप्रहारैर्विनिकृत्तशीर्षा संचूर्णिताङ्गाश्च गदाप्रहारैः ।
असिप्रहारैर्द्विविधाविभिन्नाः पतन्ति शैला इव राक्षसेन्द्राः ।।273।।
विलम्बमानैर्मणिहार कुण्डलैर्निशाचरैर्नीलवलाह कोपमैः ।
निषात्यमानैर्ददृशे निरन्तरं निपात्यमानैरिव नीलपर्वतैः ।।274।।

भगवान् श्री विष्णु भी अपने द्वारा छोड़े गए बाणों और अशनियों द्वारा राक्षसों को विदीर्ण करने लगे। पीताम्बरधारी श्री विष्णु विद्युन्माला युक्त महामेघ की तरह उन निशाचरों के आकाश में लहराते हुए खुले केशों के बीच सुशोभित हो रहे थे। सारी राक्षस सेना पूर्ण उन्मत्त सी प्रतीत हो रही थी। उन सबकी आंखें चलायमान थीं। जिस प्रकार वेग और सिंहों द्वारा पीड़ित हाथियों के चीत्कार एक साथ प्रकट होते हैं, ठीक उसी प्रकार पुराण-प्रसिद्ध नृसिंह श्री नारायण द्वारा रौंदे गए राक्षस रूपी हाथियों के चीत्कार तथा वेग एक साथ प्रकट हो गए अर्थात् सभी राक्षस चीत्कार करते हुए भागने लगे। जिस प्रकार हवा द्वारा उड़ाए जाने पर वर्षाकालीन मेघ आकाश में भागते दिखाई देते हैं, उसी प्रकार श्री हरि के बाणों द्वारा आवृत निशाचर रूपी काले मेघ अपने बाणों को त्याग कर भाग रहे थे। उन राक्षसों के मस्तक सुर्दशन चक्र के प्रहार से कट गए थे। अंग-प्रत्यङ्ग गदा के प्रहार से चूर-चूर हो गए थे और तलवार के आघात से उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गए थे। इस प्रकार वे सभी राक्षस पर्वत के समान दिखाई दे रहे थे। कुण्डलों और झूलते हुए मणिमय हारों के साथ गिरे हुए नीले रंग के मेघ तुल्य उन राक्षसों की लाशों से वह युद्ध भूमि पटी पड़ी थी। उन धराशायी राक्षसों की लाशों से वह युद्ध क्षेत्र नील पर्वतों के समान इस प्रकार भर गया था कि उसमें कहीं तिल भर की जगह भी बाकी नहीं थी।

हन्यमाने बले तस्मिन् पद्मनाभेन पृष्ठतः ।
माल्यवान् संनिवृत्तोऽथ वेलामेत्य इवार्णवः ।।275।।
सरंक्तनयनः क्रोधाच्चलन्मौलिर्निशाचरः ।
पद्यानाभमिदं प्राह वचनं पुरुषोत्तमम् ।।276।।
नारायण न जानीषे क्षात्रधर्मं पुरातनम् ।

अयुद्धमनसो भीतनस्मान् हंसि यथेतरः ।।277।।
पराङ्गमुखवधं पापं यः करोति सुरेश्वर ।
स हन्ता न गतः स्वर्गं लभते पुण्यकर्मणाम् ।।278।।
युद्धश्रद्धाथवा तेऽस्ति शङ्खचक्रगदाधर ।
अहं स्थितोऽस्मि पश्यामि बलं दर्शय यत् तव ।।279।।
माल्यवन्तं स्थितं दृष्ट्वा माल्यवन्तामिवाचलम् ।
उवाच राक्षसेन्द्रं तं देवराजानुजो बली ।।280।।
युष्मत्तो भयभीतानां देवानां वै मयाभयम् ।
राक्षसोत्सादनं दत्तं तदेतदनुपाल्यते ।।281।।
प्राणैरपि प्रियं कार्यं देवानां हि सदा मया ।
सोऽहं वो निहनिष्यामि रसातलगतानपि ।।282।।
देवदेवं ब्रुवाणं तं रक्ताम्बुरुहलोचनम् ।
शक्त्या विभेद संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रो भुजान्तरे ।।283।।

श्री विष्णु ने जब राक्षस सेना को मैदान छोड़कर भागता देखा तो उन्होंने उन पर पीछे से प्रहार आरंभ कर दिया। जिस प्रकार महासागर अपने तट तक पहुंच कर वापस लौट आता है, उसी प्रकार यह देखकर माल्यवान् भी उलटा लौट पड़ा। उस राक्षसराज का मुकुट हिल रहा था और उसकी आंखें क्रोध से लाल हो रही थीं। उसने श्री विष्णुजी से यह कहना शुरू किया—हे नारायण! क्या तुम प्राचीन क्षात्र-धर्म के बारे में नहीं जानते, जो तुम युद्ध क्षेत्र से भागने वाले लोगों पर पीछे से प्रहार कर रहे हो? हे सुरेश्वर! युद्ध क्षेत्र से विमुख होने वाले लोगों का वध करना पाप है। जो लोग ऐसा काम करते हैं, वे पुण्य करने वाले लोगों को मिलने वाला स्वर्ग नहीं प्राप्त कर पाते। हे शङ्ख, चक्र, गदाधारी! यदि तुम युद्ध ही करना चाहते हो तो लो मैं खड़ा हूं, तुम अपना बल मुझको दिखाओ।

माल्यवान् पर्वत के समान राक्षसराज माल्यवान् को खड़ा देखकर इन्द्र के छोटे भाई श्री विष्णु ने उससे इस प्रकार कहा—तुम्हारे दुष्कर्मों के कारण सभी देवता और ऋषि भयभीत हो गए हैं। मैंने उन्हें राक्षसों का संहार करके अभय प्रदान करने का आश्वासन दिया है, अतः मैं अपने वचन का पालन कर रहा हूं। देवताओं एवं ऋषियों आदि के सुख के लिए कार्य करना, मुझे सदैव ही अच्छा लगता है।

यदि तुम राक्षसगण भाग कर रसातल में छुप जाओ तो भी मैं तुम्हें वहां आकर अवश्य मार दूंगा। जब लाल कमल की तरह नेत्रों वाले श्री विष्णु यह वाक्य कह रहे थे, तो राक्षसराज माल्यवान् ने क्रोधित होकर अपनी शक्ति के प्रहार से उनका वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया।

माल्यवद्भुजनिर्मुक्ता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ।
हरेरुरसि बभ्राज मेघस्थेव शतह्रदा ।।284।।
ततस्तामेव चोत्कृष्य शक्तिं शक्तिधरप्रियः ।
माल्यवन्तं समुद्दिश्य चिक्षेपाम्बुरुहेक्षणः ।।285।।
स्कन्दोत्सृष्टेव सा शक्तिर्गोविन्दकरनिःसृता ।
काङ्क्षन्ती राक्षसं प्रायान्महोल्केवाञ्जनाचलम् ।।286।।

सा तस्योरसि विस्तीर्णे हारभारावभासिते ।
आपतद् राक्षसेन्द्रस्य गिरिकूट इवाशनिः ।।287।।
तया भिन्नतनुत्राणः प्राविशद् विपुलं तमः ।
माल्यवान् पुनराश्वस्तस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ।।288।।
ततः कालायसं शूलं कण्टकैर्बहुभिश्चितम् ।
प्रगृह्याभ्यहनद् देवं स्तनयोरन्तरे दृढम् ।।289।।
तथैव रणरक्तस्तु मुष्टिना वासवानुजम् ।
ताडयित्वा धनुर्मात्रमपक्रान्तो निशाचरः ।।290।।

माल्यवान् द्वारा छोड़ी गई वह शक्ति घण्टे की तरह आवाज करती हुई श्री विष्णु की छाती में जा लगी तथा मेघ के अङ्ग में विद्युत की तरह प्रकाशित हो गई। श्री विष्णु ने उस शक्ति को अपनी छाती से बाहर खींचकर माल्यवान् पर ही दे मारा। स्कन्ध शक्ति के समान वह शक्ति श्री विष्णु के हाथ से छूटकर उस राक्षस को अपना लक्ष्य बनाती हुई उस पर इस प्रकार गिरी, जिस प्रकार कोई बड़ी उल्का अज्जनगिरि पर गिरी हो। राक्षसराज के वक्षःस्थल पर वह शक्ति इस प्रकार गिरी, मानो किसी पर्वत के शिखर पर वज्रपात हुआ हो। माल्यवान् की आंखों के आगे अंधेरा हो गया और उसका कवच विदीर्ण हो गया। परंतु थोड़ी ही देर में वह ठीक होकर शिखर की भांति अविचल भाव से खड़ा हो गया। इसके पश्चात् माल्यवान् ने लोहे के कई कांटों से निर्मित शूल को उठाकर श्री विष्णु के वक्ष के मध्यभाग पर गहरा प्रहार कर दिया। इस प्रकार वह माल्यवान् राक्षस रणमत्त होकर, श्री विष्णु की छाती पर मुक्के का प्रहार करके एक धनुष पीछे हट गया।

पाताल लोक को पलायन

ततोऽम्बरे महाञ्छब्दः साधुसाध्विति चोत्थितः ।
आहत्य राक्षसो विष्णुं गरुडं चाप्यताडयत् ।।291।।
वैनतेयस्ततः क्रुद्धः पक्षवातेन राक्षसम् ।
व्यपोहद् बलवान् वायुः शुष्कपर्णचयं यथा ।।292।।
द्विजेन्द्र पक्षवातेन द्रावितं दृश्य पूर्वजम् ।
सुमाली स्वबलैः सार्धं लङ्कामभिमुखो ययौ ।।293।।
पक्षवातबलोद्धूतो माल्यवानपि राक्षसः ।
स्वबलेन समागम्य ययौ लङ्का ह्रियावृतः ।।294।।
एवं ते राक्षसा राम हरिणा कमलेक्षण ।
बहुशः सुंयगे भग्ना हतप्रवरनायकाः ।।295।।
अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं बलार्दिताः ।
त्यक्त्वा लङ्का गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः ।।296।।
सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम ।
स्थिता प्रख्यातवीर्यास्ते वंशे सालकटङ्कटे ।।297।।
ये त्वा निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः ।
सुमाली माल्यवान् माली ये च तेषां पुरः सराः ।

सर्व एते महाभागा रावणाद् बलत्तराः ।।298।।
न चान्यो राक्षसान् हन्ता सुरारीन् देवकण्टकान् ।
ऋते नारायणं देवं शङ्खचक्र गदाधरम् ।।299।।
भवान् नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः ।
राक्षसान् हन्तुत्पन्नो ह्यजय्यः प्रभुरव्ययः ।।300।।
नष्टधर्म व्यवस्थानां काले काले प्रजाकरः ।
उत्पद्यते दस्युवधे शरणागतवत्सलः ।।301।।

उस समय राक्षसों ने ‘धन्य है, धन्य है’ का नारा जोर-जोर से लगाया। माल्यवान् ने श्री विष्णु पर आघात करने के बाद गरुड़ पर भी हमला किया। तब गरुड़ ने क्रोध में आकर अपने पंखों के झोंके से उस राक्षस को वैसे ही उड़ा डाला, जैसे आंधी सूखे पत्तों के ढेर उड़ा देती है। पक्षिराज गरुड़ के पंखों की हवा से पहले जैसा ही दृश्य उपस्थित हो गया और सुमाली राक्षस सैनिकों को साथ लेकर लङ्का नगरी की ओर चला गया। राक्षस माल्यवान् भी गरुड़ के पंखों की हवा के कारण उड़कर अपनी सेना से जा मिला और लङ्का की ओर चला गया।

हे कमल नयन राम! उन राक्षसों का श्री विष्णुजी के साथ कई बार युद्ध हुआ। प्रत्येक बार सेनानायकों के मारे जाने पर उनको भागना पड़ता था। इस प्रकार वे बलहीन तथा अशक्त होकर श्री विष्णु का सामना नहीं कर पाए। इसके पश्चात् राक्षस लङ्कापुरी को छोड़कर अपनी पत्नियों के साथ, पाताल लोक चले गए। हे रघुश्रेष्ठ! वहां उन्होंने शक्तिशाली एवं विख्यात ‘सालकटङ्कटा’ वंश के परम तेजस्वी राक्षस सुमाली के आश्रय में रहने लगे। हे श्रीराम! पुलस्त्य वंश के जिन राक्षसों का आपने वध किया है, उनकी तुलना में माल्यवान्, सुमाली, माली नाम के प्राचीन राक्षस रावण से कहीं अधिक बलवान थे। उन महाबलवान् कण्टक स्वरूप राक्षसों को शंख एवं चक्रधारी श्री विष्णु के अतिरिक्त कोई नहीं मार सकता था। हे राम! वही चार भुजाओं वाले सनातन देव श्री नारायण हैं। हे प्रभु! आप तो अविनाशी हैं? राक्षसों का संहार करने के लिए आपने अवतार लिया है। हे शरणागत वत्सल! प्रजा की रक्षा, समय-समय पर नष्ट हुए धर्म की स्थापना तथा दस्युओं का वध करने के लिए आप अवतार लेते आए हैं।

धनाध्यक्ष कुबेर

एषा मया तव नराधिप राक्षसानामुत्पत्तिरद्य सकला यथावत् ।
भूयो निबोध रघुसत्तम रावणस्य जन्मप्रभावमतुलं ससुतस्य सर्वम् ।।302।।
चिरात् सुमाली व्यचरद् रसातलं स राक्षसोविष्णुभयार्दितस्तदा ।
पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो बली ततस्तु लङ्कामवसद् धनेश्वरः ।।303।।

हे नरेश्वर! इस प्रकार मैंने राक्षसों की उत्पत्ति संबंधी जानकारी आपको ज्यों की त्यों सुना दी। हे रघुश्रेष्ठ! अब मैं आपको रावण के जन्म, उसके पुत्रों तथा रावण के अतुलनीय प्रभाव के विषय में बताता हूं। सुनिए! भगवान् श्री विष्णु के भय के कारण सुमाली दीर्घकाल तक अपने पुत्र-पौत्रों के साथ रसातल में छुपा रहा। इसी दौरान धनाध्यक्ष कुबेर ने लङ्कापुरी को अपना निवास स्थान बना लिया।

कस्यचित् त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः ।

रसातलान्मर्त्यलोकं सर्वं वै विचचार ह ।।304।।
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकांचनकुण्डलः ।
कन्यां दुहितरं गृह्य विना पद्मामिव श्रियम् ।।305।।
राक्षसेन्द्रः स तु तदा विचरन् वै महीतले ।
तदापश्यत् स गच्छन्तं पुष्पकेण धनेश्वरम् ।।306।।
गच्छन्तं पितरं द्रष्टुं पुलस्यतनयं विभुम् ।
तं दृष्ट्वामरसंकाशं गच्छन्तं पावकोपमम् ।।307।।
रसातलं प्रविष्ट सन्मर्त्यलोकात् सविस्मयः ।
इत्येवं चिन्तयामास राक्षसानां महामतिः ।।308।।
किं कृत्वा श्रेय इत्येवं वर्धेमहि कथं वयम् ।
अथाब्रवीत् सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः ।।309।।
पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवन व्यतिवर्तते ।
प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैः प्रतिगृह्यसे ।।310।।
त्वत्कृते य वयं सर्वे यन्त्रिता धर्मबुद्धयः ।
त्वं हि सर्वगुणोपेता श्रीः साक्षादिव पुत्रिके ।।311।।
कन्यापितृत्व दुःखं हि सर्वेषां मानकांक्षिणाम् ।
न ज्ञायते य कः कन्यां वरयेदिति कन्यके ।।312।।

कुछ समय के पश्चात् सुमाली रसातल से निकलकर विचरण करने हेतु पृथ्वी पर आया। वह नील-वर्ण के मेघ के समान स्वर्ण कुण्डलों को धारण किए सुशोभित हो रहा था। उसकी पुत्री भी उसके साथ कमल-रहित लक्ष्मी के समान सुशोभित हो रही थी। पृथ्वी पर विचरण करते हुए उसने कुबेर को अपने पुष्पक विमान में जाते हुए देखा। वह अग्नि के समान परम तेजस्वी थे और वायु मार्ग द्वारा देवताओं के समान अपने पिता पुलस्त्य नन्दन विश्रवा से मिलने जा रहे थे। उन्हें जाता देखकर वह परम बुद्धिमान आश्चर्य चकित हो गया और पुनः पृथ्वीलोक से रसातल में चला गया। वहां पहुंचकर वह इस तरह सोचने लगा—क्या करने से हमारा भला हो सकता है? हम किस प्रकार उन्नति कर सकते हैं? इस बात पर विचार कर उसने अपनी पुत्री कैकसी से कहा—हे पुत्री! तुम्हारे विवाह का उचित समय अब आ गया है। तुम्हारी युवावस्था का समय बीतता जा रहा है। तुम्हारे न कहने के कारण कोई भी वर तुम्हारा वरण नहीं कर पा रहा है। हम राक्षस धर्म-बुद्धि रखने वाले हैं और तुम्हारे लिए योग्य वर की प्राप्ति हेतु चिंतित हैं। तुम सर्वगुण सम्पन्न साक्षात् लक्ष्मी के समान हो। सम्मान वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए पुत्री का पिता होना दुःख की बात है। क्योंकि उसको यह नहीं पता होता कि कौन सा तथा कैसा पुरुष उसकी पुत्री का वरण करेगा।

मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव च दीयते ।
कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ।।313।।
सा त्वं मुनिवरं श्रेष्ठं प्रजापति कुलोद्भवम् ।
भज विक्षवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम् ।।314।।
ईदृशास्ते भविष्यन्ति पुत्राः पुत्रि न संशयः ।
तेजसा भास्करसमो तादृशोऽयं धनेश्वरः ।।315।।

सा तु तद् वचनं श्रुत्वा कन्यका पितृगौरवात् ।
तत्र गत्वा च सा तस्थौ विश्रवा यत्र तप्यते ।।316।।
एतस्मिन्नन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विजः ।
अग्निहोत्रमुपातिष्ठच्चतुर्थ इव पावकः ।।317।।
अविचिन्त्य तु तां वेलां दारुणं पितृगौरवात् ।
उपसृत्याग्रतस्तस्य चरणाधोमुखी स्थिता ।।318।।
विलिखन्ती मुहुर्भूमिङ्गुष्ठाग्रेण भामिनी ।
स तु तां वीक्ष्य सुश्रोणीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।।319।।
अब्रवीत परमोदारो दीप्यमानां स्वतेजसा ।
भद्रे कस्यासि दुहिता कुतो वा त्वमिहागता ।।320।।
किं कार्य कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने ।।321।।

पितृ-कुल, मातृ-कुल और जिस कुल में कन्या को दिया जाता है; उस पति का कुल अर्थात् इन तीनों कुलों में कन्या हमेशा संशय में डाले रखती है। अतः हे पुत्री! तुम प्रजापति के कुल में जन्म लेने वाले मुनि विश्रवा के पास जाकर स्वयं उनका पति के रूप में वरण करो। इस प्रकार तुम्हारे गर्भ से भी वैसे ही पुत्र जन्म लेंगे, जैसे सूर्य की तरह परम तेजस्वी कुबेर हैं।

अपने पिता के वचनों को सुनकर एवं उनके गौरव को ध्यान में रखकर वह कन्या उस स्थान पर जा पहुंची, जहां मुनिश्रेष्ठ विश्रवा तपस्या करते थे। हे राम! उसी समय पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा अग्निहोत्र करने बैठ गए। वह चतुर्थ अग्नि के समान परम तेजस्वी प्रतीत हो रहे थे। पिता के गौरव को ध्यान में रखते हुए कैकसी ने उस दारुण-वेला का भी कोई ध्यान नहीं दिया। वह कन्या विश्रवा के समीप जाकर, उनके चरण-कमलों पर अपनी दृष्टि लगाए और अंगूठे से भूमि पर बार-बार रेखाएं खींचने लगी। पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली, सुन्दर कटि-प्रदेश तथा अपने तेज से दीप्तिमान् उस कन्या को देखकर परम तेजस्वी ऋषि ने कहा—हे भद्रे! तुम किसकी पुत्री हो, तुम कहां से आई हो और तुम्हारा यहां आने का उद्देश्य क्या है? हे शोभने! यह सब मुझे बताओ?

एवमुक्ता तु सा कन्या कृतांजलिरथाब्रवीत् ।
आत्मप्रभावेण मुने ज्ञातुमर्हसि मे मतम् ।।322।।
किं तु मां विद्धि ब्रह्मर्षे शासनात् पितुरागताम् ।
कैकसी नाम नाम्नाहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि ।।323।।
स तु गत्वा मुनिर्ध्यानं वाक्यमेतदुवाच ह ।
विज्ञातं ते मया भद्रे कारणं यन्मनोगतम् ।।324।।
सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातङ्गगामिनि ।
दारुणायां तु वेलायां यस्मात् त्वं मामुपस्थिता ।।325।।
शृणु तस्मात् सुतान् भद्रे यादृशाज्जनयिष्यसि ।
दारुणान् दारुणाकारान् दारुणाभिजनप्रियान् ।।326।।
प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान् क्रूरकर्मणः ।
सा तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रणिपत्यांब्रवीद वचः ।।327।।
भगवन्नीदृशान् पुत्रांस्त्वत्तोऽहं ब्रह्मवादिनः ।
नेच्छामि सुदुराचारान् प्रसादं कर्तुमर्हसि ।।328।।

कन्या त्वेवमुक्तस्तु विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
उवाच कैकसीं भूयः पूर्णेन्दुरिव रोहिणीम् ।।329।।
पश्चिमो यस्तवसुतो भविष्यति शुभानने ।
मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च न संशयः ।।330।।
एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित् ।
जनयामास बीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ।।331।।
दशग्रीवं महादंष्ट्रं नीलांजनचयोपम् ।
ताम्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम् ।।332।।
तस्मिञ्जाते ततस्तस्मिन् सज्वालकवलाः शिवाः ।
क्रव्यादाश्चापसव्यानि मण्डलानि प्रचक्रमुः ।।333।।

मुनि के यह पूछने पर उस कन्या ने कहा—हे मुनिराज! आप अपने मनोबल के प्रभाव से मेरी इच्छा को जान सकते हैं। अतः हे ब्रह्मर्षि! आप यह अवश्य जान लें कि मैं अपने पिता की आज्ञा के कारण यहां पर आई हूं तथा मेरा नाम कैकसी है। बाकी सब आप स्वयं ही जान लेंगे। यह बात सुनकर मुनि श्रेष्ठ कुछ समय तक ध्यानस्थ रहे, तदुपरान्त वह बोले—हे भद्रे! तुम्हारी इच्छा मैंने जान ली है। मतवाले हाथी की चाल जैसी हे मन्दगति वाली! तुम मेरे द्वारा पुत्र पाने की इच्छा लेकर इस दारुण-वेला में यहां पर आई हो। अतः हे भद्रे! सुनो तुम ऐसे पुत्रों को जन्म दोगी जो भयंकर राक्षसों से प्रेम करने वाले तथा भयंकर-विशाल स्वरूप वाले होंगे। हे सुश्रोणि! तुम क्रूरकर्मा असुरों को ही जन्म दोगी।

मुनिवर के इन वचनों को सुनकर कैकसी ने उनके चरणों पर अपना मस्तक रखते हुए कहा—हे भगवन्! आप जैसे परम तेजस्वी-ब्रह्मवेत्ता द्वारा मैं ऐसे दुराचारी-पापी पुत्रों को पाने की इच्छा नहीं रखती, अतः आप मुझ पर कृपा करें। कन्या के यह वाक्य कहने पर मुनि विश्रवा इस तरह बोले, जैसे कोई चन्द्रमा रोहिणी से कुछ कह रहा हो—हे सुन्दर मुख वाली! तुम्हारा जो अंतिम पुत्र होगा, वह मेरे वंश की भांति धर्मात्मा और तपस्वी होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है। मुनिवर द्वारा यह कहे जाने पर कुछ समय के बाद ही कैकसी ने भयंकर, वीभत्स, महाराक्षसी रूप वाले, नीले पर्वत के समान विशालकाय, विकराल दांत, तांबे जैसे होंठ, बीस भुजाओं वाले, दशग्रीव तथा चमकीले केशों वाले पुत्र को जन्म दिया। उसके जन्म लेते ही मांसभक्षी गिद्ध, मुंह में अंगार भरे गीदड़ियां तथा पक्षी आदि उसके चारों ओर घूमने लगे।

दशग्रीव का जन्म

ववर्ष रुधिरं देवो मेघाश्च खननिस्वनाः ।
प्रबभौ न च सूर्यो वै महोल्काश्चापतन् भुवि ।।334।।
चकम्पे जगती चैव ववुर्वाताः सुदारुणाः ।
अक्षोभ्यः क्षुभितश्चैव समुद्रः सरितां पतिः ।।335।।
अथ नामाकरोत् तस्य पितामहसमः पिता ।
दशग्रीवः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो भविष्यति ।।336।।
तस्य त्वनन्तरं जातः कुम्भकर्णो महाबलः ।

प्रमाणाद् यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ।।337।।
ततः शूर्पणखा नाम संजज्ञे विकृतानना ।
विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ।।338।।
तस्मिन् जाते महात्त्वे पुष्पवर्षं पपात ह ।
नभः स्थाने दुन्दुभयो देवानां प्राणदंस्तथा ।
वाक्यं चैवान्तरिक्षे च साधु साध्विति तत् तदा ।।339।।
तौ तु तत्र महारण्ये ववृधाते महौजसौ ।
कुम्भकर्ण दशग्रीवौ लोकोद्वेग करौ तदा ।।340।।
कुम्भकर्णः प्रमत्तस्तु महर्षीन् धर्मवत्सलान् ।
त्रैलोक्ये नित्यासंतुष्टो भक्षयन् विचचार ह ।।341।।
विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मव्यवस्थितः ।
स्वाध्याय नियताहार उवास विजितेन्द्रियः ।।342।।
अथ वैश्रवणो देवस्तत्र कालेन केनचित् ।
आगतः पितरं द्रष्टुं पुष्पकेण धनेश्वरः ।।343।।
तं दृष्ट्वा कैकसी तत्र ज्वलन्तमिव तेजसा ।
आगम्य राक्षसी तत्र दशग्रीवमुवाच ह ।।344।।
पुत्र वैश्रवणं पश्य भ्रातरं तेजसावृतम् ।
भातृभावे समे चापि पश्यात्मानं त्वमीदृशम् ।।345।।
दशग्रीव तथा यत्नं कुरुष्वामितविक्रम ।
यथा त्वमपि मे पुत्र भवेर्वैश्रवणोपमः ।।346।।
मातुस्तद् वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
अमर्षमतुलं लेभे प्रतिज्ञां चाकरोत् तदा ।।347।।
सत्यं ते प्रति जानामि भ्रातृतुल्योऽधिकोऽपि वा ।
भविष्याम्योजसा चैव संतापं त्यज हृद्गतम् ।।348।।
ततः क्रोधेन तैनैव दशग्रीवः सहानुजः ।
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म तपसे धृत मानसः ।।349।।
प्राप्स्यामि तपसा काममिति कृत्वाध्यवस्य च ।
आगच्छदात्मसिद्यर्थं गोकर्णस्याश्रमं शुभम् ।।350।।
स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा तपश्चचारातुलमुग्रविक्रमः ।
अतोषयच्चापि पितामहं विभुं ददौ स तुष्टश्च वराञ्जयावहान् ।।351।।

मेघ बहुत भयंकर गर्जना करने लगे, देवतागण रुधिर की वर्षा करने लगे, सूर्य की रोशनी कम पड़ गई और पृथ्वी पर भयंकर उल्कापात होने लगा। बहुत भयंकर आंधी चलने लगी, पृथ्वी हिलने लगी तथा कभी भी क्षुब्ध न होने वाला समुद्र क्षुब्ध हो गया। उस समय ब्रह्मा के समान तेजस्वी पिता मुनि विश्रवा ने उस बालक का नामकरण करते हुए कहा—यह बालक दशग्रीवाएं लेकर पैदा हुआ है, इसलिए इसका नाम ‘दशग्रीव’ होगा। उसके बाद विशाल एवं महाबलशाली कुम्भकर्ण का जन्म हुआ। उसके जैसे विशाल शरीर वाला उदाहरण कहीं भी नहीं था। उसके बाद विशाल मुख वाली कन्या शूर्पणखा का जन्म हुआ। कैकसी के सबसे अंतिम पुत्र विभीषण

हुए जो धर्मात्मा और दयावान् थे। उस दयालु-महान्-सत्यवान् के जन्म पर आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी। देवताओं की दुन्दुभियां आकाश में बजने लगीं। उसी समय आकाश में 'साधु-साधु' की आवाज सुनाई देने लगी। दशग्रीव तथा कुम्भकर्ण दोनों ही महाबलशाली एवं परम तेजस्वी राक्षस तीनों लोकों में उद्वेग उत्पन्न करने वाले थे। वह उसी वन में आयु-वृद्धि प्राप्त करने लगे।

कुम्भकर्ण बहुत उन्मादी था। वह भूख से व्याकुल होने के कारण तीनों लोकों में घूमता रहता था और ऋषियों को अपना भोजन बनाता था। विभीषण धर्मात्मा थे। वह स्वाध्यायी, नियतआहारी, हमेशा धर्म का पालन करने वाले एवं इन्द्रियजित् थे। कुछ समय बीत जाने पर धर्मात्मा कुबेर अपने पुष्पक विमान में बैठकर अपने पिता को देखने के लिए वहां आए। उन तेज प्रदीप वाले कुबेर को देखकर कैकसी अपने बड़े पुत्र दशग्रीव के पास पहुंच कर बोली—हे पुत्र! तुम अपने परम तेजस्वी भाई वैश्रवण की तरफ देखो। भाई होने के कारण तुम्हें भी इन्हीं की तरह होना चाहिए, परंतु तुम अपने को देखो कि तुम्हारी अवस्था किस प्रकार की है? तुम मेरे पुत्र हो, अतः तुम्हें भी घोर परिश्रम करना चाहिए ताकि कुबेर के समान बन जाओ।

मां के इन वाक्यों को सुनकर दशग्रीव को बहुत बुरा लगा। उसी क्षण उसने प्रतिज्ञा करते हुए कहा—मां! मैं तुम्हारे सामने सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि मैं भी अपने भाई के समान बल्कि उससे बढ़कर परम तेजस्वी और ऐश्वर्यशाली बनूंगा। मैं अपनी सभी मनोकामनाओं को घोर तपस्या करके पूरा करूंगा। यह प्रतिज्ञा करके वह अभीष्ट सिद्धि के लिए गोकर्ण के पवित्र आश्रम पर चला गया। उस महापराक्रमी-परम तेजस्वी दशग्रीव ने अपने भाइयों के साथ घोर तपस्या करना प्रारंभ कर दिया। इसके द्वारा उन्होंने परमपिता ब्रह्मा को संतुष्ट तथा प्रसन्न कर लिया। इससे खुश होकर ब्रह्माजी ने उन्हें वर-विजय लाभ के वरदान प्रदान किए।

कुम्भकर्ण द्वारा घोर तप

अथाब्रवीन्मुनिं रामः कथं ते भ्रातरो वने ।
कीदृशं तु तदा ब्रह्मंस्तपस्तेपुर्महाबलाः ।।352।।
अगस्त्यस्त्वब्रवीत तत्र रामं सुप्रीतमानसम् ।
तांस्तान् धर्मविधींस्तत्र भ्रातरस्ते समाविशन् ।।353।।
कुम्भकर्णस्ततो यत्तो नित्यं धर्मपथे स्थितः ।
तताप ग्रीष्मकाले तु पञ्चाग्नीन् परितः स्थितः ।।354।।
मेघाम्बुसिक्तो वर्षासु वीरासनमसेवत् ।
नित्यं च शिशिरे काले जलमध्यप्रतिश्रयः ।।355।।
एवं वर्षसहस्राणि दश तस्यापचक्रमुः ।
धर्मे प्रयतमानस्य सत्पथे तिष्ठितस्य च ।।356।।
विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः ।
पञ्जवर्ष सहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ।।357।।
समाप्ते नियमे तस्य ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
पपात पुष्पवर्षं च तुष्टुवुश्चापि देवताः ।।358।।

पञ्चवर्ष सहस्राणि सूर्यं चैवान्ववर्तत ।
तस्थौ चोर्ध्वशिरोबाहुः स्वाध्याये धृतमानसः ।।359।।
एवं विभीषणस्यापि स्वर्गस्थस्येव नन्दने ।
दशवर्षसहस्राणि गतानि नियतात्मनः ।।360।।

यह कथा सुन भगवान् रामचन्द्रजी ने अगस्त्य मुनि से कहा—हे ब्रह्मन्! वह तीनों भाई जो महाबली थे, उन्होंने वन में किस प्रकार तपस्या की थी? तब प्रसन्नचित्त वाले अगस्त्य मुनि ने श्रीराम से कहा—उन तीनों महाबली भाइयों ने अलग-अलग धर्म-विधियों का आश्रय लिया था। कुम्भकर्ण, ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि में, प्रतिदिन धर्म पथ पर आरूढ़ रहकर तपने लगा। वह शीत काल में पानी के भीतर बैठा रहता था, वर्षा ऋतु में वीरासन में बैठा हुआ मेघों के पानी में भीगता रहता था।

इस प्रकार धर्म-मार्ग पर स्थित रहकर, सत्पथ पर चलते हुए उसने दस वर्षों तक घोर तपस्या की। धर्मात्मा विभीषण ने पवित्र धर्मपरायण रहकर पांच वर्षों तक एक पांव पर खड़े रहकर तपस्या की। उनका नियम पूर्ण हो जाने पर आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी और अप्सराएं नृत्य करने लगीं। सभी देवतागण उनकी स्तुति करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी दोनों बांहों और मुंह को ऊपर उठाकर, स्वाध्याय एवं धैर्यपूर्वक पांच सहस्र वर्षों तक सूर्यदेव की आराधना की। इस प्रकार उन्होंने अपनी तपस्या के सहस्र दस वर्ष स्वर्ग के नन्दन वन में रहने के समान बिता दिया।

रावण को कई वरदान

दशवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः ।।361।।
एवं वर्ष सहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ।
शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि हुताशनम् ।।362।।
अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः ।
छत्तुकामे दशग्रीवे प्राप्तस्तत्र पितामहः ।।363।।
पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं देवैरुपस्थितः ।
तव तावद् दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषतः ।।364।।
शीघ्रं वरय धर्मज्ञ वरो मस्तेऽभिकांक्षितः ।
कं ते कामं करोम्यद्य न वृथा ते परिश्रमः ।।365।।
अथाब्रवीद् दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
प्रणम्य शिरसा देवं हर्षगद्‌गदया गिरा ।।366।।
भगवन् प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद् भशम् ।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमत्वमहं वृणे ।।367।।
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा दशग्रीवमुवाच ह ।
नास्ति सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष मे ।।368।।
एवमुक्ते तदा राम ब्रह्मणा लोककृर्तणा ।

दशग्रीव उवाचेदं कृताञ्जलिरथाग्रतः ।।369।।
सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् ।
अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत ।।370।।
नहि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरशजित ।
तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः ।।371।।
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दशग्रीवेण रक्षसा ।
उवाच वचनं देवः सह दैवेः पितामहः ।।372।।
भविष्यत्येवमेतत् ते वचो राक्षसपुङ्गव ।
एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ।।373।।
शृणु चापि वरो भूयः प्रीतस्येह शुभो मम ।
हुतानि यानिशीर्षाणि पूर्व मग्नौ त्वयानद्य ।।374।।
पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस ।
वितरामीह तै सौम्य वरं चान्यं दुरासदम् ।।375।।

रावण ने दस सहस्र दस वर्षों तक निराहार रहते हुए कड़ी तपस्या की। रावण प्रत्येक वर्ष के पूरा हो जाने पर अपना एक मस्तक काटकर अग्नि को होम कर देता था। इस प्रकार एक-एक करके नौ हजार वर्ष बीत गए तथा रावण ने अपने नौ मस्तक अग्नि देवता को भेंट कर दिए। दस हजारवें वर्ष के पूरा होने पर जब वह अपना दसवां मस्तक काटकर अग्नि को भेंट चढ़ाने लगा, तभी वहां पितामह ब्रह्माजी अवतरित हुए। अन्य देवताओं सहित पितामह ने अत्यन्त प्रसन्न होकर रावण से कहा—हे दशग्रीव! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूं। हे धर्मज्ञ! तुम जो वर मांगना चाहते हो, वह शीघ्र ही मांग लो। तुम बोलो कि मैं तुम्हारी किस इच्छा को पूरी करूं? तुम्हारी तपस्या व्यर्थ नहीं जाएगी।

यह वचन सुनकर रावण की अन्तरात्मा प्रसन्न हो गई। रावण ने अपना मस्तक झुकाकर पितामह को प्रणाम करते हुए, गद्गद वाणी में हर्ष के साथ कहा— हे पितामह! प्राणियों को मृत्यु के अलावा कोई अन्य भय नहीं होता, अतः मैं अमर होने का वर पाना चाहता हूं क्योंकि मृत्यु की तरह कोई दूसरा भयानक शत्रु नहीं है। रावण के यह कहने पर पितामह उससे इस प्रकार बोले—कभी भी अमर होने का वरदान नहीं दिया जाता, अतः तुम कोई अन्य वरदान मांगो। हे राम! ब्रह्माजी के यह कहने पर दशानन ने अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—हे सनातन प्रजापति! नाग, गरुड़, यक्ष, दानव, दैत्य, राक्षस तथा देवताओं के लिए मैं अवध्य हो जाऊं अर्थात् वह मेरा वध न कर पाएं। हे देवपूजित! मुझे औरों की परवाह नहीं है। मनुष्य आदि प्राणियों को तो मैं तिनके के समान समझता हूं।

धर्मात्मा-राक्षस दशानन के यह कहने पर अन्य देवताओं सहित ब्रह्माजी बोले—हे राक्षसराज! तुमने जो वर मांगा है, वह पूर्ण होगा। हे राम! यह कहने के बाद ब्रह्माजी ने दशानन से कहा—हे निष्पाप! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न होकर यह वरदान भी प्रदान करता हूं कि तुमने अपने जिन नौ मस्तकों को अग्नि में होम कर दिए हैं, वे सब मस्तक पुनः पूर्ववत हो जाएंगे। हे सौम्य! इसके अलावा मैं तुम्हें एक अन्य दुर्लभ वरदान प्रदान करता हूं।

छन्दसस्तव रूपं च मनसा यद् यथेप्सितम् ।

एवं पितामहोक्तस्य दशाग्रीवस्य रक्षसः ।।376।।

अग्नौ हुतानि शीर्षाणि पुनस्तान्युत्थितानि वै ।
एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ।।377।।
विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः ।
विभीषणत्वया वत्स धर्मसंहितबुद्धिना ।।378।।
परितुष्टोऽस्मि धर्मात्मान् वरं वरय सुव्रत ।
विभीषणस्तु धर्मात्मा वचनं प्राह साञ्जलिः ।।379।।
वृतः सर्वगुणैर्नित्यं चन्द्रमा रश्मिभिर्यथा ।
भगवन् कृतकृत्योऽहं यन्मे लोकगुरुः स्वयम् ।।380।।
प्रीतेन यदि दातव्यो वरो मे शृणु सुव्रत ।
परमापद्मतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ।।381।।
अशिक्षितं च ब्रह्मास्त्रं भगवन् प्रतिभातु मे ।
या या मे जायते बुद्धिर्येषु येश्वाश्रमेषु च ।।382।।
सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तं धर्मं च पालये ।
एष मे परमोदारो वरः परमको मतः ।।383।।
नहि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम् ।
पुनः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमुवाच ह ।।384।।
धर्मिष्ठस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद् भविष्यति ।
यस्माद् राक्षस योनौ ते जातस्यामित्रनाशन ।।385।।
नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ।
इव्युक्त्वा कुम्भकर्णाय वरं दातुमवस्थितम् ।।386।।
प्रजापतिं सुराः सर्वे वाक्यं प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ।
न तावत् कुम्भकर्णाय प्रदातव्यो वरस्त्वया ।।387।।
जीनीषे हि यथा लोकांस्त्रासयत्येष दुर्मतिः ।
नन्दनेऽप्सरसः सप्त महेन्द्रानुचरा दश ।।388।।
अनेन भक्षिता ब्रह्मन्नृषयो मानुषास्तथा ।
अलब्धवरर्श्वेण यत् कृतं राक्षसेन तु ।।389।।
यद्येष वरलब्धः स्याद् भक्षयेद् भुवनत्रयम् ।
वरव्याजेन मोहोऽस्मै दीयताममितप्रभ ।।390।।

तुम अपने मन में जैसा भी रूप चाहोगे, वही रूप धारण कर सकोगे। पितामह के यह कहते ही रावण के वे नौ सिर, जो उसने अग्नि में होम कर दिए थे, पुनः प्रकट हो गए। हे राम! ब्रह्माजी दशानन से यह कहने के उपरान्त विभीषण के पास जा पहुंचे और इस प्रकार बोले—हे वत्स विभीषण! तुम्हारा ध्यान तो धर्म के कार्यों में लगा रहता है। हे धर्मात्मन्! हे सुव्रती! मैं तुमसे प्रसन्न हूं, अतः तुम कोई भी वर मांग सकते हो।

पितामह की यह बात सुनकर अपने दोनों हाथ जोड़ कर—जिस प्रकार चन्द्रमा किरणों से मंडित रहता है, उसी तरह समस्त गुणों से नित्य आवृत विभीषणजी बोले—हे भगवन्! आप लोक गुरु हैं। मैं तो आपके दर्शन पाकर ही धन्य हो गया। यदि आप मुझे कोई वर देना ही चाहते

हैं तो हे सुव्रत! आप उसके बारे में सुनिए। बड़ी-से-बड़ी मुश्किल आने पर भी मेरी बुद्धि धर्म के कार्यों में ही लगी रहे। हे भगवन्! बिना सीखे ही मुझको ब्रह्मास्त्र का ज्ञान प्राप्त हो जाए। मेरी बुद्धि जिस किसी कार्य के बारे में सोचे, वह कार्य धर्म के क्षेत्र में ही हो और मैं सब धर्मों का पालन करता रहूं। हे परमोदार! मेरे लिए यही वरदान सर्वोत्तम रहेगा। जो लोग धर्म के कार्य में संलग्न रहते हैं, उनके लिए कोई भी कार्य दुर्लभ नहीं होता।

यह सुनकर पितामह ब्रह्माजी प्रसन्न होकर विभीषण से पुनः बोले—हे वत्स! तुम धर्मिष्ठ हो, अतः तुम जो चाहते हो, वही होगा। हे शत्रु-नाशन्! राक्षस जाति में जन्म लेकर भी तुम्हारा ध्यान धर्म के कार्यों में लगा हुआ है, अतः मैं तुम्हें 'अमरत्व' का वरदान भी देता हूं अर्थात् तुम्हारी कभी मृत्यु नहीं होगी। यह कहने के बाद वह कुम्भकर्ण को वर देने के लिए चले गए। उस समय सभी देवतागणों ने प्रजापति ब्रह्माजी से हाथ जोड़कर कहा—हे प्रभो! जब तक आप यह नहीं जान लेते हैं कि यह दुष्ट राक्षस तीनों लोकों को किस प्रकार दुःख दे रहा है, तब तक आप उसको कोई वर नहीं दीजिएगा। इस राक्षस ने नन्दन वन की सात अप्सराओं को, बहुत से ऋषि-मुनियों को तथा देवराज इन्द्र के दस सेवकों को खा लिया है। हे ब्रह्मान्! जब इस राक्षस ने बिना कोई वर पाए इतने दुष्ट तथा क्रूर कार्य किए हैं, तो वह वर पाने के उपरान्त तीनों लोकों को नष्ट कर डालेगा। अतः हे परम तेजस्वी देव! आप इसको वरदान के रूप में 'मोह' प्रदान करें।

कुम्भकर्ण का दुःखी होना

लोकानां स्वस्ति चैवं स्याद् भवेदस्य च सम्मतिः ।
एवमुक्तः सुरैर्ब्रह्माचिन्तयत् पद्मसम्भवः ।।391।।
चिन्तिता चोपतस्थेऽस्य पार्श्वं देवी सरस्वती ।
प्राञ्जलिः सा तु पार्श्वस्था प्राह वाक्यं सरस्वतीम् ।।392।।
वाणित्वं राक्षसेन्द्रस्य भव वाग्देवतेप्सिता ।
तथेत्युक्त्वा प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाब्रवीत् ।।393।।
कुम्भकर्ण महाबाहो वरं वरय यो मतः ।
कुम्भकर्णस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वचनम्ब्रवीत् ।।394।।
स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम् ।
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रायाद् ब्रह्मा सुरैः समम् ।।395।।
देवी सरस्वती चैव राक्षसं तं जहौ पुनः ।
ब्रह्मणा सह देवेषु गतेषु च नभः स्थलम् ।।396।।
विमुक्तोऽसौ सरस्वत्या स्वां संज्ञां च ततो गतः ।
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ।।397।।
ईदृशं किमिदं वाक्यं ममाद्य वदनाच्च्युतम् ।
अहं व्यामोहितो देवैरिति मन्ये तदागतैः ।।398।।
एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः ।
श्लेष्मांतकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन् सुखम् ।।399।।

इसी की सम्मति से इसी प्रकार लोकों का कल्याण हो जाएगा। ब्रह्माजी ने देवताओं की यह

बात सुनकर कुछ विचार किया। उनके चिन्तन करने पर देवी सरस्वती उनके पास जा पहुंचीं। सरस्वतीजी ने ब्रह्माजी के पार्श्वभाग में खड़े हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—हे देव! मैं आ गई हूं, आप मुझे कौन-सा कार्य करने की आज्ञा देते हैं? तब ब्रह्माजी ने सरस्वती से कहा—हे वाणी! तुम राक्षस कुम्भकर्ण की जीभ पर बैठकर उससे देवताओं के मनोनुकूल शब्दों का उच्चारण करवाओ।

यह सुनकर वह कुम्भकर्ण की जीभ पर बैठ गईं। तब ब्रह्माजी ने उस दैत्य से कहा—हे महाबली कुम्भकर्ण! तुम अपने मन के अनुसार वर मांग लो। ब्रह्माजी की बात सुनकर कुम्भकर्ण ने कहा—हे देवाधिदेव! मेरी यह मनोकामना है कि मैं अनेक वर्षों तक निद्रा में लीन रहूं! तब 'एवमस्तु' कहकर ब्रह्माजी अन्य देवताओं के साथ वहां से चले गए। उसके बाद सरस्वती ने कुम्भकर्ण को छोड़ दिया। जब सरस्वती कुम्भकर्ण को मुक्त कर चली गईं तो वह दुखी होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगा—मेरे मुख से ऐसे वचन कैसे निकल गए? संभवतः ब्रह्माजी के साथ आए अन्य देवताओं ने मुझे भ्रम में डाल दिया था। इस प्रकार वह तीनों भाई ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करने के पश्चात् श्लेष्मांतक वन अर्थात् लसौड़े के जंगल में चले गए और वहां सुखपूर्वक आवास करने लगे।

सुमाली वरलब्धांस्तु ज्ञात्वा चैतान् निशाचरान् ।
उदितष्ठद्भयं त्यक्त्वा सानुगः स रसातलात् ।।400।।
मारीचश्च प्रहस्तश्च विरूपाक्षो महोदरः ।
उदतिष्ठन् सुसंरब्धाः सचिवास्तस्य रक्षसः ।।401।।
सुमाली सचिवैः सार्धं वृतो राक्षसपुङ्गवैः ।
अभिगम्य दशग्रीवं परिष्वज्येदमब्रवीत्ः ।।402।।
दिष्टया ते वत्स सम्प्राप्तश्चिन्तितोऽयं मनोरथः ।
यस्तवं त्रिभुवनश्रेष्ठाल्लब्धवान् वरमुत्तमम् ।।403।।
यत्कृते च वयं लङ्का त्यक्त्वा याता रसातलम् ।
तद्गतं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ।।404।।
असकृद् तद्भयाद् भग्नाः परित्यज्य स्वमालयम् ।
विद्रुताः सहितासर्वे प्रविष्टाः स्म रसातलम् ।।405।।
अस्मदीया च लङ्केयं नगरी राक्षसोषिता ।
निवेशिता तव भ्रात्रा धनाध्यक्षेण धीमता ।।406।।
यदि नामात्र शक्यं स्यात् साम्ना दानेन वानघ ।
तरसा वा महाबाहो प्रत्यानेतुं कृतं भवेत् ।।407।।
त्वं च लङ्केश्वरस्तात भविष्यसि न संशयः ।
त्वया राक्षसवंशोऽयं निमग्नोऽपि समुद्धृतः ।।408।।
सर्वेषां नः प्रभुश्चैव भविष्यसि महाबल ।
अथाब्रवीद दशग्रीवो मतामहमुपस्थितम् ।।409।।
वित्तेशो गुरुरस्माकं नार्हसे वक्तुमीदृशम् ।
साम्नाहि राक्षसेन्द्रेण प्रत्याख्यातो गरीयसा ।।410।।

सुमाली को जब यह ज्ञात हुआ कि राक्षसों ने वर प्राप्त कर लिया है तो वह सभी भय त्याग

कर अपने अनुचरों सहित रसातल से चला आया। उस राक्षस के चारों ओर सचिव, प्रहस्त, मारीच, महोदर तथा विरुपाक्ष रसातल से बाहर निकल आए। महाबलियों और सचिवों से घिरा हुआ सुमाली दशानन के पास गया तथा उसको अपने गले से लगाकर बोला—हे वत्स! यह बहुत प्रसन्नता की बात है कि तुमने त्रिभुवन श्रेष्ठ ब्रह्माजी से चिरकालीन वांछित मनोरथ वाला वरदान प्राप्त कर लिया। जिस विष्णु के भय के कारण हम सभी राक्षस अपनी लङ्का नगरी को छोड़कर रसातल में चले गए थे, वह भय अब दूर हो गया है। हे महाबाहो! विष्णु के भय के कारण हम लोग अपना घर छोड़कर रसातल में चले गए थे। यह लङ्का नगरी जिसमें अब तुम्हारे महावीर-बुद्धिमान भाई कुबेर रह रहे हैं, वहां पर पहले हम राक्षस ही रह रहे थे। हे महाबाहो! यदि लङ्का को साम, दान या बलपूर्वक वापस लिया जा सके तो हमारी आकांक्षा एवं इच्छाएं पूर्ण होंगी। हे तात! तुम्हीं लङ्का के स्वामी बनोगे, इसमें कोई संदेह नहीं है, क्योंकि तुमने ही डूबे हुए राक्षस वंश को विनाश से उबारा है। हे महाबली! तुम्हीं सबके स्वामी बनोगे। यह सुनकर दशानन ने अपने पास खड़े नानाजी से इस प्रकार कहा—धनाध्यक्ष कुबेर हमारे बड़े भाई हैं, अतः उनके विषय में आपको ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। रावण से इस प्रकार का कोरा जवाब पाकर—

किंचिन्नाह तदा रक्षो ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ।
कस्यचित् त्वथ कालस्य वसन्तं रावणं ततः ।।411।
उक्तवन्तं तथा वाक्यं दशग्रीवं निशाचरः ।
प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यमिदमाह सकारणम् ।।412।।
दशग्रीव महाबाहो नार्हसे वक्तुमीदृशम् ।
सौभ्रात्रं नास्ति शूराणां शृणु चेदं वचो मम ।।413।।
अदितिश्च दितिश्चैव भगिन्यौ सहिते हि ते ।
भार्ये परमरुपिण्यौ कश्यपस्य प्रजापतेः ।।414।।
अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ।
दितिस्त्वजनयद् दैत्यान् कश्यपस्यात्मसम्भवान् ।।415।।
दैत्यानां किल धर्मज्ञ पुरेयं सवनार्णवा ।
सर्पवता मही वीर तेऽभवन् प्रभविष्णवः ।।416।।
निहत्य तांस्तु समरे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
देवानां वशमानीतं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ।।417।।
नैतदेको भवानेव करिष्यति विपर्ययम् ।
सुरासुरैराचरितं तत् कुरुष्व वचो मम ।।418।।
एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं वै बाढमित्येव सोऽब्रवीत् ।।419।।
सतु तेनैव हर्षेण तस्मिन्नहनि वीर्यपान् ।
वनं गतोदशग्रीवः सह तैः क्षणदाचरैः ।।420।।

सुमाली रावण के मन की बात समझकर चुप हो गया। कुछ समय के पश्चात् उसी स्थान पर रहते हुए दशानन से सुमाली के मन्त्री प्रहस्त ने विनम्रता पूर्वक यह बात कही—हे महाबाहु दशग्रीव! आपने जो अपने नाना से कहा, आपको वैसा नहीं कहना चाहिए था क्योंकि महाबली पुरुषों में भ्रातृभाव का निर्वाह नहीं किया जाता। आप मेरी बात सुनिए। अदिति और दिति दोनों

ही सगी बहनें हैं तथा यह दोनों सुंदरियां महर्षि कश्यप प्रजापति की पत्नियां हैं। अदिति ने तीनों लोकों के देवताओं को जन्म दिया तथा दिति ने दैत्यों को जन्म दिया है। इस प्रकार दैत्य और देवता दोनों ही महर्षि कश्यप के पुत्र हैं। हे धर्मज्ञ! समुद्र, पर्वत, वन से भरी हुई यह संपूर्ण धरती दैत्यों के ही अधिकार में थी, क्योंकि वे बहुत बलशाली थे। लेकिन शक्तिशाली विष्णु ने उन राक्षसों को युद्ध क्षेत्र में मारकर तीनों लोकों का राज्य देवताओं के अधिकार में दे दिया। इस प्रकार का विपरीत व्यवहार केवल आप ही नहीं करेंगे, देवताओं और दैत्यों ने ऐसे कार्य पहले भी किए हैं। अतः आपको मेरी सलाह मान लेनी चाहिए। दशानन की अन्तरात्मा प्रहस्त के यह कहने पर प्रसन्न हो उठी। कुछ समय विचार करने के बाद उसने कहा—ऐसा ही होगा। इसके पश्चात् दशग्रीव सभी राक्षसों के साथ प्रसन्नतापूर्वक उस वन में जा पहुंचा।

दशानन का संदेश

त्रिकूटस्थः स तु तदा दशग्रीवो निशाचरः ।
प्रेषयामास दौत्येन प्रहस्तं वाक्यकोविद्म ।।421।।
प्रहस्त शीघ्रं गच्छ त्वं ब्रूहि नैर्ऋतपुङ्गवम् ।
वचसा मम वित्तेशं सामर्श्वमिदं वचः ।।422।।
इयं लङ्कापुरी राजन् राक्षासानां महात्मनाम् ।
त्वया निवेशिता सौम्य नैतद् युक्तं तवानघ ।।423।।
तद् भवान् यदि नो ह्यद्य दद्यादतुलविक्रम ।
कृता भवेन्मम प्रीतिर्धर्मश्चैवानुपालितः ।।424।।
स तु गत्वा पुरीं लङ्का धनदेन सुरक्षिताम् ।
अब्रवीत् परमोदारं वित्तपालमिदं वचः ।।425।।
प्रेषितोऽहं तव भ्राता दशग्रीवेण सुव्रत ।
त्वत्समीपं महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वर ।।426।।
तत्छ्रयतां महाप्राज्ञ सर्वशास्त्र विशारद ।
वचनं मम वित्तेश यद् ब्रवीति दशाननः ।।427।।
इयं किल पुरी रम्या सुमालिप्रमुखैः पुरा ।
भुक्तपूर्वा विशालाक्ष राक्षसैर्भीमविक्रमैः ।।428।।
तेन विज्ञाप्तये सोऽयं साम्प्रतं विश्रवात्मज ।
तदेषा दीयतां तात याचतस्तस्य सामतः ।।429।।
प्रहस्तादपि संश्रुत्यं देवो वैश्रवणो वचः ।
प्रत्युवाच प्रहस्तं तं वाक्यं वाक्यविंदा वरः ।।430।।
दत्ता ममेयं पित्रा तु लङ्का शून्या निशाचरैः ।
निवेशिता च मे रक्षो दानमानादिभिर्गुणैः ।।431।।

रावण त्रिकूट पर्वत पर पहुंचकर रुक गया तथा उसने प्रहस्त को अपना दूत बनाकर भेजने का दृढ़ निश्चय किया। उसने कहा—हे प्रहस्त! तुम वहां जाकर कुबेर से विनम्रतापूर्वक मेरा यह संदेश कहो कि हे राजन! यह लङ्का नगरी राक्षसों की है। अतः हे सौम्य! हे निष्पाप! आपका

इस स्थान पर निवास करना उचित नहीं है। हे अतुल पराक्रमी! यदि आप सब यह स्थान हम लोगों को वापस कर दें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। आपका यह कार्य धर्म का पालन करना सिद्ध होगा।

प्रहस्त नाम का वह राक्षस कुबेर की उस लङ्का पुरी में गया तथा उनसे अत्यन्त उदार वाणी में बोला—हे उत्तमव्रती! हे महाबली! हे समस्त शस्त्रधारियों में सर्वश्रेष्ठ! आपके भाई दशग्रीव ने मुझे आपके पास भेजा है। अतः हे संपूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता! हे महाबाहो! दशानन ने जो कुछ कहलवाया है, उसे आप सुनने की कृपा करें। हे विशालाक्ष! यह लङ्कापुरी पूर्वकाल में सुमाली तथा अन्य पराक्रमियों जैसे राक्षसों के अधिकार में थी, अतः हे विश्रवात्मज! उस दशानन ने यह कहा है कि यह जिन लोगों का स्थान है, उन्हें वापस लौटाने की कृपा करें। हमारी यह शान्तिपूर्ण प्रार्थना है। प्रहस्त के मुख से यह बात सुनकर, वाणी के मतलब को समझ लेने वाले वाक्श्रेष्ठ वैश्रवण ने उत्तर दिया—हे राक्षस! जब यह लंका निशाचरों से विलीन थी, उस समय पिताजी ने मुझे यह दी थी और मैंने मान, दान आदि गुणों-प्रयोजनों को उसमें बसाया है।

ब्रूहि गच्छ दशग्रीवं पुरी राज्यं च यन्मम ।
तत्राप्येतन्महाबाहो भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ।।432।।
अविभक्तं त्वया सार्धं राज्यं यच्चापि मे वसु ।
एवमुक्त्वा धनाध्यक्षो जगाम पितुरन्तिकम् ।।433।।
अभिवाद्य गुरुं प्राह रावणस्य यदीप्सितम् ।
एष तात दशग्रीवो दूतं प्रेषितवान् मम ।।434।।
दीयतां नगरी लङ्का पूर्वं रक्षोगणोषिता ।
मयात्र यदनुष्ठेयं तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ।।435।।
ब्रह्मर्षिस्त्वेवमुक्तोऽसौ विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
प्राञ्जलिं धनदं प्राह श्रृणु पुत्र वचो मम ।।436।।
दशग्रीवो महाबाहुरुक्तवान् मम संनिधौ ।
मया निर्भिर्त्सित श्चात्पीद् बहुशोक्तः सुदुर्मतिः ।।437।।
स क्रोधेन मया चोक्तो ध्वंससे च पुनः पुनः ।
श्रेयोऽभियुक्तं धर्म्यं च शृणु पुत्र वचो मम ।।438।।
वरप्रदान सम्मूढो मान्यामान्यं सुदुर्मतिः ।
न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणं गतः ।।439।।
तस्माद् गच्छ महाबाहो कैलासं धरणीधरम् ।
निवेशय निवासार्थं व्यक्त्वा लङ्का सहानुगः ।।440।।

तुम जाकर दशानन से कहना कि यह लङ्का नगरी और राज्य जो कुछ भी मेरा है, वह सब तुम्हारा भी है। तुम इस राज्य तथा नगरी का बिना किसी हिचकिचाहट के प्रयोग कर सकते हो। हे भाई! यह मेरा राज्य तथा धन आपसे अलग नहीं है। यह कहने के बाद कुबेर अपने पिता के आश्रम की ओर चल दिए।

पिता को प्रणाम करने के बाद उन्होंने रावण की इच्छा को अपने पिता से इस प्रकार कह डाला—हे तात! दशानन ने अपना दूत मेरे पास भेजा था और कहलवाया था कि पूर्वकाल में

राक्षसों का आवास रही लङ्का नगरी उनको लौटा दी जाए। हे सुव्रत! आप मुझे यह बताइए कि अब मुझे क्या करना है। तब मुनिश्रेष्ठ विश्रवा ने दोनों हाथ जोड़कर खड़े हुए कुबेर से कहा—हे पुत्र, मेरी बात को सुनो! महाबलशाली दशानन ने मेरे पास आकर भी यह बात कही थी। इसके संबंध में मैंने उसको डांटा भी था तथा बार-बार क्रोधपूर्वक यह भी कहा था कि इसके कारण तुम्हारा विनाश हो जाएगा। अतः हे पुत्र! अब तुम धर्मसम्मत तथा कल्याणप्रद मेरे कहे वचनों को सुनो। वह दुष्ट-पापी वर पाने के बाद बुद्धि से भ्रष्ट हो गया है। अतः वह कुछ भी समझ नहीं पा रहा है। मेरे शाप के कारण उसकी प्रकृति बहुत क्रूर हो गई है। अतः हे महाबाहो! तुम अपने अन्य भाइयों के साथ लङ्का को छोड़कर, कैलाश पर्वत के ऊपर रहने के लिए अन्य नगरी बसा लो।

लंका से प्रस्थान

तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनामुत्तमा नदी ।
काञ्चनैः सूर्यसंकाशैः पङ्कजैः संवृतोदका ।।441।।
कुमुदैरुत्पलैश्चैव अन्यैश्चैव सुगन्धिभिः ।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः साप्सरोरगकिन्नराः ।।442।।
विहारशीलाः सततं रमन्ते सर्वदाश्रिताः ।
नहि क्षमं तवानेन वैरं धनद रक्षसा ।।443।।
जानीषेहि यथानेन लब्धः परमको वरः ।।444।।
एवमुक्तो गृहीत्पा तुतद्वचः पितृगौरवात् ।
सदारपुत्रः सामात्यः सवाहनधनोगतः ।।445।।
प्रहस्तोऽथ दशग्रीवं गत्वा वचनमब्रवीत् ।
प्रहृष्टात्मा महात्मानं सहामात्यं सहानुजम् ।।446।।
शून्या सा नगरी लङ्का त्यक्त्वैनां धनदो गतः ।
प्रविश्य तां सहास्माभिः स्वधर्मं तत्र पालय ।।447।।
एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहस्तेन महाबलः ।
विवेश नगरी लङ्का भ्रातृभिः सबलानुगैः ।।448।।
धनदेन परित्यक्तां सुविभक्तमहापधाम् ।
आरोरुह स देवारिः स्वर्गं देवाधिपो यथा ।।449।।

नदियों में श्रेष्ठ मानी जाने वाली मन्दाकिनी नामक नदी वहां पर बहती है। वह स्थान सूर्य की तरह प्रकाशवान्, स्वर्ण कमलों तथा कुमुदों-उत्पलों और अन्य सुगंधित पुष्पों से परिपूर्ण है। वहां अप्सरा, नाग, किन्नर, देवता तथा गन्धर्व आदि विहारशील प्राणी प्रसन्न बने रहते हैं तथा नित्य विचरण करते रहते हैं। हे धनद! उस महाबली राक्षस से शत्रुता करने में तुम परिपूर्ण नहीं हो, क्योंकि तुम जानते हो कि उसे कैसा उत्कृष्ट वरदान प्राप्त हुआ है। यह सुनकर अपने पिता द्वारा कहे गए वचनों को सम्मान देते हुए कुबेर अपनी पत्नी, पुत्र, मन्त्री, धन तथा वाहन आदि को लेकर अपने लङ्का निवास स्थान को छोड़कर चले गए।

अपने मंत्रियों एवं अनुजों के साथ बैठे हुए दशानन से प्रहस्त ने जाकर कहा—धनाध्यक्ष कुबेर के लङ्का छोड़ जाने के कारण वह नगरी सुनसान पड़ी है, अतः अब आपको हम लोगों

को साथ लेकर वहां रहते हुए धर्म का पालन करना चाहिए। प्रहस्त के यह कहने पर रावण अपने भाइयों तथा अनुयायियों को साथ लेकर लङ्का नगरी जा पहुंचा। कुबेर द्वारा परित्यक्त उस नगरी में बड़े-बड़े मार्ग भली-भांति बंटे हुए थे। जिस प्रकार देवराज इन्द्र स्वर्ग की गद्दी पर विराजमान थे, उसी प्रकार उस राक्षस रावण ने भी लङ्कापुरी के सिंहासन पर अपना अधिकार जमा लिया।

रावण का राजतिलक

स चाभिषिक्तः क्षणदाचरैस्तदा निवेशयामास पुरीं दशाननः ।
निकामपूर्णा च बभूव सा पुरी निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ।।450।।
धनेश्वरस्त्वथ पितृवाक्य गौरवान्नवेशयच्छशिविमलेगिरौपुरीम् ।
स्वलंकृतैर्भवनवरैर्षिभूषितां पुरंदरः स्वरिव यथामरावतीम् ।।451।।

तब राक्षसों ने रावण का राजतिलक किया और उसने लङ्का नगरी को बसाना प्रारंभ कर दिया। कुछ ही समय के पश्चात् वह लङ्कापुरी मेघों की तरह राक्षसों से भर गई। कुबेर ने अपने पिता की आज्ञा के अनुसार कैलाश पर्वत पर श्रेष्ठ और सजे हुए भवनों वाली 'अलकापुरी' नामक नगरी को बसाया, जो इन्द्रनगरी के समान सुंदर थी।

राक्षसेन्द्रोऽभिषिक्तस्तु भ्रातृभिः सहितस्तदा ।
ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्याः समचिन्तयत् ।।452।।
स्वसारं कालकेयाय दानवेन्द्राय राक्षसीम् ।
ददौ शूर्पणखां नाम विद्युज्जिह्वाय राक्षसः ।।453।।
अध दत्त्वा स्वयं रक्षो मृगयामटते स्म तत् ।
तत्रापश्यत् ततो राम मयं नाम दिते सुतम् ।।454।।
कन्यासहायं तं दृष्ट्वा दशग्रीवो निशाचरः ।
अपृच्छत् को भवानेको निर्मनुष्यमृगे वने ।।455।।
अनया मृगशावाक्ष्या किमर्थं सह तिष्ठसि ।
मयस्तदा ब्रवीद राम पृच्छन्तं तं निशाचरम् ।।456।।
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिदं तव ।
हेमा नामाप्सरास्तात श्रुतपूर्वा यदि त्वया ।।457।।
दैवतैर्मम सा दत्ता पौलोमीव शतक्रतोः ।
तस्यां सक्तमना ह्यासं दशवर्षशताम्यहम् ।।458।।
सा च दैवतकार्येण गता वर्षश्चतुर्दश ।
तस्याः कृते चहेमायाः सर्वं हेममयं पुरम् ।।459।।
वज्रवैदूर्य चित्रं च मायया निर्मितं मया ।
तत्राहमवसं दीनस्तया हीनः सुदुःखितः ।।460।।
तस्माद् पुराद् दुहितरं गृहीत्वा वनमागतः ।
इयं ममात्मजा राजंस्तस्याः कुक्षौ विवर्धिता ।।461।।

राज्याभिषेक के बाद राक्षसराज रावण अपने भाइयों के साथ वहां रहने लगा। इसके बाद उसे अपनी बहन शूर्पणखा के विवाह की चिन्ता हुई। उसने अपनी बहन का विवाह कालका के

पुत्र दानवेन्द्र जिसका नाम विद्युज्जित्व था, के साथ कर दिया। हे राम! विवाह हो जाने के बाद एक दिन रावण शिकार करने के लिए वन में गया। वहां पर उसने दिति के पुत्र मय को देखा। मय के साथ एक सुन्दर कन्या को देखकर रावण ने पूछा—आप कौन हैं जो इस मनुष्य तथा पशु हीन जंगल में रह रहे हैं? इस सुंदर कन्या के साथ आप इस वन में किस उद्देश्य के कारण रह रहे हैं? हे राम! रावण के यह पूछे जाने पर मय ने कहा—मैं आपको अपना संपूर्ण वृत्तांत सुनाता हूं। यदि आपने सुना है तो आपको ज्ञात होगा कि स्वर्ग में हेमा नाम की एक अप्सरा है। जैसे पुलोम दानव ने अपनी पुत्री इन्द्र को सौंप दी थी, उसी प्रकार देवताओं ने वह अप्सरा मुझे सौंप दी। उसमें आसक्त होकर मैं उस अप्सरा के साथ एक सहस्र वर्ष रहा। चौदह वर्ष हो गए वह देवताओं के कार्य हेतु स्वर्ग चली गई। मैंने उसके लिए एक संपूर्ण माया नगरी की स्थापना की है। वह नगरी मेरी माया से निर्मित, मणियों तथा हीरों द्वारा विचित्र शोभा से परिपूर्ण थी। अब तक मैं अपनी पत्नी के वियोग में उसी नगरी में रहा करता था। मैं उसी नगरी को छोड़कर अपनी कन्या के साथ इस वन में चला आया हूं। हे राजन! यह मेरी पुत्री है जो उसी की कोख से जन्मी है।

रावण का विवाह

भर्तारमनया सार्धमस्याः प्राप्तोऽस्मि मार्गितुम् ।
कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ।।462।।
कन्याहि द्वेकुले नित्यं संशये स्थाप्य तिष्ठति ।
पुत्रद्वयं ममाप्यस्यां भार्यायां सम्बभूव ह ।।463।।
मायावी प्रथमस्तात दुन्दुभिस्तदनन्तरः ।
एवं ते सर्वमाख्यातं यथातथ्येन पृच्छतः ।।464।।

त्वामिदानीं कथं तात जानीयां को भवानिति ।
एवमुक्तं तु तद् रक्षो विनीतमिदमब्रवीत् ।।465।।
अहं पौलस्त्यतनयो दशग्रीवश्च नामतः ।
मुनेर्विश्रवसो यस्तु तृतीयो ब्रह्मणोऽभवत् ।।466।।
एवमुक्तस्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानवः ।
महर्षेस्तनयं ज्ञात्वा मयो हर्षमुपागतः ।।467।।
दातुं दुहितरं तस्मै रोचयामास तत्र वै ।
करेण तु करं तस्या ग्राहयित्वा मयस्तदा ।।468।।
प्रहसन् प्राछ दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं वचः ।
इयं ममात्मजा राजन् हेमयाप्सरसा धृता ।।469।।
कन्या मन्दोदरी नामः पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ।
बाढमित्येव तं राम दशग्रीवोऽभ्यभाषत ।।470।।

मैं इसके लिए उपयुक्त पति की खोज कर रहा हूं। सम्मान की दृष्टि से कन्या का पिता होना बड़े दु:ख की बात है। पुत्री हमेशा दोनों कुलों को संशय में डाले रखती है। मेरी पत्नी ने दो पुत्रों को भी जन्म दिया था। हे तात! उनमें एक का नाम मायावी तथा दूसरे का नाम दुन्दुभि है। तुमने मेरे बारे में जो कुछ पूछा, वो मैंने तुमको बता दिया। हे तात! तुम कौन हो, यह मुझे कैसे पता चलेगा? मय के यह कहने पर राक्षसराज रावण ने विनीत भाव से कहा—मैं पुलस्त्य ऋषि के पुत्र विश्रवा का बेटा हूं। मेरा नाम दशग्रीव है। मुनिश्रेष्ठ पितामह ब्रह्माजी की तीसरी पीढ़ी में जन्मे हैं। हे राम! रावण के यह बताने पर वह दानव मय महर्षि विश्रवा के पुत्र से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने उसी समय रावण के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने का निश्चय कर लिया और अपनी पुत्री रावण को सौंप दी। मय मुस्कराते हुए रावण से बोला—हे राजन्! यह मेरी पुत्री है, जिसको अप्सरा हेमा ने अपने गर्भ में रखा था। आप 'मन्दोदरी' नामक इस कन्या को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण अर्थात् स्वीकार करें। हे राम! रावण ने मय की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत् पाणि संग्रहम् ।
सहितस्य मयो राम शापाभिज्ञस्तपोधनात् ।।471।।
विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम् ।
अमोघां तस्य शक्तिं च प्रददौ परमाद्भुताम् ।।472।।
परेण तपसा लब्धां जघ्निवांल्लक्षमणं यया ।
एवं स कृत्वा दारान वै लङ्काया ईश्वरः प्रभुः ।।473।।
गत्वा तु नगरीं भार्ये भ्रातृभ्यां समुपाहरत् ।
वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः ।।474।।
तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रावणः समकल्पयत् ।
गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ।।475।।
सरमां नाम धर्माज्ञां लेभे भार्यां विभीषणः ।
तीरे तु सरसो वै तु संजज्ञे मानसस्य हि ।।476।।

सरस्तदा मानसं तु ववृधे जलदागमे ।
मात्रा तु तस्याः कन्यायाः स्नेहेनाक्रन्दितं वचः ।।477।।
सरोमा वर्धयस्वेति ततः सा सरमाभवत् ।
एवं ते कृतदारा वै रेमिरे तत्र राक्षसाः ।।478।।
स्वां स्वां भार्यामुपादाय गन्धर्वा इव नन्दने ।
ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ।।479।।
सा एष इन्द्रजिन्नाम युष्माभिरभिधीयते ।
जातमात्रेण हि पुरा तेन रावणसूनुना ।।480।।
रुदता सुमहान् मुक्तो नादो जलधरोपमः ।
जडीकृता च सा लङ्का तस्य नादेन रावघ ।।481।।
पिता तस्याकरोन्नाम मेघनाद इति स्वयम् ।
सोऽवर्धत तदा राम रावणान्तःपुरे शुभे ।।482।।
रक्ष्यमाणो वरस्त्रीभिश्छन्नः काष्ठैरिवानलः ।
माता पित्रोर्महाहर्षं जनयन् रावणात्मजः ।।483।।

वहीं पर अग्नि प्रज्वलित करके मन्दोदरी का विवाह कर दिया। हे राम! मय दानव उस श्राप से परिचित था जो विश्रवा ने रावण को दिया था। फिर भी उसने अपनी कन्या रावण को ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न हुआ जानकर दे दी। साथ में उसने अपनी तपस्या द्वारा प्राप्त एक भयंकर शक्ति भी प्रदान कर दी जिसे बाद में उसने उसे लक्ष्मण पर चलाया था। इस प्रकार अपनी पत्नी को प्राप्त कर लङ्केश्वर अपनी नगरी में लौट आया और साथ में वह अपने भाइयों के लिए भी दो स्त्रियों का अपहरण कर लाया। वैरोचन नामक दैत्य की वज्रज्वाला नाम की दौहित्री थी। रावण ने उसे कुम्भकर्ण की पत्नी बनाया और गन्धर्वराज महात्मा शैलूष की कन्या 'सरमा' जो धर्म को जानने वाली थी, को विभीषण की पत्नी बनाया। वह कन्या मानसरोवर के तट पर उत्पन्न हुई थी। वर्षाऋतु के कारण उसके जन्म के समय मानसरोवर में जल का स्तर बढ़ने लगा था। उसकी माता ने उस समय अपनी पुत्री को रोता हुआ देखकर, मानसरोवर से यह कहना चाहा— 'सरो मा वर्धयस्व' अर्थात्—हे सरोवर! तुम अपने जल का स्तर मत बढ़ाओ! लेकिन वह जल्दी में 'सरःमा' कह गई, इसीलिए उसका नाम 'सरमा' पड़ गया। वे तीनों भाई अपनी पत्नियों के साथ कुशलतापूर्वक रहने लगे। जैसे गन्धर्व नन्दन वन में विहार करते थे, उसी तरह वह तीनों भाई भी लङ्कानगरी में अपनी पत्नियों के साथ विहार करने लगे। इसके पश्चात् मन्दोदरी ने पुत्र मेघनाद को जन्म दिया, जिसको हम सब 'इन्द्रजीत' के नाम से भी जानते हैं। रावण के उस पुत्र ने जन्म लेने के साथ ही बादलों के समान भयंकर शब्द किया था। हे राघव! उस आवाज को सुनकर संपूर्ण लङ्कापुरी स्तब्ध हो गई। तब उसके पिता रावण ने स्वयं ही उसका नाम 'मेघनाद' रख दिया। हे राम! रावण का वह बालक रावण के सुंदर अन्तःपुर में बढ़ने लगा। रावण का वह पुत्र श्रेष्ठ स्त्रियों से इस प्रकार सुरक्षित रहता था, जैसे काष्ठ के अंदर अग्नि सुरक्षित रहती है। उस पुत्र का जन्म होने से उसके माता-पिता को अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त हुई।

कुम्भकरण निद्रा में अभिभूत

अथ लोकेश्वरोत्सृष्टा तत्र कालेन केनचित् ।
निद्रा समभवत् तीव्रा कुम्भकर्णस्य रुपिणी ।।484।।
ततो भ्रातरमासीनं कुम्भकर्णोऽब्रवीद बचः ।
निद्रा मां बाधते राजन् कारयस्व ममालयम् ।।485।।
विनियुक्तास्ततो राज्ञा शिल्पिनो विश्वकर्मवत् ।
विस्तीर्णं योजनं स्तिग्धं ततो द्विगुणमायतम् ।।486।।
दर्शनीयं निराबाधं कुम्भकर्णस्य चक्रिरे ।
स्फाटिकैः काञ्चनैश्चित्रैः स्तम्भैः सर्वत्रशोभितम् ।।487।।
वैदूर्यकृतसोपानं किङ्किणीजालकं तथा ।
दान्ततोरणविन्यस्तं वज्रस्फटिकवेदिकम् ।।488।।
मनोहरं सर्वसुखं कारयामास राक्षसः ।
सर्वत्र सुखदं नित्यं मेरोः पुण्यां गुहामिव ।।489।।
तत्र निद्रां समाविष्टः कुम्भकर्णों महाबलः ।
बहून्यव्दसहस्राणि शयानो न च बुध्यते ।।490।।
निद्राभिभूते तु तदा कुम्भकर्णे दशाननः ।
देवर्षियक्षगन्धर्वान् संजघ्ने हि निरङ्कुशः ।।491।।
उद्यानानि विचित्राणि नन्दनादीनि यानि च ।
तानि गत्वा सुसंक्रुद्धो भिनत्ति स्म दशाननः ।।492।।
नदींगज इव क्रीडन् वृक्षान् वायुरिव क्षिपन् ।
नगान् वज्र इवोत्सृष्टो विध्वंसयति राक्षसः ।।493।।
तथावृतं तु विज्ञाय दशग्रीवं धनेश्वरः ।
कुलानुरूपं धमर्ज्ञो वृतं संस्मृत्य चात्मनः ।।494।।

कुछ समय के पश्चात् पितामह ब्रह्मा के वरदान द्वारा उत्पन्न निद्रा तीव्र वेग से कुम्भकर्ण के शरीर में उत्पन्न हुई। उस समय अपने पास बैठे हुए रावण से कुम्भकर्ण ने कहा—हे राजन्! मुझे नींद आ रही है, अतः आप मेरे लिए शयन-गृह का निर्माण करवाएं। यह सुनकर रावण ने विश्वकर्मा के समान कुशल कारीगरों को इस कार्य में लगा दिया। उन्होंने मिलकर दो योजन लंबा और एक योजन चौड़ा चिकना शयनगृह का निर्माण कर दिया जो देखने योग्य था। कुम्भकर्ण के सोने के लिए वह हर प्रकार से बाधाओं से परे था। उसमें स्वर्ण निर्मित तथा सर्वत्र स्फटिक स्तंभ सुशोभित थे। उसके अंदर घुंघरुओं वाली झालरें और नीलम-निर्मित सीढ़ियां थीं। उसके तोरण द्वार हाथी के थे। हीरे और स्फटिक मणि के चबूतरे थे। राक्षसों ने उसे सब प्रकार से सुखदायक और मनोहर बनाया था। वह सुमेरु पर्वत की पुण्यमयी गुफा की भांति सर्वत्र एवं नित्य सुखप्रद था। महाबली कुम्कर्ण (कुम्भकर्ण) उस स्थान पर जाकर सो गया। वह निरंतर कई सहस्र वर्षों तक सोता रहा और जागा नहीं। जब कुम्भकर्ण निद्रा में अभिभूत हो गया, तो उस समय रावण निरंकुश बनकर ऋषि, देवता, यक्ष एवं गन्धर्वों को कष्ट पहुंचाने लगा। रावण क्रोधित होकर नन्दन तथा देवताओं के उद्यानों में पहुंचकर उन्हें उजाड़ दिया करता था। वह दुष्ट-पापी राक्षस नदियों में हाथी के समान क्रीड़ा करता था। पर्वतों को इन्द्र द्वारा छोड़े गए वज्र की भांति तोड़ देता था तथा पेड़ों को वायु के समान उखाड़ देता था। रावण द्वारा किए गए इन अत्याचारों का

समाचार पाकर धर्मज्ञ कुबेर ने अपने स्वयं के कुल के अनुरूप व्यवहार का स्मरण करके—

सौभ्रात्रदर्शनार्थं तु दूतं वैश्रवणस्तदा ।
लङ्का सम्प्रेषयामास दशग्रीवस्य वै हितम् ।।495।।
स गत्वा नगरीं लङ्कामाससाद विभीषणम् ।
मानितंस्तेन धर्मेण पृष्टश्चागमनं प्रति ।।496।।
पृष्ट्वा च कुशलं राज्ञो ज्ञातीनां च विभीषणः ।
सभायां दर्शयामास तमासीनं दशाननम् ।।497।।
स दृष्ट्वा तत्र राजानं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
जयेति वाचा सम्पूज्य तूष्णीं समभिवर्तत ।।498।।
स तत्रोत्तमपर्यङ्के वरास्तरण शोभिते ।
उपविष्टं दशग्रीवं दूतो वाक्यमथाब्रवीत् ।।499।।
राजन् वदामि ते सर्वं भ्राता तव यद ब्रवीत् ।
उभयोः सदृशं वीर वृत्तस्य च कुलस्य च ।।500।।

रावण का हित करने की इच्छा से लङ्कापुरी में अपने एक दूत को भातृप्रेम का परिचय देने हेतु भेजा। उस दूत ने लङ्कानगरी में पहले पहुंचकर विभीषण से मुलाकात की। विभीषण ने धर्म के अनुसार उसका आदर-सत्कार किया तथा बाद में उससे वहां आने का कारण पूछा। फिर वह उससे अपने परिवार जनों की कुशलता का समाचार पूछ उसे राज्यसभा में लेकर जा पहुंचे और उसे वहां पर बैठे हुए रावण से मिलवाया। दूत ने देखा कि वह राक्षसेन्दु रावण अपने तेज से दीप्तिमान हो रहा है। महाराज की 'जय हो' कहने के बाद, वह दूत रावण के सामने काफी समय तक मौन खड़ा रहा। फिर अपने आसन के उत्तम बिछौने पर बैठे हुए दशानन से उस दूत ने कहा—हे राजन! आपके भाई ने जो कहलवाया है, अब वह मैं आपको बताता हूं—वीरों के कुलाचार तथा कर्तव्य, हम दोनों के लिए समान रूप से उपयुक्त हैं।

धर्मपालन की शिक्षा

साधु पर्याप्तमेतावत् कृत्यश्चारित्रसंग्रह ।
साधु धर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते ।।501।।
दृष्टं मे नन्दनं भग्नमृषयो निहताः श्रुताः ।
देवतानां समुद्योगस्त्वत्तो राजन् मया श्रुतः ।।502।।
निराकृतश्च बहुशस्त्वयाहं राक्षसाधिप ।
सापराधोऽपि बालो हि रक्षितव्यः स्वबान्धवैः ।।503।।
अहं तु हिमवत्पृष्ठं गतो धर्ममुपासितुम् ।
रौद्रं व्रतं समास्थाय नियतो नियतेन्द्रियः ।।504।।
तत्र देवोमया दृष्ट उमया सहितः प्रभुः ।
सव्यं चक्षुर्मया दैवात् तत्र देव्यां निपातितम् ।।505।।
कान्वेषेति महाराज न खल्वन्येन हेतुना ।
रूपं चानुपमं कृत्वा रुद्राणी तत्र तिष्ठति ।।506।।

देव्यादिव्य प्रभावेण दग्धं सव्यं ममेक्षणम् ।
रेणुध्वस्तामिव ज्योतिः पिङ्गलत्वमुपागतम् ।।507।।
ततोऽहमन्यद् विस्तीर्णं गत्वा तस्य गिरेस्तटम् ।
तूष्णीं वर्षशतान्यष्टौ समधारं महाव्रतम् ।।508।।
समाप्ते नियमे तस्मिंस्तत्र देवो महेश्वरः ।
ततः प्रीतेन मनसा प्राह वाक्यमिदं प्रभुः ।।509।।
प्रीतोऽस्मि तप धर्मज्ञ तपासानेन सुव्रत ।
मया चैतद् व्रतं चीर्णं त्वया चैव धनाधिपः ।।510।।

हे साधु! तुमने जो अब तक कार्य किए हैं, उतने ही बहुत हैं। अब तुम्हें धर्म का पालन करना चाहिए। यदि तुम धर्म का पालन कर सके हो तो, वही करो। तुमने अनेक ऋषियों को मार डाला है तथा तुमने नन्दन वन को उजाड़ दिया है, यह मैंने अपनी आंखों से देखा है। हे राजन! मैंने यह बात सुनी है कि देवतागण तुमसे बदला लेना चाहते हैं। तुमने कई बार मेरा भी अपमान किया है। लेकिन अपराध करने पर भी मैं तुम्हारी रक्षा करता हूं अर्थात् बन्धु-बान्धवों को अपने छोटे बालकों की रक्षा करनी चाहिए। इसलिए मैं तुम्हें यह उपदेश दे रहा हूं, जो तुम्हारे हित में है। मैं हिमालय की चोटी पर जितेन्द्रिय होकर भी 'रौद्रव्रत' की सम्पन्नता और धर्माचरण करने के लिए गया था। वहां मैंने प्रभु महादेवी सहित उमा भगवतीजी के दर्शन किए। उस समय अचानक मेरी बाईं नजर भगवती पार्वती पर जा पड़ी। हे महाराज! मैं तो केवल यह जानना चाहता हूं कि मैं कौन हूं? मेरे मन में कोई अशुभ विचार नहीं था।

भगवती पार्वती उस समय वहां पर अनुपम रूप धारण किए बैठी थीं। देवी के दिव्य तेज के कारण मेरी बाईं आंख जल गई और दूसरी आंख धूलि के समान भरी हुई पिङ्गलवर्ण की हो गई। उस समय मैंने दूसरे छोर पर जाकर आठ सौ वर्षों तक मौन रहकर उस महान् व्रत को धारण किया। उस व्रत के पूरा होने पर भगवान् शिव प्रकट हुए और मुझ पर अपनी प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए बोले—हे धर्मज्ञ, धनेश्वर! हे सुव्रत! मैं तुम्हारी घोर तपस्या से प्रसन्न हूं। इस व्रत का पालन पहली बार मैंने किया था तथा मेरे बाद तुमने किया है।

तृतीयः पुरुषो नास्ति यश्चरेद् व्रतमीदृशम् ।
व्रतं सुदुष्करं ह्येतन्मयैवोत्पादितं पुरा ।।511।।
तत्सखित्वं मया सौम्य रोचयस्व धनेश्वर ।
तपसा निर्जितश्चैव सखा भष ममानघ ।।512।।
देव्या दग्धं प्रभावेण यच्च सव्यं तवेक्षणम् ।
पैङ्गल्यं यदवाप्तं हि देव्या रूप निरीक्षणात् ।।513।।
एकाक्षपिङ्गली त्येव नाम स्थास्यति शाश्वतम् ।
एवं तेन सखित्वं च प्राप्यनुज्ञां च शङ्करात् ।।514।।
आगतेन मया चैवंश्रुतस्ते पापनिश्चयः ।
तदधर्मिष्ठ संयोगान्निवर्त कुल दूषणात् ।।515।।
चिन्त्यन्ते हि बधोपायः सर्षिसङ्घैः सुरैस्तव ।
एवमुक्तो दशग्रीवः कोपसंरक्तलोचनः ।।516।।
हस्तान् दन्तांश्च सम्पिष्य वाक्यमेतदुवाच ह ।

विज्ञातं ते मया दूत वाक्यं यत् त्वं प्रभाषसे ।।517।।
नैव त्वमसि नैवासौ भ्रात्रा येनासि चोदितः ।
हितं नैष ममैतद्धि ब्रवीति धनरक्षकः ।।518।।
महेश्वरसरिवत्वं तु मूढः श्रावयते किल ।
नैवेदं क्षमर्णामि यदेतद् भाषितं त्वया ।।519।।
यदेतावन्मया कालं दूतं तस्य तु मर्चितम् ।
न हन्तव्यो गुरुर्ज्येष्ठो मयायमिति मन्यते ।।520।।
तस्य त्विदानीं श्रुत्वा मे वाक्यमेषा कृता मतिः ।
त्रींल्लोकानपि जेष्यामि बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।।521।।
एतन्मुहूर्तमेवाहं तस्यैकस्य तु वै कृते ।
चतुरो लोकपालांस्तान् नयिष्यामि यमक्षयम् ।।522।।
एवमुक्वातु लङ्केशो दूतं खङ्गेन जघ्निवान् ।
ददौ भक्षयितुं ह्येनं राक्षसानां दुरात्मनाम् ।।523।।
ततः कृतस्वस्त्ययनो रथमारुह्य रावणः ।
त्रैलोक्यविजयाकांक्षी ययौ यत्र धनेश्वरः ।।524।।

तीसरा कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है जो यह व्रत कर सके। मैंने ही इस दुष्कर व्रत को पूर्वकाल में प्रकट किया था। अतः हे धनेश्वर! तुमको अब मेरे साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाना चाहिए। हे अनघ! तुमने मुझको अपनी तपस्या द्वारा जीत लिया है। अब तुमको मेरा मित्र बनना चाहिए। देवी को देखने के कारण उनके प्रभाव से तुम्हारी बाईं आंख जल गई थी तथा दाईं पिङ्गलवर्ण हो गई थी। अतः अब तुम्हारा 'एकाक्षपिङ्गली' नाम चिरस्थायी होगा। जब मैं शिवजी से मित्रता स्थापित करके तथा उनकी आज्ञा लेकर लौट रहा था, उस समय मैंने तुम्हारे पाप-पुण्य की बात सुनी। अब तुम अपने कुल को कलंकित करने वाले पाप कर्मों का मार्ग छोड़ दो क्योंकि देवतागण, ऋषियों के साथ मिलकर तुम्हारा वध करने का उपाय सोच रहे हैं।

दूत के यह कहने पर रावण के नेत्र क्रोध के कारण लाल हो गए। वह अपने दांतों को पीसते हुए तथा हाथों को मोड़ते हुए बोला—हे दूत! तू जो कुछ कहना चाहता है, उसका मतलब मैं समझ चुका हूं। अब न तो तू ही जीवित बच सकेगा और न ही वह भाई जिसने तुझको यहां भेजा है। वह मूर्ख शिवजी से मित्रता की बात मुझको डराने के लिए कह रहा है। तूने जो कुछ भी यहां कहा है, वह मेरे द्वारा माफ करने योग्य नहीं है। वह सब मेरे लिए असहनीय है। बड़े भाई को मारना नहीं चाहिए—यह बात सोचकर ही मैंने अभी तक कुछ नहीं किया। परंतु अब तेरे मुख द्वारा उनकी बातों को सुनकर मैंने यह निर्णय किया है कि मैं स्वयं अपने ही बल से तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करूंगा। कुबेर के इसी एक अपराध के कारण मैं अब इसी दशा में चारों लोकपालों को यमलोक में पहुंचा दूंगा। यह कहकर रावण ने अपनी तलवार निकालकर उस दूत के टुकड़े-टुकड़े कर दिए तथा उसका मृत शरीर दुरात्मा राक्षसों को खाने के लिए दे दिया। इसके पश्चात् रावण स्वस्तिवाचन करके तीनों लोकों पर विजय पाने के उद्देश्य से अपने रथ पर बैठकर उस स्थान की दिशा में चल दिया, जहां कुबेर रहते थे।

घमंड में चूर दशानन

ततः स सचिवैः सार्धं षड्भिर्नित्यबलोद्धतः ।
महोदर प्रहस्ताभ्यां मारीचशुकसारणैः ।।525।।
धूम्राक्षेण च वीरेणं नित्यं समरगर्द्धिना ।
वृतः सम्प्रययौ श्रीमान् क्रोधाल्लोकान् दहन्निव ।।526।।
पुराणि स नदीः शैलान् वनान्युपवनानि च ।
अतिक्रम्य मुहूर्तेन कैलासं गिरिमागमत् ।।527।।
सनिविष्टं गिरौ तस्मिन् राक्षसेन्द्रं निशम्य तु ।
युद्धेप्सुं तं कृतोत्साहं दुरात्मानं समन्त्रिणम् ।।528।।
यक्षा न शेकुः संस्थातुं प्रमुखे तस्य रक्षसः ।
राज्ञो भ्रातेति विज्ञाय गता यत्र धनेश्वरः ।।529।।
ते गत्वा सर्वमाचरव्युर्भ्रातुस्तस्य चिकीर्षितम् ।
अनुज्ञाता ययुर्हृष्टा युद्धाय धनदेन ते ।।530।।
ततो बलानां संक्षोभो व्यवर्धत इवोदधेः ।
तस्य नैर्ऋतराजस्य शैलं संचालयन्निव ।।531।।
ततो युद्धं समभवद् यक्षराक्षससंकुलम् ।
व्यथिताश्चाभवंस्तत्र सचिवा राक्षसस्य ते ।।532।।
सदृष्ट्वा तादृशं सैन्यं दशग्रीवो निशाचरः ।
हर्षनादान् बहून् कृत्वा स क्रोधादभ्यधावत ।।533।।
ये तु ते राक्षसेन्द्रस्य सचिवा घोर विक्रमाः ।
तेषां सहस्रमेकैको यक्षाणां समयोधयत् ।।534।।
ततो गदाभिर्मुसलैरसिभिः शक्तितोमरैः ।
हन्यमानो दशग्रीवस्तत्सैन्यं समगाहत ।।535।।

अपने बल के घमंड में हमेशा उद्धत रहने वाला रावण अपने छः मंत्रियों—प्रहस्त, मारीच, महोदर, सारण, शुक तथा धूम्राक्ष जो हमेशा युद्ध के लिए प्रस्तुत रहते थे—को साथ लेकर चल पड़ा। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह अपनी क्रोध रूपी अग्नि से सबको भस्म कर देगा। वह नदी, पर्वत, वन, उपवन और नगरों को लांघता हुआ कुछ ही क्षणों में कैलाश पर्वत जा पहुंचा। जब यक्षों को यह पता चला कि रावण अपने छः मन्त्रियों सहित, युद्ध के लिए तैयार होकर कैलाश पर्वत पर आ पहुंचा है, तो वे उस राक्षसराज रावण के समीप और सामने खड़े न हो सके। वे यह जानकर कि रावण हमारे राजा का भाई है, वहां चले गए जहां राजा कुबेर विराजमान थे। वहां पहुंचकर वे उनको रावण का वृत्तांत सुनाने लगे।

तब धनेश्वर ने उन्हें युद्ध करने की आज्ञा दे दी। यह सुनकर वे प्रसन्नता में भरकर युद्ध के लिए चले गए। उस समय कुबेर की सेना समुद्र की तरह क्षुब्ध होकर चल रही थी। उनके चलने के कारण वह पर्वत हिलता-सा लग रहा था। इसके बाद राक्षसों तथा यक्षों में घोर युद्ध हुआ, जिसकी वजह से रावण के सभी मन्त्रीगण व्याकुल हो गए। अपनी सेना की यह हालत देखकर

वह राक्षसराज रावण सिंह की भांति दहाड़ एवं क्रोधित होकर यक्षों की सेना की ओर दौड़ा। रावण के मन्त्रीगण बहुत पराक्रमी थे। उसका एक-एक मंत्री यक्षों के सहस्र-सहस्र सैनिकों से भिड़ गया। उस समय युद्ध क्षेत्र में तलवारों, गदा, मूसल, शक्ति एवं तोमरों की वर्षा हो रही थी। राक्षसराज रावण उन सबको सहता हुआ शत्रुओं की सेना में घुस गया।

स निरुच्छ्वासवत तत्र वध्यमानो दशाननः ।
वर्षद्भिरिव जीमूतैर्धाराभिरवरुध्यत ।।536।।
न चकार व्यथां चैव यक्षशस्त्रैः समाहतः ।
महीधर इवाम्भोदैर्धाराशत समुक्षितः ।।537।।
स महात्मा समुद्यम्य कालदण्डोपमां गदाम् ।
प्रविवेशः ततः सैन्यं नयन् यक्षान् यमक्षयम् ।।538।।
स कक्षमिव विस्तीर्णं शुष्केन्धनमिवाकुलम् ।
वातेनाग्निरिवादीप्तो यक्षसैन्यं ददाह तत् ।।539।।
तैस्तु तत्र महामात्यैर्महोदरशुकादिभिः ।
अल्पावशेषास्ते यक्षाः कृता वातैरिवाम्बुदा ।।540।।
केचित् समाहता भग्नाः पतिताः समरे क्षितौ ।
ओष्ठांश्च दशनैस्तीक्ष्णैरदशन् कुपिता रणे ।।541।।
श्रान्ताश्चान्योन्यमालिङ्गच भ्रष्टशस्त्रा रणाजिरे ।
सीदन्ति च तदा यक्षाः कूला इव जलेन हा ।।542।।
हतानां गच्छतां स्वर्गं युध्यतामथ धावताम् ।
प्रेक्षतामृषिसङ्घानां न बभूवान्तरं दिवि ।।543।।
भग्नास्तु तान् समालक्ष्य यक्षेन्द्रांस्तु महाबलान् ।
धनाध्यक्षो महाबाहुः प्रेषयामास यक्षकान् ।।544।।
एतस्मिन्नन्तरे राम विस्तीर्ण बलवाहनः ।
प्रेषितो न्यपतद् यक्षो नाम्ना संयोधकण्टकः ।।545।।

वहां पर उसे इतनी मार पड़ी कि वह सांस भी नहीं ले पाया। यक्षों ने मिलकर रावण के भयंकर वेग को रोक दिया। शत्रुओं का आघात होने पर भी रावण को उसी प्रकार कोई कष्ट का अनुभव नहीं हुआ, जिस प्रकार बादलों द्वारा भारी वर्षा करने पर भी पर्वत वहीं खड़ा रहता है। उस महाबलशाली-पराक्रमी रावण ने अपनी कालदण्ड तुल्य गदा उठाकर यक्ष सैनिकों को एक-एक करके यमलोक भेजना प्रारंभ कर दिया। जिस प्रकार वायु से सूखे ईंधन में अग्नि फैलती है, उसी प्रकार रावण ने तिनकों की तरह फैली यक्षों की सेना को जलाना प्रारंभ कर दिया। जिस तरह वायु मेघों को उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार रावण के महामात्यों ने यक्षों की सेना का संहार कर दिया।

इस प्रकार यक्ष बहुत कम संख्या में शेष बचे। अनेक यक्ष अपने प्राण गंवाकर युद्धक्षेत्र में धराशायी हो गए और अनेक अपने होंठों को दांतों से दबाए क्रोधित होकर खड़े रहे। कुछ सैनिकों के शस्त्र टूट गए और वे थककर एक-दूसरे से लिपट कर रह गए। उसके बाद युद्धक्षेत्र में उसी प्रकार गिर पड़े, जिस तरह जल के बहाव के कारण किनारे ध्वस्त हो जाते हैं। मृत्यु पाने के बाद स्वर्ग को जाते हुए, युद्ध करते हुए और युद्ध क्षेत्र से दौड़ते हुए राक्षसों को देखने के लिए आकाश

में ऋषियों के समूह इस प्रकार छा गए कि वहां खड़े होने के लिए जगह तक नहीं रही। महाबली यक्षराज कुबेर ने यक्षों को युद्ध क्षेत्र से भागता देखकर अत्यधिक महाबली यक्षों को युद्ध-क्षेत्र में लड़ने के लिए भेजा। हे राम! इसी समय कुबेर द्वारा भेजा गया 'संयोध कण्टक' नामक महाबली एवं पराक्रमी यक्ष युद्ध क्षेत्र में जा पहुंचा। उसके साथ बहुत से सैनिक तथा वाहन भी थे।

तेन चक्रेण मारीचो विष्णुनेव रणे हतः ।
पतितो भूतले शैलात् क्षीण पुण्य इव ग्रहः ।।546।।
संसज्ञस्तु मुहूर्तेन स विश्रम्य निशाचरः ।
तं यक्षं योधयामास स च भग्नः प्रदुद्रुवे ।।547।।
ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यरजतोक्षितम् ।
मार्यादां प्रतिहाराणां तोरणान्तरमाविशत् ।।548।।
तं तु राजन् दशग्रीवं प्रविशन्तम् निशाचरम् ।
सूर्यभानुरिति ख्यातो द्वारपालो न्यवारयत् ।।549।।
स वार्यमाणो यक्षेण प्रविवेश निशाचरः ।
यदा तु वारितो राम न व्यतिष्ठत् स राक्षसः ।।550।।
ततस्तोरणमुत्पाट्य तेन यक्षेण ताडितः ।
रुधिरं प्रस्रवन् भाति शैलो धातुस्रवैरिव ।।551।।
स शैलशिखराभेण तोरणेन समाहतः ।
जगाम न क्षतिं वीरो वरदानात् स्वयम्भुवः ।।552।।
तेनैव तोरणेनाथ यक्षस्तेनाभिताडितः ।
ना दृश्यत तदा यक्षो भस्मीकृत तनुस्तदा ।।553।।
ततः प्रदुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रक्षः पराक्रमम् ।
ततौ नदीर्गुहाश्चैव विविशुर्भयपीडिताः ।
त्यक्त प्रहरणाः श्रान्ता विवर्णवदनास्तदा ।।554।।

उसने युद्ध क्षेत्र में आते ही विष्णु की तरह मारीच पर चक्र से प्रहार किया। उसके आघात के कारण वह राक्षस पर्वत से उसी प्रकार गिर पड़ा, जिस तरह एक क्षीण ग्रह पृथ्वी पर गिर जाता है। दो घड़ी विश्राम करने के बाद वह राक्षस पुनः होश में आकर युद्धक्षेत्र में आ गया, जिसे देख वह यक्ष भाग खड़ा हुआ। रावण ने उस कुबेर पुरी में जिसके दरवाजे में नीलम और चांदी जड़े हुए थे तथा जहां द्वारपालों का पहरा था, प्रवेश किया। हे राजन्! जब वह राक्षसराज दशग्रीव उस दरवाजे के भीतर प्रवेश करने लगा तो उसे सूर्यभानु नामक द्वारपाल ने रोका। लेकिन जब वह राक्षस रोकने पर भी नहीं रुका, तो हे राम! उस द्वारपाल यक्ष ने एक खम्बे को उखाड़ कर रावण के ऊपर दे मारा। इस कारण उसके शरीर से रक्त इस प्रकार बहने लगा, जिस तरह किसी पर्वत से गेरू मिले जल का झरना बह रहा हो। पर्वत के सपान उस खम्बे के प्रहार से भी उस राक्षस रावण को कुछ नहीं हुआ। यह सब ब्रह्माजी के वरदान का परिणाम था। इसके पश्चात् रावण ने उसी खम्बे से उस द्वारपाल यक्ष को मारा जिसके कारण उसका शरीर चूर-चूर हो गया और उसका चेहरा तक दिखाई नहीं दिया। रावण के इस परम पराक्रम को देखकर यक्षगण भाग गए। कुछ यक्ष भय के कारण नदी में कूद पड़े तथा कुछ पर्वतों की गुफाओं में जा छिपे। सभी ने अपने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिए। उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गई तथा उनका शरीर शिथिल एवं

कमजोर हो गया।

यक्षों-असुरों में घमासान युद्ध

ततः स्तांल्लक्ष्य वित्रस्तान् यक्षेन्द्रांश्च सहस्रशः ।
धनाध्यक्षो महायक्षं माणिभद्रमथाब्रवीत ।।555।।
रावणं जहि यक्षेन्द्र दुवृत्तं पापचेतसम् ।
शरणं भव वीराणां यक्षाणां युद्धशालिनाम् ।।556।।
एवमुक्तो महाबाहुर्माणिभद्रः सुदुर्जयः ।
वृतो यक्षसहस्रैस्तु चतुर्भिः समयोधयत् ।।557।।
ते गदामुसलप्रासैः शक्तितोमरमुद्‌गरैः ।
अभिघ्नन्तस्तदा यक्षा राक्षसान् समुपद्रावन् ।।558।।
कुर्वन्तुस्तुमलं युद्धं चरन्तः श्येनवल्लघु ।
बाढं प्रयच्छ नेच्छामि दीयतामिति भाषिणः ।।559।।
ततो देवाः सगन्धर्वाः ऋषयो ब्रह्मवादिनः ।
दृष्ट्वा तत् तुमुलं युद्धं परं विस्मयमागमन् ।।560।।
यक्षाणां तु प्रहस्तेन सहस्रं निहतं रणे ।
महोदरेण चानिन्द्यं सहस्रमपरं हतम् ।।561।।
क्रुद्धेन च तदा राजन् मारीचेन युयुत्सुना ।
निमेषान्तर मात्रेण द्वे सहस्रे निपातिते ।।562।।

कुबेर ने जब यह देखा कि सहस्र यक्ष भयभीत होकर भाग रहे हैं तो उन्होंने 'माणिभद्र' नामक यक्ष से कहा—हे यक्षराज! पापी और दुवृत्त रावण को मारकर तुम वीर-श्रेष्ठ यक्षों की रक्षा करो। धनाध्यक्ष के यह कहने पर दुर्जेय माणिभद्र चार सहस्र यक्षों की सेना लेकर युद्ध क्षेत्र में जा पहुंचा। वे सभी यक्षश्रेष्ठ गदा, प्रास, मूसल, शक्ति, तोमर और मुद्‌गरों का प्रहार करते हुए राक्षसों की सेना पर टूट पड़े। वे गंभीर युद्ध करते हुए बाज की तरह युद्ध क्षेत्र में चारों ओर मंडराने लगे। उनमें से कोई कहता था कि 'मैं पीछे हटूंगा नहीं। मैं युद्ध करना चाहता हूं' तथा कोई कहता था 'अपने हथियार मुझे दे दो'। ऐसे भयंकर युद्ध को देखकर ब्रह्माजी, देवतागण, ऋषिगण तथा गन्धर्व आदि भी अत्यन्त आश्चर्यचकित रह गए। प्रहस्त नाम के राक्षस ने एक हजार यक्षों को मार डाला। महोदर राक्षस ने हजार यक्षश्रेष्ठों को यमलोक पहुंचा दिया। हे राजन! मारीच नामक राक्षस ने पलक झपकते ही दो सहस्र श्रेष्ठ यक्ष योद्धाओं को मार डाला।

क्व च यक्षार्जवं युद्धं क्व च मायाबलाश्रयम् ।
रक्षसां पुरुषव्याघ्र तेन तेऽभ्यधिका युधि ।।563।।
धूम्राक्षेण समागम्य माणिभद्रो महारणे ।
मुसलेनोरसि क्रोधात् ताडितो न च कम्पितः ।।564।।
ततो गदां समाबिध्य माणिभद्रेण राक्षसः ।
धूम्राक्षस्ताडितो मूर्ध्नि विह्वलः स पपात ह ।।565।।
धूम्राक्षं ताडितं दृष्ट्वा पतितं शोणितोक्षितिम् ।

अभ्यधावत संग्रामे माणिभद्रं दशाननः ।।566।।
संक्रुद्धमभिधावन्तं माणिभद्रो दशाननम् ।
शक्तिभिस्ताडयामास तिसृभिर्यक्षपुङ्गवः ।।567।।
ताडितो माणिभद्रस्य मुकुटे प्राहरद् रणे ।
तस्य तेन प्रहारेण मुकुटं पार्श्वमागतम् ।।568।।

हे पुरुषसिंह! कहां तो यक्षों का सामान्य युद्ध और कहां यह राक्षसों का माया युद्ध? अतः वे राक्षस अपनी माया शक्ति के कारण यक्ष योद्धाओं से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए। इस भयंकर महायुद्ध में 'धूम्राक्ष' राक्षस ने क्रोध में आकर माणिभद्र की छाती पर मूसल से गहरा प्रहार किया, लेकिन वह उससे तनिक विचलित नहीं हुए। इसके बाद माणिभद्र ने अपनी गदा उठाकर घुमाते हुए धूम्राक्ष के मस्तक पर दे मारी, जिसके प्रहार से वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। धूम्राक्ष को गदा का प्रहार खाकर पृथ्वी पर खून से लथपथ गिरा देखकर वह दशग्रीव रावण क्रोधित हो उठा। उसने माणिभद्र पर धावा बोल दिया। रावण को क्रोध से आग-बबूला देखकर माणिभद्र ने रावण के ऊपर तीन घोर शक्तियों का गहरा आघात किया। उस प्रहार की चोट खाकर रावण ने युद्धक्षेत्र में माणिभद्र के मुकुट पर गहरा प्रहार किया, जिसके कारण उसका मुकुट खिसककर एक तरफ हो गया।

रावण को उपदेश

ततः प्रभृति यक्षोऽसौ पार्श्वमौलिरभूत् किल ।
तसिस्तुं विमुखीभूते माणिभद्रे महात्मनि ।।569।।
संनादः सुमहान् राजंस्तस्मिन् शैले व्यवर्धत् ।।570।।
ततो दूरात् प्रददृशे धनाध्यक्षो गदाधरः ।
शुक्रप्रौष्ठपदाभ्यां च पद्मशङ्खसमावृतः ।।571।।
सदृष्ट्वा भ्रातरं संख्ये शापाद् विभ्रष्टगौरवम् ।
उवाच वचनं धीमान् युक्तं पैतामहे कुले ।।572।।
यन्मया वार्यमाणस्त्वं नावगच्छसि दुर्मतेः ।
पश्चादस्य फलं प्राप्य ज्ञास्यते निरयं गतः ।।573।।
योहि मोहाद् विषं पीत्वा नावगच्छति दुर्मतिः ।
स तस्य परिणामान्ते जानीते कर्मणः फलम् ।।574।।
दैवतानि च नन्दन्ति धर्मयुक्तेन केनचित् ।
येन त्वमीदृशं भावं नीतस्तच्च न बुद्धयसे ।।575।।
मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्यते ।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराज वशं गतः ।।576।।

तभी से वह यक्ष माणिभद्र 'पार्श्वमौलि' के नाम से सुप्रसिद्ध हुए। कुछ समय के पश्चात् वह महात्मा माणिभद्र भी युद्ध स्थल से भाग खड़े हुए। उस समय उस पर्वत पर हे राजन! राक्षसों की गर्जना चारों तरफ फैल गई। उसी क्षण गदाधारी कुबेर दूर से आते हुए दिखाई दिए। उनके साथ प्रौष्ठपद, शुक्र और शङ्ख नाम के योद्धा तथा मंत्री थे। ऋषि-मुनि के शाप के कारण शिष्टाचार

रहित भाई रावण को देखकर कुबेर ने अपने पिता के गौरव के अनुरूप रावण से इस प्रकार के शब्द कहे—हे दुर्बुद्धि! मेरे बार-बार मना किए जाने पर भी तुम नहीं मान रहे हो। जब आगे चलकर, तुम इन दुष्ट कर्मों के कारण नर्क में जाओगे, उस समय तुम्हें मेरी बात समझ में आएगी। जो दुष्ट बुद्धि वाला मोहवश विष पीकर भी उसे नहीं समझता, लेकिन उसका परिणाम सामने आने पर अपना कर्म-फल जान जाता है। तुम भले ही समझते हो कि तुम धर्म का पालन कर रहे हो, लेकिन तुम्हारे इन कर्मों से देवतागण प्रसन्न नहीं हैं—यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आ रही है। जो व्यक्ति देवता, अपने माता-पिता, आचार्य, ब्राह्मण आदि का अनादर करता है, वह यमराज को वशीभूत हो उसका फल भी भोगता है।

अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोऽर्जनम् ।
स पश्चात् तप्यते मूढो मृतो गत्वाऽऽत्मनो गतिम् ।।577।।
धर्माद् राज्यं धनंसौख्यंमधर्माद् दु:खमेव च ।
तस्माद् धर्मं सुखार्थाय कुर्यात् पापं विसर्जयेत् ।।578।।
पापस्यहि फलं दु:खं तद् भोक्तव्यमिहात्मना ।
तस्मादात्मापघातार्थं मूढः पापं करिष्यति ।।579।।
कस्यचिन्नह हि दुर्बुद्धेश्छन्दतो जायते मतिः ।
यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ।।580।।
ऋद्धिं रूपं बलं पुत्रान् वित्तं शूरत्वमेव च ।
प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः ।।581।।
एवं निरयगामी त्वं यस्य ते मतिरीदृशी ।
न त्वां समभिभाषिष्येऽसद्वृत्तेष्वेव निर्णयः ।।582।।
एवमुक्तास्ततस्तेन तस्यामात्याः समाहताः ।
मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुखा विप्रदुद्रुवुः ।।583।।
ततस्तेन दशग्रीवो यक्षेन्द्रेण महात्मना ।
गदयाभिहतो मूर्ध्नि न च स्यानात् प्रकम्पितः ।।584।।
ततस्तौ राम निघ्नन्तौ तदान्योन्यं महामृधे ।
न विह्वलो न च श्रान्तौ तावुभौ यक्षराक्षसौ ।।585।।

जो व्यक्ति इस समय अपने शरीर को तप का उपार्जन नहीं करता, वह मूर्ख व्यक्ति अपनी मृत्यु के पश्चात् अपने द्वारा किए गए पापों-दुष्कर्मों के फल प्राप्त कर पछताता है। राज्य, धन तथा सुख की प्राप्ति धर्म के कार्यों से होती है। अधर्म के कार्यों से केवल दु:ख ही प्राप्त होता है। अतः सुख प्राप्त करने के लिए अधर्म एवं पाप के मार्ग को त्याग कर, धर्म के क्षेत्र को अपनाना होता है। दुष्कर्मों का परिणाम दु:ख ही है और उसे स्वयं को ही भोगना पड़ता है। अतः जो व्यक्ति पाप तथा दुष्कर्म करता है, मानो वह कोई आत्मघात करता है। किसी भी दुर्बुद्धि वाले व्यक्ति को केवल अपनी इच्छा से ही उत्तम बुद्धि प्राप्त नहीं होती। वह जैसा काम करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। मनुष्य अपने द्वारा किए गए पुण्य कर्मों से ही बल, रूप, समृद्धि, पुत्र, धन तथा शौर्य आदि प्राप्त करता है। अतः यदि तुम ऐसे ही कार्य करते रहे तो तुम्हें नरक में जाने को स्थान मिलेगा।

कुबेर बोले—शास्त्रों का यह कहना है कि दुष्ट लोगों से बात तक नहीं करनी चाहिए, अतः मैं

तुमसे अब कुछ भी नहीं कहूंगा। इसी प्रकार की बातें कुबेर ने रावण के मंत्रियों से कहीं और इसके बाद उन पर शस्त्रों से घोर आघात किया। तब मारीच तथा अन्य सभी राक्षस युद्ध क्षेत्र से भाग खड़े हुए। महात्मा कुबेर ने राक्षसराज रावण पर गदा से प्रहार किया, लेकिन वह आघात खाने पर हिला तक नहीं। हे श्रीराम! परंतु उनमें एक दूसरे के साथ भयंकर युद्ध हुआ। दोनों एक-दूसरे पर भयंकर प्रहार करने लगे। लेकिन उन राक्षसों तथा यक्षों में से कोई भी न तो घबराया और न ही थका।

आग्नेयमस्त्रं तस्मै स मुमोच धनदस्तदा ।
राक्षसेन्द्रो वारुणेन तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ।।586।।
ततो मायां प्रविष्टोऽसौ राक्षसीं राक्षसेश्वरः ।
रूपाणं शतसाहस्रं विनाशाय चकार च ।।587।।
व्याघ्रो वराहो जीमूतपर्वतः सागरो द्रुमः ।
यक्षो दैत्यस्वरूपी च सोऽदृश्यत दशाननः ।।588।।
बहूनि च करोतिस्म दृश्यन्ते न त्वसौ ततः ।
प्रतिगृत्ह्य ततो राम महदस्त्रं दशाननः ।।589।।
जघान मूर्ध्नि धनदं व्याविद्ध्य महतीं गदाम् ।
एवं स तेनाभिहतो विह्वलः शोणितोक्षितः ।।590।।
कृत्तमूल इवाशोको निपपात धनाधिपः ।
ततः पद्माभिस्तत्र निधिभिः स तदा वृतः ।।591।।
धनदोच्छ्वासितस्तैस्तु वनमानीय नन्दनम् ।
निर्जित्य राक्षसेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमानसः ।।592।।
पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम् ।
काञ्चनस्तम्भसंवीतं वैदूर्यमणितोरणम् ।।593।।
मुक्ताजाल प्रतिच्छन्नं सर्वकालफलद्रुमम् ।
मनोजवं कामंगमं कामरूपं विहंगमम् ।।594।।
मणिकाञ्चन सोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ।
देवोपवाह्यमक्षय्यं सदा दृष्टिमनः सुखम् ।।595।।
बह्वाश्चर्यं भक्तिचित्रं ब्रह्मणा परिनिर्मितम् ।
निर्मितं सर्वकामैस्तु मनोहरमनुत्तमम् ।।596।।
न तु शीतं न चोष्णं च सर्वर्तुसुखदं शुभम् ।
स तं राजा समारुह्य कामगं वीर्यनिर्णितम् ।।597।।
जितं त्रिभुवनं मेने दर्पोत्सेकात् सुदुर्मतिः ।
जित्वावैश्रवणं देवं कैलासात् समवातरत् ।।598।।
स तेजसा विपुलमवाप्य तं जयं, प्रतापवान् विमलकिरीटहारवान् ।
रराज वै परमविमानमास्थितो, निशाचरः सदसि गतो यथानलः ।।599।।

तब कुबेर ने रावण पर आग्नेयास्त्र का प्रहार किया, लेकिन रावण ने वरुणास्त्र का प्रहार करके उसे शांत कर डाला। इसके पश्चात् उस मायावी राक्षस ने माया का सहारा लेकर, कुबेर का विनाश करने के लिए हजारों-सैकड़ों रूप धारण कर लिए। वह दशानन मेघ, पर्वत, वराह, व्याघ्र,

वृक्ष, सागर, यक्ष एवं दैत्य—इन सभी रूपों में दिखाई देने लगा। इस तरह रावण अपने अनेक रूपों को प्रकट कर रहा था, परंतु वह स्वयं दिखाई नहीं दे रहा था। हे राम! इसके बाद रावण ने अपने हाथ में एक महाअस्त्र लिया। उसने एक विशाल गदा उठाकर कुबेर के सिर पर जोर से दे मारी। इस प्रकार उस गदा के प्रहार के कारण कुबेर शोणित से नहीं उठे। वे धनाध्यक्ष कुबेर जड़ से कटे हुए पेड़ की तरह धरती पर आ गिरे। तब उस समय उन्हें पद्म आदि निधि-देवताओं ने उठाकर नन्दन वन में पहुंचाकर चैतन्य किया। इस तरह राक्षसराज रावण कुबेर पर विजय पाकर बहुत प्रसन्न था। उसने अपनी विजय के प्रमाण के लिए कुबेर के पुष्पक विमान को अपने कब्जे में ले लिया।

वह पुष्पक विमान वैदूर्य मणि के तोरणों तथा स्वर्ण स्तंभों से युक्त था। उसके भीतर सभी ऋतुओं के फल देने वाले वृक्ष लगे थे तथा वह मोतियों की जालियों से ढका हुआ था। वह विमान तीव्र मन की इच्छानुसार चलने वाला कामरूपी पक्षी था। वह विमान चालक की इच्छानुसार छोटा-बड़ा आकार धारण करने में सक्षम तथा सर्वत्र पहुंचाने वाली सक्षमता का था। उसमें तपे हुए सोने की वेदियां तथा मणि-जड़ित स्वर्ग की सीढ़ियां भी बनी हुई थीं। वह विमान देवताओं की तरह अविनाशी और मन को सुख एवं दृष्टि देने वाला था। उसकी दीवारों पर बहुत आश्चर्यजनक चित्र बने हुए थे जिन्हें विश्वकर्मा ने चित्रित किया था। वह सभी प्रकार की मनोवांछित तथा उत्तम वस्तुओं से युक्त था। वह न तो बहुत ठण्डा था और न ही बहुत गर्म था। वह हर प्रकार की ऋतु में कल्याणकारी तथा सुख प्रदान करने वाला था। उस इच्छागामी विमान को अपने पराक्रम तथा बल द्वारा जीतने पर वह दुर्मति रावण गर्व से इस प्रकार भर गया, जैसे उसने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली हो। कुबेर पर विजय प्राप्त करने के बाद रावण कैलाश पर्वत से नीचे उतरा। हारों और निर्मल किरीट से विभूषित वह प्रतापी राक्षस अपने बल तथा तेज द्वारा विजय प्राप्त करने के पश्चात् उस विमान पर बैठकर ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसे यज्ञमण्डप में साक्षात् अग्निदेव सुशोभित हों।

रावण की विजय

स जित्वा धनदं राम भ्रातरं राक्षसाधियः ।
महासेन प्रसूतिं तद् ययौ शरवणं महत् ।।600।।
अथापश्यद् दशग्रीवो रौक्मं शरवणं महत् ।
गभस्तिजालसंवीतं द्वितीयमिव भास्करम् ।।601।।
स पर्वतं समारुह्य कंचिद् रम्यवनान्तरम् ।
प्रेक्षतेपुष्पकं तत्र राम विष्टम्भितं तदा ।।602।।
विष्टब्धं किमिदं कस्मान्नागमत् कामगं कृतम् ।
अचिन्तयद् राक्षसेन्द्रः सचिवैस्तैः समावृतः ।।603।।
किंनिमित्तमिच्छया मे नेदं गच्छति पुष्पकम् ।
पर्वतस्योपरिष्ठस्य कर्मेदं कस्यचिद् भवेत् ।।604।।
ततोऽब्रवीत् तदा राम मारीचो बुद्धिकोविदः ।
नेदं निष्कारणं राजन् पुष्पकं यन्न गच्छति ।।605।।
अथवा पुष्पकमिदं धनदान्नान्यवाहनम् ।
अतो निस्पन्दमभवद् धनाध्यक्षविनाकृतम् ।।606।।
इति वाक्यान्तरे तस्य करालः कृष्णपिङ्गलः ।
वामनो विकटो मुण्डी नंदी ह्रस्वभुजो बली ।।607।।
ततः पार्श्वमुपागम्य भवस्यानुचरोऽब्रवीत् ।
नन्दीश्वरो वचश्चेदं राक्षसेन्द्रमशङ्कितः ।।608।।

हे राम! राक्षसराज रावण कुबेर पर विजय पाने के पश्चात् 'शंरवण' नामक उस विशाल वन में गया, जहां पर स्वामी कार्तिकेय का जन्म हुआ था। वहां पर पहुंच कर रावण ने शंरवण पर अपनी दृष्टि डाली। सूर्य की किरणों से व्यापित होने के कारण वह दूसरे सूर्य की तरह प्रतीत हो रहा था। हे राम! वहां पर एक पर्वत भी था, जिसके पास का जंगल अत्यन्त रमणीय था। जब रावण उस पर्वत पर चढ़ने को बढ़ा तो पुष्पक विमान की गति रुक गई। तब रावण अपने मन्त्रियों के साथ इस बात पर विचार करने लगा कि यह इच्छागामी विमान किस लिए रुक गया? वह कौन-सा कारण है कि यह विमान मेरी इच्छा होने पर भी नहीं चल रहा है। यह संभव है कि इस पर्वत पर कोई ऐसा व्यक्ति रहता हो जिसके क्रियाकलापों के कारण ऐसा हो रहा है।

हे राम! उस समय योग्य-बुद्धिमान रावण के मंत्री मारीच ने कहा—पुष्पक विमान आगे नहीं बढ़ रहा है, यह कोई कारण ही नहीं है राजन! यह संभव है कि पुष्पक कुबेर का वाहन होने के कारण तथा किसी अन्य का वाहन न होने से निश्चेष्ट हो गया है। इस बातचीत के बीच में ही कृष्ण-पिङ्गल वर्ण, अत्यन्त विशाल, विकट, वामन, छोटी भुजाओं वाले, मुण्डित मस्तक वाले तथा बलवान नन्दीश्वर वहां उनके पास आ खड़े हुए। शिव के अनुचर उन नन्दीश्वर ने निःशङ्क भाव से राक्षसराज रावण से इस प्रकार कहा।

निवर्तस्व दशग्रीव शैले क्रीडति शंकरः ।
सुपर्णनाग यक्षाणां देवगन्धर्वरक्षसाम् ।।609।।

सर्वेषामेव भूतानामगम्यः पर्वतः कृतः ।
इति नन्दि वचः श्रुत्वा क्रोधात्कम्पित कुण्डलः ।।610।।
रोषात् तु ताम्रनयनः पुष्पकादवरुह्य सः ।
कोऽयं शङ्कर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपागतः ।।611।।
सोऽपश्यन्नन्दिनं तत्र देवस्यादूरतः स्थितम् ।
दीप्तं शूलमवष्टभ्य द्वितीयमिव शङ्करम् ।।612।।
तं दृष्ट्वा वानरमुखमवज्ञाय स राक्षसः ।
प्रहासं समुचे तत्र सताये इव तोयदः ।।613।।
तं क्रुद्धो भगवान् नन्दी शङ्करस्यापरा तनुः ।
अक्रवीत् तत्र तद् रक्षो दशाननमुपस्थितम् ।।614।।
यस्माद् वानररूपं मामवज्ञाय दशानन ।
अशनीपातसंकाशमपहासं प्रमुक्तवान् ।।615।।
तस्मान्मद्वीर्यसंयुक्ता मद्रूपसमतेजसः ।
उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तप वानराः ।।616।।
नरवदंष्ट्रायुधाः क्रूर मनः सम्पातरंहसः ।
युद्धोन्मत्ता बलोद्रिक्ताः शैला इव विसर्पिणः ।।617।।
ते तव प्रबलं दर्पमुत्सेधं च पृथग्विधम् ।
व्यपनेष्यन्ति सम्भूय सहामात्यसुतस्य च ।।618।।
कि त्वदानीं मया शक्यं हन्तु त्वां हे निशाचर ।
न हन्तव्यो हतस्त्वं हि पूर्वमेव स्वकर्मभिः ।।619।।
इत्युदीरितवाक्ये तु देवे तस्मिन् महात्मनि ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्चयुता ।।620।।

हे दशग्रीव! तुम वापस लौट जाओ। भगवान् शंकर इस पर्वत पर क्रीड़ा कर रहे हैं। देव, गरुड़, नाग, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस और सभी अन्य प्राणियों का इस पर्वत पर पहुंचना अगम्य कर दिया गया है। नन्दीश्वर के इस वचन को सुनकर राक्षसराज रावण क्रोधित हो उठा तथा उसके कानों के कुण्डल हिलने लगे। क्रोध के कारण उसकी आंखें लाल हो गईं। इसके बाद उसने पुष्पक विमान से उतरकर कहा—यह शंकर कौन है? और वह पर्वत के मूल भाग पर जा पहुंचा। वहां उसने देखा कि भगवान् शिव से थोड़ी दूरी पर नन्दीश्वर दूसरे शिव के समान हाथ में चमकता हुआ शूल लिए खड़ा हुआ था। उसके वानर जैसे मुंह को देखकर राक्षसराज रावण ने मेघ के समान अवज्ञा भाव से हंसना शुरू कर दिया। तब भगवान शिव के दूसरे रूप नन्दी ने क्रोध में आकर अपने पास खड़े हुए दशानन से कहा—हे दशग्रीव! तूने मेरे जिस वानर रूप की अवज्ञा की है तथा वज्रपात की तरह घोर अट्टहास किया है, उस तरह के वानर रूप वाले शक्तिशाली और परम तेजस्वी वानर, तेरे कुल का विनाश करने के लिए उत्पन्न होंगे। हे क्रूर राक्षस! उनकी मन के समान गति होगी तथा नख एवं दांत ही उनके आयुध होंगे। वह युद्ध करने के लिए अत्यन्त शक्तिशाली, उन्मत्त और चलते-फिरते पर्वत के समान बृहदाकार होंगे। वे सब तेरे प्रबल घमंड को चूर-चूर कर देने वाले, तेरे पुत्रों तथा मंत्रियों को मृत्यु प्रदान करने वाले और तेरे विशालकायत्व को तुच्छ बनाने वाले होंगे। हे राक्षस! मैं तेरा अभी इसी समय वध करने की शक्ति

रखता हूं, लेकिन मैं तुझे मारूंगा नहीं, क्योंकि अपने दुष्ट कर्मों के कारण तू तो पहले से ही मरे के समान है। नन्दी महात्मा के यह कहने पर आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी और देवताओं की दुन्दुभियां बजने लगीं।

क्रुद्ध रावण

अचिन्तयित्वा स तदा नन्दिवाक्यं महाबलः ।
पर्वतं तु समासाद्य वाक्यमाह दशाननः ।।621।।
पुष्पकस्य गतिश्छिन्ना यत्कृते मम गच्छतः ।
तमिमं शैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते ।।622।।
केन प्रभावेण भवो नित्यं क्रीडति राजवत् ।
विज्ञातव्यं न जानीते भयस्थानमुपस्थितम् ।।623।।

एवमुक्त्वा ततो राम भुजान् विक्षिप्य पर्वते ।
तोलयामास तं शीघ्रं स शैलः समकम्पत ।।624।।
चालनात् पर्वतस्यैव गणदेवस्य कम्पिताः ।
चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ।।625।।
ततो राम महादेवो देवानां प्रवरो हरः ।

पादाङ्गुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया ।।626।।
पीडितास्तु ततस्तस्य शैलस्तम्भोपमा भुजाः ।
विस्मिताश्चाभवंस्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः ।।627।।

रावण ने महात्मा नन्दी की उन बातों पर ध्यान नहीं दिया तथा उस पर्वत के पास खड़े होकर बोला—हे गोपति! जिस पर्वत ने मेरी यात्रा के समय पुष्पक विमान की गति को रोक डाला, मैं अपने सामने खड़े उस पर्वत को जड़ से उखाड़ डालूंगा। शंकर किस प्रभाव के द्वारा यहां पर हर रोज राजा की तरह क्रीड़ा करते हैं? क्या उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि अब उनके लिए भय का कारण मौजूद है। हे राम! यह कहने के बाद रावण अपनी भुजाओं के निम्न भाग को पर्वत के निम्न भाग में लगाकर, उसे शीघ्रतापूर्वक उठाने लगा, जिसकी वजह से वह पर्वत हिलने लगा। पर्वत के हिलने के कारण शिवजी के सभी गण कांपने लगे तथा पार्वतीजी भी घबराकर शिवजी से लिपट गईं। हे श्रीराम! तब देवताओं में श्रेष्ठ माने जाने वाले शिवजी ने लीला करते हुए अर्थात् सहज भाव द्वारा अपने पांव के अंगूठे से उस पर्वत को थोड़ा दबा दिया। यह लीला देखकर उस राक्षस के मंत्री आश्चर्यचकित रह गए।

रक्षसा तेन रोषाच्च भुजानां पीडनात् तथा ।
मुक्तो विरावः सहसा त्रैलोक्यं येन कम्पितम् ।।628।।
मेनिरे वज्रनिष्पेषं तस्यामात्या युगक्षये ।
तदा वर्त्मसु चलिता देवा इन्द्रपुरोगमाः ।।629।।
समुद्राश्चापि संक्षुब्धाश्चलिताश्चापि पर्वताः ।
यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किमेतदिति चाब्रुवन् ।।630।।
तोषयस्व महादेवं नीलकण्ठ मुमापतिम् ।
तभृते शरणं नान्यं पाश्यामोऽत्र दशाननः ।।631।।
स्तुतिभिः प्रणतो भूत्वा तमेव शरणं व्रज ।
कृपालुः शङ्करस्तुष्टः प्रसादं ते विद्यास्यति ।।632।।

रावण अपने क्रोध तथा भुजाओं की घोर पीड़ा के कारण बहुत जोर से चिल्लाया, जिसकी आवाज से तीनों लोक कांप उठे। उसके मन्त्री समझे कि प्रलयकाल आने वाला है और वज्रपात होने वाला है। इन्द्र आदि अन्य सभी देवता भी उस समय विचलित हो गए। पर्वत हिलने लगे, समुद्र में क्षोभ उठने लगे, विद्याधर, यक्ष तथा सिद्ध आदि एक-दूसरे से पूछने लगे कि यह क्या हो रहा है? तत्पश्चात् रावण के मन्त्री इस प्रकार बोले—हे महाराज! अब आप उमापति, नीलकण्ठ महादेवजी को पूर्णतः संतुष्ट कीजिए। आपको उनके अलावा कोई भी शरण देने वाला नहीं है। स्तुतियों द्वारा आप उन्हें प्रणाम करते हुए उनकी शरण में जाइए। दयालु-कृपालु शंकर आप से संतुष्ट होकर आप पर अपनी कृपा कर सकते हैं।

रावण द्वारा शिव स्तुति

एवमुक्तस्तदामात्यैस्तुष्टाव वृषभध्वजम् ।
सामभिर्विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य स दशाननः ।
संवत्सरसहस्रं तु रुदतो रक्षसो गतम् ।।633।।

ततः प्रीतो महादेवः शैलाग्रे तिष्ठितः प्रभुः ।
मुक्त्वा चास्य भुजान् राम प्राह वाक्यं दशाननम् ।।634।।
प्रीतोऽस्मि तव वीरस्य शौटीर्याच्च दशानन ।
शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया रावः सुदारुणः ।।635।।
यस्माल्लोकत्रयं चैतद् रावितं भयमागतम् ।
तस्मात् त्वं रावणो नाम नाम्ना राजन् भविष्यसि ।।636।।
देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले ।
एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम् ।।637।।
गच्छ पौलस्त्य विस्रब्धं पथा येन त्वमिच्छसि ।
मया चैषाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ।।638।।
एवमुक्तस्तु लङ्केशः शम्भुना स्वयमब्रवीत् ।
प्रीतो यदि महादेवं वरं मे देहि याचतः ।।639।।

मंत्रियों द्वारा सलाह दिए जाने पर रावण ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए, उन्हें प्रणाम करके सामवेदोक्त स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति की। इस प्रकार अर्चना करते हुए रावण को एक सहस्र वर्ष बीत गए।

हे राम! तब महादेव प्रसन्न होकर, उस पर्वत के अग्रिम शिखर पर स्थित हुए तथा रावण की भुजाओं को मुक्त करके इस प्रकार बोले—हे दशानन! तुम वीर हो, मैं तुमसे अत्यंत प्रसन्न हूं। पर्वत द्वारा जब तुम दब गए थे और जब तुमने आर्तनाद किया था, जिससे तीनों लोकों के प्राणी रो उठे थे, तो हे राजन्! इस कारण तुम तीनों लोकों में 'रावण' के नाम से प्रसिद्ध होओगे। तुमने सभी लोकों को रुलाया है, इसलिए देवता, मनुष्य, यक्ष और अन्य लोग जो भी रहते हैं, वे सभी तुम्हें 'रावण' के नाम से पुकारेंगे। हे पुलस्त्यनन्दन! तुम जिस मार्ग से जाना चाहो, अब उस मार्ग से जा सकते हो। हे राक्षसेश्वर! अब मैं तुमको अपनी ओर से जाने की आज्ञा देता हूं। शिवजी के यह वचन कहने पर रावण उनसे बोला—हे महादेव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मैं आपसे वर की प्रार्थना करता हूं।

अवध्यत्वं मया प्राप्तं देवगन्धर्वदानवैः ।
राक्षसैर्गुह्यकैर्नागैर्य चान्ये बलवत्तराः ।।640।।
मानुषान् न गणे देव स्वल्पास्ते मम सम्मताः ।
दीर्घमायुश्च मे प्राप्तं ब्रह्मणस्त्रिपुरान्तक ।।641।।
वाञ्छितं चायुषः शेषं शस्त्रं त्वं च प्रयच्छ मे ।
एवमुक्तस्ततस्तेन रावणेन स शङ्करः ।।642।।
ददौ खड्गं महादीप्तं चन्द्रहासमिति श्रुतम् ।
आयुषश्चावशेषं च ददौ भूतपतिस्तदा ।।643।।
दत्त्वोवाच ततः शम्भुर्नावज्ञेयमिदं त्वया ।
अवज्ञातं यदि हि ते मामेवैप्यत्यसंशयः ।।644।।
एवं महेश्वरेणैव कृतनामा स रावणः ।
अभिवाद्य महादेवमारुरोहाथ पुष्पकम् ।।645।।
ततो महीतलं राम पर्यक्रामत रावणः ।

क्षत्रियान् सुमहावीर्यान् बाधमानस्ततस्ततः ।।646।।
केचित् तेजस्विनः शूराः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ।
तच्छासनमकुर्वन्तो विनेशुः सपरिच्छदाः ।।647।।
अपरे दुर्जयं रक्षो जानन्तः प्राज्ञसम्मताः ।
जितास्म इत्यभाषन्त राक्षसं बलदर्पितम् ।।648।।

मैंने गन्धर्व, देवता, दानव, राक्षस, नाग, गुह्यक तथा अन्य सभी बलवान् प्राणियों से अपराजित रहने का वर प्राप्त किया है। हे देव! मनुष्यों को मैं किसी गणना में नहीं गिनता, क्योंकि मेरे अनुसार वे सभी अल्पशक्तिशाली एवं बलहीन हैं।

हे त्रिपुरान्तक! ब्रह्माजी ने मुझे दीर्घायु भी प्रदान कर दी है। मैं अपनी व्यतीत आयु को पूर्णतः पाना चाहता हूं। अतः अब आप मुझे वह प्रदान कीजिए और साथ ही एक शस्त्र भी दीजिए। रावण के यह कहने पर शिवजी ने उसे आयु का जो अंश व्यतीत हो चुका था, वह लौटा दिया और एक अत्यन्त दीप्तिमान नामक 'चन्द्रहास' खड्ग भी प्रदान किया। उसके बाद शिवजी ने कहा—यदि तुमने कभी इस खड्ग का तिरस्कार किया तो यह पुनः मेरे पास लौट आएगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। शिवजी द्वारा एक नया नाम पाकर वह राक्षस महादेवजी का अभिवादन करता हुआ अपने पुष्पक विमान पर सवार हो गया। हे राम! फिर रावण ने पृथ्वी पर भ्रमण करना प्रारंभ कर दिया। वह महापराक्रमी यहां-वहां जाकर क्षत्रियों को कष्ट पहुंचाता रहता था। बहुत से तेजस्वी-शूरवीर क्षत्रिय उस राक्षस का कहना न मानने के कारण अपने परिवार तथा सेना सहित नष्ट हो गए। कई बुद्धिमान क्षत्रियों ने रावण को पराक्रमी एवं बलाभिमानी मानकर उसके समक्ष अपनी पराजय स्वीकार कर ली।

अथ राजन् महाबाहुर्विचिरन् पृथिवी तले ।
हिमवद्वनमासद्य परिचक्राम रावणः ।।649।।
तत्रापश्यत् स वै कन्यां कृष्णाजिन जटाधराम् ।
आर्षेण विधिना चैनां दीप्यन्तीं देवतामिव ।।650।।
स दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां कन्यां तां सुमहाव्रताम् ।
काम मोह परीतात्मा पप्रच्छ प्रहसन्निव ।।651।।
किमिदं वर्तसे भद्रे विरुद्धं यौवनस्य ते ।
नहिं युक्ता तवैतस्य रूपस्यैवं प्रतिक्रिया ।।652।।
रूपं तेऽनुपमं भीरु कामोन्मादकरं मृणाम् ।
न युक्तं तपसि स्थातुं निर्गतो ह्येष निर्णयः ।।653।।
कस्यासि किमिदं भद्रे कश्च भर्ता वरानने ।
येन सम्भुज्यसे भीरु स नरः पुण्यभाग भुवि ।।654।।
पृच्छतः शंस मे सर्वं कस्य हेतो परिश्रमः ।
एवमुक्ता तु सा कन्या रावणेन यशस्विनी ।।655।।
अब्रवीद् विधिवत् कृत्वा तस्या तिथ्यं तपोधना ।
कुशध्वजो नाम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभः ।।656।।
बृहस्पतिसुतः श्रीमान् बुद्धया तुल्यो बृहस्पतेः ।
तस्याहं कुर्वतो नित्यं वेदाभ्यासं महात्मनः ।।657।।

सभ्यूता वाङ्मयी कन्या नाम्ना वेदवती स्मृता ।
ततो देषाः सगन्धर्वा यक्षराक्षस पन्नगाः ।।658।।
ते चापि गत्वा पितरं वरणं रोचयन्ति मे ।
न च मां स पिता तेभ्यो दत्तवान् राक्षसेश्वर ।।659।।
कारणं तद् वदिष्यामि निशामय महाभुज ।
पितुस्तु मम जामाता विष्णुः किल सुरेश्वरः ।।660।।
अभि प्रेतस्त्रिलोकेशस्तस्मान्नान्यस्य मे पिता ।
दातुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा बलदर्पितः ।।661।।
शुम्भुर्नाम ततो राजा दैत्यानां कुपितोऽभवत् ।
तेन रात्रौ शयानो मे पिता पापेन हिंसितः ।।662।।
ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम ।
परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा द्रव्य वाहनम् ।।663।।
ततो मनोरथं सत्यं पितुर्नारायणं प्रति ।
करोमीति तमेवाहं हृदयेन समुद्वहे ।।664।।
इति प्रतिज्ञामारुह्य चरामि विपुलं तव ।
एतत् मे सर्वमाख्यातं मया राक्षसपुङ्गवः ।।665।।

हे राजन! महाबली रावण पृथ्वी पर भ्रमण करता हुआ, हिमालय के घने भयानक वन में जा पहुंचा और वहां भ्रमण करने लगा। रावण ने वहां पर एक कन्या को देखा जो कृष्णमृगचर्म और जटाएं धारण किए हुए थी। वह प्राचीन पद्धति के अनुसार तपस्या करती हुई, देवताओं के समान दीप्तिमान हो रही थी। उस रूपवती-महाव्रती कन्या को देखकर रावण कामातुर हो, अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूछने लगा—हे भद्रे! तुम अपने सौंदर्य एवं युवावस्था के विरुद्ध यह सब क्या कर रही हो? तुम्हारे इस सुंदर, दिव्य और मनमोहक रूप के लिए ऐसा आचरण करना ठीक नहीं है। हे भीरु! तुम्हारा अनुपम सौंदर्य रूप तो मनुष्यों को अर्थात् उनके मन में कामोन्माद की भावना उत्पन्न करने वाला है। मेरे अनुसार तुम्हारा तपस्या करना उचित नहीं है। हे भद्रे! तुम कौन हो तथा यह सब क्या कर रही हो? हे सुंदर मुख वाली! तुम्हारा पति कौन है? जिस किसी के साथ तुम्हारा संबंध होगा, वह मनुष्य पृथ्वी पर बहुत दयालु तथा पुण्यवान् होगा। मैं तुमसे जो कुछ पूछ रहा हूं, उसका मुझको सही उत्तर दो। तुम यह तप रूपी परिश्रम किसके लिए कर रही हो?

रावण के यह कहने पर उस यशस्वी और तेजस्विनी कन्या ने रावण का विधिवत् आतिथ्य करने के बाद कहा—मेरे पिता परम तेजस्वी ब्रह्मर्षि कुशध्वज थे। वे प्रतिदिन वेदाभ्यास किया करते थे। उन्हीं की वाङ्मयी कन्या के रूप में मेरा जन्म हुआ है। मेरा नाम वेदवती है। जब मैं वयस्क हो गई तो गन्धर्व, देवता, यक्ष, नाग, राक्षस—इन सभी ने वरण करने के लक्ष्य से मेरे पिताजी के पास जाकर मेरा हाथ मांगा। लेकिन हे राक्षसेश्वर! पिताजी ने मुझे उनमें से किसी के भी हाथ नहीं सौंपा। हे महाबलशाली रावण! इसका कारण भी मैं तुमको बताती हूं। मेरे पिताजी की यह इच्छा थी कि सभी देवताओं के स्वामी भगवान् विष्णुजी मेरे पति बनें। तीनों लोकों के स्वामी विष्णुजी के अलावा वह मेरा विवाह किसी अन्य के साथ नहीं करना चाहते थे। उनकी इस इच्छा को जानकर अपने बल के घमंड में चूर शम्भु नामक दैत्य ने क्रोध में आकर रात्रि में सोते

समय उनकी हत्या कर दी। इससे मेरी माता बहुत दुःखी हुईं तथा मेरे पिता के शव को अपनी छाती से लगाकर चिता की अग्नि में स्वयं प्रविष्ट हो गईं। तब से मैंने श्री नारायण के प्रति अपने पिता की जो इच्छा थी, उसे पूरा करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। अब मैंने उन्हीं को अपने हृदय में बसा लिया है। अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए मैं यह महान् तपस्या कर रही हूं। हे राक्षसश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने अपने बारे में आपको सभी बातें बता दीं।

नारायणो मम पतिर्न त्वन्यः पुरषोत्तमात् ।
आश्रये नियमं घोरं नारायण परीप्सया ।।666।।
विज्ञातस्त्वं हि मे राजन् गच्छ पौलस्त्यनन्दन ।
जानामि तपसा सर्वं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ।।667।।
सोऽब्रवीद् रावणो भूयस्तां कन्यां सुमहाव्रताम् ।
अवरुह्य विमानाग्रात् कन्दर्पशरपीडितः ।।668।।
अविलिप्तासि सुश्रोणि यस्यास्ते मतिरीदृशी ।
वृद्धानां मृगशावाक्षि भ्राजते पुण्यसंचयः ।।669।।
त्वं सर्वगुणसम्पन्ना नार्हसे वक्तुमीहशम् ।
त्रैलोक्य सुंदरी भीरु यौवनं तेऽतिवर्तते ।।670।।
अहं लङ्कापतिर्भद्रे दशग्रीव इति श्रुतः ।
तस्य मे भव भार्या त्वं भुङ्क्ष्व भोगान् यथा सुखम् ।।671।।
कश्चतावदसौ यं त्वं विष्णुरित्यभिभाषसे ।
वीर्येण तपसा चैव भोगेन च बलेन च ।।672।।

श्री नारायण ही मेरे पति हैं। उन पुरुषोत्तम के अलावा कोई अन्य मेरा पति नहीं बन सकता। श्री नारायण की आज्ञा द्वारा ही मैंने इस प्रकार का कठोर तप का आश्रय लिया है। हे राजन्! मैं आपको पहचानती हूं। हे पौलस्त्य नन्दन! इन तीनों लोकों में जो कुछ है या हो रहा है, उसे मैं अपनी तपस्या के बल से जानती या देखती हूं। काम-बाण से पीड़ित रावण यह सुनकर उस महान् व्रत का पालन करने वाली कन्या के अग्रभाग में खड़ा होकर बोला—हे सुन्दर कटिप्रदेश वाली! मुझे तुम अभिमानी लगती हो, इसीलिए तुम्हारी बुद्धि ऐसी हो गई है। हे मृगशावक नयनी! इस तरह पुण्य-संचय एवं तप करना वृद्ध स्त्रियों को शोभा देता है। तुम तो सभी गुणों से युक्त हो। तुमको इस तरह की बातें नहीं कहनी चाहिए। हे त्रैलोक्य सुन्दरी! हे भीरु! तुम्हारी अलौकिक युवावस्था बीतती जा रही है। हे भद्रे! मैं लङ्कापति हूं और तीनों लोकों में दशग्रीव नाम से प्रसिद्ध हूं। अतः तुम्हें मेरी पत्नी बनकर सुख देने वाले भोगों का उपभोग करना चाहिए। जिसे तुम विष्णु कहती हो, वह कौन है—तप, शक्ति, बल और भोग में।

वेदवती द्वारा आत्मदाह

स मया नो समे भद्रे यं त्वं कामयसेऽङ्गने ।
इत्युक्तवति तस्मिंस्तु वेदवत्यथ सा ब्रवीत ।।673।।
मा मैवमिति सा कन्या तमुवाच निशाचरम् ।
त्रैलोक्याधिपतिं विष्णुं सर्वलोक नमस्कृतम् ।।674।।

त्वदृक्षे राक्षसेन्द्रान्यः कोऽवमन्येत बुद्धिमान् ।
एवमुक्तस्तया तत्र वेदवत्या निशाचरः ।।675।।
मूर्धजेषु तदा कन्यां कराग्रेण परामृशत् ।
ततो वेदवती केशान् हस्तेन साच्छिनत् ।।676।।
असिर्भूत्वा करस्तयाः केशांश्छिन्नास्तदाकरोत् ।
सा ज्वलन्तीव रोषेण दहन्तीव निशाचरम् ।।677।।
उवाचाग्निं समाधाप मरणाय कृतत्वरा ।
धर्विताायास्त्वयानार्य न मे जीवितमिष्यते ।।678।।
रक्षस्तस्मात् प्रवेक्ष्यामि पृश्यतस्ते हुताशनम् ।
यस्मात् तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ।।679।।
तस्मात् तव वधार्थं हि समुत्यत्स्ये ह्यहं पुनः ।
न हिशक्यः स्त्रिया हन्तुः पुरुषः पापनिश्चयः ।।680।।
शापेत्वयि मयोत्सृष्टे तपसश्च व्ययो भवेत् ।
यदि त्वस्ति मया किंचित् कृतं दत्तं हुतं तथा ।।681।।
तस्मात् त्वयोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता ।
एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलितं जातवेदसम् ।।682।।
पपात च दिवो दिव्या पुष्पवृष्टिः समन्ततः ।
पुनरेव समुद्भूता पद्मे पद्मसमप्रभा ।।683।।
तस्मादपि पुनः प्राप्ता पूर्ववत् तेन रक्षसा ।
कन्या कमलगर्भाभां प्रगृह्य स्वगृहं ययौ ।।684।।
प्रगृह्य रावणस्त्वेतां दर्शयामास मन्त्रिणे ।
लक्षणज्ञो निरीक्ष्यैव रावणं चैवमब्रवीत् ।।685।।
गृहस्थैषा हि सुश्रोणी त्वद्वधायैव दृश्यते ।
एतच्छ्रुत्वार्णवे राम तां प्रचिक्षेप रावणः ।।686।।
सा चैवक्षितिमासाघ यज्ञायतनमध्यगा ।
राज्ञो हलमुखोत्कृष्टा पुनरप्युत्थिता सती ।।687।।

हे भद्रे! हे अङ्गने! जिसको तुम चाहती हो, वह मेरे समान नहीं है। रावण के यह कहने पर कन्या वेदवती बोली—नहीं, ऐसा मत कहिए। त्रैलोक्याधिपति श्री विष्णु के कमल चरणों में तीनों लोक अपना सिर झुकाते हैं। तुम्हारी तरह राक्षस के अलावा कोई और बुद्धिमान श्री विष्णु की अवहेलना नहीं कर सकता। यह सुनते ही राक्षसराज रावण ने वेदवती के केश अपने हाथों से पकड़ लिए। वेदवती ने क्रोधित होकर अपने हाथों से उन केशों को काट दिया। जैसे तलवार किसी वस्तु को काट देती है, उसी प्रकार उस कन्या ने अपने मस्तक के केशों को अपने हाथ से काट दिया। वह क्रोध के कारण स्वयं जलती हुई तथा रावण को जलाती हुई जलकर मरने के लिए तैयार हो गयी।
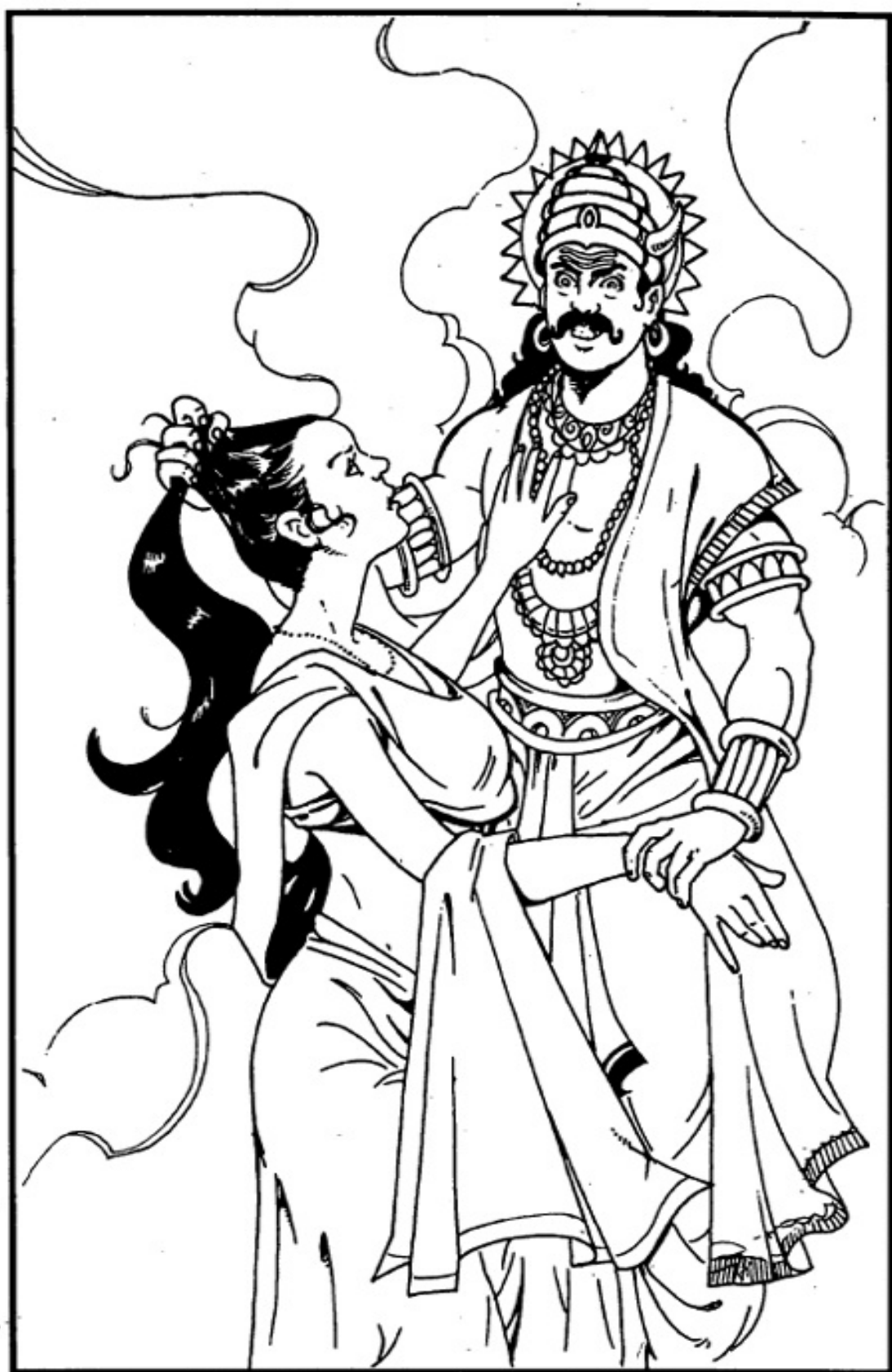
इस उद्देश्य के लिए वह अग्नि की स्थापना करके बोली—अरे नीच! तूने मेरा अपमान किया है, अतः अब मैं जीना नहीं चाहती। हे राक्षस! तेरी आंखों के सामने मैं अब अग्नि में प्रवेश करूंगी। हे पापी! तूने इस वन में मेरा घोर अपमान किया है। अतः मैं तुम्हारा वध करने के लिए दोबारा जन्म लूंगी। पापी-दुष्ट पुरुष का विनाश करने के लिए स्त्रियां शारीरिक रूप से अक्षम होती हैं। यदि मैं तुमको शाप दूंगी तो मुझे तपस्या में क्षीणता प्राप्त होगी। यदि मैंने कोई भी सुकर्म, दान-पुण्य तथा होम किए हैं तो अयोनिजा, सती-सावित्री कन्या के रूप में धर्मात्मा व्यक्ति की पुत्री बनकर पुनः प्रकट होऊंगी। यह कहने के पश्चात् वह कन्या प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर गई। उसी समय आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी।

दूसरे जन्म में वह कन्या एक कमल से उत्पन्न हुई। उस कन्या के शरीर की काठी, रूपरेखा भी कमल की तरह थी। पहले की तरह रावण ने उस कन्या को पुनः प्राप्त कर लिया तथा कमल के गर्भ की तरह सुंदर उस कन्या को अपने घर ले आया। जब रावण ने वह कन्या अपने मंत्रियों को दिखाई, तब उसको देखकर शारीरिक लक्षणों के ज्ञाता एक मंत्री ने रावण से कहा—यदि यह कन्या घर में रही तो आपकी मृत्यु का प्रमुख कारण बनेगी—ऐसा लगता है। हे राम! यह सुनने के पश्चात् वह उस कन्या को समुद्र में फेंक आया। तब वह कन्या पृथ्वी पर पहुंच कर राजा जनक के यज्ञ-मण्डप के मध्यभाग में पहुंच गई। फिर राजा द्वारा उस भूमि को हल से जोतने पर वह सती-सावित्री कन्या पुनः प्रकट हो उठी।

सीताजी का अवतरण

सैषा जनकराजस्य प्रसूता तनया प्रभो ।
तव भार्या महाबाहो विष्णुस्त्वं हि सनातनः ।।688।।
पूर्वं क्रोधहतः शत्रुर्ययासौ निहतस्तया ।
उपाश्रयित्वा शैलाभस्तव वीर्यममानुषम् ।।689।।
एवमेषा महाभागा मर्त्येषूत्पत्स्यते पुनः ।
क्षेत्रे हलमुखोत्कृष्टे वेद्यामग्निशिखोपमा ।।690।।
एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत् कृते युगे ।
त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य राक्षसः ।।691।।
उत्पन्ना मैथिल कुले जनकस्य महात्मनः ।
सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पनुरुच्यते ।।692।।

हे प्रभो! वह कन्या राजा जनक की पुत्री के रूप में प्रकट हुई। हे महाबाहो! अब वही कन्या आपकी पत्नी है। आप स्वयं ही श्री विष्णु हैं। उस महादुष्ट पर्वताकार राक्षस रावण को उस वेदवती ने पहले ही अपने क्रोधित शाप द्वारा मार डाला था जिसको आपने अब अद्भुत शक्ति के प्रहार से मारा है। हे महाभाग! इस प्रकार वह देवी बार-बार विभिन्न रूपों में राक्षसों का विनाश करने के लिए जन्म लेती रहेगी। अग्निशिखा के समान उस देवी का आविर्भाव हल द्वारा जोते गए क्षेत्र में हुआ है। यह देवी पूर्वकाल में वेदवती के नाम से जन्मी थी। उसके बाद त्रेतायुग में रावण का वध करने के लिए प्रकट हुई। वह मैथिल-कुल में उत्पन्न महात्मा जनक के घर में जन्मी

है। हल जोतने से भूमि पर बनी रेखा के कारण मनुष्य इसे 'सीता' कहकर पुकारते हैं।

प्रविष्टामां हुताशं तु वेदवत्यां स रावणः ।
पुष्पकं तु समारुह्य परिचक्राम मेदिनीम् ।।693।।
ततो मरुत्तं नृपतिं यजन्तं सह देवतैः ।
उशीर बीजमासाद्य ददर्श स तु रावणः ।।694।।
सवर्तोनाम ब्रह्मर्षिः साक्षाद् भ्राता वृहस्पतेः ।
याजयामास धर्मज्ञः सर्वैदेवगणैर्वृतः ।।695।।
दृष्ट्वा देवास्तु तद् रक्षो वरदानेन दुर्जयम् ।
तिर्यग्योनिं समाविष्टास्त धर्षणभीखः ।।696।।
इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः ।
कृकलासो धनाध्यक्षो हंसश्च वरुणोऽभवत् ।।697।।
अन्वेष्वपि गतेष्वेवं देवेष्वरिनिषूदन ।
रावणः प्राविशद् यज्ञं सारमेव इवाशुचिः ।।698।।
तं च राजानमासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ।
प्राह युद्धं प्रयच्छेति निर्जितोऽस्मीति वा वद ।।699।।
ततो मरुत्तो नृपतिः को भवानित्युवाच तम् ।
अवहासं ततो मुक्त्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।।700।।

उस कन्या वेदवती के अग्नि में प्रवेश कर जाने के बाद रावण पुष्पक विमान पर सवार होकर पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा। उस समय रावण ने 'उशीर बीज' नामक देश में पहुंचकर, राजा मरुत को यज्ञ करते हुए देखा। देवताओं के साथ साक्षात् बृहस्पति के भाई और धर्म के परम ज्ञाता 'संवर्त' नामक ब्रह्मर्षि यज्ञ करा रहे थे। वरदान प्राप्त करने के कारण क्रूर तथा दुष्ट बने राक्षसराज रावण को देखकर वे भी भयभीत हो गए तथा पक्षियों की योनि में प्रवेश कर गए। धर्मराज कौआ बन गए, इन्द्र मोर बन गए, वरुण हंस बन गए और कुबेर गिरगिट बन गए। हे देव शत्रु-नाशक! अन्य देवता भी विभिन्न रूपों में स्थित हो गए। रावण उस यज्ञ-मण्डप में इस प्रकार घुसा, जैसे कोई बिन बुलाया अपवित्र कुत्ता घुस आया हो। रावण ने राजा मरुत के पास जाकर कहा—या तो तुम मुझसे युद्ध करो, या कह दो कि तुम मुझसे हार गए हो। उस समय राजा मरुत ने रावण से कहा—आप कौन हैं जो इस प्रकार की बातें कह रहे हैं? उनके प्रश्न को सुनकर रावण जोर-जोर से हंसते-हंसते इस प्रकार कहने लगा—

राजा मरुत पराजित

अकुतूहलभावेन प्रीतोऽस्मि तव पार्थिव ।
धनदस्यानुजं यो मां नावगच्छसि रावणम् ।।701।।
त्रिषु लोकेषु कोऽन्योऽस्ति यो न जानाति मे बलम् ।
भ्रातरं येन निर्जित्य विमानमिदमाहृतम् ।।702।।
ततो मरुत्तः स नृपस्तं रावणमथा ब्रवीत ।
धन्यः खलु भवान् येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जितः ।।703।।

न त्वया सदृशः श्लाघ्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
कं त्वं प्राक्केवलं धर्मं चरित्वा लब्धवान् वरम् ।।704।।
श्रुतपूर्वं हि न मया भाषसे यादृशं स्वयम् ।
तिष्ठेदानीं न मे जीवन् प्रतियास्यसि दुर्मते ।।705।।
अद्य त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।
ततः शरासनं गृह्य सायकांश्च नराधिपः ।।706।।
रणाय निर्दयौक्रुद्धः संवर्तो मार्गमावृणोत् ।
सोऽब्रवीत् स्नेह संयुक्तं मरुत्तं तं महानृषिः ।।707।।
श्रोतव्यं यदि मद्वाक्यं सम्प्रहारो न ते क्षमः ।
माहेश्वरमिदं सत्रमसमाप्तं कुलं दहेत् ।।708।।
दीक्षितस्य कुतो युद्धं क्रोधित्वं दीक्षिते कुतः ।
संशयश्च जये नित्यं राक्षसश्च सुदुर्जयः ।।709।।
स निवृत्तो गुरोर्वाक्यान्मरुत्तः पृथिवीपतिः ।
विसृज्य स शरं चापं स्वस्थोरवमुखोऽभवेत् ।।710।।

मुझे देखकर न तो तुम्हें डर लगा और न ही तुमको कोई आश्चर्य हुआ, यह देखकर मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। मैं तो कुबेर का छोटा भाई हूं, फिर भी तुम मुझको नहीं जानते? मैं वही रावण हूं जिसने कुबेर पर विजय प्राप्त करने के बाद उससे यह विमान हथिया लिया है। यह सुनने के पश्चात् राजा मरुत रावण से बोले—आप धन्य हैं जो आपने युद्ध में अपने बड़े भाई को हरा दिया है। आपकी तरह पराक्रमी तथा प्रशंसनीय व्यक्ति तो तीनों लोकों में कहीं पर भी नहीं मिलेगा। पूर्वकाल में तुमने किस प्रकार के धर्म का पालन करने से वरदान प्राप्त कर लिया था? हे दुष्ट बुद्धि वाले! जैसा तुमने कहा है, वैसा मैंने पहले कभी भी नहीं सुना है। तुम यहीं पर खड़े रहो। मेरे हाथों के चंगुल से तुम जीवित नहीं बच सकते। आज मैं तुमको अपने तीक्ष्ण बाणों के वार से यमलोक पहुंचा दूंगा।

यह कहने के पश्चात् राजा मरुत ने अपना धनुष-बाण उठा लिया। जैसे ही वह क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए आगे बढ़े, वैसे ही महर्षि संवर्त ने उनका मार्ग रोक लिया। उन्होंने स्नेहपूर्वक मरुत से कहा—यदि मेरा कहना मानो तो तुम्हारे लिए युद्ध करना उचित नहीं है। यदि यह 'महेश्वर यज्ञ' अधूरा रह गया तो तुम्हारे संपूर्ण कुल को भस्म कर देगा। क्रोध करने वाला व्यक्ति कैसे दीक्षित हो सकता है? यज्ञ में दीक्षित व्यक्ति के लिए युद्ध उचित नहीं है? यह राक्षसराज रावण बहुत दुष्ट और निर्दयी है तथा युद्ध में किसकी विजय होगी, यह भी कहना मुश्किल है। गुरु के मुख द्वारा यह वचन सुनकर राजा मरुत ने युद्ध करने के अपने विचार को त्याग दिया।

ततस्तं निर्जितं मत्वा घोषयामास वै शुकः ।
रावणो जयतीत्युच्चैर्हर्षान्नांद विमुक्तवान् ।।711।।
तान् भक्षयित्वा तत्रस्थान् महर्षीन् यज्ञमागतान् ।
वितृप्तो रुधिरैस्तेषां पुनः सम्प्रययौ महीम् ।।712।।
रावणे तु गते देवाः सेन्द्राश्चैव दिवौकसः ।
ततः स्वां योनिमासाद्य तानि सत्त्वार्तन चाब्रुवन् ।।713।।
हर्षात् तदा ब्रवीदिन्द्रो मयूरं नीलवर्हिणम् ।

प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ भुजङ्गाद्धि न ते भयम् ।।714।।
इदं नेत्र सहस्रं तु यत् दत् बर्हे भविष्यति ।
वर्षमाणे मयि मुदं प्राप्स्यसे प्रीतिलक्षणाम् ।।715।।
एवमिन्द्रो वरं प्रादान्मयूरस्य सुरेश्वरः ।।716।।
नीलाः किल पुरा बर्हा मयूराणां नराधिय ।
सुराधिपाद्वरं प्राप्य गताः सर्वेऽपि बर्हिणः ।।717।।

राजा मरुत को हारा हुआ मानकर शुक ने रावण के विजयी होने की घोषणा कर दी तथा वह बहुत ऊंचे स्वर में गाने लगा। इसके बाद रावण उस यज्ञ में बैठे हुए ऋषियों को खाकर तथा उनके रक्त को पीकर पूर्ण रूप से तृप्त होकर, पुनः पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा। रावण के चले जाने के बाद इन्द्रादि अन्य देवता पुनः अपने वास्तविक रूप में आ गए। जिन प्राणियों का उन्होंने रूप धारण किया था, उनको इन्होंने वरदान दिया। सर्वप्रथम इन्द्र ने नील वर्ण पंखों वाले मोर से कहा—हे धर्मज्ञ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूं। अब तुमको सर्पादि से कोई भय नहीं रहेगा। तुम्हारे पंखों में मेरी सहस्र आंखों की तरह चिह्न प्रकट होंगे। जब मैं आकाश द्वारा वर्षा करूंगा, उस समय तुम्हें बहुत प्रसन्नता होगी।

इस तरह इन्द्र ने मोर को वरदान दिया। हे राम! वरदान प्राप्त करने से पहले मोरों के पंख केवल नीले रंग के होते थे। देवराज इन्द्र से यह वरदान प्राप्त करके सभी मोर वहां से चले गए।

धर्मराजोऽब्रवीद राम प्राग्वंशे वायसं प्रति ।
पक्षिं स्तवास्मि सुप्रीतः प्रीतस्य वचनं शृणु ।।718।।
यथान्ये विविधै रोगैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया ।
ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न संशयः ।।719।।
मृत्युतस्ते भयं नास्ति वरान् मम विहंगम ।
यावत् त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद् भविष्यसि ।।720।।
ये च मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुधयार्दिताः ।
त्वपि भुक्ते सुतृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ।।721।।
वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गा तोय विचारिणम् ।
श्रूयतां प्रीति संयुक्तं वचः पत्ररथेश्वरः ।।722।।

हे राम! धर्मराज ने प्राग्वंश (यज्ञशाला के पूर्व भाग में निर्मित यजमान और उसकी पत्नी के निवास स्थान पर) स्थित कौए से कहा—मैं तुमसे बहुत अधिक प्रसन्न हूं, अतः अब तुम ध्यानपूर्वक मेरी बात को सुनो। जिस तरह विभिन्न प्राणी मेरे द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों से पीड़ित रहते हैं, उसी तरह तुम उन रोगों से पीड़ित नहीं रहोगे। इसमें कोई सन्देह नहीं। मेरे द्वारा तुम्हें दिए गए वरदान से यह संभव होगा। तुम्हें मेरे वरदान की वजह से मृत्यु का भय नहीं रहेगा। जब तक कोई मनुष्य तुम्हारी हत्या नहीं करेगा, तुम जीवित रहोगे। यमलोक में रहने वाले क्षुधार्त मनुष्यों को उस समय ही चरम तृप्ति प्राप्त होगी; जब पृथ्वी लोक निवासी तथा उनके बन्धु तुम्हें भोजन करवाएंगे। इसके पश्चात् वरुण ने गंगाजल में भ्रमण करते हुए हंस से इस प्रकार कहा—हे पक्षिराज! मेरे द्वारा कहे जाने वाले वचनों को सुनो।

वर्णो मनोरमः सौम्यश्चन्द्रमण्डलसंनिभः ।

भविष्यति तपोदग्रः शुद्धफेनसमप्रभः ।।723।।
मच्छरीरं समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि ।
प्राप्स्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ।।724।।
हंसानां हि पुरा राम न वर्णः सर्वपाण्डुरः ।
पक्षा नीलाग्रसंवीता, क्रीडाः शष्पाग्रनिर्मलाः ।।725।।
अथाब्रवीद वैश्रवणः कृकलासं गिरौस्थितम् ।
हैरण्यं सम्प्रयच्छामि वर्णं प्रीतस्तवाप्यहम् ।।726।।
सद्रव्यं च शिरो नित्यं भविष्यति तवाक्षयम् ।
एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ।।727।।
एवं दत्त्वा वरांस्तेभ्यस्तस्मिन् यज्ञोत्सवे सुराः ।
निवृत्ते सह राज्ञा ते पुनः स्वभवनं गताः ।।728।।

तुम्हारे शरीर का रंग चन्द्रमा के समान सुंदर और दुग्धफेन की भांति मनोरम होगा। मेरे अङ्गभूत जल का आश्रय पाकर तुमको सदैव अनुपम प्रसन्नता प्राप्त होगी। तुम हमेशा कान्तिमान् बने रहोगे। यह मेरी प्रसन्नता को दर्शाने का चिह्न है। हे राम! हंसों का रंग पूर्वकाल में पूर्णतया सफेद नहीं था। उनकी दोनों टांगों के बीच का भाग नवीन दूर्वादल की तरह कोमल और श्याम रंग का होता था। उनके पंखों के आगे का भाग नीला होता था। इसके पश्चात् पर्वत पर बैठे हुए गिरगिट से कुबेर ने कहा—मैं तुमसे प्रसन्न होकर तुम्हें सोने के समान सुंदर रंग प्रदान करता हूं। तुम्हारा मस्तक सदैव सोने की तरह चमकदार तथा अक्षय होगा। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं, इसलिए तुम्हारा यह वर्तमान काला रंग सुनहरे रंग में परिवर्तित हो जाएगा। इस तरह उन सभी को वरदान देने के पश्चात् वे सभी देवता राजा मरुत के साथ यज्ञोत्सव समाप्त हो जाने पर अपने लोक को चले गए।

रावण अयोध्या में

अथ जित्वा मरुत्तं स प्रययौ राक्षसाधिपः ।
नगराणि नरेन्द्राणां युद्धकांक्षी दशाननः ।।729।।
समासाद्य तु राजेन्द्रान् महेन्द्र वरुणोपमान् ।
अब्रवीद् राक्षसेन्द्रस्तु युद्धं मे दीयतामिति ।।730।।
निर्जिताः स्मेति वा ब्रूत एष मे हि सुनिश्चयः ।
अन्यथा कुर्वतामेवं मोक्षो नैवोपपद्यते ।।731।।
ततस्त्वभीरवः प्राज्ञाः पार्थिवा धर्मनिश्चयाः ।
मन्त्रयित्वा ततोऽन्योन्यं राजानः सुमहाबलाः ।।732।।
निर्जिताः स्मेत्यभाषन्त ज्ञात्वा वरबलं रियोः ।।733।।
दुष्यन्तः सुरथो गाधिर्गयो राजा पुरूरवाः ।।734।।
एते सर्वेऽब्रुवंस्तात निर्जिताः स्मेति पार्थिवाः ।।735।।
अथायोध्यां समासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ।।736।।
सुगुप्तामनरण्येन शक्रेणेवामरावतीम् ।

स तं पुरुषशार्दूलं पुरंदर समं बले ।।737।।

मरुत को हराने के बाद रावण अन्य राजाओं को जीतने का उद्देश्य लेकर उनके नगरों में गया। महेन्द्र तथा वरुण की तरह शक्तिशाली और पराक्रमी राजाओं के पास जाकर रावण ने उनसे कहा—या तो तुम मुझसे युद्ध करो या फिर तुम यह कह दो कि हम हार गए। इसके विरुद्ध जाने पर तुम्हें मुझसे छुटकारा नहीं मिलेगा। तब बुद्धिमान-धर्मज्ञ राजाओं ने आपस में विचार-विमर्श करके शत्रु की शक्ति को परखने के पश्चात् कहा—हम तुमसे हार गए हैं। सुरथ, गाधि, गय, दुष्यन्त तथा पुरुरवा राजाओं ने अपने-अपने राज्य काल में रावण से अपनी हार मानी थी। इसके पश्चात् रावण अयोध्या नगरी में जा पहुंचा। जिस तरह देवराज इन्द्र अमरावती नगरी में प्रवास करते हैं, उसी तरह अयोध्या नामक नगरी राजा पुरुष सिंह द्वारा बसायी गई थी।

प्राह राजानमासाद्य युद्धं देहीति रावणः ।
निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूहि त्वमेवमशासनम् ।।738।।
अयोध्यापतिस्तस्य श्रुत्वा पापात्मनो वचः ।
अनरण्यस्तु संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रमथाब्रवीत ।।739।।
दीयते द्वन्द्व युद्धं ते राक्षसाधिपते मया ।
संतिष्ठ क्षिप्रमायत्तो भव चैवं भवाम्यहम् ।।740।।
अथ पूर्वं श्रुतार्थेन निर्जितं सुमहद् बलम् ।
निष्क्रामत् तन्नरेन्द्रस्य बलं रक्षोवधोद्यतम् ।।741।।
नागानां दश साहस्रं वाजिनां नियुतं तथा ।
रथानां बहु साहस्रं पत्तीनां च नरोत्तम ।।742।।
महीं संछाद्य निष्क्रान्तं सपदाति रथं रणे ।
तत् प्रवृत्तं सुमहद् सुद्धं युद्ध विशारद ।।743।।
अनरण्य नृपते राक्षसेन्द्रस्य चादभुतम् ।
तद् रावण बलं प्राप्य बलं तस्य महीपते ।।744।।
प्राणश्यत तदा सर्वं हव्यं हुतमिवानले ।
युद्धवा च सुचिरं कालं कृत्वा विक्रममुत्तमम् ।।745।।
प्रज्वलन्तं तमासाद्य क्षिप्रमेवाप शेषितम् ।
प्राविशत् संकुलं तत्र शलभा इव पावकम् ।।746।।
सोऽपश्यत् तन्नरेन्द्रस्तु नश्यमानं महाबलम् ।
महार्णवं समासाद्य वनापगशतं यथा ।।747।।
ततः शक्रधनुःप्रख्यं धनुर्विस्फारयन् स्वयम् ।
आससाद नरेन्द्रस्तं रावणं क्रोधमूर्च्छितः ।।748।।
अनरण्येन तेऽमात्या मारीचशुकसारणाः ।
प्रहस्त सहिता भग्ना व्यद्रवन्त मृगा इव ।।749।।
ततोवाणशतान्यष्टौ पातयामास मूर्धनि ।
तस्य राक्षसराजस्य इक्ष्वाकुकुल नन्दनः ।।750।।

रावण ने उनके पास जाकर कहा—तुम या तो मुझसे युद्ध करो या फिर कह दो कि मैं तुमसे हार गया। यह मेरी आज्ञा है। उस पापी-दुष्ट रावण के यह वाक्य सुनकर अयोध्या पति अनरण्य

बहुत क्रोधित हुए तथा उससे इस प्रकार बोले—हे राक्षसाधिपति! मैं तुम्हारे साथ द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूं। तुम मुझे थोड़ा समय दो ताकि मैं युद्ध के लिए तैयार हो जाऊं। तब तक तुम भी तैयार हो जाओ। उन्होंने रावण द्वारा दिग्विजय करने की बात पहले ही सुनी हुई थी, इसलिए उन्होंने बड़ी भारी संख्या में सेना इकट्ठी कर रखी थी। उनकी यह समस्त सेना उत्साह में भरकर रावण का वध करने के लिए नगर से बाहर आ गई। हे पुरुषश्रेष्ठ! दस सहस्र हाथी सवार, कई सहस्र रथी, एक लाख घुड़सवार और सैकड़ों पैदल सैनिक पृथ्वी को आच्छादित करते हुए युद्ध क्षेत्र में जा पहुंचे। हे युद्ध विशारद! इसके पश्चात् राजा अनरण्य और रावण में भयंकर-अद्‌भुत युद्ध होने लगा। राजा अनरण्य की वह असंख्य सेना उस समय राक्षस रावण की सेना से भिड़कर उसी प्रकार नष्ट होने लगी, जिस तरह अग्नि में आहुति पूर्णतया नष्ट हो जाती है।

राजा की सेना ने बहुत समय तक उस सेना से लड़कर अपना महान पराक्रम दिखाया। परंतु तेजस्वी रावण और उसकी पराक्रमी सेना से सामना करके वह केवल थोड़ी संख्या में ही शेष रह गई। जिस तरह अग्नि में पतंके (पतंगे) जलकर भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार वह विशाल सेना काल के मुंह में समा गई। राजा ने देखा कि उसकी विशाल सेना उसी प्रकार नष्ट होती जा रही है, जिस तरह जल से भरी नावें सागर में जाकर विलुप्त हो जाती हैं। इसके पश्चात् राजा ने अत्यंत क्रोधित होकर अपने विशाल धनुष को टंकारा और रावण से युद्ध करने के लिए स्वयं ही आगे बढ़े। जिस प्रकार शेर को देखकर हिरण भागना शुरू कर देते हैं, उसी प्रकार शुक, मारीच, सारण, प्रहस्त—राजा अनरण्य से युद्ध क्षेत्र में परास्त होकर भाग खड़े हुए। इसके बाद इक्ष्वाकुकुलनन्दन राजा अनरण्य ने राक्षसराज रावण के मस्तक पर आठ-आठ सौ बाण मारे।

तस्य बाणाः पतन्तस्ते चक्रिरे न क्षतं क्वचित् ।
वारिधारा इवाभ्रेभ्यः पतन्त्यो गिरिमूर्धनि ।।751।।
ततो राक्षसराजेन क्रुद्धेन नृपतिस्तदा ।
तलेनाभिहतो मूर्ध्नि स रथान्निपपात ह ।।752।।
स राजा पतितौ भूमौ विह्वलः प्रविवेपितः ।
वज्रदग्ध इवारण्ये सालो निपतितो यथा ।।753।।
तं प्रहस्याब्रवीद् रक्ष इक्ष्वाकुं पृथिवीपतिम् ।
किमिदानी फलं प्राप्तं त्वया मां प्रति युध्यता ।।754।।
त्रैलोक्ये नास्ति यो द्वद्वं मम दद्यान्नराधिप ।
शङ्के प्रसक्तो भोगेषु न शृणोषि बलं मम ।।755।।
त्स्यैवं ब्रुवतो राजा मन्दासुर्वाक्यमब्रवीत् ।
किं शक्यमिह कर्तुं वै कालो हि दुरितक्रमः ।।756।।
नह्ययं निर्जितो रक्षस्त्वया चात्मप्रशंसिना ।
कालेनैव विपन्नोऽहं हेतु भूतस्तु मे भवान् ।।757।।
किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तु प्राणपरिक्षये ।
मह्यहं विमुखी रक्षो युद्धयमानस्त्वया हतः ।।758।।
इक्ष्वाकुपरिभावित्वाद् वचो वक्ष्यामिराक्षस ।
यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः ।
यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक् तदा सत्यं चचोऽस्तु मे ।।759।।

जिस तरह मेघों से बरसती हुई वर्षा पर्वत-शिखर को कोई हानि नहीं पहुंचा पाती, उसी प्रकार राजा द्वारा बरसाए हुए बाण रावण के शरीर को कहीं से भी नुकसान नहीं पहुंचा पाए। इसके पश्चात् रावण ने क्रोध में आकर राजा के मुंह पर एक तमाचा मारा, जिसका प्रहार खाकर राजा रथ से नीचे गिर पड़े। जिस तरह बिजली गिरने पर वन में साल का पेड़ दग्ध होकर धरती पर गिर जाता है, ठीक उसी प्रकार राजा अनरण्य भी धराशायी हो गए। उस समय राक्षसराज रावण ने अनरण्य से कहा—मेरे साथ युद्ध करके तुमने क्या पा लिया? हे नरेन्द्र! तीनों लोकों में कोई भी ऐसा वीर-योद्धा नहीं है जो मुझसे द्वन्द्व युद्ध में जीत सके। मुझे लगता है, विषय-भोगों में आसक्त रहने के कारण तुमने मेरी शक्ति के विषय में कुछ भी नहीं सुना।

क्षीण प्राणशक्ति युक्त राजा अनरण्य ने यह वाक्य सुनकर उत्तर दिया—काल का उल्लंघन करने की शक्ति किसमें है? अपनी प्रशंसा करने वाले राक्षस! तुमने मुझको नहीं हराया, जबकि काल ने मुझको स्वयं विपन्न कर दिया है। तुम तो केवल निमित्त मात्र हो। अपने प्राणों को त्यागते समय मैं तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता हूं, परन्तु हे राक्षस! मैंने युद्ध से मुंह नहीं मोड़ा। मैं युद्ध करते हुए ही तेरे द्वारा मारा गया हूं। तुमने अपने व्यंग्य-वचनों से इक्ष्वाकु-वंश का अपमान किया है। अतः मैं तुमको शाप देता हूं कि यदि मैंने होम, दान-पुण्य और तप किए हैं तथा कार्यों का धर्मपूर्वक पालन किया है, तो मेरा यह वचन सत्य होकर रहेगा।

रावण को शाप

उत्पत्स्यते कुले तस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
रामो दाशरथिर्नाम स ते प्राणान् हरिष्यति ।।760।।
ततो जलधरोदग्रस्ताडितो देवदुन्दुभिः ।
तस्मिन्नुदाहृते शापे पुष्पवृष्टि रवाच्चयुता ।।761।।
ततः स राजा राजेन्द्र गतः स्थानं त्रिविष्टपम् ।
स्वर्गते च नृपे तस्मिन् राक्षसः सोऽपसर्पत ।।762।।

महात्मा इक्ष्वाकु के कुल में ही दशरथ पुत्र श्रीराम का जन्म होगा। वही तुझे यमराज के पास पहुंचाएंगे। राजा द्वारा रावण को शाप दिए जाने पर आकाश में गरजते बादलों की तरह देवताओं की दुन्दुभी बज उठी और आकाश से पुष्प रूपी वर्षा होने लगी। हे श्रीराम! इसके पश्चात् राजा अनरण्य परलोक सिधार गए। तब रावण भी वहां से अन्य जगह भ्रमण करने के लिए चला गया।

ततो वित्रासयन् मर्त्यान् पृथिव्यां राक्षसाधिपः ।
आससाद घने तस्मिन् नारदं मुनिपुङ्गवम् ।।763।।
तस्याभिवादनः कृत्वा दशग्रीवो निशाचरः ।
अब्रवीत् कुशलं पृष्ट्वा हेतुमागमनस्य च ।।764।।
नारदस्तु महातेजा देवर्षिरमितप्रभः ।
अब्रवीन्मेघपृष्ठस्थो रावणं पुष्पके स्थितम् ।।765।।
राक्षसाधिपते सौम्य तिष्ठ विश्रवसः सुत ।
प्रीतोऽस्म्यभिजंतेपते विक्रमै रूर्जितैस्तव ।।766।।
विष्णुनादैत्यघातैश्च गन्धर्वोरगधर्षणैः ।

त्वयां समं विमर्दैश्च भृशं हि परितोषितः ।।767।।

इसके बाद वह राक्षसराज लोगों को भयभीत करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा। बादलों के बीच भ्रमण करते हुए रावण की भेंट नारदजी से हुई। राक्षस रावण ने नारदजी का अभिवादन करने के बाद उनकी सकुशलता पूछी। तब बादलों की पीठ पर बैठे हुए तेजस्वी नारदजी ने पुष्पक विमान पर सवार रावण से कहा—हे-निश्रवा के पुत्र राक्षसाधिपति, तनिक ठहरो! मैं तुम्हारे अत्यन्त विशाल पराक्रम को देखकर बहुत प्रसन्न हूं। नागों को युद्ध क्षेत्र में पछाड़ के तुमसे तथा दैत्यों से संग्राम करके श्री विष्णु—दोनों से ही पूर्ण रूप से मैं संतुष्ट हूं।

नारद के वचन

किंचिद् वक्ष्यामि तावत् तु श्रोतव्यं श्रोप्यसे यदि ।
तन्मे निगदतस्तात समाधिं श्रवणे कुरु ।।768।।
किमयं वध्यते तात त्वयावध्येन दैवतेः ।
हत एव ह्ययं लोको यदा मृत्युवशं गतः ।।769।।
देव दानव दैत्यानां यक्षगन्धर्वराक्षसाम् ।
अवध्येन त्वयालोकः क्लेष्टुं योग्यो न मानुषः ।।770।।
नित्यं श्रेयसि सम्मूढं महद्भिर्व्यसनैर्वृतम् ।
हन्यात् कस्तादृशं लोकं जराव्याधिशतैर्युतम् ।।771।।
तैस्तैरनिष्टोपगमैरजस्रं यत्र कुत्र कः ।
मतिमान् मानुषे लोके युद्धेन प्रणयी भवेत् ।।772।।
क्षीयमाणं दैवहतं क्षुत्पिपासाजरादिभिः ।
विषाद शोकसम्मूढं लोकं त्वं क्षपयस्व मा ।।773।।
पश्य तावन्महाबाहो राक्षसेश्वर मानुषम् ।
मूढमेवं विचित्रार्थं यस्य न ज्ञायते गतिः ।।774।।
क्वचिद् वादित्रनृत्यादि सेव्यते मुदितैर्जनैः ।
रुघते चापरैरार्तैर्धाराश्रुनयनाननैः ।।775।।
मातृपितृसुत स्नेह भार्याबन्धु मनौरमैः ।
मोहितोऽयं जनोध्वस्तः क्लेशं स्वं नावबुध्यते ।।776।।
तत्किमेवं परिक्लिश्य लोकं मोह निराकृतम् ।
जित एवत्वया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः ।।777।।
अवश्यमेभिः सर्वैश्च गन्तव्यं यमसादनम् ।
तन्निगृह्णीष्व पौलस्य यमं परपुरंजय ।।778।।
तस्मिञ्जिते जिते सर्वभवत्येव न संशयः ।
एवमुक्तस्तु लङ्केशो दीप्यमानं स्वतेजसा ।।779।।
अब्रवीन्नारदं तत्र सम्प्रहस्याभिवाद्य च ।
महर्षेदेव गन्धर्व विहार समरप्रिय ।।780।।

हे तात! तुम तो देवताओं से भी पराजित नहीं हो सकते? फिर तुम इन पृथ्वीवासियों का वध

क्यों कर रहे हो? मृत्यु के अधीन होने के कारण ये तो स्वयं ही मरे हुए हैं। देवता, दानव, दैत्व, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस—इन सभी श्रेणी से तुम अवध्य हो। फिर तुम इन संसारी प्राणियों को कष्ट क्यों पहुंचा रहे हो। यह तुम्हारे यश को शोभा नहीं देता। जब मनुष्य केवल अपने ही बारे में सोचने के कारण महान् व्यसनों से परिपूर्ण है तथा रोग एवं वृद्धावस्था आदि अनेक संकटों से घिरे हुए हैं, तो उन्हें कोई वीर योद्धा क्यों मारे? जहां पर लोग अनिष्टों से पीड़ित तथा यहां-वहां ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं, भला उस मनुष्य लोक के लोगों को कोई बुद्धिमान एवं युद्ध-प्रिय वीर क्यों मारना चाहेगा? यह पृथ्वी तो भूख, प्यास, बुढ़ापे आदि अनेक मुश्किलों के कारण क्षीण होती जा रही है। तुम ऐसे शोकग्रस्त एवं विषाद लोक का विनाश मत करो।

हे बलवान राक्षसराज! तुम मनुष्यों को जरा ध्यान से देखो। ये मनुष्य अनेक प्रकार से अपने स्वार्थ कार्यों को निकालने में लगे रहते हैं। इनको अपनी दुर्गति होने का ख्याल नहीं होता। कुछ लोग तो गायन-वादन आदि से संबंधित कार्य करते हुए प्रसन्नचित्त बने रहते हैं तो कुछ लोग अपने जीवन में आने वाले दुःखों की वजह से आंसू बहाते रहते हैं। यह मनुष्य माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री एवं पत्नी के मोह में ध्वस्त हो जाते हैं। उनको किसी बंधन जनित क्लेश का भी किसी प्रकार से कोई अनुभव नहीं होता। अतः मोह के कारण जो लोग स्वयं कष्ट भोग रहे हों, उनको कष्ट देकर तुमको क्या मिलेगा? हे सौम्य! मृत्युलोक पर तो तुमने विजय प्राप्त कर ही ली है, इसमें कोई संदेह नहीं है। हे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले पौलस्त्य! पृथ्वी के इन सभी लोगों को यमलोक में जाना ही पड़ता है। यदि तुम बलवान तथा पराक्रमी हो तो यमलोक में यमराज पर अपनी विजय की पताका लहराओ। यदि तुमने उनको जीत लिया तो तुम निस्संदेह सभी को जीत जाओगे।

नारदजी के यह कहने पर अपने तेज से प्रदीप्त लङ्कापति ने नारदजी को प्रणाम करते हुए कहा—हे महर्षि! आप गन्धर्वों तथा देवताओं के लोकों में भ्रमण करते हैं तथा युद्ध देखने की इच्छा रखते हैं। अब मैं रसातल में विजय प्राप्त करने के लिए जा रहा हूं। तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करके देवताओं और नागों को वश में करूंगा।

समुद्रममृतार्थं च मथिष्यामि रसालयम् ।
अथाब्रवीद् दशग्रीवं नारदो भगवानृषिः ।।781।।
क्व खल्विदानीं मार्गेण त्वयेहान्येन गम्यते ।
अयं खलु सुदुर्गम्यः प्रेतराजपुरं प्रति ।।782।।
मार्गो गच्छति दुर्धर्ष यमस्यामित्रकर्शन ।
स तु शारदमेघामं हासंमुक्त्वा दशाननः ।।783।।
उवाच कृतमित्येव वचनं चेदमब्रवीत् ।
तस्मादेवमहं ब्रह्मन् वैवस्वतवधोद्यतः ।।784।।
गच्छामि दक्षिणामाशां यत्र सूर्यात्मजो नृपः ।
मया हि भगवन् क्रोधात् प्रतिज्ञातं रणार्थिना ।।785।।
अवजेष्यामि चतुरो लोकपालानिति प्रभो ।
तदिह प्रस्थितोऽहं वै पितृराजपुरं प्रति ।।786।।
प्राणिसंक्लेशकर्तारं योजयिष्यामि मृत्युना ।
एवमुक्त्वा दशग्रीवो मुनिं तमभिवाद्य च ।।787।।

प्रययौ दक्षिणामाशां प्रविष्टः सह मन्त्रिभिः ।
नारदस्तु महातेजा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।।788।।
चिन्तयामास विप्रेन्द्रो विधूम इव पावकः ।
येन लोकास्त्रयः सेन्द्राः क्लिश्यन्ते सचराचराः ।।789।।
क्षीणे चायुषि धर्मेण स कालो जेष्यते कथम् ।
स्वदत्तकृतसाक्षी यो द्वितीय इव पावकः ।।790।।
लब्धसंज्ञा विचेष्टन्ते लोका यस्य महात्मनः ।
यस्य नित्यं त्रयो लोका विद्रवन्ति भयार्दिताः ।।791।।
तं कथंराक्षसेन्द्रोऽसौ स्वयमेव गमिष्यति ।
यो विधाता च धाता च सुकृंत दुष्कृतं तथा ।।792।।
त्रैलोक्यं विजितं येन तं कथं विजयिष्यते ।
अपरं किं तु कृत्वैवं विधानं संविधास्यति ।।793।।
कौतूहलं समुत्पन्नो यास्यामि यमसादनम् ।
विमर्दं द्रष्टुमनयोर्यमराक्षसयोः स्वयम् ।।794।।

अब मैं अमृत प्राप्त करने के लिए समुद्र मंथन करूंगा। जब रावण ने यह कहा तो देवर्षि नारद बोले—यदि तुम रसातल जा रहे हो तो रसातल का मार्ग छोड़कर, दूसरे मार्ग से क्यों जा रहे हो? जिस मार्ग से तुम जा रहे हो, वह तो प्रेतराज लोक की तरफ जा रहा है। यह रास्ता तो यमराज के यमलोक की तरफ होकर जाता है। नारदजी के यह वाक्य सुनकर रावण शरद् ऋतु के गरजते हुए बादलों के समान हंसता हुआ बोला—मैं आपके कहे वचनों को समझ गया हूं। इसके पश्चात् वह बोला—हे ब्रह्मन! अब मैं यमराज का वध करने के लिए उत्सुक होकर, उसी दक्षिणी दिशा में जा रहा हूं, जहां पर यमराज निवास करते हैं। मैंने यमराज से युद्ध करने की प्रतिज्ञा ली है। अब मैं इस ब्रह्मांड के चारों लोकपालों को युद्ध क्षेत्र में परास्त करूंगा। इसलिए मैं सर्वप्रथम यमलोक को प्रस्थान करता हूं। जो यमराज प्राणियों को कष्ट देता है, मैं उसको मृत्यु के साथ बांध दूंगा। यह कहने के पश्चात् रावण ने देवर्षि का अभिवादन किया। इसके बाद वह अपने मंत्रियों के साथ दक्षिण दिशा की ओर चला गया।

उस समय परम तेजस्वी देवर्षि नारदजी कुछ घड़ी के लिए अंतर्धान हो गए। धूम्र-रहित अग्नि के समान परम तेजस्वी देवर्षि नारदजी यह सोचने लगे कि जो यमराज आयु क्षीण होने पर इन्द्र सहित तीनों लोकों के सचराचर जीवों को दण्ड देने में पूर्ण रूप से सक्षम हैं, उन्हें यह राक्षसराज रावण किस तरह से जीत सकेगा? जो यमराज दूसरी अग्नि के समान परम तेजस्वी हैं तथा जीवों को दान देने वाले एवं उनके कर्म के साक्षी हैं, जिनसे तीनों लोकों के समस्त प्राणी भयभीत होकर दूर भागते हैं तथा जिन महात्मा से चेतना पाकर लोग कई प्रकार की चेष्टा करते हैं, उन परम तेजस्वी यमराज के पास यह राक्षस रावण स्वयं कैसे पहुंच जाएगा? जो जन्म देने वाले, पालन करने वाले और लोगों को पाप-पुण्यों का फल प्रदान करने वाले हैं तथा जिन यमराज ने तीनों लोकों पर अपने विजय की पताका लहरायी है, उन पर यह रावण कैसे विजय प्राप्त कर सकेगा? यह राक्षसराज रावण काल के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय का सहारा लेकर उनको परास्त करेगा? मेरे मन में भी अब आशंका पैदा होने लगी है। अब मैं भी यमराज और राक्षसराज रावण का घोर युद्ध देखने के लिए यमलोक की ओर चलता हूं।

रावण का यमलोक पर आक्रमण

एवं संचिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः ।
आख्यातुं तद् यथावृत्तं यमस्य सदनं प्रति ।।795।।
अपश्यत् स यमं तत्र देवमग्निपुरस्कृतम् ।
विधानमनुतिष्ठन्तं प्राणिनो यादृशम् ।।796।।
स तु दृष्ट्वा यमः प्राप्तं महर्षि तत्र नारदम् ।
अब्रवीत् सुखमासीनमर्ध्यमावेध धर्मतः ।।797।।
कच्चित् क्षेमं नु देवर्षे कच्चिद् धर्मो न नश्यति ।
किमागमन कृत्यं ते देवगन्धर्व सेवित ।।798।।
अब्रवीत तु तदा वाक्यं नारदो भगवानृषिः ।
श्रूयतामभिधास्यामि विधानं च विधीयताम् ।।799।।
एव नाम्ना दशग्रीवः पितृराज निशाचरः ।
उपयाति वंश नेतुं विक्रमैस्त्यां सुदुर्जयम् ।।800।।
एतेन कारणेनाहं त्वरितो ह्यागतः प्रभो ।
दण्डप्रहरण स्याद्य तव किं नु भविष्यति ।।801।।

देवर्षि नारदजी अपने मन में यह विचार करके रावण द्वारा यमलोक पर आक्रमण का समाचार लिए यमलोक जा पहुंचे। नारदजी ने वहां पहुंचकर देखा कि यमराज अग्नि के समान खड़े हुए हैं तथा प्राणियों ने जैसा कर्म किया है, उसी प्रकार के फल प्रदान कर रहे हैं। नारदजी को वहां आया हुआ देखकर यमराज ने अर्घ्य के द्वारा उनका आदर-सत्कार करवाते हुए उन्हें धर्मपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। यमराज ने कहा—हे देवता तथा गन्धर्वों से सेवित देवर्षि! सब कुछ ठीक प्रकार से है? कहीं धर्म का विनाश तो नहीं हो रहा है? आज आपका यमलोक में आना किस उद्देश्य को प्रकाशित करता है। यमराज के यह वाक्य सुनकर देवर्षि नारदजी ने कहा—मैं आज आपको एक विशेष समाचार देने आया हूं। आपको शीघ्र ही इसका कोई उपाय सोचना है। हे पितृराज! दुर्जेय एवं पापी राक्षसराज दशग्रीव आप पर विजय पाने के उद्देश्य से यमलोक आने वाला है। हे प्रभो! मैं इसी कारण शीघ्रता से यहां आपके पास चला आया हूं। आप तो स्वयं काल को धारण करने वाले हैं, अतः उस राक्षस रावण के प्रहार से आपको क्या हानि होगी?

एतस्मिन्नन्तरे दूरादंशुमन्तमिवोदितम् ।
दहशुदीर्प्तमायान्तं विमानं तस्य रक्षसः ।।802।।
तं देशं प्रभया तस्य पुष्पकस्य महाबलः ।
कृत्वा वितिमिरं सर्वसमीपभ्यवर्तत ।।803।।
सोऽपश्यत्स महाबाहुर्दशग्रीव स्ततस्ततः ।
प्राणिनः सुकृत चैव भुञ्जानांश्चैव दुष्कृतम् ।।804।।
अपश्यत् सैनिकांश्चास्य यमस्यानुचरैः सहः ।
यमस्य पुरुषैरुग्रैर्थोररुपैर्भयानकैः ।।805।।
ददर्श वध्यमानांश्च क्लिभ्यमानांश्च देहिनः ।
क्रोशतश्च महानादं तीव्रनिष्टनतत्परान् ।।806।।

कृमिभिर्भक्ष्यमाणांश्च सारमेयैश्च दारुणैः ।
श्रोत्रायासकरा वाचो वदतश्च भयावहाः ।।807।।

अभी यह वार्तालाप चल ही रहा था कि सूर्य के समान तेजस्वी उस राक्षसराज का विमान आता हुआ दिखाई दिया। पराक्रमी राक्षस रावण उस स्थान के अंधकार को अपने पुष्पक विमान की प्रभा से काटता हुआ अत्यंत समीप आ पहुंचा। महाबली रावण ने यमलोक में आकर देखा कि सभी प्राणी अपने-अपने पाप तथा पुण्यों के फल भोग रहे हैं। रावण ने वहां पर यमराज को अपने सैनिकों तथा अनुचरों के साथ देखा। इसके अलावा उसने उग्र प्रकृति तथा प्रचंड रूप वाले भयानक यमदूतों को भी देखा, जो देहधारियों को बांधकर उन्हें कई प्रकार के कष्ट दे रहे थे। वे यमदूतों के प्रहार के कारण जोर-जोर से चिल्ला रहे थे। किसी प्राणी को कुत्ते नोच रहे थे तथा किसी को कीड़े खा रहे थे। परिणामस्वरूप वे कानों को कष्टदायक एवं भयानक शोर प्रदान कर रहे थे।

संतार्यमाणान् वैतरणीं बहुशः शोणितोदकाम् ।
बालुकासुच तप्तासु तप्यमानान् मुहुर्मुहुः ।।808।।
असिपत्रवने चैव मिद्यमानान धार्मिकान् ।
रौरवै क्षारनद्यां च क्षुरधारासु चैव हि ।।809।।
पानीयं याचमानांश्च तृषितान् क्षुधितानपि ।
शवभूतान् कृशान् दीनान् विवर्णान् मुक्तमूर्धजान् ।।810।।
मलपङ्कधरान् दीनान् रुक्षांश्च परिधावतः ।
ददर्शरावणो मार्गे शतशोऽथ सहस्रशः ।।811।।
कांश्चिच्च गृहमुख्येषु गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
प्रमोदमानानद्राक्षीद् रावणः सुकृतैः स्वकैः ।।812।।
गोरसं ग्रोप्रदातारो ह्यन्नं चैषान्नदापिनः ।
गृहांश्च गृहदातारः स्वकर्मफलमश्नतः ।।813।।
सुवर्ण मणिमुक्ताभिः प्रमदाभिरलंकृतान् ।
धार्मिकानपरांस्तत्र दीप्यमानान् स्वतेजसा ।।814।।

किसी को तपती हुई बालू पर बार-बार चलाकर कष्ट दिया जाता था तो किसी को खून से भरी हुई वैतरणी नदी पार करने के लिए विवश किया जाता था। कुछ पापियों को तलवार की तरह नुकीले तीक्ष्ण पत्तों वाले असिपत्र वन में विदीर्ण किया जा रहा था, तो कुछ को रौरव नरक के खारे पानी में अर्थात् खारे पानी की नदियों में डुबाया तथा कंटीले क्षुर धार पर दौड़ाया जा रहा था। अनेक भूखे-प्यासे लोग भोजन तथा पानी की मांग कर रहे थे। कोई शव, कङ्काल, दीन, विवर्ण, कृश तथा बिखरे बालों वाला था। कई प्राणी तो कीच तथा मल में अपने शरीर को लपेटे यत्र-तत्र दौड़ रहे थे। इस प्रकार रावण ने सैकड़ों प्राणियों तथा लोगों को भयंकर यातनाएं सहते हुए देखा। दूसरी तरफ रावण ने वह दृश्य भी देखा जहां पर लोग उत्तम घरों में निवास करते हुए गायन तथा वादन आदि मनोरंजन से आनन्दित हो रहे थे। जो लोग गाय, गोरस, अनाज तथा गृह आदि का दान करते थे, वह लोग अपनी दान की वस्तुओं का कुशलतापूर्वक उपभोग कर रहे थे। कई लोग मणि-मुक्ता, स्वर्ण और सुन्दर युवतियों से सुशोभित अङ्गकान्ति से प्रकाशित हो रहे थे।

ददर्श स महाबाहू रावणो राक्षसाधिपः ।

ततस्तान् भिद्यमानांश्च कर्मभिर्दुष्कृतेः स्मकैः ।।815।।
रावणो मोचयामास विक्रमेण बलाद् बली ।
प्राणिनों मोक्षितास्तेन दशग्रीवेणरक्षसा ।।816।।
सुखमायुर्मुहूर्तुं ते ह्यतर्कितम् चिन्तितम् ।
प्रेतेषु मुच्यमानेषु राक्षसेन महीयसा ।।817।।
प्रेतगोपाः सुसंक्रुद्धा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन् ।
ततो हलहलाशब्दः सर्वदिग्भ्यः समुत्थितः ।।818।।

महाबली रावण ने उन सभी लोगों को देखा। फिर उसने अपने पाप-पुण्य कर्मों को भोगने वाले उन लोगों को अपने बल से जबरदस्ती मुक्त कर दिया। इस कारण उन प्राणियों ने कुछ समय के लिए अप्रत्याशित सुखों का अनुभव प्राप्त किया। जब रावण बलपूर्वक प्रेतों को मुक्त करने लगा, तो यमलोक के यमदूत अत्यंत क्रोधित होकर रावण पर टूट पड़े। उस समय सभी दिशाओं में शोर-शराबे का स्वर गूंज उठा।

धर्मराजस्य योधानां शूराणां सम्प्रधावताम् ।
ते प्रासैः परिथैः शूलैर्मुसलैः शक्ति तोमरैः ।।819।।
पुष्पकं समधर्षन्त शूराः शतसहस्रशः ।
तस्यासनानि प्रासादान वेदिकास्तोरणानि च ।।820।।
पुष्पकस्य बभुञ्जुस्ते शीघ्रं मधुकरा इव ।
देवानिष्ठानभूतं तद्विमानं पुष्पकं मृधे ।।821।।
भज्यमानं तथैवासीदक्षयं ब्रह्मतेजसा ।
असंख्या सुमहत्यासीत् तस्य सेना महात्मनः ।।822।।
शूराणामग्रयातृणां सहस्राणि शतानि च ।
ततौ वृक्षैश्च शैलैश्च प्रासादानां शतैस्तथा ।।823।।
ततस्ते सचिवास्तस्य यथाकामं यथाबलम् ।
अयुध्यन्त महावीराः स च राजा दशाननः ।।824।।
ते तु शोणितदिग्धाङ्गा सर्वशस्त्रसमाहताः ।
अमात्या राक्षसेन्द्रस्य चक्रुरायोधनं महत् ।।825।।

यमराज के शूरवीर राक्षस रावण के विमान पर उसी प्रकार टूट पड़े, जिस प्रकार खिले हुए फूल पर भंवरों के झुंड मंडराते हैं। उन शूरवीरों ने शूल, मूसल, परिघ, तोमर तथा शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्रों को लेकर पुष्पक पर आक्रमण कर दिया। उन हजारों-सैकड़ों वीर योद्धाओं ने पुष्पक विमान के आसनों, प्रासाद, तोरणों और वेदी को ध्वस्त कर दिया। लेकिन तोड़-फोड़ करने के पश्चात् भी वह देवताओं का अधिष्ठान-भूत पुष्पक विमान दोबारा वैसा ही हो गया, जैसा तोड़-फोड़ के पहले था। क्योंकि वह विमान ब्रह्मतेज के कारण अक्षय था। यमराज के शूरवीर योद्धा आगे बढ़कर घोर युद्ध करने लगे। यह देखकर राक्षसराज रावण तथा उसके मन्त्रीगण भी यमलोक के पर्वत, पेड़ एवं अन्य प्रासादों को उखाड़ कर उसकी पूरी शक्ति के साथ शत्रुओं पर फेंकने लगे। उनके शरीर के अंगों से रक्त का रिसाव हो रहा था। वे भयानक शस्त्रों के प्रहार से बुरी तरह घायल हो चुके थे, लेकिन तब भी रावण के सभी मंत्री घोर युद्ध कर रहे थे।

रावण पर बाण-वर्षा

अन्योन्यं ते महाभागा जघ्नुः प्रहरणैर्भृशम् ।
यमस्य च महाबाहो रावणस्य च मन्त्रिणः ।।826।।
अमात्यांस्तांस्तु संत्यज्य यमयोधा महाबलाः ।
तमेव चाभ्यधावन्त शूलवर्षैर्दशाननम् ।।827।।
ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ।
फुल्लाशोक इवाभाति पुष्पके राक्षसाधिपः ।।828।।
स तु शूलगदा प्रासाञ्छंक्ति तोमरसायकान् ।
मुसत्नानि शिलावृक्षान् मुमोचास्त्रबलाद् बली ।।829।।
तरूणां च शिलानां च शस्त्राणां चातिदारुणम् ।
यमसैन्येषु तद् वर्षं पपात धरणीतले ।।830।।
तांस्तु सर्वान् विनिर्भिद्य तदस्त्रमपहत्य च ।
जघ्नुस्ते राक्षसं घोरमेकं शतसहस्रशः ।।831।।
परिवार्य च तं सर्वे शैलं मेघोत्करा इव ।
भिन्दिपालैश्च शूलैश्च निरुच्छ्वासमपोथयन् ।।832।।
विमुक्त कवचः क्रुद्धः सिक्तः शोणितविस्रवैः ।
ततः स पुष्पकं त्यकत्वा पृथिव्यामवतिष्ठत ।।833।।
ततः स कार्मुकी वाणी समेर चाभिवर्धत ।
लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन क्रुद्धस्तस्थौ यथान्तकः ।।834।।
ततः पाशुपतं दिव्यमस्त्रं संधाय कार्मुके ।
तिष्ठ तिष्ठेति तानुक्त्वा तच्चापं व्यपकर्षत ।।835।।
आकर्णात् स विकृष्याथ चापमिन्द्रारिराहवे ।
मुमोच तं शरं क्रुद्धस्त्रिपुरे शंकरो यथा ।।836।।
तस्य रूपं शरस्यासीत् सधूमज्वालमण्डलम् ।
वनं दहिष्यतो धर्मे दावाग्नेरिव मूर्च्छतः ।।837।।
ज्वालामाली स तु शरः क्रव्यादानुगतो रणे ।
मुक्तो गुल्मान् द्रुमांश्चापि भस्म कृत्वा प्रधावति ।।838।।
ते तस्य तेजसा दग्धाः सैन्या वैवस्वतस्य तु ।
रणे तस्मिन् निपतिता माहेन्द्रा इव केतवः ।।839।।
ततस्तु सचिवैः सार्धं राक्षसो भीमविक्रमः ।
ननाद सुमहानादं कम्पयन्निव मेदिनीम् ।।840।।

हे महाप्रभो श्रीराम! रावण और यमराज के मंत्रियों ने एक-दूसरे पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार शुरू कर दिया। इसके बाद यमराज के शूरवीर योद्धाओं ने रावण के मन्त्रियों को छोड़कर रावण के ऊपर बाण-वर्षा शुरू कर दी। रावण का पूरा शरीर उस समय अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से ध्वस्त-जर्जर हो गया। उसके सभी अंगों से खून बहने लगा। राक्षसराज रावण अपने पुष्पक विमान पर अशोक वृक्ष के समान, खून से लथपथ दिखाई देने लगा। इसके पश्चात् पराक्रमी रावण ने भी

अपने बाणों, शिला, शक्ति, तोमर, मूसल, शूल, गदा, प्रास तथा वृक्षों की वर्षा शुरू कर दी। शस्त्रों की वह भयंकर वर्षा वहां पर खड़े यमराज के सैनिकों पर पड़ने लगी। तब सैकड़ों की तादाद में वह सैनिक, रावण द्वारा बरसाए गए शस्त्रों का सामना करते हुए, रावण पर अपने अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करने लगे। जिस प्रकार पर्वत पर मेघों का झुरमुट चारों तरफ से जल वर्षा करता है, उसी प्रकार उन सैकड़ों सैनिकों ने राक्षस रावण को शूलों और भिन्दपालों से भेदना शुरू कर दिया। तब रावण को सांस लेने का भी मौका नहीं मिला। कवच कट जाने तथा शरीर से रक्त बहाव होने पर क्रोधित रावण पुष्पक विमान को छोड़ पृथ्वी पर खड़ा हो गया।

कुछ क्षण रावण अपने आपको संभालने के पश्चात् यमराज की तरह क्रोधित हो उठा। रावण ने अपने धनुष पर 'पाशुपत' अस्त्र को चढ़ाकर तथा यमराज के सैनिकों को 'ठहरो' कहते हुए अपने धनुष की प्रत्यंचा खींची। जिस तरह भगवान् शिव ने क्रोध में आकर शुक पर पाशुपत अस्त्र छोड़ा था, उसी प्रकार रावण ने अपने धनुष की प्रत्यंचा को खींचकर यमराज की सेना पर छोड़ दिया। उस ज्वाला और धूम्र के मण्डल युक्त बाण से ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे ग्रीष्म काल में वनों में चारों तरफ दावानल फैल गई हो। ज्वालाओं से घिरा हुआ वह बाण युद्ध क्षेत्र के वृक्षों तथा झाड़ियों को काटता हुआ शीघ्रता से आगे बढ़ रहा था। उसके पीछे सैनिक तथा जीव-जन्तु भी चल रहे थे। यमराज के सभी सैनिक उस बाण के डर से भयभीत होकर इन्द्र वज्र की भांति युद्ध क्षेत्र में गिर पड़े। इसके पश्चात् वह परम तेजस्वी-महापराक्रमी राक्षस रावण अपने मन्त्रियों के साथ जोर-जोर से गरजने लगा, जिसकी भयानक आवाज से संपूर्ण पृथ्वी कांप उठी।

स तस्य तु महानादं श्रुत्वा वैवस्वतः प्रभुः ।
शत्रुं विजयिनं मेने स्वबलस्य च संक्षयम् ।।841।।
सहि योधान् हतान् मत्वा क्रोधसंरक्त लोचनः ।
अब्रवीत् त्वरितः सूतं रथो मे उपनीयताम् ।।842।।
तस्य सूतस्तदा दिव्यमुपस्थाप्य महारथम् ।
स्थितः स च महातेजा अध्यारोहत तं रथम् ।।843।।
प्रास मुद्गर हस्तश्च मृत्युस्तस्याग्रतः स्थितः ।
येन संक्षिप्यते सर्वं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ।।844।।
कालदण्डस्तु पार्श्वस्थो मूर्तिमानस्य चाभवत् ।
यम प्रहरणं दिव्यं तेजसा ज्वलदग्निवत ।।845।।
तस्य पार्श्वेषु निच्छिद्राः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ।
पावकस्पर्शसंकाशः स्थितो मूर्तश्चमुद्गर ।।846।।
ततो लोकत्रयं क्षुब्धमकम्पन्त दिवौकसः ।
कालं दृष्टवा तथा क्रुद्धं सर्वलोक भयावहम ।।847।।
ततस्त्वचोद्यत सूतस्तानश्वान् रुचिर प्रभान् ।
प्रययौ भीमसंनादो यत्र रक्षःपतिः स्थितः ।।848।।
मुहूर्तेन यमं ते तु हया हरिघ्योपमाः ।
प्रापयन् मनसस्तुल्या यत्र तत् प्रस्तुतं रणम् ।।849।।
दृष्ट्वा तथैव विकृतं रथं मृत्युसमन्वितम ।
सचिवा राक्षसेन्द्रस्य सहसा विप्रदुद्रुवुः ।।850।।

रावण की उस घोर गर्जना को सुनकर भगवान यम ने यह समझा कि शत्रु विजयी हुआ है और मेरी सेना नष्ट हो गई है। उसने मेरे योद्धा मार डाले—यह जानकर यमराज के नेत्र क्रोध से लाल हो गए। तदुपरांत उन्होंने अपने सारथी से कहा—मेरा रथ शीघ्र ले आओ।

तब सारथी ने एक दिव्य तथा विशाल रथ उपस्थित कर दिया। फिर महा तेजस्वी यमराज उस रथ पर आरूढ़ हो गए। उनके अग्रभाग में प्रास तथा मुद्गर हाथ में लिए मृत्युदेव खड़े थे, जो इस सम्पूर्ण त्रिभुवन के प्राणियों का संहार करते रहते हैं। उनके पार्श्व भाग में साकार कालदण्ड खड़ा हुआ था, जो यमराज का मुख्य आयुध था। वह अपने तेज से अग्नि के समान प्रज्वलित हो रहा था। उनके दोनों बगल में छिद्र रहित काल पाश खड़े हुए थे तथा अग्नि तुल्य दुस्सह स्पर्श वाला मुद्गर भी साकार रूप धारण किए खड़ा था।

काल को कुपितावस्था में देखकर चारों तरफ हलचल-सी हो गई। सभी देवतागण भयभीत होकर कांप उठे। सुंदर कान्ति वाले रथ के घोड़ों को हांकता हुआ सारथी आगे को बढ़ चला। घोर भयंकर शब्द करता हुआ वह रथ वहां जा पहुंचा, जहां राक्षस रावण खड़ा हुआ था। उस रथ के मन के समान शीघ्रगामी और इन्द्र के घोड़ों के समान तेजस्वी घोड़ों ने यमराज को क्षण भर में ही उस स्थान पर पहुंचा दिया, जहां पर युद्ध हो रहा था। उस विकराल एवं भयानक आकार के रथ सहित मृत्युदेवता यमराज को देखकर रावण के मन्त्रीगण युद्ध क्षेत्र छोड़कर भाग गए।

यमराज का क्रोधित होना

लघुसत्त्वतया ते हि नष्टसंज्ञा भयार्दिताः ।
मेह योद्धुं समर्थाःस्म इत्युक्त्वा प्रययुर्दिशः ।।851।।
स तु तं तादृशं दृष्ट्वा रथं लोकभयावहम् ।
नाक्षुभ्यत दशग्रीवो न चापि भयमाविशत् ।।852।।
स तु रावणमासाद्य व्यसृजच्छक्तितोमरान् ।
यमो मर्माणि संक्रुद्धो रावणस्य न्यकृन्तत ।।853।।
रावणस्तु ततः स्वस्थः शरवर्षं मुमोच ह ।
तस्मिन् वैषस्वतरथे तोयवर्षमिवाम्बुदः ।।854।।
ततो महाशक्ति शतैः पात्यमानैर्महोरसि ।
नाशक्नोत् प्रति कर्तुं स राक्षसः शल्यपीडितः ।।855।।
एवं नाना प्रहरणैर्यमेनामित्रकर्षिणा ।
सप्तरात्रं कृतः संख्ये विसंज्ञो विमुखो रिपुः ।।856।।
तदाऽऽसीत् तुमुलं युद्धं यमराक्षसयोर्द्वयोः ।
जयमाकांक्षतोर्वीर समरेष्वनिवर्तिनोः ।।857।।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रजापति पुरस्कृत्य समेतास्तत्रणाजिरे ।।858।।
संवर्त इव लोकानां युध्य तोरभवत् तदा ।
राक्षसानां च मुख्यस्य प्रेतनामीश्वरस्य च ।।859।।
राक्षसेन्द्रोऽपि विस्फार्य चापमिन्द्राशनि प्रथम् ।

निरन्तर मिवाकाशं कुर्वन बांणांस्ततोऽसृजत् ।।860।।

रावण के मंत्री अल्पशक्ति के थे, अतः वे भयभीत हो, अपने होश-हवास खोकर यह कहते हुए चारों तरफ भाग रहे थे कि हम यह युद्ध करने में सक्षम नहीं हैं। लेकिन पूरे संसार को भयभीत करने वाले उस विशाल रथ को देखकर भी रावण तनिक क्षुब्ध तथा भयभीत नहीं हुआ। यमराज ने वहां पहुंचते ही रावण पर क्रोधित होकर तोमरों एवं शक्तियों का प्रहार कर उसके मर्मस्थलों को भेद डाला। इसके बाद रावण ने भी संभलकर यमराज पर अपने बाणों का प्रहार शुरू कर दिया, जैसे मेघ वर्षा कर रहे हों। तब यमराज ने रावण की छाती पर अनेक शक्तियों का ऐसा प्रहार किया कि वह अत्यन्त पीड़ित हो उठा तथा बदला लेने में असमर्थ हो गया। परिणामस्वरूप रावण अपनी सुध-बुध खोकर युद्ध से विमुख हो गया। इसके पश्चात् राक्षसराज रावण तथा यमराज आपस में तुमुल युद्ध करने लगे। वे दोनों ही विजय प्राप्त करने के अभिलाषी थे और युद्ध क्षेत्र से अपने आपको हटाना नहीं चाहते थे। तब ब्रह्माजी को आगे कर देवता, गंधर्व, सिद्ध तथा महर्षिगण उस युद्ध क्षेत्र में जा पहुंचे। उस समय राक्षसराज रावण और यमराज के युद्ध के कारण तीनों लोकों में प्रलयकाल जैसा दृश्य उत्पन्न हो गया था। राक्षसराज रावण भी इन्द्र की आशनि की तरह अपने धनुष को खींच भयंकर बाणों की वर्षा कर रहा था। परिणामस्वरूप सारा आकाश बाणों के प्रहार से भर चुका था तथा वहां पर कोई भी रिक्त स्थान नहीं था।

मृत्युं चतुर्भिर्षिशिरवैः सूतं सप्तभिरार्दयत् ।
यमं शत सहस्रेण शीघ्रं मर्मस्वताडयत् ।।861।।
ततः क्रुद्धस्य वदनाद् यमस्य समजायत् ।
ज्वालामाली सनिःश्वासः सधूमः कोपपावकः ।।862।।
तदाश्चर्यमथो दृष्ट्वा देवदानवसंनिधौ ।
प्रहर्षितौ सुंसरब्धौ मृत्युकालौ बभूवतुः ।।863।।
ततो मृत्युःक्रुद्धतरो वैवस्वतमभाषत ।
मुञ्च मां समरे यावद्धन्मीमं पापराक्षसम् ।।864।।
नैषा रक्षो भवेदद्य मर्यादा हि निसर्गतः ।
हिरण्यकशिपुः श्रीमान् नमुचिः शम्बरस्तथा ।।865।।
निसन्दिर्धूमकेतुश्च बलिर्वैरोचनोऽपि च ।
शम्भुर्दैत्यो महाराजो वृत्रो बाणस्तथैव च ।।866।।
राजर्षयः शास्त्रविदो गन्धर्वाः समहोरगाः ।
ऋषयःपन्नगा दैत्या यक्षाश्च ह्यप्सरोगणाः ।।867।।
युगान्तपरिवर्ते च पृथिवी समहार्णवा ।
क्षयं नीता महाराज सपर्वतसरिद्द्रुमा ।।868।।
एते चान्ये च बहवो बलवन्तो दुरासदाः ।
विनिपन्ना मया दृष्टाः किमुतायं निशाचरः ।।869।।
मुञ्च मां साधु धर्मज्ञ यावदेनं निहन्म्यहम् ।
नहि कश्चिन्मया दृष्टो बलवानपि जीवति ।।870।।

रावण ने चार बाण मारकर मृत्यु को तथा सात बाण मारकर यमराज के सारथी को घायल

कर दिया। इसके पश्चात् रावण ने एक लाख बाणों से यमराज के मर्मस्थलों पर चोट पहुंचाई। उस समय यमराज बहुत अधिक क्रोधित हो उठे। उनका वह क्रोध अग्नि के रूप में प्रकट हुआ, जिसके कारण वह स्वरूप ज्वाल-माला निःश्वास तथा धूम्राच्छन्न दिखाई देने लगी। उस अद्भुत आश्चर्य को देखकर देवता तथा दानवों के पास रोष से भरे हुए मृत्युदेव और सारथी बहुत खुश हुए। इसके पश्चात् क्रोध में आकर मृत्युदेव यमराज ने मनु से कहा—आप मुझे छोड़ दीजिए तथा आज्ञा दीजिए कि मैं इस दुष्ट, पापी, राक्षस रावण को युद्ध क्षेत्र में मृत्यु को सौंप सकूं। हे श्रीमान्! यह तो स्वाभाविक है कि यह राक्षस मुझसे युद्ध करके जीवित नहीं बच सकता। कितने ही राजर्षि, सास्त्रज्ञ, गन्धर्व, बड़े विशाल नाग, ऋषि, दैत्य, पन्नग, यक्ष, अप्सराएं, हिरण्यकशिपु, नमुचि, निसन्दि, शम्बर, धूम्रकेतु, विरोचन पुत्र बलि, शम्भु दैत्य, महाराज वृत्र, वाणासुर आदि कई राजर्षि, युगान्त के बदलते समय समुद्रों, सरिताओं और वृक्षों सहित पृथ्वी—ये सभी मेरे द्वारा विनाश को प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा कई शूरवीर-बलवान् योद्धा भी केवल मेरी दृष्टिमात्र से ही विनाश को प्राप्त हो गए, फिर यह राक्षस किस गणना में आता है। हे साधु! हे धर्मज्ञ! जब तक मैं उसको मार नहीं देता, तब तक आप मुझको मुक्त कर दें। ऐसा कोई भी पराक्रमी नहीं है जो एक बार मेरी दृष्टि पड़ने के बाद मेरे हाथों जीवित बच सके।

ब्रह्माजी का हस्तक्षेप

बलं मम न खल्वेतन्मर्यादैषा निसर्गतः ।
स दृष्टो न मया काल मुहूर्तमपि जीवति ।।871।।
तस्यैवं वचनं श्रुत्वा धर्मराजः प्रतापवान् ।
अब्रवीत् तत्र तं मृत्युं त्वं तिष्ठैनं निहन्म्यहम् ।।872।।
ततः संरक्त नयनः क्रुद्धो वैवस्वतः प्रभुः ।
कालदण्डममोघं तु तोलयामास पाणिना ।।873।।
यस्य पार्श्वेषु निहिताः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ।
पावकाशनिसंकाशो मुद्‌गरो मूर्तिमान् स्थितः ।।874।।
दर्शनादेव यः प्राणान् प्राणिनामपि कर्षति ।
किं पुनः स्पृशमानस्य पात्यमानस्य वा पुनः ।।875।।
स ज्वाला परिवारस्तु निर्दहन्निव राक्षसम् ।
तेन स्पृष्टो बलवता महाप्रहरणोऽस्फुरत् ।।876।।
ततो विदुद्रुवः सर्वे तस्मात् त्रस्ता रणाजिरे ।
सुराश्च क्षुभिताः सर्वे दृष्ट्वा दण्डोद्यतं यमम् ।।877।।
तस्मिन् प्रहर्तुकामे तु यमे दण्डेन रावणम् ।
यमं पितामहः साक्षाद् दर्शयित्वेवमब्रवीत् ।।878।।
वैवस्पत महाबाहो न खल्वमिताविक्रम् ।
न हन्तव्यस्त्वयैतेन दण्डेनैष निशाचरः ।।879।।
वरः खलु मयै तस्मै दत्तस्त्रिदशपङ्गव ।
स त्वया नानृतः कार्यो यन्मया व्याहृतं वचः ।।880।।

मेरी मृत्यु की दृष्टि पड़ते ही यह दुष्ट, पापी एवं दुर्लज दो घड़ी भी जीवित नहीं बच सकेगा। मैं अपने बल का बखान नहीं कर रहा बल्कि यह तो मेरी स्वाभाविक प्रकृति है। मृत्यु के इन वाक्यों को सुनकर धर्मराज बोले—हे मृत्यु! तुम ठहरो! मैं इसको अभी मार डालता हूं। इसके बाद यमराज ने क्रोधित हो अपनी आंखों को सुर्ख लाल करते हुए अमोघ कालदण्ड उठाया। उस अमोघ अस्त्र के पार्श्वभाग में काल पाश विराजमान थे। उस समय तेजस्वी मुद्गर अग्नि तुल्य मूर्तिमान बना हुआ था। कालदण्ड पर दृष्टि पड़ते ही वह प्राणियों के प्राण छीन लेता था। जिससे उसका छूना हो जाए अथवा जिसके ऊपर उसका प्रहार हो जाए, वह क्या परिणाम करवाएगा, उसका तो वर्णन करना व्यर्थ मात्र है।

ज्वालाओं से परिपूर्ण वह कालदण्ड राक्षसराज रावण को जलाकर भस्म करने के लिए तैयार था। अपने महान् तेज से युक्त वह कालदण्ड यमराज के हाथों में प्रकाशित हो उठा। युद्ध क्षेत्र में लड़ रहे सभी योद्धा उस अमोघ के उठते ही युद्ध क्षेत्र छोड़कर भाग खड़े हुए। कालदण्ड को यमराज द्वारा उठाया हुआ देखकर सभी देवतागण क्षुब्ध हो उठे। यमराज उस कालदण्ड का प्रहार रावण पर करना ही चाहते थे, उसी समय ब्रह्माजी प्रकट हो गए। यमराज को दर्शन देते हुए ब्रह्माजी इस प्रकार बोले—हे अमित पराक्रमी महाबाहो वैवस्त! तुम अपने हाथों से अमोघ कालदण्ड द्वारा राक्षस रावण का वध मत करो। हे देवश्रेष्ठ! मैंने इस रावण को देवताओं द्वारा न मारे जाने का वरदान दिया है। अतः मैंने जो वचन दिया है, तुम उसको निष्फल या असत्य मत होने दो।

यो हि मामनृतं कुर्याद् देवो वा मानुषोऽपि वा ।
त्रैलोक्यमनृतं तेन कृतं स्यान्नात्र संशय ।।881।।
क्रुद्धेन विप्रमुक्तोऽयं निर्विशेषं प्रिया प्रिये ।
प्रजाः संहरते रौद्रौ लोकत्रय भयावहः ।।882।।
अमोघो ह्येष सर्वेषां प्राणिनाममितप्रभः ।
कालदण्डो मया सृष्टः पूर्वं मृत्युपुरस्कृतः ।।883।।
तन्न खल्वेष ते सौम्य पात्यो रावणमूर्धनि ।
नह्यस्मिन् पतिते कश्चिन्मुहूर्तमपि जीवति ।।884।।
यदि ह्यस्मिन् निपतिते न म्रियतैष राक्षसः ।
म्रियते वा दशग्रीवस्तदाप्युभयतोऽनृतम् ।।885।।
तन्निवर्तय लङ्केशाद् दण्डमेतं समृद्यतम् ।
सत्यं च मां कुरुष्वाद्य लोकास्त्वं यद्यवेक्षसे ।।886।।
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच यमस्तदा ।
एष व्यावर्तितो दण्डः प्रभविष्णुर्हि नो भवान् ।।887।।
किंत्विदानीं मया शक्यं कर्तुं रणगतेन हि ।
न मया यद्ययं शक्यो हन्तुं वरपुरस्कृतः ।।888।।
एष तस्मात् प्रणश्यामि दर्शनादस्य रक्षसः ।
इत्युक्त्वा सरथ साश्वस्तत्रैवान्तरधीयत ।।889।।
दशग्रीवस्तु तं जित्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
आरुह्य पुष्पकं भूयो निष्क्रान्तो यमसादनात् ।।890।।

स तु वैवस्वतो देवैः सह ब्रह्मपुरोगमैः ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टो नारदश्च महामुनिः ।।891।।

जो कोई भी मुझको (देवता या मनुष्य) असत्यवादी बना देगा, इसमें कोई संदेह नहीं है कि उस पर तीनों लोकों को मिथ्यावादी बनाने का दोष लगेगा। यह अमोघ कालदण्ड तीनों लोकों को भयभीत कर देगा। यदि क्रोधपूर्वक इसको छोड़ दिया गया तो यह रुद्र रूप धारण करके प्रिय और अप्रिय में भेद किए बिना संपूर्ण प्रजा का संहार कर देगा। पूर्व काल में इस अमोघ कालदण्ड को स्वयं मैंने ही बनाया था। यह किसी भी प्राणी पर निष्फल सिद्ध नहीं होता। यह अस्त्र तो सभी के लिए मृत्युदायक सिद्ध होता है। अतः तुम इसका रावण पर प्रहार मत करो, क्योंकि इसका प्रहार होते ही कोई भी प्राणी क्षण भर के लिए जीवित नहीं बच सकता। यदि इस अमोघ अस्त्र से यह राक्षस नहीं मरा अथवा दशग्रीव जीवित ही रहा तो, मेरा कथन दोनों स्थिति में असत्य सिद्ध होगा। अतः तुम रावण के ऊपर उठाए हुए इस कालदण्ड को हटा लो। यदि तुम चाहते हो कि मैं सत्यवादी बना रहूं, तो तीनों लोकों में मेरा मान रखो और रावण की रक्षा करो।

पितामह ब्रह्माजी के यह कहने पर यमराज ने उत्तर दिया—आप हम सभी के स्वामी एवं गुरु हैं। यदि आपका ऐसा ही कहना है तो मैं रावण के ऊपर से इस कालदण्ड को हटा लेता हूं। यदि वरदान के कारण यह राक्षसराज रावण मेरे द्वारा युद्ध करने पर मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकता, तो ऐसी स्थिति में, मैं रावण से युद्ध करके क्या करूंगा? अतः अब मैं इस दुर्लज राक्षस की आंखों के सामने से ओझल हो जाता हूं। यह वाक्य कहकर यमराज अपने रथ सहित वहां से अन्तर्धान हो गए। इसके बाद रावण अपनी विजय का डंका पिटवाता हुआ, पुष्पक विमान पर विराजमान हो, यमलोक से चल पड़ा। तत्पश्चात् पितामह ब्रह्मा, वैवस्वत यम एवं महामुनि महर्षि नारदजी प्रसन्नचित्त होकर ब्रह्मलोक को वापस चल दिए।

ततो जित्वा दशग्रीवो यमं त्रिदशपुङ्गवम् ।
रावणस्तु रणश्लाघी स्वसहायान् ददर्शह ।।892।।
ततो कधिरसिक्ताङ्गं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ।
रावणं राक्षसा दृष्ट्वा विस्मयं समुपागमन् ।।893।।
जयेन वर्धमित्वा च मारीच प्रमुखास्ततः ।
पुष्पकं भेजिरे सर्वे सान्त्विता रावणेन तु ।।894।।
ततो रसातलंरक्षः प्रविष्टः पयसां निधिम् ।
दैत्योरगगणाध्युष्टं वरुणेन सुरक्षितम् ।।895।।

रावण यमराज को परास्त करने के पश्चात्, अपने युद्ध-प्रिय साथियों को देखने के लिए उनके पास गया। उनके शरीर के सभी अंगों से रक्त बह रहा था तथा चोटों के कारण सारा शरीर जर्जर हो गया था। ऐसी हालत में वे राक्षस, रावण को वहां आया देखकर आश्चर्यचकित रह गए। इसके बाद मारीच आदि अन्य प्रमुख राक्षस 'दशानन महाराज की जय हो' नारे लगाते हुए पुष्पक विमान पर जा बैठे। रावण ने उस समय उनके प्रति अपनी सहानुभूति तथा सांत्वना जतायी। इसके बाद राक्षसराज रावण, रसातल में जाने की इच्छा लेकर, उन दैत्यों तथा नागों से सेवित और वरुण द्वारा सुरक्षित जलनिधि समुद्र में प्रवेश कर गया।

कवच दैत्यों से मित्रता

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम् ।
कृत्वा नागान् वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ।।896।।
निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवरा वसन् ।
राक्षसस्तान् समागम्य युद्धाय समुपाह्वयत् ।।897।।
ते तु सर्वे सुविक्रान्ता दैतेया बलशालिनः ।
नाना प्रहरणास्तत्र प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः ।।898।।
चाशूलैस्त्रिशूलैः कुलिशैः पहिशासिपरश्वधैः ।
अन्योन्यं बिभिदुः कुद्धा राक्षसा दानवास्तथा ।।899।।
तेषां तु युध्यमानाना साग्रः संवत्सरो गतः ।
न चान्यतरतस्तत्र विजयो वा क्षयोऽपि वा ।।900।।
ततः पितामहस्तत्र त्रैलोक्यगतिख्ययः ।
आजगाम द्रुतं देवो विमानवरमास्थितः ।।901।।
निवातकवचानां तु निवार्य रणकर्म तत् ।
वृद्धः पितामहो वाक्यमुवाच विदितार्थवत् ।।902।।
न ह्ययं रावणो युद्धे शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
न भवन्तः क्षयं नेतुमपि सामरदानवैः ।।903।।
राक्षसस्य सखित्वं च भवद्भिः सहरोचते ।
अविभक्ताश्च सर्वार्थाः सुहृदां नात्र संशयः ।।904।।

राक्षसराज रावण ने नागराज वासुकि द्वारा बसायी गई भोगवती पुरी में पहुंचकर वहां के नागों को अपने वश में कर लिया तथा प्रसन्न होकर वहां से मणिमयपुरी की ओर प्रस्थान कर गया। मणिमयपुरी में ब्रह्माजी द्वारा वरदान प्राप्त करने वाले कवच नाम के दैत्य रहते थे। रावण ने उन सभी को युद्ध करने के लिए ललकारा। वे सभी दैत्य बहुत पराक्रमी तथा बलशाली थे। वे सभी अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण किए हुए थे तथा हमेशा युद्ध करने के लिए उत्सुक रहते थे। रावण के साथी तथा वह सभी दैत्य त्रिशूल, पट्टिश, कुलिश, असि और परशु ले-लेकर आपस में भिड़ गए। उनको युद्ध करते हुए एक अरसा बीत गया, लेकिन दोनों में से किसी भी पक्ष की हार-जीत नहीं हुई। उस समय तीनों लोकों के आश्रय भूत पितामह ब्रह्माजी वहां आ गए। ब्रह्माजी ने दोनों ओर के शूरवीर योद्धाओं निवात कवचों को युद्ध कर्म से रोकते हुए कहा—देवता-दैत्य भी मिलकर रावण को युद्ध क्षेत्र में नहीं हरा सकते। ठीक उसी प्रकार समस्त देवता तथा दैत्य भी मिलकर तुमको नहीं परास्त कर सकते। अतः मुझे तुम दोनों का मित्र बनना ही अति उत्तम प्रतीत होता है। इसका यह कारण है कि मित्रों के लक्ष्य समान होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

ततोऽग्निसाक्षिकं सख्यं कृतवांस्तत्र रावणः ।
निवातकवचैः सार्धं प्रीतिमानभवत् तदा ।।905।।
अर्चितस्तैर्यथान्यायं संवत्सरमथोषितः ।
स्वपुरान्निर्विशेषं च प्रियं प्राप्तो दशाननः ।।906।।

तत्रोपधार्य मायानां शतमेकं समाप्तवान् ।
सलिलेन्द्रपुरान्वेषी भ्रमतिस्म रसातलम् ।।907।।
ततोऽश्मनगरं नाम कालकेयैरधिष्ठितम् ।
गत्वातु कालकेयांश्च हत्वा तत्र बलोत्कटान् ।।908।।
शूर्पणख्याश्च भर्तार मसिना प्राच्छिनत् तदा ।
श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम् ।।909।।
जिह्वया संलिहन्तं च राक्षसं समरे तदा ।
तं विजित्य मुहूर्तेन जघ्ने दैत्यांश्चतुःशतम् ।।910।।
ततः पाण्डुरमेघामं कैलासमिव भास्वरम् ।
वरुण स्यालयं दिव्यमपश्यद् राक्षसाधियः ।।911।।

उस समय राक्षसराज रावण ने अग्नि को साक्षी मानकर निवात कवचों से मित्रता स्थापित कर ली। इस मित्रता से वह बहुत अधिक प्रसन्न हुआ। राक्षसराज रावण उन दैत्यों से उचित सम्मान पाकर एक वर्ष तक वहीं पर रुका रहा। वहां निवास करते हुए रावण को ठीक अपनी लङ्कापुरी जैसे विलास के साधन उपलब्ध हुए। वहां पर रहते हुए रावण ने अपने मित्र बने निवात कवचों से सौ तरह के मायावी ज्ञान प्राप्त किए। इसके पश्चात् वह वरुण लोक को ढूंढ़ता हुआ रसातल में भ्रमण करने लगा। उसी दौरान वह 'अश्म' नाम के नगर में जा पहुंचा। जहां पर 'कालकेय' नाम के दानव रहते थे। वहां पहुंचकर उस पराक्रमी राक्षसराज रावण ने उन दानवों को मार डाला। रावण ने अपनी तलवार के घोर प्रहार से अपनी बहन (शूर्पणखा) के पति महाबलवान् विद्युज्जिह्व नाम के दानव को मौत के घाट उतार दिया। क्योंकि वह दानव युद्ध क्षेत्र में रावण को अपनी जीभ से चाटकर मार डालना चाहता था। उस दानव को मारने के पश्चात् रावण ने दो घड़ी में चार सौ दानवों को और मार डाला। उसके बाद रावण ने वरुण देव के बादलों के समान उज्ज्वल और कैलास पर्वत की तरह प्रकाशमान दिव्य भवन को देखा।

क्षरन्तीं च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम् ।
यस्याः पयोऽभिनिष्पन्दात् क्षीरोदो नाम सागरः ।।912।।
ददर्श रावणस्तत्र गोवृषेन्द्रवरारणिम् ।
यस्माच्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिर्निशाकरः ।।913।।
यं समाश्रित्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः ।
अमृतं यत्र चोत्पन्नं स्वधा च स्वधभोजिनाम् ।।914।।
ब्रुवन्ति नरा लोके सुरभिं नाम नामतः ।
प्रदक्षिणं तु तां कृत्वा रावणः परमाद्भुताम् ।
प्रविवेश महोघोरं गुप्तं बहुविधैर्बलैः ।।915।।

वहीं पर 'सुरभि' नाम की एक गाय खड़ी थी, जिसके थनों से लगातार दूध बह रहा था। उसी दूध की बहती हुई धारा से यह 'क्षीरोद' नाम का समुद्र भरा हुआ है। तब रावण ने वहां पर शिवजी तथा महावृषभ नन्दी को जन्म देने वाली सुरभि देवी के दर्शन प्राप्त किए, जिनके द्वारा निशाचर शीत-रश्मि का भी उद्गम हुआ था (सुरभि के दूध से समुद्र और समुद्र से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है)। जिस चन्द्रमा के उत्पत्ति क्षीर समुद्र के फेन को पीकर महर्षिगण के जीवन उत्पन्न हुए हैं (और उस क्षीर-समुद्र से, इसके द्वारा ही अमृत-पायी पितरों की भी स्वधा प्रकट हुई है),

तीनों लोकों में 'सुरभि' के नाम से जाना जाता है। परंतु तेजस्वी-अद्भुत गाय की रावण ने अभिवंदना की और उसके पश्चात् उसने कई प्रकार की सेनाओं से सुरक्षित, महाभयंकर और गुप्त वरुणास्थल में प्रवेश किया।

वरुण-पुत्रों से संघर्ष

ततो धाराशताकीर्णं शारदाभ्रनिभं तदा ।
नित्य प्रहृष्टं दहशे वरुणस्य गृहोत्तमम् ।।916।।
ततो हत्वा बलाध्यक्षान् समरे तैश्च ताडितः ।
अब्रवीच्य ततो योधान् राजा शीघ्रं निवेद्यताम् ।।917।।
युद्धार्थी रावणः प्राप्तस्तस्य युद्धं प्रदीयताम् ।
वद वा न भयं तेऽस्ति निर्जितोऽस्मीति साञ्जलिः ।।918।।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मनः ।
पुत्राः पौत्राश्च निष्क्रामन् गौश्च पुष्कर एव च ।।919।।
ते तु तत्र गुणोपेता बलैः परिवृताः स्वकैः ।
युक्त्वा रथान् कामगमानुद्यद्भास्करवर्चसः ।।920।।
ततो युद्धं समभवद् दारुणं रोमहर्षणम् ।
सलिलेन्द्रस्य पुत्राणां रावणस्य च धीमतः ।।921।।
अमात्यैश्च महावीर्यैदशग्रीवस्य रक्षसः ।
वारुणंतद् बलं सर्वं क्षणेन विनिणतितम् ।।922।।
समीक्ष्य स्वबलं संख्ये वरुणस्य सुतास्तदा ।
अर्दिताः शरजालेन निवृता रणकर्मणः ।।923।।
महीतलगतास्ते तु रावणं दृश्य पुष्पके ।
आकाशमाशु विविशुः स्यन्दनैः शीघ्रगामिभिः ।।924।।
महादासीत् ततस्तेषां तुल्यं स्थानमवाप्य तत् ।
आकाशयुद्धं तुमुलं देवदानवयोरिव ।।925।।

वहां पहुंचकर रावण ने सैकड़ों जलधाराओं से परिव्याप्त, शरदकाल के बादलों की तरह उज्ज्वल और नित्य आनन्दोत्सव से परिपूर्ण रहने वाले वरुण देव का उत्तम भवन देखा। जब उस स्थान के रक्षकों ने रावण पर प्रहार किया, तो राक्षसराज रावण ने उन सभी को घायल करके यह कहा कि तुम अपने राजा के पास जाकर उसको मेरा संदेश पहुंचा दो। रावण तुमसे युद्ध करने के लिए बेकरार है, क्योंकि तुम या तो मुझसे युद्ध करो या हाथ जोड़कर यह कहो कि मुझे अपनी पराजय स्वीकार है, फिर तुमको मुझसे कोई डर नहीं रहेगा।

यह समाचार पाकर, उसी समय वहां पर महात्मा वरुण के पुत्र और पौत्रगण 'गौ' एवं 'पुष्कर' नामक सेनापति क्रोधित होकर आ पहुंचे। वे महाबलवान् तथा सभी गुणों से सम्पन्न थे। वे सूर्य के समान परम तेजस्वी एवं इच्छानुसार चलने वाले रथों पर सवार होकर अपनी समस्त सेना को साथ लेकर आ पहुंचे, जहां पर राक्षसराज रावण खड़ा हुआ था। इसके पश्चात् महाबली रावण और महादेव वरुण देव के पुत्रों के बीच बहुत भयंकर एवं रोंगटे खड़े कर देने वाला

महायुद्ध शुरू हो गया। महाबली रावण के पराक्रमी मन्त्रियों ने कुछ ही क्षणों में वरुण देव की समस्त सेना को मृत्युलोक पहुंचा दिया। अपनी सेना की यह हालत देखकर तथा वरुण पुत्र स्वयं भी बाणों से घायल होने के कारण कुछ समय के लिए युद्ध के कार्यों से विरत हो गए। तब वरुण पुत्रों ने पृथ्वी पर खड़े होकर पुष्पक विमान पर सवार रावण को देखा। फिर वह भी जल्द ही अपनी सवारी पर सवार हो आकाश में जा पहुंचे। बराबर के स्थान पर पहुंचकर वरुण पुत्रों ने रावण से भयंकर युद्ध आरंभ कर दिया। आकाश में हो रहा वह भयंकर विनाशी युद्ध देवासुर संग्राम की भांति प्रतीत हो रहा था।

ततस्ते रावणं युद्धे शरैः पावकसंनिभैः ।
विमुखीकृत्य संहृष्टा विनेदुर्विविधान्रवान् ।।926।।
ततो महोदरः क्रुद्धो राजानं वीक्ष्य धर्षितम् ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं वीरो युद्धाकांक्षी व्यलोकयत् ।।927।।
तेन ते वारुणा युद्धे कामगाः पवनोपमाः ।
महोदरेण गदया हयास्ते प्रययुः क्षितिम् ।।928।।
तेषां वरुणसूनूनां हत्वा योधान् हयांश्च तान् ।
मुमोचाशु महानादं विरथान् प्रेक्ष्य तान् स्थिताम् ।।929।।
ते तु तेषां रथाः साश्वाः सह सारथिभिर्वरैः ।
महोदरेण निहताः पतिताः पृथिवी तले ।।930।।
ते तु त्यक्त्वा रथान् पुत्रा वरुणस्य महात्मनः ।
आकाशे विष्ठिताः शूराः स्वप्रभावान्न विव्यथुः ।।931।।
धनूंषि कृत्वा सज्जानि विनिर्मिद्य महोदरम् ।
रावणं समरे क्रुद्धाः सहिताः समवारयन् ।।932।।
सायकैश्चापविभ्रष्टैर्वज्रकल्पैः सुदारुणैः ।
दारयन्ति स्म सत्कुंद्धा मेघा इव महागिरिम् ।।933।।
ततः क्रुद्धो दशग्रीवः कालाग्निरिव मूर्च्छितः ।
शरवर्षं महाघोरं तेषां मर्मस्वपातयत् ।।934।।
मुसलानि विचित्राणि ततो भल्लशतानि च ।
पट्टिशांश्चैव शक्तीश्च शतघ्नीर्महतीरपि ।।935।।
पातयामास दुर्धर्षस्तेषामुपरि विष्ठितः ।
अपविद्धास्तु ते वीरा विनिष्येतुः पदातयः ।।936।।
ततस्तेनैव सहसा सीदन्ति स्म पदातिनः ।
महापङ्कमिवासाद्य कुञ्जराः षष्टिहायनाः ।।937।।
सीद्मानान् सुतान् हृष्ट्वा विह्वलान् स महाबलः ।
ननाद् रावणो हर्षान्महानम्बुधरो यथा ।।938।।
ततो रक्षो महानादान् मुक्त्वा हन्ति स्म वारुणान् ।
नानान्ध्यहरणोपेतैर्धारापातैरिवाम्वुदः ।।939।।
ततस्तेविमुखाः सर्वे पतिता धरणीतले ।
रणात् स्वपुरुषैः शीघ्रं गृहाण्येव प्रवेशिताः ।।940।।

उस समय वरुणदेव के पुत्रों ने अग्नि के समान परम तेजस्वी बाणों की वर्षा करते हुए रावण को युद्ध क्षेत्र से हटा दिया तथा प्रसन्न होकर ऊंचे-ऊंचे स्वर में गरजने लगे। अपने राजा-स्वामी रावण को इस प्रकार हारा एवं अपमानित देखकर 'महोदर' नाम के राक्षस को बहुत क्रोध आया। वह मृत्यु की परवाह न करता हुआ, वरुण-पुत्रों से युद्ध की इच्छा को जाहिर करते हुए उनको देखने लगा। वरुण-पुत्रों के रथों के घोड़े युद्ध क्षेत्र में हवा से बातें कर रहे थे। राक्षस महोदर ने अपनी गदा से उन पर गहरा प्रहार किया, जिसके आघात से वह पृथ्वी पर गिर पड़े।

वरुण-पुत्रों के अनेक योद्धाओं एवं घोड़ों को मृत्यु को सौंपने के पश्चात् तथा उनके रथों की बुरी दशा देखकर वह राक्षस महोदर जोर-जोर से बादलों के समान गरजने लगा। महोदर द्वारा किए गए घोर प्रहार के पश्चात् रथ, उन रथों के श्रेष्ठ सारथी एवं घोड़े पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय वरुण के पुत्र अपने पराक्रम तथा तेज के प्रभाव से अपने रथों को छोड़कर आकाश में खड़े हो गए। उनको ऐसा करने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। अपने अनेक तेजस्वी बाणों के प्रहार से उन्होंने महोदर के शरीर को जर्जर एवं क्षत-विक्षत कर डाला। उसके पश्चात् उन वरुण-पुत्रों ने राक्षसराज रावण को घेर लिया। जिस तरह मेघराज पर्वत पर वर्षा करते हैं, उसी प्रकार उन वरुण-पुत्रों ने अत्यन्त क्रोध में आकर अपने तीखे बाणों के प्रहार से रावण के शरीर को भयंकर चोटें पहुंचाना शुरू कर दिया। तब राक्षसराज रावण अग्नि की तरह अत्यन्त क्रोधित होकर, वरुण-पुत्रों के शरीर के मर्मस्थानों पर भयानक बाणों की वर्षा करने लगा।

पुष्पक विमान पर विराजमान उस दुर्लज योद्धा ने वरुण-पुत्रों के ऊपर अनेक मूसलों, पट्टिशों, सैकड़ों भालों, भयानक शक्तियों और बड़ी-बड़ी शतघ्नियों का गहरा प्रहार किया। उन अस्त्रों से घायल होने पर भी वे पैदलवीर रावण से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। लेकिन उन वरुण-पुत्रों के पैदल होने के कारण रावण द्वारा की जाने वाली अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा में ठीक उसी प्रकार फंस गए, जिस तरह कीचड़ में फंसकर हाथी कष्ट का अनुभव करता है। वरुण पुत्रों को व्याकुल तथा दुःखी देखकर, राक्षसराज रावण मेघ की तरह हर्ष-गर्जन करने लगा। राक्षसराज रावण चिल्लाता हुआ अपने अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से वरुण-पुत्रों को उस प्रकार मारने लगा, जिस प्रकार बादल निरन्तर वर्षा करके पेड़ों को कष्ट पहुंचाते हैं। उसके बाद वे सभी वरुण-पुत्र मृत होकर युद्ध क्षेत्र से विमुख हो पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके सेवकों ने शीघ्रतापूर्वक उनको वहां से हटाकर, उन्हें घर पहुंचा दिया।

रावण द्वारा दुराचार

तान् ब्रवीत ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम् ।
रावणं त्वब्रवीन्मन्त्री प्रहासो नाम वारुणः ।।941।।
गतः खलु महाराजो ब्रह्मलोकं जलेश्वरः ।
गान्धर्वं: वरुणः श्रोतुं यं त्वमाह्वयसे युधि ।।942।।
तत्किं तव यथा वीर परिश्रम्य गते नृपे ।
ये तु संनिहिता वीराः कुमारास्ते पराजिताः ।।943।।
राक्षसेन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
हर्षान्नादं विमुञ्चन् वै निष्क्रान्तो वरुणालयात् ।।944।।

आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्य सः ।
लङ्कामभिमुखो रक्षो नभस्तलगतो ययौ ।।945।।

इसके पश्चात् रावण ने वरुण देव के सेवकों से कहा—अब तुम अपने स्वामी वरुण से युद्ध करने के लिए कहो। इसका उत्तर देते हुए वरुण देव के 'प्रभास' नामक मन्त्री ने रावण से कहा—जिन्हें तुम युद्ध करने के लिए बुला रहे हो, वह जल के स्वामी महाराज वरुण देव इस समय संगीत सुनने की इच्छा से ब्रह्मलोक गए हैं। हे वीर! वरुण देव की अनुपस्थिति में तुम्हारा युद्ध करने के लिए ठहरा रहना व्यर्थ काम है। उनके जो पुत्र यहां पर थे, वे तो तुमसे युद्ध करके पराजित हो चुके हैं। यह वाक्य सुनने के बाद रावण अपने नाम की गर्जना करता हुआ, वरुणालय से चला गया। रावण जिस मार्ग से वरुणालय आया था, उसी आकाश मार्ग से लङ्कापुरी की ओर चला गया।

निवर्तमानः संहृष्टो रावणः स दुरात्मवान् ।
जह्रे पथि नरेन्द्रर्षिदेवदानव कन्यकाः ।।946।।
दर्शनीयां हि यां रक्षः कन्या स्त्रीं वाथ पश्यति ।
हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोध सः ।।947।।
एवं पन्नगकन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः ।
यक्षदानव कन्याश्च विमाने सोऽध्यरोपयत् ।।948।।
ता हि सर्वाः समं दुःखान्मुमुचुर्बाष्पजं जलम् ।
तुल्यमग्न्यर्चिषां तत्र शोकाग्निभयसम्भवम् ।।949।।
ताभिः सर्वानवद्याभिर्नदीभिरिव सागरः ।
आपूरितं विमानं तद् भयशोकाशिवाश्रुभिः ।।950।।
नाग गन्धर्व कन्याश्च महर्षि तन्याश्च याः ।
दैत्य दानव कन्याश्च विमाने शतशोऽरुदन् ।।951।।

लंका वापस लौटते समय रावण अत्यन्त प्रसन्न था। उसने रास्ते में मनुष्यों, ऋषियों, दानवों और देवताओं की कन्याओं का जबरदस्ती अपहरण कर लिया। रावण जिस किसी कन्या या स्त्री को सुंदर और दर्शनीय स्वरूप में देखता था, उसके बन्धुजनों को मारकर उसे अपने पुष्पक विमान में बैठा लेता था। इसी तरह रावण ने असुरों, नागों, राक्षसों, दानवों और यक्षों की अनेक कन्याओं का जबरदस्ती अपहरण करके उन्हें विमान में बैठा लिया था। वे सभी कन्याएं अपना एक समान दुःख होने के कारण आंसू बहा-बहाकर रो रही थीं। शोक तथा भय के कारण उन कन्याओं की आंखों से बहने वाली प्रत्येक आंसू की बूंद आग की चिन्गारी की तरह लग रही थी। उन सभी सुंदर कन्याओं के शोक तथा भय से उत्पन्न अमंगलकारक आंसुओं ने उस पुष्पक विमान को ठीक उसी प्रकार भर दिया, जिस तरह से मछलियां समुद्र को भर देती हैं। गन्धर्व, नागों, महर्षि, दानवों, दैत्यों और देवताओं की सैकड़ों कन्याएं विमान में बैठी रो रही थीं।

दीर्घकेश्यः सुचार्वङ्ग्यः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
पीनस्तनतटा मध्ये वज्रवेदिसमप्रभाः ।।952।।
रथ कूबर संकाशैः श्रोणिदेशैर्मनोहराः ।
स्त्रियः सुराङ्गनाप्रख्या निष्टप्तकनकप्रभाः ।।953।।
शोक दुःखभयत्रस्ता विह्वलाश्च सुमध्यमाः ।

तासां निःश्वासवातेन सर्वतः सम्प्रदीपितम् ।।954।।
अग्निहोत्रमिवाभाति सनिरुद्धाग्नि पुष्पकम् ।
दशग्रीववंश प्राप्तास्तास्तु शोकाकुलाः स्त्रियः ।।955।।
दीनवक्त्रेक्षणाः श्यामा मृग्यः सिंहवशा इव ।
काचिच्चिंतयती तत्र किं नु मां भक्षयिष्यति ।।956।।
काचिद् दध्यौ सुदुःखार्ता अपि मांमहरयेदयम् ।
इति मातृ, पितृन् स्मृत्वा भर्तृन् भ्रातृंस्तयैव च ।।957।।
दुःख शोक समाविष्टा विलेपुः सहिताःस्त्रियः ।
कथं नु खलु में पुत्रो भविष्यति मया विना ।।958।।
कथं माता कथं भ्राता निमग्नाः शोकसागरे ।
हा कथं नु करिष्यामि भर्तुस्तस्मादहं विना ।।959।।
मृत्यो प्रसादयामि त्वां नय मां दुःखभागिनीम् ।
किं तु तद् दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम ।।960।।
एवं स्म दुःखिताः सर्वाः पतिताः शोकसागरे ।
न खल्विदानीं पश्यामो दुःखस्यास्यान्तमात्मनः ।।961।।

वे सभी कन्याएं, मनोहर तथा सुंदर अङ्गों वाली, चन्द्रमा के समान कान्ति युक्त मुख वाली, रथ के कूबर जैसे मनोहर श्रोणि देश वाली, उन्नत स्तनों वाली, हीरे की चौकी की तरह मध्य भाग वाली, देव नारियों की तरह कान्तिमान और तपते हुए स्वर्ण की आभा तुल्य शरीर के समान थीं। शोक, दुःख एवं भय से वे सुन्दर मध्य भाग वाली स्त्रियां पीड़ित तथा विह्वल हो रही थीं। वह पुष्पक विमान उन सभी कन्याओं की गरम निःश्वास वायु के कारण चारों तरफ से प्रज्वलित सा लगता था। ऐसा लगता था, जैसे उस विमान के भीतर अग्नि स्थापित की गई हो। वह शोकाकुल स्त्रियां दशग्रीव के वश में पड़ी हुई इस तरह दीन दिखाई पड़ती थीं, जिस प्रकार शेर के पंजे में पड़ी हुई हिरणियां दिखाई पड़ती हैं। उनमें से कोई यह सोचती थी—क्या यह राक्षस हमें खा जाएगा? कोई दुःख से ग्रस्त होकर इस चिन्ता में लगी रहती थी कि संभवतः यह राक्षस मुझे मार डालेगा। वे सभी अपने माता-पिता, भाई, बहन तथा अन्य घर वालों को याद कर रही थीं। अपने कष्टों और दुःखों से पीड़ित वे सभी एक साथ होकर विलाप करने लगती थीं—मेरे माता और भाई किस तरह रह रहे होंगे? मेरा पुत्र मेरे बिना कैसे रह पाएगा? वे सभी शोक में डूबकर यह सोचती थीं कि हाय! अपने पति परमेश्वर से बिछड़कर क्या करूंगी? हे मृत्युदेव! तुम मुझ पर यह अहसान करो और मुझे अपने पास बुला लो। इस प्रकार सभी स्त्रियां शोक-सागर में डूबी हुई यह सोच रही थीं, मगर उनके इस दुःख का अन्त होता नहीं दिखाई देता था।

अहो धिङ्मानुषं लोकं नास्ति खल्वधमः परः ।
यद् दुर्बला बलवता भर्तारो रावणेन नः ।।962।।
सूर्येणोदयता काले नक्षत्राणीव नाशिताः ।
अहो सुबलवद् रक्षो वधोपायेषु रज्यते ।।963।।
अहो दुर्वृत्तमास्थाय नात्मानं वै जुगुप्सते ।
सर्वथा सदृशस्तावद् विक्रमोऽस्य दुरात्मनः ।।964।।

अरे! इस मनुष्य लोक को धिक्कार है। इससे अधिक अधम कोई अन्य लोक नहीं होगा,

क्योंकि इसमें हमारे दुर्बल पतियों को रावण ने उसी प्रकार नष्ट कर दिया है, जिस प्रकार सूर्यदेव अपने उदय-काल में नक्षत्रों को नष्ट कर देते हैं। अरे, यह बलवान् राक्षस केवल हिंसा के उपायों में ही लगा रहता है। यह पापी दुराचार के मार्ग पर चलता हुआ स्वयं को धिक्कारता भी नहीं है। इस दुरात्मा का पराक्रम इसकी तपस्या के अनुरूप ही है।

साध्वी स्त्रियों द्वारा रावण को शाप

इदं त्वसदृशं कर्म परदाराभिमर्शनम् ।
यस्मादेष परक्यासु रमते राक्षसाधमः ।।965।।
तस्माद् वै स्त्रीकृतेनैव वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ।
सतीभिर्वरनारीभिरेवं वाक्येऽभ्युदीरिते ।।966।।
नेदुर्दुन्दुभयः स्वस्थाः पुष्पवृष्टिः पपात च ।
शप्तः स्त्रीभिः स तु समं हतौजाइव निष्प्रभः ।।967।।
पतिव्रताभिः साध्वीभिर्बभूव विमना इव ।
एवं विलपितं तासां शृण्वन् राक्षसपुङ्गवः ।।968।।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ।
एतस्मिन्नन्तरे घोरा राक्षसी कामरूपिणी ।।969।।
सहसा पतिता भूमौ भगिनी रावणस्य सा ।
तां स्वसारं समुत्थाप्य रावणः परिसान्त्वयन् ।।970।।

परन्तु यह जो परस्त्रियों के साथ बलात्कार कर रहा है, यह दुष्कर्म इसके योग्य नहीं है। यह अधम राक्षस परस्त्रियों के साथ रमण करता है। अतः स्त्री के कारण ही इस दुर्बुद्धि का वध भी होगा। सती एवं श्रेष्ठ स्त्रियों ने जब ऐसे वाक्य कहे, उस समय आकाश-स्थित देवताओं की दुन्दुभियां बज उठीं तथा वे फूलों की वर्षा करने लगे। साध्वी स्त्रियों द्वारा इस प्रकार शाप दिए जाने पर रावण का तेज नष्ट हो गया और वह अनमना-सा दिखाई देने लगा। इस प्रकार उन स्त्रियों का विलाप सुनते हुए राक्षसश्रेष्ठ रावण ने निशाचरों द्वारा पूजित होते हुए लङ्कापुरी में प्रवेश किया। उसी समय इच्छानुसार स्वरूप धारण कर लेने वाली, भयंकर राक्षसी, रावण की बहन शूर्पणखा सहसा सामने आकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। तब रावण ने उसे सहारा देकर उठाया तथा सान्त्वना देते हुए कहा—

अब्रवीद् किमिदं भद्रे वक्तुकामासि मां द्रुतम् ।
स वाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत् ।।971।।

हे भद्रे! इस समय तुम मुझसे शीघ्रतापूर्वक क्या कहना चाहती हो? शूर्पणखा की आंखों में आंसू भरे हुए थे तथा रोते रहने के कारण वे लाल भी हो गईं थीं। उसने कहा—

कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात् ।
एते राजंस्त्वया वीर्याद् दैत्या विनिहता रणे ।।972।।
कालकेया इति ख्याताः सहस्राणि चतुर्दश ।
प्राणेभ्योऽपि गरीयान् मे तत्र भर्ता महाबलः ।।973।।

हे राजन्! तुम बलवान हो, अतः तुमने मुझे बलपूर्वक विधवा बना दिया है। हे राजन्! तुमने

अपने बल-पराक्रम से 'कालकेय' नामक चौदह सहस्र दैत्यों को युद्धभूमि में मार डाला है। उन्हीं में मेरे प्राणाधिक प्रिय पतिदेव भी थे।

सोऽपि त्वया हतस्तात रिपुणा भ्रातृगन्धिना ।
त्वयास्मि निहता राजन् स्वयमेव हि बन्धुना ।।974।।
राजन् वैधव्य शब्दं च भोक्ष्याभि त्वत्कृतं ह्यहम् ।
ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेष्वपि ।।975।।
स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे ।
एवमुक्तो दशग्रीवो भगिन्या क्रोशमानया ।।976।।
अब्रवीत् सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः ।
अलं वत्से रुदित्वा ते न भेतव्यं च सर्वशः ।।977।।
दानमानप्रसादैस्त्वां तोर्षायष्यामि यत्नतः ।
युद्धप्रमत्तो व्याक्षिप्तो जयाकांक्षी क्षिपञ्शरान् ।।978।।
नाहमाध्यासिषं युध्यन् स्वान् परान् वापि संयुगे ।
जामातरं नं जाने स्म प्रहरन् युद्धदुर्मदः ।।979।।

हे तात! तुमने उन्हें भी मार दिया। तुम भाई के रूप में मेरे शत्रु ही हो। हे राजन्! तुमने भाई होकर भी अपने हाथों मेरे पति का वध किया है। तुम्हारे इस कृत्य के कारण अब मुझे 'वैधव्य' शब्द का उपयोग करना पड़ेगा। तुमने युद्ध-क्षेत्र में अपने जामाता की रक्षा नहीं की (क्योंकि बड़े होने के कारण तुम मेरे पिता-तुल्य हो, अतः मेरे पतिदेव तुम्हारे जामाता के समान थे)। तुमने स्वयं ही युद्ध में उनका वध किया है और अब भी तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है। क्रुद्ध होकर विलाप करती हुई बहन के यह कहने पर दशग्रीव रावण ने उसे सान्त्वना देते हुए मधुर वाणी में इस प्रकार कहा—हे वत्से! अब तुम्हारा रोना व्यर्थ है। तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिए। मैं दान, मान और अनुग्रह द्वारा तुम्हें प्रयत्नपूर्वक सन्तुष्ट रखूंगा। युद्ध में प्रमत्त होने के कारण मैं विक्षिप्त जैसा हो गया था और विजय प्राप्ति की धुन में लगातार बाण चलाता रहा था। युद्ध के समय मुझे अपने-पराए का ज्ञान नहीं रहता। मैं युद्ध-दुर्मद होकर प्रहार कर रहा था, अतः अपने जामाता को नहीं पहचान सका।

तेनासौ निहतः संख्ये मया भर्ता तव स्वसः ।
अस्मिन् काले तु यत प्राप्तं तत करिष्यामि ते हितम् ।।980।।

हे बहन! इसी कारण युद्ध में तेरे पति मेरे द्वारा मारे गए। अब जो कर्तव्य करना आवश्यक है, उसके अनुसार मैं तुम्हारा हित-साधन करूंगा।

भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पार्श्वतः ।
चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति ।।981।।

तुम ऐश्वर्यशाली भाई खर के पास जाकर रहो। तुम्हारा भाई खर चौदह सहस्र राक्षसों का अधिपति होगा।

प्रभुः प्रयाणे दाने च राक्षसानां महाबलः ।
तत्र मातृष्वसेयस्ते भ्रातायं वै खरः प्रभुः ।।982।।
भविष्यति तवादेशं सदा कुर्वन् निशाचरः ।

शीघ्रं गच्छत्वयं वीरो दण्डकान् परिरक्षितुम् ।।983।।

यह महाबली उन सबको इधर-उधर भेजने तथा अन्न-पान-वस्त्र आदि देने में समर्थ होगा। यह तुम्हारा मौसेरा भाई राक्षसश्रेष्ठ खर सब कुछ करने में समर्थ है।

दूषणोऽस्य बलाध्यक्षो भविष्यति महाबलः ।
तत्र ते वचनं शूरः करिष्यति सदा खरः ।।984।।

वहां के सभी राक्षस तुम्हारे आदेश का पालन करेंगे। यह वीर दण्डकारण्य की रक्षा करेगा। तुम इसके साथ शीघ्र चली जाओ।

रक्षसां कामरूपाणां प्रभुरेष भविष्यति ।
एवमुक्त्वा दशग्रीवः सैन्यमस्यादिदेश ह ।।985।।

महाबली दूषण इसका सेनाध्यक्ष होगा। यह बलवान् खर तुम्हारी आज्ञा का पालन करता रहेगा।

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां वीर्यशालिनाम् ।
स तैः परिवृतः सर्वै राक्षसैर्घोरदर्शनैः ।।986।।
आगच्छत खरः शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः ।
स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम् ।।987।।
सा च शूर्पणखा तत्र न्यवसद् दण्डके बने ।।988।।

यह इच्छानुसार रूप धारण करने वाले राक्षसों का अधिपति होगा। यह कहकर दशग्रीव रावण ने चौदह सहस्र महाबली राक्षसों की सेना को खर के साथ जाने की आज्ञा दी। तब खर उन महाभयंकर राक्षसों से घिरा हुआ लङ्का से चल कर, शीघ्रतापूर्वक दण्डकारण्य में जा पहुंचा और वहां का निष्कंटक राज्य भोगने लगा। शूर्पणखा भी उसके साथ ही दण्डकवन में रहने लगी।

स तु दत्त्वा दशग्रीवो बलं घोरं खरस्य तत् ।
भगिनीं स समाश्वास्य हृष्टः स्वस्थतरोऽभवत् ।।989।।

खर को राक्षसों की भयंकर सेना का स्वामित्व देकर तथा बहन शूर्पणखा को सान्त्वना देकर रावण प्रसन्न एवं स्वस्थ-चित्त हो गया।

मेघनाद का यज्ञ अनुष्ठान

ततो निकुम्भिला नाम लङ्कपवनमुत्तमम् ।
तद् राक्षसेन्द्रो बलवान् प्रविवेश सहानुगः ।।990।।

तत्पश्चात् राक्षसेन्द्र बलशाली रावण अपने अनुचरों के साथ लङ्का के 'निकुम्भिला' नामक उत्तम उपवन में गया।

ततो यूप शताकीर्णं सौम्यचैत्योपशोभितम् ।
ददर्श विष्ठितं यज्ञं श्रिया सम्प्रज्वलन्निव ।।991।।

अग्नि के समान प्रदीप्त शरीर वाले रावण ने वहां पहुंचकर, सैकड़ों यूपों से व्याप्त तथा सुन्दर देवालयों के सुशोभित एक यज्ञमण्डप को देखा।

ततः कृष्णाजिनधरं कमण्डलुशिखाध्वजम् ।

ददर्श स्वसुतं तत्र मेघनादं भयावहम् ।।992।।

वहीं उसने कृष्णमृग चर्म पहने तथा कमण्डलु, शिखा एवं ध्वज धारण किए हुए भयंकर रूप वाले अपने पुत्र मेघनाद को भी देखा।

तं समासाद्य लङ्केशः परिष्वज्याथ बाहुभिः ।
अब्रवीत् किमिदं वत्स वर्तसे ब्रूहि तत्त्वतः ।।993।।

लङ्केश्वर रावण ने उसके समीप पहुंचकर, उसे अपनी भुजाओं में भर लिया। तदुपरान्त कहा—हे पुत्र! तुम यह सब क्या कर रहे हो, वह मुझे बताओ।

उशना त्वब्रवीत् तत्र यज्ञसम्पत्समृद्धये ।
रावणं राक्षसश्रेष्ठं द्विज श्रेष्ठो महातपाः ।।994।।

उस समय (यज्ञ के नियमानुसार मेघनाद तो मौन रहा) यज्ञ की सम्पत्ति की समृद्धि हेतु पधारे हुए पुरोहितवर्य महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्य ने राक्षसश्रेष्ठ रावण से इस प्रकार कहा—

अहमाख्यामि ते राजञ्श्रूयतां सर्वमेव तत् ।
यज्ञास्ते सप्त पुत्रेण प्राप्तास्ते बहुविस्तराः ।।995।।

हे राजन्! मैं तुम्हें सब कुछ बताता हूं। ध्यान देकर सुनो—आपके पुत्र ने बड़े विस्तार के साथ यज्ञों का अनुष्ठान किया है।

अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च यज्ञो बहुसुवर्णकः ।
राजसूयस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा ।।996।।
माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुम्भिः सुदुर्लभे ।
वरांस्ते लब्धवान् पुत्रः साक्षात् पशुपतेरिह ।।997।।

अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव—इन छः यज्ञों को पूर्ण करने के पश्चात् अब सातवां 'माहेश्वर' नामक यज्ञ, जिसका अनुष्ठान अन्यों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है, आरंभ किया है। यज्ञों के फलस्वरूप आपके पुत्र को साक्षात् भगवान् पशुपति से अनेक वर प्राप्त हुए हैं।

कामगं स्पन्दनं दिव्यमन्तरिक्ष चरं ध्रुवम् ।
मायां च तामसीं नाम यया सम्पद्यते तमः ।।998।।

अन्तरिक्ष में इच्छानुसार भ्रमण करने वाले एक दिव्य रथ के साथ ही इसे 'तामसी' नामक माया की उपलब्धि भी हुई है। उसके द्वारा अंधकार उत्पन्न किया जा सकता है।

एतया किल संग्रामे मायया राक्षसेश्वर ।
प्रयुक्तया गतिः शक्या नहि ज्ञातुं सुरासुरैः ।।999।।

हे राक्षसेश्वर! युद्धक्षेत्र में इस माया का प्रयोग किए जाने पर देवता तथा असुरों को भी इसके प्रयोगकर्ता की गतिविधियों का पता नहीं चल सकता।

अक्षया विबुधी वाणैश्चापं चापि सुदुर्जयम् ।
अस्त्रं च बलवद् राजञ्छत्रुविध्वंसनं रणे ।।1000।।

हे राजन्! बाणों से भरे हुए दो अक्षय तरकस, न टूटने वाले धनुष तथा युद्ध-क्षेत्र में शत्रु का विध्वंस करने वाले शक्तिशाली अस्त्रों की भी उपलब्धि हुई है।

एतान् सर्वान् वरांल्लब्ध्वा पुत्रस्तेऽयं दशानन ।

अद्य यज्ञसमाप्तौ च त्वां दिहक्षन् स्थितो ह्यहम् ।।1001।।

हे दशानन! इन सब वांछित वरों को प्राप्त कर लेने के बाद तुम्हारा यह पुत्र आज तुम्हारे दर्शनों की इच्छा से यहां समुपस्थित है।

ततोऽब्रवीद् दशग्रीवो न शोभनमिदं कृतम् ।
पूजिताः शत्रवो यस्माद् द्रव्यैरिन्द्र पुरोगमाः ।।1002।।

यह सुनकर दशग्रीव रावण बोला—हे पुत्र! यह तुमने अच्छा नहीं किया, क्योंकि इन यज्ञों के द्रव्यों द्वारा मेरे शत्रुओं—इन्द्रादि देवताओं—का पूजन हुआ है।

एहीदानीं कृतं यद्धि सुकृतं तन्न संशयः ।
आगच्छ सौम्य गच्छामः स्वमेव भवनं प्रति ।।1003।।

अब जो कुछ तुमने कर दिया, वह ठीक है। उसमें सन्देह की कोई बात नहीं है। हे सौम्य! आओ, अब हम लोग अपने घर को चलें।

ततो गत्वा दशग्रीवः सुपुत्रः सविभीषणः ।
स्त्रियोऽवतारयामास सर्वास्ता वाष्पगद्‌गदाः ।।1004।।

इसके बाद दशग्रीव रावण अपने पुत्र मेघनाद तथा भाई विभीषण को साथ लेकर अपने पुष्पक विमान के पास जा पहुंचा। वहां उसने विमान में बैठी हुई उन सब स्त्रियों को नीचे उतारा, जिन्हें वह हरण करके ले आया था तथा जो वाष्प-गद्‌गद् कण्ठ से विलाप करती हुई आंसू बहा रहीं थीं।

लक्षिण्यो रत्नभूताश्च देवदानवरक्षसाम् ।
तस्य तासु मतिं ज्ञात्वा धर्मात्मा वाक्यमब्रवीत् ।।1005।।

वे शुभ लक्षणों से सम्पन्न देवता, दानव तथा राक्षसों के परिवारों की रत्नरूपा थीं। उनमें रावण की आसक्ति जानकर धर्मात्मा विभीषण ने इस प्रकार कहा—

ईदृशैस्त्वं समाचारैर्यशोऽर्थकुलनाशनैः ।
धर्षणं प्राणिनां ज्ञात्वा स्वमतेन विचेष्टसे ।।1006।।

हे राजन्! तुम्हारे ऐसे आचरण यश, ऐश्वर्य तथा कुल को नष्ट करने वाले सिद्ध होंगे। प्राणियों को पीड़ा देने से जो पाप लगता है, उसे जानते हुए भी आप स्वेच्छाचार में प्रवृत्त हो रहे हैं।

कुम्भीनसी का अपहरण

ज्ञातींस्तान् धर्षयित्वेमास्त्वयाऽऽनीता वराङ्गनाः ।
त्वामतिक्रम्य मधुना राजन् कुम्भीनसी हृता ।।1007।।

हे राजन्! इधर आप इन बेचारी स्त्रियों का अपहरण करके ले आए हैं, उधर आपके पौरुष को ललकारते हुए मधु दैत्य ने 'कुम्भीनसी' का अपहरण कर लिया है।

रावणस्त्वब्रवीद् वाक्यं नावगच्छामि किंत्विदम् ।
कोऽयं यस्तु त्वयाऽऽख्यातो मधुरिव्येव नामतः ।।1008।।

यह सुनकर रावण ने कहा—मैं समझा नहीं कि तुम क्या कह रहे हो? तुमने जिसका नाम 'मधु' बताया है, वह कौन है?

विभीषणस्तु संक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ।
श्रूयतामस्य पापस्य कर्मणः फलमागतण् ।।1009।।

तब विभीषण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर भाई रावण से कहा—सुनिए, आपके पाप-कर्म का फल ही इस रूप में प्रकट हुआ है।

मातामहस्य मोऽस्याकं ज्येष्ठोभ्राता सुमालिनः ।
माल्यवानिति विख्यातो वृद्धः प्राज्ञो निशाचरः ।।1010।।
पिता ज्येष्ठो जनन्या नोह्यस्माकं चार्यकोऽभवत् ।
तस्य कुम्भीनसी नाम दुहितुर्दुहिता भवत् ।।1011।।
मातृष्वसुरथास्माकं सा च कन्यानलोद्भवा ।
भवत्यस्माकमेवैषा भ्रातृणां धर्मतः स्वसा ।।1012।।

हमारे 'नाना' सुमाली के बड़े भाई 'माल्यवान्' एक विख्यात, वृद्ध एवं बुद्धिमान् निशाचर हैं। वे हमारी माता के 'ताऊ' हैं, अतः हमारे 'बड़े नाना' होते हैं। उनकी पुत्री 'अनला' की पुत्री का नाम 'कुम्भीनसी' है। 'अनला' हमारी मौसी हैं, अतः उनकी पुत्री 'कुम्भीनसी' धर्मानुसार हम सब भाइयों की बहन होती है।

सा हृता मधुना राजन् राक्षसेन बलीयसा ।
यज्ञप्रवृत्ते पुत्रे तु मयि चान्तर्जलोषिते ।।1013।।
कुम्भकर्णो महाराज निद्रामनुभवत्यथ ।
निहत्य राक्षसश्रेष्ठानमात्यानिह सम्मतान् ।।1014।।

हे राजन्! मधु ने उसी का बलपूर्वक अपहरण कर लिया है। जिस समय आपका पुत्र मेघनाद यज्ञ करने में लगा था, मैं तपस्या हेतु पानी के भीतर रह रहा था तथा कुम्भकर्ण निद्रामग्न थे; उसी समय मधु ने यहां आकर राक्षसों में श्रेष्ठ हमारे मन्त्रियों को मार डाला और कुम्भीनसी को ले गया।

धर्षयित्वा हृता सा तु गुप्ताप्यन्तः पुरे तव ।
श्रुत्वापि तन्महाराज क्षान्तमेव हतो न सः ।।1015।।
यस्मादवश्यं दातव्या कन्या भर्त्रे हि भ्रातृभिः ।
तदेतत् कर्मणो ह्यस्य फलं पापस्य दुर्मतेः ।।1016।।

हे महाराज! यद्यपि कुम्भीनसी गुप्त-अन्तःपुर में भली-भांति सुरक्षित थी, फिर भी वह बलपूर्वक आक्रमण करके उसका अपहरण करके ले ही गया। बाद में इस घटना को सुनकर हम लोगों ने उसे क्षमा ही कर दिया तथा यह सोचकर नहीं मारा कि जब कन्या विवाह के योग्य हो जाए तो उसे सुयोग्य पति के हाथों में सौंप देना चाहिए। हम लोगों को यह कार्य स्वयं ही बहुत पहले कर देना चाहिए था। परन्तु हमारे घर से कन्या का जो बलपूर्वक अपहरण हुआ है, यह आपकी ही दुष्टबुद्धि तथा पाप का फल है।

अस्मिन्नेवाभिसम्प्राप्तं लोके विदितमस्तु ते ।
विभीषण वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रः स रावणः ।।1017।।
दौरात्म्येनात्मनोद्भूतस्तप्ताम्भा इव सागरः ।
ततोऽब्रवीद् दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्त लोचनः ।।1018।।

आपको अपने पाप-कर्म का फल इसी लोक में प्राप्त हो गया, यह बात आप अच्छी तरह समझ लें। विभीषण की यह बात सुनकर राक्षसेन्द्र रावण अपनी दुष्टता के कारण पीड़ित था, तपे हुए जल वाले समुद्र की भांति संतप्त हो उठा। उसके नेत्र क्रोध के मारे लाल हो गए। फिर उसने इस प्रकार कहा—

कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं शूराः सज्जीभवन्तु नः ।
भ्राता मे कुम्भकर्णश्च ये च मुख्या निशाचराः ।।1019।।
वाहनान्यधिरोहन्तु नानाप्रहरणायुधाः ।
अद्य तं समरे हत्वा मधुं रावण निर्भयम् ।।1020।।
सुरलोकं गमिष्यामि युद्धाकांक्षी सुहृद्वृतः ।
अक्षौहिणी सहस्राणि चत्वार्यग्र्याणि रक्षसाम् ।।1021।।

मेरे रथ को तैयार किया जाए। शूरवीर सज जाएं। मेरा भाई कुम्भकर्ण एवं अन्य सभी मुख्य निशाचर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर वाहनों पर बैठें। आज रावण का भय न मानने वाले मधु को युद्ध में मारकर, मैं अपने मित्रों को साथ लेकर, युद्ध की इच्छा से देवलोक की यात्रा करूंगा। यह सुनकर चार हजार अक्षौहिणी राक्षसों की सेना—

नानाप्रहरणान्याशु निर्ययुर्युद्धकांक्षिणाम् ।
इन्द्रजित् त्वग्रतः सैन्यात् सैनिकान् परिगृह्य च ।।1022।।

अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर शीघ्रतापूर्वक लङ्का से बाहर निकल पड़ी। मेघनाद सभी सैनिकों को साथ लेकर सबसे आगे चला।

जगाम रावणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः ।
विभीषणश्च धर्मात्मा लङ्कायां धर्ममाचरन् ।।1023।।

रावण मध्यभाग में तथा कुम्भकर्ण सेना के पृष्ठ भाग में चल रहे थे। विभीषण धर्मात्मा थे, अतः वे लङ्का में ही रहकर धर्माचरण करने लगे।

रावण मधुपुरी पहुंचा

शेषाः सर्वे महाभागा युयुर्मधुपुरं प्रति ।
खरैरुष्ट्रैर्हयैर्दीप्तैः शिशुमारैर्महोरगैः ।।1024।।
राक्षसाः प्रययुः सर्वे कृत्वाऽऽकाशं निरन्तरम् ।
दैत्याश्च शतशस्तत्र कृतवैराश्च दैवतैः ।।1025।।
रावण प्रेक्ष्य गच्छन्तमन्वगच्छन् हि पृष्ठतः ।
स तु गत्वा मधुपुरं प्रविश्य च दशाननः ।।1026।।

शेष सभी महाभाग निशाचर मधुपुरी की ओर चल पड़े। गदहों, ऊंटों, घोड़ों, शिशुमारों (सूंसों) तथा बड़े-बड़े नागों (अजगरों) पर सवार होकर, वे सभी राक्षस मानो आकाश को पूरी तरह भरते हुए चल पड़े। रावण को देवलोक पर आक्रमण के लिए प्रस्थान करते हुए जानकर सैकड़ों दैत्य भी उसके पीछे-पीछे चल दिए, जिनकी देवताओं के साथ पुरानी दुश्मनी थी। दशानन रावण ने मधुपुरी में पहुंचकर—

न ददर्श मधुं तत्र भगिनीं तत्र दृष्टवान् ।

सा च प्रह्वाञ्जलिर्भूत्वा शिरसा चरणौ गता ।।1027।।
तस्य राक्षसराजस्य त्रस्ता कुम्भीनसी तदा ।
तां समुत्थापयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ।।1028।।
रावणो राक्षसश्रेष्ठः किं चापि करवाणि ते ।
साब्रवीद् यदि मे राजन् प्रसन्नस्त्वं महाभुज ।।1029।।
भर्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद ।
नहीदृशं भयं किंचित् कुलस्त्रीणामिहोच्यते ।।1030।।
भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत् ।
सत्यवाग् भव राजेन्द्र मामवेक्षस्व याचतीम् ।।1031।।
त्वयाप्युक्तं महाराज न भेतव्यमिति स्वयम् ।
रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टः स्वसारं तत्र संस्थिताम् ।।1032।।
क्व चासौ तव भर्ता वै मम शीघ्र निवेद्यताम् ।
सह तेन गमिष्यामि सुरलोकं जयाय हि ।।1033।।

मधु को तो वहां नहीं देखा, परन्तु बहन कुम्भीनसी दिखाई दी। उस समय कुम्भीनसी ने भयभीत हो, राक्षसराज के सम्मुख पहुंचकर हाथ जोड़ते हुए, अपना मस्तक उसके चरणों पर रख दिया। तब रावण ने उसे ऊपर उठाते हुए कहा—तुम डरो मत और यह बताओ कि मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूं? वह बोली—हे महाभुज राजन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो हे दूसरों को सम्मान देने वाले! आप मेरे पति का वध न करें। क्योंकि कुल-वधुओं के लिए वैधव्य के समान कोई अन्य भय नहीं है। उनके लिए यही सबसे बड़ा संकट है। हे राजेन्द्र! आप अपने वचन को सत्य सिद्ध करें। मैं आपसे यही मांगती हूं कि आपने 'डरो मत' कहा था, अतः आप अब मेरे इसी भय को दूर करके अपने वचन का पालन करें। यह सुनकर रावण ने प्रसन्न होकर अपने सामने खड़ी हुई बहन से कहा—तुम्हारे पति कहां हैं? उन्हें मेरे समक्ष शीघ्र उपस्थित करो। मैं उन्हें अपने साथ लेकर देवलोक पर विजय पाने के लिए जाऊंगा।

तव कारुण्य सौहार्दान्निवृत्तोऽस्मि मधोर्वधात् ।
इत्युक्ता सा समुत्थाप्य प्रसुप्तं तं निशाचरम् ।।1034।।
अब्रवीत् सम्प्रहृष्टेव राक्षसी सापतिं वचः ।
एष प्राप्तो दशग्रीवो मम भ्राता महाबलः ।।1035।।
सुरलोक जयाकांक्षी साहाय्ये त्वां वृणोति च ।
तदस्य त्वं सहायार्थं सबधुर्गच्छ राक्षस ।।1036।।

तुम्हारे प्रति करुणा और सौहार्द्र के कारण मैंने मधु के वध का विचार छोड़ दिया है। रावण के यह कहने पर राक्षसी कुम्भीनसी अपने सोए हुए पति के पास गई और उसे जगाकर उठाते हुए बोली—मेरे महाबली भाई दशग्रीव पधारे हैं। ये देवलोक पर विजय पाने के लिए जा रहे हैं, अतः आप अपने बन्धु-बान्धवों के साथ इनकी सहायता के लिए साथ जाएं।

स्निग्धस्य भजमानस्य युक्तमर्थाय कल्पितुम् ।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा तथेत्याह मधुर्वचः ।।1037।।

मेरे सम्बन्ध से इन्हें आपके प्रति स्नेह है। ये आपको जामाता मानते हैं, अतः आपको इनकी

सहायता करनी चाहिए। पत्नी के इन मीठे वचनों को सुनकर, मधु ने 'तथास्तु' (ऐसा ही होगा) कहा।

ददर्श राक्षसश्रेष्ठं यथान्यायमुपेत्य सः ।
पूजयामास धर्मेण रावणं राक्षसाधिपम् ।।1038।।

फिर वह उचित रीति से राक्षस श्रेष्ठ रावण के सम्मुख पहुंचा तथा धर्म के अनुसार उस राक्षसराज का स्वागत-आतिथ्य किया।

प्राप्यं पूजां दशग्रीवो मधुवेश्मनि वीर्यवान् ।
तत्र चैकां निशामुष्य गमनायोपचक्रमे ।।1039।।

मधु के आवास में यथोचित आतिथ्य पाने के बाद पराक्रमी रावण ने एक रात वहीं पर निवास किया तथा दूसरे दिन प्रातःकाल चलने की तैयारी की।

ततः कैलासमासाद्य शैलं वैश्रवणालयम् ।
राक्षसेन्द्रो महेन्द्राभः सेनामुपनिवेशयत् ।।1040।।

फिर महेन्द्र के समान पराक्रमी राक्षसेन्द्र रावण कुबेर के निवास-स्थान कैलाश पर्वत पर जा पहुंचा। वहां उसने अपनी सेना का पड़ाव डालने का विचार किया।

स तु तत्र दशग्रीवः सह सैन्येन वीर्यवान् ।
अस्तं प्राप्ते दिनकरे निवासं समरोचयत् ।।1041।।

सूर्य के अस्ताचलगामी हो जाने पर पराक्रमी रावण ने अपनी सेना के साथ रात्रि में कैलाश पर ठहर जाना ही उचित समझा।

उदिते विमले चन्द्रे तुल्यपर्वतवर्चसि ।
प्रसुप्तं सुमहत् सैन्यं नानाप्रहरणायुधम् ।।1042।।

निर्मल चन्द्रमा के उदय हो जाने पर, जो कैलाश पर्वत के समान ही श्वेत कान्ति वाला था, अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रावण की विशाल सेना वहीं निद्रामग्न हो गई।

रावणस्तु महावीर्यो निषण्णः शैलमूर्धनि ।
स ददर्श गुणांस्तत्र चन्द्रपादयशोभितान् ।।1043।।

महावीर्यवान् रावण उस पर्वत के शिखर पर बैठकर चन्द्रमा की चांदनी से सुशोभित उस स्थान की नैसर्गिक सुन्दर छटा का अवलोकन करने लगा।

कर्णिकारवनैर्दीप्तैः कदम्ब बकुलैस्तथा ।
पद्मिनीभिश्च फुल्लामिर्मन्दाकिन्या जलैरपि ।।1044।।
चम्पकाशोक पुंनागमन्दारतरुभिस्तथा ।
आम्र पाटललोध्रैश्च प्रियंग्वर्जुनकेतकै ।।1045।।
तगरैर्नारिकेलैश्च प्रियालपनसैस्तथा ।
एतैरन्यैश्च तरुभिरुद्भासितवनान्तरे ।।1046।।

कहीं कनेर के वन शोभायमान थे तो कहीं कदम्ब और मौलसिरी के वृक्ष थे। कहीं मन्दाकिनी के जल से भरी हुई तथा प्रफुल्ल कमलों (कुमुदों) से अलंकृत पुष्पकरिणियां थीं तो कहीं चम्पा, अशोक, नागकेसर, मदार के वृक्ष खड़े थे। आम, पाटल, लोध, प्रियंगु, अर्जुन, केतकी, तगर, नारियल, प्रियाल, पनस एवं अन्य प्रकार के वृक्ष अपने पुष्पों की शोभा से उस पर्वत-शिखर के

वनान्तर को उद्भासित कर रहे थे।

किन्नरा मदनेनार्ता खता मधुरकण्ठिनः ।
समं सम्प्रजगुर्यत्र मनस्तुष्टि विवर्धनम् ।।1047।।

किन्नर गण कामार्त्त होकर, अपनी मधुरकण्ठ वाली स्त्रियों के साथ रागों का आलाप कर रहे थे, जिन्हें सुनकर हृदय में आनन्द की वृद्धि होती थी।

विद्याधरा मदक्षीबा मदरक्तान्तलोचनाः ।
योषिद्भिः सह संक्रान्ताश्चिक्रीडुर्जदृषुश्च वै ।।1048।।

मद (नशा) के कारण लाल रंग के नेत्रों के कोये वाले विद्याधर अपनी पत्नियों के साथ क्रीड़ामग्न हो, प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे।

घंटानामिव मंनादः शुश्रुवे मधुरस्वनः ।
अप्सरोगणसङ्घानां गायतां धनदालये ।।1049।।

कुबेर के भवन में नृत्य-गायन करती हुई अप्सराओं के पांवों के घुंघरु तथा कण्ठ की मधुर ध्वनि घण्टा-नाद जैसी सुनाई दे रही थी।

पुष्पवर्षाणि मुञ्चन्तो नगाः पवनताडिताः ।
शैलं तं वासयन्तीव मधुमाधव गन्धिनः ।।1050।।

हवा के थपेड़े खाकर वृक्ष अपने पुष्पों की वर्षा द्वारा उस पर्वत को मधु-माधवी गंध से सुवासित तथा आच्छादित कर रहे थे।

मधुपुष्परजःपृक्तं गन्धमादाय पुष्कलम् ।
प्रववौ वर्धयन् कामं रावणस्य सुखोऽनिलः ।।1051।।

विभिन्न प्रकार के पुष्पों के मधुर-मकरन्द तथा पराग से मिश्रित प्रचुर सुगन्ध लेकर बहने वाली सुखदायक वायु रावण की काम-वासना को बढ़ाती चली जा रही थी।

गेयात् पुष्प समृद्धया च शैत्याद् वायोर्गिरेर्गुणात् ।
प्रवृत्तायां रजन्यां च चन्द्रस्योदयनेन च ।।1052।।

संगीत की मीठी स्वर-लहरी, विविध प्रकार के पुष्पों की समृद्धि, शीतल वायु-स्पर्श, पर्वत की रमणीयता का आकर्षक-गुण—

रावणःस्य महावीर्यः कामस्य वशमागतः ।
विनिःश्वस्य विनिःश्वस्य शशिनं समवैक्षत ।।1053।।

रात्रि का समय तथा चन्द्रोदय वेला—इन सभी के प्रभाव से रावण काम के वशीभूत हो, लम्बी श्वास लेता हुआ चन्द्रमा की ओर देखने लगा।

रम्भा से यौन समागम

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दिव्याभरण भूषिता ।
सर्वाप्सरोवरा रम्भा पूर्णचन्द्रनिभानना ।।1054।।

इसी समय दिव्य वस्त्राभूषणों को धारण करने वाली तथा पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर मुख वाली, समस्त अप्सराओं में श्रेष्ठ 'रम्भा' उसी मार्ग पर आ निकली।

दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी मन्दारकृतमूर्धजा ।
दिव्योत्सवकृतारम्भा दिव्यपुष्पविभूषिता ।।1055।।

उसके अङ्गों में दिव्य-चंदन का लेप था तथा सिर के केशों में पारिजात के पुष्प गुंथे हुए थे। दिव्य पुष्पों से विभूषित वह रम्भा (प्रिय-समागम रूपी) दिव्यउत्सव के लिए जा रही थी।

चक्षुर्मनोहरं पीनं मेखलादामभूषितम् ।
समुद्वहन्ती जघनं रतिप्राभृतमुत्तमम् ।।1056।।

उसके-नेत्र मनोहर थे तथा पीन जघनस्थल करधनी की लड़ियों से विभूषित था, जो रति के उत्तम उपहार जैसा प्रतीत हो रहा था।

कृतैर्विशेषकैरार्द्रैः षडर्तुकुसुमोद्भवैः ।
वभावन्यतमेव श्रीः कान्तिश्री द्युतिकीर्तिभिः ।।1057।।

उसके कपोल आदि अङ्गों पर हरि-चन्दन की चित्र-रचना थी। छहों ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले नवीन पुष्पों के गीले हारों से वह सुसज्जित थी। अपनी अलौकिक कान्ति, शोभा, युति तथा कीर्ति से वह दूसरी लक्ष्मी जैसी प्रतीत हो रही थी।

नीलं सतोय मेघ्यामं वस्त्रं समवगुण्ठिता ।
यस्या वक्त्रं शशिनिभं भ्रुवौ चापनिभे शुभे ।।1058।।

वह जलयुक्त बादलों के समान नीले रंग की साड़ी से अपने अङ्गों की ढांके हुए थी। उसका मुख चन्द्रमा जैसा था तथा दोनों भौंहें धनुष के समान सुन्दर थीं।

ऊरु करिकराकारौ करौ पल्लवकोमलौ ।
सैन्यमध्येन गच्छन्ती रावणेनोपलक्षिता ।।1059।।

उसकी जांघें हाथी की सूंड़ जैसी थीं तथा दोनों हाथ कोमल-पल्लवों के समान थे। जिस समय वह सेना के बीच में से होकर जा रही थी, उसी समय रावण ने उसे देख लिया।

तां समुत्थाय गच्छन्तीं कामबाण वशंगतः ।
करे गृहीत्वा लज्जन्तीं स्मयमानोऽभ्यभाषतः ।।1060।।

कामबाण से व्याकुल रावण ने उठकर, उस अन्यत्र जाती हुई रम्भा का हाथ पकड़ कर रोक लिया जिसके कारण वह लज्जा से गढ़ गई। तब रावण ने मुस्कराते हुए उससे इस प्रकार कहा—

क्व गच्छसि वरारोहे कां सिद्धिं भजसे स्वयम् ।
कस्याभ्युदयकालोऽयं यस्त्वां समुपभोक्ष्यते ।।1061।।

हे वरारोहे! तुम कहां जा रही हो? किसकी कामना पूरी करने के लिए स्वयं चल पड़ी हो? किसके भाग्योदय का समय आया है, जो तुम्हारा उपभोग करने वाला है?

त्वदाननरससाद्य पद्मोत्पलसुगन्धिनः ।
सुधामृतरसस्येव कोऽद्य तृप्तिं गमिष्यति ।।1062।।

कमल तथा उत्पल की सुगन्ध से युक्त तुम्हारे मुखारविन्द का रस अमृततुल्य है। इसके द्वारा कौन तृप्ति प्राप्त करेगा।

स्वर्णकुम्भनिभौ पीनौ शुभौ भीरु निरन्तरौ ।
कस्योरःस्थलसंस्पर्शं दास्यतस्ते कुचाविमौ ।।1063।।

हे भीरु! तुम्हारे ये स्वर्ण-कलश के समान सुन्दर तथा परस्पर सटे हुए भारी एवं उन्नत उरोज किसके वक्षःस्थल को अपना संस्पर्श देंगे?

सुवर्णचक्रप्रतिभं स्वर्णदामचितं पृथु ।
अध्यारोक्ष्यति कस्तेऽद्य जघनं स्वर्गरूपिणम् ।।1064।।

स्वर्ण की लड़ियों से विभूषित स्वर्णमय-चक्र जैसे विपुल विस्तार वाले तुम्हारे पीन-जघनस्थल पर, जो स्वर्ग-सदृश प्रतीत हो रहे हैं, आज कौन भाग्यशाली आरोहण करेगा।

मतिशिष्टःपुमान् कोऽद्य शक्रो विष्णुरथाश्विनौ ।
मामतीत्य हि यच्च त्वं यासि भीरु न शोभनम् ।।1065।।

इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) अथवा अश्विनी कुमारों में भी कोई मुझसे बढ़कर नहीं है। हे भीरु! तुम मुझे यहां छोड़कर अन्यत्र जा रही हो, यह शोभा नहीं देता।

विश्रम त्वं पृथुश्रोणि शिलातलमिदं शुभम् ।
त्रैलोक्ये यः प्रभुश्चैव मदन्यो नैव विद्यते ।।1066।।

हे स्थूल नितम्बों वाली! तुम इस सुन्दर शिला पर बैठकर विश्राम करो। तीनों लोकों का स्वामी मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है।

तदेवं प्राञ्जलिः प्रह्वो याचते त्वां दशाननः ।
भर्तुर्भती विधाता च त्रैलोक्यस्य भजस्व माम् ।।1067।।

तीनों लोकों के स्वामी का भी स्वामी तथा विधाता दशानन रावण आज विनीत भाव से हाथ जोड़कर तुमसे यह याचना कर रहा है कि तुम मुझे स्वीकार करो।

एवमुक्ताब्रवीद् रम्भा वेपमाना कृतांजलिः ।
प्रसीद नाईसे वक्तुमीदृशं त्वं हि मे गुरुः ।।1068।।

रावण द्वारा यह सब कहे जाने पर रम्भा कांपने लगी तथा दोनों हाथ जोड़कर बोली—आप कृपा कर मुझसे ऐसी बातें न कहें, क्योंकि आप मेरे गुरुजन (पिता-तुल्य) हैं।

अन्येभ्योऽपि त्वया रक्ष्या प्राप्नुयां घर्षणं यदि ।
तद्धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते ।।1069।।

यदि कोई अन्य व्यक्ति मेरा तिरस्कार करना भी चाहे तो आपको मेरी रक्षा करनी चाहिए। मैं धर्मानुसार आपकी पुत्र वधू हूं, अतः आपसे यह सत्य बात कह रही हूं।

अथाब्रवीद् दशग्रीवश्चरणाधोमुखीं स्थिताम् ।
रोमहर्षमनुप्राप्तां दृष्टिमात्रेण तां तदा ।।1070।।

यह कहकर रम्भा अपने पांवों की ओर देखती हुई मौन खडी रही। रावण की दृष्टि पड़ने मात्र से ही उसके रोएं खड़े हो गए थे।

सुतस्य यदि मे भार्या ततस्त्वं हि स्नुषा भवेः ।
बाढमित्येव सा रम्भा प्राह रावणमुत्तरम् ।।1071।।

रावण बोला—यदि तुम मेरे पुत्र की पत्नी हो, तभी मेरी पुत्रवधू हो सकती हो। यह सुनकर रम्भा ने 'बहुत अच्छा' कहते हुए उत्तर दिया—

धर्मतस्ये सुतस्याहं भार्या राक्षसंपुङ्गवः ।
पुत्रः प्रियतरः प्राणैर्भ्रातुर्वैश्रवणस्य ते ।।1072।।

हे राक्षस श्रेष्ठ! मैं धर्म के अनुसार तुम्हारे पुत्र की ही भार्या हूं। आपके भाई कुबेर के पुत्र मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।

विख्यातस्त्रिषु लोकेषु नलकूबर इत्ययम् ।
धर्मतो यो भवेद् विप्रः क्षत्रियो वीर्यतो भवेत् ।।1073।।

वे तीनों लोकों में 'नलकूबर' के नाम से विख्यात हैं। वे धर्मानुष्ठान की दृष्टि से ब्राह्मण तथा पराक्रम की दृष्टि से क्षत्रिय हैं।

क्रोधाद् यश्च भवेदग्निः क्षान्त्या च वसुधासमः ।
तस्यास्मि कृतसंकेता लोकपालसुतस्य वै ।।1074।।

वे क्रोध में अग्नि तथा क्षमा में वसुधा (पृथ्वी) के समान हैं। मैंने आज उन्हीं लोकपाल-पुत्र को मिलने का संकेत दिया है।

तमुद्दिश्य तु मे सर्वं विभूषणमिदं कृतम् ।
यथा तस्य हि नान्यस्य भावो मां प्रति तिष्ठति ।।1075।।

यह सम्पूर्ण शृंगार मैंने उन्हीं के लिए किया है। जैसा मेरे प्रति उनका अनुराग है, वैसा ही उनके प्रति मेरा भी है।

तेन सत्येन मां राजन् मोक्तुमर्हस्यरिंदम ।
स हि तिष्ठति धर्मात्मा मां प्रतीक्ष्य समुत्सुकः ।।1076।।

हे शत्रुहन्ता राजन्! इस सत्य को जानकर आप मुझे छोड़ दें, क्योंकि वे धर्मात्मा इस समय मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

तत्र विघ्नं तु तस्येह कर्तुं नार्हसि मुञ्च माम् ।
सद्भिराचरितं मार्गं गच्छ राक्षसपुङ्गव ।।1077।।

उनकी सेवा करने में आप विघ्न मत डालिए तथा मुझे छोड़ दीजिए। हे राक्षसश्रेष्ठ! आप सत्पुरुषों द्वारा आचरित मार्ग पर ही चलें।

माननीयो मम त्वं हि पालनीया तथास्मिते ।
एवमुक्तो दशग्रीवः प्रत्युवाच विनीतवत् ।।1078।।

आप मेरे माननीय हैं, अतः आपको मेरी रक्षा करनी चाहिए। यह सुनकर दशग्रीव रावण ने उससे विनम्रतापूर्वक कहा—

स्नुषास्मि मदवोचस्त्वमेकपत्नीष्वयं क्रमः ।
देवलोकस्थितितिरियं सुराणां शाश्वती मता ।।1079।।

तुम जो स्वयं को मेरी पुत्रवधू बता रही हो, वह ठीक नहीं है। क्योंकि यह नियम तो उन स्त्रियों के लिए है, जो किसी एक की पत्नी हों। देवलोक की स्थिति तो अन्य प्रकार की है। देवताओं का यह नियम है—

पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्रीपरिग्रहः ।
एवमुक्त्वा स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले ।।1080।।

कि अप्सराओं का कोई पति नहीं होता। वहां एक ही स्त्री के साथ विवाह नहीं किया जाता। यह कहकर उस राक्षस ने रम्भा को बलपूर्वक शिला तल पर बैठा लिया।

कामभोगाभिसंरक्तो मैथुनायोपचक्रमे ।

सा विमुक्ता ततो रम्भा भ्रष्टमाल्यविभूषणा ।।1081।।

फिर कामभोग में आसक्त हो, रावण ने उसके साथ मैथुन किया। उससे जब छुटकारा मिला, तब तक रम्भा के माला-आभूषण आदि अस्त-व्यस्त हो चुके थे।

गजेन्द्राक्रीडमथिता नदीवाकुलतां गता ।
लुलिताकुलकेशान्ता करवेपितपल्लवा ।।1082।।

उसकी हालत उस नदी जैसी हो गई थी, जिसे किसी गजराज ने मथ डाला हो। वह अत्यन्त व्याकुल थी। वेणी-बन्ध छिन्न हो जाने के कारण उसके खुले केश हवा में लहरा रहे थे तथा कर-पल्लव कांप रहे थे।

पवनेनावधूतेव लता कुसुमशालिनी ।
सा वेपमाना लज्जन्ती भीता करकृताञ्जलि ।।1083।।
नलकूबरमासाद्य पादयोर्निपपात ह ।
तदवस्थां च तां दृष्ट्वा महात्मा नलकूबरः ।।1084।।

नलकूबर ने भी रावण को शाप दिया

ऐसा लगता था जैसे फूलों से लदी हुई लता को किसी तेज हवा ने झकझोर दिया हो। फिर वह लज्जा तथा भय से कांपती हुई, हाथ जोड़े नलकूबर के समीप जाकर, उसके पांवों पर गिर पड़ी। उसकी उस हालत को देखकर महात्मा नलकूबर ने—

अब्रवीत् किमिदं भद्रे पादयोः पतितासि मे ।
सा वै निःश्वसमाना तु वेपमाना कृताञ्जलिः ।।1085।।

कहा—हे भद्रे! क्या बात है? तुम इस प्रकार मेरे पांवों पर क्यों आ गिरी हो? तब उस थर-थर कांप रही तथा हाथों को जोड़े हुए रम्भा ने लम्बी श्वास खींचकर—

तस्मै सर्वं यथातत्त्वमारव्यातुमुपचक्रमे ।
एष देव दशग्रीवः प्राप्तो गन्तुं त्रिविष्टयम् ।।1086।।

जो कुछ हुआ था, वह सब क्रमशः बताना आरंभ किया—हे देव! दशा ग्रीव रावण स्वर्गलोक पर आक्रमण करने हेतु आया है।

तेन सैन्य सहायेन निशेयं परिणामिता ।
आयान्ती तेन दृष्टास्मि त्वत्सकाशमरिंदम ।।1087।।

उसने अपने सैनिकों तथा सहायकों सहित आज रात्रि में यहीं डेरा डाल रखा है। हे शत्रु-दमन! जब मैं आपके पास आ रही थी, तब उसने मुझे देख लिया।

गृहीता तेन पृष्टास्मि कस्य त्वमिति रक्षसा ।
मया तु सर्वं यत् सत्यं तस्मै सर्वं निवेदितम् ।।1088।।

उस राक्षस ने मेरा हाथ पकड़ लिया तथा पूछा कि तुम किसकी स्त्री हो? तब मैंने जो कुछ सत्य था, वह सब उसे सत्य-सत्य बता दिया।

काम मोहाभिभूतात्मा नाओषीत् तद् वचो मम ।
याच्यमानो मया देव स्नुषा तेऽहमिति प्रभो ।।1089।।

परन्तु वह काम-मोह से अभिभूत था, अतः उसने मेरी बात नहीं सुनी। हे देव! मैंने उससे बारम्बार प्रार्थना की कि हे प्रभो! मैं आपकी पुत्रवधू हूं।

तत् सर्वं पृष्ठतः कृत्वा बलात् तेनास्मि घर्षिता ।
एवं त्वमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि सुव्रतः ।।1090।।

परन्तु उसने मेरी सब बातों को अनसुना करते हुए, बलपूर्वक मेरे साथ दुराचार किया। हे सुव्रत! विवशता की स्थिति में मुझसे जो अपराध हो गया है, उसे क्षमा कर दें।

नहि तुल्यं बलं सौम्य स्त्रियाश्च पुरुषस्य हि ।
एतच्छ्रुत्वा तु संक्रुद्धस्तदा वैश्रवणात्मजः ।।1091।।
धर्षणां तां परां श्रुत्वा ध्यानं सम्प्रविवेश ह ।
तस्य तत् कर्म विज्ञाय तदा वैश्रवणात्मजः ।।1092।।
मुहूर्तात् क्रोधताम्राक्ष स्तोयं जग्राह पाणिना ।
गृहीत्वा सलिलं सर्वमुपस्पृश्यः यथाविधि ।।1093।।
उत्ससर्ज तदा शापं राक्षसेन्द्राय दारुणम् ।
अकामा तेन यस्मात् त्वं बलाद् भद्रे प्रधर्षिता ।।1094।।
तस्मात् युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति ।
सदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ।।1095।।
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा ।
तस्मिन्नुदाहृते शापे ज्वलिताग्निसमप्रभे ।।1096।।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ।
पितामहमुखाश्चैव सर्वेरेवाः प्रहर्षिताः ।।1097।।

हे सौम्य! स्त्रियों में पुरुषों जैसा बल नहीं होता। यह सुनकर वैश्रवण के पुत्र नलकूबर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उस महान अत्याचार की बात सुनने के बाद जब उन्होंने ध्यान लगाया तो उन्हें दो घड़ी में ही सब कुछ ज्ञात हो गया। तब उन्होंने अपने हाथ में जल लेकर, क्रोध से लाल नेत्र करते हुए पहले विधिपूर्वक आचमन किया। तत्पश्चात् राक्षसेन्द्र रावण को भीषण शाप देते हुए कहा—हे भद्रे! जिस रावण ने, तुम्हारी इच्छा के विपरीत तुमसे बलपूर्वक अनाचार किया है, वह आज से किसी ऐसी युवती के साथ सहवास नहीं कर पाएगा, जो उसे चाहती न हो। यदि वह काम-पीड़ित होकर, किसी अनिच्छुक-स्त्री के साथ बलात्कार करेगा, तो उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जाएंगे। प्रज्वलित अग्नि के समान दग्ध कर देने वाले इस शाप के नलकूबर के मुख से निकलते ही देवताओं ने दुन्दुभी बजाना आरम्भ कर दिया तथा आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी। ब्रह्मा आदि सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

ज्ञात्वा लोकगतिं सर्वां तस्य मृत्युं च रक्षसः ।
ऋषयः पितरश्चैव प्रीतिमापुरनुत्तमाम् ।।1098।।

राक्षस रावण द्वारा की गई लोक-दुर्दशा तथा उसकी मृत्यु के विषय में जानकर ऋषियों तथा पितरों को उत्तम हर्ष प्राप्त हुआ।

श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ।
नारीषु मैथुनी भावं नाकामास्वभ्यरोचयत् ।।1099।।

उस लोमहर्षक-शाप को सुनने के बाद से दशानन रावण ने अनिच्छुक स्त्रियों के साथ बलात्कार करना त्याग दिया।

तेन नीताः स्त्रियः प्रीतिमापुः सर्वाः पतिव्रताः ।
नलकूबरनिर्मुक्तं शापं श्रुत्वा मनःप्रियम ।।1100।।

जिन पतिव्रता स्त्रियों को रावण अपहरण करके ले आया था, वे नलकूबर द्वारा दिए गए उस प्रिय शाप को सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुईं।

इंद्र लोक पर चढ़ाई

कैलासं लङ्घयित्वा तु ससैन्यबलवाहनः ।
आससाद महातेजा इन्द्रलोकं दशाननः ।।1101।।

कैलाश पर्वत को लांघकर महा तेजस्वी रावण अपनी सेना तथा वाहनों के साथ इन्द्रलोक में जा पहुंचा।

तस्य राक्षस सैन्यस्य समन्ता दुपयास्यतः ।
देवलोके बभौ शब्दो भिद्यमानार्णवोपमः ।।1102।।

चारों ओर से घिर कर आती हुई राक्षसी-सेना का कोलाहल देवलोक में ऐसा लग रहा था, जैसे महासागर के मंथन का शब्द उठ रहा हो।

श्रुत्वा तु रावणं प्राप्तमिन्द्रश्चलित आसनात् ।
देवानथाब्रवीत् तत्र सर्वानेव समागतान् ।।1103।।

रावण के आगमन का समाचार सुनकर इन्द्र अपने आसन से उठ खड़े हुए तथा अपने पास आए हुए देवताओं से इस प्रकार बोले—

आदित्यांश्च वसून् रुद्रान् साध्यांश्च समरुद्गणान् ।
सज्जा भवत् युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मनः ।।1104।।

उन्होंने आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, साध्यों तथा मरुद्गणों से कहा—तुम सब दुरात्मा रावण के साथ युद्ध करने के लिए सुसज्जित हो जाओ।

एवमुक्तास्तु शक्रेण देवाः शक्रसभा युधि ।
संनह्य सुमहासत्त्वा युद्धश्रद्धासमन्विताः ।।1105।।

इन्द्र के यह कहने पर, युद्ध में उन्हीं के समान पराक्रम दिखाने वाले, महाशक्तिशाली देवता कवच आदि पहनकर युद्ध के लिए तैयार हो गए।

स तु दीनः परित्रस्तो महेन्द्रो रावणं प्रति ।
विष्णोः समीपमागत्य वाक्यमेतदुवाच ह ।।1106।।

देवराज इन्द्र रावण के भय से दीन होकर भगवान् विष्णु के पास गए तथा उनसे यह कहा—

विष्णो कथं करिष्यामि रावणं राक्षसं प्रति ।
अहोऽति बलवद् रक्षो युद्धार्थमभिवर्तते ।।1107।।

हे विष्णुदेव! राक्षस रावण के प्रति मैं क्या करूं? अरे, वह अत्यन्त बलशाली राक्षस मुझसे युद्ध करने के लिए आ रहा है।

वरप्रदानाद् बलवान् न खल्वन्येन हेतुना ।
तत् तु सत्यं वचः कार्यं यदुक्तं पद्मयोनिना ।।1108।।

वह केवल ब्रह्माजी द्वारा वर दे देने के कारण प्रबल हो गया है, अन्य कोई हेतु नहीं है। पद्मयोनि ब्रह्माजी के दिए हुए वर को सत्य करना हम सबका कर्तव्य है।

तद् यथा नमुचिर्वृत्रो बलिर्नरकशम्बरौ ।
त्वद्बलं समवष्टभ्य मया दग्धास्तथा कुरु ।।1109।।

अस्तु, जिस प्रकार पूर्व में आपके बल का आश्रय लेकर मैंने नमुचि, वृत्र, बलि, नरक तथा शम्बर आदि असुरों को दग्ध कर दिया था, वैसा ही कोई उपाय अपनाइए।

न हन्यो देवदेवेश त्वदृते मधुसूदन ।
गतिः परायणं चापि त्रैलोक्ये सचराचरे ।।1110।।

हे मधुसूदन! आप देवाधिदेव हैं, आप जैसा कोई अन्य नहीं है। आप ही तीनों लोकों तथा चराचर में हम सबके आश्रय हैं।

त्वं हि नारायण, श्रीमान् पद्मनाभः सनातनः ।
त्वयेमे स्थापिता लोकाः शक्रश्चाहं सुरेश्वरः ।।1111।।
त्वया सृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
त्वामेव भगवन् सर्वे प्रविशन्ति युगक्षये ।।1112।।

हे नारायण! आप ही लक्ष्मी-पति, पद्मनाभ तथा सनातन हैं। हे सुरेश्वर! आपने ही तीनों लोकों को स्थापित किया है तथा आपने ही मुझे देवताओं का स्वामी बनाकर यश दिया है। आपने ही चराचर सहित तीनों लोकों की सम्पूर्ण रचना की है। हे भगवन्! प्रलय के समय सब आप में ही प्रवेश कर जाते हैं।

तदाचक्ष्व यथातत्त्वं देवदेव मम स्वयम् ।
असिचक्र सहायस्त्वं योत्स्यसे रावणं प्रति ।।1113।।

अतः हे देवाधिदेव! आप मुझे विजय-प्राप्ति का कोई अमोघ उपाय बताइए। क्या आप स्वयं तलवार तथा चक्र की सहायता से रावण के प्रति युद्ध-रत होंगे।

एवमुक्तः स शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः ।
अब्रवीन्न परित्रासः कर्तव्यः श्रूयतां च मे ।।1114।।

इन्द्र द्वारा यह कहे जाने पर भगवान् नारायण बोले—भय त्याग कर तुम्हें जो करना है, वह मुझसे सुनो।

न तावदेष दुष्टात्मा शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
हन्तुं चापि समासाद्य वरदानेन दुर्जयः ।।1115।।

उस दुष्टात्मा रावण को सभी देवता तथा असुर मिलकर भी न तो मार सकते हैं और न ही युद्ध में हरा सकते हैं, क्योंकि वरदान पाकर वह दुर्जय हो गया है।

सर्वथा तु महत् कर्म करिष्यति बलोत्कटः ।
राक्षसः पुत्रसहितो दृष्टमेतन्निसर्गतः ।।1116।।

अपने पुत्र के साथ आया हुआ वह राक्षस अत्यन्त बलवान् है तथा सब प्रकार से महान् पराक्रम प्रकट करेगा—यह बात मुझे स्वाभाविक ज्ञान-दृष्टि से दिखाई दे रही है।

यत् तु मां त्वमभाबिष्ठा युध्यस्वेति सुरेश्वर ।
नाहं तं प्रतियोत्स्यामि रावणं राक्षसं युधि ।।1117।।

हे सुरेश्वर! तुम जो यह कह रहे थे कि ‘आप ही उसके साथ युद्ध करें’ तो इस समय उस राक्षस से युद्ध करने के लिए मैं नहीं जाऊंगा।

नाहत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते ।
दुर्लभश्चैव कामोऽद्य वरगुप्ताद्धि रावणात् ।।1118।।

मैं विष्णु—ऐसे स्वभाव वाला हूं कि युद्ध में शत्रु का संहार किए बिना नहीं लौटता, परन्तु इस समय वरदान के कारण रावण सुरक्षित है। अतः मेरी विजय-प्राप्ति की कामना पूरी नहीं हो सकेगी।

प्रतिज्ञाने च देवेन्द्र त्वत्समीपे शतक्रतो ।
भवितास्मि यथास्याहं रक्षसो मृत्युकारणम् ।।1119।।

हे देवेन्द्र! हे शतक्रतो! मैं तुम्हारे समक्ष यह प्रतिज्ञा अवश्य करता हूं कि समय आने पर मैं ही इस राक्षस की मृत्यु का कारण बनूंगा।

अहमेव निहन्तास्मि रावणं सपुरःसरम् ।
देवता नन्दयिष्यामि ज्ञात्वा कालमुपागतम् ।।1120।।

मैं ही रावण को उसके सैनिकों सहित मारूंगा तथा देवताओं को आनन्दित करूंगा। परन्तु ऐसा तभी होगा, जब मैं यह जान लूंगा कि इसकी मृत्यु का समय आ पहुंचा है।

एतत् ते कथितं तत्त्वं देवराज शचीपते ।
युद्धयस्य विगतत्रासः सुरैः सार्धं महाबलः ।।1121।।

हे देवराज! हे शचीपति! यह मैंने तत्त्व की बात बता दी। हे महाबली! अब तुम्हीं निर्भय होकर, देवताओं को साथ ले जाकर, उस राक्षस से युद्ध करो।

ततो रुद्राः सहादिव्या वसवो मरुतोऽश्विनौ ।
संनद्धा निर्ययुस्तूर्णं राक्षसानभितः पुरात् ।।1122।।

इसके बाद रुद्र, आदित्य, वसु, मरुद्गण तथा अश्विनीकुमार आदि देवता युद्ध के लिए तैयार होकर, राक्षसों का सामना करने के लिए अमरावतीपुरी से बाहर निकले।

एतस्मिन्नन्तरे नादः शुश्रुवे रजनीक्षये ।
तस्य रावणसैन्यस्य प्रयुद्धस्य समन्ततः ।।1123।।

तुमुल युद्ध आरम्भ

तदुपरान्त रात बीतते ही रावण की सेना द्वारा किया जाने वाला युद्ध का नाद सुनाई पड़ने लगा।

ते प्रबुद्धा महावीर्या अन्योन्यमभिवीक्ष्य वै ।
संग्राममेवाभिमुखा अभ्यवर्तन्त हृष्टवत् ।।1124।।

वे महावीर्यवान् प्रबुद्ध राक्षस प्रातःकाल जगते ही एक दूसरे की ओर देखते हुए अत्यन्त हर्ष तथा उत्साह के साथ युद्ध करने के लिए आगे बढ़ने लगे।

ततो दैवतसैन्यानां संक्षोभः समजायत ।
तदक्षयं महासैन्यं दृष्ट्वा समरमूर्धनि ।।1125।।

युद्धक्षेत्र में खड़ी हुई उस अनन्त एवं विशाल राक्षसी-सेना को देखकर देवताओं की सेना में अत्यधिक क्षोभ व्याप्त हो गया।

ततो युद्धं समभवद् देवदानवरक्षसाम् ।
घोरं तुमुलनिर्ह्रादं नानाप्रहरणोद्यतम् ।।1126।।

तत्पश्चात् देवताओं का दानवों तथा राक्षसों से तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। भयंकर कोलाहल मच गया तथा दोनों ओर से अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा होने लगी।

एतस्मिन्नन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शनाः ।
युद्धार्थं समवर्तन्त सचिवा रावणस्य ते ।।1127।।

उसी समय भयंकर घोर रूप वाले राक्षस-योद्धा, जो रावण के मन्त्री तथा परम शूरवीर थे, युद्ध करने के लिए आगे बढ़े।

मारीचश्च प्रहस्तश्च महापार्श्व महोदरौ ।
अकम्पनो निकुम्भश्च शुकः सारणं एव च ।।1128।।

मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक, सारण।

संह्रादो धूम्रकेतुश्च महादंष्ट्रो घटोदरः ।
जम्बुमाली महाह्रादो विरूपाक्षश्च राक्षसः ।।1129।।

संह्राद, धूम्रकेतु, महादंष्ट्र, घटोदर, जम्बुमाली, महाह्राद, राक्षस विरुपाक्ष—

सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च दुर्मुखो दूषणः खरः ।

त्रिशिराः करवीराक्ष सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ।।1130।।

सुप्तघ्न, यज्ञकोप, दुर्मुख, दूषण, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष, राक्षस सूर्यशत्रु—

महाकायोऽतिकायश्च देवान्तक नरान्तकौ ।
एतैः सर्वैः परिवृतो महावीर्यैर्महाबलः ।।1131।।

महाकाय, अतिकाय, देवान्तक तथा नरान्तक—इन सब महावीर्यवान् राक्षसों से घिरे हुए।

रावणस्यार्यकः सैन्यं सुमाली प्रविवेश ह ।
स दैवतगणान् सर्वान् नानाप्रहरणै:क्षिरैः ।।1132।।
व्यध्वंसयत् समं क्रुद्धो वायुर्जलधरानिष ।
तद् दैवतबलं रामं हन्यमानं निशाचरैः ।।1133।।
प्रणुन्नं सर्वतो दिग्भ्यः सिंहनुन्ना मृगा इव ।
एतस्मिन्नन्तरे शूरो वसूनामष्टमो वसुः ।।1134।।

रावण के नाना सुमाली ने देवताओं की सेना में प्रवेश किया। उसने क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से सभी देवताओं को उसी प्रकार मार भगाया, जिस प्रकार वायु बादलों को छिन्न-भिन्न कर देती है। निशाचरों द्वारा प्रताड़ित देवताओं की सेना सभी दिशाओं में उसी प्रकार भाग गई, जिस प्रकार सिंह द्वारा खदेड़े जाने पर मृग भाग जाते हैं। इसी समय वसुओं में वीर आठवें वसु—

सावित्र इति विख्यातः प्रवोवेश रणाजिरम् ।
सैन्यैः परिवृतो हृष्टैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ।।1135।।

जिसका नाम 'सावित्र' था, ने समराङ्गण में प्रवेश किया। वे अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित तथा उत्साही सैनिकों से घिरे हुए थे।

त्रासयन्शत्रुसैन्यानि प्रविवेश रणाजिरम् ।
तदादित्यौ महावीर्यौ त्वष्टा पूबाच तौ समम् ।।1136।।
निर्भयौ सह सैन्येन तदा प्राविशतां रणे ।
ततोयुद्धं समभवत् सुराणां सहराक्षसैः ।।1137।।

उन्होंने शत्रु-सेना को संत्रस्त करते हुए समराङ्गण में प्रवेश किया। तदुपरान्त अदिति के दो परम पराक्रमी पुत्रों—'त्वष्टा' एवं 'पूषा' ने निर्भय होकर, अपनी सेना के साथ एक ही समय में युद्ध क्षेत्र में प्रवेश किया। फिर तो देवताओं का राक्षसों के साथ घोर युद्ध होने लगा।

क्रुद्धानां रक्षसां कीर्तिं समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
ततस्ते राक्षसाः सर्वे विबुधान् समरे स्थितान् ।।1138।।
नानाप्रहरणैर्घोरैर्जघ्नुः शतसहस्रशः ।
देवाश्च राक्षसान् घोरान् महाबलपराक्रमान् ।।1139।।
समरे विमलैः शस्त्रैरूपनिन्युर्यमक्षयम् ।
एतस्मिन्नन्तरे राम सुमाली नाम राक्षसः ।।1140।।

युद्ध क्षेत्र में पीछे न हटने वाले राक्षसों की कीर्ति से देवता अत्यधिक क्रुद्ध थे। तब उन राक्षसों ने युद्ध भूमि में खड़े हुए सभी देवताओं पर सैकड़ों-हजारों अस्त्र-शस्त्रों से कठिन प्रहार करना आरंभ कर दिया। इसी तरह देवता भी महाभयंकर तथा महाबली पराक्रमी राक्षसों को अपने

चमकीले अस्त्र-शस्त्रों से मार-मारकर यमलोक भेजने लगे। इसी बीच ‘सुमाली’ नामक राक्षस ने —

नानाप्रहरणैः क्रुद्धस्तत्सैन्यं सोद्रभ्यवर्तत ।
स दैवतबलं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ।।1141।।
व्यध्वंसयत संक्रुद्धो वायुर्जलधरं यथा ।
ते महाबाणवर्षैश्च शूलप्रासैः सुदारुणैः ।।1142।।

क्रुद्ध होकर अनेक प्रकार के आयुधों द्वारा देवताओं की सेना पर आक्रमण किया। उसने अपने प्रहारों से देवताओं की सेना को उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जिस प्रकार कुपित वायु बादलों को तितर-बितर कर देती है। उसने महाबाणों तथा भयंकर शूलों एवं प्रासों के तीव्र प्रहार किए।

सावित्र युद्ध में कूदे

हन्यमाना सुराः सर्वे न व्यतिष्ठन्त संहताः ।
ततो विद्राव्यमाणेषु दैवतेषु सुमालिना ।।1143।।

उन प्रहारों के कारण देवतागण युद्धक्षेत्र में संगठित होकर नहीं टिक सके। इस प्रकार सुमाली द्वारा देवताओं को भगाया जाता देखकर—

वसूनामष्टमः क्रुद्धः सावित्रो वै व्यवस्थितः ।
संवृतः स्वैरथानीकैः प्रहरन्तं निशाचरम् ।।1144।।

आठवें वसु सावित्र अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी रथ-सेना से घिरे हुए उस प्रहार करने वाले राक्षस के सम्मुख जा खड़े हुए।

विक्रमेण महातेजा वारयामास संयुगे ।
ततस्तयोर्महद् युद्धमभवल्लोम हर्षणम् ।।1145।।

परम तेजस्वी सावित्र ने अपने पराक्रम से सुमाली को आगे बढ़ने से रोक दिया तथा उन दोनों में लोमहर्षक युद्ध होने लगा।

सुमालिनो वसोश्चैव समरेष्वनिवर्तिनोः ।
ततस्तस्य महाबाणैर्वसुना सुमहात्मना ।।1146।।
निहतः पन्नगरथः क्षणेन विनिपातितः ।
हत्वा तु सुंयुगे तस्य रथं बाण शतैश्चितम् ।।1147।।
गदां तस्य वधार्थाय वसुर्जग्राह पाणिता ।
ततः प्रगृह्य दीप्ताग्रां कालदण्डोपमां गदाम् ।।1148।।

सुमाली तथा वसु दोनों में से कोई भी पीछे हटने वाला नहीं था। तत्पश्चात् महात्मा वसु ने अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा सुमाली के सर्प-जुते रथ को क्षण भर में नष्ट करके गिरा दिया। फिर सैकड़ों बाणों से बिंधे रथ को नष्ट कर देने के बाद, वसु ने उस सुमाली का वध करने के लिए अपने हाथ में गदा उठा ली, जो अपने अग्रभाग में प्रदीप्त होने के कारण कालदण्ड जैसी लग रही थी।

तां मूर्ध्नि पातयामास सावित्रो वै सुमालिनः ।

सा तस्योपरि चोल्काभा पतन्ती विबभौ गदा ।।1149।।
इन्द्रप्रभुक्ता गर्जन्ती गिराविष महाशनि ।
तस्य नैवास्थि न शिरो न मासं ददृशे तदा ।।1150।।
गदया भस्मतां नीतं निहतस्य रणाजिरे ।
तं दृष्ट्वा निहतं संख्ये राक्षसास्ते समन्ततः ।।1151।।
व्यद्रवन् सहिताः सर्वे क्रोशमानाः परस्परम् ।
विद्राव्यमाणा वसुना राक्षसा नावत्स्थिरे ।।1152।।

सावित्र ने वह गदा सुमाली के मस्तक पर दे मारी। सुमाली के ऊपर गिरने वाली गदा ऐसी चमक उठी थी, जैसे इन्द्र द्वारा प्रक्षेपित विशाल वज्र किसी पर्वत के शिखर पर जा गिरा हो। उस गदा की चोट लगते ही सुमाली की हड्डी, शिर तथा मांस—सब अदृश्य हो गए। युद्ध क्षेत्र में उस गदा के प्रहार से सुमाली का सब कुछ भस्म हो गया। सुमाली की मृत्यु देखते ही सभी राक्षस एक-दूसरे को पुकारते हुए चारों ओर भाग गए। वसु द्वारा खदेड़े जाने के कारण वे युद्धभूमि में खड़े नहीं रह सके।

सुमालिनं हतं दृष्ट्वा वसुना भस्मसात्कृतम् ।
स्वसैन्यं विद्रुतं चापि लक्षयित्वार्दितं सुरैः ।।1153।।

सुमाली को मारा गया देखकर तथा वसु द्वारा उसे भस्म कर दिया जानकर एवं देवताओं द्वारा पीड़ित अपनी सेना को भागते हुए देखकर।

ततः स बलवान् क्रुद्धो रावणस्य सुतस्तदा ।
निवर्त्य राक्षसान् सर्वान् मेघनादो व्यवस्थितः ।।1154।।

रावण का बलवान् पुत्र मेघनाद क्रुद्ध हो, राक्षसों को लौटाकर, स्वयं युद्ध क्षेत्र में जा पहुंचा।

स रथेनाग्निवर्णेन कामगेन महारथः ।
अभिदुद्राव सेनां तां वनान्यग्निरिव ज्वलन् ।।1155।।

वह महारथी योद्धा अपनी इच्छानुसार चलने वाले अग्नि के समान प्रदीप्त रथ पर आरूढ़ हो, वन में फैली हुई दावानल के समान देवताओं की सेना पर झपट पड़ा।

ततः प्रविशतस्तस्य विविधायुधधारिणः ।
विदुद्रुवुर्दिशः सर्वा दर्शनादेव देवताः ।।1156।।

उस अनेकानेक आयुधधारी मेघनाद को अपनी सेना में प्रवेश करते हुए देखकर, सभी देवता सम्पूर्ण दिशाओं में भाग चले।

न बभूव तदाकश्चिद् युयुत्सोरस्य सम्मुखे ।
सर्वानाविद्ध्य वित्रस्तांस्ततः शक्रोऽब्रवीत् सुरान् ।।1157।।

युद्धोत्सुक मेघनाद के समक्ष कोई भी ठहर नहीं सका। उस समय भयभीत देवताओं को धिक्कारते हुए इन्द्र ने इस प्रकार कहा—

इन्द्र-पुत्र जयंत ने मोर्चा संभाला

न भेतव्यं न गन्तव्यं निवर्तध्वं रणे सुराः ।

एष गच्छति पुत्रो मे युद्धार्थमपराजितः ।।1158।।

हे देवताओ! डरो नहीं, भागो नहीं, युद्धक्षेत्र में लौट आओ। मेरा अपराजेय पुत्र जयन्त अब युद्धक्षेत्र में पहुंच रहा है।

ततः शक्रसुतो देवोजयन्त इति विश्रुतः ।
रथेनाद्भुतकल्पेन संग्रामे सोऽभ्यवर्तत ।।1159।।

तब देवराज इन्द्र का जयन्त नामक पुत्र अद्भुत छटा वाले रथ पर आरूढ़ होकर युद्धक्षेत्र में जा पहुंचा।

ततस्ते त्रिदशाः सर्वे परिचार्य शचीसुतम् ।
रावणस्य सुतं युद्धे समासाद्य प्रजघ्निरे ।।1160।।

तब सभी देवता शचीपुत्र जयन्त को चारों ओर से घेरकर युद्धभूमि में लौट आए तथा रावण के पुत्र मेघनाद पर प्रहार करने लगे।

तेषां युदं समभवत् सदृशं देवरक्षसाम् ।
महेन्द्रस्य च पुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च ।।1161।।

उस समय देवताओं का राक्षसों के साथ तथा इन्द्र-पुत्र जयन्त का राक्षसेन्द्र-पुत्र मेघनाद के साथ बराबरी का युद्ध होने लगा।

ततो मातलिपुत्रस्य गोमुखस्य स रावणिः ।
सारथे पातयामास शरान् कनकभूषणान् ।।1162।।

रावण का पुत्र मेघनाद जयन्त के रथ के सारथी मातलि-पुत्र 'गोमुख' के ऊपर स्वर्ण-निर्मित बाणों की वर्षा करने लगा।

शचीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् ।
तं चापि रावणः क्रुद्धः समन्तात् प्रत्यविध्यत ।।1163।।

शचीपुत्र जयन्त ने मेघनाद के सारथी को घायल कर दिया। तब क्रुद्ध हुए मेघनाद ने जयन्त के शरीर को भी चारों ओर से छेद डाला।

स हि क्रोधसमाविष्टो बली विस्फारितेक्षणः ।
रावणिः शक्रतनयं शखर्षैरवाकिरत् ।।1164।।

क्रोध से भरा हुआ मेघनाद इन्द्र-पुत्र जयन्त को आंखें फाड़-फाड़कर देखने तथा बाण-वर्षा से पीड़ित करने लगा।

ततो नाना प्रहरणाञ्छितधारान् सहस्रशः ।
पातयामास संक्रुद्धः सुरसैन्येषु रावणिः ।।1165।।

फिर अत्यधिक क्रोध में भरकर रावण-कुमार मेघनाद ने देवताओं की सेना पर, अपने तीक्ष्णधार वाले अनेक प्रकार के सहस्रों अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा की।

शतघ्नीमुसलप्रास गदाखङ्गपरश्वधान् ।
महान्ति गिरिशृङ्गाणि पातयामास रावणिः ।।1166।।

उसने शतघ्नी, मूसल, प्रास, गदा, खङ्ग तथा परशु के अतिरिक्त बड़े-बड़े पर्वतशृङ्गों की भी वर्षा की।

मेघनाद की माया

ततः प्रष्यथिता लोका संजज्ञे च तमस्ततः ।
तस्य रावणपुत्रस्य शत्रु सैन्यानि निघ्नतः ।।1167।।

फिर शत्रु-सेना के संहार में लगे हुए रावण-पुत्र की माया से चारों ओर घोर अन्धकार छा गया, जिसके कारण सब लोग अत्यन्त व्यथित हो उठे।

ततस्तद् दैवतबलं समन्तात् तं शची सुतम् ।
बहु प्रकार मस्वस्थमभवच्छरपीडितम् ।।1168।।

उस समय शची-पुत्र जयन्त के चारों ओर खड़ी हुई देवताओं की सेना मेघनाद के बाणों के प्रहारों से पीड़ित हो, अनेक प्रकार से अस्वस्थ हो गई।

नाभ्यजानन्त चान्योन्यं रक्षो वा देवताथवा ।
तत्र तत्र विपर्यस्तं समन्तात् परिधावत ।।1169।।

उस समय राक्षस तथा देवता एक दूसरे को पहचान नहीं पा रहे थे। वे इधर-उधर बिखरे हुए, दौड़ते तथा चक्कर काट रहे थे।

देवादेवान् निजघ्नुस्ते राक्षसान् राक्षसास्तथा ।
सम्मूढास्तमसाच्छन्ना व्यद्रवन्नपरे तथा ।।1170।।

देवता देवताओं को तथा राक्षस राक्षसों को ही मारने लगे। अंधेरे के कारण वे विवेकहीन बन गए तथा बहुत से योद्धा युद्धक्षेत्र से भाग भी गए।

एतस्मिन्नन्तरे वीरः पुलोमा नाम वीर्यवान् ।
दैत्येन्द्रस्तेन संगृह्य शचीपुत्रोऽपवाहितः ।।1171।।

इसी बीच शक्तिशाली दैत्यराज पुलोमा नामक योद्धा वहां आया और वह शची-पुत्र जयन्त को पकड़कर युद्धक्षेत्र से दूर ले गया।

संगृत्ह्य तं तु दौहित्रं प्रविष्टः सागरं तदा ।
आर्यकः स हि तस्यासीत् पुलोमा येन सा शची ।।1172।।

वह शची का पिता तथा जयन्त का नाना था, अस्तु अपने दौहित्र को लेकर समुद्र के भीतर चला गया।

ज्ञात्वा प्रणाशं तु तदा जयन्तस्याथ देवताः ।
अप्रहृष्टास्ततः सर्वा व्यथिताः सम्प्रदुद्रुवुः ।।1173।।

जब देवताओं को जयन्त के विलुप्त हो जाने की बात पता चली, तब उनकी सारी प्रसन्नता समाप्त हो गई। वे दुःखी होकर चारों ओर भागने लगे।

रावणिस्त्यथ संक्रुद्धो बलैः परिवृतः स्वकैः ।
अभ्यधावत देवांस्तान् मुमोच च महास्वनम् ।।1174।।

उधर मेघनाद ने अपनी सेना में घिरे रहकर, अत्यन्त क्रुद्ध हो देवताओं के ऊपर आक्रमण किया तथा बड़ी जोर से गर्जना की।

दृष्ट्वा प्रणाशं पुत्रस्य दैवतेषु च बिद्रुतम् ।

म्मतलिं चाह देवेशो रथः समुपनीयताम् ।।1175।।

पुत्र का अपहरण हो गया है तथा देवताओं की सेना में भगदड़ मच गई है, यह समाचार पाकर देवराज इन्द्र ने अपने सारथी मातलि से कहा—मेरा रथ ले आओ।

स तु दिव्यो महाभीमः सज्ज एव महारथः ।
उपस्थितो मातलिना वाह्यमानो महाजषः ।।1176।।

तब मातलि एक महाभयंकर, सुसज्जित, दिव्य तथा विशाल रथ ले आया। उसके द्वारा हांका जाने वाला वह रथ अत्यन्त तीव्रगामी था।

ततो मेघा रथे तस्मिंस्तडित्त्वन्तो महाबलाः ।
अग्नतो वायुचपला नेदुः परमनिःस्वनाः ।।1177।।

फिर उस रथ के ऊपर बिजली से युक्त महाबली मेघ घिर आए तथा अग्रभाग में स्थित हो, वायु-वेग से चपल होकर बड़ी जोर से गरजने लगे।

नाना वाद्यानि वाद्यन्त गन्धर्वाश्च समाहिताः ।
ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा निर्याते त्रिदशेश्वरे ।।1178।।

देवराज इन्द्र के निकलते ही गन्धर्व एकत्र होकर अनेक प्रकार के वाद्य-यन्त्र बजाने लगे तथा अप्सराओं के समूह नृत्य करने लगे।

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां समरुद्गणैः ।
वृतो नानाप्रहरणैर्निर्ययौ त्रिदशाधिपः ।।1179।।

रुद्रों, वसुओं, आदित्यों अश्विनीकुमारों तथा मरुद्गणों से घिरे हुए देवराज इन्द्र अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को साथ लेकर अपनी पुरी से बाहर निकले।

निर्गच्छतस्तु शक्रस्य परुषः पवनो ववौ ।
भास्करो निष्प्रभश्चैव महोल्काश्च प्रपेदिरे ।।1180।।

इन्द्र के बाहर निकलते ही प्रचण्ड वायु बहने लगी। सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गई तथा आकाश से बड़ी-बड़ी उल्काएं गिरने लगीं।

एतस्मिन्नन्तरे शूरो दशःग्रीवः प्रतापवान् ।
आरुरोह रथं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ।।1181।।

इसी समय प्रतापवान् दशग्रीव रावण भी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दिव्य-रथ पर आरूढ़ हुआ।

पन्नगैः सुमहाकायैर्वेष्टितं लोमहर्षणैः ।
येषां निःश्वासवातेन प्रदीप्तमिव संयुगे ।।1182।।

उस रथ में लोमहर्षक महाकाय सर्प लिपटे हुए थे। उनकी निःश्वास वायु के कारण वह रथ प्रदीप्त सा लग रहा था।

दैत्यैर्निशाचरैश्चैव स रथः परिचारितः ।
समराभिमुखो दिव्यो महेन्द्रं सोऽभ्यवर्तत ।।1183।।

उस रथ को दैत्यों तथा निशाचरों ने सब ओर से घेर रखा था। रावण का वह दिव्य-रथ बढ़ता हुआ युद्ध-क्षेत्र में देवराज इन्द्र के सम्मुख जा पहुंचा।

पुत्रं तं वारयित्वा तु स्वयमेव व्यवस्थितः ।

सोऽपि युद्धाद् विनिष्क्रम्यः रावणिः समुपविशात् ।।1184।।

फिर रावण पुत्र मेघनाद को रोककर स्वयं ही युद्ध के लिए तैयार हो गया। उस समय मेघनाद युद्धक्षेत्र से हटकर अपने रथ पर चुपचाप जा बैठा।

ततो युद्धं प्रवृत्तं तु सुराणां राक्षसैः सह ।
शस्त्राणि वर्षतां तेषां मेघानामिव संयुगे ।।1185।।

फिर देवताओं का राक्षसों के साथ घोर युद्ध होने लगा। जिस प्रकार मेघ जल की बूंदें बरसाते हैं, उसी प्रकार देवतागण युद्धक्षेत्र में अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगे।

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा नानाप्रहरणोद्यतः ।
नाज्ञायत तदा राजन् युद्धं केनाभ्यपद्यत ।।1186।।

दुष्टात्मा कुम्भकर्ण अनेक प्रकार के अस्त्रों के साथ प्रहार कर रहा था। वह किससे युद्ध कर रहा है, इसका पता ही नहीं चलता था, क्योंकि उसे अपने-पराए का विवेक नहीं था।

दन्तैः पादैर्भुजैर्हस्तै शक्ति तोमर मुद्गरैः ।
येन तेनैव संक्रुद्धस्ताऽयामास देवताः ।।1187।।

रुद्रों से युद्ध

वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर देवताओं को दांतों, पांवों, भुजाओं, हाथों, शक्ति, तोमर एवं मुद्गर आदि से पीट रहा था।

स तु रुद्रैर्महापोरैः संगम्याथ निशाचरः ।
प्रयुद्धस्तैश्च संग्रामे क्षतः शस्त्रैर्निरन्तरम् ।।1188।।

वह राक्षस महाभयंकर रुद्रों के साथ घोर युद्ध करने लगा। रुद्रों ने भी अपने अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से उसके शरीर को क्षत-विक्षत कर दिया था।

बभौ शस्त्रार्चित तनुः कुम्भकर्णः क्षरन्नसृक् ।
विद्युत्स्तनितनिर्घोषो धारावानिव तोयदः ।।1189।।

कुम्भकर्ण के अस्त्र-शस्त्र बिंधे शरीर से रक्त की धारा बह रही थी। उस समय वह बिजली तथा गर्जना युक्त जलधारा गिराने वाले बादल जैसा प्रतीत हो रहा था।

ततस्तद् राक्षसं सैन्यं प्रयुद्धं समरुद्गणैः ।
रणे विद्रावितं सर्वं नानाप्रहरणैस्तदा ।।1190।।

तत्पश्चात् अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण करने वाले मरुद्गणों ने युद्ध-क्षेत्र से सम्पूर्ण राक्षसी-सेना को मार भगाया।

केचिद् विनिहताः कृत्ताश्चेष्टन्ति स्म महीतले ।
वाहनेष्ववसक्ताश्च स्थिता एवापरे रणे ।।1191।।

कितने ही राक्षस मारे गए, कितने ही कट-कट कर पृथ्वी पर गिरकर छटपटाने लगे तथा कितने ही राक्षस प्राणहीन होकर भी अपने वाहनों से चिपटे रणभूमि में दिखाई दे रहे थे।

रथान् नगान् खरानुष्ट्रान् पन्नगांस्तुरगांस्तथा ।
शिशुमारान् वराहांश्च पिशाचवदनानपि ।।1192।।

तान् समालिङ्ग्य बाहुभ्यां विष्टब्धाः केचिदुत्थिताः ।
देवैस्तु शस्त्रसंभिन्ना मम्रिरे च निशाचराः ।।1193।।

अनेक राक्षस रथों, नागों, गदहों, ऊंटों, सर्पों, घोड़ों, शिशुमारों, वराहों एवं पिशाचमुख वाहनों को अपनी दोनों भुजाओं से पकड़े तथा उनसे लिपटे निश्चेष्ट दिखाई दे रहे थे। पहले से मूर्च्छित जो राक्षस मूर्च्छा टूटने पर उठे, वे अस्त्र-शस्त्रों से छिन्न-भिन्न होकर काल के गाल में समा गए।

चित्रकर्म इवाभाति सर्वेषां रणसम्प्लवः ।
निहतानां प्रसुप्तानां राक्षसानां महीतले ।।1194।।

प्राणहीन, पृथ्वी पर पड़े हुए राक्षसों को सोता हुआ-सा देखकर, ऐसा लगता था, जैसे कोई जादुई घटना घटी हो।

शोणितोदक निष्पन्दा काकगृध्रसमाकुला ।
प्रवृत्ता संयुगमुखे शस्त्रग्राहवती नदी ।।1195।।

युद्धक्षेत्र में बहने वाली रक्त की नदी में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र घड़ियालों का भ्रम उत्पन्न करते थे। उस रक्त-नदी के चारों ओर गिद्ध तथा कौए मंडरा रहे थे।

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो दशग्रीवः प्रतापवान् ।
निरीक्ष्य तु बलं सर्वं दैवतैर्विनिपातितम् ।।1196।।

इसी समय प्रतापी रावण ने जब यह देखा कि उसकी सम्पूर्ण सेना को देवताओं ने मार गिराया है तो वह क्रुद्ध हो उठा।

इन्द्र-रावण में जबरदस्त टक्कर

स तं प्रतिविगाह्याशु प्रवृद्धं सैन्यसागरम् ।
त्रिदशान् समरे निघ्नञ्शक्रमेवाभ्यवर्तत ।।1197।।

फिर वह समुद्र की भांति दूर तक फैली हुई देव-सेना में घुस गया। वह युद्ध क्षेत्र में देवताओं को मारता एवं धराशायी करता हुआ देवराज इन्द्र के सामने जा पहुंचा।

ततः शक्रो महच्चापं विस्फार्य सुमहास्वनम् ।
यस्य विस्फारनिर्घोषैः स्तनन्ति स्म दिशो दश ।।1198।।

उस समय इन्द्र ने भयंकर टंकार करने वाले अपने महाधनुष को खींचा। उस धनुष की टंकार से दशों दिशाएं प्रतिध्वनित हो उठीं।

तद् विकृष्य महच्चापमिन्द्रो रावणमूर्धनि ।
पातयामास स शरान् पावकादित्यवर्चसः ।।1199।।

तत्पश्चात् उस विशाल धनुष को खींच कर इन्द्र ने अग्नि तथा सूर्य के समान तेजस्वी बाण रावण के मस्तक पर मारे।

तथैव च महाबाहुर्दशग्रीवो निशाचरः ।
शक्रं कार्मुकविभ्रष्टैः शरवर्षैरवाकिरत् ।।1200।।

उसी प्रकार महाबाहु रावण ने भी अपने धनुष से छूटे हुए बाणों की वर्षा द्वारा इन्द्र को ढंक दिया।

प्रयुध्यतोरथ तयोर्बाणवर्षैः समन्ततः ।
नाज्ञायत तदा किंचित् सर्वं हि तमसावृतम् ।।1201।।

इस तरह वे दोनों ही घोर युद्ध में तत्पर होकर बाण-वर्षा कर उठे, जिसके फलस्वरूप चारों ओर अन्धकार छा गया। इस कारण उस अंधेरे में किसी को किसी वस्तु की पहचान नहीं हो पा रही थी।

ततस्तमसि संजाते सर्वे ते देवराक्षसाः ।
अयुद्ध्यन्त बलोन्मत्ता सूदयन्तः परस्परम् ।।1202।।

जब अन्धकार छा गया, तब वे बलोन्मत्त देवता तथा राक्षस एक-दूसरे को मारते हुए आपस में लड़ने लगे।

ततस्तु देवसैन्येन राक्षसानां बृहद् बलम् ।
दशांशं स्थापितं युद्धे शेषं नीतं यमक्षयम् ।।1203।।

उस समय देवताओं की सेना ने विशाल राक्षसी सेना का केवल दसवां भाग ही युद्धभूमि में शेष रहने दिया था। बाकी सबको यमलोक पहुंचा दिया था।

तस्मिंस्तु तामसे युद्धे सर्वे ते देवराक्षसाः ।
अन्योन्यं नाभ्यजानन्त युध्यमानाः परस्परम् ।।1204।।

उस अन्धकारपूर्ण युद्धभूमि में देवता तथा राक्षस परस्पर एक-दूसरे से लड़ते रहे थे, परन्तु कोई किसी को पहचान नहीं पा रहा था।

इन्द्रश्च रावणश्चैव रावणिश्च महाबलः ।
तस्मिंस्तमोजालवृते मोहमीयुर्न ते त्रयः ।।1205।।

इन्द्र, रावण तथा महाबली मेघनाद—केवल ये तीन ही उस अन्धकाराच्छन्न युद्धभूमि में मोहित नहीं हो सके।

स तु दृष्ट्वा बलं सर्वं रावणो निहतं क्षणात् ।
क्रोधमभ्यगमत् तीव्रं महानादं मुक्तवान् ।।1206।।

जब रावण ने यह देखा कि मेरी सेना क्षण भर में ही मार डाली गई है तो उसने अत्यधिक क्रुद्ध होकर बहुत भारी गर्जना की।

क्रोधात् सूतं च दुर्धर्षः स्पन्दनस्थमुवाच ह ।
परसैन्यस्य मध्येन यावदन्तो नयस्व माम् ।।1207।।

रथ पर आरूढ़ उस दुर्धर्ष राक्षस ने क्रोध में भरकर अपने सारथी से इस प्रकार कहा—इस शत्रु सेना के अन्तिम छोर तक तुम मुझे बीच से होकर ले चलो।

अद्यैतान् त्रिदशान् सर्वान् विक्रमैः समरे स्वयम् ।
नानाशस्त्रमहासारैर्नयामि यमसादनम् ।।1208।।

आज मैं अपने विक्रम का प्रदर्शन कर, अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की निरन्तर वर्षा करते हुए, इन सब देवताओं को यमलोक पहुंचाऊंगा।

अहमिन्द्रं वधिष्यामि धनदं वरुणं यमम् ।
त्रिदशान् विनिहत्याशु स्वयं स्थास्याम्यथोपरि ।।1209।।

मैं इन्द्र का वध करूंगा तथा कुबेर, वरुण, यम आदि देवताओं का संहार करके स्वयं को सबके ऊपर स्थापित करूंगा।

विषादो नैव कर्तव्य शीघ्रं वाहय मे रथम् ।
द्विः खलु त्वां ब्रवीम्यद्य यावदन्तं नयस्व माम् ।।1210।।

तुम चिन्ता मत करो तथा मेरे रथ को शीघ्र ले चलो। मैं तुमसे दूसरी बार यह कहता हूं कि देवताओं की सेना के अन्तिम छोर तक तुम मुझे ले चलो।

अयं स नन्दनोद्देशो यत्र वर्तावहे वयम् ।
नय मामद्य तत्र त्वमुदयो यत्र पर्वतः ।।1211।।

इस समय हम जहां खड़े हैं, वह ‘नन्दनवन’ का क्षेत्र है। देव-सेना का प्रारंभ यहीं से है, अतः तुम मुझे अब उदयाचल पर्वत तक ले चलो।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तुरगान् स मनोजवान् ।
आदिदेशाथ शत्रूणां मध्ये नैव च सारथिः ।।1212।।

रावण के वचनों को सुनकर सारथी ने मन के समान वेग वाले घोड़ों को शत्रु-सेना के प्रारंभिक छोर से बीच में होकर हांक दिया।

तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा शक्रो देवेश्वरस्तदा ।
रथस्था समरस्थस्तान् देवान् वाक्यमथाब्रवीत् ।।1213।।

रावण के निश्चय को जानकर, रथ पर बैठे हुए देवराज ने देवताओं से इस प्रकार कहा—

सुराः शृणुत मद्वाक्यं यत् तावन्मम रोचते ।
जीवन्नेव दशग्रीवः साधु रक्षो निगृह्यताम् ।।1214।।

हे देवताओ! मेरी बात सुनो। मुझे यह ठीक लग रहा है कि इस दशग्रीव को जीवितावस्था में ही बन्दी बना लिया जाए।

एष ह्यतिबलः सैन्ये रथेन पवनौजसा ।
गमिष्यति प्रवृद्धोर्मिः समुद्र इव पर्वणि ।।1215।।

यह महाबली राक्षस अपने वायु जैसे वेगवान् रथ पर सवार होकर देव-सेना के बीच में होकर वैसी ही तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, जैसे पूर्णिमा तिथि को उत्ताल तरङ्गों वाला समुद्र आगे बढ़ता है।

नह्येषहन्तुं शक्योऽद्य वरदानात् सुनिर्भयः ।
तद्ग्रहीष्यामहे रक्षो यत्ता भवत संयुगे ।।1216।।

इसे मार डालना संभव नहीं है, क्योंकि ब्रह्माजी द्वारा दिए गए वरदान के कारण यह पूरी तरह निर्भय है। अतः हमें इस राक्षस को बन्दी बना लेने का प्रयत्न ही करना चाहिए।

यथा बलो निरुद्धे च त्रैलोक्यं भुज्यते मया ।
एवमेतस्य पापस्य निरोधो मम रोचते ।।1217।।

जिस प्रकार राजा बलि को बन्दी बना लिए जाने के बाद से मैं तीनों लोकों के राज्य का उपभोग कर रहा हूं, उसी प्रकार इस पापी राक्षस को भी बन्दी बना लेना मुझे ठीक लग रहा है।

ततोऽन्यं देशमास्थाय शक्रः संत्यज्य रावणम् ।
अयुध्यत महाराज राक्षसांस्त्रासयन् रणे ।।1218।।

इसके बाद इन्द्र उस स्थान को छोड़कर, दूसरी ओर जाकर युद्धक्षेत्र में राक्षसों को त्रास देने लगे।

उत्तरेण दशग्रीवः प्रविवेशानिवर्तकः ।
दक्षिणेन तु पार्श्वेन प्रविवेश शतक्रतुः ।।1219।।

युद्ध में पीछे न हटने वाले रावण ने उत्तर की ओर से देवताओं की सेना में प्रवेश किया तथा देवराज इन्द्र दक्षिण की ओर से राक्षसी सेना के भीतर जा पहुंचे।

ततः स योजनशतं प्रविष्टो राक्षसाधिपः ।
देवतानां बलं सर्वं शरवर्षैरवाकिरत् ।।1220।।

देवताओं की सेना सौ योजन (चार सौ कोस) की दूरी तक फैली हुई थी। राक्षसराज रावण ने उसके भीतर घुसकर अपनी बाण-वर्षा द्वारा सम्पूर्ण देव-सेना को ढंक दिया।

ततः शक्रो निरीक्ष्याथ प्रणष्टं तु स्वकं बलम् ।
न्यवर्तयदसम्भ्रान्तः समावृत्य दशाननम् ।।1221।।

अपनी सेना को नष्ट होते देखकर इन्द्र ने बिना किसी घबराहट के रावण का सामना कर, चारों ओर से घेर लिया तथा युद्ध से विमुख कर दिया।

एतस्मिन्नन्तरे नादो मुक्तो दानवं राक्षसैः ।
हा हताः स्म इति ग्रस्तं दृष्ट्वा शक्रेण रावणम् ।।1222।।

इसी समय रावण को इन्द्र के घिराव में फंसा देखकर दानव तथा राक्षस 'हाय! हम मारे गए' कहकर जोर से आर्त्तनाद करने लगे।

ततो रथं समास्थाय रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
तत् सैन्यमति संक्रुद्धः प्रविवेश सुदारुणम् ।।1223।।

तब क्रोध से मूर्च्छित (अत्यधिक क्रुद्ध) मेघनाद अपने रथ पर बैठकर शत्रु की भयंकर सेना में प्रविष्ट हुआ।

तां प्रविश्य महामायां प्राप्तां पशुपतेः पुरा ।
प्रविवेश सुसंरब्धस्तत् सैन्यं समभिद्रवत् ।।1224।।

पूर्वकाल में पशुपति महादेव से उसने जो महामाया प्राप्त की थी, उसमें प्रविष्ट होकर स्वयं को छिपाए हुए वह शत्रु-सेना में घुसकर उसे खदेड़ने लगा।

स सर्वा देवतास्त्यक्त्वा शक्रमेवाभ्यधावत ।
महेन्द्रश्च महातेजा नापश्यच्च सुतं रियोः ।।1225।।

तत्पश्चात् वह सभी देवताओं को छोड़कर देवराज इन्द्र की ओर दौड़ा। महातेजस्वी इन्द्र भी अपने उस शत्रु के पुत्र मेघनाद को नहीं देख सके।

विमुक्त कवचस्तत्र वध्यमानोऽपि रावणिः ।
त्रिदशैः सुमहावीर्यैर्न चकार च किंचन ।।1226।।

यद्यपि उसका कवच नष्ट हो गया था, तथापि महाशक्तिशाली मेघनाद तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

स मातलि समायान्तं ताडयित्वा शरोत्तमैः ।
महेन्द्रं बाणवर्षेण भूय एवाभ्यवाकिरत् ।।1227।।

उसने सामने से आते हुए मातलि को अपने श्रेष्ठ बाणों से घायल कर दिया। तत्पश्चात् अपनी बाण-वर्षा द्वारा देवराज इन्द्र को भी ढंक दिया।

ततस्तक्त्वा रथं शक्रो विससर्ज च सारथिम् ।
ऐरावतं समरुह्य मृगयामास रावणिम् ।।1228।।

तब इन्द्र ने रथ से उतर कर सारथी को छोड़ दिया और ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर शिकार की भांति मेघनाद को ढूंढ़ने लगे।

इंद्र का अपहरण

स तत्र मायाबलवानदृश्योऽथान्तरिक्षगः ।
इन्द्रं मायापरिक्षिप्तं कृत्वा स प्राद्रवच्छरैः ।।1229।।

बलवान् मेघनाद उस समय अपनी माया से अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहा था। उसने इन्द्र को अपनी माया तथा बाण-वर्षा से व्याकुल कर दिया था।

स तं यदा परिश्रान्तमिन्द्रं जज्ञेऽथ रावणिः ।
तदैनं मायया बद्धवा स्वसैन्यमभितोऽनयत् ।।1230।।

जब मेघनाद ने यह भलीभांति जान लिया कि इन्द्र अत्यधिक थक गए हैं, तब वह उन्हें माया से बांधकर अपनी सेना में ले गया।

तं तु दृष्ट्वा बलात् तेनं नीयमानं महारणात् ।
महेन्द्रममराः सर्वे किं नु स्यादित्य चिन्तयन् ।।1231।।

उस महासमर में मेघनाद द्वारा इन्द्र को बलपूर्वक बांध ले जाते देखकर देवतागण सोचने लगे कि अब क्या होगा?

दृश्यते न स मायावी शक्रजित् समितिंजयः ।
विद्यावानपि येनेन्द्रो माययापहृतो बलात् ।।1232।।

वह मायावी राक्षस स्वयं दिखाई नहीं पड़ता था। इसी कारण वह अपनी माया द्वारा इन्द्र का बलपूर्वक अपहरण करके ले गया।

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धाः सर्वे सुरगणास्तदा ।
रावणं विमुखीकृत्य शरवर्षैरवाकिरन् ।।1233।।

इसके पश्चात् वे सभी देवता अत्यन्त रोष में भरकर बाण-वर्षा करने लगे तथा रावण को युद्ध से विमुख कर दिया।

रावणस्तु समासाद्य आदित्यांश्च वसूंस्तदा ।
न शशाक स संग्रामे योद्धुं शत्रुभिरर्दितः ।।1234।।

आदित्यों और वसुओं के सामने रावण युद्धक्षेत्र में ठहर नहीं सका, क्योंकि शत्रुओं ने उसे अत्यधिक पीड़ित कर दिया था।

स तं दृष्ट्वा परिग्लानं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ।
रावणिः पितरं युद्धेऽदर्शनस्थोऽब्रवीदिदम् ।।1235।।

मेघनाद ने जब यह देखा कि उसके पिता का शरीर बाणों से जर्जर हो गया है और वे उदास

से हैं, तब वह अदृश्य रहते हुए ही रावण से कहने लगा—

आगच्छ तात गच्छामो रणकर्म निवर्तताम् ।
जितं नो विदितं तेऽस्तु स्वस्थे भवगतज्वरः ।।1236।।

हे पिता! आइए, अब हम लोग युद्ध करना छोड़कर घर लौट पड़ें। हमारी विजय हो चुकी है। अतः अब आप स्वस्थ, प्रसन्न एवं निश्चिन्त हो जाएं।

अयं हि सुरसैन्यस्य त्रैलोक्यस्य च यः प्रभुः ।
स गृहीतो देवबलाद् भग्नदर्पाः सुराः कृताः ।।1237।।

देव सेना तथा तीनों लोकों के स्वामी इन्द्र को मैं देव-सेना के बीच से बन्दी बना लाया हूं। इस प्रकार मैंने देवताओं का घमण्ड भी नष्ट कर दिया है।

यथेष्टं भुङ्क्ष्व लोकांस्त्रीन् निगृह्यरातिभोजसा ।
वृथा किं ते श्रमेणेह युद्धमद्य तु निष्फलम् ।।1238।।

अब आप शत्रुओं को बलात् बन्दी बनाकर देवताओं की सेना तथा तीनों लोकों के राज्य का उपभोग कीजिए। यहां व्यर्थ में श्रम करने से क्या लाभ? अब युद्ध करना अनुचित है।

ततस्ते दैवतगणा निवृत्ता रणकर्मणः ।
नच्छ्रुत्वा रावणेर्वाक्यं शक्रहीनाः सुरा गताः ।।1239।।

उस समय मेघनाद के वाक्यों को सुनकर देवताओं ने युद्ध करना बन्द कर दिया तथा इन्द्र को साथ लिए बिना ही लौट गए।

अथ रणविगतः स उत्तमौजास्त्रिदशरिपुः प्रथितो निशाचरेन्द्रः ।
स्वसुतवचनमादृतः प्रियं तत् समनुनिशम्य जगाद चैव सूनुम् ।।1240।।

अपने पुत्र के प्रिय वचनों को आदर सहित सुनकर राक्षसेन्द्र रावण ने युद्ध करना बन्द कर दिया। फिर उस महाबलशाली राक्षसराज ने अपने पुत्र से इस प्रकार कहा—

अतिबलसदृशैः पराक्रमैस्त्वं मम कुलवंशविवर्धनः प्रभो ।
यदयमतुल्य बलस्त्वयाद्य वै त्रिदशपतिस्त्रिदशाश्च निर्जिताः ।।1241।।

हे सामर्थ्यवान् पुत्र! आज तुमने अपना अतुल पराक्रम प्रकट करके तथा इस अनुपम बलशाली देवराज इन्द्र को बंदी बनाकर, जीतकर देवताओं को परास्त किया है। इससे यह सिद्ध हो गया कि तुम मेरे कुल तथा वंश की वृद्धि करने वाले हो।

नय रथमधिरोप्य वासवं नगरमितो व्रज सेनया वृतस्त्वम् ।
अहमपि तव पृष्ठतो द्रुतं सह सचिवैरनुयामि हृष्टवत् ।।1242।।

अब तुम इन्द्र को अपने रथ में बैठाकर अपनी सेना के साथ लङ्कापुरी पहुंचो। मैं भी प्रसन्नतापूर्वक अपने मन्त्रियों के साथ तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहा हूं।

अथ स बलवृतः सवाहनस्त्रिदशपतिं परिगृह्य रावणिः ।
स्वभवनमधिगम्य वीर्यवान् कृतसमरान् विससर्ज राक्षसान् ।।1243।।

इसके पश्चात् बलवान् मेघनाद देवराज इन्द्र तथा अपनी सेना को साथ लेकर, वाहनों सहित लंकापुरी जा पहुंचा। वहां उसने युद्ध में भाग लेने वाले राक्षसों को विदा कर दिया।

ब्रह्माजी ने रावण को समझाया

जिते महेन्द्रेऽतिबले रावणस्य सुतेन वै ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य ययुर्लङ्कां सुरास्तदा ।।1244।।

रावण का पुत्र मेघनाद जब अत्यन्त बलशाली देवराज इन्द्र को जीत कर ले गया, तब सभी देवता प्रजापति ब्रह्मा को आगे करके लङ्कापुरी गए।

तत्र रावणमासाद्य पुत्रभ्रातृभिरावृतम् ।
अब्रवीद् गगने तिष्ठन् सामपूर्वं प्रजापतिः ।।1245।।

अपने पुत्रों तथा भाइयों के समीप बैठे हुए रावण के समीप पहुंचकर, ब्रह्माजी ने आकाश में ही खड़े रहकर, कोमल वाणी में समझाते हुए कहा—

वत्स रावण तुष्टोऽस्मि पुत्रस्य तव संयुगे ।
अहोऽस्य विक्रमौदार्यं तव तुल्योऽधिकोऽपि वा ।।1246।।

हे वत्स रावण! युद्धक्षेत्र में तुम्हारे पुत्र की वीरता को देखकर मैं अत्यधिक प्रसन्न हूं। अरे, इसका श्रेष्ठ पराक्रम तो तुम्हारे समान अथवा तुमसे भी बढ़कर है।

जितंहि भवता सर्वं त्रैलोक्यं स्वेन तेजसा ।
कृता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोऽस्मि ससुतस्य ते ।।1247।।

तुमने अपने तेज द्वारा सम्पूर्ण त्रिलोक पर विजय प्राप्त की है तथा अपनी प्रतिज्ञा को सफल बनाया है, अतः मैं पुत्र सहित तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूं।

अयं च पुत्रोऽतिबल स्तव रावण वीर्यवान् ।
जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति ।।1248।।

हे रावण! तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त बलशाली तथा वीर्यवान् है। आज से यह संसार में 'इन्द्रजित्' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।

बलवान् दुर्जयश्चैव भविष्यत्वेष राक्षसः ।
यं समाश्रित्य ते राजन् स्थापितास्त्रिदशा वशे ।।1249।।

हे राजन्! यह राक्षस अत्यन्त बलवान् तथा दुर्जय होगा। इसके आश्रय से ही तुमने समस्त देवताओं को अपने अधीन कर लिया है।

तन्मुच्यतां महाबाहो महेन्द्रः पाकशासनः ।
किं चास्य मोक्षणार्थाय प्रयच्छन्तु दिवौकसः ।।1250।।

हे महाबालो! अब तुम पाक शासन देवराज इन्द्र को छोड़ दो तथा यह भी बता दो कि इन्हें छोड़ने के बदले में देवता तुम्हें क्या दे?

अथाब्रवीन्महातेजा इन्द्रजित् समितिंजयः ।
अमरत्वमहं देव वृणे यद्येषमुच्यते ।।1251।।

तब महातेजस्वी तथा युद्धजयी इन्द्रजित् ने स्वयं ही कहा—हे देव! यदि इन्द्र को छोड़ना है तो इसके बदले आप मुझे 'अमरत्व' प्रदान कीजिए।

ततोऽब्रवीन्महातेजा मेघनादं प्रजापतिः ।

नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित् प्राणिनो भुवि ।।1252।।
पक्षिणश्चतुष्पदो वा भूतानां वा महौजसाम् ।
श्रुत्वापितामहे नोक्तमिन्द्रजित् प्रभुणाव्ययम् ।।1253।।
अथाब्रवीत् स तत्रस्थं मेघनादो महाबलः ।
श्रूयतां या भवेत् सिद्धिः शतक्रतुविमोक्षणे ।।1254।।

यह सुनकर महातेजस्वी प्रजापति ब्रह्मा ने मेघनाद से कहा—इस पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाला कोई भी प्राणी, चाहे वह पक्षी, चतुष्पद अथवा महातेजस्वी मनुष्य ही क्यों न हो, अमर नहीं हो सकता। पितामह द्वारा कहे गए शब्दों को सुनकर, वहां उपस्थित अविनाशी ब्रह्माजी से महाबली मेघनाद ने इस प्रकार कहा—सुनिए, इन्द्र को छोड़ने के लिए मेरी दूसरी शर्त यह है—

ममेष्टं नित्यशो हव्यैर्मन्त्रैः सम्पूज्य पावकम् ।
संग्राममवतर्तुं च शत्रुनिर्जयकांक्षिणः ।।1255।।
अश्वयुक्तो रथो मह्यमुत्तिष्ठेत् तु विभावसोः ।
तत्स्थस्यामरता यान्मे एव मे निश्चितो वरः ।।1256।।

यह नियम सदैव के लिए हो कि जब भी मैं शत्रु पर विजय पाने हेतु मन्त्रयुक्त हव्य की आहुति से अग्नि की पूजा करूं, उसी समय संग्राम में जाने के लिए अग्निकुण्ड से एक ऐसा रथ प्रकट हुआ करे, जिसमें घोड़े जुते हुए हों और जब तक मैं उसमें बैठा रहूं, तब तक संग्राम में मुझे कोई भी न मार सके—मेरा यही वांछित वर है।

तस्मिन् यद्यसमाप्ते च जप्यहोमे विभावसौ ।
युध्येयंदेव संग्रामे तदा मे स्याद् विनाशनम् ।।1257।।

यदि युद्ध हेतु किए जाने वाले जप तथा हवन को पूर्ण किए बिना ही मैं समराङ्गण में उतरूं तो भले ही मेरा विनाश हो जाए।

सर्वो हि तपसा देव वृणोत्यमरतां पुमान् ।
विक्रमेण मया त्वेतदमरत्वं प्रवर्तितम् ।।1258।।

हे देव! सब लोग तो तपस्या द्वारा अमरत्व को प्राप्त करते हैं, परन्तु मैंने पराक्रम द्वारा ही इसे वरण किया है।

एवमस्त्विति तं चाह वाक्यं देवः पितामहः ।
मुक्तश्चेन्द्रजिता शक्रो गताश्च त्रिदिवं सुरा ।।1259।।

मेघनाद के इन शब्दों को सुनकर पितामह ब्रह्मा ने 'एवमस्तु' कहा। तब इन्द्रजित् मेघनाद ने इन्द्र को मुक्त कर दिया तथा देवतागण उन्हें लेकर स्वर्गलोक को चले गए।

एतस्मिन्नन्तरे राम दीनो भ्रष्टामरद्युतिः ।
इन्द्रश्चिन्तापरीतात्मा ध्यान तत्परतां गतः ।।1260।।

इस घटना के बाद इन्द्र का देवोचित-तेज नष्ट हो गया और वे चिन्तित होकर अपनी पराजय के कारणों पर विचार करने लगे।

इंद्र का पूर्वकालीन दुष्कृत्य

तं तु दृष्ट्वा तथा भूतं प्राह देवः पितामहः ।
शतक्रतो किमु पुरा करोति स्म सुदुष्कृतम् ।।1261।।

देवराज की उस स्थिति को देखकर पितामह ब्रह्मा ने कहा—हे इन्द्र! आज तुम्हें जिस अपमान से शोक हो रहा है, उसके कारणभूत अपने पूर्वकालीन दुष्कृत्य के विषय में सुनो।

अमरेन्द्र मया बुद्ध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो ।
एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः ।।1262।।

हे प्रभो, अमरेन्द्र! प्रारम्भ में मैंने अपनी बुद्धि से जिन प्रजाओं को बनाया था, उन सबके वर्ण, भाषा तथा रूप में एक समानता थी।

तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा ।
ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः समचिन्तयम् ।।1263।।

उनके दर्शन तथा लक्षण में कोई पारस्परिक विलक्षणता नहीं थी। तब मैंने एकाग्रचित्त होकर उन प्रजाओं में कुछ विशेषता लाने का विचार किया।

सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे ।
यद् यत् प्रजानां प्रत्यङ्गं विशिष्टं तत् तदुद्धृतम् ।।1264।।

तब मैंने उन सबसे विशिष्ट एक नारी की सृष्टि की, जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में मैंने उन सब विशेषताओं का समावेश किया, जो अन्य प्रजाओं में सारभूत रूप में विद्यमान थीं।

ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता ।
हलं नामेह वैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत् ।।1265।।

मेरे द्वारा निर्मित उस अद्भुत रूप-गुण शालिनी स्त्री का नाम ‘अहल्या’ था। ‘हल’ नाम कुरूपता का है। उससे जो निन्दनीयता व्यक्त होती है, उसे ‘हल्य’ कहते हैं।

यस्या न विद्यते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता ।
अहल्येत्येव च मया तस्या नाम प्रकीर्तितम् ।।1266।।

जिसमें ‘हल्य’ (निन्दनीय रूप) न हो, वह ‘अहल्या’ नाम से जानी जाती है। अतः मैंने उस स्त्री का नाम ‘अहल्या’ रखा।

निर्मितायां च देवेन्द्र तस्यां नार्यां सुरर्षभ ।
भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोऽभवत् ।।1267।।

हे देवेन्द्र। हे सुरश्रेष्ठ! जब उस नारी का निर्माण हो गया, तब मुझे यह चिन्ता हुई कि यह किसकी पत्नी होगी।

त्वं तु शक्र तदा नारीं जानीषे मनसा प्रभो ।
स्थानाधिकतया पत्नी ममैषेति पुरंदर ।।1268।।

हे प्रभो! हे पुरन्दर! उस समय तुम अपने पद की श्रेष्ठता के कारण यह सोच रहे थे कि यह मेरी ही पत्नी बनेगी।

सा मया न्यासभूता तु गौतमस्य महात्मनः ।
न्यस्ता बहूनि वर्षाणि तेन निर्यातिता च ह ।।1269।।

परन्तु मैंने उस स्त्री को धरोहर के रूप में महात्मा गौतम को सौंप दिया। अनेक वर्षों तक वह

उनके पास रही, तदुपरान्त गौतम ने उसे मुझे लौटा दिया।

ततस्तस्य परिज्ञाय महास्थैर्यं महामुनेः ।
ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्पर्शिता तदा ।।1270।।

तब उन महामुनि की महान् स्थिरता (ब्रह्मचर्य-पालन एवं इन्द्रिय-निग्रह) को जानकर तथा तपस्या विषयक सिद्धि का ज्ञान करके वह स्त्री उन्हीं को 'पत्नी' के रूप में पुनः लौटा दी।

स तया सह धर्मात्मा रमते स्म महामुनिः ।
आसन्निराशा देवास्तु गौतमे दत्तया तया ।।1271।।

महामुनि धर्मात्मा गौतम उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। जब मैंने अहल्या गौतम ऋषि को दे दी तो देवता निराश हो गए।

त्वं क्रुद्धस्त्विह कामात्मा गत्वा तस्याश्रमं मुनेः ।
दृष्टवांश्च तदा तां स्त्रीं दीप्तामग्नि शिखामिव ।।1272।।

तुम अत्यन्त क्रुद्ध हुए। तुम्हारा मन काम के वशीभूत था, अतः तुम मुनि के आश्रम पर जा पहुंचे। वहां तुमने अग्निशिखा के समान प्रदीप्त उस सुन्दरी को देखा।

सा त्वया धर्षिता शक्र कामार्तेन समन्युना ।
दृष्टस्त्वं स तदा तेन आश्रमे परमर्षिणा ।।1273।।

हे इन्द्र! तब तुमने क्रुद्ध एवं कामार्त्त होकर उसके साथ बलात्कार किया। उस समय महर्षि ने अपने आश्रम में तुम्हें देख लिया।

ततः क्रुद्धेन तेनासि शप्तः परमतेजसा ।
गतोऽसि येन देवेन्द्र दशाभागविपर्ययम् ।।1274।।

हे देवेन्द्र! तब उन परमतेजस्वी महर्षि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर तुम्हें शाप दिया। उसी शाप के कारण तुम्हें ऐसी विपरीत स्थिति का सामना करना पड़ा है।

यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयात् ।
तस्मात् त्वं समरे शक्र शत्रुहस्तं गमिष्यसि ।।1275।।

गौतम ऋषि ने कहा था—हे शक्र! तुमने निर्भय होकर मेरी पत्नी के साथ बलात्कार किया है, अतः हे वासव! तुम युद्धक्षेत्र में शत्रु के हाथों में जा पड़ोगे।

अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः ।
मनुषेष्वपि लोकेषु भविष्यति न संशयः ।।1276।।

हे दुर्बुद्धे! तुम्हारे द्वारा जो यह दुष्कर्म किया गया है, इसके कारण मनुष्यलोक में यह जार-भाव प्रचलित हो जाएगा—इसमें सन्देह नहीं है।

तत्रार्धं तस्य यः कर्ता त्वय्यर्धं निपतिष्यति ।
न च ते स्थावरं स्थानं भविष्यति न संशयः ।।1277।।

जो भी मनुष्य जार-भाव से ऐसा पापाचार करेगा, उसका आधा पाप तुम्हारे ऊपर पड़ेगा और तुम्हारा स्थान (पद) भी स्थिर नहीं रहेगा—इसमें सन्देह नहीं है।

यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्यात् ध्रुवः स न भविष्यति ।
एष शापो मयामुक्त इत्यसौ त्वां तदाब्रवीत् ।।1278।।

भविष्य में जो कोई भी देवराज इन्द्र के पद पुर बैठेगा, वह वहां स्थिर नहीं रह सकेगा। यह शाप मैं सभी इन्द्रों को दे रहा हूं—महामुनि ने यह बात भी कही।

तां तु भार्यां सुनिर्भर्त्स्य सोऽब्रवीत् सुमहातपाः ।
दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः ।।1279।।
रूपयौवनसम्पन्ना यस्मात्त्वमनवस्थिता ।
तस्माद् रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यति ।।1280।।

फिर उन महातपस्वी मुनि ने अपनी पत्नी को डांटते हुए कहा—अरी दुर्विनीते! तू मेरे आश्रम के समीप ही रूप-सौन्दर्य से भ्रष्ट होकर रह। तू अपने रूप तथा यौवन से सम्पन्न होकर मर्यादा में नहीं रह सकी, अतः अब तू लोक में अकेली ही रूपवती नहीं रहेगी अर्थात् अन्य बहुत सी सुरूपा स्त्रियां भी उत्पन्न होंगी।

रूपं च ते प्रजाः सर्वां गमिष्यन्ति न संशयः ।
यत् तदेकं समाश्रित्य विभ्रमोऽयमुपस्थितः ।।1281।।

जिस एक रूप के कारण इन्द्र काम के वशीभूत होकर यहां उपस्थित हुआ, वह रूप एवं सौन्दर्य अब सम्पूर्ण प्रजा को प्राप्त होगा—इसमें सन्देह नहीं है।

अहल्या का स्पष्टीकरण

तदाप्रभृति भूयिष्ठं प्रजा रूप समन्विता ।
सा तं प्रसादयामास महर्षिं गौतमं तदा ।।1282।।
अज्ञानाद् धर्विता विप्र त्वद्रूपेण दिवौकसा ।
न कामकाराद् विप्रर्षे प्रसादं कर्तुमर्हसि ।।1283।।

उसी समय से अधिकांश प्रजा रूपवती होने लगी। इसके बाद अहल्या ने विनीत वचनों द्वारा गौतम ऋषि को प्रसन्न करके कहा—हे विप्रर्षि! देवराज इन्द्र ने आपका स्वरूप धारण करके मुझे अनजाने में कलंकित किया है। मैं उसे पहचान नहीं सकी थी, अतः इस अज्ञानावस्था के अपराध हेतु आप मुझे क्षमा कर दें।

अहल्यया त्वेवमुक्तः प्रत्युवाच स गौतमः ।
उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ।।1284।।
रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति ।
ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णुर्मानुषविग्रहः ।।1285।।
तं द्रक्ष्यसि यदा भद्रे ततः पूता भविष्यसि ।
स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यद् दुष्कृतं कृतम् ।।1286।।

अहल्या के यह कहने पर गौतम मुनि बोले—इक्ष्वाकु वंश में महातेजस्वी तथा महाबली राम अवतरित होंगे। वे लोक-प्रसिद्ध महापुरुष मनुष्य के रूप में भगवान् विष्णु के विग्रह होंगे तथा ब्राह्मण (विश्वामित्र) के कार्य हेतु तपोवन में आएंगे। हे भद्रे! जब तुम उन्हें देखोगी, तब पवित्र हो जाओगी। तुमने जो दुष्कर्म किया है, उससे वे ही तुम्हें पवित्र कर सकेंगे।

तस्यातिथ्यं च कृत्वा वै मत्समीपं गमिष्यसि ।
वत्स्यसि त्वं मया सार्धं तदा हि वरवर्णिनि ।।1287।।

हे श्रेष्ठवर्ण वाली! उनका आतिथ्य करने के बाद तुम पुनः मेरे पास आ जाओगी तथा मेरे ही साथ रहने लगोगी।

एषमुक्त्वा स ब्रह्मर्षि राजगाम स्वमाश्रमम् ।
तपश्चचार सुमहत् सा पत्नी ब्रह्मवादिनः ।।1288।।

यह कहकर ब्रह्मर्षि गौतम अपने आश्रम में चले गए। तत्पश्चात् उन ब्रह्मवादी मुनि की पत्नी अहल्या घोर तप करने लगी।

शापोत्सर्गाद्धि तस्येदं मुनेः सर्वमुपस्थितम् ।
तत् स्मर त्वं महाबाहो दुष्कृतं यत् त्वया कृतम् ।।1289।।
तेन् त्वं ग्रहणं शत्रोर्यातो नान्येव वासव ।
शीघ्रं वै यज यज्ञं त्वं वैष्णवं सुसमाहितः ।।1290।।

हे महाबाहो! उन मुनि के शाप से ही तुम्हारा यह अपकर्म हुआ है। तुमने जो दुष्कृत्य किया था, उसका स्मरण करो। हे वासव! उसी शाप के कारण तुम्हें शत्रु के बंधन में फंसना पड़ा। इसके अलावा कोई कारण नहीं है। अब तुम एकाग्रचित्त होकर शीघ्र ही वैष्णव यज्ञ का आयोजन करो।

पावितस्तेन यज्ञेन यास्यसे त्रिदिषं ततः ।
पुत्रश्च तव देवेन्द्र न विनष्टो महारणे ।।1291।।

हे देवेन्द्र! उस यज्ञ से पवित्र होकर तुम पुनः स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे। तुम्हारा पुत्र जयन्त उस महासमर में मारा नहीं गया है।

नीतः संनिहितश्चैव आर्यकेण महोदधौ ।
एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्ट्वा च वैष्णवम् ।।1292।।

उसका नाना पुलोमा उसे लेकर महासमुद्र में चला गया है और वह उसी के पास है। यह सुनकर देवराज इन्द्र ने वैष्णव यज्ञ का अनुष्ठान किया।

पुनस्त्रिदिवमाक्रामदन्वशासच्च देवराट ।
एतदिन्द्रजितोनाम बलं यत् कीर्तितं मया ।।1293।।

यज्ञ सम्पन्न हो जाने पर देवराज इन्द्र पुनः स्वर्ग में जाकर देवताओं का शासन करने लगे। इन्द्रजित् मेघनाद का ऐसा ही बल था, जिसका मैंने वर्णन किया है।

निर्जितस्तेन देवेन्द्र प्राणिनोऽन्ये तु किं पुनः ।
आश्चर्यमिति रामश्च लक्ष्मणश्चाब्रवीत् तदा ।।1294।।
अगस्त्यवचनं श्रुत्वा वानरा राक्षस्यस्तदा ।
विभीषणस्तु रामस्य पार्श्वस्थो वाक्यमब्रवीत् ।।1295।।

उसने देवराज इन्द्र को भी जीत लिया था, फिर अन्य प्राणियों की तो बात ही क्या है? यह सुनकर राम तथा लक्ष्मण ने कहा—यह बड़े आश्चर्य की बात है। अगस्त्य ऋषि के मुख से निकले उक्त शब्दों को सुनकर वानरों तथा राक्षसों को भी अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उस समय राम के पार्श्व में बैठे हुए विभीषण ने इस प्रकार कहा—

आश्चर्यं स्मारितोऽस्म्यद्य यत् तद् दृष्टं पुरातनम् ।
अगस्त्यं त्वब्रवीद् रामः सत्यमेतच्छ्रुतं च मे ।।1296।।
एवं राम समुद्रभूतो रावणो लोककण्टकः ।

सपुत्रो येन संग्रामे जितः शुक्रः सुरेश्वरः ।।1297।।

पूर्वकाल में मैंने जो आश्चर्यजनक बातें देखी थीं, ऋषि ने आज उनका स्मरण दिला दिया है। तब अगस्त्यजी ने पुनः कहा—हे राम! इस प्रकार रावण सम्पूर्ण लोकों के लिए कण्टक स्वरूप था। उसने अपने पुत्र को साथ लेकर संग्राम में इन्द्र को भी जीत लिया था।

ततो रामो महातेजा विस्मयात् पुनरेव हि ।
उवाच प्राणो वाक्यमगस्त्य मृषिसत्तमम् ।।1298।।

तब महातेजस्वी राम ने आश्चर्य में भरकर, मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य को प्रणाम करते हुए इस प्रकार कहा—

भगवन् राक्षसः क्रूरो यदाप्रभृति मेदिनीम् ।
पर्यटन् किं तदा लोकाः शून्या आसन् द्विजोत्तमः ।।1299।।

हे भगवन्! हे द्विजोत्तम! जिस समय क्रूर राक्षस रावण पृथ्वी पर भ्रमण कर रहा था, उस समय क्या सभी लोग शक्तिशून्य ही थे?

राजा वा राजमात्रो वा किं तदा नात्र कश्चन ।
धर्षणं यत्र न प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः ।।1300।।

क्या उस समय कोई राजा अथवा राजपरिवार से भिन्न ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसके द्वारा राक्षसराज रावण को पराजय का मुंह देखना पड़ा हो?

उताहो हतवीर्यास्ते बभूवुः पृथिवीक्षितः ।
बहिष्कृता वरास्त्रैश्च बहवो निर्जिता नृपाः ।।1301।।

अथवा उस समय पृथ्वी के सभी राजा शक्तिहीन एवं श्रेष्ठ शस्त्रों के ज्ञान से रहित थे, जिसके कारण उन सबको रावण के हाथों परास्त होना पड़ा?

राघवस्य वचः श्रुत्वा अगस्त्यो भगवानृषिः ।
उवाच रामं प्रहसन् पितामह इवेश्वरम् ।।1302।।

राघव के इन वचनों को सुनकर भगवान् अगस्त्य ऋषि ने हंसते हुए उनसे इस प्रकार कहा, जैसे पितामह ब्रह्मा शिवजी से कुछ कह रहे हों।

इत्येवं बाधमानस्तु पार्थिवान् पार्थिवर्षभ ।
चचार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ।।1303।।

हे पृथ्वीपति, राजाओं में श्रेष्ठ श्रीराम! इस प्रकार रावण सभी राजाओं को सताता तथा पराजित करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा।

रावण माहिष्मती पुरी पहुंचा

ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरी प्रभाम् ।
सम्प्राप्तो यत्र सांनिध्यं सदासीद् वसुरेतसः ।।1304।।

एक समय वह स्वर्गपुरी के समान प्रभावान् ‘माहिष्मती’ नामक उस नगरी में जा पहुंचा, जहां अग्निदेव सदैव विद्यमान रहते थे।

तुल्य आसीन्नृपस्तस्य प्रभावाद् वसुरेतसः ।

अर्जुनो नाम यत्राग्निः शरकुण्डेशयः सदा ।।1305।।

उन्हीं अग्निदेव के समान तेजस्वी ‘अर्जुन’ (कार्तवीर्य) नामक राजा राज्य करता था। उसके अग्निकुण्ड में अग्निदेव सदैव निवास करते थे।

तमेव दिवसं सोऽथ हैहयाधिपतिर्बली ।
अर्जुनो नर्मदा रजं गतः स्त्रीभिः सहेश्वरः ।।1306।।

उस दिन हैहयाधिपति विदवान् राजा अर्जुन अपनी स्त्रियों के साथ नर्मदा के जल में क्रीड़ा करने गया हुआ था।

तमेव दिवसं सोऽथ रावणस्तत्र आगतः ।
रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्यामात्यानपृच्छत ।।1307।।

तभी रावण ने वहां पहुंचकर उसके मन्त्रियों से इस प्रकार पूछा—

अर्जुनो नृपतिः शीघ्रं सम्यगाख्यातुमर्हथ ।
रावणोऽहमनुप्राप्तो युद्धेप्सुर्नृवरेण ह ।।1308।।

राजा अर्जुन कहां है, मुझे शीघ्र और ठीक-ठीक बताओ। मैं रावण हूं तथा तुम्हारे महाराजा से युद्ध करने के लिए आया हूं।

ममागमनभप्यग्रे युष्माभिः संनिवेद्यताम् ।
इत्येवं रावणेनोक्तास्तेऽमात्याः सुविपश्चितः ।।1309।।

तुम लोग पहले जाकर मेरे आगमन की सूचना उसे दे दो। रावण के इस प्रकार कहने पर उन मन्त्रियों ने बताया—

अब्रुवन् राक्षसपतिम सांनिध्यं महीपतेः ।
श्रुत्वा विश्रवसः पुत्रः पौराणामर्जुनं गतम् ।।1310।।

हे राक्षसेन्द्र! इस समय हमारे महाराज राजधानी में नहीं हैं। विश्रवा के पुत्र रावण ने जब यह सुना कि अर्जुन यहां से चला गया है।

अपसृत्यगतो विन्ध्यं हिमवत्संनिभं गिरिम् ।
स तमभ्रमिवाविष्टमुद्भ्रान्तमिव मेदिनीम् ।।1311।।

तो वह वहां से हटकर हिमालय के समान विशाल विंध्यगिरि पर जा पहुंचा। वह पर्वत ऐसा प्रतीत होता था, जैसे पृथ्वी को फोड़कर ऊपर उठा हो तथा उसका शिखर बादलों में समाया हुआ हो।

अयश्यद् रावणो विन्ध्यमालिखन्त मिवाम्बरम् ।
सहस्रशिखरोपेतं सिंहाध्युषितकन्दरम् ।।1312।।

रावण ने उस विन्ध्याचल को देखा, जिसके शिखर आकाश में रेखा की भांति खिंचे हुए थे। उसके सहस्त्रों शिखर थे तथा उसकी कन्दराओं में सिंह निवास करते थे।

प्रपात पतितैः शीतैः साट्टहासमिषाम्बुभिः ।
देवदानवगन्धर्वैः साप्सरोभिः सकिन्नैरः ।।1313।।
स्वस्त्रीभिः क्रीडमानैश्च स्वर्गभूतं महोच्छ्रयम् ।
नदीभिः स्यन्दमानाभिः स्फटिक प्रतिमं जलम् ।।1314।।
फणाभिश्चलजिह्वाभिरनन्तमिव विष्ठितम् ।

उत्क्रामन्तं दरीवन्तं हिमवत्संनिभं गिरिम् ।।1315।।

शीतल जल धाराओं के गिरने के कारण वह पर्वत अट्टहास सा करता प्रतीत हो रहा था। देवता, दानव, गन्धर्व, अप्सराएं तथा किन्नर अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। अपनी महान् शोभा के कारण वह स्वर्ग जैसा प्रतीत हो रहा था। स्फटिक के समान निर्मल जल वाली नदियों के कारण वह पर्वत चंचल जिह्वाओं वाले शेषनाग सा दिखाई देता था। हिमालय के समान विशाल विन्ध्याचल अनेक गुफाओं से युक्त था।

पश्यमानस्ततो विन्ध्यं रावणो नर्मदां ययौ ।
चलोपलजलां पुण्यां पश्चिमोदधिगामिनीम् ।।1316।।

विन्ध्याचल की शोभा को देखता हुआ रावण पुण्य-सलिला प्रवहमान नर्मदा नदी के तट पर जा पहुंचा, जो पश्चिमी समुद्र की ओर चली जा रही थी।

महिषैः सृमरैः सिंहैः शार्दूलर्क्षगजोत्तमैः ।
उष्णाभितप्तैस्तृषितैः संक्षोभितजलाशयाम् ।।1317।।

धूप से तपे हुए तथा प्यास से व्याकुल महिष, हरिण, सिंह, शार्दूल, ऋक्ष तथा हाथी उसके जलाशय को विक्षुब्ध कर रहे थे।

चक्रवाकैः सकारण्डैः सहंसजलकुक्कुटैः ।
सारसैश्च सदा मत्तैः कूजद्भिः सुसमावृताम् ।।1318।।

चक्रवाक, कारण्डव, हंस, जलकुक्कुट तथा सारस आदि पक्षी मतवाले के समान कूज रहे थे और नर्मदा के पानी पर छाए हुए थे।

फुल्लद्रुमकृतोत्तंसां चक्रवाकयुग स्तनीम् ।
विस्तीर्णपुलिन श्रोणीं हंसावलि सुमेखलाम् ।।1319।।

फूलों से लदे हुए वृक्ष उस नदी के आभूषण तथा चक्रवाक के जोड़े स्तनों के समान प्रतीत हो रहे थे। विस्तीर्ण पुलिन नितम्ब के समान तथा हंसों की पंक्ति मेखला (करधनी) जैसी लग रही थी।

पुष्परेण्वनु लिप्ताङ्गीं जलफेनामलांशुकाम् ।
जलावगाह सुस्पर्शां फुल्लोत्पलशुभेक्षणाम् ।।1320।।

पुष्पों का पराग अङ्गराग की भांति उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से अनुलिप्त हो रहा था। पानी का उज्ज्वल फेन श्वेत साड़ी जैसा प्रतीत होता था। जल में गोता लगाना ही उसके सुखद स्पर्श जैसा था। खिले हुए कमल उसके नेत्रों के समान थे।

नर्मदा में स्नान

पुष्पकादवरुह्याशु नर्मदां सरितां वराम् ।
इष्टामिव वरां नारीमवगाह्य दशाननः ।।1321।।
स तस्या पुलिने रम्ये नानामुनिनिषेविते ।
उपोपविष्टः सचिवैः सार्धं राक्षसपुङ्गवः ।।1322।।

रावण ने पुष्पक विमान से उतरकर नर्मदा के श्रेष्ठ जल में डुबकी लगाई। तत्पश्चात् अनेक

मुनियों द्वारा सेवित उसके रमणीय तट पर अपने मन्त्रियों के साथ जा बैठा।

प्रख्याय नर्मदां सोऽथ गङ्गेयमिति रावणः ।
नर्मदादर्शने हर्षमाप्तवान् स दशाननः ।।1323।।

ये नर्मदा साक्षात् गङ्गा के समान हैं—यह कहकर रावण ने प्रशंसा की तथा नर्मदा के दर्शन से हर्ष का अनुभव करता रहा।

उवाच सचिवांस्तत्र सलीलं शुक सारणौ ।
एष रश्मिसहस्रेण जगत् कृत्वेव काञ्चनम् ।।1324।।
तीक्ष्णतापकरः सूर्यो नभसो मध्यमास्थितः ।
मामासीनं विदित्वैव चन्द्रायति दिवाकरः ।।1325।।

फिर उसने कौतुक सहित शुक-सारण तथा अन्य सचिवों से इस प्रकार कहा—तीक्ष्ण ताप वाले सूर्यदेव अपनी सहस्रों किरणों से सम्पूर्ण जगत् को स्वर्णमय बनाकर आकाश के मध्य भाग में स्थित हैं। परन्तु इस समय वे मुझे यहां बैठा हुआ जानकर चन्द्रमा की भांति शीतल हो गए हैं।

नर्मदाजलशीतश्च सुगन्धिः श्रमनाशनः ।
मद्भयादनिलो ह्येष वात्यसौ सुसमाहितः ।।1326।।

मेरे ही भय से वायु भी नर्मदा के जल से शीतल, सुगन्धित तथा श्रमनाशक होकर सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे बह रही है।

इयं वापि सरिच्छ्रेष्टा नर्मदा नर्मवर्धिनी ।
नक्रमीनविहंगोर्मिः सभयेवाङ्गना स्थिता ।।1327।।

नदियों में श्रेष्ठ यह नर्मदा भी क्रीड़ा-रस एवं प्रीति की अभिवृद्धि कर रही है। इसकी लहरों में नक्र, मीन, विहङ्ग आदि भयभीत नारी की गोद में खेलने वाले बच्चों की भांति क्रीड़ा कर रहे हैं।

तद्भवन्तः क्षताः शस्त्रैर्नृपैरिन्द्रसमैर्युधि ।
चन्दनस्य रसेनेव रुधिरेण समुक्षिताः ।।1328।।

तुम लोग युद्धक्षेत्र में इन्द्र-तुल्य पराक्रमी नरेशों द्वारा घायल होकर रक्त से इस प्रकार नहाए हुए हो, जैसे तुम्हारे शरीर पर लाल चन्दन का लेप कर दिया गया हो।

ते यूयमवगाहध्वं नर्मदां शर्मदां शुभाम् ।
सार्वभौममुखा मत्ता गङ्गामिव महागजाः ।।1329।।

अतः अब तुम सब लोग भी इस कल्याणकारिणी नर्मदा नदी में ठीक उसी प्रकार स्नान करो, जिस प्रकार सार्वभौमसुख आदि नामधारी महादिग्गज मतवाले बनकर गङ्गानदी में स्नान करते हैं।

अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मनो विप्रमोक्ष्यथ ।
अहमप्यद्य पुलिने शरदिन्दुसमप्रभे ।।1330।।

इस महानदी में स्नान करके तुम सब पापमुक्त एवं तापमुक्त हो जाओगे। मैं भी आज इस शरच्चन्द्र जैसे नर्मदा-तट पर—

पुष्पोपहारं शनकैः करिष्यामि कपर्दिनः ।
रावणेनैवमुक्तास्तु प्रहस्त शुकसारणा ।।1331।।
समहोदर धूम्राक्षा नर्मदां विजगाहिरे ।

राक्षसेन्द्रगजैस्तैस्तु क्षोभिता नर्मदा नदी ।।1332।।
वामनाञ्जन पद्माद्यैर्गङ्गा इव महागजैः ।
ततस्ते राक्षसाः स्नात्वा नर्मदायां महाबलाः ।।1333।।

कपर्दिन् शिव को पुष्पोपहार समर्पित करूंगा। रावण के यह कहने पर प्रहस्त, शुक, सारण, महोदर तथा धूम्राक्ष ने नर्मदा में स्नान किया, जैसे वामन, अञ्जन, पद्म आदि महादिग्गजों ने गङ्गा को विक्षुब्ध कर दिया हो। फिर वे महाबली राक्षस नर्मदा में स्नान करके बाहर निकले—

उत्तीर्य पुष्पाण्याजह्नर्बल्यर्थं रावणस्य तु ।
नर्मदापुलिने हृद्ये शुभ्राभ्रसदृशप्रभे ।।1334।।
राक्षसैस्तु मुहूर्तेन कृतः पुष्पमयो गिरिः ।
पुष्पेषूपहृतेष्वेवं रावणो राक्षसेश्वरः ।।1335।।
अवतीर्णो नदीं स्नातुं गङ्गामिव महागजः ।
तत्र स्नात्वा च विधिवज्जप्त्वा जप्यमनुत्तमम् ।।1336।।

तथा रावण के लिए पुष्प एकत्र करने में जुट गए। उस शुभ्राशुभ्र प्रभा वाली नर्मदा नदी के पुलिन पर, राक्षसों ने मुहूर्त्त भर में ही पर्वत को फूलों से ढंक दिया। इस प्रकार पुष्पों के एकत्र हो जाने पर राक्षसेश्वर रावण स्नान करने हेतु नदी में उतरा, जैसे कोई महागज स्नान करने के लिए गङ्गा में उतरा हो। स्नान करने के बाद उसने विधिपूर्वक उत्तम जप किया।

नर्मदा सलिलात् तस्मादुत्ततार स रावणः ।
ततः क्लिन्नाम्बरं त्यक्त्वा शुक्लवस्त्रसमावृतः ।।1337।।

फिर रावण ने नर्मदा के जल से बाहर निकलकर गीले वस्त्र उतारकर श्वेत वस्त्र धारण किए।

शिवलिंग की पूजा

रावणं प्राञ्जलिं यान्तमन्वयुः सर्वराक्षसाः ।
तद्गतीवशमापन्ना मूर्तिमन्त इवाचलाः ।।1338।।

तत्पश्चात् राक्षस रावण हाथ जोड़े हुए शिवजी की पूजा करने के लिए चला। उस समय अन्य राक्षस उसके पीछे-पीछे चले, जैसे मूर्तिमान् पर्वत उसकी चाल का अनुसरण करते खिंचे चले आ रहे हों।

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्ग तत्र तत्र स्म नीयते ।।1339।।

राक्षसराज रावण जहां-जहां जाता था, वहां-वहां वह एक स्वर्णमय शिवलिङ्ग भी अपने साथ ले जाता था।

वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ।।1340।।

रावण ने उस शिवलिङ्ग को बालुका की वेदी पर स्थापित किया। फिर चन्दन तथा अमृत जैसी गन्ध वाले पुष्पों से उसकी पूजा की।

ततः सतामार्तिहरं परं वरं वरप्रदं चन्द्रमयूरवभूषणम् ।
समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ प्रसार्य हस्तान् प्रणनर्त चाग्रतः ।।1341।।

तदुपरान्त सत्यपुरुषों की पीड़ा हर लेने वाले, श्रेष्ठ वरदायक तथा चन्द्र-किरणों को आभूषण के रूप में धारण करने वाले शिवजी की भली-भांति पूजा-अर्चना की। फिर वह राक्षस उनके समक्ष हाथ फैलाकर नाचने-गाने लगा।

नर्मदा पुलिने यत्र राक्षसेन्द्र स दारुणः ।
पुष्पोपहारं कुरुते तस्माद् देशाददूरतः ।।1342।।

वह क्रूर राक्षसराज रावण नर्मदा के जिस पुलिन पर शिवजी को पुष्पहार समर्पित कर रहा था, वहां से थोड़ी ही दूरी पर—

अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः ।

क्रीडते सह नारीभिर्नर्मदातोयमाश्रितः ।।1343।।

विजयी वीरों में श्रेष्ठ, माहिष्मतीपुरी का स्वामी राजा कार्तवीर्य अर्जुन अपनी स्त्रियों के साथ नर्मदा नदी के जल में क्रीड़ा कर रहा था।

तास्यां मध्यगतो राजा रराज च तदार्जुनः ।
करेणूनां सहस्रस्य मध्यस्थ इव कुञ्जरः ।।1344।।

उन सुन्दरियों के मध्य में राजा अर्जुन ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसे हजारों हथिनियों के मध्यभाग में कोई गजराज सुशोभित हो।

जिज्ञासुः स तु बाहूनां सहस्रस्योत्तमं बलम् ।
रुरोध नर्मदावेगं बाहुभिर्बहुभिर्वृतः ।।1345।।

इसके सहस्र भुजाएं थीं, अस्तु उसने अपनी भुजाओं के बल की परीक्षा लेने के उद्देश्य से, उनके द्वारा नर्मदा के जल के वेग को रोक दिया।

कार्तवीर्यभुजासक्तं तज्जलं प्राप्य निर्मलम् ।
कूलोपहारं कुर्वाणं प्रतिस्रोतः प्रधावति ।।1346।।

कार्तवीर्य की भुजाओं द्वारा रोका गया नर्मदा का वह निर्मल जल, तट पर पूजा करते हुए रावण के समीप पहुंच कर, उल्टी दिशा में बहने लगा।

समीननक्रमकरः सपुष्पकुशसंस्तरः ।
स नर्मदाम्भसो वेगः प्रावृटकाल इवामभौ ।।1347।।

मीन, नक्र, मकर, पुष्प तथा कुशस्तरण सहित नर्मदा का जल वर्षाकालीन बाढ़ के वेग के समान बढ़ने लगा।

स वेगः कार्तवीर्येण सम्प्रेषित इवाम्भसः ।
पुष्पोपहारं सकलं रावणस्य जहार ह ।।1348।।

मानो कीर्तवीर्य द्वारा भेजा गया जल का वह वेग रावण के समस्त पुष्पोपहारों को अपने साथ बहा ले गया।

रावणोऽर्धसमाप्तं तमुत्सृज्य नियमं तदा ।
नर्मदां पश्यते कान्तां प्रतिकूलां यथा प्रियाम् ।।1349।।

रावण की पूजा अभी आधी ही समाप्त हुई थी। वह उसे उसी दशा में छोड़कर नर्मदा की ओर इस प्रकार देखने लगा, जैसे कोई व्यक्ति प्रतिकूल हुई अपनी प्रियतमा को देख रहा हो।

पश्चिमेन तु तं दृष्ट्वा सागरोदगारसंनिभम् ।
वर्धन्तमम्भसो वेगं पूर्वामाशां प्रविश्य तु ।।1350।।

उसने नर्मदा के पश्चिम ओर से आते तथा पूर्व की ओर जाते हुए वेग को देखा। वह बढ़ता हुआ जल-प्रवाह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो समुद्र में ज्वार आ गया हो।

ततोऽनुद्भ्रान्तशकुनां स्वभावे परमे स्थिताम् ।
निर्विकाराङ्गनाभासामपश्यद् रावणो नदीम् ।।1351।।

नदी-तट के वृक्षों पर रहने वाले पक्षियों में कोई घबराहट नहीं थी। वे स्वाभाविक रूप से स्वयं में स्थित थे। रावण ने उस नदी को विकार रहित हृदय वाली स्त्री के समान देखा।

सव्येतरकराङ्गुल्या ह्यशब्दास्यो दशाननः ।
वेगप्रभषमन्वेष्टुं सोऽदिशच्छुक सारणौ ।।1352।।

फिर दशानन रावण ने अपना मौन तोड़े बिना ही अपने हाथ की अंगुली के सङ्केत से उस बाढ़ के कारण का पता लगाने के लिए शुक तथा सारण को आदेश दिया।

तौ तु रावण संदिष्टौ भ्रातरौ शुकसारणौ ।
व्योमान्तरगतौ वीरौ प्रस्थितौ पश्चिमामुखौ ।।1353।।

रावण का सङ्केत पाते ही वे दोनों भाई शुक और सारण आकाश मार्ग से पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े।

सहस्र भुजाधारी राजा अर्जुन

अर्धयोजनमात्रं तु गत्वा तौ रजनीचरौ ।
पश्येतां पुरुषं तोये क्रीडन्तं सहयोषितम् ।।1354।।

उन राक्षसों ने आधे योजन की दूरी पर जाकर, एक पुरुष को अपनी स्त्रियों के साथ नदी के जल में क्रीड़ा करते हुऐ देखा।

बृहत्सालप्रतीकाशं तोयव्याकुलमूर्धजम् ।
मदरक्तान्तनयनं मदव्याकुल चेतसम् ।।1355।।

वह साल के विशाल वृक्ष की भांति ऊंचा था। उसके केश पानी पर लहरा रहे थे। उसकी आंखें मद्यपान के कारण लाल हो रही थीं तथा चित्त भी मद्यपान से व्याकुल जान पड़ता था।

नदीं बाहुसहस्रण रुन्धन्तमरिमर्दनम् ।
गिरि पादसहस्रेण रुन्धन्तमिव मेदिनीम् ।।1356।।

उस शत्रु-मर्दन वीर ने अपनी सहस्र भुजाओं से नदी के प्रवाह को रोक रखा था। वह सहस्रों चरणों द्वारा पृथ्वी को थामे रखने वाले पर्वत की भांति सुशोभित था।

बालानां वरमारीणां सहस्रेण समावृतम् ।
समदानां करेणूनां सहस्रेणेव कुञ्जरम् ।।1357।।

वह बालावस्था (नवयुवती) वाली सहस्रों सुन्दर स्त्रियों से घिरा हुआ था, जैसे सहस्रों मदमत्त हथिनियों ने किसी एक हाथी को घेर रखा हो।

तमद्भुततरं दृष्ट्वा राक्षसौ शुकसारणौ ।
संनिवृत्तावुपागम्य रावणं तमथोचतुः ।।1358।।

उस अद्भुत दृश्य को देखकर दोनों राक्षस शुक-सारण रावण के पास लौट आए और इस प्रकार बोले—

बृहत्सालप्रतीकाशः कोऽप्यसौ राक्षसेश्वर ।
नर्मदां रोधवद् रुद्ध्वा क्रीडापयति योषितः ।।1359।।

हे राक्षसेन्द्र! साल वृक्ष के समान एक विशालकाय पुरुष ने इस नर्मदा नदी को अवरुद्ध कर रखा है। वह अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहा है।

तेन बाहु सहस्रेण संनिरुद्धाजला नदी ।

सागरोद्गारसंकाशानुद्गारान् सृजते मुहुः ।।1360।।

उसने अपनी सहस्र भुजाओं द्वारा नदी के जल को रोक दिया है। इसी कारण यह नदी समुद्र की भांति बारम्बार पानी के ज्वार का प्रदर्शन कर रही है।

इत्येवं भाषमाणौ तौ निशम्य शुकसारणौ ।
रावणोऽर्जुन इत्युक्त्वा स ययौ युद्धलालसः ।।1361।।

शुक-सारण द्वारा यह कहे जाने पर रावण बोला—अच्छा, वही अर्जुन है? यह कहकर वह युद्ध की इच्छा से उसकी ओर को चल दिया।

अर्जुनाभिमुखे तस्मिन् रावणे राक्षसाधिपे ।
चण्डः प्रवाति पवनः सनादः सरजस्तथा ।।1362।।

राक्षसराज रावण जिस समय अर्जुन की ओर चला, उस समय वायु भारी कोलाहल के साथ तथा प्रचण्डवेग से चल पड़ी।

सकृदेव कृतो रावः सरक्तपृषतो घनैः ।
महोदरमहापार्श्वधूम्राक्ष शुकसारणैः ।।1363।।
संवृतो राक्षसेन्द्र स्तु तत्रागाद् यत्र चार्जुनः ।
अदीर्घेणैव कालेन स तदा राक्षसो बली ।।1364।।
तं नर्मदाह्रदं भीममाजगामाञ्जनप्रभः ।
स तत्र स्त्रीपरिवृतं वासिताभिरिव द्विपम् ।।1365।।
नरेन्द्रं पश्यते राजा राक्षसानां तदार्जुनम् ।
स रोषाद् रक्तनयनो राक्षसेन्द्रो बलोद्धतः ।।1366।।

बादलों ने रक्त की बूंदें बरसाते हुए बड़े जोर से गरजना आरंभ कर दिया। महोदर, महापार्श्व, धूम्राक्ष, शुक और सारण को साथ लेकर राक्षसेन्द्र रावण उस स्थान की ओर चला, जहां अर्जुन क्रीड़ा कर रहा था। काजल के समान काले रंग वाला वह महाबली राक्षस थोड़ी ही देर में नर्मदा के उस भयंकर जलाशय के समीप जा पहुंचा। वहां उसने कामेच्छा के वशीभूत हथिनियों से घिरे गजराज के समान राजा अर्जुन को सुन्दरियों से परिवेष्टित देखा। उसे देखते ही अपने बल का अहंकार रखने वाले राक्षसराज रावण के नेत्र क्रोध से लाल हो गए।

इत्येवमर्जुनामात्यानाह गम्भीरया गिरा ।
अमात्याः क्षिप्रमाख्यात् हैहयस्य नृपस्य वै ।।1367।।
युद्धार्थं समनुप्राप्तो रावणो नाम नामतः ।
रावणस्य वचः श्रुत्वा मन्त्रिणोऽथार्जुनस्य ते ।।1368।।
उत्तस्थुः सायुधास्तं च रावणं वाक्यमब्रुवन् ।
युद्धस्य कालो विज्ञातः साधु भी साधु रावण ।।1369।।

तब उसने गुरु-गंभीर वाणी में अर्जुन के मन्त्रियों से इस प्रकार कहा—हे मन्त्रियो! तुम लोग हैहय-नरेश के पास जाकर शीघ्रतापूर्वक यह कहो कि रावण नामक योद्धा तुमसे युद्ध करने के लिए आया है। यह सुनकर अर्जुन के मन्त्री अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर खड़े हो गए तथा रावण से इस प्रकार बोले—वाह रावण! वाह, तुम्हें युद्ध के समय का खूब ज्ञान है?

यः क्षीबं स्त्रीगतं चैव योद्धुमुत्सहसे नृपम् ।

स्त्रीसमक्षगतं यत् त्वं योद्धुमुत्सहसे नृप ।।1370।।

तुम ऐसे समय में युद्ध करने के लिए आए हो, जबकि हमारे महाराज मदमत्त होकर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं।

वासितामध्यगं मत्तं शार्दूल इव कुञ्जरम् ।
क्षमस्वाद्य दशग्रीव उष्यतां रजनी त्वया ।
युद्धे श्रद्धा तु यद्यस्ति श्वस्तात समरेऽर्जुनम् ।।1371।।

जैसे कोई व्याघ्र कामवासनाग्रस्त हथिनियों के बीच खड़े हुए गजराज से युद्ध करने आया हो, वैसी ही स्थिति तुम्हारी भी है। हे दशग्रीव! यदि तुम्हारे हृदय में युद्ध के लिए उत्साह है तो रात भर के लिए क्षमा करो और यहीं ठहरो। प्रातःकाल तुम महाराज अर्जुन को युद्धक्षेत्र में उपस्थित पाओगे।

अर्जुन के योद्धाओं से संघर्ष

यदि वापि त्वरा तुभ्यं युद्धतृष्णासमावृत ।
निपात्यास्मात् रणे युद्धमर्जुनेनोपयास्यसि ।।1372।।

यदि युद्धलिप्सा से आवृत्त होने के कारण तुम्हें बहुत जल्दी हो, तो पहले हम सबको रणभूमि में मार गिराओ। उसके बाद ही तुम महाराज अर्जुन से युद्ध कर सकोगे।

ततस्तै रावणामात्यैरमात्यास्ते नृपस्यतु ।
सूदिताश्चापि ते युद्धे भक्षिताश्च बुभुक्षितैः ।।1373।।

यह सुनते ही रावण के भूखे मन्त्री युद्ध में अर्जुन के मन्त्रियों को मार-मारकर खाने लगे।

ततो हलहला शब्दो नर्मदातीरगो बभौ ।
अर्जुनस्यानुयात्राणां रावणस्य च मन्त्रिणाम् ।।1374।।

उस समय अर्जुन के अनुयाइयों तथा रावण के मन्त्रियों का नर्मदा के तट पर भारी कोलाहल का शब्द होने लगा।

इषुभिस्तोमरैः प्रासैस्त्रिशूलैर्वज्रकर्षणैः ।
सरावणानर्दयन्तः समन्तात् समभिद्रुताः ।।1375।।

अर्जुन के योद्धा भी बाणों, तोमरों, प्रासों, त्रिशूलों और वज्रकर्षण नामक शस्त्रों द्वारा चारों ओर से प्रहार करते हुए रावण सहित सभी राक्षसों को घायल करने लगे।

हैहयाधिपयोधानां वेग आसीत् सुदारुणः ।
सनक्रमीनमकरसमुद्रस्येव निःस्वनः ।।1376।।

हैहयराज के योद्धाओं का वेग अत्यन्त भीषण था और वह नक्र, मीन, मकर युक्त समुद्र की गर्जन जैसा प्रतीत हो रहा था।

रावणस्य तु तेऽमात्याः प्रहस्तशुकसारणाः ।
कार्तवीर्यबलं क्रुद्धा निहन्ति स्म स्वतेजसा ।।1377।।

रावण के मन्त्री प्रहस्त, शुक एवं सारण आदि भी अपने पराक्रम द्वारा कार्तवीर्य की सेना का क्रुद्ध होकर विनाश कर रहे थे।

अर्जुनाय तु तत्कर्मं रावणस्य समन्त्रिणः ।
क्रीडमानाय कथितं पुरुषैर्भयविह्वलैः ।।1378।।

तत्पश्चात् भय से व्याकुल सेवकों ने क्रीड़ा में संलग्न अर्जुन के पास जाकर रावण तथा उसके मन्त्रियों के क्रूर कर्म का समाचार कह सुनाया।

श्रुत्वा न भेतव्यमिति स्त्रीजनं स तदार्जुनः ।
उत्तसार जलात् तस्माद् गङ्गातोयादिवाञ्जनः ।।1379।।

उसे सुनकर अर्जुन ने अपनी स्त्रियों से भयभीत न होने की बात कही। फिर वह नर्मदा के जल से उसी प्रकार बाहर निकला, जैसे कोई दिग्गज गङ्गा नदी से बाहर निकला हो।

क्रोध दूषित नेत्रस्तु स तदार्जुनपावकः ।
प्रजज्वाल महाघोरो युगान्त इव पावकः ।।1380।।

उसकी आंखें क्रोध से लाल हो गईं। तदुपरान्त वह अर्जुन रूपी पावक प्रलयकालीन महाघोर पावक (अग्नि) के समान प्रज्वलित हो उठा।

राजा अर्जुन का राक्षसों पर कहर

स तूर्णतरमादाय वरहेमाङ्गदो गदाम् ।
अनिदुद्राण रक्षांसि तमांसीव दिवाकरः ।।1381।।

स्वर्ण-निर्मित सुन्दर बाजूबन्द धारण करने वाले अर्जुन ने गदा उठाकर-राक्षसों के ऊपर उसी तरह आक्रमण करना आरंभ कर दिया, जैसे सूर्यदेव अन्धकार के ऊपर टूट पड़े हों।

बाहुविक्षेपकरणां समुद्यम्य महागदाम् ।
गारुडं वेगमास्थाय आपपातैव सोऽर्जुनः ।।1382।।

पांच सौ हाथों से उठाकर घुमाई जाने वाली विशाल गदा को ऊपर उठाकर, राजा अर्जुन गरुड़ के समान तीव्र वेग से राक्षसों के ऊपर टूट पड़ा।

तस्य मार्गं समारुद्ध्य विन्ध्योऽर्कस्येव पर्वतः ।
स्थितो विन्ध्य इवाकम्प्यः प्रहस्तो मुसलायुधः ।।1383।।

उस समय विन्ध्य पर्वत के समान अविचल प्रहस्त नामक राक्षस अपने हाथ में मूसल लेकर, मार्ग रोककर खड़ा हो गया, जिस प्रकार पूर्वकाल में विन्ध्याचल ने सूर्य का मार्ग रोक दिया था।

ततोऽस्यमुसलं घोरं लोहबद्धं मदोद्धतः ।
प्रहस्त प्रेषयन् क्रुद्धो ररास च यथान्तकः ।।1384।।

फिर उस महान् उद्धत प्रहस्त ने अर्जुन के ऊपर लौह-निर्मित एक भयंकर मूसल चलाया तथा काल के समान क्रुद्ध होकर भीषण गर्जना की।

तस्याग्रे मुसलस्याग्निरशोकापीऽसंनिभः ।
प्रहस्तकर मुक्तस्य बभूव प्रदहन्निव ।।1385।।

प्रहस्त के हाथ से छूटे हुए उस मूसल के अग्रभाग में अशोक-पुष्प के समान लाल रंग की अग्नि प्रकट हो गई, जो प्रज्वलित सी दिखाई पड़ रही थी।

आधापमानं मुसलं कार्तवीर्यस्तदार्जुनः ।

निपुणं वञ्चयामास गदया गतविक्लवः ।।1386।।

उस मूसल को अपनी ओर आते हुए देखकर कार्तवीर्य तनिक भी विचलित नहीं हुआ, अपितु उसे अपनी गदा के प्रहार से निष्फल कर दिया।

ततस्तमभिदुद्राण सगदो हैहयाधिपः ।
भ्रामयाणो गदां गुर्वीं पञ्चबाहुशतोच्छ्रयाम् ।।1387।।

तत्पश्चात् हैहयराज पांच सौ हाथों से उठाकर चलाई जाने वाली गदा को घुमाता हुआ प्रहस्त की ओर दौड़ा।

ततो हतोऽतिवेगेन प्रहस्तो गदया तदा ।
निपपात स्थितः शैलो वज्रिवज्रहतो यथा ।।1388।।

उस गदा के अत्यन्त वेगपूर्ण प्रहार से आहत होकर प्रहस्त तत्काल ही पृथ्वी पर गिर पड़ा, जैसे कोई पर्वत इन्द्र के वज्र-प्रहार से आहत होकर पृथ्वी पर गिर गया हो।

प्रहस्तं पतितं दृष्ट्वा मारीचशुकसारणाः ।
समहोदरधूम्राक्षा अपसृष्टा रणाजिरात् ।।1389।।

प्रहस्त को गिरा हुआ देखकर मारीच, शुक, सारण, महोदर तथा धूम्राक्ष—ये सभी युद्धक्षेत्र से भाग खड़े हुए।

अपक्रान्तेष्वमात्येषु प्रहस्ते च निपातिते ।
रावणोऽभ्यद्रवत् तूर्णमर्जुनं नृपसत्तमम् ।।1390।।

प्रहस्त के धराशायी हो जाने तथा अमात्यों के भाग जाने पर रावण ने नृपश्रेष्ठ अर्जुन पर तुरन्त ही आक्रमण कर दिया।

सहस्रबाहोस्तद् युद्धं विंशद्वाहोश्च दारुणम् ।
नृपराक्षसयोस्तत्र आरब्धं रोमहर्षणम् ।।1391।।

फिर सहस्रबाहु नृपनाथ तथा विंशद्बाहु राक्षसराज में लोमहर्षक युद्ध आरम्भ हो गया।

सागराविव संक्षुब्धौ चलमूलाविवाचलौ ।
तेजोयुक्ता विवादित्यौ प्रदहन्ताविवानलौ ।।1392।।
बलोद्धतौ यथा नागौ वासितार्थे यथा वृषौ ।
मेघाविव विनर्दन्तौ सिंहाविव बलोत्कटौ ।।1393।।
रुद्रकालाविव क्रुद्धौ तौ तदा राक्षसार्जुनौ ।
परस्परं गदां गृह्य ताडयामासतुर्भृशम् ।।1394।।

दो विक्षुब्ध समुद्रों, जिनकी जड़ हिल रही हो, ऐसे दो पर्वतों, दो तेजस्वी आदित्यों, दो दाहक-अग्नियों, दो बलोद्धत गजराजों, कामोत्तेजित गाय के लिए लड़ने वाले दो सांड़ों, महान् गर्जना करने वाले दो मेघों, उत्कट बलशाली दो सिंहों, क्रोध से भरे हुए दो रुद्रों तथा कालदेवों की भांति रावण एवं अर्जुन एक दूसरे के ऊपर अपनी गदाओं से भीषण प्रहार करने लगे।

वज्रप्रहारानचला यथा घोरान् विषेहिरे ।
गदाप्रहारांस्तौ तत्र सेहाते नरराक्षसौ ।।1395।।

जिस प्रकार पूर्वकाल में पर्वतों ने इन्द्र के वज्र के भयानक आघात सहे थे, उसी प्रकार अर्जुन तथा रावण एक-दूसरे की गदाओं के प्रहार सह रहे थे।

यथा शनिरवेभ्यस्तु जायतेऽथ प्रतिश्रुति ।
तथा तयोर्गदापोथैर्दिशः सर्वाः प्रतिश्रुताः ।।1396।।

जिस प्रकार बिजली की कड़क से सभी दिशाएं प्रतिध्वनित हो उठती हैं, उसी प्रकार उनकी गदाओं के आघातों से सभी दिशाएं गूंज उठीं।

अर्जुनस्य गदा सा तु पात्यमानाहितोरसि ।
काञ्चनाभं नभश्चक्रे विद्युत्सौदामिनी यथा ।।1397।।

अर्जुन की गदा जब रावण की छाती पर गिरती थी, तो उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो आकाश में चमकने वाली बिजली आकाश को स्वर्णिम-प्रभा से भरे दे रही हो।

तथैव रावणेनापि पात्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अर्जुनोरसि निर्भाति गदोल्केव महागिरौ ।।1398।।

इसी प्रकार रावण द्वारा अर्जुन की छाती पर बारम्बार गिराई जाने वाली गदा भी किसी विशाल पर्वत पर गिरने वाली उल्का जैसी प्रकाशित हो उठती थी।

नार्जुनः खेदमायाति न राक्षसगणेश्वरः ।
सममासीत् तयोर्युद्धं यथा पूर्वं बलीन्द्रयोः ।।1399।।

न तो अर्जुन को थकान थी और न ही राक्षसराज रावण को। पूर्वकाल में युद्धरत इन्द्र तथा बलि की भांति ही उन दोनों का युद्ध भी एक जैसा ही था।

शृङ्गैरिव वृषायुध्यन् दन्ताग्रैरिव कुञ्जरौ ।
परस्परं विनिघ्नन्तौ नरराक्षससत्तमौ ।।1400।।

जिस प्रकार बैल अपने सींगों से तथा हाथी अपने दांतों के अग्रभाग से एक दूसरे पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार वे नरश्रेष्ठ-एवं राक्षसश्रेष्ठ परस्पर एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे।

ततोऽर्जुनेन क्रुद्धेन सर्वप्राणेन सा गदा ।
स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि ।।1401।।

तभी अर्जुन ने क्रुद्ध होकर अपनी पूरी शक्ति के साथ रावण के दोनों स्तनों के मध्य भाग में गदा का प्रहार किया।

वरदानकृतत्राणे सा गदा रावणोरसि ।
दुर्बलेव यथावेगं द्विधाभूतापतत्क्षितौ ।।1402।।

चूंकि रावण वरदान के प्रभाव से सुरक्षित था, अतः वेगपूर्वक चलाई गई गदा भी एक दुर्बल गदा की भांति रावण की छाती से टकराकर दो टुकड़े हो पृथ्वी पर गिर पड़ी।

स त्वर्जुनप्रयुक्तेन गदाघातेन रावणः ।
अपासर्पद् धनुर्मात्रं निषसाद च निष्टनन् ।।1403।।

परन्तु अर्जुन की गदा के आघात से पीड़ित होकर रावण एक धनुष पीछे हट गया, फिर आर्त्तनाद करता हुआ पृथ्वी पर बैठ गया।

स विह्वलं तदालक्ष्य दशग्रीवं ततोऽर्जुनः ।
सहसोत्पत्य जग्राह गरुत्मानिव पन्नगम् ।।1404।।

दशग्रीव को इस प्रकार व्याकुल देखकर अर्जुन ने सहसा उछलकर उसे इस तरह पकड़

लिया, जैसे गरुड़ ने झपट्टा मारकर किसी सर्प को पकड़ लिया हो।

रावण का बंदी बनना

स तु बाहु सहस्रेण बलाद् गृह्य दशाननम् ।
बबन्ध बलवान् राजा बलिं नारायणो यथा ।।1405।।

जिस प्रकार पूर्वकाल में श्रीनारायण ने बलि को बांधा था, उसी प्रकार राजा अर्जुन ने भी अपनी सहस्र भुजाओं द्वारा रावण को बलपूर्वक पकड़ कर बन्धन में बांध दिया।

बध्यमाने दशग्रीवे सिद्ध चारण देवताः ।
स्वाध्वीति वादिनः पुष्पैः किरन्त्यर्जुनमूर्धनि ।।1406।।

दशग्रीव रावण के इस प्रकार बंध जाने पर सिद्ध, चारण तथा देवताओं ने 'साधु-साधु' कहते हुए अर्जुन के मस्तक पर पुष्प-वर्षा की।

व्याघ्रो मृगमिवादाय मृगराडिव कुञ्जरम् ।
ररास हैहयो राजा हर्षादम्बुदवन्मुहुः ।।1407।।

जिस प्रकार व्याघ्र हरिण को दबोच लेता है अथवा सिंह हाथी को धर दबोचता है, उसी तरह रावण को अपने वश में करने के बाद हैहयराज अर्जुन प्रसन्नता से बारम्बार गरजने लगा।

प्रहस्तस्तु समाश्वस्तो दृष्ट्वा बद्धं दशाननम् ।
सहसा राक्षसः क्रुद्धो ह्यभिदुद्राव हैहयम् ।।1408।।

प्रहस्त को जब होश आया तो उसने दशानन को बंधे हुए देखा। उस समय वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर हैहयराज की ओर दौड़ा।

नक्तंचराणां वेगस्तु तेषामापाततां बभौ ।
उद्भूत आतपापाये पयोदानामिवाम्बुधौ ।।1409।।

जिस प्रकार वर्षाऋतु में समुद्र के ऊपर बादलों का वेग बढ़ जाता है, उसी प्रकार वे निशाचर भी बड़े-वेग से आक्रमण कर रहे थे।

मुञ्चमुञ्चेति भाषन्तस्तिष्ठतिष्ठेति चासकृत् ।
मुसलानि च शूलानि सोत्ससर्ज तदा रणे ।।1410।।

'छोड़ो-छोड़ो, ठहरो-ठहरो' शब्दों को बारम्बार कहते हुए वे राक्षस अर्जुन की ओर दौड़ पड़े। उस समय उन्होंने युद्धक्षेत्र में मूसल तथा शूलों के प्रहार किए।

अप्राप्तान्येव तान्याशु असम्भ्रान्तस्तदार्जुनः ।
आयुधान्यमरारीणां जग्राहारिनिषूदनः ।।1411।।

परन्तु अर्जुन को तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उसने देवताओं के शत्रु राक्षसों द्वारा छोड़े गए सभी आयुधों को अपने पास आने से पहले ही पकड़ लिया।

ततस्तैरेव रक्षांसि दुर्धरैः प्रवरायुधैः ।
भित्या विद्रावयामास वायुरम्बुधरानिव ।।1412।।

फिर उसने अपने दुर्धर एवं श्रेष्ठ आयुधों का प्रहार करके उन सभी राक्षसों को घायल करके उसी प्रकार भगा दिया, जिस प्रकार वायु बादलों को छिन्न-भिन्न करके उड़ा देती है।

राक्षसांस्त्रासयामास कार्तवीर्यार्जुनस्तदा ।
रावणं गृह्य नगरं प्रविवेश सुहृद्वृतः ।।1413।।

राक्षसों को भयभीत कर देने के बाद कार्तवीर्य अर्जुन रावण को साथ लेकर अपने सुहृदों सहित नगर में आ गया।

सकीर्यमाणः कुसुमाक्षतोत्करैर्द्विजैः सपौरैः पुरुहूतसंनिभः ।
ततोऽर्जुनः स्वां प्रविवेश तां पुरीं बलिं निगृह्येव सहस्रलोचनः ।।1414।।

नगर के समीप आने पर ब्राह्मणों तथा पुरवासियों ने अपने राजा के ऊपर पुष्प एवं अक्षतों की वर्षा की। जिस प्रकार सहस्रलोचन इन्द्र बलि को बन्दी बनाकर ले गए थे, वैसे ही अर्जुन ने बंदी रावण को लेकर नगर में प्रवेश किया।

रावणग्रहणं तत् सु वायुग्रहणसंनिभम् ।
ततः पुलस्त्यः शुश्राव कथितं दिवि दैवतैः ।।1415।।

रावण को पकड़ना वायु को पकड़ लेने जैसा था। फिर यह बात स्वर्गलोक में देवताओं द्वारा पुलस्त्य ऋषि ने भी सुनी।

ततः पुत्रकृतस्नेहात् कम्पमानो महाधृतिः ।
माहिष्मतीपतिं दृष्टुमाजगाम महानृषिः ।।1416।।

तब वे महान् धैर्यशाली होते हुए भी पुत्र-स्नेह के कारण विचलित हो गए। फिर वे महान् ऋषि माहिष्मतीपुरी के राजा अर्जुन से मिलने के लिए चल दिए।

स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विजः ।
पुरी माहिष्मतीं प्राप्तो मनः सम्पातविक्रमः ।।1417।।

वे वायु-मार्ग (आकाश-मार्ग) द्वारा वायु तुल्य गति और मन जैसे वेग से चलते हुए माहिष्मतीपुरी जा पहुंचे।

सोऽमरावतिसंकर्मशां हृष्ट-पुष्ट जन्मवृताम् ।
प्रविवेश पूरीं ब्रह्मा इस्येवामरावतीम् ।।1418।।

वह नगरी अमरावती के समान हृष्ट-पुष्ट लोगों से भरी हुई थी। जिस प्रकार ब्रह्माजी ने इन्द्रपुरी अमरावती में प्रवेश किया था, उसी प्रकार ऋषि उस नगरी में प्रविष्ट हुए।

पादचारमिवादित्यं निष्पतन्तं सुदुर्दृशम् ।
ततस्ते प्रत्यभिज्ञाय अर्जुनाय न्यवेदयन् ।।1419।।

आकाश से उतरकर पृथ्वी पर पैदल चलते हुए वे सूर्य जैसे प्रतीत हो रहे थे तथा उनकी ओर देख पाना भी बहुत कठिन लग रहा था। उनको पहचानकर सेवकों ने राजा अर्जुन को उनके आगमन की सूचना दी।

पुलस्त्य इति विज्ञाय वचनाद्धैहयाधियः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रत्युद्गच्छत् तपस्विनम् ।।1420।।

जब सेवकों की सूचना पर राजा कार्तवीर्य अर्जुन को यह पता चला कि पुलस्त्यजी पधारे हैं, तो वे सिर पर अंजलि बांधे हुए उन तपस्वी की अगवानी हेतु आगे चले।

पुरोहितोऽस्य गृह्यार्घ्यं मधुपर्कं तदैव च ।
पुरस्तात् प्रययौ राज्ञः शक्रस्येव बृहस्पतिः ।।1421।।

उनके पुरोहित हाथ में अर्घ्य तथा मधुपर्क आदि लेकर आगे-आगे चले, जैसे इन्द्र के आगे बृहस्पति चल रहे हों।

ततस्तमृषिमायान्तमुद्यन्तमिव भास्करम् ।
अर्जुनो दृश्य सम्भ्रान्तो ववन्देन्द्र इवेश्वरम् ।।1422।।

उस स्थान पर आते हुए ऋषि उदीयमान सूर्य जैसे प्रतीत हो रहे थे। अर्जुन उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने ऋषि के चरणों में उसी प्रकार प्रणाम किया, जैसे इन्द्र ब्रह्माजी को प्रणाम करते हैं।

स तस्य मधुपर्कं गां पाद्यमर्घ्यं निवेद्य च ।
पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगद्गदयागिरा ।।1423।।

राजा अर्जुन ने उन्हें मधुपर्क, पाद्य, अर्घ्य तथा गाय भेंट करने के बाद हर्ष गद्गद वाणी में इस प्रकार कहा—

अद्यैवममरावत्या तुल्या माहिष्मती कृता ।
अद्याहं तु द्विजेन्द्र त्वां यस्मात् पश्यामि दुर्दृशम् ।।1424।।

हे द्विजेन्द्र! आपने यहां पधार कर माहिष्मतीपुरी को अमरावती जैसा बना दिया है। आज मैं आपके दर्शन पाकर धन्य हो गया हूं।

अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुशलं व्रतम् ।
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।।1425।।
यत् ते देवगणैर्वन्द्यौ वन्देऽहं चरणौ तव ।
इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे दारा इमे वयम् ।
ब्रह्मन् किं कुर्मः किं कार्यमाज्ञापयतु नो भवान् ।।1426।।

हे देव! आज मैं यथार्थ में सकुशल हूं। आज मेरा व्रत भी कुशलतापूर्वक पुरा हुआ। आज मेरा जन्म सफल हुआ है। आज मेरा तप भी सफल है, क्योंकि आज मैं देवताओं द्वारा वन्दनीय आपके श्रीचरणों की वन्दना कर पा रहा हूं। यह मेरा राज्य, पुत्र, स्त्री तथा हम सब आपके ही हैं। हे ब्रह्मन्! आज्ञा दीजिए कि हम आपकी क्या सेवा करें?

दशानन की रिहाई का अनुरोध

तं धर्मेऽग्निषु पुत्रेषु शिवं पृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
पुलस्त्यो वाच राजानं हैहयानां तथार्जुनम् ।।1427।।

तब पुलस्त्यजी ने हैहयराज अर्जुन के धर्म, अग्नि (यज्ञ) तथा पुत्रों का कुशल समाचार पूछने के बाद इस प्रकार कहा—

नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन ।
अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः ।।1428।।

हे कमलदल जैसी आंखों तथा पूर्णचन्द्र जैसे मुख वाले राजेन्द्र! तुम्हारा बल अतुलनीय है, जिसने दशग्रीव को जीत लिया है।

भयाद् यस्योपतिष्ठेतां निष्पन्दौ सागरानिलौ ।

सोऽयं मृधे त्वया बद्धः पौत्रो मे रण दुर्जयः ।।1429।।

जिसके भय से समुद्र और वायु निश्चेष्ट हो जाते हैं, मेरे उस रणदुर्जय पौत्र को तुमने युद्धक्षेत्र में बांध लिया है।

पुत्रकस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया ।
मद्वाक्याद् याच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्स दशाननम् ।।1430।।

तुमने मेरे पौत्र के यश को पी लिया है तथा अपने नाम को यशस्वी बनाया है। हे वत्स! अब तुम मेरी याचना को स्वीकार कर, मेरे कहने से दशानन को छोड़ दो।

पुलस्त्याज्ञां प्रगृह्योचे न किंचन वचोऽर्जुनः ।
मुमोच वै पार्थिवेन्द्रो राक्षसेन्द्र प्रहृष्टवत् ।।1431।।

पुलस्त्य के वचनों को शिरोधार्य कर, राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने उनसे कोई और बात नहीं की तथा राक्षसेन्द्र रावण को प्रसन्नतापूर्वक मुक्त कर दिया।

स तं प्रमुच्य त्रिदशारिमर्जुनः प्रपूज्य दिव्याभरणस्रगम्बरैः ।
अहिंसकं सख्यमुपेत्य साग्निकं प्रणम्य तं ब्रह्मसुतं गृहं ययौ ।।1432।।

देवताओं के शत्रु रावण को मुक्त करने के बाद अर्जुन ने दिव्य आभूषण एवं वस्त्रादि से उसका पूजन किया तथा अग्नि को साक्षी करके उससे अहिंसक-मित्रता (परस्पर हानि न पहुंचाने का सङ्कल्प) स्थापित की। तदुपरान्त ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्यजी को प्रणाम करके राजा अर्जुन अपने घर लौट गया।

पुलस्त्येनापि संत्यक्तो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
परिष्वक्तः कृतातिथ्यो लज्जमानो विनिर्जितः ।।1433।।

राजा अर्जुन द्वारा आतिथ्य-सत्कारपूर्वक छोड़े गए प्रतापी राक्षसेन्द्र रावण को पुलस्त्यजी ने अपने हृदय से लगा लिया, परन्तु पराजय के कारण वह लज्जित ही बना रहा।

पितामह सुतश्चापि पुलस्त्यो मुनिपुङ्गवः ।
मोचयित्वा दशग्रीवं ब्रह्मलोक जगाम ह ।।1434।।

पितामह ब्रह्मा के पुत्र मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी रावण को मुक्त कराने के बाद ब्रह्मलोक को चले गए।

एवं स रावणः प्राप्तः कार्तवीर्यात् प्रघर्षणम् ।
पुलस्त्यवचनाच्चापि पुनर्भुक्तो महाबलः ।।1435।।

इस प्रकार रावण को कार्तवीर्य अर्जुन से पराजित होना पड़ा था तथा पुलस्त्यजी के कहने पर ही उस महाबली राक्षस को बन्धन से मुक्ति मिली थी।

एवं बलिभ्यो बलिनः सन्ति राघवनन्दन ।
नावज्ञा हि परे कार्या य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।।1436।।

हे रघुनन्दन! इस प्रकार संसार में एक-से-बढ़कर एक बलवान् पड़ा हुआ है। जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता हो, उसे दूसरे की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

ततः स राजा पिशिताशनानां सहस्रबाहोरुपलभ्य मैत्रीम् ।
पुनर्नृपाणां कदनं चकार चकार सर्वां पृथिवीं च दर्पात् ।।1437।।

फिर वह राक्षसराज रावण सहस्रबाहु अर्जुन की मैत्री प्राप्त करके, घमण्ड में भरकर, पुनः सभी राजाओं का संहार करता हुआ, पृथ्वी पर विचरण करने लगा।

अर्जुनेन विमुक्तस्तु रावणो राक्षसाधिपः ।
चचार पृथिवीं सर्वामनिर्विण्णस्तथा कृत ।।1438।।

अर्जुन से छुटकारा पाने के बाद राक्षसराज रावण निर्वेद रहित हो, पुनः सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करने लगा।

राक्षसं वा मनुष्यं वा शृणुते यं बलाधिकम् ।
रावणंस्तं समासाद्य युद्धे ह्वयति दर्पितः ।।1439।।

वह जिस राक्षस अथवा मनुष्य को अधिक बलशाली सुनता, अहंकारी रावण उसे ही युद्ध करने के लिए ललकार उठता था।

वानरराज बालि को ललकारा

तत् कदाचित् किष्किन्धां नगरीं वालिपालिताम् ।
गत्वाऽऽह्वयति युद्धाय बालिनं हेममालिनम् ।।1440।।

फिर वह एक दिन बालि द्वारा पालित किष्किन्धानगरी में जाकर स्वर्णमालाधारी बालि को युद्ध के लिए ललकारने लगा।

ततस्तु वानरामात्यास्तारस्तारापिता प्रभुः ।
उवाच वानरो वाक्यं युद्धप्रेप्सुमुपागतम् ।।1441।।

उस समय वानरराज बालि के मन्त्रि, तार, तारा के पिता सुषेण तथा युवराज अंगद एवं सुग्रीव ने उस युद्ध के लिए उन्मत्त राक्षस रावण से इस प्रकार कहा—

राक्षसेन्द्र गतो बालि पसो प्रतिबलो भवेत् ।
कोऽन्यः प्रमुखतः स्थातुं तव शक्तः प्लवङ्गमः ।।1442।।

हे राक्षसेन्द्र! बालि इस समय बाहर हैं, वे ही आपकी बराबरी के हैं। कोई अन्य वानर आपके समक्ष नहीं ठहर सकता।

चतुर्भ्योऽपि समुद्रेभ्यः संध्यामनवास्य रावण ।
इदं मुहूर्तमायाति बालि तिष्ठ मुहूर्तकम् ।।1443।।

हे रावण! महाराज बालि चारों समुद्रों पर सन्ध्योपासना करने के बाद अब आने ही वाले हैं, अतः आप दो घड़ी के लिए ठहर जाइए।

एतानस्थिचयान् पश्य य एते शङ्खपाण्डुराः ।
युद्धार्थिनाभिमे राजन् वानराधिपतेजसा ।।1444।।

हे राजन्! यह जो शंख जैसी उज्ज्वल आकृति वाली हड्डियों के ढेर लगे हैं, ये सब वानरराज बालि के साथ युद्ध की इच्छा लेकर आए हुए आप जैसे वीरों के ही हैं।

यद्वामृतरसः पीतस्त्वया रावण राक्षस ।
तदा बालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम् ।।1445।।

हे राक्षस रावण! यदि आपने अमृत-रस पी लिया हो तो भी बालि से टक्कर लेते ही आपके

जीवन का अन्त हो जाएगा।

पश्येदानीं जगच्चित्रमिमं विश्रवसः सुत ।
इदं मुहूर्तं तिष्ठस्व दुर्लभं ते भविष्यति ।।1446।।

हे विश्रवा के पुत्र! आश्चर्यों के भण्डार बालि को आप थोड़ी देर बाद ही देख लेंगे। केवल इसी मुहूर्त्त तक उनकी प्रतीक्षा कीजिए। उसके बाद तो आपके लिए अपना जीवन ही दुर्लभ हो जाएगा।

अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।
बालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिष्ठमिव पावकम् ।।1447।।

अथवा आपको मरने की अधिक जल्दी हो तो आप दक्षिणी समुद्र-तट पर चले जाइए, वहां आपको पृथ्वी पर बैठे हुए अग्निदेव जैसे बालि के दर्शन हो जाएंगे।

स तु तारं विनिर्भर्त्स्य रावणो लोकरावणः ।
पुष्पकं तत् समारुह्य प्रययौ दक्षिणार्णवम् ।।1448।।

तब लोकों को रुलाने वाला रावण तार को बुरा-भला कहने के बाद पुष्पक विमान पर बैठकर, दक्षिणी समुद्र तट की ओर चल दिया।

तत्रहेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम् ।
रावणो वालिनं दृष्ट्वा संध्योपासनतत्परम् ।।1449।।

वहां रावण ने स्वर्णगिरि के समान उन्नत शरीर तथा तरुण सूर्य की आभा जैसे मुख वाले बालि को सन्ध्योपासना करते हुए देखा।

पुष्पकादवरुह्याथ रावणोऽन्जनसंनिभः ।
ग्रहीतुं वालिनं तूर्णं निःशब्दपदमव्रजत् ।।1450।।

तब काजल के समान कृष्णवर्ण वाला रावण पुष्पक विमान से नीचे उतरकर बालि को पकड़ने के उद्देश्य से दबे पांवों चुपचाप आगे बढ़ा।

यदृच्छया तदा दृष्टो बालिनापि स रावणः ।
वष्पाभिप्रायकं दृष्ट्वा चकार न तु सम्भ्रमम् ।।1451।।
शशमालक्ष्य सिंहो वा पन्नगं गरुडो यथा ।
न चिन्तयति तं बालि रावणे पापनिश्चयम् ।।1452।।

दैववशात् बालि ने रावण को देख लिया, परन्तु उसके पापपूर्ण (खोटे) अभिप्राय को जानकर वे आश्चर्यचकित नहीं हुए। जिस प्रकार सिंह खरगोश को तथा गरुड़ सर्प को देखकर उसकी चिन्ता नहीं करता, उसी प्रकार बालि भी तनिक चिन्तित नहीं हुए।

जिघृक्षमाणमायान्तं रावणं पापचेतसम् ।
कक्षावलम्बिनं कृत्वा गमिष्ये त्रीनू महार्णवान् ।।1453।।

उन्होंने अपने मन में निश्चय किया कि जब यह पापात्मा रावण मुझे पकड़ने के लिए समीप आएगा, तब मैं इसे कांख में दबाकर, तीनों महासागरों पर होऊंगा।

द्रक्ष्यन्तरिं ममाङ्कस्थं स्त्रंसदूरुकराम्बरम् ।
त्यम्बमानं दशग्रीवं गरुडस्येव पन्नगम् ।।1454।।

यह मेरी कांख में दबा हुआ होगा तथा इसके हाथ-पांव एवं वस्त्र लटक रहे होंगे। उस स्थिति

में मेरा यह शत्रु गरुड़ के पंजे में दबे सर्प जैसा दिखाई देगा।

इत्येवे मतिमास्थाय बालि मौनमुपास्थितः ।
जपन् वै नैगमान् मन्त्रोस्तस्थौ पर्वतराडिव ।।1455।।

ऐसा निश्चय करके बालि चुपचाप खड़े रहे तथा मन्त्र-जप करते हुए गिरिराज सुमेरु की भांति अविचल बने रहे।

तावन्योन्यं जिघृक्षज्ञौ हरिराक्षसपार्थिवौ ।
प्रयत्नबन्तौतत् कर्मं ईहतुर्बलदर्पितौ ।।1456।।

उस समय अपने बल के अहंकार में भरे हुए वे वानर तथा राक्षस एक दूसरे को पकड़ने के इच्छुक थे। दोनों ही अपना-अपना काम बनाने की घात में थे।

रावण शिकंजे में

हस्तग्राहं तु तं मत्वा पादशब्देन रावणम् ।
पराङ्मुखोऽपि जग्राह बालि सर्पमिवाण्डजः ।।1457।।

रावण के पदचाप की हल्की सी आहट पाकर बालि ने जब यह समझा कि अब यह मुझे पकड़ना चाहता है, उसी समय उन्होंने दूसरी ओर मुंह किए हुए ही, उसे अचानक इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्प को पकड़ लेता है।

ग्रहीतुकामं तं गृह्य रक्षसामीश्वरं हरिः ।
खमुत्पपात वेगेन कृत्वा कक्षा वलम्बिन् ।।1458।।
तं च पीडयमानं तु वितुदन्तं नखैर्मुहुः ।
जहार रावणं बालि पवनस्तोयदं यथा ।।1459।।

पकड़ने की इच्छा रखने वाले उस राक्षस को बालि ने स्वयं ही पकड़कर अपनी कांख में दबा लिया, तत्पश्चात् वे बड़े वेगपूर्वक आकाश में उछले। रावण अपने दांतों तथा नखों से बारम्बार पीड़ा पहुंचाता रहा, परन्तु बालि उसे अपनी कांख में दबाए हुए उसी प्रकार घूमते रहे, जैसे वायु अपने साथ बादलों को उड़ाती घूमती है।

अथ ते राक्षसामात्या ह्रियमाणे दशानने ।
मुमोक्षयिपबो बालिं रवमाणा अभिद्रुताः ।।1460।।

यह देख रावण के मन्त्रीगण कोलाहल करते हुए, रावण को छुड़ाने के लिए बालि के पीछे-पीछे दौड़ने लगे।

अन्षीयमानस्तैर्ताली भ्राजतेऽम्बरं मध्यगः ।
अन्वीयमानो मेघोघैरम्बरस्थ इवांशुमान् ।।1461।।

आगे-आगे बालि आकाश के मध्य में चल रहे थे तथा पीछे-पीछे राक्षस थे। उस समय ऐसा लग रहा था, जैसे वे बादलों से घिरे हुए सूर्य हों।

तेऽशक्नुवत्तः सम्प्राप्तुं बालिनं राक्षसोत्तमाः ।
तस्य बाहूरुवेगेन परिश्रान्ता व्यवस्थिताः ।।1462।।

वे श्रेष्ठ राक्षस बहुत प्रयत्न करके भी बालि के पास तक नहीं पहुंच सके। बालि की भुजाओं

तथा जांघों के वेग से उत्पन्न हुई वायु के थपेड़े खाकर, वे थककर जहां के तहां खड़े रह गए।

बालिमार्शदयाक्रामान् पर्वतेन्द्रापि गच्छतः किं ।
पुनर्जीवनप्रेप्सुर्विभ्रद् वै मांसशोणितम् ।।1463।।

बालि के मार्ग से पदाक्रान्त बड़े-बड़े पर्वत भी हट जाया करते थे। फिर रक्त-मांस का शरीर धारण करने वाला जीवनेच्छुक प्राणी, उनके मार्ग से हट जाए तो इसमें कोई बड़ी बात नहीं है।

अपक्षिगणसम्पातान् वानरेन्द्रो महाजवः ।
क्रमशः सागरान् सर्वान् सन्ध्याकालमवन्दत ।।1464।।

वानरेन्द्र बालि समुद्रों तक जितनी देर में जा पहुंचते थे, उतनी देर में पक्षी भी नहीं पहुंच सकते थे। इस प्रकार चलते हुए उन वानरराज ने क्रमशः सभी समुद्रों के तट पर पहुंचकर सन्ध्यावन्दन किया।

सम्पूज्यमानो यातस्तु खचरैः खचरोत्तमः ।
पश्चिमं सागरं बालि आजगाम सरावणः ।।1465।।

समुद्रों की यात्रा करते हुए आकाशगामियों में श्रेष्ठ बालि की सभी प्राणी पूजा-प्रशंसा करते थे। फिर बालि रावण को बगल में दबाए हुए पश्चिमी समुद्रतट पर आए।

तस्मिन् संध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः ।
उत्तरं सागरं प्रायाद् वहमानो दशाननम् ।।1466।।

तदनन्तर वहां सन्ध्योपासना, स्नान तथा जप करने के बाद बाली दशकंधर को कांख में दबाए हुए उत्तरी समुद्र तट पर जा पहुंचे।

बहुयोजनसाहस्रं वहमानो महाहरिः ।
वायुवच्च मनोवच्च जगाम सह शत्रुणा ।।1467।।

वे महावानर अनेक सहस्र योजनों तक रावण को ढोते हुए वायु तथा मन के वेग के समान चल कर—

उत्तरे सागरे सन्ध्यामुपारित्वा दशाननम् ।
वहमानोऽगमद् बालि पूर्वं वै स महोदधिम् ।।1468।।

उत्तरी सागर के तट पर पहुंचे तथा वहां सन्ध्या-वन्दन किया। फिर वे रावण को ढोते हुए पूर्वी समुद्र के तट पर गए।

तत्रापि सन्ध्यामन्वास्य वासविः स हरीश्वरः ।
किष्किन्धामभितो गृह्य रावणं पुनरागमत् ।।1469।।

वानरराज बालि वहां भी सन्ध्यावन्दन सम्पन्न करके, रावण को बगल में दबाए हुए, किष्किन्धापुरी की ओर चल पड़े।

चतुर्ष्वपि समुद्रेषु संध्यामन्वास्य वानरः ।
रावणोद्वहनश्रान्तः किष्किन्धोपवनेऽपतत् ।।1470।।

इस प्रकार चारों समुद्रों के तट पर सन्ध्योपासना करके रावण को ढोते रहने के कारण थके हुए वानरराज किष्किन्धा के एक उपवन में आकर बैठ गए।

रावणं तु मुमोचाय स्वकक्षात् कपिसत्तमः ।
कुतस्त्वमिति चोवाच प्रहसन् रावणं मुहुः ।।1471।।

विस्मयं तु महद् गत्वा श्रमलोलनिरीक्षणः ।
राक्षसेन्द्रो हरीन्दं तमिदं वचनमब्रवीत् ।।1472।।

कपिश्रेष्ठ बालि ने रावण को अपनी कांख से निकाल कर बारम्बार हंसते हुए पूछा—बताओ, तुम कहां से आए हो? थकान के कारण रावण की आंखें भारी हो रही थीं। उसे बालि का पराक्रम देखकर महान् आश्चर्य हुआ था। उस राक्षसेन्द्र ने वानरेन्द्र से इस प्रकार कहा—

वानरेन्द्र महेन्द्राभ राक्षसेन्द्रोऽस्मि रावणः ।
युद्धेप्सुरिह सम्प्राप्तः स चाद्यासादितस्त्वया ।।1473।।

हे महेन्द्र के समान पराक्रमी वानरेन्द्र! मैं राक्षसेन्द्र रावण हूं। मैं आपसे युद्ध करने की इच्छा लेकर आया था, वह मुझे अपने आप ही मिल गया।

अहो बलमहो वीर्यमहो गाम्भीर्यमेव च ।
येनाहं पशुवद् गृह्य भ्रामितश्चतुरोऽर्णवान् ।।1474।।

हे महाबली! हे महावीर्यशाली! आप में अत्यधिक गम्भीरता है। आपने मुझे पशु की भांति पकड़कर चारों समुद्रों पर घुमाया है।

एवमश्रान्तषद् वीर शीघ्रमेव च वानर ।
मां चैवोद्वहमानस्तु कोऽन्यो वीरो भविष्यति ।।1475।।

हे वानरवीर! आपके अतिरिक्त ऐसा और कौन वीर हो सकता है जो बिना थके हुए मुझे इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक ढो सके?

त्रयाणामेव भूतानां गतिरेषा प्लवङ्गम ।
मनोऽनिलसुपर्णानां तव चात्र न संशयः ।।1476।।

हे वानरराज! ऐसी गति तो केवल मन, वायु तथा गरुड़—इन तीन भूतों की ही सुनी गई है। निस्सन्देह ऐसी तीव्र गति वाले आप चौथे व्यक्ति हैं।

बालि से मित्रता

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुङ्गव ।
त्वया सह चिरं संख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः ।।1477।।

हे कपिश्रेष्ठ! मैंने आपका बल देख लिया है। अब मैं अग्नि को साक्षी बनाकर आपके साथ सदैव के लिए स्नेहपूर्ण मित्रता करना चाहता हूं।

दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादन भोजनम् ।
सर्वमेवाषिभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ।।1478।।

हे वानरेश्वर! स्त्री, पुत्र, पुर, राष्ट्र, भोग, वस्त्र तथा भोजन—इन सब वस्तुओं पर हम दोनों का एक जैसा अधिकार रहेगा।

ततः प्रज्वालयित्वाग्निं तावुभौ हरिराक्षसौ ।
भ्रातृत्वमुपसपन्नौ परिष्णजय परस्परम् ।।1479।।
अन्योन्यं लम्बित करौ ततस्तौ हरिराक्षसौ ।
किष्किन्धां विशतुर्हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव ।।1480।।

तब अग्नि प्रज्वलित करके वानरराज तथा राक्षसराज दोनों ने एक दूसरे को हृदय से लगाकर, परस्पर भ्रातृत्व का सम्बन्ध स्थापित किया। फिर वे दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए प्रसन्न मन से किष्किन्धा नगरी में इस प्रकार प्रविष्ट हुए, जैसे दो सिंह किसी गुफा के भीतर प्रवेश कर रहे हों।

सतत्र मासमुषितः सुग्रीव इव रावणः ।
अमात्यैरागतैर्नीतस्त्रैलोक्योत्सादनार्थिभिः ।।1481।।

वह रावण सुग्रीव की भांति सम्मानित होकर वहां एक मास तक रहा। तदुपरान्त तीनों लोकों को उखाड़ फेंकने की इच्छा रखने वाले उसके मन्त्री उसे अपने साथ लिवा ले गए।

एवमेतत् पुरा वृत्तं बालिना रावणः प्रभो ।
धर्णितश्च वृतश्चापि भ्राता पावकसंनिधौ ।।1482।।

हे प्रभो! इस प्रकार यह घटना पहले ही घटित हो चुकी थी। बालि ने पहले तो रावण को हराया, फिर अग्नि के समीप उसे अपना भाई बना लिया।

बलमप्रतिमं राम बालिनोऽभवदुत्तमम् ।
सोऽपि त्वया विनिर्दग्धः शलभो वह्निना यथा ।।1483।।

हे राम! बालि में अप्रतिम तथा अत्युत्तम बल था। परन्तु वह भी तुम्हारे बाण की अग्नि से उसी प्रकार दग्ध हो गया, जैसे अग्नि पतङ्गे को जला देती है।

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते रामः सत्यपराक्रमः ।
अभिवाद्य मुनीन् सर्वाञ्जनस्थानमुपागमत् ।।1484।।

श्रीरामचन्द्र के वनवास-काल में शरभङ्ग मुनि जब स्वर्गलोक को चले गए, तब सत्य पराक्रम श्रीराम मुनियों को प्रणामादि निवेदित कर जनस्थान में आए।

पश्चाच्छूर्पणखा नाम रामपार्श्वमुपागता ।
ततो रामेण संदिष्टो लक्ष्मणः सहसोत्थितः ।।1485।।

तदनन्तर शूर्पणखा नामक राक्षसी कामभावापन्न हो रामचन्द्र के पास आई। तब रामचन्द्र ने लक्ष्मण को उसे दण्ड देने का सङ्केत दिया।

प्रगृह्य खङ्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः ।
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।।1486।।
हतानि वसता तत्र राघवेण महात्मना ।
एकेन सह संगम्य रामेण रणमूर्धनि ।।1487।।
अह्नश्चतुर्थभागेन निःशेषा राक्षसाः कृताः ।
महाबला महावीर्यास्तपसो विघ्नकारिणः ।।1488।।
निहता राघवेणाजौ दण्डकारण्य वासिनः ।
राक्षसाश्च विनिष्पिष्टाः खरश्च निहतो रणे ।।1489।।
दूषणं चाग्रतो हत्वा त्रिशिरास्तदनन्तरम् ।
ततस्तेनार्दिता बाला रावणं समुपागता ।।1490।।
रावणानुचरो घोरो मारीचो नाम राक्षसः ।
लोभयामास वैदेहीं भूत्वा रत्नमयो मृगः ।।1491।।

तब महाबली लक्ष्मण ने तलवार उठाकर उसके नाक-कान काट लिए। उस समय भयानक कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षस वहां लड़ने के लिए आए। परंतु उन्हें महात्मा राम ने मार डाला। वे सब युद्ध में एक साथ श्रीराम से भिड़े थे जबकि राम ने एक प्रहार में ही उन सबको समाप्त कर दिया। उन महाबली, महावीर्यवान् तथा तपस्या में विघ्न डालने वाले, दण्डकारण्य निवासी राक्षसों को राघव ने युद्ध में मार डाला। राक्षसों को पीस देने के बाद युद्ध में खर को मार डाला गया। फिर पहले दूषण तदुपरान्त त्रिशिरा को मारा गया। तब वह राक्षसी रोती हुई रावण के पास गई। तत्पश्चात् रावण के अनुचर मारीच नामक भयंकर राक्षस ने रत्नमयमृग का स्वरूप धारण कर, वैदेही को लुभाया।

स राममब्रवीद् दृष्ट्वा वैदेही गृह्यतामिति ।
अयं मनोहरः कान्त आश्रम्ये नो भविष्यति ।।1492।।

उस मृग को देखकर वैदेही ने श्रीराम से कहा—आर्यश्रेष्ठ! इस मनोहर मृग से हमारा आश्रम कान्तिमय हो जाएगा।

ततोरामोधनुष्पाणिर्मृगं तमनुधावति ।
स तं जघान धावन्तं शरेणानतपर्वणा ।।1493।।

तब रामचन्द्र ने हाथ में धनुष-बाण लेकर उस मृग का पीछा किया तथा एक ओर झुकी हुई नोक वाले बाण से उसे मार डाला।

अथ सौम्य दशग्रीवो मृगं याति तु राघवे ।
लक्ष्मणे चापि निष्क्रान्ते प्रविवेशाश्रमं तदा ।।1494।।

हे सौम्य! जब श्रीरामचन्द्र मृग के पीछे चले जा रहे थे, तब लक्ष्मण भी उनका समाचार लेने हेतु पर्णकुटी से बाहर निकल गए। उसी समय रावण ने आश्रम में प्रवेश किया।

जग्राह तरसा सीतां ग्रहः रवे रोहिणीमिव ।
भातुकामं ततो युद्धे हत्वा गृध्रं जटायुषम् ।।1495।।

उसने सीता को बलपूर्वक पकड़ लिया, जैसे आकाश में मंगल ग्रह ने रोहिणी नक्षत्र पर आक्रमण किया हो।

प्रगृह्य सहस्य सीतां जगामाशु स राक्षसः ।
ततस्त्वद्भुतसंकाशाः स्थिताः पर्वतमूर्धनि ।।1496।।
सीतां गृहीत्वा गच्छत्तं वानराः पर्वतोपमाः ।
दहशुर्षिस्मिताकारा रावणं राक्षसाधिपम् ।।1497।।
ततः शीघ्रतरं गत्वा तद् विमानं मनोजषम् ।
आरुह्य सह वैदेह्या पुष्पकं स महाबलः ।।1498।।
प्रविवेश तदा लङ्का रावणो राक्षसेश्वरः ।
तां सुवर्णपरिष्कारे शुभे महति वेश्मनि ।।1499।।
प्रवेश्य मैथिलीं वाक्यैः सान्त्वयामास रावणः ।
तृणवद् भाषितं तस्य तं च नैर्ऋतपुङ्गवम् ।।1500।।
अचिन्तयन्ती वैदेही ह्यशोकवनिकां गता ।
न्यवर्तत तदा रामो मृगं हत्वा तदा वने ।।1501।।

निवर्तमानः काकुत्स्थो दृष्ट्वा गृध्रं स विव्यथे ।
गृध्रं हतं तदादृष्ट्वा रामः प्रियतरं पितुः ।।1502।।

उनकी रक्षा के लिए आए हुए गृध्रराज जटायु को उस राक्षस ने युद्ध में मार डाला, फिर वह सीता को लेकर वहां से जल्दी ही भाग गया। उस समय एक पर्वत-शिखर पर बैठे हुए वानरों ने, जो विशाल शरीर वाले थे, आश्चर्यचकित होकर, सीता को ले जाते हुए रावण को देखा। तब वह महाबली राक्षस रावण बड़ी शीघ्रतापूर्वक मन के समान वेगवान् पुष्पक विमान के पास जा पहुंचा तथा उस पर आरूढ़ होकर लङ्का चला गया। वहां उसने स्वर्णभूषित विशाल एवं सुन्दर भवन में मैथिली सीता को रखा तथा अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से उन्हें सान्त्वना देने लगा। परन्तु अशोक वाटिका में रहते समय वैदेही ने उस राक्षसराज तथा उसकी बातों को तिनके जैसा मानकर, कभी भी उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। उधर वन में श्रीरामचन्द्र मृग को मारकर वापस लौटे तो पिता से भी अधिक प्रिय जटायु को मरा हुआ देखकर उन्हें बड़ी पीड़ा हुई।

अपहृत सीताजी की खोज

मार्गमाणस्तु वैदेहीं राघवः सहलक्ष्मणः ।
गोदावरीमनुचरन् वनोद्देशांश्च पुष्पितान् ।।1503।।

फिर लक्ष्मण सहित रामचन्द्र वैदेही सीता को ढूंढ़ते हुए गोदावरी तटवर्ती पुष्पित प्रदेश में विचरण करने लगे।

आसेदतुर्महारण्ये कबन्धं नाम राक्षसम् ।
ततः कबन्धवचनाद् रामः सत्य पराक्रमः ।।1504।।
ऋष्यमूक गिरिं गत्वा सुग्रीवेण समागतः ।
तयो समागमः पूर्वं प्रीत्याहार्दो व्यजायत ।।1505।।

सीताजी को उस महावन में ढूंढ़ते हुए कबन्ध नामक राक्षस दिखाई दिया। सत्य-पराक्रमी रामचन्द्र ने उसका उद्धार किया। फिर उसी के कहने पर वे ऋष्यमूक नामक पर्वत पर जाकर सुग्रीव से मिले। वहां दोनों में भेंट होने से पहले ही हार्दिक मित्रता हो गई।

भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन सुग्रीवो बालिना पुरा ।
इतरेतरसंवादात् प्रगाढः प्रणयस्तयोः ।।1506।।

पूर्वकाल में क्रुद्ध हुए बड़े भाई बालि ने सुग्रीव को घर से निकाल दिया था। श्रीराम एवं सुग्रीव में वार्तालाप होने के बाद उनमें प्रगाढ़ प्रेम हो गया।

रामः स्वबाहु वीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत् ।
बालिनं समरे हत्वा महाकायं महाबलम् ।।1507।।

श्रीराम ने अपनी भुजाओं की शक्ति से महाकाय-महाबली बालि को युद्ध में मार गिराया।

सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सर्ववानरैः ।
रामाय प्रतिजानीते राजपुत्र्यास्तु मार्गणम् ।।1508।।

फिर उन्होंने सुग्रीव को सब वानरों सहित उसके राज्य में स्थापित कर दिया। सुग्रीव ने श्रीराम के समक्ष यह प्रतिज्ञा भी की कि मैं राजपुत्री सीता का पता लगाऊंगा।

आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महात्मना ।
दश कोटयः प्लवङ्गानां सर्वाः प्रस्थापिता दिशः ।।1509।।

वानरराज महात्मा सुग्रीव ने दस करोड़ वानरों को सीता का पता लगाने के लिए सभी दिशाओं में भेजा।

तेषां नो विप्रकृष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
भृशं शोकाभितप्तानां महान् कालोऽत्यवर्तत ।।1510।।

उन वानरों में हनुमान आदि वानर पर्वतराज विन्ध्याचल की गुफा में प्रवेश कर गए। उन्हें वहां बहुत विलम्ब हो गया। फिर शोक-सन्तप्त रहकर उन्होंने और भी अधिक समय बिता दिया।

भ्राता तु गृध्रराजस्य सम्पातिर्नाम वीर्यवान् ।
समाख्याति स्म वसतीं सीतां रावणमन्दिरे ।।1511।।

वहां उन्हें गृध्रराज जटायु के महाशक्तिशाली सम्पाति नामक भाई मिले, जिन्होंने यह बताया कि सीता रावण के भवन में निवास कर रही हैं।

सोऽहं दुःखपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन् ।
आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुतः ।।1512।।
तत्राहमेकामद्राक्षमशोकवनिकां गताम् ।
कौशेयवस्त्रां मलिनां निरानन्दां दृढ व्रताम् ।
तया समेत्य विधिवत् पृष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम् ।।1513।।

हनुमान भरतजी से कहते हैं—तब दुःख में निमग्न अपने बन्धु-बान्धवों का दुःख दूर करने के लिए मैंने अपने बल-पराक्रम का आश्रय लेकर सौ योजन विस्तार वाला समुद्र लांघा तथा लङ्का पहुंचकर वहां अशोक वाटिका में अकेली बैठी हुई सीता को देखा। वे कौशेय (रेशमी) वस्त्र पहने, मलिन, निरानन्द, दृढ़व्रती बनी हुई थीं। उनसे मिलकर मैंने विधिपूर्वक सब समाचार पूछे।

अभिज्ञानं मयादन्तं रामनामाङ्गुलीयकम् ।
अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोऽहमागतः ।।1514।।

पहचान के लिए मैंने उन्हें राम-नाम से अंकित अंगूठी भी दी। फिर उनकी ओर से पहचान के लिए चूड़ामणि लेकर, कृतार्थ हो, मैं लौट आया।

मया च पुनरागम्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
अभिज्ञानं मयादत्तमर्चिष्मान् स महामणिः ।।1515।।

अनायास ही महान् कर्म करने वाले श्रीराम के पास पुनः लौटकर, मैंने वह तेजस्वी महामणि उन्हें पहचान के रूप में दी।

श्रुत्वा तां मैथिलीं रामस्त्वाशशंसे च जीवितम् ।
जीवितान्तमनुप्राप्तः पीत्वामृतमिवातुरः ।।1516।।

जिस प्रकार मृत्यु के समीप पहुंचा हुआ रोगी अमृत पीकर पुनः जी उठता है, उसी प्रकार सीताजी के वियोग में मरणासन्नतुल्य श्रीरामचन्द्र सीताजी का समाचार पाकर जीवित रहने के लिए आशान्वित हो गए।

उद्योजयिष्यन्नुद्योगं दध्रे लङ्कावधे मनः ।
जिघांसुखि लोकान्ते सर्वांल्लोकान् विभावसुः ।।1517।।

तदुपरान्त जैसे प्रलयकाल में 'संवर्तक' नामक अग्निदेव सब लोकों को भस्म करने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रीराम ने भी अपनी सेना को उत्साहित करते हुए, लङ्कापुरी को नष्ट कर डालने का विचार किया।

रावण, कुंभकर्ण एवं मेघनाद का अंत

ततः समुद्रमासाद्य नलं सेतुमकारयत् ।
अतरत् कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना ।।1518।।

फिर समुद्र-तट पर पहुंचकर नल नामक वानर से सेतु बनवाया तथा वानर वीरों की सेना उसी पुल पर होकर समुद्र के पार जा पहुंची।

प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः ।
लक्ष्मणो रावणसुतं स्वयं रामस्तु रावणम् ।।1519।।

वहां युद्ध में नील ने प्रहस्त को, लक्ष्मण ने रावण के पुत्र मेघनाद को तथा श्रीरामचन्द्र ने कुम्भकर्ण एवं रावण को मार डाला।

अविवेश महान् हर्षो देवानां चारणैः सह ।
रावणे निहिते रौद्रे सर्वलोक भयंकरे ।।1520।।

समस्त लोकों के लिए भयदायक राक्षसराज रावण के मारे जाने पर देवताओं तथा चारणों को अत्यधिक हर्ष हुआ।

ततः प्रजग्मुः प्रशमं मरुद्गणां दिशः प्रसेदुर्षिमलं नभोऽभवत् ।
महीचकम्पे न च मारुतो ववौ स्थिरप्रमश्चाप्यभवद् दिवाकरः ।।1521।।

तदनन्तर देवताओं को अत्यधिक शान्ति मिली, पृथ्वी का कम्पन समाप्त हुआ, सभी दिशाओं में प्रकाश भर गया, आकाश निर्मल हो गया, वायु अपनी स्वाभाविक गति से बहने लगी तथा सूर्य की प्रभा स्थिर हो गई।

ततस्तु सुग्रीव विभीषणाङ्गदाः सुहृद्विशिष्टाः सहलक्ष्मणस्तदा ।
समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं रणेऽभिरामं विधिनाभ्यपूजयन् ।।1522।।

फिर सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद तथा लक्ष्मण सहित सभी सुहृदजन श्रीरामचन्द्र की विजय से अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन सबने मिलकर नयनाभिराम श्रीराम का विधिवत् पूजन किया।

स प्रविश्य पुरीं लङ्कां राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
रावणस्याग्निहोत्रं तु निर्यापयति सत्वरम् ।।1523।।

फिर राक्षसराज विभीषण ने लंकापुरी में प्रवेश करके रावण के अग्निहोत्र संस्कार सम्बन्धी कार्यों को शीघ्रतापूर्वक समाप्त किया।

स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः ।
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान् दर्भविमिश्रितान् ।।1524।।
उदकेन च सम्मिश्रान् प्रदाय विधि पूर्वकम् ।
ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ।।1525।।

फिर विभीषण ने विधिपूर्वक रावण की चिता में आग लगाई। तदुपरान्त स्नान करके गीले वस्त्र पहने हुए ही तिल, कुश तथा जल के द्वारा रावण को विधिवत् जलाञ्जलि दी। तत्पश्चात् रावण की स्त्रियों को बारम्बार सान्त्वना देते हुए उनसे घर चलने के लिए कहा।

रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
हर्षं लेभे रिपुं हत्वा वृत्रं वज्रधरो यथा ।।1526।।

श्रीराम लक्ष्मण, सुग्रीव तथा सम्पूर्ण सेना के साथ शत्रु का वध करके ठीक उसी प्रकार प्रसन्न थे, जिस प्रकार वृत्रासुर को मारने के बाद इन्द्र प्रसन्न हुए थे।

ततो विमुक्त्वा सशरं शरासनं महेन्द्रदत्तं कवचं स तन्महत् ।
विमुच्य रोषं रिपुनिग्रहात् ततो रामः स सौम्यत्वमुपागतोऽरिहा ।।1527।।

फिर इन्द्र के दिए हुए धनुष-बाण तथा विशाल कवच को त्यागकर एवं शत्रु-वध के उपरान्त रोष को भी त्यागकर श्रीराम ने शान्तभाव धारण कर लिया।

ते रावण वधं दृष्ट्वा देवगन्धर्व दानवाः ।
जग्मुः स्वैः स्वैर्विमानैस्ते कथयन्तः शुभा कथाः ।।1528।।

रावण-वध देखने के बाद देवता, गन्धर्व तथा दानव भी उसकी शुभ चर्चा करते हुए अपने-अपने विमानों में बैठकर यथास्थान लौट गए।

रावणस्य वधं घोरं राघवस्य पराक्रमम् ।
सुयुद्धं वानराणां सुग्रीवस्य च मन्त्रितम् ।।1529।।
अनुरागं च वीर्यं च मारुतेर्लक्ष्मणस्य च ।
पतिव्रतात्वं सीताया हनूमति पराक्रमम् ।।1530।।

रावण का भयंकर वध, रघुनाथजी का पराक्रम, वानरों का उत्तम युद्ध, सुग्रीव की मन्त्रणा, हनुमान तथा लक्ष्मण की श्रीराम के प्रति अनुरागशीलता एवं वीरता, सीता का पतिव्रत और हनुमान का पराक्रम—

कथयन्तो महाभागाः जग्मुर्हृष्टा यथागतम् ।।1531।।

इन सबका वर्णन करते हुए वे देवतागण जिस प्रकार आए थे, उसी प्रकार प्रसन्नतापूर्वक लौट गए।

।। इति श्रीरावण संहितायां दशग्रीवजीवनवृत्तो नाम प्रथमखण्डः ।।

द्वितीय खंड

शिव उपासना

ॐ नमः शिवाय

ॐकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ।।
नमन्ति ऋषयो देवा नमन्त्यप्सरसां गणाः ।
नरा नमन्ति देवेशं नकाराय नमो नमः ।।
महादेवं महात्मानं महाध्यान परायणम् ।
महापापहरं देवं मकाराय नमो नमः ।।
शिव शान्तं जगन्नाथं लोकानुग्रह कारकम् ।
शिवमेक पदं नित्यं शिकाराय नमो नमः ।।
वाहनं वृषभो यस्य वास्तुकिः कण्ठ भूषणम् ।
वामे शक्तिधरं देवं यकाराय नमो नमः ।।
यत्र यत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः ।
यो गुरुः सर्वदेवानां यकाराय नमो नमः ।।
षडक्षरमिदं स्तोत्रं यः पठेच्छिव सन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।।

पंचाक्षर मंत्र एवं पंचावरण पूजन

ब्रह्मा और विष्णु ने शिवजी से पूछा—प्रभो! सृष्टि आदि पांच कृत्यों के लक्षण क्या हैं, हम दोनों को बताइए—

भगवान् शिव बोले—मेरे कर्तव्यों को समझना अत्यन्त गहन है तथापि मैं कृपापूर्वक आप लोगों को उनके विषय में बता रहा हूं। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—ये पांच ही मेरे जगत सम्बन्धी कार्य हैं जो नित्य सिद्ध हैं। संसार की रचना का आरम्भ सर्ग या 'सृष्टि' कहलाता है। मुझसे पालित होकर सृष्टि का सुस्थिर रूप से रहना ही उसकी 'स्थिति' है। उसका विनाश ही 'संहार' है। प्राणों के उत्क्रमण को 'तिरोभाव' कहते हैं। इन सबसे छुटकारा मिल जाना ही मेरा 'अनुग्रह' है। इस प्रकार मेरे पांच कृत्य हैं। सृष्टि आदि जो चार कृत्य हैं, वे संसार का विस्तार करने वाले हैं। पांचवां कृत्य अनुग्रह मोक्ष का हेतु है। वह सदा मुझमें ही अचल भाव से स्थिर रहता है।

मेरे भक्तजन इन पांचों कृत्यों को पांचों भूतों में देखते हैं। सृष्टि भूतल में, स्थिति जल में, संहार अग्नि में, तिरोभाव वायु में और अनुग्रह आकाश में स्थित है। पृथ्वी से सबकी सृष्टि होती है। आग सबको जला देती है। वायु सबको एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाती है और आकाश सबको अनुगृहीत करता है। विद्वान पुरुषों को यह विषय इसी रूप में जानना चाहिए। इन पांच कृत्यों का भार वहन करने के लिए ही मेरे पांच मुख हैं। चार दिशाओं में चार मुख हैं और इनके बीच में पांचवां मुख है। पुत्रो! तुम दोनों ने तपस्या करके प्रसन्न हुए मुझ परमेश्वर से सृष्टि और स्थिति नामक दो कृत्य प्राप्त किए हैं। ये दोनों तुम्हें बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार मेरी विभूतिस्वरूप रुद्र और महेश्वर ने दो अन्य उत्तम कृत्य—संहार और तिरोभाव मुझसे प्राप्त किए हैं। परंतु अनुग्रह नामक कृत्य कोई दूसरा नहीं पा सकता। रुद्र और महेश्वर अपने कर्म को भूले नहीं हैं। इसलिए मैंने उनके लिए अपनी समानता प्रदान की है। वे रूप, वेश, कृत्य, वाहन, आसन और आयुध आदि में मेरे ही समान हैं।

प्रणव एवं पंचाक्षर-मंत्र की महत्ता

मैंने पूर्वकाल में अपने स्वरूपभूत मंत्र का उपदेश किया है, जो ओंकार के रूप में प्रसिद्ध है। वह महामंगलकारी मंत्र है। सबसे पहले मेरे मुख में ओंकार (ॐ) प्रकट हुआ, जो मेरे स्वरूप का बोध कराने वाला है। ओंकार वाचक है और मैं वाच्य हूं। यह मंत्र मेरा ही स्वरूप है। प्रतिदिन ओंकार का निरन्तर स्मरण करने से मेरा ही सदा स्मरण होता है।

मेरे उत्तरवर्ती मुख से अकार का, पश्चिम मुख से उकार का, दक्षिण मुख से मकार का, पूर्ववर्ती मुख से विन्दु का तथा मध्यवर्ती मुख से नाद का प्राकट्य हुआ। इस प्रकार पांच अवयवों से युक्त ओंकार का विस्तार हुआ है। इन सभी अवयवों से एकीभूत होकर वह प्रणव 'ॐ' नामक एक अक्षर हो गया। यह नाम-रूपात्मक सारा जगत तथा वेद उत्पन्न स्त्री-पुरुषवर्गरूप दोनों कुल इस प्रणव-मंत्र से व्याप्त हैं। यह मंत्र शिव और शक्ति दोनों का बोधक है। इसी से पंचाक्षर मंत्र की उत्पत्ति हुई है, जो मेरे सकल रूप का बोधक है। वह अकारादि क्रम से और मकारादि क्रम से क्रमशः प्रकाश में आया है।

ॐ नमः शिवाय पंचाक्षर मंत्र है। इस मंत्र से मातृका वर्ण प्रकट हुए हैं, जो पांच भेद वाले हैं। ये पांच भेद अ इ उ ऋ लृ स्वर हैं। ये व्यंजन भी पांच-पांच वर्णों से युक्त पांच वर्ग वाले हैं। उसी से शिरोमंत्र सहित त्रिपदा गायत्री का प्राकट्य हुआ है। उस गायत्री से सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और उन वेदों से करोड़ों मंत्र निकले हैं। उन-उन मंत्रों से भिन्न-भिन्न कार्यों की सिद्धि होती है, परंतु इस प्रणव एवं पंचाक्षर से सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि होती है। इस मंत्र समुदाय से भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं। मेरे सकल स्वरूप से सम्बंध रखने वाले सभी मंत्रराज साक्षात् भोग प्रदान करने वाले और शुभकारक यानी मोक्षप्रद हैं।

ब्रह्मा-विष्णु द्वारा शिवजी की स्तुति

नन्दिकेश्वर कहते हैं कि तदनन्तर जगदम्बा पार्वती के साथ बैठे हुए गुरुवर महादेवजी ने उत्तराभिमुख बैठे ब्रह्मा और विष्णु को पर्दा करने वाले वस्त्र से आच्छादित करके उनके मस्तक पर अपना करकमल रखकर धीरे-धीरे उच्चारण करके उन्हें उत्तम मंत्र का उपदेश किया। मंत्र-तंत्र में बतायी हुई विधि के पालनपूर्वक तीन बार मंत्र का उच्चारण करके भगवान् शिव ने उन दोनों शिष्यों को मंत्र की दीक्षा दी। फिर उन शिष्यों ने गुरुदक्षिणा के रूप में अपने-आपको ही समर्पित कर दिया। दोनों ने हाथ जोड़कर उनके समीप खड़े हो उन देवेश्वर जगद्गुरु का स्तवन किया।

ब्रह्मा और विष्णु बोले—प्रभो! आप निष्कलरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप निष्कल तेज से प्रकाशित होते हैं। आपको नमस्कार है। आप सबके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्वात्मा हैं, आपको नमस्कार है अथवा सकल-स्वरूप आप महेश्वर को नमस्कार है। आप प्रणव के वाच्यार्थ हैं। आपको नमस्कार है। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह करने वाले आपको नमस्कार है। आप पांच मुख वाले हैं। आप परमेश्वर को नमस्कार है। पंचब्रह्मस्वरूप पांच कृत्य वाले आपको नमस्कार है। आप सबके आत्मा हैं, ब्रह्म हैं। आपके गुण और शक्तियां अनन्त हैं, आपको नमस्कार है। आपके सकल और निष्कल दो रूप हैं। आप सद्गुरु एवं शम्भु हैं, आपको नमस्कार है। इन पद्यों द्वारा अपने गुरु महेश्वर की स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णु ने उनके चरणों में प्रणाम किया। इस पर महेश्वर बोले—'आर्द्रा' नक्षत्र की चतुर्दशी को प्रणव का जप किया जाए तो वह अक्षय फल देने वाला होता है। सूर्य की संक्रांति को महा-आर्द्रा नक्षत्र में एक बार किया हुआ प्रणव-जप कोटिगुने जप का फल देता है। 'मृगशिरा' नक्षत्र का अन्तिम भाग तथा 'पुनर्वसु' का आदिमभाग पूजा, होम और तर्पण आदि के लिए सदा आर्द्रा के समान ही होता है—यह जानना चाहिए। मेरा या मेरे लिंग का दर्शन प्रभातकाल—प्रातः और संगव (मध्याह्न के पूर्व) में ही करना चाहिए।

मेरे दर्शन-पूजन के लिए चतुर्दशी तिथि निशीथव्यापिनी अथवा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिए, क्योंकि परवर्तिनी तिथि से संयुक्त चतुर्दशी की ही प्रशंसा की जाती है। पूजा करने वालों के लिए मेरी मूर्ति तथा लिंग दोनों समान हैं। फिर भी मेरी मूर्ति की अपेक्षा लिंग का स्थान ऊंचा है। इसलिए मुमुक्षु पुरुषों को चाहिए कि वे वेर (मूर्ति) से भी श्रेष्ठ समझकर लिंग का ही पूजन करें। लिंग का ऊंकार मंत्र से और वेर का पंचाक्षर मंत्र से पूजन करना चाहिए। शिवलिंग की स्वयं ही स्थापना करना चाहिए अथवा दूसरों से स्थापना करवाकर उत्तम द्रव्यमय उपचारों से पूजा करनी चाहिए। इससे मेरा पद सुलभ हो जाता है। इस प्रकार उन दोनों शिष्यों को उपदेश देकर भगवान्

शिव वहीं अन्तर्धान हो गए।

शिवलिंग की स्थापना एवं लक्षण

भगवान् शिव की आराधना हेतु महापण्डित रावण ने अपने गुरुदेव शुक्राचार्य से शिवलिंग पूजन विधान का वर्णन करने को प्रार्थना की। अपने हृदय में भगवान् शिव के प्रति रावण का श्रद्धा भाव देख गुरु शुक्राचार्य प्रसन्न होकर बोले—हे रावण! मैं तुम्हें तीनों लोकों में सभी विद्याओं के स्वामी तथा सबके हितकारी परम दयालु भगवान् शिव के पूजन एवं शिवलिंग स्थापना का विधान बताता हूं, ध्यान से सुनो—

शुभ समय में योग-नक्षत्र इत्यादि देखकर किसी पवित्र स्थान या नदी तट पर अपनी रुचि के अनुसार शिवलिंग की स्थापना करनी चाहिए, जहां नित्य पूजन हो सके। पार्थिव द्रव्य से, जलमय द्रव्य से, जैजस पदार्थ से अथवा कल्पोक्त पदार्थ से उत्तम लक्षणों से युक्त शिवलिंग का निर्माण करके उसकी पूजा करने से उपासक को पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। यदि सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त शिवलिंग की पूजा की जाए तो वह तत्काल पूजा का फल देने वाला होता है। यदि चल प्रतिष्ठा करनी हो तो इसके लिए छोटा-सा शिवलिंग अथवा विग्रह श्रेष्ठ माना जाता है। यदि अचल प्रतिष्ठा करनी हो तो स्थूल शिवलिंग अथवा विग्रह अच्छा माना गया है।

उत्तम लक्षणों से युक्त शिवलिंग की पीठ सहित स्थापना करनी चाहिए। शिवलिंग का पीठ मण्डलाकार (गोल), चौकोर, त्रिकोण अथवा खाट के पाये की भांति ऊपर-नीचे मोटा और बीच में पतला होना चाहिए। ऐसा लिंग-पीठ महान फल देने वाला होता है। पहले मिट्टी से, प्रस्तर से अथवा लोहे आदि से शिवलिंग का निर्माण करना चाहिए। जिस द्रव्य से शिवलिंग का निर्माण हो, उसी से उसका पीठ भी बनाना चाहिए। यही स्थावर (अचल प्रतिष्ठा वाले) शिवलिंग की विशेष बात है। चर (चल प्रतिष्ठा वाले) शिवलिंग में भी लिंग और पीठ का एक ही उपादान होना चाहिए। किन्तु बाणलिंग के लिए यह नियम नहीं है। लिंग की लम्बाई निर्माणकर्ता या स्थापना करने वाले यजमान के बारह अंगुल के बराबर होनी चाहिए। ऐसे ही शिवलिंग को उत्तम कहा गया है। यदि इससे कम लम्बाई हो तो फल में कमी आ जाती है। अधिक हो तो कोई दोष की बात नहीं है।

शुक्राचार्य अपनी बात को जारी रखते हुए बोले—चर लिंग में भी वैसा ही नियम है। उसकी लम्बाई कम से कम कर्ता के एक अंगुल के बराबर होनी चाहिए। उससे छोटा होने पर अल्प फल मिलता है। किंतु उससे अधिक होना दोष की बात नहीं है। यजमान को चाहिए कि वह पहले शिल्पशास्त्र के अनुसार एक विमान या देवालय बनवाए, जो देवगणों की मूर्तियों से अलंकृत हो। उसका गर्भगृह बहुत ही सुन्दर, सुदृढ़ और दर्पण के समान स्वच्छ हो। उसे नौ प्रकार के रत्नों से विभूषित किया गया हो। उसके पूर्व और पश्चिम दिशा में दो मुख्य द्वार हों। अब **ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः । ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मथाय नमः** आदि वैदिक मंत्रों द्वारा शिवलिंग का पांच स्थानों में क्रमशः पूजन करके अग्नि में हविष्य की अनेक आहुतियां दें। फिर परिवार सहित मेरी पूजा करके गुरुस्वरूप आचार्य को धन से तथा भाई-बन्धुओं को जड़ (सुवर्ण, गृह एवं भू-सम्पत्ति) एवं चेतन (गौ आदि) वैभव प्रदान करें।

तत्पश्चात् स्थावर-जंगम सभी जीवों को यत्नपूर्वक संतुष्ट करके एक गड्ढे में सुवर्ण तथा नौ प्रकार के रत्न भरकर सद्योजातादि वैदिक मंत्रों का उच्चारण करके परम कल्याणकारी महादेवजी का ध्यान करें। फिर नादघोष से युक्त महामंत्र ओंकार (ॐ) का उच्चारण करके उक्त गड्ढे में शिवलिंग की स्थापना करके उसे पीठ से संयुक्त करें। लिंग की स्थापना करके नित्य लेप (दीर्घकाल तक टिके रहने वाले मसाले) से जोड़कर स्थिर करें। इसी प्रकार वहां परम सुन्दर वेर (मूर्ति) प्रतिष्ठा के लिए भी समझनी चाहिए। अन्तर इतना ही है कि लिंग प्रतिष्ठा के लिए प्रणव मंत्र के उच्चारण का विधान है। परंतु वेर की प्रतिष्ठा पंचाक्षर मंत्र से करनी चाहिए। जहां लिंग की प्रतिष्ठा हुई है, वहां भी उत्सव के लिए बाहर सवारी निकालने आदि के निमित्त वेर (मूर्ति) को रखना आवश्यक है। वेर को बाहर से भी लिया जा सकता है। उसे गुरुजनों से ग्रहण करें। बाह्य वेर वही लेने योग्य है, जो साधु-पुरुषों द्वारा पूजित हो। इस प्रकार लिंग और वेर में भी की हुई महादेवजी की पूजा शिवपद प्रदान करने वाली होती है।

स्थावर और जंगम के भेद से लिंग भी दो प्रकार का कहा गया है। वृक्ष, लता आदि को स्थावर लिंग कहते हैं और कृमि-कीट आदि को जंगम लिंग। स्थावर लिंग की सींचने आदि के द्वारा सेवा करनी चाहिए और जंगम लिंग को आहार एवं जल आदि देकर तृप्त करना उचित है। उन स्थावर-जंगम जीवों को सुख पहुंचाने में अनुरक्त होना भगवान् शिव का पूजन है, ऐसा विद्वान पुरुष मानते हैं। यों चराचर जीवों को ही भगवान् शंकर का प्रतीक मानकर उनका पूजन करना चाहिए।

पूजन विधि तथा शिवपद की प्राप्ति

महालिंग की स्थापना करके विविध उपचारों द्वारा उसका पूजन करें। अपनी शक्ति के अनुसार नित्य पूजा करनी चाहिए तथा देवालय के पास ध्वजारोपण आदि करना चाहिए। शिवलिंग साक्षात् शिव का पद प्रदान करने वाला है। चर लिंग में षोडशोपचारों द्वारा यथोचित रीति से क्रमशः पूजन करें। यह पूजन भी शिवपद प्रदान करने वाला है। आह्वान, आसन, अर्घ्य, पाद्य, पाद्यांग आचमन, अभ्यंगपूर्वक स्नान, वस्त्र एवं यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल-समर्पण, नीराजन, नमस्कार और विसर्जन—ये सोलह उपचार हैं अथवा अर्घ्य से लेकर नैवेद्य तक विधिवत् पूजन करें। अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण—ये सब यथाशक्ति नित्य करें। इस तरह किया हुआ शिव का पूजन शिवपद की प्राप्ति कराने वाला होता है।

किसी मनुष्य के द्वारा स्थापित शिवलिंग, ऋषियों द्वारा स्थापित शिवलिंग, देवताओं द्वारा स्थापित शिवलिंग, अपने आप प्रकट हुए स्वयंभूलिंग तथा अपने द्वारा नूतन स्थापित शिवलिंग का उपचारपूर्वक पूजन करने या पूजा की सामग्री देने से भी मनुष्य को उपरोक्त फल प्राप्त होता है। क्रमशः परिक्रमा और नमस्कार करने से भी शिवलिंग शिवप्रद की प्राप्ति कराने वाला होता है। यदि नियमपूर्वक शिवलिंग का दर्शनमात्र कर लिया जाए तो वह भी कल्याणप्रद होता है। मिट्टी, आटा, गाय के गोबर, फूल, कनेर-पुष्प, फल, गुड़, मक्खन, भस्म अथवा अन्न से भी अपनी रुचि के अनुसार शिवलिंग बनाकर तदनुसार उसका पूजन करें या प्रतिदिन दस हजार प्रणव मंत्र का जप करें अथवा दोनों संध्याओं के समय एक-एक सहस्र प्रणव का जप करें। यह क्रम भी शिवपद की प्राप्ति कराने वाला है, ऐसा जानना चाहिए।

जपकाल में मकरान्त प्रणव का उच्चारण मन की शुद्धि करने वाला होता है। समाधि में मानसिक जप का विधान है, लेकिन अन्य सभी समय उपांशु जप ही करना चाहिए। नाद और बिन्दु से युक्त ओंकार के उच्चारण को विद्वान पुरुष 'समानप्रणव' कहते हैं। यदि प्रतिदिन आदरपूर्वक दस हजार पंचाक्षर मंत्र का जप किया जाए अथवा दोनों संध्याओं के समय एक-एक सहस्र का ही जप किया जाए तो उसे शिवपद की प्राप्ति कराने वाला समझना चाहिए। ब्राह्मणों के लिए आदि में प्रणव से युक्त पंचाक्षर मंत्र अच्छा बताया गया है।

कलश से किया हुआ स्नान, मंत्र की दीक्षा, मातृकाओं का न्यास, सत्य से पवित्र अन्तःकरण वाला ब्राह्मण तथा ज्ञानी गुरु—इन सबको उत्तम माना गया है। द्विजों के लिए **नमः शिवाय** के उच्चारण का विधान है। द्विजेतरों के लिए अन्त में नमः पद के प्रयोग की विधि है अर्थात् वे **शिवाय नमः** मंत्र का उच्चारण करें। स्त्रियों के लिए भी कहीं-कहीं विधिपूर्वक नमोऽन्त उच्चारण का ही विधान है अर्थात् वे भी **शिवाय नमः** का ही जप करें। कोई-कोई ऋषि ब्राह्मण स्त्रियों के लिए नमःपूर्वक शिवाय के जप की अनुमति देते हैं अर्थात् वे **नमः शिवाय** का जप करें।

पंचाक्षर मंत्र का पांच करोड़ जप करके मनुष्य भगवान् सदाशिव के समान हो जाता है। एक, दो, तीन अथवा चार करोड़ का जप करने से क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा महेश्वर का पद प्राप्त होता है या मंत्र में जितने अक्षर हैं, उनका पृथक-पृथक एक-एक लाख जप करें अथवा समस्त अक्षरों का एक साथ ही जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करें। इस तरह के जप को शिवपद की प्राप्ति कराने वाला समझना चाहिए। यदि एक हजार दिनों में प्रतिदिन एक सहस्र जप के क्रम से पंचाक्षर मंत्र का दस लाख जप पूरा कर लिया जाए और प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराया जाए तो उस मंत्र से अभीष्ट कार्य की सिद्धि होने लगती है। ब्राह्मणों को चाहिए कि वे प्रतिदिन प्रातःकाल एक हजार आठ बार गायत्री का जप करें। ऐसा करने पर गायत्री क्रमशः शिवपद प्रदान करने वाली होती हैं। वेदमंत्रों और वैदिक सूक्तों का भी नियमपूर्वक जप करना चाहिए। वेदों का पारायण भी शिवपद की प्राप्ति कराने वाला है, ऐसा जानना चाहिए।

अन्यान्य जो बहुत से मंत्र हैं, उनके जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करें। इस प्रकार जो यथाशक्ति जप करता है, वह क्रमशः शिवपद (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। अपनी रुचि के अनुसार किसी एक मंत्र को अपनाकर मृत्युपर्यन्त प्रतिदिन उसका जप करना चाहिए अथवा 'ओम्' (ॐ) मंत्र का प्रतिदिन एक सहस्र जप करना चाहिए। ऐसा करने पर भगवान् शिव की आज्ञा से सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि होती है।

पुण्य कार्य

जो मनुष्य भगवान् शिव के लिए फुलवाड़ी या बगीचे आदि लगाता है तथा शिव के सेवाकार्य के लिए मन्दिर में झाड़ने-बुहारने आदि की व्यवस्था करता है, वह शिवपद प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिव के जो काशी आदि क्षेत्र हैं, वहां भक्तिपूर्वक निवास करें। वह जड़ एवं चेतन—सभी को भोग और मोक्ष देने वाला है। अतः विद्वान पुरुष को भगवान् शिव के क्षेत्र में आमरण निवास करना चाहिए। पुण्य क्षेत्र में स्थित बावड़ी, कुआं और पोखरे आदि को शिवगंगा समझना चाहिए —भगवान् शिव का ऐसा ही वचन है। वहां स्नान, दान और जप करके मनुष्य भगवान् शिव को प्राप्त कर लेता है। अतः मृत्युपर्यन्त शिव के क्षेत्र का आश्रय लेकर रहना चाहिए। जो शिव के क्षेत्र

में अपने किसी मृत सम्बंधी का दाह, दशाह, मासिक श्राद्ध, सपिण्डीकरण या वार्षिक श्राद्ध करता है अथवा कभी भी शिव के क्षेत्र में अपने पितरों को पिण्ड देता है, वह सब पापों से मुक्त होकर अन्त में शिवपद पाता है। शिव के क्षेत्र में सात, पांच, तीन या एक ही रात निवास करने से भी क्रमशः शिवपद की प्राप्ति होती है।

लोक में अपने-अपने वर्ण अनुरूप सदाचार पालन करने से भी मनुष्य शिवपद को प्राप्त कर लेता है। वर्णानुकूल आचरण तथा भक्तिभाव से वह अपने सत्कर्म का अतिशय फल पाता है। कामनापूर्वक किए हुए अपने कर्म से भी वह अभीष्ट फल शीघ्र ही पा लेता है। निष्काम भाव से किया हुआ सारा कर्म साक्षात् शिवपद की प्राप्ति कराने वाला होता है।

दिन के तीन विभाग होते हैं—प्रातः, मध्याह्न और सायाह्न। इन तीनों में क्रमशः एक-एक प्रकार के कर्म का सम्पादन किया जाता है। प्रातःकाल को शास्त्रविहित नित्यकर्म के अनुष्ठान का समय जानना चाहिए, मध्याह्नकाल सकाम-कर्म के लिए उपयोगी है तथा सायंकाल शांति-कर्म के लिए उपयुक्त है—ऐसा जानना चाहिए। इसी प्रकार रात्रि में भी समय का विभाजन किया गया है। रात के चार प्रहरों में से जो बीच के दो प्रहर हैं, उन्हें निशीथकाल कहा गया है। विशेषतः उसी काल में की हुई भगवान् शिव की पूजा अभीष्ट फल देने वाली होती है। ऐसा जानकर कर्म करने वाला मनुष्य यथोक्त फल का भागी होता है। विशेषतः कलियुग में कर्म के ही फल की सिद्धि होती है। अपने-अपने अधिकार के अनुसार ऊपर कहे गए किसी भी कर्म के द्वारा शिवाराधना करने वाला सदाचारी पुरुष यदि पाप से डरता है तो वह उन-उन कर्मों का पूरा-पूरा फल अवश्य प्राप्त कर लेता है।

पार्थिव लिंग निर्माण विधान

गुरुदेव शुक्राचार्य ने रावण से कहा—हे पुत्र! अब मैं पार्थिव लिंग की श्रेष्ठता तथा महिमा का वर्णन करता हूं। यह पूजा भोग और मोक्ष दोनों को देने वाली है। आह्निक सूत्रों में बतायी हुई विधि के अनुसार विधिपूर्वक स्नान और संध्योपासना करके पहले ब्रह्मयज्ञ करें। तत्पश्चात् देवताओं, ऋषियों, सनकादि मनुष्यों और पितरों का तर्पण करें। अपनी रुचि के अनुसार सम्पूर्ण नित्यकर्म पूर्ण करके शिव स्मरणपूर्वक भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करें। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मनोवांछित फल की सिद्धि के लिए ऊंची भक्तिभावना के साथ उत्तम पार्थिव लिंग की वेदोक्त विधि से भलीभांति पूजा करें। नदी या तालाब के किनारे, पर्वत पर, वन में, शिवालय में अथवा किसी अन्य पवित्र स्थान में पार्थिव पूजा करने का विधान है। ब्राह्मण शुद्ध स्थान से निकाली हुई मिट्टी को यत्नपूर्वक लाकर बड़ी सावधानी के साथ शिवलिंग का निर्माण करें। ब्राह्मण के लिए श्वेत, क्षत्रिय के लिए लाल, वैश्य के लिए पीली और शूद्र के लिए काली मिट्टी से शिवलिंग बनाने का विधान है अथवा जहां जो मिट्टी मिल जाए, उसी से शिवलिंग बनाएं।

शिवलिंग बनाने के लिए प्रयत्नपूर्वक मिट्टी संग्रह करें। फिर उस शुभ मृत्तिका को अत्यन्त शुद्ध जल से सानकर पिण्डी बना लें और वेदोक्त मार्ग से धीरे-धीरे सुन्दर पार्थिव लिंग की रचना करें। तत्पश्चात् भोग और मोक्षरूपी फल की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक उसका पूजन करें। उस पार्थिव लिंग के पूजन की जो विधि है, उसे मैं विधानपूर्वक बता रहा हूं, आप लोग सुनो—

ॐ नमः शिवाय मंत्र का उच्चारण करते हुए समस्त पूजन-सामग्री का प्रोक्षण करें—उस पर जल छिड़कें। इसके बाद **भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धत्रीं। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दूं ह पृथिवीं मा हिं सीः।** इत्यादि मंत्र से क्षेत्र सिद्धि करें, फिर **आपोऽस्मान् मातर शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति-देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि।**

दीक्षातपसोस्तनूरसिं तां व शिवां शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन (यजु. 4/2) मंत्र से जल का संस्कार करें। इसके बाद **नमस्त रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः बाहुभ्यामुत ते नमः** (यजु. 16/1) मंत्र से स्फटिकाबंध (स्फटिक शिला का घेरा) बनाने की बात कही गयी है। **नमः शम्भवाय** [1] मंत्र से क्षेत्रशुद्धि और पंचामृत का प्रोक्षण करें। तत्पश्चात शिवभक्त पुरुष 'नमः' पूर्वक **नीलग्रीवाय** [2] **मंत्र से शिवलिंग की उत्तम प्रतिष्ठा करें।**

इसके बाद वैदिक रीति से पूजन-कर्म करने वाले उपासक भक्तिपूर्वक **एतते रुद्रावसं** [3] मंत्र से आह्वान करें या **ते रुद्र** [5] मंत्र से भगवान् शिव को आसन पर समासीन करें। **यामिषुं** [6] मंत्र से शिव के अंगों में न्यास करें। **अध्यवोचत्** [7] मंत्र से प्रेमपूर्वक अधिवासन करें। **असौ यस्ताम्रो** [8] मंत्र से शिवलिंग में इष्टदेवता शिव का न्यास करें। **असौ योऽवसर्पति** [9] मंत्र से उपसर्पण (देवता के समीप गमन) करें। इसके बाद **नमोऽस्तु नीलग्रीवाय** [10] मंत्र से इष्टदेव को पाद्य समर्पित करें। **रुद्रगायी** [11] मंत्र से अर्घ्य दें। **त्र्यम्बकं** [12] मंत्र से आचमन कराएं। **पयः पृथिव्यां** [13] मंत्र से दुग्धस्नान कराएं। **दधिक्राव्णो** [14] मंत्र से दधिस्नान कराए। **घृतं घुतपावा** [15] मंत्र से घृतस्नान कराएं। **मधु वाता** [16] **मधुनक्तं** [17] **मधुमान्नो** [18] **—** इन तीन ऋचाओं से मधुस्नान और शर्करास्नान कराएं। दुग्ध आदि पांच वस्तुओं को पंचामृत कहते हैं।

अथवा पाद्य-समर्पण के लिए कहे गए **नमोऽस्तु नीलग्रीवाय** [19] इत्यादि मंत्र द्वारा पंचामृत से स्नान कराएं। तदनन्तर **मा नस्तोके** [20] मंत्र से प्रेमपूर्वक भगवान् शिव को कटिबन्ध (करधनी) अर्पित करे। **नमो घृष्णवे** [21] मंत्र का उच्चारण करके आराध्य देवता को उत्तरीय धारण कराएं। **या ते हेतिः** [22] इत्यादि चार ऋचाओं को पढ़कर वेदज्ञ भक्त प्रेम से विधिपूर्वक भगवान् शिव के लिए वस्त्र (यज्ञोपवीत) समर्पित करें। इसके बाद **नमःश्वभ्यः** [23] इत्यादि मंत्र को पढ़कर शुद्ध बुद्धि वाले भक्त पुरुष भगवान् को प्रेमपूर्वक गन्ध (सुगन्धित चन्दन एवं रोली) चढ़ाएं। **नमस्तक्षभ्यो** [24] मंत्र से अक्षत अर्पित करें। **नमः पर्याय** [25] मंत्र से फूल चढ़ाएं। **नमः पर्णाय** [26] मंत्र से बिल्वपत्र समर्पित करें। **नमः कपर्दिने च** [27] इत्यादि मंत्र से विधिपूर्वक धूप दें। **नमः आशवे** [28] ऋचा से शास्त्रोक्त विधि के अनुसार दीप निवेदन करें।

तत्पश्चात् (हाथ धोकर) **नमो ज्येष्ठाय** [29] मंत्र से उत्तम नैवेद्य अर्पित करें। फिर पूर्वोक्त **त्र्यम्बक** मंत्र से आचमन कराएं। **इमा रुद्राय** [30] ऋचा से फल समर्पण करें। फिर **नमो व्रज्याय** [31] मंत्र से भगवान् शिव को अपना सब कुछ समर्पित कर दें। तदनन्तर **मा नो महान्तम** तथा **मा नस्तोके—** इन पूर्वोक्त दो मंत्रों द्वारा केवल अक्षतों से ग्यारह रुद्रों का पूजन करें। फिर **हिरण्यगर्भः** [32] इत्यादि मंत्र से जो तीन ऋचाओं के रूप में पठित हैं, दक्षिणा चढ़ाएं। **देवस्य त्वा** [33] मंत्र से विद्वान पुरुष आराध्यदेव का अभिषेक करें। दीप के लिए बताए हुए **नमः आशवे** इत्यादि मंत्र से भगवान् शिव की नीराजन (आरती) करें। तत्पश्चात् **हमा रुद्राय** इत्यादि तीन ऋचाओं से भक्तिपूर्वक रुद्रदेव को पुष्पांजलि अर्पित करें। **मा नो महान्तम** [34] मंत्र से विज्ञ

उपासक पूजनीय देवता की परिक्रमा करें।

फिर उत्तम बुद्धि वाले उपासक **मा नस्तोके** मंत्र से भगवान् को साष्टांग प्रणाम करे। **एष ते** [35] मंत्र से शिव का प्रदर्शन करें। **यतो यतः** [36] मंत्र से अभय नामक मुद्रा का, **त्र्यम्बकं** मंत्र से ज्ञान नामक मुद्रा का तथा **नमः सेना** [37] इत्यादि मंत्र से महामुद्रा का प्रदर्शन करें। **नमो गोभ्य** [38] ऋचा द्वारा धेनुमुद्रा दिखाएं। इस तरह पांच मुद्राओं का प्रदर्शन करके शिव सम्बंधी मंत्रों का जप करें तथा वेदज्ञ पुरुष **शतरुद्रिय** [39] मंत्र की आवृत्ति करें। तत्पश्चात् वेदज्ञ पुरुष पंचांग पाठ करें। तदनन्तर **देवा गातु** [40] इत्यादि मंत्र से भगवान् शंकर का विसर्जन करें। इस प्रकार शिव पूजा की वैदिक विधि का विस्तार से प्रतिपादन किया गया।

अब संक्षेप में भी पार्थिव पूजन की वैदिक विधि का वर्णन सुनो— **सद्योजात** [41] ऋचा से पार्थिव लिंग बनाने के लिए मिट्टी ले आएं। **वामदेवाय** [42] इत्यादि मंत्र पढ़कर उसमें जल डालें। जब मिट्टी सनकर तैयार हो जाए तब **अघोर** [43] मंत्र से लिंग निर्माण करें। फिर **तत्पुरुषाय** [44] मंत्र से विधिवत् उसमें भगवान् शिव का आह्वान करें। तदनन्तर **ईशान** [45] मंत्र से भगवान् शिव को वेदी पर स्थापित करें। इनके सिवाय अन्य विधानों को भी शुद्ध बुद्धि वाले उपासक संक्षेप में ही सम्पन्न करें। इसके बाद विद्वान पुरुष पंचाक्षर मंत्र से अथवा गुरु के दिए हुए किसी अन्य शिव सम्बंधी मंत्र से सोलह उपचारों द्वारा विधिवत् पूजन करें अथवा **भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि। उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने** (20/43) मंत्र द्वारा विद्वान उपासक भगवान् शंकर की पूजा करें। वे भ्रम छोड़कर उत्तम भाव-भक्ति से शिव की आसधना करें, क्योंकि भगवान् शिव भक्ति से ही मनोवांछित फल देते हैं।

यहां जो वैदिक विधि से पूजन का क्रम बताया गया है, इसका पूर्णरूप से आदर करता हुआ मैं पूजा की एक दूसरी विधि भी बता रहा हूं, जो उत्तम होने के साथ ही सर्वसाधारण के लिए उपयोगी है। मुनिवरो! पार्थिव लिंग की पूजा भगवान् शिव के नामों से बतायी गई है। वह पूजा सम्पूर्ण अभीष्टों को देने वाली है। मैं उसे बताता हूं, सुनो—हर, महेश्वर, शम्भु, शूलपाणि, पिनाकधृक, शिव, पशुपति और महादेव—ये क्रमशः शिव के आठ नाम कहे गए हैं। इनमें से प्रथम नाम के द्वारा अर्थात् **ॐ हराय नमः** का उच्चारण करके पार्थिव लिंग बनाने के लिए मिट्टी लाएं। दूसरे नाम अर्थात् **ॐ महेश्वराय नमः** का उच्चारण करके लिंग का निर्माण करें।

फिर **ॐ शम्भवे नमः** बोलकर उस पार्थिव लिंग की प्रतिष्ठा करें। तत्पश्चात् **ॐ शूलपाणये नमः** कहकर उस पार्थिव लिंग में भगवान् शिव का आह्वान करें। **ॐ पिनाकधृषे नमः** कहकर उ शिवलिंग को नहलाएं। **ॐ शिवाय नमः** बोलकर उसकी पूजा करें। फिर **ॐ पशुपते नमः** कहक क्षमा-प्रार्थना करें और अन्त में **ॐ महादेवाय नमः** कहकर आराध्यदेव का विसर्जन कर दें। प्रत्येक नाम के आदि में ॐकार और अन्त में चतुर्थी विभक्ति के साथ **नमः** पद लगाकर बड़े आनन्द और भक्तिभाव से पूजन सम्बंधी सारे कार्य करने चाहिए।

षडक्षर-मंत्र से अंगन्यास और करन्यास की विधि भली-भांति सम्पन्न करके फिर नीचे लिखे अनुसार ध्यान करें। जो कैलास पर्वत पर एक सुन्दर सिंहासन के मध्यभाग में विराजमान हैं, जिनके वामभाग में भगवती उमा उनसे सटकर बैठी हुई हैं सनक-सनन्दन आदि भक्तजन

जिनकी पूजा कर रहे हैं तथा जो भक्तों के दुःखरूपी दावानल को नष्ट कर देने वाले अप्रमेय-शक्तिशाली ईश्वर हैं, उन विश्वविभूषण भगवान् शिव का चिन्तन करना चाहिए।

भगवान् महेश्वर का प्रतिदिन इस प्रकार ध्यान करें—उनकी अंग-कांति चांदी के पर्वत की भांति गौर है। अपने मस्तक पर मनोहर चन्द्रमा का मुकुट धारण करने से उनका श्रीअंग अत्यधिक उद्भासित हो उठा है। उनके चार हाथों में क्रमशः परशु, मृगमुद्रा, वर एवं अभयमुद्रा सुशोभित हैं। वे सदा प्रसन्न रहते हैं। कमल के आसन पर बैठे हैं और देवता लोग चारों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। उन्होंने वस्त्र की जगह व्याघ्रचर्म धारण कर रखा है। वे इस विश्व के आदि हैं, बीज (कारण) रूप हैं तथा सबका समस्त भय हर लेने वाले हैं। उनके पांच मुख हैं और प्रत्येक मुखमण्डल में तीन-तीन नेत्र हैं।

अंगन्यास और करन्यास का प्रयोग इस प्रकार समझना चाहिए— **ॐ ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः ।।1।। ॐ नं तर्जनीभ्यां नमः ।।2।। ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः ।।३।। ॐ शिं अनामिकाभ्यां नमः ।।4।। ॐ वां कनिष्ठाभ्यां नमः ।।5।।ॐ यं करतलपृष्ठाभ्यां नमः ।।6।। इति करन्यासः ।** ॐ ॐ हृदयाय नमः ।।1।। ॐ नं शिरसे स्वाहा ।।2।। ॐ मं शिखायै वषट् ।।3।। ॐ शिं कवचाय हुम् ।।4।। ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट् ।।5।। ॐ यं अस्त्राय फट् ।।6।। **इति हृदयादिन्यासः ।** यहां करन्यास और हृदयादिन्यास के छः-छः वाक्य दिए गए हैं। इनमें करन्यास के प्रथम वाक्य को पढ़कर दोनों तर्जनी अंगुलियों से अंगुष्ठां का स्पर्श करना चाहिए। शेष वाक्यों को पढ़कर अंगुष्ठों से तर्जनी आदि अंगुलियों का स्पर्श करना चाहिए। इसी प्रकार अंगन्यास में भी दाएं हाथ से हृदयादि अंगों का स्पर्श करने की विधि है। केवल कवचन्यास में दाएं हाथ से बाईं भुजा और बाएं हाथ से दाईं भुजा का स्पर्श करना चाहिए। **अस्त्राय फट्** अंतिम वाक को पढ़ते हुए दाएं हाथ को सिर के ऊपर से लाकर बाईं हथेली पर ताली बजानी चाहिए। ध्यान सम्बन्धी श्लोक, जिनके भाव-ऊपर दिए गए हैं, इस प्रकार हैं—

कैलास पीठासनमध्यसंस्थं भक्तैः सनन्दादिभिरर्च्यमानम् ।
भक्तार्तिदावानलहाप्रमेयं ध्यायेदुमालिंगतविश्वभूषणम् ।।
ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चाररुचन्द्रावतंसं ।
रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृतिं वसानं ।
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम् ।।

इस प्रकार ध्यान तथा उत्तम पार्थिव लिंग का पूजन करके गुरु के दिए हुए पंचाक्षर-मंत्र का विधिपूर्वक जप करें। विप्रवरो! विद्वान पुरुषों को चाहिए कि वे देवेश्वर शिव को प्रणाम करके नाना प्रकार की स्तुतियों द्वारा उनका स्तवन करें तथा 'शतरुद्रिय' (यजु. 16वें अध्याय के मंत्रों) का पाठ करें। तत्पश्चात् अंजलि में अक्षत और फूल लेकर उत्तम भक्तिभाव एवं प्रेम से निम्नांकित मंत्रों को पढ़ते हुए भगवान् शंकर से इस प्रकार प्रार्थना करें—

सबको सुख देने वाले हे कृपानिधान भूतनाथ शिव! मैं आपका हूं। आपके गुणों में ही मेरे प्राण बसते हैं अथवा आपके गुण ही मेरे प्राण-मेरे जीवनसर्वस्व हैं। मेरा चित्त सदा आपके ही चिन्तन में लगा हुआ है। यह जानकर मुझ पर प्रसन्न होइए। कृपा कीजिए, शंकरजी! मैंने अनजाने में अथवा जान-बूझकर यदि कभी आपका जप और पूजन आदि किया हो तो आपकी

कृपा से वह सफल हो जाए। गौरीनाथ! मैं आधुनिक युग का महान पापी हूं, पतित हूं और आप सदा से ही परम-महान् पतितपावन हैं। इस बात का विचार करके आप जैसा चाहें, वैसा करें। हे महादेव! सदाशिव! वेदों, पुराणों और नाना प्रकार के शास्त्रीय सिद्धान्तों से भी विभिन्न महर्षियों ने अब तक आपको पूर्णरूप से नहीं जाना है। फिर मैं कैसे जान सकता हूं? महेश्वर! मैं जैसा हूं, वैसा ही आपके आश्रित हूं, इसलिए आपसे रक्षा पाने के योग्य हूं। परमेश्वर! आप मुझ पर प्रसन्न होइए।

इस भाव को संस्कृत भाषा में 'शिवपुराण' में इस प्रकार दिया गया है—

तावकस्त्वद्गुणप्राणस्त्वच्चितोऽहं सदा मृड ।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा भूतनाथ प्रसीद मे ।।
अज्ञानद्यादि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर ।।
अहं पापी महानद्य पावनश्च भवान्महान् ।
इति विज्ञाय गौरीश यदिच्छसि तथा कुरु ।।
वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्ऋषिभिर्विविधैरपि ।
न ज्ञातोऽसि महादेव कुतोऽहं त्वां सदाशिव ।।
यथा तथा त्वदीयोऽस्मि सर्वभावैर्महेश्वर ।
रक्षणीयस्त्वयाहं वै प्रसीद परमेश्वर ।।

(शिवपुराण वि. 20/56-60)

इस प्रकार प्रार्थना करके हाथ में लिए हुए अक्षत और पुष्प को भगवान् शिव के ऊपर चढ़ाकर उन शम्भुदेव को भक्तिभाव से विधिपूर्वक साष्टांग प्रणाम करें। तदनन्तर शुद्ध बुद्धि वाले उपासक शास्त्रोक्त विधि से इष्टदेव की परिक्रमा करें। फिर श्रद्धापूर्वक स्तुतियों द्वारा शिव की स्तुति करें। इसके बाद गला बजाकर (गले से अव्यक्त शब्द का उच्चारण करके) पवित्र एवं विनीत चित्त वाले साधक भगवान् को प्रणाम करें। फिर आदरपूर्वक विज्ञप्ति करें। उसके बाद विसर्जन करें।

मुनिवरो! इस प्रकार विधिपूर्वक पार्थिव पूजा बताई गई। यह पार्थिव पूजा भोग और मोक्ष देने वाली तथा भगवान् शिव के प्रति भक्तिभाव को बढ़ाने वाली है। पार्थिव लिंग निर्माण विधान में प्रयुक्त मंत्रों की क्रमवार सूची इस प्रकार है—

1. **नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।** (यजु. 16/49)

2. **नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ।** (यजु. 16/8)

3. **एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीति । अवततधन्वा विनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि ।** (यजु. 3/61)

4. **मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ।** (यजु. 16/15)

5. **या ते रुद्र शिवा तनूघोराऽपापकाशिनी । या तस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ।** (यजु. 16/2)

6. **यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिं पुरुषं जगत् ।** (यजु. 16/3)

7. **अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहीं सर्वांजम्भयन्त्सर्वांश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ।** (यजु. 16/6)

8. **असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रु सुमंगलः । ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे ।** (यजु. 16/6)

9. **असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः ।** (यजु. 16/7)

10. यह मंत्र पहले दिया जा चुका है।

11. **तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।**

12. **त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ।** (यजु. 3/60)

13. **पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।** (यजु. 18/36)

14. **दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्प्रणआयूं षि तारिषत् ।** (यजु. 23/32)

15. **घृत घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ।** (यजु. 6/19)

16. **मधु दाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।** (यजु. 13/27)

17. **मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्वार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ।** (यजु. 13/28)

18. **मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्य्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।** (यजु. 13/29)

19. बहुत से विद्वान 'मधुवाता' आदि तीन ऋचाओं का उपयोग केवल मधुस्नान में ही करते हैं और शर्करा स्नान कराते समय निम्नांकित मंत्र बोलते हैं—

अपां रसमद्धयसं् सूर्ये संत समाहितम् । अपायं रसस्य यो रसस्तंवो गृह्णाभ्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वां जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । (यजु. 9/3)

20. **मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ।**

21. **नमो धृष्णवे च पमृशाय च नमो निषंगिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ।** (यजु. 16/36)

22. **या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज**

(11)। **परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः । अथो य इषुधिस्तवारे अस्मान्नि धेहि तम्** (12)। **अवतत्य धनुष्ट्वं सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो न सुमना भव** (13)। **नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने** (14)। (यजु. 16)

23. नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च । (यजु. 16/28)

24. नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः । (यजु. 16/27)

25. नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्याय च फेन्याय च । (यजु. 16/42)

26. नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो व किरिकेभ्यो देवाना हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो नम आनिर्हतेभ्यः । (यजु. 16/46)

27. नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च । (यजु. 16/29)

28. नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्रयाय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च । (यजु. 16/31)

29. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च । (यजु. 16/32)

30. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् । (यजु. 16/48)

31. नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गोह्याय च नमो हृदयाय च निवेषयाय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च । (यजु. 16/44)

32. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हाविषा विधेम ।

33. यह मंत्र यजुर्वेद के अंतर्गत तीन स्थानों में पठित और तीन मंत्रों के रूप में परिगणित है। यथा—यजु. 13/4, 23/1 तथा 25/10 में।

34. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्वि नोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिंचामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायाआद्यायाभि षिंचामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिंचामि । (यजु. 20/3)

35. एष ते रुद्र भागः सहं स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा । एष ते रुद्र भंग आखुस्ते पशुः । (यजु. 3/57)

36. यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्य । । (यजु. 36/23)

37. नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रशिभ्यो अरथेभ्यश्च वो वो नमो नमः । क्षतृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ।

(यजु. 16/26)

38. नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च । मो ब्रहासुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः । । (गोमतीविद्या)

39. यजुर्वेद का वह अंश, जिसमें रुद्र के सौ या उससे अधिक नाम आए हैं और उनके द्वारा रुद्रदेव की स्तुति की गयी है। (देखिए यजु. अध्याय 16)

40. देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनस्पत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धाः ।। (यजु. 8/21)

41. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ।।

42. ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मथाय नमः ।

43. ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।

44. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

45. ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्माणो ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोम् ।

46. हरो महेश्वरः शम्भु शूलपाणिः पिनाकघृक् । शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमात् ।।

> मृदाहरणसंघट्टप्रतिष्ठह्लानमेव च । स्नपनं पूजनं चैव क्षमस्वेति विसर्जनम् ।।
> ॐकारादिचतुर्थ्यन्तैर्नमोऽन्तैनार्घ्मभिः क्रमात् । कर्तव्याश्च क्रियाः सर्वा भक्त्या परमया मुदा ।।

षड्लिंगस्वरूप प्रणव का माहात्म्य

गुरु शुक्राचार्य ने कहा—अब मैं षड्लिंगस्वरूप प्रणव का माहात्म्य तथा शिवभक्त के पूजन का प्रकार बताता हूं, ध्यान से सुनो—यह विषय अत्यंत गूढ़ तथा रहस्यमयी है। इसका वर्णन भगवान् शंकर के अलावा कोई अन्य नहीं कर सकता, क्योंकि इसका ज्ञान केवल उन्हीं को है। फिर भी मैं उनकी कृपा से तुम्हें इस विशिष्ट विषय का ज्ञान देता हूं। वे भगवान् शिव हमारी और समस्त लोकों की रक्षा का भार बारंबार ग्रहण करें। 'प्र' नाम है प्रकृति से उत्पन्न संसाररूपी महासागर का। प्रणव इससे पार करने के लिए दूसरी (नव) नाव है। इसलिए इस ओंकार को 'प्रणव' की संज्ञा देते हैं। ॐकार अपने जप करने वाले साधकों से कहता है—'प्र-प्रपंच, न-नहीं है, वः-तुम लोगों के लिए।' अतः इस भाव को लेकर भी ज्ञानी पुरुष 'ओम्' को 'प्रणव' नाम से जानते हैं।

इसका दूसरा भाव यों है—'प्र-प्रकर्षेण, न-नयेत्, वः-युश्मान् मोक्षम् इति वा प्रणवः अर्थात् यह तुम सब उपासकों को बलपूर्वक मोक्ष तक पहुंचा देगा।' इस अभिप्राय से ही इसे ऋषि-मुनि 'प्रणव' कहते हैं। अपना जप करने वाले योगियों तथा अपने मंत्र की पूजा करने वाले उपासक के समस्त कर्मों का नाश करके यह दिव्य-नूतन ज्ञान देता है, इसलिए भी इसका नाम प्रणव है। उन मायारहित महेश्वर को ही नव अर्थात् नूतन कहते हैं। वे परमात्मा प्रकृष्टरूप से नव अर्थात् शुद्धस्वरूप हैं, इसलिए 'प्रणव' कहलाते हैं। प्रणव साधक को नव अर्थात् नवीन (शिवस्वरूप) कर देता है। इसलिए भी विद्वान पुरुष उसे प्रणव के नाम से जानते हैं अथवा प्रकृष्टरूप से नव-दिव्य परमात्मज्ञान प्रकट करता है, इसलिए यह प्रणव है।

प्रणव के भेद

प्रणव के दो भेद बताए गए हैं—स्थूल और सूक्ष्म। एक अक्षररूप जो 'ॐ' है, उसे सूक्ष्म प्रणव जानना चाहिए और **नमः शिवाय** पांच अक्षर वाले इस मंत्र को स्थूल प्रणव समझना चाहिए जिसमें पांच अक्षर व्यक्त नहीं हैं, वह सूक्ष्म है और जिसमें पांचों अक्षर सुस्पष्टरूप से व्यक्त हैं, वह स्थूल है। जीवन्मुक्त पुरुष के लिए सूक्ष्म प्रणव के जप का विधान है। वही उसके लिए समस्त साधनों का सार है। यद्यपि जीवन्मुक्त के लिए किसी साधन की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह सिद्धरूप है, तथापि दूसरे की दृष्टि में जब तक उसका शरीर रहता है, तब तक उसके द्वारा प्रणव-जप की सहज साधना स्वतः होती रहती है। वह अपनी देह का विलय होने तक सूक्ष्म प्रणव मंत्र का जप और उसके अर्थभूत परमात्म तत्व का अनुसंधान करता रहता है। जब शरीर

नष्ट हो जाता है, तब वह पूर्ण ब्रह्मस्वरूप शिव को प्राप्त कर लेता है—यह सुनिश्चित बात है।

जो अर्थ का अनुसंधान न करके केवल मंत्र का जप करता है, उसे निश्चय ही योग की प्राप्ति होती है। जिसने छत्तीस करोड़ मंत्र का जप कर लिया हो, उसे अवश्य ही योग प्राप्त हो जाता है। सूक्ष्म प्रणव के ही ह्रस्व और दीर्घ के भेद से दो रूप जानने चाहिए। अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला—इनसे युक्त जो प्रणव है, उसे 'दीर्घ प्रणव' कहते हैं। वह योगियों के ही हृदय में स्थित होता है। मकार पर्यन्त जो ओम् है, वह अ उ म्—इन तीन तत्वों से युक्त है। इसी को 'ह्रस्व प्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनों की एकता है। वह त्रितत्वरूप है, ऐसा समझकर ह्रस्व प्रणव का जप करना चाहिए। जो भक्त अपने समस्त पापों का क्षय करना चाहते हैं, उनके लिए इस ह्रस्व प्रणव का जप अत्यन्त आवश्यक है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पांच भूत तथा शब्द, स्पर्श आदि के पांच विषय—ये सब मिलकर दस वस्तुएं मनुष्यों की कामना के विषय हैं। इनकी आशा मन में लेकर जो कर्मों के अनुष्ठान में संलग्न होते हैं, वे दस प्रकार के पुरुष प्रवृत्त (अथवा प्रवृत्ति मार्गी) कहलाते हैं। जो साधक निष्काम भाव से शास्त्र विहित कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, वे निवृत्त (अथवा निवृत्ति मार्गी) कहे गए हैं। प्रवृत्त पुरुषों को ह्रस्व प्रणव का ही जप करना चाहिए और निवृत्त पुरुषों को दीर्घ प्रणव का। व्याहृतियों तथा अन्य मंत्रों के आदि में इच्छानुसार शब्द और कला से युक्त प्रणव का उच्चारण करना चाहिए। वेद के आदि में और दोनों संध्याओं की उपासना के समय भी ओंकार का उच्चारण करना चाहिए।

प्रणव जप की महिमा

प्रणव का नौ करोड़ जप करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है। फिर नौ करोड़ का जप करने से वह पृथ्वी तत्व पर विजय पा लेता है। तत्पश्चात् पुनः नौ करोड़ का जप करके वह जल तत्व को जीत लेता है। पुनः नौ करोड़ जप से अग्नि तत्व पर विजय पाता है। तदनन्तर फिर नौ करोड़ का जप करके वह वायु तत्व पर विजयी होता है। फिर नौ करोड़ के जप से आकाश को अपने अधिकार में कर लेता है। इसी प्रकार नौ-नौ करोड़ का जप करके वह क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द पर विजय पाता है। इसके बाद फिर नौ करोड़ का जप करके अहंकार को भी जीत लेता है। इस तरह एक सौ आठ करोड़ प्रणव का जप करके उत्कृष्ट बोध को प्राप्त हुआ पुरुष शुद्ध योग का लाभ करता है। शुद्ध योग से युक्त होने पर वह जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

सदा प्रणव का जप और प्रणवरूपी शिव का ध्यान करते-करते समाधि में स्थित हुआ महायोगी पुरुष साक्षात् शिव ही है, इसमें संशय नहीं है। पहले अपने शरीर में प्रणव के ऋषि, छन्द और देवता आदि का न्यास करके ही जप आरम्भ करना चाहिए। अकारादि मातृका वर्णों से युक्त प्रणव का अपने अंगों में न्यास करके मनुष्य ऋषि हो जाता है। मंत्रों के दशविध [1] संस्कार, मातृकान्यास तथा षडध्वशोधन [2] आदि के साथ सम्पूर्ण न्यासफल उसे प्राप्त हो जाता है। प्रवृत्ति तथा प्रवृत्ति-निवृत्ति से मिश्रित भाव वाले पुरुषों के लिए स्थूल प्रणव का जप ही अभीष्ट साधन होता है।

शिवयोगी के प्रकार

क्रिया, तप और जप के योग से शिवयोगी तीन प्रकार के होते हैं जो क्रमशः क्रियायोगी, तपोयोगी एवं जपयोगी कहलाते हैं। जो धन आदि वैभवों से पूजा सामग्री का संचय करके हाथ आदि अंगों से नमस्कारादि क्रिया करते हुए इष्टदेव की पूजा में लगा रहता है, वह 'क्रियायोगी' कहलाता है। जो पूजा में संलग्न रहकर परिमित भोजन करता है, बाह्य इन्द्रियों को जीतकर वश में किए रहता है और मन को भी वश में करके परद्रोह आदि से दूर रहता है, वह 'तपोयोगी' कहलाता है। इन सभी सद्‌गुणों से युक्त होकर जो व्यक्ति सदा शुद्धभाव से रहता तथा समस्त काम आदि दोषों से रहित हो शान्तचित्त से निरन्तर जप किया करता है, उसे महात्मा पुरुष 'जपयोगी' मानते हैं। जो मनुष्य सोलह प्रकार के उपचारों से शिवयोगी महात्माओं की पूजा करता है, वह शुद्ध होकर सालोक्य आदि के क्रम से उत्तरोत्तर उत्कृष्ट मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

जपयोग

गुरुदेव शुक्राचार्य ने कहा—अब मैं जपयोग का वर्णन करता हूं, तुम सब ध्यान से सुनो—तपस्या करने वाले के लिए जप का उपदेश किया गया है, क्योंकि वह जप करते-करते अपने-आपको सर्वथा शुद्ध (निष्पाप) कर लेता है। ब्राह्मणो! पहले 'नमः' पद हो, उसके बाद चतुर्थी विभक्ति में 'शिव' शब्द हो तो पंचतत्वात्मक 'नमः शिवाय' मंत्र होता है। इसे 'शिव-पंचाक्षर' कहते हैं। यह स्थूल प्रणवरूप है। इस पंचाक्षर के जप से ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। पंचाक्षर मंत्र के आदि में ओंकार लगाकर ही सदा उसका जप करना चाहिए। द्विजो! गुरु के मुख से पंचाक्षर मंत्र का उपदेश पाकर जहां सुखपूर्वक निवास किया जा सके, ऐसी उत्तम भूमि पर महीने के शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से आरम्भ करके कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तक निरन्तर जप करना चाहिए। इसके लिए माघ और भादों के महीने अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। यह समय सब समयों से उत्तमोत्तम माना गया है। साधक को चाहिए कि वह प्रतिदिन एक बार परिमित भोजन करे, मौन रहे, इन्द्रियों को वश में रखे, अपने स्वामी एवं माता-पिता की नित्य सेवा करे।

इस नियम से रहकर जप करने वाला पुरुष एक सहस्र जप से ही शुद्ध हो जाता है, अन्यथा वह ऋणी होता है। भगवान् शिव का निरन्तर चिन्तन करते हुए पंचाक्षर मंत्र का पांच लाख जप करें। जपकाल में इस प्रकार ध्यान-जप करें—कल्याणदाता भगवान् शिव कमल के आसन पर विराजमान हैं। उनका मस्तक श्रीगंगाजी तथा चन्द्रमा की कला से सुशोभित है। उनकी बाईं जांघ पर आदिशक्ति भगवती उमा बैठी हैं। वहां खड़े हुए बड़े-बड़े गण भगवान् शिव की शोभा बढ़ा रहे हैं। महादेवजी अपने चार हाथों में मृगमुद्रा, दंग, वर एवं अभय की मुद्राएं धारण किए हुए हैं।

इस प्रकार सब पर अनुग्रह करने वाले भगवान् सदाशिव का बारम्बार स्मरण करते हुए हृदय अथवा सूर्यमण्डल में पहले उनकी मानसिक पूजा करके फिर पूर्वाभिमुख हो पूर्वोक्त पंचाक्षरी विद्या का जप करें। उन दिनों साधक सदा शुद्ध कर्म ही करें और दुष्कर्म से बचे रहें। जप की समाप्ति के दिन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को प्रातःकाल नित्यकर्म करके शुद्ध एवं सुन्दर स्थान में शौच-संतोषादि नियमों से युक्त हो शुद्ध हृदय से पंचाक्षर मंत्र का बारह सहस्र जप करें। तत्पश्चात्

पांच सपत्नीक ब्राह्मणों का, जो श्रेष्ठ एवं शिवभक्त हों, वरण करें। इनके अतिरिक्त एक श्रेष्ठ आचार्य प्रवर का भी वरण करें और उसे साम्ब सदाशिव का स्वरूप समझें। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—इन पांचों के प्रतीकस्वरूप पांच ही श्रेष्ठ और शिवभक्त ब्राह्मणों का वरण करने के पश्चात् पूजन-सामग्री को एकत्र करके भगवान् शिव का पूजन आरम्भ करें।

विधिपूर्वक शिव की पूजा सम्पन्न करके होम आरम्भ करें। अपने गृह्यसूत्र के अनुसार सुखान्त कर्म करके अर्थात् परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, मृद्-उद्धरण और अभ्युक्षण—इन पंच भू-संस्कारों के पश्चात् वेदी पर स्वाभिमुख अग्नि को स्थापित करके कुशकण्डिका के अनन्तर प्रज्वलित अग्नि में आज्यभागान्त आहुति देकर प्रस्तुत होम का कार्य आरम्भ करें। कपिला गाय के घी से ग्यारह, एक सौ एक अथवा एक हजार एक आहुतियां स्वयं ही दें अथवा विद्वान पुरुष शिवभक्त ब्राह्मणों से एक सौ आठ आहुतियां दिलाएं। होमकर्म समाप्त होने पर गुरु को दक्षिणा के रूप में एक गाय और बैल देने चाहिए।

ईशान आदि के प्रतीक रूप जिन पांच ब्राह्मणों का वरण किया गया हो, उनको ईशान आदि का स्वरूप ही समझें तथा आचार्य को साम्ब सदाशिव का स्वरूप मानें। इसी भावना के साथ उन सबके चरण धोएं और उनके चरणोदक से अपने मस्तक को सींचें। ऐसा करने से वह साधक अगणित तीर्थों में तत्काल स्नान करने का फल प्राप्त कर लेता है। उन ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक दशांश अन्न देना चाहिए। गुरुपत्नी को पराशक्ति मानकर उनका भी पूजन करें। ईशानादि क्रम से उन सभी ब्राह्मणों का उत्तम अन्न से पूजन करके अपने वैभव-विस्तार के अनुसार रुद्राक्ष, वस्त्र, पूजन आदि अर्पित करें। तदनन्तर दिक्पालादि को बलि देकर ब्राह्मणों को भरपूर भोजन कराएं। इसके बाद देवेश्वर शिव से प्रार्थना करके अपना जप समाप्त करें। इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य उस मंत्र को सिद्ध कर लेता है। फिर पांच लाख जप करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। तदनन्तर पुनः पांच लाख जप करने पर अतल से लेकर सत्यलोक तक चौदहों भुवनों पर क्रमशः अधिकार प्राप्त हो जाता है।

यदि अनुष्ठान पूर्ण होने से पहले बीच में ही साधक की मृत्यु हो जाए तो वह परलोक में उत्तम भोग भोगने के पश्चात् पुनः पृथ्वी पर जन्म लेकर पंचाक्षर मंत्र के जप का अनुष्ठान करता है। समस्त लोकों का ऐश्वर्य पाने के पश्चात् यदि मंत्र को सिद्ध करने वाले पुरुष पुनः पांच लाख जप करें तो उन्हें ब्रह्माजी का सामीप्य प्राप्त होता है। पुनः पांच लाख जप करने से सारूप्य नामक ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सौ लाख जप करने से वह साक्षात् ब्रह्मा के समान हो जाता है। इस तरह कार्य-ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) का सायुज्य प्राप्त करके वह ब्रह्मा का प्रलय होने तक उस लोक में यथेष्ट भोग भोगता है। फिर दूसरे कल्प का आरम्भ होने पर वह ब्रह्माजी का पुत्र होता है। उस समय फिर तपस्या करके दिव्य तेज से प्रकाशित हो वह क्रमशः मुक्त हो जाता है।

पृथ्वी आदि कार्यस्वरूप भूतों पाताल से लेकर सत्यलोक पर्यन्त ब्रह्माजी के चौदह लोक क्रमशः निर्मित हुए हैं। सत्यलोक से ऊपर क्षमालोक तक जो चौदह भुवन हैं, वे भगवान् विष्णु के लोक हैं। क्षमालोक से ऊपर शुचिलोक पर्यन्त अट्ठाईस भुवन स्थित हैं। शुचिलोक के अन्तर्गत कैलास में प्राणियों का संहार करने वाले रुद्रदेव विराजमान हैं। शुचिलोक से ऊपर अहिंसालोक पर्यन्त छप्पन भुवनों की स्थिति है। अहिंसा लोक का आश्रय लेकर जो ज्ञान कैलास नामक नगर शोभा पाता है, उसमें कार्यभूत महेश्वर सबको अदृश्य करके रहते हैं। अहिंसा लोक के अन्त में

कालचक्र की स्थिति है। जहां तक महेश्वर के विराट् स्वरूप का वर्णन किया गया है। वहीं तक लोकों का तिरोधान अथवा लय होता है। उससे नीचे कर्मों का भोग है और उससे ऊपर ज्ञान का भोग। उसके नीचे कर्ममाया है और उसके ऊपर ज्ञानमाया।

कर्ममाया और ज्ञानमाया

अब मैं कर्ममाया और ज्ञानमाया का तात्पर्य बता रहा हूं—'मो' का अर्थ है लक्ष्मी। उससे कर्मभोग यात प्राप्त होता है। इसलिए वह माया अथवा 'कर्ममाया' कहलाती हैं। इसी तरह 'मा' अर्थात् लक्ष्मी से ज्ञानभोग प्राप्त होता है। इसलिए उन्हें माया या 'ज्ञानमाया' कहा गया है। उपर्युक्त सीमा से नीचे नश्वर भोग हैं और ऊपर नित्यभोग। उससे नीचे ही तिरोधान अथवा लय है, ऊपर नहीं। वहां से नीचे ही कर्ममाया पाशों द्वारा बन्धन होता है। ऊपर बन्धन का सदा अभाव है। उससे नीचे ही जीव सकाम कर्मों का अनुसरण करते हुए विभिन्न लोकों और योनियों में चक्कर काटते हैं। उससे ऊपर के लोकों में निष्काम कर्म का ही भोग बताया गया है। बिन्दु पूजा में तत्पर रहने वाले उपासक वहां से नीचे के लोकों में ही घूमते हैं। उसके ऊपर तो निष्काम भाव से शिवलिंग की पूजा करने वाले उपासक ही जाते हैं।

जो साधक एकमात्र शिव की ही उपासना में तत्पर हैं, वे उससे ऊपर के लोकों में जाते हैं। वहां से नीचे जीवकोटि है और ऊपर ईश्वरकोटि। नीचे संसारी जीव रहते हैं और ऊपर मुक्त पुरुष। नीचे कर्मलोक है और ऊपर ज्ञानलोक। ऊपर मद और अहंकार का नाश करने वाली नम्रता है, वहां जन्मजनित तिरोधान नहीं है। उसका निवारण किए बिना वहां किसी का प्रवेश सम्भव नहीं है। इस प्रकार तिरोधान का निवारण करने से वहां ज्ञानशब्द का अर्थ ही प्रकाशित होता है। आधिभौतिक पूजा करने वाले लोग उससे नीचे के लोकों में ही चक्कर काटते हैं। जो आध्यात्मिक उपासना करने वाले हैं, वे ही उससे ऊपर को जाते हैं।

जो सत्य-अहिंसा आदि धर्मों से युक्त हैं और भगवान् शिव के पूजन में तत्पर रहते हैं, वे कालचक्र को पार कर जाते हैं। काल चक्रेश्वर की सीमा तक जो विराट महेश्वरलोक बताया गया है, उससे ऊपर वृषभ के आकार में धर्म की स्थिति है। वह ब्रह्मचर्य का मूर्तिमान रूप है। उसके सत्य, शौच, अहिंसा और दया—ये चार पाद हैं। वह साक्षात् शिवलोक के द्वार पर खड़ा है। क्षमा उसके सींग हैं, शम काम है और वह वेदध्वनि रूपी शब्द से विभूषित है। आस्तिकता उसके दोनों नेत्र हैं, विश्वास उसकी श्रेष्ठ बुद्धि एवं मन है। क्रिया आदि धर्म रूपी जो वृषभ हैं, वे कारण आदि में स्थित हैं—ऐसा जानना चाहिए।

उस क्रियारूप वृषभाकार धर्म पर कालातीत शिव आरूढ़ होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की जो अपनी-अपनी आयु है, उसी को दिन कहते हैं। जहां धर्मरूपी वृषभ की स्थिति है, उससे ऊपर न दिन है न रात्रि। वहां जन्म-मरण आदि भी नहीं है। वहां फिर से कारणस्वरूप ब्रह्मा के कारण सत्यलोक पर्यन्त चौदह लोक स्थित हैं, जो पांच भौतिक गन्ध आदि से परे हैं। उनकी सनातन स्थिति है। सूक्ष्म गन्ध ही उनका स्वरूप है। उनसे ऊपर फिर कारणरूप विष्णु के चौदह लोक स्थित हैं। उनसे भी ऊपर फिर कारणरूपी रुद्र के अट्ठाईस लोकों की स्थिति मानी गयी है। फिर उनसे भी ऊपर कारणेश शिव के छप्पन लोक विद्यमान हैं। तदनन्तर शिव सम्मत ब्रह्मचर्यलोक है और वहीं पांच आवरणों से युक्त ज्ञानमय कैलास है, जहां पांच मण्डलों, पांच

ब्रह्मकलाओं और आदि शक्ति से संयुक्त आदिलिंग प्रतिष्ठित है। उसे परमात्मा शिव का शिवालय कहा गया है। वहीं पराशक्ति से युक्त परमेश्वर शिव निवास करते हैं। वे सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पांचों कृत्यों में प्रवीण हैं। उनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दस्वरूप है। वे सदा ध्यानरूपी धर्म में ही स्थित रहते हैं और सदा सब पर अनुग्रह करते हैं।

शिवज्ञान का प्राकट्य

नित्य नैमित्तिक आदि कर्मों द्वारा देवताओं का यजन करने से भगवान् शिव के समाराधन कर्म में मन लगता है। क्रिया आदि जो शिव सम्बंधी कर्म हैं, उनके द्वारा शिव ज्ञान सिद्ध करें। जिन्होंने शिवतत्व का साक्षात्कार कर लिया है अथवा जिन पर शिव की कृपादृष्टि पड़ चुकी है, वे सब मुक्त ही हैं—इसमें संशय नहीं है। आत्मस्वरूप से जो स्थिति है, वही मुक्ति है। एकमात्र अपने आत्मा में रमण या आनन्द का अनुभव करना ही मुक्ति का स्वरूप है। जो पुरुष क्रिया, तप, जप, ज्ञान और ध्यानरूपी धर्मों में भलीभांति स्थित हैं, वे शिव का साक्षात्कार करके स्वात्मारामत्वरूप मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्यदेव अपनी किरणों से अशुद्धि को दूर कर देते हैं, उसी प्रकार कृपा करने में कुशल भगवान् शिव अपने भक्त के अज्ञान को मिटा देते हैं। अज्ञान की निवृत्ति हो जाने पर शिवज्ञान स्वतः प्रकट हो जाता है। शिवज्ञान से अपना विशुद्ध स्वरूप आत्मारामत्व प्राप्त होता है और आत्मारामत्व की सम्यक् सिद्धि हो जाने पर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।

शुक्राचार्य ने कहा—इस तरह यहां जो कुछ बताया गया है, वह पहले मुझे गुरु परम्परा से प्राप्त हुआ था। तत्पश्चात् मैंने पुनः नन्दीश्वर के मुख से इस विषय को सुना था। नन्दिस्थान से परे जो स्वसंवेद्य शिव-वैभव है, उसका अनुभव केवल भगवान् शिव को ही है। साक्षात् शिवलोक के उस वैभव का ज्ञान सबको शिव की कृपा से ही हो सकता है, अन्यथा नहीं—ऐसा आस्तिक पुरुषों का कथन है।

शिवभक्तों के पूजन की महत्ता

साधकों को चाहिए कि वे पांच लाख जप करने के पश्चात् भगवान् शिव की प्रसन्नता के लिए महाभिषेक एवं नैवेद्य निवेदन करके शिव भक्तों का पूजन करें। भक्त की पूजा से भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। शिव और उनके भक्तों में कोई भेद नहीं है। वे साक्षात् शिवस्वरूप ही हैं। शिवस्वरूप मंत्र को धारण करके वे शिव ही हो जाते हैं। शिव भक्त का शरीर शिवरूप ही है। अतः उनकी सेवा में तत्पर रहना चाहिए। जो शिव के भक्त हैं, वे लोक और वेद की सारी क्रियाओं को जानते हैं। जो क्रमशः जितना-जितना शिवमंत्र का जप कर लेता है, उसके शरीर को उतना ही उतना शिव सामीप्य प्राप्त होता जाता है, इसमें संशय नहीं है। शिवभक्त स्त्री का रूप देवी पार्वती का ही स्वरूप है। वह जितना मंत्र जपती है, उसे उतना ही देवी का सान्निध्य प्राप्त होता जाता है। साधक स्वयं शिवस्वरूप होकर पराशक्ति का पूजन करें। शक्ति, वैर तथा लिंग का चित्र बनाकर अथवा मिट्टी आदि से इनकी आकृति का निर्माण करके प्राण प्रतिष्ठा पूर्वक निष्कपट भाव से इनका पूजन करें।

शिवलिंग को शिव मानकर, अपने को शक्तिरूप समझकर, शक्तिलिंग को देवी मानकर और अपने को शिवरूप समझकर, शिवलिंग को नादरूप तथा शक्ति को बिन्दु मानकर, परस्पर सटे हुए शक्तिलिंग और शिवलिंग के प्रति उपप्रधान एवं प्रधान की भावना रखते हुए जो शिव और शक्ति का पूजन करता है, वह मूलरूप की भावना करने के कारण शिवरूप ही है। शिवभक्त शिवमंत्र रूप होने के कारण शिव के ही स्वरूप हैं। जो सोलह उपचारों से उनकी पूजा करता है, उसे अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। जो शिवलिंगोपासक शिवभक्त की सेवा आदि करके उसे आनन्द प्रदान करता है, उस विद्वान पर भगवान् शिव बड़े प्रसन्न होते हैं। पांच, दस या सौ सपत्नीक शिवभक्तों को बुलाकर भोजन आदि के द्वारा अपनी पत्नी सहित उनका सदैव समादर करें। धन में, देह में और मंत्र में शिवभावना रखते हुए उन्हें शिव एवं शक्ति का स्वरूप जानकर निष्कपट भाव से उनकी पूजा करें। ऐसा करने वाले पुरुष इस भूतल पर फिर जन्म नहीं लेते।

पंचाक्षर मन्त्र जप

रावण कहते हैं—यदि कोई बड़ा भारी पाप करके भी भक्तिभाव से पंचाक्षर मन्त्र द्वारा देवेश्वर भगवान् शिव का पूजन करे तो वह उस पाप से मुक्त हो जाता है। जो भक्तिभाव से पंचाक्षर मंत्र द्वारा एक ही बार शिव का पूजन कर लेता है, वह भी शिवमंत्र के गौरववश शिवधाम को चला जाता है। जो मूढ़ दुर्लभ मानव-जन्म पाकर भगवान् शिव की अर्चना नहीं करता, उसका वह जन्म निष्फल है; क्योंकि वह मोक्ष का साधक नहीं होता। जो दुर्लभ मानव-जन्म पाकर

पिनाकपाणि महादेवजी की आराधना करते हैं, उन्हीं का जन्म सफल है। वे ही कृतार्थ एवं श्रेष्ठ मनुष्य हैं। इसी प्रकार जो साधक भगवान् शिव की उपासना में सदैव लगे रहते हैं, वे कभी भी दु:ख के भागी नहीं होते।

मनोहर भवन, हाव, भाव, विलास से विभूषित, तरुणी स्त्रियां और जिससे पूर्ण तृप्ति हो जाए, इतना धन—ये सब भगवान् शिव की आराधना के फल हैं। जो लोग देवलोक में महान भोग और राज्य चाहते हैं, वे सदा भगवान् शिव के चरणारविन्दों का चिन्तन करते हैं। सौभाग्य, कांतिमान रूप-बल, त्याग दयाभाव, शूरता और विश्व में ख्याति—ये सब बातें भगवान् शिव की पूजा करने वाले लोगों को ही सुलभ होती हैं। इसलिए जो अपना कल्याण चाहते हैं, उन्हें केवल भगवान् शिव के चरणों में ही अपना मन लगाना चाहिए। भगवान् शिव ही एक ऐसे देव हैं जो तीनों लोकों में सभी देवों में श्रेष्ठ व सबके पूजनीय हैं। पिनाकपाणि के आशीर्वाद से मानव को सब प्रकार की दैवी शक्तियों तथा हर प्रकार के सांसारिक सुखों की प्राप्ति के बाद उसे अन्त में शिव लोक की प्राप्ति होती है।

कुण्ड एवं वेदी कृत्य का वर्णन

रावण ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—अब मैं अग्नि कार्य का वर्णन करूंगा। साधक भगवान् शिव की आराधना में प्रयुक्त होने वाले हवन कुण्ड में, स्थण्डिल पर, वेदी में, लोहे के हवनपात्र में या नूतन मिट्टी के पात्र में विधिपूर्वक अग्नि की स्थापना करके उसका संस्कार करें। तत्पश्चात् वहां महादेवजी की आराधना करके होम कर्म आरम्भ करें। कुण्ड दो या एक हाथ लंबा-चौड़ा होना चाहिए। वेदी को गोल या चौकोर बनाना चाहिए। साथ ही मण्डल भी बनाना आवश्यक है। कुण्ड विस्तृत और गहरा होना चाहिए। उसके मध्य भाग में अष्टदल कमल अंकित करें। वह दो या चार अंगुल ऊंचा हो। कुण्ड के भीतर दो बित्ते की ऊंचाई पर नाभि की स्थिति बताई गई है। मध्यमा अंगुली के मध्य और उत्तम पर्वों के बराबर मध्य भाग या कटिभाग जानना चाहिए।

साधु पुरुष चौबीस अंगुल के बराबर एक हाथ का परिमाण बताते हैं। कुण्ड की तीन, दो या एक मेखला होनी चाहिए। इन मेखलाओं का इस तरह निर्माण करें जिससे कुण्ड की शोभा बढ़े। सुन्दर और चिकनी योनि बनाएं, जिसकी आकृति पीपल के पत्ते की भांति अथवा हाथी के अधरोष्ठ के समान हो। कुण्ड के दक्षिण या पश्चिम भाग में मेखला के बीचोबीच सुन्दर योनि का निर्माण करना चाहिए, जो मेखला से कुछ नीची हो। उसका अग्रभाग कुण्ड की ओर हो तथा वह मेखला को कुछ छोड़कर बनायी गयी हो। वेदी के लिए ऊंचाई का कोई नियम नहीं है। वह मिट्टी या बालू की होनी चाहिए। गाय के गोबर या जल से मण्डल बनाना चाहिए। पात्र का परिमाण नहीं बताया गया है। कुण्ड और मिट्टी की वेदी को गोबर एवं जल से लीपना चाहिए।

पात्र को धोकर तपाएं तथा अन्य वस्तुओं का जल से प्रोक्षण करें। अपने-अपने गृह्यसूत्र में बतायी हुई विधि के अनुसार कुण्ड में और वेदी पर उल्लेखन (रेखा) करें। (रेखाओं पर से मृत्तिका लेकर ईशानकोण में फेंक दें।) फिर अग्नि के उस आसन का कुशों अथवा पुष्पों द्वारा जल से प्रोक्षण करें। तत्पश्चात् पूजन और हवन के लिए सब प्रकार के द्रव्यों का संग्रह करें। धोने योग्य वस्तुओं को धोकर प्रोक्षणी के जल से उनका प्रोक्षण करके उन्हें शुद्ध करें। इसके बाद

सूर्यकान्तमणि से प्रकट, काष्ठ से उत्पन्न, श्रोत्रिय की अग्निशाला में संचित अथवा दूसरी किसी उत्तम अग्नि को आधारसहित ले आएं। उसे कुण्ड अथवा वेदी के ऊपर तीन बार प्रदक्षिणा क्रम से घुमाकर अग्निबीज (रं) का उच्चारण करके उस अग्नि को उक्त कुण्ड या वेदी के आसन पर स्थापित कर दें। यदि कुण्ड में स्थापित करना हो तो योनिमार्ग से अग्नि का आधान करें और वेदी पर अपने सामने की ओर अग्नि की स्थापना करें।

योनिप्रदेश के पास स्थित विद्वान पुरुष समस्त कुण्ड को अग्नि से संयुक्त करें। साथ ही यह भावना करें कि अपनी नाभि के भीतर जो अग्निदेव विराजमान हैं, वे ही नाभिरन्ध्र से चिनगारी के रूप में निकलकर बाह्य अग्नि में मण्डलाकार होकर लीन हुए हैं। फिर अग्नि पर समिधा रखने से लेकर घी के संस्कार पर्यन्त सारा कार्य मन्त्रज्ञ पुरुष अपने गृह्यसूत्र में बताए हुए क्रम से मूलमन्त्र द्वारा सम्पन्न करें। तदनन्तर शिवमूर्ति की पूजा करके दक्षिण पार्श्व में मन्त्र में न्यास करें और घृत में धेनुमुद्रा का प्रदर्शन करें।

स्रुक और स्रुवा—ये दोनों धातु के बने हुए हों तो ग्रहण करने योग्य हैं। परंतु कांसे, लोहे और शीशे के बने हुए स्रुक-स्रुवा को नहीं ग्रहण करना चाहिए। यज्ञसम्बन्धी काष्ठ के बने हुए स्रुक-स्रुवा ग्राह्य हैं। स्मृति या शिव-शास्त्र में जो विहित हों, वे भी ग्राह्य हैं-अथवा ब्रह्मवृक्ष (पलास या गूलर) आदि के छिद्ररहित बिचले दो पत्ते लेकर उन्हें कुश से पोछें और अग्नि में तपाकर फिर उनका प्रोक्षण करें। उन्हीं पत्तों को स्रुक और स्रुवा का रूप दें। उनमें घी उठाएं और अपने गृहसूत्र में बताए हुए क्रम से शिवबीज (ॐ) सहित आठ बीजाक्षरों द्वारा अग्नि में आहुति दें। इससे अग्नि का संस्कार सम्पन्न होता है। वे बीज— **भ्रुं स्तुं ब्रुं श्रुं पुं ड्रुं द्रुं** संख्या में सात हैं। इनमें शिवबीज (ॐ) को सम्मिलित कर लेने पर आठ बीजाक्षर होते हैं।

उपर्युक्त सात बीज क्रमशः अग्नि की सात जिह्वाओं के हैं। उनकी मध्यमा जिह्वा का नाम ‘बहुरूपा’ है। उसकी तीन शिखाएं है। उनमें से एक शिखा दक्षिण में और दूसरी वाम दिशा (उत्तर) में प्रज्वलित होती है तथा बीच वाली शिखा बीच में ही प्रकाशित होती है। ईशान कोण में जो जिह्वा है, उसका नाम ‘हिरण्या’ है। पूर्व दिशा में विद्यमान जिह्वा ‘कनकाउ’ नाम से प्रसिद्ध है। आग्नेय कोण में ‘रक्ता’, नैर्ऋत्य कोण में ‘कृष्णा’ और वायव्य कोण में ‘सुप्रभा’ नाम की जिह्वा प्रकाशित होती है। इनके अतिरिक्त पश्चिम में जो जिह्वा प्रज्वलित होती है, उसका नाम ‘मरुत’ है। इन सबकी प्रभा अपने-अपने नाम के अनुरूप है। अपने-अपने बीज के अनन्तर क्रमशः इनका नाम लेना चाहिए और नाम के अन्त में **स्वाहा** का प्रयोग करना चाहिए। इस तरह जो जिह्वा मन्त्र बनते हैं, उनके द्वारा क्रमशः प्रत्येक जिह्वा के लिए एक-एक घी की आहुति दें, परंतु मध्यमा की तीन जिह्वाओं के लिए तीन आहुतियां दें। कुण्ड के मध्य भाग में **रं वाह्नये स्वाहा** बोलकर तीन आहुतियां दें।

ये आहुतियां घी अथवा समिधा से देनी चाहिए। आहुति देने के पश्चात् अग्नि में जल का सेचन करें। ऐसा करने पर वह अग्नि भगवान् शिव की हो जाती है। फिर उसमें शिव के आसन का चिन्तन करें और वहां अर्धनारीश्वर भगवान् शिव का आह्वान करके पूजन करें। पाद्य-अर्घ्य आदि से लेकर दीपदान पर्यन्त पूजन करके अग्नि का जल से प्रोक्षण करें। तत्पश्चात् समिधाओं की आहुति दें। वे समिधाएं पलास या गूलर आदि यज्ञीय वृक्षों की होनी चाहिए। उनकी लंबाई बारह अंगुल की हो। समिधाएं टेढ़ी न हों। स्वतः सूखी हुई भी न हों। उनके छिलके न उतरे हों

तथा उन पर किसी प्रकार की चोट न हो। सब समिधाएं एक-सी होनी चाहिए। दस अंगुल लंबी समिधाएं भी हवन के लिए विहित हैं। उनकी मोटाई कनिष्ठिका अंगुली के समान होनी चाहिए अथवा अंगूठे से लेकर तर्जनी पर्यन्त लंबी समिधाएं उपयोग में लानी चाहिए।

यदि उपयुक्त समिधाएं न मिलें तो जो मिल सकें, उन सबका ही हवन करना चाहिए। समिधा हवन के बाद घी की आहुति दें। घी की धारा दूर्वादल के समान पतली और चार अंगुल लंबी हो। उसके बाद अन्न की आहुति देनी चाहिए, जिसका प्रत्येक ग्रास सोलह-सोलह माशे के बराबर हो। लावा, सरसों, जौ और तिल—इन सबमें घी मिलाकर यथासम्भव भक्ष्य लेह्य और चाष्य का भी मिश्रण करें। इन सबकी यथाशक्ति दस, पांच या तीन आहुतियां दें अथवा एक ही आहुति दें। स्रुवा से, समिधा से, स्रुक से अथवा हाथ से आहुति देनी चाहिए। उसमें भी दिव्य तीर्थ से अथवा ऋषितीर्थ से आहुति देने का विधान है। यदि उपर्युक्त सभी द्रव्य न मिलें तो किसी एक ही द्रव्य से श्रद्धापूर्वक आहुति देनी चाहिए। प्रायश्चित के लिए मन्त्र से अभिमन्त्रित करके तीन आहुतियां दें। फिर होमावशिष्ट घृत से स्रुक को भरकर उसके अग्रभाग में फूल रखकर उसे दर्भसहित अधोमुख स्रुवा से ढक दें। इसके बाद खड़े होकर उसे अंजलि में लेकर **ओं नमः शिवाय वौषट्** का उच्चारण करके जौ के तुल्य घी की धारा की आहुति दें।

इस प्रकार पूर्णाहुति करके अग्नि में पूर्ववत् जल का छींटा दें। तत्पश्चात् देवेश्वर भगवान् शिव का विसर्जन करके अग्नि की रक्षा करें। फिर अग्नि का भी विसर्जन करके भावना द्वारा नाभि में स्थापित करके नित्य यजन करें अथवा शिवशास्त्र में बतायी हुई पद्धति के अनुसार वागीश्वर के गर्भ से प्रकट हुए अग्निदेव को लाकर विधिवत् संस्कार करके उनका पूजन करें। फिर समिधा का आधान करके सब ओर से परिधियों का निर्माण करें। इसके बाद वहां दो-दो पात्र रखकर शिव का यजन करें। प्रोक्षणी पात्र का शोधन एवं प्रोक्षण करके जल से भरे हुए प्रणीता पात्र का प्रोक्षण करके ईशान कोण में रखें। घी से संस्कार तक का सारा कार्य करके स्रुक और स्रुवा का संशोधन करें।

तदन्तर पिता शिव द्वारा माता वागीश्वरी का गर्भाधान, पुंसवन और सीमान्तोन्नयन संस्कार-करके प्रत्येक संस्कार के निमित्त पृथक-पृथक आहुति दें और गर्भ से अग्नि के उत्पन्न-होने की भावना करें। उनके तीन पैर, सात हाथ, चार सींग और दो मस्तक हैं। मधु के समान पिंगलवर्ण वाले तीन नेत्र हैं। सिर पर जटाजूट और चन्द्रमा का मुकुट है। उनकी अंगकांति लाल है। लाल रंग के ही वस्त्र, चन्दन, माला और आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। सब लक्षणों से सम्पन्न, यज्ञोपवीतधारी तथा त्रिगुण मेखला से युक्त हैं। उनके दाएं हाथों में शक्ति, स्रुक और स्रुवा तथा बाएं हाथों में तोमर, ताड़ का पंखा एवं घी से भरा हुआ पात्र सुशोभित हो रहा है।

इस आकृति में भगवान् अग्निदेव का ध्यान करके उनका ‘जातकर्म’ संस्कार करें। इसके बाद नालच्छेदन करके सूतक की शुद्धि करें। फिर आहुति देकर उस शिवसम्बन्धी अग्नि का रुचि नाम रखें। अब माता-पिता का विसर्जन करके चूड़ाकर्म और उपनयन आदि से लेकर आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कार करें। उपनयन से आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कारों की नामावली इस प्रकार है-उपनयन, व्रतबन्ध, समावर्तन, विवाह, उपाकर्म, उत्सर्जन (सात पाक-यज्ञ) हुत, प्रहुत, आहुत, शूलगव, बलिहरण, प्रत्यवरोहण, अष्टकाहोम, (सात हविर्यज्ञ-संस्था) अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढपशुपबन्ध, सौत्रामणि, (सात सोमयज्ञ-संस्था)

अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम।

इसके बाद घृत धारा आदि का होम करके स्विष्टकृत होम करें। इसके बाद 'रं' बीज का उच्चारण करके अग्नि पर जल का छींटा डालें। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश, लोकेश्वरगण और उनके अस्त्रों का सब ओर क्रमशः पूजन करके धूप, दीप आदि दे सिद्धि के लिए अग्नि को अलग निकालकर कर्मविधि के ज्ञाता पुरुष पुनः घृतयुक्त पूर्वोक्त होम-द्रव्य तैयार करके अग्नि में आसन की कल्पना (भावना) करें। फिर उस पर पूर्ववत् महादेव और महादेवी का आह्वान-पूजन करके पूर्णाहुति पर्यन्त सब कार्य सम्पन्न करें अथवा अपने आश्रम के लिए शास्त्रविहित अग्निहोत्र कर्म करके उसे भगवान् शिव को समर्पित करें। शिवाश्रमी पुरुष इन सब बातों को समझकर होम-कर्म करें। इसके लिए दूसरी कोई विधि नहीं है। शिवाग्नि की भस्म संग्रहणीय है। अग्निहोत्रकर्म की भस्म भी संग्रह करने योग्य है।

वैवाहित अग्नि की भस्म भी जो परिपक्व, पवित्र एवं सुगन्धित हो, संग्रह करके रखनी चाहिए। कपिला गाय का वह गोबर, जो गिरते समय बीच में ही दोनों हाथों पर रोक लिया गया हो, उत्तम माना गया है। वह यदि अधिक गीला व कड़ा न हो, दुर्गन्धयुक्त और सूखा हुआ न हो तो अच्छा माना गया है। यदि वह पृथ्वी पर गिर गया हो तो उसमें से ऊपर और नीचे के हिस्से को त्यागकर बीच का भाग ले लें। उस गोबर का पिण्ड बनाकर उसे शिवाग्नि आदि में मूलमंत्र के उच्चारणपूर्वक छोड़ दें। जब वह पक जाए, तब उसे निकाल लें। उसको भी त्यागकर श्वेत भस्म ले लें और उसे घोटकर चूर्ण बना दें। इसके बाद उसे भस्म रखने के पात्र में रख दें।

भस्मपात्र धातु का, लकड़ी का, मिट्टी का, पत्थर का अथवा अन्य किसी वस्तु का बनवा लें। वह देखने में सुन्दर होना चाहिए। उसमें रखे हुए भस्म को धन की भांति किसी शुभ, शुद्ध एवं समतल स्थान में रखें। किसी अयोग्य या अपवित्र के हाथ में भस्म न दें। उसे नीचे अपवित्र स्थान में भी न डालें। नीचे के अंगों से उसका स्पर्श न करें। भस्म की न तो उपेक्षा करें और न ही उसे लांघें शास्त्रोक्त समय पर उस पात्र से भस्म लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक अपने ललाट आदि में लगाएं। दूसरे समय में उसका उपयोग न करें। भगवान् शिव का विसर्जन न हुआ हो, तभी भस्म संग्रह कर लें; क्योंकि विसर्जन के बाद उस पर चण्ड का अधिकार हो जाता है। जब अग्निकार्य सम्पन्न कर लिया जाए, तब शिवशास्त्रोक्त मार्ग से अथवा अपने गृह्यसूत्र में बताई हुई विधि से बलिकर्म करें।

तदनन्तर अच्छी तरह लिपे-पुते मण्डल में विद्यासन को बिछाकर विद्योकोश की स्थापना करके क्रमशः पुष्प आदि के द्वारा यजन करें। विद्या के सामने गुरु का भी मण्डल बनाकर वहां श्रेष्ठ आसन रखें और उस पर पुष्प आदि के द्वारा गुरु की पूजा करें। तदनन्तर पूजनीय पुरुषों की पूजा करें और भूखों को भोजन कराएं। इसके बाद स्वयं सुखपूर्वक शुद्ध अन्न-भोजन करें जो अतितत्काल भगवान् शिव को निवेदित किया गया हो अथवा उनका प्रसाद हो। उसे आत्मशुद्धि के लिए श्रद्धापूर्वक भोजन करें। जो अन्न चण्ड को समर्पित हो, उसे लोभवश ग्रहण न करें। गन्ध और पुष्पमाला आदि जो अन्य वस्तुएं हैं, उनके लिए भी यह विधि समान ही है अर्थात् चण्ड का भाग होने पर उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिए। वहां विद्वान पुरुष 'मैं ही शिव हूं' ऐसी बुद्धि न करें। भोजन और आचमन करके शिव का मन ही मन चिन्तन करते हुए मूलमन्त्र का उच्चारण करें। शेष समय शिवशास्त्र की कथा के श्रवण आदि योग्य कार्यों में बिताएं।

रात का प्रथम प्रहर बीत जाने पर मनोहर पूजा करके शिव और शिवा के लिए एक परम सुन्दर शय्या प्रस्तुत करें। उसके साथ ही भक्ष्य भोज्य, वस्त्र, चन्दन और पुष्पमाला आदि भी रख दें। मन से और क्रिया से भी सुन्दर व्यवस्था करके पवित्र हो महादेव तथा महादेवी के चरणों के निकट शयन करें। यदि उपासक गृहस्थ हों तो वे वहां अपनी पत्नी के साथ शयन करें। जो गृहस्थ न हों, वे अकेले ही सोएं। उषाकाल आया जान मन-ही-मन पार्वती देवी तथा पार्षदों सहित अविनाशी भगवान् शिव को प्रणाम करके देशकालोचित कार्य एवं शौच आदि कृत्य पूर्ण करें। फिर यथाशक्ति शंख आदि वाद्यों की दिव्य ध्वनियों से महादेव और महादेवी को जगाएं। इसके बाद उस समय खिले हुए परम सुगन्धित पुष्पों द्वारा शिवा और शिव की पूजा करके पूर्वोक्त कार्य आरम्भ करें।

पंचमुख महादेव का पूजन विधान

भगवान् शंकर के साधक को कुछ काम्य कर्म भी अवश्य करने चाहिए जो उसे इहलोक और परलोक दोनों में ही फल देने वाले हैं। शिव और महेश्वर में कोई भेद नहीं है। गन्ध, वर्ण और रस आदि के द्वारा विधिपूर्वक भूमि की परीक्षा करके मनोऽषित स्थान पर आकाश में चंदोवा तान दें और उस स्थान को भलीभांति लीप-पोत कर दर्पण के समान स्वच्छ बना दें। तत्पश्चात् शास्त्रोक्त मार्ग से वहां पहले पूर्वदिशा की कल्पना करें। उस दिशा में एक या दो हाथ का मण्डल बनाएं। उस मण्डल में सुन्दर अष्टदल कमल अंकित करें। कमल में कर्णिका भी होनी चाहिए। यथासम्भव संचित रत्न और सुवर्ण आदि के चूर्ण से उसका निर्माण करें जो अत्यन्त शोभायमान और पांच आवरणों से युक्त हो। कमल के आठ सिद्धियों की कल्पना करें तथा उनके केसरों में शक्ति सहित वामदेव आदि आठ रुद्रों को पूर्वादि दल के क्रम से स्थापित करें। कमल की कर्णिका में वैराग्य को स्थान दें और बीजों में नवशक्तियों की स्थापना करें। कमल के कन्द में शिव-सम्बन्धी धर्म और नाल में शिव सम्बन्धी ज्ञान की भावना करें। कर्णिका के ऊपर अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल की भावना करें।

इन मण्डलों के ऊपर शिवतत्व, विद्यातत्व और आत्मतत्व का चिन्तन करें। सम्पूर्ण कमलासन के ऊपर सुखपूर्वक विराजमान और नाना प्रकार के विचित्र पुष्पों से अलंकृत, पांच आवरणों सहित भगवान् शिव का माता पार्वती के साथ पूजन करें। उनकी अंगकांति शुद्ध स्फटिक मणि के समान उज्ज्वल है। वे सतत् प्रसन्न रहते हैं। उनकी प्रभा शीतल है। मस्तक पर विद्युतमण्डल के समान चमकीली जटारूप मुकुट उनकी शोभा बढ़ाता है। वे व्याघ्रचर्म धारण किए हुए हैं। उनके मुखारविन्द पर कुछ-कुछ मन्द मुस्कान की छटा छा रही है। उनके हाथ की हथेलियां और पैरों के तलवे लाल कमल के समान अरुण प्रभा से उद्भासित हैं। वे भगवान् शिव समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं। उनके हाथों में उत्तमोत्तम दिव्य आयुध शोभा पा रहे हैं और अंगों में दिव्य चंदन का लेप लगा हुआ है। उनके पांच मुख और दस भुजाएं हैं। अर्धचन्द्र उनकी शिखा के मणि हैं। उनका पूर्ववर्ती मुख प्रातःकाल के सूर्य की भांति अरुण प्रभा से उद्भासित एवं सौम्य है। उसमें नेत्ररूपी तीन कमल खिले हुए हैं तथा सिर पर बाल-चन्द्रमा का मुकुट शोभा पाता है।

दक्षिण मुख नील जलघन के समान श्याम प्रभा से भासित होता है। उसकी भौंहें टेढ़ी हैं। वह

देखने में भयानक हैं। उसमें गोलाकार लाल-लाल आंखें दृष्टिगोचर होती हैं। दाढ़ों के कारण वह मुख विकराल जान पड़ता है। उसका पराभव करना किसी के लिए भी कठिन है। उसके अधरपल्लव फड़कते रहते हैं। उत्तरवर्ती मुख मूंगे की भांति लाल है। काले-काले केशपाश उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उसमें विभ्रमविलास से युक्त तीन नेत्र हैं। उसका मस्तक अर्द्धचन्द्रमय मुकुट से विभूषित है। भगवान् शिव का पश्चिम मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान उज्ज्वल तथा तीन नेत्रों से प्रकाशमान है। उसका मस्तक चन्द्रलेखा की शोभा धारण करता है। वह मुख देखने में सौम्य है और मन्द मुस्कान की शोभा उपासकों का मन मोह लेती है। उनका पांचवां मुख स्फटिक मणि के समान निर्मल, चन्द्रलेखा से समुज्ज्वल, अत्यन्त सौम्य तथा तीन प्रफुल्ल नेत्रकमलों से प्रकाशमान है।

भगवान् शिव अपने दाएं हाथों में शूल, परशु, वज्र, खड्ग और अग्नि धारण करके उनकी प्रभा से प्रकाशित होते हैं। बाएं हाथों में नाग, बाण, घण्टा, पाश तथा अंकुश उनकी शोभा बढ़ाते हैं। पैरों से लेकर घुटनों तक का भाग निवृत्ति कला से सम्बद्ध है। उससे ऊपर नाभि तक का भाग प्रतिष्ठा कला से, कण्ठ तक का भाग विद्याकला से, ललाट तक का भाग शान्तिकला से और उसके ऊपर का भाग शान्त्यतीताकला से संयुक्त है। इस प्रकार वे पंचध्वव्यापी तथा साक्षात् पंचकलामय शरीरधारी हैं। ईशान मंत्र उन महेश्वर का गुह्यभाग है और सद्योजात मन्त्र उनका युगल चरण है। उनकी मूर्ति अड़तीस कलामयी है। सकला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्व, पंचभूत पंचतन्मात्रा, दस इन्द्रियां, चार अन्तःकरण और पांच शब्द आदि विषय छत्तीस तत्व हैं। ये सब तत्व जीव के शरीर में होते हैं।

परमेश्वर के शरीर को शाक्त (शक्तिस्वरूप एवं चिन्मय) तथा मन्त्रमय बताया गया है। इन दो तत्वों को जोड़ लेने से अड़तीस कलाएं होती हैं। समस्त जड़-चेतन परमेश्वर का स्वरूप होने से उनकी मूर्ति को अड़तीस कलामयी बताया गया है अथवा पांच स्वर और तैंतीस व्यंजनरूप होने से उनके शरीर को अड़तीस कलामय कहा गया है। परमेश्वर शिव का विग्रह मातृका (वर्णमाला) मय, पंचब्रह्म ('ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि पांच मन्त्र) मय, प्रणवमय तथा हंसशक्ति से सम्पन्न है। इच्छाशक्ति उनके अंग में आरूढ़ हैं, ज्ञान शक्ति दक्षिणभाग में। वे त्रितत्वमय हैं अर्थात् आत्मतत्व, विद्यातत्व और शिवतत्व उनके स्वरूप हैं। वे सदाशिव साक्षात् विद्यामूर्ति हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिए।

मूलमन्त्र से मूर्ति की कल्पना और सकलीकरण की क्रिया करके मूलमन्त्र से ही यथोचित रीति से क्रमशः पाद्य आदि विशेषार्घ्य पर्यन्त पूजन करें। फिर पराशक्ति के साथ साक्षात् मूर्तिमान शिव का पूर्वोक्त मूर्ति में आह्वान करके सदसद्व्यक्तिरहित परमेश्वर महादेव का गन्धादि पंचोपचारों से पूजन करें। पांच ब्रह्ममन्त्रों से, छः अंगमन्त्रों से, मातृका मन्त्र से, प्रणव से, शक्तियुक्त शिवमन्त्र से, शान्त तथा अन्य वेदमन्त्रों से अथवा केवल शिवमन्त्र से उन परमदेव का पूजन करें। पाद्य से लेकर मुखशुद्धि पर्यन्त पूजन सम्पन्न करके इष्टदेव का विसर्जन किए बिना ही क्रमशः पांच आवरणों की पूजा आरम्भ करें।

पंच आवरण पूजा विधान

आवरण पूजा में पंच आवरण का पूजन विधान समाहित है, जिसे निम्नानुसार प्रस्तुत किया

जा रहा है—

प्रथम आवरण— सर्वप्रथम गणेश और कार्तिकेय का शिवा एवं शिव के दाएं-बाएं भाग में गंध आदि पांच उपचारों द्वारा पूजन करें। फिर इन सबके चारों ओर ईशान से लेकर सद्योजात पर्यन्त पांच ब्रह्ममूर्तियों का शक्ति सहित क्रमशः पूजन करें। यह प्रथम आवरण में किया जाने वाला पूजन है। उसी आवरण में हृदय आदि छः अंगों तथा शिव-शिवा का आग्नेय कोण से लेकर पूर्वदिशा पर्यन्त आठ दिशाओं में क्रमशः पूजन करें। वहीं वामा आदि शक्तियों के साथ वाम आदि आठ रुद्रों की पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः पूजा करें। यह पूजन वैकल्पिक है।

द्वितीय आवरण— द्वितीय आवरण में पूर्व दिशा वाले दल में अनन्त का और उनके वाम भाग में उनकी शक्ति का पूजन करें। दक्षिण दिशा वाले दल में शक्ति सहित सूक्ष्म देव की पूजा करें। पश्चिम दिशा के दल में शक्ति सहित शिवोत्तम का, उत्तर दिशा वाले दल में शक्तियुक्त एकनेत्र का, ईशान कोण वाले दल में एकरुद्र तथा उनकी शक्ति का, आग्नेय कोण वाले दल में त्रिमूर्ति और उनकी शक्ति का, नैर्ऋत्य कोण के दल में श्रीकण्ठ एवं उनकी शक्ति का तथा वायव्य कोण वाले दल में शक्ति सहित शिखण्डीश का पूजन करें। समस्त चक्रवर्तियों की भी द्वितीय आवरण में ही पूजा करनी चाहिए।

तृतीय आवरण में शक्तियों सहित अष्टमूर्तियों का पूर्वादि आठों दिशाओं में क्रमशः पूजन करें। भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम और महादेव—ये क्रमशः आठ मूर्तियां हैं। इसके बाद उसी आवरण में शक्तियों सहित महादेव आदि ग्यारह मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। महादेव, शिव, रुद्र, शंकर, भीम, देवदेव, भवोद्भव तथा कपर्दीश (या कपालीश)—ये ग्यारह मूर्तियां हैं। इनमें से जो प्रथम आठ मूर्तियां हैं, उनका आग्नेय कोण वाले दल से लेकर पूर्वदिशा पर्यन्त आठ दिशाओं में पूजन करना चाहिए। देवदेव को पूर्वदिशा के दल में स्थापित एवं पूजित करें। ईशान का पुनः आग्नेय कोण में स्थापन-पूजन करें। फिर इन दोनों के बीच में भवोद्भव की पूजा करें। इनके बाद कपालीश या कपर्दीश का स्थापन-पूजन करना चाहिए।

तृतीय आवरण— तृतीय आवरण में वृषभराज का उत्तर में, शास्ता का आग्नेय कोण के दल में, मातृकाओं का दक्षिण दिशा के दल में, गणेशजी का नैर्ऋत्य कोण के दल में, कार्तिकेय का पश्चिम दिशा के दल में, ज्येष्ठा का वायव्य कोण के दल में, गौरी का उत्तरदल में, चण्ड का ईशान कोण में तथा शास्ता एवं नन्दीश्वर के बीच में मुनीन्द्र वृषभ का यजन करें। महाकाल के उत्तरभाग में पिंगल का, शास्ता और मातृकाओं के बीच में भृंगीश्वर का, मातृकाओं तथा गणेशजी के बीच में वीरभद्र का, स्कन्द और गणेशजी के बीच में सरस्वती देवी का, ज्येष्ठा और कार्तिकेय के बीच में शिवचरणों की अर्चना करने वाली श्रीदेवी का, ज्येष्ठा और गणाम्बा (गौरी) के बीच में महामोटी की पूजा करें। गणाम्बा और चण्ड के बीच में दुर्गादेवी की पूजा करें। इसी आवरण में पुनः शिव के अनुचरवर्ग की पूजा करें। इस अनुचरवर्ग में रुद्रगण, प्रमथगण और भूतगण आते हैं। इन सबके विविध रूप हैं। ये सबके सब अपनी शक्तियों के साथ हैं। इनके बाद एकाग्रचित्त होकर शिवा के सखीवर्ग का भी ध्यान एवं पूजन करना चाहिए।

चतुर्थ आवरण— चतुर्थ आवरण के बाह्यभाग में इस आवरण का चिन्तन एवं पूजन करना चाहिए। पूर्वदल में सूर्य का, दक्षिणदल में चतुर्मुख ब्रह्मा का, पश्चिम दल में रुद्र का और उत्तर दिशा के दल में भगवान् विष्णु का पूजन करें। इन चारों देवताओं के भी पृथक-पृथक आवरण हैं।

इनके प्रथम आवरण में छहों अंगों तथा दीप्ता आदि शक्तियों की पूजा करनी चाहिए। दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा और विद्युता—इनकी क्रमशः पूर्व आदि आठ दिशाओं में स्थिति है। द्वितीय आवरण में पूर्व से लेकर उत्तर तक क्रमशः चार मूर्तियों की और उनके बाद उनकी शक्तियों की पूजा करें। आदित्य, भास्कर, भानु और रवि—ये चार मूर्तियां क्रमशः पूर्वादि चारों दिशाओं में पूजनीय हैं। इसके बाद अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु—ये चार मूर्तियां भी पूर्वादि दिशाओं में पूजनीय हैं। पूर्व दिशा में विस्तारा, दक्षिण दिशा में सुतरा, पश्चिम दिशा में बोधिनी और उत्तर दिशा में आप्यायिनी की पूजा करें। ईशान कोण में उमा की, आग्नेय कोण में प्रभा की, नैर्ऋत्य कोण में प्राज्ञा की और वायव्य कोण में संध्या की पूजा करें। इस तरह द्वितीय आवरण में इन सबकी स्थापना करके विधिवत् पूजा करनी चाहिए।

तृतीय आवरण में सोम, मंगल, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बुध, विशालबुद्धि बृहस्पति, तेजोनिधि शुक्र, शनिश्चर तथा धूम्र वर्ण वाले भयंकर राहु-केतु का पूर्वादि दिशाओं में पूजन करें अथवा द्वितीय आवरण में द्वादश आदित्यों की पूजा करनी चाहिए और तृतीय आवरण में द्वादश राशियों की। उसके बाह्य भाग में सात-सात गणों की सब ओर पूजा करनी चाहिए। ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों, नागों, अप्सराओं, ग्रामणियों, यक्षों, यातुधानों, सात छन्दोमय अश्वों तथा वालखिल्यों का पूजन करें। इस तरह तृतीय आवरण में सूर्यदेव का पूजन करने के पश्चात् तीन आवरणों सहित ब्रह्माजी का पूजन करें। पूर्वदिशा में हिरण्यगर्भ का, दक्षिण में विराट् का, पश्चिम में काल का और उत्तर में परुश का पूजन करें। हिरण्यगर्भ नामक जो पहले ब्रह्मा हैं, उनकी अंगकांति कमल के समान है। काल जन्म से ही अंजन के समान काले हैं और पुरुष स्फटिकमणि के समान निर्मल हैं। वे त्रिगुण, राजस, तामस तथा सात्विक निर्मल हैं। ये चारों भी पूर्वादि दिशा के क्रम से प्रथम आवरण में ही स्थित हैं।

द्वितीय आवरण में पूर्वादि दिशाओं के दलों में क्रमशः सनत्कुमार, सनक, सनन्दन और सनातन का पूजन करना चाहिए। इसके बाद तीसरे आवरण में ग्यारह प्रजापतियों की पूजा करें। उनमें से प्रथम आठ का तो पूर्व आदि आठ दिशाओं में पूजन करें। फिर शेष तीन का पूर्व आदि के क्रम से अर्थात् पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम में स्थापन-पूजन करें। दक्ष, रुचि, भृगु, मारीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, कश्यप और वशिष्ठ—ये ग्यारह विख्यात प्रजापति हैं। इनके साथ इनकी पत्नियों का भी क्रमशः पूजन करना चाहिए। प्रसूति, आकृति, ख्याति, सम्भूति, धृति, स्मृति, क्षमा, संनति, अनसूया, देवमाता अदिति तथा अरुन्धती—ये सभी ऋषिपत्नियां पतिव्रता एवं सदा दर्शना (परम सुन्दरी) हैं अथवा प्रथम आवरण में चारों वेदों का पूजन करें। फिर द्वितीय आवरण में इतिहास-पुराणों की अर्चना करें। तृतीय आवरण में धर्मशास्त्र सहित सम्पूर्ण वैदिक विद्याओं का सब ओर पूजन करना चाहिए। चार वेदों का पूर्वादि चार दिशाओं में पूजन करना चाहिए। अन्य ग्रन्थों को अपनी रुचि के अनुसार आठ या चार भागों में बांटकर सब ओर उनकी पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार दक्षिण में तीन आवरणों से युक्त ब्रह्माजी की पूजा करके पश्चिम में आवरण सहित रुद्र का पूजन करें।

पंचम आवरण— ईशान आदि पांच ब्रह्म और हृदय आदि छः अंगों को रुद्रदेव का प्रथम आवरण कहा गया है। द्वितीय आवरण विद्येश्वरमय ('पाशुपत-दर्शन' में विद्येश्वरों की संख्या आठ बतायी गयी है। उनके नाम इस प्रकार हैं—अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति,

श्रीकण्ठ और शिखण्डी। इनको क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं में स्थापित करके इनकी पूजा करें। द्वितीय आवरण में इन्हीं की पूजा होती है) है। तृतीय आवरण में भेद है। अतः उसका वर्णन किया जाता है। उस आवरण में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से त्रिगुणादि चार मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। पूर्वदिशा में पूर्णरूप शिव नाम महादेव पूजित होते हैं, इनकी 'त्रिगुण' संज्ञा है (क्योंकि ये त्रिगुणात्मक जगत के आश्रय हैं)। दक्षिण दिशा में 'राजस' पुरुष के नाम से प्रसिद्ध हैं। पश्चिम दिशा में 'तामस' पुरुष अग्नि की पूजा की जाती है। इन्हीं को 'संहारकारी हर' कहा गया है। उत्तर दिशा में 'सात्विक' पुरुष सुखदायक विष्णु का पूजन किया जाता है। ये ही विश्वपालक 'मृड' हैं। इस प्रकार पश्चिम भाग में शम्भु के शिवरूप का, जो पच्चीस तत्वों का साक्षी छब्बीसवां (सांख्ययोक्त 24 प्राकृत तत्वों के साक्षी जीव को पचीसवां तत्व कहा गया है; जो इससे भी परे हैं। वे सर्वसाक्षी परमात्मा शिव छब्बीसवें तत्वरूप हैं) तत्वरूप है, का पूजन करके उत्तर दिशा में भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए।

इनके प्रथम आवरण में वासुदेव को पूर्व में, अनिरुद्ध को दक्षिण में, प्रद्युम्न को पश्चिम में और संकर्षण को उत्तर में स्थापित करके इनकी पूजा करनी चाहिए। यह प्रथम आवरण बताया गया। अब द्वितीय शुभ आवरण बताया जाता है। मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, तीनों में से एक राम, आप श्रीकृष्ण और हयग्रीव—ये द्वितीय आवरण में पूजित होते हैं। तृतीय आवरण में पूर्वभाग में चक्र की पूजा करें। दक्षिण भाग में कहीं भी प्रतिहत न होने वाले नारायणास्त्र का यजन करें। पश्चिम में पांचजन्य का और उत्तर में शारंग धनुष की पूजा करें। इस प्रकार तीन आवरणों से युक्त साक्षात् विश्वनामक परम हरि महाविष्णु की, जो सदा सर्वत्र व्यापक हैं, मूर्ति में भावना करके पूजा करें। इस तरह विष्णु के चतुर्व्यूहक्रम से चार मूर्तियों का पूजन करें। प्रभा का आग्नेय कोण में, सरस्वती का नैर्ऋत्य कोण में, गणाम्बिका का वायव्य कोण में तथा लक्ष्मी का ईशान कोण में पूजन करें। इसी प्रकार भानु आदि मूर्तियों और उनकी शक्तियों का पूजन करके उसी आवरण में लोकेश्वरों की पूजा करें। उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, कुबेर तथा ईशान। इस प्रकार चौथे आवरण की विधिपूर्वक पूजा सम्पन्न करके बाह्यभाग में महेश्वर के आयुधों—त्रिशूल की, पूर्व में वज्र की, आग्नेय कोण में परशु की, दक्षिण में बाण की, नैर्ऋत्य कोण में खड्ग की, पश्चिम दिशा में पाश की, वायव्य कोण में अंकुश की और उत्तर दिशा में पिनाक की पूजा करें। तत्पश्चात् पश्चिमाभिमुख रौद्ररूपधारी क्षेत्रपाल का अर्चन करें।

इस तरह समस्त आवरण की पूजा का सम्पादन करके समस्त आवरण देवताओं के बाह्यभाग में अथवा पांचवें आवरण में ही मातृकाओं सहित महावृषभ नन्दिकेश्वर का पूर्व दिशा में पूजन करें। तदनन्तर समस्त देवयोनियों की चारों ओर अर्चना करें। इसके सिवा जो आकाश में विचरने वाले ऋषि, सिद्ध, दैत्य, यक्ष, राक्षस, अनन्त आदि नागराज, उन-उन नागेश्वरों के कुल में उत्पन्न हुए अन्य नाग, डाकिनी, भूत, वेताल, प्रेत और भैरवों के नायक, नाना योनियों में उत्पन्न हुए अन्य पातालवासी जीव, नदी, समुद्र, पर्वत, वन, सरोवर, पशु, पक्षी, वृक्ष, कीट आदि क्षुद्र योनि के जीव, मनुष्य, नाना प्रकार के आकार वाले मृग, क्षुद्र जन्तु, ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्ड के बाहर के असंख्य भुवन और उनके अधीश्वर तथा दसों दिशाओं में स्थित ब्रह्माण्ड के आधारभूत रुद्र हैं और गुणजनित, मायाजनित, शक्तिजनित तथा उससे भी परे जो कुछ भी शब्दवाच्य जड़चेतनात्मक प्रपंच हैं, उन सबको शिवा और शिव के पार्श्वभाग में स्थित जानकर उनका

सामान्य रूप से यजन करें। वे सब लोग हाथ जोड़कर मन्द मुस्कानयुक्त मुख से सुशोभित होते हुए प्रेमपूर्वक महादेव और महादेवी का दर्शन कर रहे हैं, ऐसा चिन्तन करना चाहिए।

इस तरह आवरण-पूजा सम्पन्न करके विक्षेप की शान्ति के लिए पुनः देवेश्वर शिव की अर्चना करने के पश्चात् पंचाक्षर मन्त्र का जप करें। तदनन्तर शिव और पार्वती के सम्मुख उत्तम व्यंजनों से युक्त तथा अमृत के समान मधुर, शुद्ध एवं मनोहर महाचरु का नैवेद्य निवेदन करें। यह महाचरु बत्तीस आढक (लगभग तीन मन आठ सेर) का हो तो उत्तम है और कम से कम एक आढक (चार सेर) का हो तो निम्न श्रेणी का माना गया है। अपने वैभव के अनुसार जितना हो सके, महाचरु तैयार करके उसे श्रद्धापूर्वक निवेदित करें। तदनन्तर जल और ताम्बूल, इलायची आदि निवेदन करके आरती उतार कर शेष पूजा समाप्त करें। याग के उपयोग में आने वाले द्रव्य, भोजन, वस्त्र आदि को उत्तम श्रेणी का ही तैयार कराकर दें। भक्तिमान पुरुष वैभव होते हुए धन-व्यय करने में कंजूसी न करें। जो शठ या कंजूस हैं और पूजा के प्रति उपेक्षा की भावना रखते हैं, यदि वे कृपणतावश कर्म को किसी अंग से हीन कर दें तो उसके बचे काम्य कर्म सफल नहीं होते —ऐसा सत्पुरुषों का मत है।

इसलिए यदि मनुष्य फलसिद्धि के इच्छुक हों तो उपेक्षाभाव को त्यागकर सम्पूर्ण अंगों के योग से काम्य कर्मों का सम्पादन करें। इस तरह पूजा समाप्त करके महादेव और महादेवी को प्रणाम करें। फिर भक्तिभाव से मन को एकाग्र करके स्तुतिपाठ करें। स्तुति के पश्चात् साधक उत्सुकतापूर्वक कम से कम एक सौ आठ बार और सम्भव हो तो एक हजार से अधिक बार, पंचाक्षरी विद्या का जप करें। तत्पश्चात् क्रमशः विद्या एवं गुरु की पूजा करके अपने अभ्युदय और श्रद्धा के अनुसार यज्ञमण्डप के सदस्यों का भी पूजन करें। फिर आवरणों सहित देवेश्वर शिव का विसर्जन करके यज्ञ के उपकरणों सहित वह सारा मण्डल गुरु अथवा शिवचरणाश्रित भक्तों को दे दें या उसे शिव के ही उद्देश्य से शिव के क्षेत्र में समर्पित कर दें अथवा समस्त आवरण-देवताओं का यथोचित रीति से पूजन करके सात प्रकार के होमद्रव्यों द्वारा शिवाग्नि में इष्टदेवता का यजन करें।

यह तीनों लोकों में विख्यात योगेश्वर नामक योग है। इससे बढ़कर कोई योग त्रिभुवन में कहीं नहीं है। संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो इससे साध्य न हो सके। इस लोक में या परलोक में मिलने वाला कोई फल हो, इसके द्वारा सब सुलभ हैं। यह इसका फल नहीं है, ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं किया जा सकता; क्योंकि सम्पूर्ण श्रेषेरूप साध्य का यह श्रेष्ठ साधन है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पुरुष जो कुछ फल चाहता है, वह सब चिन्तामणि के समान इससे प्राप्त हो सकता है। किसी क्षुद्र फल के उद्देश्य से इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए; क्योंकि किसी महान से लघु फल की इच्छा रखने वाला पुरुष स्वयं लघुतर हो जाता है। महादेवजी के उद्देश्य से महान या अल्प जो भी कर्म किया जाए, वह सब सिद्ध होता है। अतः उन्हीं के उद्देश्य से कर्म का प्रयोग करना चाहिए।

शत्रु तथा मृत्यु पर विजय पाना आदि जो फल दूसरों से सिद्ध होने वाले नहीं हैं, उन लौकिक या पारलौकिक फलों के लिए विद्वान पुरुष इसका प्रयोग करें। इस योग को महेश्वर शिव ने शैवों के लिए बड़ी भारी आपत्ति का निवारण करने वाला अपना निजी अस्त्र बताया है। अतः इससे बढ़कर यहां अपना कोई रक्षक नहीं है, ऐसा समझकर इस कर्म का प्रयोग करने वाला पुरुष शुभ

फल का भागी होता है। जो प्रतिदिन पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर स्तोत्रमंत्र का पाठ करता है, वह भी अभीष्ट प्रयोजन का अष्टमांश फल पा लेता है। जो अर्थ का अनुसंधान करते हुए पूर्णिमा, अष्टमी अथवा चतुर्दशी को उपवासपूर्वक स्तोत्र का पाठ लगातार एक मास तक करता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट फल का भागी होता है।

शिव के पांच आवरणों में स्थित देवताओं की स्तुति

स्तोत्रं वक्ष्यामि ते कृष्ण पंचावरणमार्गतः ।
योगेश्वरमिदं पुण्यं कर्म येन समाप्यते ।।1।।
जय जय जगदेकनाथ शम्भो, प्रकृतिमनोहर नित्यचित्स्वभाव ।
अतिगतकलुषप्रपंचवाचामपि मनसां पदवीमतीततत्त्वम् ।।2।।
स्वभावनिर्मलाभोग जय सुन्दरचेष्टित ।
स्वात्मतुल्यमहाशक्ते जय शुद्धगुणार्णव ।।3।।
अनन्तकान्तिसम्पन्न जयासदृशविग्रह ।
अतर्क्यमहिमाधार जयानाकुलमंगल ।।4।।
निरंजन निराधार जय निष्कारणोदय ।
निरन्तरपरानन्द जय निर्वृत्तिकारण ।।5।।
जयतिपरमैश्वर्य जयतिकरुणास्पद ।
जय स्वतन्त्रसर्वस्व जयासदृशवैभव ।।6।।
जयावृतमहाविश्व जयानावृत केनचित् ।
जयोत्तर समस्तस्य जयात्यन्तनिरुत्तर ।।7।।
जयाद्भुत जयाक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय ।
जयामेय जयामाय जयाभव जयामल ।।8।।
महाभुज महासार महागुण महाकथा ।
महाबल महामाय महारस महारथ ।।9।।
नमः परमदेवाय नमः परमहेतवे ।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शिवतराय ते ।।10।।
त्वदधीनमिदं कृत्स्नं जगद्धि ससुरासुरम् ।
अतस्त्वद्विहितामाज्ञां क्षमतं कोऽतिवर्तितुम् ।।11।।
अयं पुनर्जनो नित्य भवदेकसमाश्रयः ।
भवानतोऽनुगृह्यस्मै प्रार्थितं सम्प्रयच्छतु ।।12।।
जयाम्बिके जगन्मातर्जय सर्वजगन्मयि ।
जयानवधिकैश्वर्ये जयानुपमविग्रहे ।।13।।
जय वाङ्मनसातीते जयाचिद्ध्वान्तभाजके ।
जय जन्मजराहीने जय कालोत्तरोत्तरे ।।14।।
जयानेकविधानस्थे जय विश्वेश्वरप्रिये ।
जय विश्वसुराराध्ये जय विश्वविजृम्भिणि ।।15।।
जय मंगलदिव्यांगे जय मंगलदीपिके ।

जय मंगलचारित्रे जय मंगलदायिनि ।।16।।
नमः परमकल्याणगुणसंचयमूर्तये ।
त्वतः खलु समुत्पन्नं जगत्त्वय्येव लीयते ।।17।।
ज्वद्विनातः फलं दातुमीश्वरोऽपि न शक्नुयात् ।
जन्मप्रभृति देवेशि जनोऽयं त्वदुपाश्रितः ।।18।।
पंचवक्त्रो दशभुजः शुद्धस्फटिकसन्निभः ।
वर्णब्रह्मकलादेहो देवः सकलनिष्कलः ।।19।।
शिवमूर्तिसमारूढ़ः शान्त्यतीतः सदाशिवः ।
भक्त्या मयार्चितो मह्यं प्रार्थितं शं प्रयच्छतु ।।20।।
सदाशिवाङ्मारूढ़ा शक्तिरिच्छा शिवाह्वया ।
जननी सर्वलोकानां प्रयच्छतु मनोरथम् ।।21।।
शिवयोर्दयितौ पुत्रौ देवौ हेरम्बषण्मुखौ ।
शिवानुभावौ पुत्रौ देवौ हेरम्बषण्मुखौ ।।22।।
शिवानुभावौ सर्वग्धौ शिवाभ्यां नित्यसत्कृतौ ।
सत्कृतौ च सदा देवौ ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि ।।23।।
सर्वलोकपरित्राणं कर्तुमभ्युदितौ सदा ।
स्वेच्छावतारं कुर्वन्तौ स्वांशभेदैरनेकशः ।।24।।
ताविमौ शिवयोः पार्श्वे नित्यमित्थं मयार्चितौ ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य प्रार्थितं मे प्रयच्छताम् ।।25।।
शुद्धस्फटिकसंकाशमीशानाख्यां सदाशिवम् ।
मूर्द्धाभिमानिनी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः ।।26।।
शिवार्चरतं शान्तं शान्त्यतीतं खमास्थितम् ।
पंचाक्षरान्तिमं बीजं कलाभिः पंचभिर्युतम् ।।27।।
प्रथमावरणे पूर्वं शक्या सह समर्चितम् ।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ।।28।।
बालसूर्यप्रतीकाशं पुरुषाख्यं पुरातनम् ।
पूर्ववक्त्राभिमानं च शिवस्य परमेष्ठिनः ।।29।।
शान्त्यात्मकं मरुत्संस्थं शम्भोः पादार्चने रतम् ।
प्रथमं शिवबीजेशु कलासु च चतुश्कलम् ।।30।।
पूर्वभागे मया भक्त्या शक्त्या सहसमर्चितम् ।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ।।31।।
अंजनादिप्रतीकाशमघोरं घोरविग्रहम् ।
देवस्य दक्षिणं वक्त्रं देवदेवपदार्चकम् ।।32।।
विद्यापदं समारूढं वह्निमण्डलमध्यगम् ।
द्वितीयं शिवबीजेषु कलास्वष्टकलान्वितम् ।।33।।
शम्भोर्दक्षिणदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम् ।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ।।34।।

कुंकुमक्षोदसंकाशं वामाख्यं वरवेशधृक् ।
वक्त्रमुत्तरमीशस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठतम् ।।35।।
वारिमण्डलमध्यस्थं महादेवार्चने रतम् ।
तुरीयं शिवबीजेषु त्रयोदशकलान्वितम् ।।36।।
देवस्योत्तरदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम् ।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्राथितं मे प्रयच्छतु ।।37।।
शंखकुन्देन्दुधवलं सद्याख्यां सौम्यलक्षणम् ।
शिवस्य पश्चिमं वक्त्रं शिवपादार्चने रतम् ।।38।।
निवृत्तिपदनिष्ठं च पृथिव्यां समवस्थितम् ।
तृतीयं शिवबीजेषु कलाभिश्चाष्टभिर्युतम् ।।39।।
देवस्य पश्चिमे भागे शक्त्या सह समर्चितम् ।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु ।।40।।
शिवस्य तु शिवायाश्च हृन्मूर्ती शिवभाविते ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य ते मे कामं प्रयच्छताम् ।।41।।
शिवस्य च शिवायाश्च शिखामूर्त्ती शिवाश्रिते ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ।।42।।
शिवस्य च शिवायाश्च वर्मणा शिवभाविते ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ।।43।।
शिवस्य च शिवायाश्च नेत्रमूर्त्ती शिवाश्रिते ।
सत्कृत्य शियोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ।।44।।
अस्त्रमूर्ती च शिवयोर्नित्यमर्चनतत्परे ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम् ।।45।।
वामो ज्येष्ठास्तथा रुद्रः कालो विकरणस्तथा ।
बलो विकरणश्चैव बलप्रमथनः परः ।।46।।
सर्वभूतमस्य दमनस्तादृशाश्चाष्टशक्तयः ।
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ।।47।।
अथानन्तश्च सूक्ष्मश्च शिवाश्चेष्कनेत्रकः ।
एकरुद्रस्त्रिमूर्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखण्डिकः ।।48।।
तथाष्टौ शक्तयस्तेषां द्वितीयावरणेऽर्चिताः ।
ते मे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ।।49।।
भवाद्या मूर्तयश्चाष्टौ तासामपि च शक्तयः ।
महादेवादयश्चान्ये तथैकादशमूर्तयः ।।50।।
शक्तिभिः सहिताः सर्वे तृतीयावरणे स्थिताः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां दिशन्तु फलमीप्सितम् ।।51।।
वृषराजो महातेजो महामेघसमस्वनः ।
मेरुमन्दरकैलासहिमाद्रिशिखरोपमः ।।52।।
सिताभ्रशिखराकारककुदा परिशोभितः ।

महाभोगीन्द्रकल्पेन वालेन च विराजितः ।।53।।
रक्तास्यशृंगाचरणो रक्तप्रायविलोचनः ।
पीवरोन्नतसर्वांगः सुचारुगमनोज्ज्वलः ।।54।।
प्रशस्तलक्षणः श्रीमान् प्रज्वलन्मणिभूषणः ।
शिवप्रियः शिवसक्तः शिवयोर्ध्वजवाहनः ।।55।।
तथा तच्चरणन्यासपवितापरविग्रहः ।
गोराजपुरुषः श्रीमान् श्रीमच्छूलवरायुधः ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ।।56।।
नन्दीश्वरो महातेजा नगेन्द्रतनयात्मजः ।
सनारायणकैर्देवैर्नित्यमभ्यर्च्य वन्दितः ।।57।।
शर्वस्यान्तपुद्वारि सार्द्धं परिजनैः स्थितः ।
सर्वेश्वरसमप्रख्यः सर्वासुरविमर्दनः ।।58।।
सर्वेशां शिवधर्माणामध्यक्षत्वेऽभिषेचितः ।
शिवप्रियः शिवसक्तः श्रीमच्छूलवरायुधः ।।59।।
शिवाश्रितेषु संसक्तस्त्वनुरक्तश्च तैरपि ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे कामं प्रयच्छतु ।।60।।
महाकालो महाबाहुर्महादेव इवापरः ।
महादेवाश्रितानां तु नित्यमेवाभिरक्षतु ।।61।।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोरर्चकः सदा ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ।।62।।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः शास्ता विष्णोः परा तनुः ।
महामोहात्मतनयो मधुमांसासर्वप्रियः ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ।।63।।
ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डविक्रमा ।।64।।
एता वै मातरः सप्त सर्वलोकस्य मातरः ।
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु परमेश्वरशासनात् ।।65।।
मत्तमातंगवदनो गंगोमाशंकरात्मजः ।
आकाशदेहो विग्बाहुः सोमसूर्याग्निलोचनः ।।66।।
ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैर्नित्यमर्चितः ।
शिवज्ञानमदोद्भिन्नस्त्रिदशानामविघ्नकृत् ।।67।।
विघ्नकृच्चासुरादीनां विघ्नेशः शिवभावितः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ।।68।।
षड्मुखः शिवसम्भूतः शक्तिवज्रधरः प्रभुः ।
अग्नेश्च तनयो देवो ह्यपर्णातनयः पुनः ।।69।।
गंगायाश्च गणाम्बायाः कृत्तिकानां तथैव च ।
विशाखेन च शाखेन नैगमेयेन चावृतः ।।70।।

इन्द्रजिच्चेन्द्रसेनानीस्तारकासुरजित्तथा
शैलानां मेरुमुख्यानां वेधकश्च स्वतेजसा ।।71।।
तप्तचामीकरप्रख्यः शतपत्रदलेक्षणः ।
कुमारः सुकुमाराणां रूपोदाहरणं महत् ।।72।।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चकः सदा ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ।।73।।
ज्येष्ठा वरिष्ठ वरदा शिवयोर्यजने रता ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य सा मे दिशतु कांक्षितम् ।।74।।
त्रैलोक्यवन्दिता साक्षादुल्काकारा गणाम्बिकाः ।
जगत्सृष्टिविवृद्धयर्थ ब्रह्मणाभ्यार्थिता शिवात् ।।75।।
शिवायाः प्रविभक्ताया भ्रुवोरन्तरनिस्सृता ।
दाक्षायणी सती मेना तथा हैमवती ह्युमा ।।76।।
कौशिक्याश्चैव जननी भद्रकाल्यास्तथैव च ।
अपर्णायाश्च जननी पाटलायास्तथैव च ।।77।।
शिवार्चनरता नित्यं रुद्राणी रुद्रवल्लभा ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां सा मे दिशतु कांक्षितम् ।।78।।
चण्डः सर्वगणेशान्तः शम्भोर्वदनसम्भवः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु कांक्षितम् ।।79।।
पिंगलो गणपः श्रीमान् शिवासक्तः शिवप्रियः ।
आज्ञया शिवयोरेव स मे कामं प्रयच्छतु ।।80।।
भृंगीशो नाम गणपः शिवाराधनतत्परः ।
प्रयच्छतु स मे कामं पत्युराज्ञापुरस्सरम् ।।81।।
वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसन्निभः ।
भक्तकालीप्रियो नित्यं मातृणां चाभिरक्षिता ।।82।।
यज्ञस्य च शिरोहर्ता दक्षस्य च दुरात्मनः ।
उपेन्द्रेन्द्रयमादीनां देवानामंगतक्षकः ।।83।।
शिवास्यानुचरः श्रीमान् शिवशासनपालकः ।
शिवयो शासनादेव स मे दिशु कांक्षितम् ।।84।।
विष्णोर्वक्षःस्थिता लक्ष्मीः शिवयोः पूजने रता ।
शिवयोः शासनादेव सा मे दिशतु कांक्षितम् ।।85।।
महामोदी महादेव्याः पादपूजापरायणा ।
तस्या एव नियोगेन सा मे दिशतु कांक्षितम् ।।86।।
कौशिकी सिंहमारूढ़ा पार्वत्याः परमा सुता ।
विष्णोर्निद्रा महामाया महामहिषमर्दिनी ।।87।।
निशुम्भशुम्भसंहर्त्री मधुमांसासवप्रिया ।
सत्कृत्य शासनं मातुः सा मे दिशतु कांक्षितम् ।।88।।
रुद्रा रुद्रसमप्रख्याः प्रमथाः प्रथितौजसः ।

भूतसख्या महावीर्या महादेवसमप्रभाः ।।89।।
नित्यमुक्ता निरुपमा निर्द्वन्द्वा निरुपपल्लवाः ।
सशक्तयः सानुचरा सर्वलोकनमस्कृताः ।।90।।
सर्वेषामेव लोकानां सृष्टिसंहरणक्षमाः ।
परस्परानुरक्तश्च परस्परमनुव्रताः ।।91।।
परस्परमतिस्नग्धाः परस्परनमस्कृताः ।
शिवप्रियतमा नित्यं शिवलक्षणलक्षिताः ।।92।।
सौम्या घोरस्तथा मिश्राश्चान्तरालद्वयात्मिकाः ।
विरुपाश्च सुरूपाश्च नानारूपधरास्तथा ।।93।।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं दिशन्तु वै ।
देव्याः प्रियसखीवर्गो देवीलक्षणलक्षितः ।।94।।
सहितो रुद्रकन्याभिः शक्तिभिश्चाप्यनेकशः ।
तृतीयावरणे शम्भोर्भक्त्या नित्यं समर्चितः ।।95।।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ।
दिवाकरो महेशस्य मूर्तिर्दीप्तसुमण्डलः ।।96।।
निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ।
अविकारात्मकश्चद्यः एकः सामान्यविक्रियः ।।97।।
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ।
एवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्तः पंचधा पुनः ।।98।।
चतुर्थावरणे शम्भोः पूजितश्चानुगैः सह ।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ।।99।।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ।
दिवाकरषडंगानि दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः ।।100।।
आदित्यो भास्करो भानू रिवश्चेत्यनुपूर्वशः ।
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चादित्यमूर्तयः ।।101।।
विस्तरा सुतरा बोधिन्याप्यायिन्यपराः पुनः ।
उषा प्रभा तथा प्राज्ञा संध्या चेत्यपि शक्तयः ।।102।।
सोमादिकेतुपर्यन्ता ग्रहाश्च शिवभाविताः ।
शिवयोराज्ञया नूना मंगलं प्रदिशन्तु मे ।।103।।
अथ वा द्वादशादित्यास्तथा द्वादश शक्तयः ।
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसा गणाः ।।104।।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षाः राक्षसाश्च सुरास्तथा ।
सप्त सप्तगणाश्चैते सप्तच्छन्दोमया हयाः ।।105।।
वालखिल्यादयश्चैव सर्वे शिवपदार्चकाः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशन्तु मे ।।106।।
ब्रह्माथ देवदेवस्य मूर्तिर्भूमण्डलाधिपः ।
चतुःषष्टिगुणैश्वर्यो बुद्धितत्त्वे प्रतिष्ठितः ।।107।।

निगुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ।
अविकारात्मको देवस्ततः साधारणः पुरः ।।108।।
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ।
एवं त्रिधा चतुर्द्धा च विभक्तः पंचधा पुनः ।।109।।
चतुर्थावरणे शम्भोः पूजितश्च सहानुगैः ।
शिवप्रियः शिवसक्तः शिवपादार्चने रतः ।।110।।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ।
हिरण्यगर्भो लोकेशो विराटेश्वर सनातनः ।।111।।
सनत्कुमारः सनकः सनन्दश्च सनातनः ।
प्रजानां पतयश्चैव दक्षाद्या ब्रह्मसूनवः ।।112।।
एकादश सपत्नीका धर्मः संकल्प एव च ।
शिवार्चनरताश्चैते शिवभक्तिपरायणाः ।।113।।
शिवाज्ञावशगाः सर्वे दिशन्तु मम मंगलम् ।
चत्वारश्च तथा वेदाः सेतिहासपुराणकाः ।।114।।
धर्मशास्त्राणि विद्याभिर्वैदिकीभिः समन्विताः ।
परस्पराविरुद्धर्थाः शिवप्रकृतिपादकाः ।।115।।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशन्तु मे ।
अथ रुद्रो महादेवः शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी ।।116।।
वाह्नेयमण्डलाधीशः पौरुषैश्वर्यवान् प्रभुः ।
शिवाभिमानसम्पन्नो निर्गुणस्त्रिगुणात्मकः ।।117।।
केवलं सात्त्विकाश्चापि राजसश्चैव तामसः ।
अविकाररतः पूर्वं ततस्तु समविक्रियः ।।118।।
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् ।
ब्रह्मणोऽपि शिरश्छेत्ता जनकस्तस्य तत्सुतः ।।119।।
जनकस्तनयश्चापि विष्णोरपि नियामकः ।
बोधकश्च तयोर्नित्यमनुग्रहकरः प्रभुः ।।120।।
अण्डस्यान्तर्बहिर्वर्ती रुद्रो लोकद्वयाधिपः ।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः ।।121।।
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मंगलम् ।
तस्य ब्रह्म षडंगानि विद्येशानां तथाष्टकम् ।।122।।
चत्वारो मूर्तिभेदाश्च शिवपूर्वाः शिवार्चकाः ।
शिवो भवो हरश्चैव मृडश्चैव तथापरः ।
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य मंगलं प्रदिशन्तु मे ।।123।।
अथ विष्णुर्महेशस्य शिवस्यैव परा तनुः ।
वारितत्त्वाधिपः साक्षादव्यक्तपदसंस्थितः ।।124।।
निर्गुणः सत्त्वबहुलस्तथैव गुणकेवलः ।
अविकाराभिमानी च त्रिसाधारणविक्रियः ।।125।।

असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक् ।
दक्षिणांगभवेनापि स्पर्धमानः स्वयम्भुवा ।।126।।
आद्येन ब्रह्मणा साक्षात्सृष्टः स्रष्टा च तस्य तु ।
अण्डस्यान्तर्बहिर्वती विष्णुर्लोकद्वयाधिपः ।।127।।
असुरान्तकरश्चक्री शक्रस्यापि तथानुजः ।
प्रादुर्भूश्च दशधा भृगशापच्छलादिह ।।128।।
भूभारनिग्रहार्थाय स्वेच्छयावतरत् क्षितौ ।
अप्रमेयबलो मायी मायया मोहयंजगत् ।।129।।
मूर्ति कृत्वा महाविष्णुं सदाविष्णुमथापि वा ।
वैष्णवैः पूजितो नित्यं मूर्तित्रयमयासने ।।130।।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवापादार्चने रतः ।
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मंगलम् ।।131।।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च प्रद्युम्नश्च ततः परः ।
संकर्षणः समाख्याताश्चस्त्रो मूर्तयो हरेः ।।132।।
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ।
रामत्रयं तथा कृष्णो विष्णुस्तुरगवक्त्रकः ।।133।।
चक्रं नारायणस्यास्त्रं पांचजन्यं च श्रांगकम् ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदशिन्तु मे ।।134।।
प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मीश्च शिवभाविता ।
शिवयोः शासनादेता मंगलं प्रदिशन्तु मे ।।135।।
इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा ।
वायुः सोमः कुबेरश्च तथेशानस्त्रिशूलधृक् ।।136।।
सर्वे शिवार्चनरताः शिवसद्भावभाविताः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशन्तु मे ।।137।।
त्रिशूलमथ वज्रं च तथा परशुसायकौ ।
खड्गपाशांकुशाश्चैव पिनाकश्चायुधोत्तमः ।।138।।
दिव्यायुधानि देवस्य देव्याश्चैतानि नित्यशः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां रक्षां कुर्वन्तु मे सदा ।।139।।
वृषभरूपधरो देवः सौरभेयो महाबलः ।
वडवाख्यानलस्पर्द्धी पंचगोमातृभिर्वृतः ।।140।।
वाहनत्वमनुप्राप्तस्तपसा परमेशयोः ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु ।।141।।
नन्दा सुनन्दा सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा ।
पंच गोमातरस्त्वेताः शिवलोके व्यवस्थिताः ।।142।।
शिवभक्तिपरा नित्यं शिवार्चनपरायणाः ।
शिवयोः शासनादेव दिशन्तु मम वांछितम् ।।143।।
क्षेत्रपालो महातेजा नीलजीमूतसन्निभः ।

दंष्ट्राकरालवदनः स्फुरद्रक्ताधरोज्ज्वलः ।।144।।
रक्तोर्ध्वमूर्द्धजः श्रीमान् भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः ।
रक्तवृत्तत्रिनयनः शशिपन्नगभूषणः ।।145।।
नग्नस्त्रिशूलपाशासिकपालोद्यतपाणिकः ।
भैरवो भैरवैः सिद्धैर्योगिनीभिश्च संवृतः ।।146।।
क्षेत्रे क्षेत्रसमासीनः स्थितो यो रक्षकः सताम् ।
शिवप्रणामपरमः शिवसद्भावभावितः ।।147।।
शिवाश्रितान् विशेषेण रक्षन् पुत्रानिवौरसान् ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मंगलम् ।।148।।
तालजंघादयस्तस्य प्रथमावरणेऽर्चिताः ।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां चत्वारः समवन्तु माम् ।।149।।
भैरवाद्याश्च ये चान्ये समन्तात्तस्य वेष्टिताः ।
तेऽपि मामनुगृह्णन्तु शिवशासनगौरवात् ।।150।।
नारदाद्यश्च मुनयो दिव्या देवैश्च पूजिताः ।
साध्या नागाश्च ये देवा जनलोकनिवासिनः ।।151।।
विनिर्वृत्ताधिकारश्च महर्लोकनिवासिनः ।
सप्तर्षयस्तथान्ये वै वैमानिकगणैः सह ।।152।।
सर्वे शिवार्चनरताः शिवाज्ञावशवर्तिनः ।
शिवयोराज्ञया मह्यं दिशन्तु समकांक्षितम् ।।153।।
गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ताश्चतस्त्रो देवयोनयः ।
सिद्धा विद्याधराद्याश्च येऽपि चान्ये नभश्चराः ।।154।।
असुरा राक्षसाश्चैव पातालतलवासिनः ।
अनन्ताद्याश्च नागेन्द्रा वैनतेयादयो द्विजाः ।।155।।
कूष्माण्डाः प्रेतवेताला ग्रहा भूतगणाः परे ।
डाकिन्यश्चापि योगिन्यः शाकिन्यश्चापि तादृशाः ।।156।।
क्षेत्रारामगृहादीनि तीर्थान्यायतनानि च ।
द्वीपाः समुद्रा नद्यश्च नदाश्चान्ये सरांसि च ।।157।।
गिरयश्च सुमेर्वाद्याः काननानि समन्ततः ।
पशवः पक्षिणो वृक्षाः कृमिकीटादयो मृगाः ।।158।।
भुवनान्यपि सर्वाणि भुवनानामधीश्वराः ।
अण्डान्यावरणैः सार्द्धं मासाश्च दश दिग्गजाः ।।159।।
वर्णाः पदानि मन्त्राश्च तत्त्वान्यपि सहाधिपैः ।
ब्रह्माण्डधारका रुद्रारुक्ताश्चान्ये सशक्तिकाः ।।160।।
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृष्टं चानुमितं श्रुतम् ।
सर्वे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ।।161।।
अथ विद्या परा शैवी पशुपाशविमोचिनी ।
पंचार्थसंहिता दिव्या पशुविद्याबहिष्कृता ।।162।।

शास्त्रं च शिवधर्माख्यं धर्माख्यं च तदुत्तरम् ।
शैवाख्यं शिवधर्माख्यं पुराणं श्रुतिसम्मतम् ।।163।।
शैवागमाश्च ये चान्ये कामिकाद्याश्चतुर्विधाः ।
शिवाभ्यामविशरेषेण उत्कृत्येह समर्चिताः ।।164।।
ताभ्यामेव समाज्ञाता ममाभिप्रेतसिद्धये ।
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्ठितम् ।।165।।
श्वेताद्या नकुलीशान्ताः सशिष्याश्चापि देशिकाः ।
तत्संततीया गुरवो विशेषाद् गुरवो मम ।।166।।
शैवा माहेश्वराश्चैव ज्ञानकर्मपरायणाः ।
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्ठितम् ।।167।।
लौकिका ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्चविशःक्रमात् ।
वेदवेदांगतत्त्वाज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ।।168।।
सांख्या वैशेषिकाश्चैव यौगा नैयायिका नराः ।
सौरा ब्राह्मास्तथा रौक्ता वैष्णवाश्चपरे नराः ।।169।।
शिष्टाः सर्वे विशिष्टाश्च शिवशासनयन्त्रिताः ।
कर्मेदमनुमन्यन्तां ममभिप्रेतसाधकम् ।।170।।
शैवाः सिद्धान्तमार्गस्थाः शैवाः पशुपतास्तथा ।
शैवा महाव्रतधराः शैवाः कापालिकाः परे ।।171।।
शिवाज्ञापालकाः पूज्या ममापि शिवशासनात् ।
सर्वे मामनुगृहणन्तु शंसन्तु सफलक्रियाम् ।।172।।
दक्षिणज्ञाननिष्ठाश्च दक्षिणोत्तरमार्गगाः ।
अविरोधेन वर्तन्तां मन्त्रं श्रेयोऽर्थिनो मम ।।173।।
नास्तिकाश्च शठाश्चैव कृतघ्नाश्चैव तामसाः ।
पाषण्डाश्चातिपापाश्च वर्तन्तां दूरतो मम ।।174।।
बहुभिः किं स्तुतैरत्र येऽपि केऽपि चिदास्तिकाः ।
सर्वे मानुगृहणन्तु सन्तः शंसन्तु मंगलम् ।।175।।
नमः शिवाय साम्बाय ससुतायादिहेतवे ।
पंचावरणरूपेण प्रपंचेनावृताय ते ।।176।।
इत्युक्त्वा दण्डवद् भूमौ प्रणिपत्य शिवं शिवाम् ।
जपेत्पंचाक्षरसीं विषमष्टोत्तरशतावराम् ।।177।।
तथैव शक्तिविद्यां च जपित्वा तत्समर्पणम् ।
कृत्वा तं क्षमयित्वेशं पूजाशेषं समापयेत् ।।178।।
एतत्पुण्यतमं स्तोत्रं शिवयोर्हृदयंगमम् ।
सर्वाभीष्टप्रदं साक्षाद्भक्तिमुक्त्येकसाधनम् ।।179।।
य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः ।
स विधूयाशु पापानि शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।।180।।
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा भ्रूणहापि वा ।

शरणागतघाती च मित्रविश्रम्भघातकः ।।181।।
दुष्टपापसमाचारो मातृहा पितृहापि वा ।
स्तवेनानेन जप्तेन तत्तत्पापात् प्रमुच्यते ।।182।।
दुःस्वप्नादिमहानर्थसूचकेषु भयेषु च ।
यदि संकीर्तयेदेतन्न ततोऽनर्थभाग्भवेत् ।।183।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं यच्चान्यदपि वांक्षितम् ।
स्तोत्रस्यास्य जपे तिष्ठंस्तत्सर्वं लभते नरः ।।184।।
असम्पूज्य शिवं स्तोत्रजपात्फलमुदाहृतम् ।
सम्पूज्य च जपे तस्य फलं वक्तुं न शक्यते ।।185।।
आस्तामियं फलावाप्तिरस्मिन् संकीर्तिते सति ।
सार्धमम्बिकया देवः श्रुत्वैव दिवि तिष्ठति ।।186।।
तस्मान्नभसि सम्पूज्य देवदेवं सहोमया ।
कृतांजलिपुटस्तिष्ठन् स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ।।187।।

षडध्वशोधन विधि

रावण ने कहा—अब मैं षडध्वशोधन विधि का वर्णन करता हूं। शिष्य की योग्यता को देखकर उसके सम्पूर्ण बन्धनों की निवृत्ति के लिए गुरु षडध्वशोधन करे। कला, तत्व, भुवन, वर्ण, पद और मन्त्र—ये ही संक्षेप में छः अध्वा कहे गए हैं। निवृत्ति (निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, और शान्त्यतीता) आदि जो पांच कलाएं हैं, उन्हें विद्वान पुरुष कलाध्वा कहते हैं। अन्य पांच अध्वा इन पांचों कलाओं से व्याप्त हैं। शिवतत्व से लेकर भूमिपर्यन्त जो छब्बीस तत्व हैं, उनको 'तत्वाध्वा' कहा गया है। यह अध्वा शुद्ध और अशुद्ध के भेद से दो प्रकार का है। आधार से लेकर उन्मना तक 'भुवनाध्वा' कहा गया है। यह भेद और उपभेदों को छोड़कर साठ है। रुद्रस्वरूप जो पचास वर्ण हैं, उन्हें 'वर्णाध्वा' की संज्ञा दी गयी है। पदों को 'पदाध्वा' कहा गया है, जिसके अनेक भेद हैं। सब प्रकार के उपमंत्रों से 'मन्त्राध्वा' होता है, जो परम विद्या से व्याप्त है। जिस प्रकार तत्वनायक शिव की तत्वों में गणना नहीं होती, उसी प्रकार उस मन्त्रनायक महेश्वर की मन्त्राध्वा में गणना नहीं होती।

कलाध्वा व्यापक है और अन्य अध्वा व्याप्य हैं। जो इस बात को ठीक-ठीक नहीं जानता, वह अध्वशोधन का अधिकारी नहीं है। जिसने छः प्रकार के अध्वा का रूप नहीं जाना, वह उनके व्याप्य-व्यापक भाव को समझ ही नहीं सकता। इसलिए अध्वाओं के स्वरूप तथा उनके व्याप्य-व्यापक भाव को ठीक-ठीक जानकर ही अध्वशोधन करना चाहिए। पूर्ववत् कुण्ड और मण्डल-निर्माण का कार्य करके पूर्व दिशा में दो हाथ लम्बा-चौड़ा कलशमण्डल बनाएं। तत्पश्चात् शिवाचार्य शिष्य सहित स्नान और नित्यकर्म करके मण्डल में प्रविष्ट हो पहले की भांति शिवजी की पूजा करें। फिर वहां लगभग चार सेर चावल से तैयार की गयी खीर में से आधा प्रभु को नैवेद्य लगा दें और शेष खीर को होम के लिए रख लें। पूर्व दिशा की ओर बने हुए अनेक रंगों से अलंकृत मण्डल में गुरु पांच कलशों की स्थापना करें। चार को तो चारों दिशाओं में रखें और एक को मध्य भाग में। उन कलशों पर मूलचक्र के 'नमः शिवाय' पांचों अक्षरों को विन्दु और नाद से

युक्त करके उनके द्वारा कल्पविधि के ज्ञाता गुरु ईशान आदि ब्रह्मों की स्थापना करें।

मध्यवर्ती कलश पर **ॐ नं ईशानाय नमः ईशानं स्थापयामि** कहकर ईशान की स्थापना करें। पूर्ववर्ती कलश पर **ॐ मं तत्पुरुषाय नमः तत्पुरुषं स्थापयामि** कहकर तत्पुरुष की, दक्षिण कलश पर **ॐ शिं अघोराय नमः अघोरं स्थापयामि** कहकर अघोर की, वाम या उत्तर भाग में रखे हुए कलश पर **ॐ वां वामदेवाय नमः वामदेवं स्थापयामि** कहकर वामदेव की तथा पश्चिम के कलश पर **ॐ यं सद्योजाताय नमः सद्योजातं स्थापयामि** कहकर सद्योजात की स्थापना करें। तदनन्तर रक्षा विधान करके मुद्रा बांधकर कलशों को अभिमन्त्रित करें। इसके बाद पूर्ववत् शिवाग्नि में होम आरम्भ करें। होम के लिए जो आधी खीर रखी गयी थी, उसका हवन करके शेष भाग शिष्य को खाने के लिए दें। पहले की भांति मन्त्रों का तर्पणान्त कर्म करके पूर्णाहुति होम करने के पश्चात् प्रदीपन कर्म करें। प्रदीपन कर्म में **ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा** का उच्चारण करके क्रमशः हृदय आदि अंगों को तीन-तीन आहुतियां देनी चाहिए (अंगों में हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र—इन छः की गणना है)। इनमें से एक-एक अंग को तीन-तीन बार मन्त्र पढ़कर तीन-तीन आहुतियां देनी चाहिए। इन सबके स्वरूप का तेजस्वी रूप में चिन्तन करना चाहिए।

इसके बाद ब्राह्मण की कुमारी कन्या द्वारा काते हुए सफेद सूत को एक बार त्रिगुण करके पुनः त्रिगुण करें। फिर उस सूत्र को अभिमंत्रित करके उसका एक छोर शिष्य की शिखा के अग्रभाग में बांध दें। शिष्य सिर ऊंचा करके खड़ा हो जाए, उस अवस्था में वह सूत उसके पैर के अंगूठे तक लटकता रहे। सूत को इस तरह लटकाकर उसमें सुषुम्ना नाड़ी की संयोजना करें। फिर मन्त्र-गुरु शान्त मुद्रा के साथ मूलमन्त्र से तीन आहुति का होम करके उस नाड़ी को लेकर उस सूत्र में स्थापित करें। तत्पश्चात् पूर्ववत् फूल फेंककर शिष्य के हृदय में ताड़न करें। उससे चैतन्य को लेकर बारह आहुतियों के पश्चात् शिव को निवेदित कर उस लटकते हुए सूत्र को एक सूत से जोड़ें और 'हं फट्' मंत्र से रक्षा करके उस सूत को शिष्य के शरीर में लपेट दें। फिर यह भावना करें कि शिष्य का शरीर मूलत्रयमय पाश है, भोग और भोग्यत्व ही इसका लक्षण है। यह विषय इन्द्रिय और देह आदि का जनक है।

इसके बाद शान्त्यतीता आदि पांच कलाओं को, जो आकाशादि तत्वरूपिणी हैं, उस सूत्र में उनके नाम ले-लेकर जोड़ना चाहिए। यथा— **व्योमरूपिणीं शान्त्यतीतकलां योजयामि, वायुरूपिणीं शान्तिकलां योजयामि, तेजोरूपिणीं विद्याकलां योजयामि, जलरूपिणीं प्रतिष्ठाकलां योजयामि, पृथ्वीरूपिणीं निवृत्तिकलां योजयामि** इति। इस प्रकार इन कलाओं का योजन करके उनके नाम के अन्त में 'नमः' जोड़कर इनकी पूजा करें। यथा — **शान्त्यतीतकलायै नमः, शान्तिकलायै नमः** इत्यादि अथवा आकाशादि के बीजभूत (हं यं रं वं लं) मन्त्रों द्वारा या पंचाक्षर के पांच अक्षरों में नाद-विन्दु का योग करके बीजरूप हुए उन मंत्राक्षरों से क्रमशः पूर्वोक्त कार्य करके तत्व आदि में मलादि पाशों की व्याप्ति का चिन्तन करें। इसी तरह मलादि पाशों में भी कलाओं की व्याप्ति देखें। फिर आहुति करके उन कलाओं को संदीपित करें। तदनन्तर शिष्य के मस्तक पर पुष्प से ताड़न करके उसके शरीर में लिपटे हुए सूत्र को मूलमन्त्र के उच्चारणपूर्वक शान्त्यतीत पद में अंकित करें।

इस प्रकार क्रमशः शान्त्यतीत से आरम्भ करके निवृत्तिकला पर्यन्त पूर्वोक्त कार्य करके तीन

आहुतियां देकर मण्डल में पुनः शिव का पूजन करें। इसके बाद देवता के दक्षिण भाग में शिष्य को कुशयुक्त आसन पर मण्डल में उत्तराभिमुख बिठाकर गुरु होमावशिष्ट चरु उसे दें। गुरु के दिए हुए उस चरु को शिष्य आदरपूर्वक ग्रहण करके शिव का नाम लेकर उसे खा जाए। फिर दो बार आचमन करके शिवमंत्र का उच्चारण करें। इसके बाद गुरु दूसरे मण्डल में शिष्य के अनुसार उसे पीकर दो बार आचमन करके शिव का स्मरण करें। इसके बाद गुरु शिष्य को मण्डल में पूर्ववत् बिठाकर उसे शास्त्रोक्त लक्षण से युक्त दन्तधावन दें। शिष्य पूर्व या उत्तर की ओर मुंह करके बैठे और मौन हो उस दातुन के कोमल अग्रभाग द्वारा अपने दांतों की शुद्धि करे। तत्पश्चात् उस दातुन को धोकर फेंक दे और कुल्ला करके मुंह-हाथ धोकर शिव का स्मरण करे।

फिर गुरु की आज्ञा पाकर शिष्य हाथ जोड़े हुए शिवमण्डल में प्रवेश करे। उस फेंके हुए दातुन को यदि गुरु ने पूर्व, उत्तर या पश्चिम दिशा में अपने सामने देख लिया तो मंगल है; अन्यथा अन्य दिशाओं में देखने पर अमंगल होता है। यदि निन्दित दिशा की ओर वह दिख जाए तो उसके दोष की शान्ति के लिए गुरु मूलमन्त्र से एक सौ आठ या चौवन आहुतियों का होम करें। तत्पश्चात् शिष्य का स्पर्श करके उसके कान में 'शिव' नाम का जप कर महादेवजी के दक्षिण भाग में उसे बिठाएं। वहां नूतन वस्त्र पर बिछे हुए कुश के अभिमन्त्रित आसन पर पवित्र हुआ शिष्य मन ही मन शिव का ध्यान करते हुए पूर्व की ओर सिरहाना करके रात में सोए। शिखा में सूत बंधे हुए उस शिष्य की शिखा को शिखा से ही बांधकर गुरु नूतन वस्त्र द्वारा हुकार-उच्चारण करके उसे ढक दें। फिर शिष्य के चारों ओर भस्म, तिल और सरसों से तीन रेखा खींचकर 'फट्' मन्त्र का जप करके रेखा के बाह्यभाग में दिक्पालों के लिए बलि दें। शिष्य भी उपवासपूर्वक वहां रात में सोया रहे और सवेरा होने पर उठकर अपने देखे हुए स्वप्न की बातें गुरु को बताए।

षडध्वशोधन हेतु गुरु की आज्ञा लेकर शिष्य स्नान आदि सम्पूर्ण कर्म को समाप्त करके शिव का चिन्तन करता हुआ हाथ जोड़ शिवमण्डल के समीप जाए। इसके बाद पूजा के सिवा पहले दिन का शेष सारा कृत्य नेत्रबन्धन पर्यन्त कर लेने के अनन्तर गुरु उसे मण्डल का दर्शन कराए। आंख में पट्टी बंधे रहने पर शिष्य कुछ फूल बिखेरे। जहां भी फूल गिरें, वहीं उसको उपदेश दें। फिर पूर्ववत् उसे निर्माल्य मण्डल में ले जाकर ईशान देव की पूजा कराएं और शिवाग्नि में हवन करें। यदि शिष्य ने दुःस्वप्न देखा हो तो उसके दोष की शान्ति के लिए सौ या पचास बार मूलमंत्र से अग्नि में आहुति दें। तदनन्तर शिखा में बंधे हुए सूत को पूर्ववत् लटकाकर आधारशक्ति की पूजा से लेकर निवृत्तिकला सम्बन्धी वागीश्वरी पूजन पर्यन्त सभी कार्य होमपूर्वक करें। इसके बाद निवृत्तिकला में व्यापक सती वागीश्वरी को प्रणाम करके मण्डल में महादेवजी के पूजनपूर्वक तीन आहुतियां दें। शिष्य को एक ही समय सम्पूर्ण योनियों में प्राप्त कराने की भावना करें। फिर शिष्य के सूत्रमय शरीर में ताड़न-प्रोक्षण आदि करके उसके आत्मचैतन्य को लेकर द्वादशान्त में निवेदन करें। इसके बाद आचार्य वहां से भी उसे लेकर मूलमंत्र से शास्त्रोक्त मुद्रा द्वारा मानसिक भावना से एक ही साथ सम्पूर्ण योनियों में संयुक्त करें।

देवताओं की आठ जातियां हैं, तिर्यक् योनियों (पशु-पक्षियों) की पांच और मनुष्यों की एक जाति। इस प्रकार कुल चौदह योनियां हैं। उन सब में शिष्य को एक साथ प्रवेश कराने के लिए गुरु मन ही मन भावना द्वारा शिष्य की आत्मा को यथोचित रीति से वागीश्वरी के गर्भ में निविष्ट करें। वागीश्वरी में गर्भ की सिद्धि के लिए महादेवजी का पूजन, प्रणाम और उनके निमित्त हवन

करके यह चिन्तन करें कि यथावत् रूप से वह गर्भ सिद्ध हो गया। सिद्ध हुए गर्भ की उत्पत्ति, कर्मानुवृत्ति, सरलता, भोगप्राप्ति और पराप्रीति का चिन्तन करें। तत्पश्चात् उस जीव के उद्धार तथा जाति, आयु एवं भोग के संस्कार की सिद्धि के लिए तीन आहुति का हवन करके श्रेष्ठ गुरु महादेवजी से प्रार्थना करें। भोक्तृत्व विषयक आसक्ति (अथवा भोक्तृता और विषयासक्ति) रूप मल के निवारणपूर्वक शिष्य के शरीर का उच्छेद कर डालें। कपट या माया से बंधे हुए शिष्य के पाश का अत्यन्त भेदन करके उसके चैतन्य को केवल स्वच्छ मानें। फिर अग्नि में पूर्णाहुति देकर ब्रह्माजी का पूजन करें। ब्रह्माजी के लिए तीन आहुति देकर उन्हें भगवान् शिवजी की आज्ञा सुनाएं—

पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पदम् ।
प्रतिबन्धो विधातव्यः शैवाज्ञैषा गरीयसी ।।

अर्थात् हे पितामह! यह जीव शिव के परमपद को जाने वाला है। तुम्हें इसमें विघ्न नहीं डालना चाहिए। यह भगवान् शिव की गुरुतर आज्ञा है।

ब्रह्माजी को भगवान् शिव का यह आदेश सुनाकर उनकी विधिवत् पूजा और विसर्जन करके महादेवजी की अर्चना करें तथा उनके लिए तीन आहुति दें। तत्पश्चात् निवृत्ति द्वारा शुद्ध हुए शिष्य की आत्मा का पूर्ववत् उद्धार करके अपनी आत्मा एवं सूत्र में स्थापित कर वागीश का पूजन करें। उनके लिए तीन आहुति दें और प्रणाम करके विसर्जन कर दें। इसके बाद निवृत्त पुरुष प्रतिष्ठाकला के साथ सान्निध्य स्थापित करें। उस समय एक बार पूजा करके तीन आहुति दें और शिष्य की आत्मा के प्रतिष्ठाकला में प्रवेश की भावना करें। इसके बाद प्रतिष्ठा का आह्वान करके पूर्वोक्त सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करें। उनकी कांति पूर्ण चन्द्रमण्डल के समान है। इस ध्यान के पश्चात् शेष कार्य पूर्ववत् करें।

तदनन्तर भगवान् विष्णु को परमात्मा शिव की आज्ञा सुनाएं। फिर उनका भी विसर्जन आदि शेष कृत्य पूर्ण करके प्रतिष्ठा का विद्या से संयोग करें। उसमें भी पूर्ववत् सब कार्य करें। साथ ही उसमें व्याप्त वागीश्वरी देवी का चिन्तन-पूजन तथा प्रज्वलित अग्नि में पूर्णहोमान्त सभी कर्म क्रमशः सम्पन्न करके पूर्ववत् नीलरुद्र का आह्वान एवं पूजन आदि करें। अब पूर्वोक्त रीति से उन्हें भी शिव की आज्ञा सुना दें। तदनन्तर उनका भी विसर्जन करके शिष्य के दोष शान्ति के लिए विद्याकला को लेकर उसकी व्याप्ति का अवलोकन करें और उसमें व्यापिका वागीश्वरीदेवी का पूर्ववत् ध्यान करें। उनकी आकृति प्रातःकाल के सूर्य की भांति अरुण रंग की है और वे दशों दिशाओं को उद्भासित कर रही हैं। इस प्रकार ध्यान करके शेष कार्य पूर्ववत् करें।

फिर महेश्वरदेव का आह्वान, पूजन और उनके उद्देश्य से हवन करके उन्हें मन ही मन शिव की पूर्वोक्त आज्ञा सुनाएं। इसके बाद महेश्वर का विसर्जन करके अन्य शान्तिकला को शान्त्यतीता कला तक पहुंचाकर उसकी व्यापकता का अवलोकन करें। उसके स्वरूप में व्यापक वागीश्वरी देवी का चिन्तन करें। उनका स्वरूप आकाशमण्डल के समान व्यापक है। इस प्रकार ध्यान करके पूर्णाहुति-होम पर्यन्त सारा कार्य पूर्ववत् करें। शेष कार्य की पूर्ति करके सदाशिव की विधिवत् पूजा करें और उन्हें भी अमित पराक्रमी शम्भु की आज्ञा सुना दें। फिर वहां भी पूर्ववत् शिष्यइ के मस्तक पर शिव की पूजा करके उन वागीश्वरदेव को प्रणाम करें और उनका विसर्जन कर दें।

तदनन्तर शिव-मंत्र से पूर्ववत् शिष्य के मस्तक का प्रोक्षण करके यह चिन्तन करें कि

शान्त्यतीताकला का शिव-मंत्र में विलय हो गया। छहों अध्वाओं से परे जो शिव की सर्वाध्वव्यापिनी पराशक्ति है, वह करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्विनी है, ऐसा उसके स्वरूप का ध्यान करें। फिर उस शक्ति के आगे शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल हुए शिष्य को ले आकर बिठा दें। आचार्य कैंची को धोकर शिव-शास्त्र में बतायी हुई पद्धति के अनुसार सूत्रसहित उसकी शिखा का छेदन करें। उस शिखा को पहले गोबर में रखकर फिर **ॐ नमः शिवाय वौषट्** का उच्चारण करके उसका शिवाग्नि में हवन कर दें। फिर कैंची धोकर रख दें और शिष्य की चेतना को उसके शरीर में लौटा दें। इसके बाद जब शिष्य स्नान, आचमन और स्वस्तिवाचन कर ले, तब उसे मण्डल के निकट ले जाएं और शिव को दण्डवत् प्रणाम करके क्रियालोपजनित दोष की शुद्धि के लिए यथोचित रीति से पूजा करें।

तदनन्तर वाचक मन्त्र का धीरे-धीरे उच्चारण करके अग्नि में तीन आहुतियां दें। फिर मन्त्र वैकल्पजनित दोष की शुद्धि के लिए देवेश्वर शिव का पूजन करके मन्त्र के मानसिक उच्चारण के साथ अग्नि में तीन आहुतियां दें। वहां मण्डल में विराजमान अम्बा पार्वती सहित शम्भु की समाराधना करके तीन आहुतियों का हवन करने के पश्चात् गुरु हाथ जोड़ इस प्रकार प्रार्थना करें—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन शुद्धिरस्य षडध्वनः ।
कृता तस्मात्परं धाम गमयैनं तवाव्ययम् ।।

हे भगवान्! आपकी कृपा से इस शिष्य की षडध्वशुद्धि की गयी; अतः अब आप इसे अपने अविनाशी परमधाम में पहुंचाइए। इस तरह भगवान् से प्रार्थना कर नाड़ी संधानपूर्वक पूर्ववत् पूर्णाहुति-होमपर्यन्त कर्म का सम्पादन करके भूतशुद्धि करें। स्थिर-तत्व (पृथ्वी), अस्थिर-तत्व (वायु), शीत-तत्व (जल), उष्ण-तत्व (अग्नि) तथा व्यापकता एवं एकतारूप आकाश-तत्व का भूतशुद्धि कर्म में चिन्तन करें। यह चिन्तन उन भूतों की शुद्धि के उद्देश्य से ही करना चाहिए। भूतों की ग्रन्थियों का छेदन करके उनके अधिपतियों या अधिष्ठाता देवताओं सहित उनके त्यागपूर्वक स्थितियोग के द्वारा उन्हें परम शिव में नियोजित करें।

इस प्रकार शिष्य के शरीर का शोधन करके भावना द्वारा उसे दग्ध करें। फिर उसकी राख को भावना द्वारा ही अमृतकणों से आप्लावित करें। तदनन्तर उसमें आत्मा की स्थापना करके उसके विशुद्ध अध्वमय शरीर का निर्माण करें। उसमें पहले सम्पूर्ण अध्वों में व्यापक शुद्ध शान्त्यतीता कला का शिष्य के मस्तक पर न्यास करें। फिर शान्तिकला का मुख में, विद्याकला का गले से लेकर नाभि पर्यन्त भाग में तथा प्रतिष्ठाकला का उससे नीचे के अंगों में चिन्तन करें। तदनन्तर अपने बीजों सहित सूत्रमंत्र का न्यास करके सम्पूर्ण अंगों सहित शिष्य को शिष्यस्वरूप समझें। फिर उसके हृदयकमल में महादेवजी का आह्वान करके पूजन करें। गुरु को चाहिए कि शिष्य में भगवान् शिव के तेज से तेजस्वी हुए उस शिष्य के अणिमा आदि गुणों का भी चिन्तन करें। फिर भगवान् शिव से 'आप प्रसन्न हों' ऐसा कहकर अग्नि में तीन आहुतियां दें। इसी प्रकार पुनः शिष्य के लिए निम्नांकित गुणों का ही उपपादन करें। सर्वज्ञता, तृप्ति आदि अन्तरहित बोध, अलुप्तशक्तिमत्ता, स्वतन्त्रता और अनन्त शक्ति—इन गुणों की उसमें भावना करें।

इसके बाद महादेवजी से आज्ञा लेकर उन देवेश्वर का मन ही मन चिन्तन करते हुए सद्योजात आदि कलशों द्वारा क्रमशः शिष्य का अभिषेक करें। तदनन्तर शिष्य को अपने पास बिठाकर

पूर्ववत् शिव की अर्चना करके उनकी आज्ञा लें। उस शिष्य को शैवी विद्या का उपदेश करें। उस शैवी विद्या के आदि में ओंकार हो। वह उस ओंकार से ही सम्पुटित हो और उसके अन्त में 'नमः' लगा हुआ हो। वह विद्या शिव और शक्ति दोनों से संयुक्त हो। यथा **—ॐ ॐ नमः शिवाय ॐ नमः** । इसी तरह शक्ति विद्या का भी उपदेश करें। यथा **—ॐ ॐ नमः शिवायै ॐ नमः** । इन विद्याओं के साथ ऋषि, छन्द, देवता, शिवा और शिव की शिवरूपता, आवरण-पूजा तथा शिव सम्बन्धी आसनों का भी उपदेश दें। तत्पश्चात् देवेश्वर शिव का पुनः पूजन करके कहें—'हे भगवन्! मैंने जो कुछ किया है, वह सब आप सुकृतरूप कर दें।' इस तरह भगवान् शिव से निवेदन करना चाहिए। तदनन्तर शिष्य सहित गुरु पृथ्वी पर दण्ड की भांति गिरकर महादेवजी को प्रणाम करें। प्रणाम के अनन्तर उस मण्डल से और अग्नि से भी उनका विसर्जन कर दें। इसके बाद समस्त पूजनीय सदस्यों का क्रमशः पूजन करना चाहिए। सदस्यों और ऋत्विजों की अपने वैभव के अनुसार सेवा करनी चाहिए। यदि साधक अपना कल्याण चाहें तो धन खर्च करने में कंजूसी न करें।

साधक संस्कार और मन्त्र-माहात्म्य

साधक संस्कार हेतु शुभ मुहूर्त में विधिपूर्वक पूर्ववत् मण्डल में कलश पर स्थापित महादेवजी की पूजा करने के पश्चात् हवन करें। फिर नंगे सिर शिष्य को उस मण्डल के पास भूमि पर बिठाएं। पूर्णाहुति होम पर्यन्त सब कार्य पूर्ववत् करके मूलमंत्र से सौ आहुतियां दें। श्रेष्ठ गुरु कलशों से मूलमंत्र के उच्चारणपूर्ण तर्पण करके संदीपन कर्म करें। फिर क्रमशः पूर्वोक्त कर्मों का सम्पादन करके अभिषेक करें। तत्पश्चात् गुरु शिष्य को उत्तम मंत्र दें। वहां विद्योपदेशान्त सब कार्य विस्तारपूर्वक सम्पादित करके पुष्पयुक्त जल से शिष्य के हाथ पर शैवी विद्या को समर्पित करें और इस प्रकार कहें—

तवैहिकामुष्मिकयोः सर्वसिद्धिफलप्रदः ।
भवत्वेष महामंत्रः प्रसादात्परमेष्ठिनः ।।

यह महामंत्र परमेश्वर शिव की कृपा से तुम्हारे लिए इहलौकिक तथा पारलौकिक सम्पूर्ण सिद्धियों का फल देने वाला हो ऐसा कहकर महादेवजी की पूजा करके उनकी आज्ञा लें। गुरु साधक को साधन और शिवयोग का उपदेश दें। गुरु के उस उपदेश को सुनकर मंत्र साधक शिष्य उनके सामने ही विनियोग करके मन्त्र साधन आरम्भ करें। मूलमंत्र के साधन को पुरश्चरण कहते हैं। क्योंकि विनियोग नाम कर्म सबसे पहले आचरण में लाने योग्य है। यही पुरश्चरण शब्द की व्युत्पत्ति है। मुमुक्ष के लिए मन्त्र साधन अत्यन्त महत्वपूर्ण है; क्योंकि किया हुआ मंत्र साधन इहलोक और परलोक में साधक के लिए कल्याणदायक होता है।

शुभ दिन और शुभ देश में निर्दोष समय में दांत एवं नख साफ करके अच्छी तरह स्नान करें। फिर पूर्वाह्नकालिक कृत्य पूर्ण करके यथाप्राप्य गन्ध, पुष्पमाला तथा आभूषणों से अलंकृत हो, सिर पर पगड़ी रख, दुपट्टा ओढ़ पूर्णतः श्वेत वस्त्र धारण कर देवालय में, घर में या किसी पवित्र तथा मनोहर देश में पहले से अभ्यास में लाए सुखासन में बैठकर शिवशास्त्रोक्त पद्धति के अनुसार अपने शरीर को शिवरूप बनाएं। फिर देवदेवेश्वर नकुलीश्वर शिव का पूजन करके उन्हें खीर का नैवेद्य अर्पित करें। क्रमशः उनकी पूजा पूरी करके उन प्रभु को प्रणाम करें और उनके

मुख से आज्ञा पाकर एक करोड़ शिवमन्त्र का जप करें। उसके बाद खीर एवं क्षार-नमक रहित अन्य पदार्थ का दिन-रात में केवल एक बार भोजन करें। अहिंसा, क्षमा, शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रियसंयम) का पालन करते रहें। खीर न मिले तो फल, कन्दमूल आदि का भोजन करें। भगवान् शिव ने निम्नांकित भोज्य पदार्थों का विधान किया है, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं—

पहले तो चरु भक्षण करने योग्य है। उसके बाद सत्तू के कण, जौ के आटे का हलुआ, साग, दूध, दही, घी, मूल, फल और जल—ये आहार के लिए विहित हैं। भक्ष्य-भोज्य रहित पदार्थों को मूलमंत्र से अभिमंत्रित करके प्रतिदिन मौनभाव से भोजन करें। इस साधन में विशेष रूप से ऐसा करने का विधान है। व्रतियों को चाहिए कि एक सौ आठ मंत्र से अभिमंत्रित किए हुए पवित्र जल से स्नान करें अथवा नदी-नद के जल को यथाशक्ति मंत्र जप के द्वारा अभिमंत्रित करके अपने शरीर का प्रोक्षण कर लें। प्रतिदिन तर्पण करें और शिवाग्नि में आहुति दें। हवनीय पदार्थ सात, पांच या तीन द्रव्यों के मिश्रण से तैयार करें अथवा केवल घृत से ही आहुति दें।

जो शिवभक्त साधक इस प्रकार भक्ति भाव से शिव की साधना या आराधना करते हैं, उनके लिए इहलोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता अथवा प्रतिदिन बिना भोजन किए ही एकाग्रचित्त हो एक सहस्र मन्त्र का जप करें। मन्त्र साधना के बिना भी जो ऐसा करते हैं, उनके लिए न तो कुछ दुर्लभ है और न कहीं उनका अमंगल ही होता है। वे इस लोक में विद्या, लक्ष्मी तथा सुख पाकर अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। साधन, विनियोग तथा नित्य नैमित्तिक कर्म में क्रमशः जल से, मंत्र से और भस्म से भी स्नान करके पवित्र शिखा बांधकर यज्ञोपवीत धारण कर कुश की पवित्री हाथ में लें। ललाट में त्रिपुण्ड लगाकर रुद्राक्ष की माला लिए पंचाक्षर मंत्र का जप करना चाहिए।

आचार्य पद पर अभिषेक संस्कार

आचार्य पद पर ऐसे योग्य साधक शिष्य का अभिषेक किया जा सकता है जिसने पाशुपत-व्रत का अनुष्ठान पूरा कर लिया हो। यदि वह शिष्य योग्य हो तो गुरु उसका आचार्य पद पर अभिषेक करें। योग्यता न होने पर न करें। इस अभिषेक के लिए पूर्ववत् मण्डल बनाकर परमेश्वर शिव की पूजा करें। फिर पूर्ववत् पांच कलशों की स्थापना करें। इनमें चार तो चारों दिशाओं में हों और पांचवां मध्य में हो। पूर्व वाले कलश पर निवृत्तिकला का, पश्चिम वाले कलश पर प्रतिष्ठा-कला का, दक्षिण कलश पर विद्याकला का, उत्तर कलश पर शान्तिकला का और मध्यवर्ती कलश पर शान्त्यतीता कला का न्यास करें। फिर उनमें रक्षा आदि का विधान करके धेनुमुद्रा बांधकर कलशों को अभिमंत्रित करके पूर्ववत् पूर्णाहुति पर्यन्त होम करें। अब नंगे सिर शिष्य को मण्डल में ले आकर गुरु मन्त्रों का तर्पण आदि करें और पूर्णाहुति पर्यन्त हवन एवं पूजन करके पूर्ववत् देवेश्वर की आज्ञा लें। फिर शिष्य को अभिषेक के लिए ऊंचे आसन पर बिठाएं।

पहले सकलीकरण की क्रिया करके पंचकलारूपी शिष्य को बांधकर शिव को सौंप दें। तदनन्तर निवृत्तिकला आदि से युक्त कलशों को क्रमशः उठाकर शिष्य का शिवमंत्र से अभिषेक करें। अन्त में मध्यवर्ती कलश के जल से अभिषेक करना चाहिए। इसके बाद शिव भाव को प्राप्त हुए आचार्य शिष्य के मस्तक पर शिवहस्त (गुरु पहले अपने दाएं हाथ पर सुगन्ध द्रव्य द्वारा मण्डल का निर्माण करें, तत्पश्चात् वह उस पर विधिपूर्वक भगवान् शिव की पूजा करें। इस प्रकार

वह 'शिवहस्त' हो जाता है। 'मैं स्वयं परम शिव हूं' यह निश्चय करके श्रीगुरुदेव असंदिग्ध चित्त से शिष्य के सिर का स्पर्श करते हैं। उस 'शिवहस्त' के स्पर्शमात्र से शिष्य का शिवत्व अभिव्यक्त हो जाता है) रखें और उसे शिवाचार्य की संज्ञा दें। तदनन्तर उसको वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके शिवमण्डल में महादेवजी की आराधना करके एक सौ आठ आहुति एवं पूर्णाहुति दें।

फिर देवेश्वर की पूजा एवं भूतल पर साष्टांग प्रणाम करके गुरु मस्तक पर हाथ जोड़ भगवान् शिव से यह निवेदन करें—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन देशिकोऽयं मया कृतः ।
अनुगृह्य त्वया देव दिव्याज्ञास्मै प्रदीयताम् ।

अर्थात् हे भगवन्! आपकी कृपा से मैंने इस योग्य शिष्य का अनुग्रह किया है। इसे दिव्य आज्ञा प्रदान करें। इस प्रकार कहकर गुरु शिष्य के साथ पुनः शिव को प्रणाम करें और दिव्य शिवशास्त्र का शिव की ही भांति पूजन करें। इसके बाद शिव की आज्ञा लेकर आचार्य अपने उस शिष्य को अपने दोनों हाथों से शिव सम्बन्धी ज्ञान की पुस्तक दें। वह उस शिवागम विद्या को मस्तक पर रखकर फिर उसे विद्यासन पर रखे और यथोचित रीति से प्रणाम कर उसकी पूजा करे। तदनन्तर गुरु उसे राजोचित्त चिह्न प्रदान करें; क्योंकि आचार्य पदवी को प्राप्त हुआ पुरुष राज्य पाने के भी योग्य है। तत्पश्चात् गुरु उसे पूर्वाचार्यों द्वारा आचारित शिवशास्त्रोक्त आचार का अनुशासन करें, जिससे सब लोकों में सम्मान होता है।

'आचार्य' पदवी को प्राप्त हुआ पुरुष शिवशास्त्रोक्त लक्षणों के अनुसार यत्नपूर्वक शिष्यों की परीक्षा करके उनका संस्कार करने के अनन्तर उन्हें शिवज्ञान का उपदेश दे। इस प्रकार वह बिना किसी आयास के शौच, क्षमा, दया, अस्पृहा (कामना-त्याग) तथा अनसुया (ईर्ष्या-त्याग) आदि गुणों का यत्नपूर्वक अपने भीतर संग्रह करे। इस तरह उस शिष्य को आदेश देकर मण्डल से शिव का, शिव कलशों का तथा अग्नि आदि का विसर्जन करके वह सदस्यों का भी पूजन (दक्षिणा आदि से सत्कार) करे अथवा अपने गणों सहित गुरु एक साथ ही सब संस्कार करे। जहां दो या तीन संस्कारों का प्रयोग करना हो, वहां के लिए विधि का उपदेश किया जाता है। वहां आदि में ही अध्वशुद्धि प्रकरण में कहे अनुसार कलशों की स्थापना करें। अभिषेक के सिवा समयाचार दीक्षा के सब कर्म करके शिव का पूजन और अध्वशोधन करें। अध्वशुद्धि हो जाने पर फिर महादेवजी की पूजा करें। इसके बाद हवन और मंत्र तर्पण करके दीपन कर्म करें तथा महेश्वर की आज्ञा लेकर शिष्य के हाथ में मन्त्र समर्पणपूर्वक शेष कार्य पूर्ण करें अथवा सम्पूर्ण मंत्र संस्कार का क्रमशः अनुचिन्तन करके गुरु अभिषेक पर्यन्त अध्वशुद्धि का कार्य सम्पन्न करें। वहां शान्त्यतीता आदि कलाओं के लिए जिस विधि का अनुष्ठान किया गया है, वह सारा विधान तीन तत्वों की शुद्धि के लिए भी है। शिव-तत्व, विद्या-तत्व और आत्म-तत्व—ये तीन तत्व कहे गए हैं। शक्ति में पहले शिव का, फिर विद्या का और उसके बाद उसकी आत्मा का आविर्भाव हुआ है। शिव 'शान्त्यतीताध्वा' व्याप्त है, उससे 'शान्तिकलाध्वा', उससे 'विद्याकलाध्वा', विद्या से परिशिष्ट 'प्रतिष्ठाकलाध्वा' और उससे 'निवृत्तिकलाध्वा 'व्याप्त है। शिवशास्त्र के पारंगत मनीषी पुरुष मंत्रमूलक शाम्भव (शैव) संस्कार को दुर्लभ मानकर शाक्त संस्कार का प्रतिपादन करते हैं। यही आचार्य पद पर शिष्य को अभिषेकित करने की सर्वोत्तम पद्धति है।

अन्तर्याग अथवा मानसिक पूजा विधान

अब मैं मानसिक पूजा विधान का संक्षेप में वर्णन करता हूं। इसे शिवशास्त्र में शिव ने शिवा के प्रति कहा है। मनुष्य अग्निहोत्र पर्यन्त अन्तर्याग का अनुष्ठान करके पीछे बहिर्याग (बाह्यपूजन) करें। उसकी विधि इस प्रकार है—अन्तर्याग में पहले पूजाद्रव्यों को मन से कल्पित और शुद्ध करके गणेशजी का विधिपूर्वक चिन्तन एवं पूजन करें। तत्पश्चात् दक्षिण और उत्तर भाग में क्रमशः नन्दीश्वर और सुयशा की आराधना करके विद्वान पुरुष मन में उत्तम आसन की कल्पना करें।

सिंहासन, योगासन अथवा तीनों तत्वों से युक्त निर्मल पद्मासन की भावना करें। उसके ऊपर सर्वमनोहर साम्ब-शिव का ध्यान करें। वे शिव समस्त शुभ लक्षणों से युक्त और सम्पूर्ण अवयवों से शोभायमान हैं। वे सबसे बढ़कर हैं और समस्त आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। उनके हाथ-पैर लाल हैं। उनका मुस्कराता हुआ मुख कुन्द और चन्द्रमा के समान शोभा पाता है। उनकी अंगकांति शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल है। तीन नेत्र प्रफुल्ल कमल की भांति सुन्दर हैं। चार भुजाएं, उत्तम अंग और मनोहर चन्द्रकला का मुकुट ग्रहण किए भगवान् हर अपने दो हाथों में वरद तथा अभय की मुद्रा धारण करते हैं। दो हाथों में मृगमुद्रा एवं टंक लिए हुए हैं। उनकी कलाई में सर्पों की माला कड़े का काम देती है। गले के भीतर मनोहर नील चिह्न शोभित होता है। उनकी कहीं कोई उपमा नहीं है। वे अपने अनुगामी सेवकों तथा आवश्यक उपकरणों के साथ विराजमान हैं।

इस तरह ध्यान करके उनके वाम भाग में महेश्वरी शिवा का चिन्तन करें। शिवा की अंगकांति प्रफुल्ल कमलदल के समान परम सुन्दर है। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित है। मस्तक पर काले-काले घुंघराले केश शोभा पाते हैं। वे नील उत्पलदल के समान कांतिमती हैं। मस्तक पर अर्धचंद्र का मुकुट धारण करती हैं। उनके पीन पयोधर अत्यन्त गोल, घनीभूत, ऊंचे और स्निग्ध हैं। शरीर का मध्य भाग कृश है। नितम्ब भाग स्थूल है। वे महीन पीले वस्त्र धारण किए हुए हैं। सम्पूर्ण आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। ललाट पर लगे हुए सुन्दर तिलक से उनका सौन्दर्य और खिल उठा है। विचित्र फूलों की माला से गुम्फित केशपाश उनकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी आकृति सब ओर से सुन्दर और सुडौल है। मुख लज्जा से कुछ-कुछ झुका है। वे दाएं हाथ में शोभाशाली सुवर्णमय कमल धारण किए हुए हैं। दूसरे हाथ को दण्ड की भांति सिंहासन पर रखकर उसका सहारा लेकर वे उस महान आसन पर बैठी हुई हैं। शिवादेवी समस्त पाशों का छेदन करने वाली साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूपिणी हैं।

इस प्रकार महादेव और महादेवी का ध्यान करके शुभ एवं श्रेष्ठ आसन पर सम्पूर्ण उपचारों से युक्त भावमय पुष्पों द्वारा उनका पूजन करें अथवा उपर्युक्त वर्णन के अनुसार प्रभु शिव की एक मूर्ति बनवा लें, उसका नाम शिव या सदाशिव हो। दूसरी मूर्ति शिवा की होनी चाहिए; उसका नाम माहेश्वरी षड्विंशका अथवा 'श्रीकण' हो। फिर अपने ही शरीर की भांति मूर्ति में मंत्रन्यास आदि करके उस मूर्ति में सत्-असत् से परे मूर्तिमान परम शिव का ध्यान करें। इसके बाद बाह्य पूजन के ही क्रम से मन से पूजा सम्पादित करें। तत्पश्चात् समिधा और घी आदि से नाभि में होम की भावना करें। तदनन्तर भ्रूमध्य में शुद्ध दीपशिखा के समान आकार वाले ज्योतिर्मय शिव का ध्यान करें। इस प्रकार अपने अंग में अथवा स्वतन्त्र विग्रह में शुभ ध्यान-योग के द्वारा अग्नि में

होम पर्यन्त सारा पूजन करना चाहिए। यह विधि सर्वत्र ही समान है। इस तरह ध्यानमय आराधना का सारा क्रम समाप्त करके महादेवजी का शिवलिंग में, वेदी पर अथवा अग्नि में पूजन करें।

शिव पूजन विधि

भगवान् शिव की पूजा हेतु सर्वप्रथम विशुद्धि के लिए मूलमंत्र से गन्ध, चन्दनमिश्रित जल के द्वारा पूजा-स्थान का प्रोक्षण करना चाहिए। इसके बाद वहां फूल बिखेरें। अस्त्र-मंत्र (फट्) का उच्चारण करके विघ्नों को भगाएं। फिर कवच-मंत्र (हुम) से पूजा-स्थान को सब ओर से अवगुण्ठित करें। अस्त्र-मंत्र का सम्पूर्ण दिशाओं में न्यास करके पूजाभूमि की कल्पना करें। वहां सब ओर कुश बिछा दें और प्रोक्षण आदि के द्वारा उस भूमि का प्रक्षालन करें। पूजा-सम्बन्धी समस्त पात्रों का शोधन करके द्रव्यशुद्धि करें। प्रोक्षणीपात्र, अर्घ्यपात्र, पाद्यपात्र और आचमनीयपात्र—इन चारों का प्रक्षालन, प्रोक्षण एवं वीक्षण करके इनमें शुभ जल डालें। फिर जितने भी मिल सकें, उन सभी पवित्र द्रव्यों को उनमें डालें। पंचरत्न, चांदी, सोना, गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि तथा फल, पल्लव और कुश—ये सब अनेक प्रकार के पुण्य द्रव्य हैं।

स्नान और पीने के जल में विशेष रूप से सुगन्ध आदि एवं शीतल मनोज्ञ पुष्प आदि छोड़ें। पाद्य में खश और चन्दन छोड़ना चाहिए। आचमनीयपात्र में विशेषतः जायफल, कंकोल, कपूर, सहिजन और तमाल का चूर्ण करके डालना चाहिए। इलायची सभी पात्रों में डालने की वस्तु है। कपूर, चन्दन, कुशाग्रभाग, अक्षत, जौ, धान, तिल, घी, सरसों, फूल और भस्म—इन सबको अर्घ्यपात्र में छोड़ना चाहिए। कुश, फूल, जौ, धान, सहिजन, तमाल और भस्म—इन सबका प्रोक्षणीपात्र में प्रक्षेपण करना चाहिए। सर्वत्र मंत्र-न्यास करके कवच-मंत्र से प्रत्येक पात्र को बाहर से आवेष्टित करें। तत्पश्चात् अस्त्रमंत्र से उसकी रक्षा करके धेनुमुद्रा दिखाएं। पूजा के सभी द्रव्यों का प्रोक्षणीपात्र के जल से मूलमंत्र द्वारा प्रोक्षण करके विधिवत् शोधन करें। श्रेष्ठ साधकों को चाहिए कि अधिक पात्रों के न मिलने पर सब कर्मों में एकमात्र प्रोक्षणीपात्र को ही सम्पादित करके रखें और उसी के जल से सामान्यतः अर्घ्य आदि दें।

तत्पश्चात् मण्डप के दक्षिण द्वार भाग में भक्ष्य-भोज्य आदि के क्रम से विधिपूर्वक विनायक देव की पूजा करके अन्तःपुर के स्वामी साक्षात् नन्दी की भलीभांति पूजा करें। उनकी अंगकान्ति सुवर्णमय पर्वत के समान है। समस्त आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। मस्तक पर बालचन्द का मुकुट सुशोभित होता है। उनकी मूर्ति सौम्य है। वे तीन नेत्र और चार भुजाओं से युक्त हैं। उनके एक हाथ में चमचमाता हुआ त्रिशूल, दूसरे में मृगी, तीसरे में टंक और चौथे में तीखा बेंत है। उनके मुख की कान्ति चन्द्रमण्डल के समान उज्ज्वल है। मुख वानर के सदृश है। द्वार के उत्तर पार्श्व में उनकी पत्नी सुयशा हैं, जो मरुद्गणों की कन्या हैं। वे उत्तम व्रत का पालन करने वाली हैं और पार्वतीजी के चरणों का शृंगार करने में लगी रहती हैं। उनका पूजन करके परमेश्वर शिव के भवन के भीतर प्रवेश करें और उन द्रव्यों से शिवलिंग का पूजन करके निर्माल्य को वहां से हटा लें। तदनन्तर फूल धोकर शिवलिंग के मस्तक पर उसकी शुद्धि के लिए रखें। फिर हाथ में फूल लेकर यथाशक्ति मंत्र का जप करें। इससे मंत्र की शुद्धि होती है।

ईशान कोण में चण्डी की आराधना करके उन्हें पूर्वोक्त निर्माल्य अर्पित करें। तत्पश्चात् इष्टदेव के लिए आसन की कल्पना करें। क्रमशः आधार आदि का ध्यान करें—कल्याणमयी आधारशक्ति

भूतल पर विराजमान हैं और उनकी अंगकान्ति श्याम है। इस प्रकार उनके स्वरूप का चिन्तन करें। उनके ऊपर फन उठाए सर्पाकार अनन्त बैठे हैं, जिनकी अंगकान्ति उज्ज्वल है। वे पांच फनों से युक्त हैं और आकाश को चाटते हुए से जान पड़ते हैं। अनन्त के ऊपर भद्रासन है, जिसके चारों पायों में सिंह की आकृति बनी हुई है। वे चारों पाये क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य रूप हैं। धर्म नाम वाला पाया आग्नेय कोण में है और उसका रंग सफेद है। ज्ञान नामक पाया नैर्ऋत्य कोण में है, उसका रंग लाल है। वैराग्य वायव्य कोण में है और उसका रंग पीला है। ऐश्वर्य ईशान कोण में श्याम वर्ण का है। अधर्म आदि उस आसन के पूर्वादि भागों में क्रमशः स्थित हैं अर्थात् अधर्म पूर्व में, अज्ञान दक्षिण में, अवैराग्य पश्चिम में और अनैश्वर्य उत्तर में है। इनके अंग राजावर्त मणि के समान हैं—ऐसी भावना करनी चाहिए।

इस भद्रासन को ऊपर से आच्छादित करने वाला श्वेत निर्मल पद्ममय आसन है। अणिमादि आठ ऐश्वर्य-गुण ही उस कमल के आठ दल हैं। वामदेव आदि रुद्र अपनी वामा आदि शक्तियों के साथ उस कमल के केसर हैं। वे मनोन्मनी आदि अन्तःशक्तियां ही बीज हैं, अपर वैराग्य कर्णिका है, शिवस्वरूप ज्ञान नाल है, शिवपधर्म कन्द है, कर्णिका के ऊपर तीन मण्डल (चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल और वह्निमण्डल) हैं। उन मण्डलों के ऊपर आत्मतत्व, विद्यातत्व तथा शिवतत्व रूप त्रिविध आसन हैं। इन सब आसनों के ऊपर विचित्र बिछौनों से आच्छादित एक सुखद दिव्य आसन की कल्पना करें, जो शुद्ध विद्या से अत्यन्त प्रकाशमान हो। आसन के अनन्तर आह्वान, स्थापन, संनिरोधन, निरीक्षण एवं नमस्कार करें। इन सबकी पृथक-पृथक मुद्राएं बांधकर दिखाएं। (दोनों हाथों की अंजलि बनाकर अनामिका अंगुली के मूलपर्व पर अंगूठे को लगा देना 'आह्वान' मुद्रा है। इसी आह्वान मुद्रा को अधोमुख कर दिया जाए तो वह 'स्थापन' मुद्रा हो जाती है। यदि मुट्ठी के भीतर अंगूठे को डाल दिया जाए और दोनों हाथों की मुट्ठी संयुक्त कर दी जाए तो वह 'सन्निरोधन' मुद्रा कही गयी है। दोनों मुट्ठियों को उत्तान कर देने पर 'सम्मुखीकरण' नामक मुद्रा होती है। इसी को यहां 'निरीक्षण' नाम से कहा गया है। शरीर को दण्ड की भांति देवता के सामने डाल देना, मुख को नीचे की ओर रखना और दोनों हाथों को देवता की ओर फैला देना—साष्टांग प्रणाम की इस क्रिया को ही यहां 'नमस्कार' कहा गया है)।

इसके बाद पाद्य, आचमन, अर्घ्य (स्नानीय वस्त्र, यज्ञोपवीत), गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल देकर शिवा-शिव को शयन कराएं अथवा उपर्युक्त रूप से आसन और मूर्ति की कल्पना करके मूलमंत्र एवं अन्य ईशानादि ब्रह्म मंत्रों द्वारा सकलीकरण की क्रिया करके देवी पार्वती सहित परम कारण शिव का आह्वान करें। भगवान् शिव की अंगकान्ति शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल है। वह निश्चल, अविनाशी, समस्त लोकों के परम कारण, सर्वलोकस्वरूप, सबके बाहर-भीतर विद्यमान, सर्वव्यापी, अणु से अणु और महान से भी महान हैं। भक्तों को अनायास ही दर्शन देते हैं। सबके ईश्वर एवं अव्यय हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु तथा रुद्र आदि देवताओं के लिए भी अगोचर हैं। सम्पूर्ण वेदों के सारतत्व हैं। विद्वानों के भी दृष्टिपथ में नहीं आते हैं। आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं। भवरोग से ग्रस्त प्राणियों के लिए औषधरूप हैं। शिवतत्व के रूप में विख्यात हैं और सबका कल्याण करने के लिए जगत में सुस्थिर शिवलिंग के रूप में विद्यमान हैं।

ऐसी भावना करके भक्तिभाव से गन्ध, धूप, दीप, पुष्प और नैवेद्य—इन पांच उपचारों द्वारा उत्तम शिवलिंग का पूजन करें। परमात्मा महेश्वर शिव की लिंगमयी मूर्ति के स्नानकाल में जय-

जयकार आदि शब्द और मंगलपाठ करें। पंचगव्य, घी, दूध, दही, मधु और शर्करा के साथ फल-मूल के सारतत्व से, तिल, सरसों, सत्तू के उबटन से, जौ आदि के उत्तम बीजों से, उड़द आदि के चूर्णों से तथा आटा आदि से आलेपन करके गरम जल से शिवलिंग को नहलाएं। लेप और गन्ध के निवारण के लिए बिल्वपत्र आदि से रगड़ें। फिर जल से नहलाकर चक्रवर्ती सम्राट के लिए उपयोगी उपचारों से (अर्थात् सुगन्धित तेल-फुलेल आदि के द्वारा) सेवा करें। सुगन्धयुक्त आंवला और हल्दी भी क्रमशः अर्पित करें। इन सब वस्तुओं से शिवलिंग अथवा शिवमूर्ति का भलीभांति शोधन करके चन्दन-मिश्रित जल, कुश-पुष्पयुक्त जल, सुवर्ण एवं रत्नयुक्त जल तथा मन्त्रसिद्ध जल से क्रमशः स्नान कराएं। इन सब द्रव्यों का मिलना सम्भव न होने पर यथासम्भव संगृहीत वस्तुओं से युक्त जल द्वारा अथवा केवल मन्त्राभिमन्त्रित जल द्वारा श्रद्धापूर्वक शिव को स्नान कराएं। कलश, शंख और वर्धनी से तथा कुश एवं पुष्प से युक्त हाथ से जल द्वारा मन्त्रोच्चारणपूर्वक इष्टदेवता को नहलाना चाहिए।

पवमानसूक्त, रुद्रसूक्त, नीलरुद्रसूक्त, त्वरितमन्त्र, लिंगसूक्त, आदिसूक्त, अथर्वशीर्ष, ऋग्वेद, सामवेद तथा शिवसम्बन्धी ईशानादि पंच-ब्रह्ममन्त्र, शिवमन्त्र तथा प्रणव से देवदेवेश्वर शिव को स्नान कराएं। जैसे महादेवजी को स्नान कराएं, उसी तरह महादेवी पार्वती को भी स्नान आदि कराना चाहिए। उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि वो दोनों सर्वथा समान हैं। पहले महादेवजी के उद्देश्य से स्नान आदि क्रिया करके फिर देवी के लिए उन्हीं देवाधिदेव के आदेश से सब कुछ करें। अर्धनारीश्वर की पूजा करनी हो तो उसमें पूर्वापर का विचार नहीं है। अतः उसमें महादेव और महादेवी की साथ-साथ पूजा होती रहती है। शिवलिंग में या अन्यत्र मूर्ति आदि में अर्द्धनारीश्वर की भावना से सभी उपचारों का शिव और शिवा के लिए एक साथ ही उपयोग होता है। पवित्र सुगन्धित जल से शिवलिंग का अभिषेक करके उसे वस्त्र से पोंछे। फिर नूतन वस्त्र एवं यज्ञोपवीत चढ़ाएं।

इसके बाद पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, आभूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, पीने योग्य जल, मुखशुद्धि, पुनराचमन, मुखवास तथा सम्पूर्ण रत्नों से जड़ित सुन्दर मुकुट, आभूषण, नाना प्रकार की पवित्र पुष्पमालाएं, छत्र, चंवर, व्यंजन, ताड़ का पंखा और दर्पण देकर सब प्रकार की मंगलमयी वाद्यध्वनियों के साथ इष्टदेव की नीराजना करें (आरती उतारें)। उस समय गीत और नृत्य आदि के साथ जय-जयकार भी होनी चाहिए। सोना, चांदी, तांबा अथवा मिट्टी के सुन्दर पात्र में कमल आदि के शोभायमान फूल रखें। कमल के बीज तथा दही, अक्षत आदि भी डाल दें। त्रिशूल, शंख, दो कमल, नन्दावर्त नामक शंखविशेष, सूखे गोबर की आग, श्रीवत्स, स्वस्तिक, दर्पण, वज्र तथा अग्नि आदि चिह्नित पात्र में आठ दीपक रखें। वे आठों आठ दिशाओं में रहें और एक नौवां दीपक मध्य भाग में रहे। इन नौवों दीपकों में वामा आदि नवशक्तियों का पूजन करें। फिर कवचमंत्र से आच्छादन और अस्त्रमन्त्र द्वारा सब ओर से संरक्षण करके धेनुमुद्रा दिखाकर दोनों हाथों से पात्र को ऊपर उठाएं अथवा पात्र में क्रमशः पांच दीप रखें। चार को चारों कोनों में और एक को बीच में स्थापित करें। तत्पश्चात् उस पात्र को उठाकर शिवलिंग या शिवमूर्ति आदि के ऊपर क्रम से घुमाएं और मूलमंत्र का उच्चारण करते रहें।

तदनन्तर मस्तक पर अर्घ्य और सुगन्धित भस्म चढ़ाएं। फिर पुष्पांजलि देकर उपहार निवेदन करें। इसके बाद जल देकर आचमन कराएं। फिर सुगन्धित द्रव्यों से युक्त पांच ताम्बूल भेंट करें।

तत्पश्चात् प्रोक्षणीय पदार्थों का प्रोक्षण करके नृत्य और गीत का आयोजन करें। लिंग या मूर्ति आदि में शिव तथा पार्वती का चिन्तन करते हुए यथाशक्ति शिवमंत्र का जप करें। जप के पश्चात् प्रदक्षिणा, नमस्कार, स्तुतिपाठ, आत्मसमर्पण तथा अन्य कार्य का विनयपूर्वक विज्ञापन करें। फिर अर्घ्य और पुष्पांजलि देकर विधिवत् मुद्रा बांधकर इष्टदेव से त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थना करें। तत्पश्चात् मूर्ति सहित देवता का विसर्जन करके अपने हृदय में उसका चिन्तन करें। पाद्य से लेकर मुखवास पर्यन्त पूजन करना चाहिए अथवा अर्घ्य आदि से पूजन आरम्भ करना चाहिए या अधिक संकट की स्थिति में प्रेमपूर्वक केवल फूलमात्र चढ़ा देने से ही परम धर्म का सम्पादन हो जाता है। जब तक प्राण रहे, तब तक शिव का पूजन किए बिना भोजन न करें।

ऐहिक फल देने वाले कर्म

गुरुदेव शुक्राचार्य कहते हैं—पुत्र! यह मैंने इहलोक और परलोक में सिद्धि प्रदान करने वाला विधान बताया, जो उत्तम क्रियाविधि, जप, तप और ध्यान का समुच्चय भी है। अब मैं शिवभक्तों के लिए यही फल देने वाले पूजन, होम, जप, ध्यान, तप और दानमय महान कर्म का वर्णन करता हूं। मन्त्रार्थ के श्रेष्ठ ज्ञाता को चाहिए कि वे पहले मंत्र को सिद्ध करें, अन्यथा इष्टसिद्धि कारक कर्म भी फलप्रद नहीं होता। मन्त्र सिद्ध होने से जिस कर्म का फल किसी प्रबल अदृष्ट के कारण प्रतिबद्ध हो, उसे विद्वान पुरुष सहसा न करें। उस प्रतिबन्ध का यहां निवारण किया जा सकता है। कर्म करने के पहले। ही शकुन आदि करके उसकी परीक्षा कर लें और प्रतिबन्ध का पता लगने पर उसे दूर करने का प्रयत्न करें। जो साधक ऐसा न करके मोहवश ऐहिक फल देने वाले कर्म का अनुष्ठान करते हैं, वे उस फल के भागी नहीं होते और जगत में उपहास का पात्र भी बनते हैं। जिन पुरुषों को विश्वास न हो, वे ऐहिक फल देने वाले कर्म का अनुष्ठान कभी न करें; क्योंकि उनके मन में श्रद्धा नहीं रहती और श्रद्धाहीन पुरुष को उस कर्म का फल नहीं मिलता।

यदि किया गया कर्म निष्फल हो जाए, तो उसमें देवता का कोई अपराध नहीं है; क्योंकि शास्त्रोक्त विधि से ठीक-ठीक कर्म करने वाले पुरुषों को यही फल की प्राप्ति देखी जाती है। जिन्होंने मंत्र को सिद्ध कर लिया है, प्रतिबन्ध को दूर कर दिया है तथा मंत्र-इष्ट पर पूर्ण श्रद्धा एवं अटल विश्वास है, वे साधक कर्म करने पर उनके फल को अवश्य ही प्राप्त करते हैं। उस कर्म के फल की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्यपरायण होना चाहिए।

पूजन विधि

रात में हविष्य भोजन करें; खीर, यष फल खाकर रहें; हिंसा आदि जो निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें मन से भी न करें; सदा अपने शरीर में भस्म लगाएं; सुन्दर-पवित्र वेशभूषा धारण करें और पवित्र रहें। इस प्रकार आचारवान होकर अपने अनुकूल शुभ दिन में पुष्पमाला आदि से अलंकृत पूर्वोक्त लक्षण वाले स्थान में एक हाथ भूमि को गोबर से लीपकर वहां बिछे हुए भद्रासन पर कमल अंकित करें, जो अपने तेज से प्रकाशमान हो। वह तपाए हुए सुवर्ण के समान रंग वाला हो। उसमें आठ दल हों और केसर भी बना हो। मध्य भाग में वह कर्णिका से युक्त और सम्पूर्ण रत्नों से अलंकृत हो। उसमें अपने आकार के समान ही नाल होनी चाहिए। वैसे स्वर्णनिर्मित कमल पर सम्यग् विधि से मन ही मन अणिमा आदि सब सिद्धियों की भावना करें।

फिर उस पर रत्न का, सोने का अथवा स्फटिक मणि का उत्तम लक्षणों से युक्त वेदी सहित शिवलिंग स्थापित करके उसमें विधिपूर्वक पार्षदों सहित अविनाशी साम्ब सदाशिव का आह्वान और पूजन करें। फिर वहां साकार भगवान् महेश्वर की भावनामयी मूर्ति का निर्माण करें जिसके चार भुजाएं और चार मुख हों। वह सब आभूषणों से विभूषित हों, उसे व्याघ्रचर्म पहनाया गया हो। उसके मुख पर कुछ-कुछ हास्य की छटा छा रही हो। उसने अपने दो हाथों में वरद और अभय की मुद्रा धारण की हो। शेष दो हाथों में मृग मुद्रा और टंक ले रखे हों अथवा उपासक को अपनी रुचि के अनुसार अष्टभुजा मूर्ति की भावना करनी चाहिए। उस दशा में वह मूर्ति अपने दाएं चार हाथों में त्रिशूल, परशु, खंग और वज्र लिए हो और बाएं चार हाथों में पाश, अंकुश, खेट और नाग धारण करती हो। उसकी अंगकान्ति प्रातःकाल के सूर्य की भांति लाल हो। उनके प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र धारण हैं। उस मूर्ति का पूर्ववर्ती मुख सौम्य तथा अपनी आकृति के अनुरूप ही कान्तिमान है। दक्षिणवर्ती मुख नील मेघ के समान श्याम और देखने में भयंकर है। उत्तरवर्ती मुख मूंगे के समान लाल है और सिर की नीली अलकें उसकी शोभा बढ़ाती हैं। पश्चिमवर्ती मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, सौम्य तथा चन्द्रकलाधारी है। उस शिवमूर्ति के अंग में पराशक्ति माहेश्वरी शिवा आरूढ़ हैं। उनकी अवस्था सोलह वर्ष की सी है। वे सबका मन मोहने वाली हैं और महालक्ष्मी के नाम से विख्यात हैं।

इस प्रकार भावनामयी मूर्ति का निर्माण और सकलीकरण करके उनमें मूर्तिमान परम कारण शिव का आह्वान और पूजन करें। वहां स्नान कराने के लिए कपिला गाय के पंचगव्य और पंचामृत का संग्रह करें। विशेषतः चूर्ण और बीज को भी एकत्र करें। फिर पूर्व दिशा में मण्डल बनाकर उसे रत्नचूर्ण आदि से अलंकृत करके कमल की कर्णिका में ईशान-कलश की स्थापना करें। तत्पश्चात् उसके चारों ओर सद्योजात आदि मूर्तियों के कलशों की स्थापना करें। इसके बाद पूर्व आदि आठ दिशाओं में क्रमशः विद्येश्वर के आठ कलशों की स्थापना करेके उन सबको तीर्थ के जल से भर दें और कण्ठ में सूत लपेट दें। फिर उनके भीतर पवित्र द्रव्य छोड़कर मन्त्र और विधि के साथ साड़ी या धोती आदि वस्त्र से उन सब कलशों को चारों ओर से आच्छादित कर दें। तदनन्तर मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन सब में मंत्रन्यास करके स्नान का समय आने पर सब प्रकार के मांगलिक शब्दों और वाद्यों के साथ पंचगव्य आदि के द्वारा परमेश्वर शिव को स्नान कराएं। कुशोदक, स्वर्णोदक और रत्नोदक आदि को क्रमशः ले-लेकर मंत्रोच्चारणपूर्वक उन-उनके द्वारा महेश्वर को नहलाएं। फिर गन्ध, पुष्प और दीप आदि निवेदन करके पूजा-कर्म सम्पन्न करें।

आलेपन या उबटन कम से कम एक पल और अधिक से अधिक ग्यारह पल हो। सुन्दर सुवर्णमय और रत्नमय पुष्प अर्पित करें। सुगन्धित नील कमल, नील कुमुद, अनेकशः बिल्वपत्र, लाल कमल और धूप को कपूर, घी एवं गुग्गुल से युक्त करके निवेदन करें। कपिला गाय के घी से युक्त दीपक में कपूर की बत्ती बनाकर रखें और उसे जलाकर देवता के सम्मुख दिखाएं। ईशानादि पांच ब्रह्म की, छहों अंगों की और पांच आवरणों की पूजा करनी चाहिए। दूध में तैयार किया हुआ पदार्थ नैवेद्य के रूप में निवेदनीय है। गुड़ और घी से युक्त महाचरु का भी भोग लगाना चाहिए। पाटल, उत्पल और कमल आदि से सुवासित जल पीने के लिए देना चाहिए। पांच प्रकार की सुगन्धों से युक्त तथा अच्छी तरह लगाया हुआ ताम्बूल मुखशुद्धि के लिए अर्पित करें। सुवर्ण और रत्नों के बने हुए आभूषण जो दर्शनीय हों, इष्टदेव को देने चाहिए। उस समय गीत, वाद्य और कीर्तन आदि भी करना चाहिए। मूलमंत्र का एक लाख जप करना चाहिए। पूजा दो-तीन

बार नहीं तो कम से कम एक बार अवश्य करनी चाहिए। क्योंकि अधिक का अधिक फल होता है। होम सामग्री के लिए जितने द्रव्य हों, उनमें से प्रत्येक द्रव्य की कम से कम दस और अधिक से अधिक सौ आहुतियां देनी चाहिए।

मारण और उच्चाटन आदि में शिव के घोररूप का चिन्तन करना चाहिए। शान्तिकर्म या पौष्टिककर्म करते समय शिवलिंग में, शिवाग्नि में तथा अन्य प्रतिमाओं में शिव के सौम्यरूप का ध्यान करना चाहिए। मारण आदि कर्मों में लोहे के बने हुए स्रुक और स्रुवा का उपयोग करना चाहिए। अन्य शान्ति आदि कर्मों में स्रुक और स्रुवा बनवाने चाहिए। मृत्यु पर विजय पाने के लिए घी, दूध में मिलायी हुई दूर्वा से, मधु से, घृतयुक्त चरु से अथवा केवल दूध से भी हवन करना चाहिए तथा रोगों की शान्ति के लिए तिलों की आहुति देनी चाहिए। समृद्धि की इच्छा रखने वाले पुरुष महान दारिद्रय की शान्ति के लिए घी, दूध अथवा केवल कमल के फूलों से होम करें। वशीकरण के इच्छुक पुरुष चमेली या मालती के फूल से हवन करें। द्विजों को चाहिए कि वे घृत और करवीर पुष्पों से आहुति देकर आकर्षण का प्रयोग सफल करें। तेल की आहुति से उच्चाटन और मधु की आहुति से स्तम्भन कर्म करें। सरसों की आहुति से भी स्तम्भन किया जाता है। बड़ के बीज और तिल की आहुति द्वारा मारण एवं उच्चाटन करें। नारियल के तेल की आहुति देकर विद्वेषण कर्म करें।

इसी प्रकार रोही के बीज की आहुति देकर बन्धन का तथा लाल सरसों मिले हुए सम्पूर्ण होम-द्रव्यों से सेना-स्तम्भन का प्रयोग करें। अभिचार-कर्म में हस्तचालित यंत्र से तैयार किए गए तेल की आहुति देनी चाहिए। कुटकी की भूसी, कपास की ढोढ़ तथा तैलमिश्रित सरसों की आहुति भी दी जा सकती है। दूध की आहुति ज्वर को शान्ति करने वाली तथा सौभाग्यरूप फल प्रदान करने वाली होती है। मधु, घी और दही को परस्पर मिलाकर इनसे, दूध एवं चावल से अथवा केवल दूध से किया गया होम सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाला होता है।

काम्य कर्म में समिधाओं के प्रकार

सात समिधा आदि से शान्ति अथवा पौष्टिककर्म भी करें। विशेषतः द्रव्यों द्वारा होम करने पर वश्य और आकर्षण की सिद्धि होती है। बिल्वपत्रों का हवन वशीकरण तथा आकर्षण का साधन और लक्ष्मी की प्राप्ति कराने वाला है। साथ ही वह शत्रु पर विजय प्रदान कराता है। शान्तिकार्य में पलाश और खैर आदि की समिधाओं का होम करना चाहिए। क्रूरतापूर्ण कर्म के लिए कनेर और आक की समिधाएं होनी चाहिए। लड़ाई-झगड़े में कंटीले पेड़ों की समिधाओं का हवन करना चाहिए। शान्ति और पुष्टिकर्म विशेषतः शान्तचित्त पुरुष ही करें। जो निर्दय और क्रोधी हों, उन्हीं को आभिचारिक कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए। वह भी उस दशा में, जब दुरवस्था चरम सीमा को पहुंच गयी हो और उसके निवारण का कोई दूसरा उपाय न रह गया हो। आततायी को नष्ट करने के लिए आभिचारिक कर्म करना चाहिए।

अपने राष्ट्रपालक (राजा) को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से आभिचारिक कर्म कदापि नहीं करना चाहिए। यदि कोई आस्तिक, परम धर्मात्मा और माननीय पुरुष से कभी आततायीपन का कार्य हो जाए, तो भी उसको नष्ट करने के लिए आभिचारिक कर्म का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कोई भी पुरुष जो अपने लिए सुख चाहता हो, अपने राष्ट्रपालक की तथा शिवभक्त की अभिचार

आदि के द्वारा हिंसा न करे। ऐसा प्रयास करने वाला अपनी साधना से गिर जाता है। पतितों की श्रेणी में आ जाता है। दूसरे किसी के उद्देश्य से मारण आदि का प्रयोग करने पर पश्चाताप से युक्त हो प्रायश्चित करना चाहिए। निर्धन या धनवान पुरुष भी बाणलिंग (नर्मदा से प्रकट हुए शिवलिंग), ऋषियों द्वारा स्थापित लिंग या वैदिक लिंग में भगवान् शंकर की पूजा करें। जहां ऐसे लिंग का अभाव हो, वहां सुवर्ण और रत्न के बने हुए शिवलिंग में पूजा करनी चाहिए। यदि सुवर्ण और रत्नों के उपार्जन की शक्ति न हो तो मन से ही भावनामयी मूर्ति का निर्माण करके मानसिक पूजन करना चाहिए अथवा प्रतिनिधि द्रव्यों द्वारा शिवलिंग की कल्पना करनी चाहिए।

जो किसी अंश में समर्थ और किसी अंश में असमर्थ हैं, यदि वे भी अपनी शक्ति के अनुसार पूजन-कर्म करते हैं तो अवश्य फल के भागी होते हैं। जहां इस कर्म का अनुष्ठान करने पर भी फल नहीं दिखायी देता, वहां दो या तीन बार उसकी आवृत्ति करें। ऐसा करने से सर्वथा फल का दर्शन होगा। पूजा के उपयोग में आया हुआ जो सुवर्ण, रत्न आदि उत्तम द्रव्य हो, वह सब गुरु को दे देना चाहिए। उसके अतिरिक्त दक्षिणा भी देनी चाहिए। यदि गुरु नहीं लेना चाहते हों तो वह सब वस्तु भगवान् शिव को ही समर्पित कर दें अथवा शिवभक्त को दे दें। इनके सिवा दूसरे को देने का विधान नहीं है। जो पुरुष गुरु आदि की अपेक्षा न रखकर स्वयं यथाशक्ति पूजा सम्पन्न करते हैं, वे भी ऐसा ही आचरण करें। पूजा में चढ़ाई हुई वस्तु स्वयं न ले लें। जो मूढ़ लोभवश पूजा के अंगभूत उत्तम द्रव्यों को स्वयं ग्रहण कर लेते हैं, वे अभीष्ट फल नहीं पाते। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए। किसी के द्वारा पूजित शिवलिंग को मनुष्य ग्रहण करे या न करे, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि ले ले तो स्वयं उसकी नित्य पूजा करे अथवा उसकी प्रेरणा से कोई दूसरा पूजा करे। जो पुरुष इस कर्म का शास्त्रीय विधि के अनुसार ही निरन्तर अनुष्ठान करता है, वह फल पाने से कभी वंचित नहीं रहता। इससे बढ़कर प्रशंसा की बात और क्या हो सकती है?

अब मैं संक्षेप में कर्मजनित उत्तम सिद्धि की महिमा का वर्णन करता हूं—इससे शत्रुओं अथवा अनेक प्रकार की व्याधियों का शिकार होकर और मौत के मुंह में पड़कर भी मनुष्य बिना किसी विघ्न-बाधा के मुक्त हो जाता है। अत्यन्त कृपण भी उदार और निर्धन कुबेर के समान हो जाता है। कुरूप कामदेव के समान सुन्दर और बूढ़ा भी जवान हो जाता है। शत्रु क्षणभर में मित्र और विरोधी भी किंकर हो जाता है। अमृत विष के समान और विष अमृत के समान हो जाता है। समुद्र भी स्थल और स्थल समुद्रवत् हो जाता है। गड्ढा पहाड़ जैसा ऊंचा और पर्वत गड्ढे के समान हो जाता है। अग्नि सरोवर के समान शीतल और सरोवर भी अग्नि के समान दाहक बन जाता है। उद्यान जंगल और जंगल उद्यान हो जाता है। क्षुद्र मृग सिंह के समान शौर्यशाली और सिंह भी क्रीतदास के समान आज्ञा-पालक हो जाता है। स्त्रियां अभिसारिका बन जाती हैं और लक्ष्मी सुस्थिर हो जाती हैं।

इसी प्रकार वाणी इच्छानुसार दासी बन जाती है और कीर्ति गणिका के समान सर्वत्रगामिनी हो जाती है। बुद्धि स्वेच्छानुसार विचरने वाली और मन हीरे को छेदने वाली सुई के समान सूक्ष्म हो जाता है। शक्ति आंधी के समान प्रबल हो जाती है और बल मत्त गजराज के समान पराक्रमशाली होता है। शत्रु-पक्ष के उद्योग और कार्य स्तब्ध हो जाते हैं तथा शत्रुओं के समस्त सुहृदगण उनके लिए शत्रुपक्ष के समान हो जाते हैं। शत्रु बन्धु-बान्धवों सहित जीते-जी मुर्दे के

समान हो जाते हैं और सिद्धपुरुष स्वयं आपत्ति में पड़कर भी अरिष्टरहित (संकटमुक्त) हो जाता है। वह अमरत्व-सा प्राप्त कर लेता है। उसका खाया हुआ अपथ्य भी उसके लिए सदा रसायन का काम देता है। निरन्तर रति करने पर भी वह नया-सा ही बना रहता है। भविष्य आदि की सारी बातें उसे हाथ पर रखे हुए आंवले के समान प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं। अणिमा आदि सिद्धियां भी इच्छा करते ही फल देने लगती हैं। इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ! इस कर्म का सम्पादन कर लेने पर सम्पूर्ण कामार्थ सिद्धियों में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं रहती जो अलभ्य हो।

पारलौकिक फल देने वाले कर्म

अब मैं केवल परलोक में फल देने वाले कर्म की विधि बताऊंगा। तीनों लोकों में इसके समान कोई दूसरा कर्म नहीं है। यह विधि अतिशय पुण्य से युक्त है और सम्पूर्ण देवताओं ने इसका अनुष्ठान किया है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्रादि लोकपाल, सूर्यादि नवग्रह, विश्वामित्र और वसिष्ठ आदि ब्रह्मवेत्ता महर्षि-श्वेत, अगस्त्य, दधीचि तथा हम-सरीखे शिवभक्त, नन्दीश्वर, महाकाल और भृंगीश आदि गणेश्वर, पातालवासी दैत्य, शेष आदि महानाग, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, भूत और पिशाच—इन सबने अपना-अपना पद प्राप्त करने के लिए इस विधि का अनुष्ठान किया है। इस विधि से ही सब देवता देवत्व को प्राप्त हुए हैं। इसी विधि से ब्रह्मा को ब्रह्मत्व की, इन्द्र को इन्द्रत्व की और गणेश को गणेशत्व की प्राप्ति हुई है।

शिवलिंग महाव्रत

श्वेत चन्दनयुक्त जल से लिंगस्वरूप शिव और शिवा को स्नान कराकर प्रफुल्ल श्वेत कमलों द्वारा उनका पूजन करें। फिर उनके चरणों में प्रणाम करके वहीं लिपी-पुती भूमि पर सुन्दर शुभ लक्षण युक्त पद्मासन बनवाना चाहिए। कमल के केसरों के मध्यभाग में अंगुष्ठ के बराबर छोटे से सुन्दर शिवलिंग की स्थापना करें। वह सर्वगन्धमय और सुन्दर होना चाहिए। उसे दक्षिण भाग में स्थापित करके बिल्वपत्रों द्वारा उसकी पूजा करें। फिर उसके दक्षिण भाग में अगुरु, पश्चिम भाग में मैनसिल, उत्तर भाग में चन्दन और पूर्व भाग में हरताल चढ़ाएं। फिर सुन्दर-सुगन्धित विचित्र पुष्पों द्वारा पूजा करें। सब ओर काले अगुरु और गुग्गुल की धूम दें। अत्यन्त महीन और निर्मल वस्त्र निवेदन करें। घृतमिश्रित खीर का भोग लगाएं। घी के दीपक जलाकर रखें। मंत्रोच्चारणपूर्वक सब कुछ चढ़ाकर परिक्रमा करें। भक्तिभाव से देवेश्वर शिव को प्रणाम करके उनकी स्तुति करें और अन्त में त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थना करें। तत्पश्चात् शिवपंचाक्षर मंत्र से सम्पूर्ण उपहारों सहित वह शिवलिंग शिव को समर्पित करें और स्वयं दक्षिणामूर्ति का आश्रय लें। जो इस प्रकार पंच गन्धमय शुभ लिंग की नित्य अर्चना करता है, वह सब पापों से मुक्त हो शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है।

यह शिवलिंग-महाव्रत सब व्रतों में उत्तम और गोपनीय है। तुम भगवान् शंकर के भक्त हो; इसलिए तुमसे इस उपदेश का वर्णन किया। अभक्तों को इसका उपदेश नहीं करना चाहिए। प्राचीन काल में भगवान् शिव ने स्वयं इस व्रत का उपदेश दिया था।

योग विवेचन

विद्वानों का ऐसा मत है कि यदि योग आदि का अभ्यास करने से पहले ही मनुष्य की मृत्यु हो जाए तो वह आत्मघाती होता है। अतः श्रेष्ठ-ज्ञानी पुरुषों को चाहिए कि वे किसी योग्य गुरु के निर्देशन में योग की इन विधाओं को समझ कर अभ्यास करके अपने अन्तःकरण में भगवान् शिव को स्थापित करें। इस प्रकार स्वयं शिवमय हो निरन्तर शिव का ध्यान करें।

ऐसा ज्ञानी पुरुष जिसकी दूसरी वृत्तियों का निरोध हो गया है, उसके चित्त की भगवान् शिव में जो निश्चल वृत्ति है, उसी को संक्षेप में 'योग' कहा गया है। यह योग पांच प्रकार हैं—मंत्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग। मंत्र-जप के अभ्यासवश मंत्र के वाच्यार्थ में स्थित हुई विक्षेपरहित जो मन की वृत्ति है, उसका नाम 'मंत्रयोग' है। मन की वही वृत्ति जब प्राणायाम को प्रधानता दे तो उसका नाम 'स्पर्शयोग' होता है। वही स्पर्शयोग जब मंत्र के स्पर्श से रहित हो तो 'भावयोग' कहलाता है। जिससे सम्पूर्ण विश्व के रूपमात्र का अवयव विलीन (तिरोहित) हो जाता है, उसे 'अभावयोग' कहा गया है; क्योंकि उस समय सद्वस्तु का भी भान नहीं होता। जिससे एकमात्र उपाधिशून्य शिव-स्वभाव का चिन्तन किया जाता है और मन की वृत्ति शिवमयी हो जाती है, उसे 'महायोग' कहते हैं।

देखे और सुने गए लौकिक एवं पारलौकिक विषयों की ओर से जिसका मन विरक्त हो गया हो, उसी का योग में अधिकार है, दूसरे किसी का नहीं। लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयों के दोषों तथा ईश्वर के गुणों का सदा ही दर्शन करने से मन विरक्त होता है।

अष्टांग योग

प्रायः सभी योग आठ या छः अंगों से युक्त होते हैं। यम, नियम, स्वस्तिक आदि आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये विद्वानों ने योग के आठ अंग बताए हैं। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये थोड़े में योग के छः लक्षण हैं। शिव-शास्त्रों में इनके पृथक-पृथक लक्षण बताए गए हैं। अन्य शिवागमों में विशेषतः कामिक आदि में, योग-शास्त्रों में और किन्हीं-किन्हीं पुराणों में भी इनके लक्षणों का वर्णन है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन्हें सत्पुरुषों ने यम कहा है। इस प्रकार यम पांच अवयवों के योग से युक्त है। शौच, संतोष, तप, जप (स्वाध्याय) और प्रणिधान—इन पांच भेदों से युक्त दूसरे योगांग को नियम कहा गया है। तात्पर्य यह है कि नियम अपने अंशों के भेद से पांच प्रकार का है।

आसन एवं प्राणायाम

आसनों का लक्ष्य शरीर को रोगमुक्त करना है। सशक्त शरीर से ही साधना संभव होती है। आसनों का अभ्यास करते हुए ही प्राणों को नियंत्रित करने का, शरीर को सहज विशांति देने का अभ्यास कराया जाता है। योग ग्रंथों के अनुसार जिस स्थिति में (आसन में) आप बिना हिले-डुले 3 घंटे तक बैठ सकें। वह 'सिद्ध आसन' कहलाता है। उसी में बैठकर आपको साधना करनी चाहिए। इसका अगला चरण प्राणायाम है। अपने शरीर में प्रकट हुई जो वायु है, उसको 'प्राण' कहते हैं। उसे रोकना ही उसका आयाम है। उस प्राणायाम के तीन भेद कहे गए हैं—रेचक, पूरक और कुम्भक। नासिका के एक छिद्र को दबाकर या बंद करके दूसरे से उदरस्थित वायु को बाहर

निकालें। इस क्रिया को 'रेचक' कहा गया है। फिर दूसरी नासिका-छिद्र के द्वारा बाह्य वायु से शरीर को धौंकनी की भांति भर लें। इसमें वायु के पूरण की क्रिया होने के कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। जब साधक भीतर की वायु को न तो छोड़ता है और न ही बाहर की वायु को ग्रहण करता है, केवल भरे हुए घड़े की भांति अविचल भाव से स्थित रहता है, तब उस प्राणायाम को 'कुम्भक' नाम दिया जाता है।

योग के साधकों को चाहिए कि वे रेचक आदि तीनों प्राणायामों को न तो बहुत जल्दी-जल्दी करें और न बहुत देर से करें। साधना के लिए उद्यत हो क्रमयोग से उसका अभ्यास करें। रेचक आदि में नाड़ीशोधनपूर्वक जो प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है, उसे स्वेच्छा से उत्क्रमण पर्यन्त करते रहना चाहिए। यह बात योगशास्त्र में बतायी गयी है।

कनिष्ठ आदि के क्रम से प्राणायाम चार प्रकार का कहा गया है। मात्रा और गुणों के विभाग-तारतम्य से ये भेद बनते हैं। चार भेदों में से जो कन्यक या कनिष्ठ प्राणायाम है, वह प्रथम उद्घात (उद्घात का अर्थ नाभिमूल से प्रेरणा की हुई वायु का सिर में टक्कर खाना है। इस प्राणायाम में देश, काल और संख्या का परिमाण है) कहा गया है; इसमें बारह मात्राएं होती हैं। मध्यम प्राणायाम द्वितीय उद्घात है, उसमें चौबीस मात्राएं होती हैं। उत्तम श्रेणी का प्राणायाम तृतीय उद्घात है, उसमें छत्तीस मात्राएं होती हैं। उससे भी श्रेष्ठ जो सर्वोत्कृष्ट चतुर्थ (योगसूत्र में चतुर्थ प्राणायाम का परिचय इस प्रकार दिया गया है— **बाह्यान्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः** अर्थात् बाह्य औ आभ्यान्तर विषयों को फेंकने वाला प्राणायाम चौथा है) प्राणायाम है, वह शरीर में स्वेद और कम्प आदि का जनक होता है। योगी के अंदर आनन्दजनित रोमांच नेत्रों से अश्रुपात, जल्प, भ्रांति और मूर्च्छा आदि भाव प्रकट होते हैं। घुटने के चारों ओर प्रदक्षिण-क्रम से न बहुत जल्दी और न बहुत धीरे-धीरे चुटकी बजाएं। घुटने की एक परिक्रमा में जितनी देर तक चुटकी बजती है, उस समय का मान एक मात्रा है। मात्राओं को क्रमशः जानना चाहिए। उद्घात क्रम-योग से नाड़ीशोधन पूर्वक प्राणायाम करना चाहिए।

प्राणायाम के दो भेद बताए गए हैं—अगर्भ और सगर्भ। जप और ध्यान के बिना किया गया प्राणायाम 'अगर्भ' कहलाता है जबकि जप तथा ध्यान के सहयोगपूर्वक किए जाने वाले प्राणायाम को 'सगर्भ' कहते हैं। अगर्भ से सगर्भ प्राणायाम सौ गुना अधिक उत्तम है। इसलिए योगीजन प्रायः सगर्भ प्राणायाम करते हैं। प्राणविजय से ही शरीर की वायुओं पर विजय पायी जाती है।

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—ये दस प्राणवायु हैं। प्राण प्रयाण करता है, इसीलिए इसे 'प्राण' कहते हैं। जो कुछ भोजन किया जाता है, उसे जो वायु नीचे ले जाती है, उसको 'अपान' कहते हैं। जो वायु सम्पूर्ण अंगों को बढ़ाती हुई उनमें व्याप्त रहती है, उसका नाम 'व्यान' है। जो वायु मर्मस्थानों को उद्वेलित करती है, उसकी 'उदान' संज्ञा है। जो वायु सब अंगों को समभाव से ले चलती है, वह अपने उस समनयन रूप कर्म से 'समान' कहलाती है। मुख से कुछ उगलने में कारणभूत वायु को 'नाग' कहा गया है। आंख खोलने के व्यापार में 'कूर्म' नामक वायु की स्थिति है। छींक में 'कृकल' और जंभाई में 'देवदत्त' नामक वायु की स्थिति है। 'धनंजय' नामक वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है। वह मृतक शरीर को भी नहीं छोड़ती। क्रम से अभ्यास में लाया हुआ प्राणायाम जब उचित प्रमाण या

मात्रा से युक्त हो जाता है, तब वह कर्ता के सारे दोषों को दग्ध कर देता है और उसके शरीर की रक्षा करता है।

प्रत्याहार एवं धारणा

यदि प्राण पर विजय प्राप्त हो जाए तो उससे प्रकट होने वाले चिह्नों को अच्छी तरह देखें। पहली बात यह होती है कि विष्ठा, मूत्र और कफ की मात्रा घटने लगती है, अधिक भोजन करने की शक्ति आ जाती है और विलम्ब से सांस चलती है। शरीर में हलकापन आता है। शीघ्र चलने की शक्ति प्रकट होती है। हृदय-उत्साह बढ़ता है। स्वर में मिठास आती है। समस्त रोगों का नाश हो जाता है। बल, तेज और सौन्दर्य की वृद्धि होती है। धृति, मेधा, युवापन, स्थिरता और प्रसन्नता आती है। तप, प्रायश्चित, यज्ञ, दान और व्रत आदि जितने भी साधन हैं—ये प्राणायाम के सोलहवीं कला के विषय में आसक्त हुई इन्द्रियों को वहां से हटाकर जो अपने भीतर निगृहीत करता है, उस साधन को 'प्रत्याहार' कहते हैं।

मन और इन्द्रियां ही मनुष्य को स्वर्ग तथा नरक में ले जाने वाली हैं। यदि उन्हें वश में रखा जाए तो वे स्वर्ग की प्राप्ति कराती हैं और विषयों की ओर खुली छोड़ दी जाएं तो वे नरक में डालने वाली होती हैं। इसलिए सुख की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान पुरुषों को चाहिए कि वे ज्ञान-वैराग्य का आश्रय लेकर इन्द्रियरूपी अश्वों को शीघ्र ही काबू में करके स्वयं ही आत्मा का उद्धार करें। चित्त को किसी स्थान-विशेष में बांधना, किसी ध्येय-विशेष में स्थिर करना, यही संक्षेप में 'धारणा' का स्वरूप है। ऐसा स्थान एकमात्र शिव ही है, दूसरा नहीं; क्योंकि दूसरे स्थानों में त्रिविध दोष विद्यमान हैं। किसी नियमित काल तक स्थानस्वरूप शिव में स्थापित हुआ मन जब लक्ष्य से च्युत न हो तो धारणा की सिद्धि समझना चाहिए, अन्यथा नहीं। मन पहले धारणा से ही स्थिर होता है, इसलिए धारणा के अभ्यास से मन को धीर बनाएं।

ध्यान

अब ध्यान की व्याख्या करते हैं। ध्यान यह शब्द 'ध्येय' धातु में ल्युट होने से बना है। अर्थात् चित्त की ऐसी अवस्था जिसमें सिर्फ ध्येय मात्र समक्ष रहे। दूसरे शब्दों में, विक्षेप रहित चित्त से जो शिव का बारंबार चिन्तन किया जाता है, उसी का नाम 'ध्यान' है। ध्येय में स्थित हुए चित्त की ध्येयाकार वृत्ति होती है। बीच में दूसरी वृत्ति का प्रवाहरूप से बना रहना 'ध्यान' कहलाता है। दूसरी सभी वस्तुओं को छोड़कर केवल कल्याणकारी परमदेव देवेश्वर शिव का ही ध्यान करना चाहिए। वे ही सबके परम ध्येय हैं। यह 'अथर्ववेद' की श्रुति का अन्तिम निर्णय है। इसी प्रकार शिवादेवी भी परम ध्येय हैं। ये दोनों शिवा और शिव सम्पूर्ण भूतों में व्याप्त हैं। श्रुति, स्मृति एवं शास्त्रों से यह सुना गया है कि शिवा और शिव सर्वव्यापक, सर्वदा उचित, सर्वज्ञ एवं नाना रूपों में निरन्तर ध्यान करने योग्य हैं।

इस ध्यान के दो प्रयोजन जानने चाहिए। पहला है मोक्ष और दूसरा प्रयोजन है अणिमा आदि सिद्धियों की उपलब्धि। ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान-प्रयोजन—इन चारों को अच्छी तरह जानकर योगवेत्ता पुरुष योग का अभ्यास करें। जो ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न, श्रद्धालु, क्षमाशील, ममतारहित तथा सदा उत्साह रखने वाला है, ऐसा ही पुरुष ध्याता कहा गया है अर्थात्

वही ध्यान करने में सफल हो सकता है। साधकों को चाहिए कि वे जप से थकने पर फिर ध्यान करें और ध्यान से थक जाने पर पुनः जप करें। इस तरह जप और ध्यान में लगे हुए पुरुष का योग जल्दी सिद्ध होता है।

समाधि

बारह प्राणायामों की एक धारणा होती है, बारह धारणाओं का ध्यान होता है और बारह ध्यान की एक समाधि कही गयी है। समाधि को योग का अन्तिम अंग कहा गया है। समाधि से सर्वत्र बुद्धि का प्रकाश फैलता है। जिस ध्यान में केवल ध्येय ही अर्थरूप से भासता है, ध्याता निश्चल महासागर के समान स्थिरभाव से स्थित रहता है और ध्यानस्वरूप से शून्य-सा हो जाता है, उसे 'समाधि' कहते हैं। जो योगी ध्येय में चित्त को लगाकर सुस्थिरभाव से उसे देखता है और बुझी हुई आग के समान शान्त रहता है, वह 'समाधिस्थ' कहलाता है।

ऐसा साधक-योगी न सुनता है न सूंघता है, न बोलता है न देखता है, न स्पर्श का अनुभव करता है, न मन से संकल्प-विकल्प करता है, न उसमें अभिमान की वृत्ति का उदय होता है और न वह बुद्धि के द्वारा ही कुछ समझता है। केवल काष्ठ की भांति स्थिर रहता है। इस तरह शिव में लीनचित्त हुए योगी को यहां समाधिस्थ कहा जाता है। जैसे वायुरहित स्थान में रखा हुआ दीपक कभी हिलता नहीं निस्पन्द बना रहता है, उसी तरह समाधिनिष्ठ शुद्ध चित्त योगी भी उस समाधि से कभी विचलित नहीं होता।

सुस्थिर भाव से स्थिर उत्तम योग का अभ्यास करने वाले योगी के सारे अन्तराय शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण विघ्न भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार योगाभ्यास पूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

योगमार्ग के विघ्न

योगाभ्यासी साधक को साधना में विभिन्न प्रकार के विघ्नों का सामना करना पड़ता है। इनमें आलस्य, तीक्ष्ण व्याधियां, प्रमाद, स्थान-संशय, अनवस्थितचित्तता, अश्रद्धा, भ्रांति-दर्शन, दुःख, दौर्मनस्य और विषयलोलुपता—ये दस विघ्न योगाभ्यासी को उसके मार्ग से पथभ्रष्ट कर देते हैं। योग शरीर और चित्त में जो आलसता का भाव आता है, उसी को यहां 'आलस्य' कहा गया है। वात, पित्त और कफ—इन धातुओं की विषमता से जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हीं को 'व्याधि' कहते हैं। कर्मदोष से इन व्याधियों की उत्पत्ति होती है। असावधानी के कारण योग के साधनों का न हो पाना 'प्रमाद' है। 'यह है या नहीं है' इस प्रकार के उभयकोटि से आक्रान्त हुए ज्ञान का नाम 'स्थान-संशय' है। मन का कहीं स्थिर न होना ही अनवस्थितचित्तता (चित्त की अस्थिरता) है। योगमार्ग में भावरहित (अनुरागशून्य) जो मन की वृत्ति है, उसी को 'अश्रद्धा' कहा गया है। विपरीत भावना से युक्त बुद्धि को 'भ्रांति' कहते हैं।

'दुःख' कहते हैं कष्ट को। उसके तीन भेद हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। मनुष्यों के चित्त का जो अज्ञानजनित दुःख है, उसे आध्यात्मिक दुःख समझना चाहिए। पूर्वकृत कर्मों के परिणाम से शरीर में जो रोग आदि उत्पन्न होते हैं, उन्हें आधिभौतिक दुःख कहा गया है। विद्युत्सपात, अस्त्र-शस्त्र और विष आदि से जो कष्ट प्राप्त होता है, उसे

आधिदैविक दुःख कहते हैं। इच्छा पर आघात पहुंचने से मन में जो क्षोभ होता है, उसी का नाम 'दौर्मनस्य' है। विचित्र विषयों में जो सुख का भ्रम है, वही 'विषयलोलुपता' है।

सिद्धि सूचक उपसर्ग

योगपरायण योगी के इन विघ्नों के शान्त हो जाने पर जो 'दिव्य उपसर्ग' (विघ्न) प्राप्त होते हैं, वे सिद्धि के सूचक हैं। प्रतिभा श्रवण, वार्ता, दर्शन, आस्वाद और वेदना—ये छः प्रकार की सिद्धियां ही 'उपसर्ग' कहलाती हैं, जो योगशक्ति के अपव्यय में कारण होती हैं। जो पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म हो, किसी की ओट में हो, भूतकाल में रहा हो, बहुत दूर हो अथवा भविष्य में होने वाला हो, उसका ठीक-ठीक प्रतिभास (ज्ञान) हो जाना 'प्रतिभा' कहलाता है। सुनने का प्रयत्न न करने पर भी सम्पूर्ण शब्दों का सुनायी देना 'श्रवण' कहा गया है। समस्त देहधारियों की बातों को समझ लेना 'वार्ता' है। दिव्य पदार्थों का बिना किसी प्रयत्न के दिखायी देना 'दर्शन' कहा गया है। दिव्य रसों का स्वाद प्राप्त होना 'आस्वाद' कहलाता है। अन्तःकरण के द्वारा दिव्य स्पर्शों का तथा ब्रह्मलोक तक के गन्धादि दिव्य भोगों का अनुभव 'वेदना' नाम से विख्यात है।

सिद्ध योगी के पास स्वयं ही रत्न उपस्थित हो जाते हैं और बहुत-सी वस्तुएं प्रदान करते हैं। मुख से इच्छानुसार नाना प्रकार की मधुर वाणी निकलती है। सब प्रकार के रसायन और दिव्य औषधियां सिद्ध हो जाती हैं। देवांगनाएं इस योगी को प्रणाम करके मनोवांछित वस्तुएं देती हैं। यदि योगसिद्धि के एक देश का भी साक्षात्कार हो जाए तो मोक्ष में मन लग जाता है—यह मैंने जैसा देखा या अनुभव किया है, उसी प्रकार मोक्ष भी हो सकता है।

विभिन्न ऐश्वर्यों का वर्णन

कृशता, स्थूलता, बाल्यावस्था, वृद्धावस्था, युवावस्था, नाना जाति का स्वरूप; पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन चार तत्वों के शरीर को धारण करना, नित्य अपार्थिव ऐश्वर्य के आठ गुण बताए गए हैं। जल में निवास करना, पृथ्वी पर ही जल का निकल आना, इच्छा करते ही बिना किसी आतुरता के स्वयं समुद्र को भी पी जाने में समर्थ होना, इस संसार में जहां चाहे वहीं जल का दर्शन होना, घड़ा आदि के बिना हाथ में ही जलराशि को धारण करना, जिस विरस वस्तु को भी खाने की इच्छा हो, उसका तत्काल सरस हो जाना, जल, तेज और वायु—इन तीन तत्वों के शरीर को धारण करना तथा देह का फोड़े, फुंसी और घाव आदि से रहित होना—पार्थिव ऐश्वर्य के आठ गुणों को मिलाकर ये सोलह जलीय ऐश्वर्य के अद्‌भुत गुण हैं।

शरीर से अग्नि को प्रकट करना, अग्नि के ताप से जलने का भय दूर हो जाना, यदि इच्छा हो तो बिना किसी प्रयत्न के इस जगत को जलाकर भस्म कर देने की शक्ति का होना, पानी के ऊपर अग्नि को स्थापित कर देना, हाथ में आग धारण करना, सृष्टि को जलाकर फिर उसे ज्यों का त्यों कर देने की क्षमता का होना, मुख में ही अन्न आदि को पचा लेना तथा तेज और वायु—दो ही तत्वों से शरीर को रच लेना—ये आठ गुण जलीय ऐश्वर्य के उपर्युक्त सोलह गुणों के साथ चौबीस होते हैं। ये चौबीस तेजस ऐश्वर्य के गुण कहे गए हैं। मन के समान वेगशाली होना, प्राणियों के भीतर क्षणभर में प्रवेश कर जाना, बिना प्रयत्न के-ही पर्वत आदि के महान भार को उठा लेना, भारी हो जाना, हलका होना, हाथ में वायु को पकड़ लेना, अंगुली के अग्रभाव की

चोट से भूमि को भी कम्पित कर देना, एकमात्र वायु तत्व से ही शरीर का निर्माण कर लेना—ये आठ गुण तैजस ऐश्वर्य के चौबीस गुणों के साथ बत्तीस हो जाते हैं।

विद्वानों ने वायुसम्बन्धी ऐश्वर्य के ये ही बत्तीस गुण स्वीकार किए हैं। शरीर की छाया का न होना, इन्द्रियों का दिखायी न देना, आकाश में इच्छानुसार विचरण करना, इन्द्रियों के सम्पूर्ण विषयों का समन्वय होना, आकाश को लांघना, अपने शरीर में उसका निवेश करना, आकाश को पिण्ड की भांति ठोस बना देना और निराकार होना—ये आठ गुण अग्नि के बत्तीस गुणों से मिलकर चालीस होते हैं। ये चालीस ही वायु सम्बन्धी ऐश्वर्य के गुण हैं। यही सम्पूर्ण इन्द्रियों का ऐश्वर्य है, इसी को 'ऐन्द्र' एवं 'अम्बर' (आकाश सम्बन्धी) ऐश्वर्य भी कहते हैं। इच्छानुसार सभी वस्तुओं की उपलब्धि, जहां चाहे वहां निकल जाना, सबको अभिभूत कर लेना, सम्पूर्ण गुह्य अर्थ का दर्शन होना, कर्म के अनुरूप निर्माण करना, सबको वश में कर लेना, सदा प्रिय वस्तु का ही दर्शन होना और एक ही स्थान से सम्पूर्ण संसार का दिखायी देना—ये आठ गुण पूर्वोक्त इन्द्रिय सम्बन्धी ऐश्वर्य के गुणों से मिलकर अड़तालीस होते हैं।

चान्द्रमस ऐश्वर्य को इन अड़तालीस गुणों से युक्त कहा गया है। यह पहले के ऐश्वर्यों से अधिक गुण वाला है। इसे 'मानस ऐश्वर्य' भी कहते हैं। छेदना, पीटना, बांधना, खोलना, संसार के वश में रहने वाले समस्त प्राणियों को ग्रहण करना, सबको प्रसन्न रखना, पाना, मृत्यु को जीतना तथा काल पर विजय पाना—ये सब अहंकार सम्बन्धी ऐश्वर्य के अन्तर्गत हैं। अहंकारिक ऐश्वर्य को ही 'प्रजापत्य' भी कहते हैं। चान्द्रमस ऐश्वर्य के अड़तालीस गुणों के साथ इसके आठ गुण मिलकर छप्पन होते हैं। महान आभिमानिक ऐश्वर्य के ये ही छप्पन गुण हैं। संकल्प मात्र से सृष्टि-रचना करना, पालन करना, संहार करना, सबके ऊपर अपना अधिकार करना, सबसे अनुपम होना, इस जगत से पृथक नए संसार की रचना कर लेना तथा शुभ को अशुभ और अशुभ को शुभ कर देना—यह 'बौद्ध ऐश्वर्य' हैं। प्रजापत्य ऐश्वर्य के गुणों को मिलाकर इसके चौंसठ गुण होते हैं। इस बौद्ध ऐश्वर्य को ही 'बाह्य ऐश्वर्य' भी कहते हैं। इससे उत्कृष्ट है गौण ऐश्वर्य, जिसे प्राकृत भी कहते हैं। उसी का नाम 'वैष्णव ऐश्वर्य' है।

तीनों लोकों का पालन उसी के अन्तर्गत है। उस सम्पूर्ण वैष्णव-पद को न तो ब्रह्मा कह सकते हैं और न दूसरे ही उसका पूर्णतया वर्णन कर सकते हैं। उसी को 'पौरुष पद' भी कहते हैं। गौण और पौरुष पद से उत्कृष्ट गणपति पद है। उसी को 'ईश्वर पद' भी कहते हैं। उस पद का किंचित् ज्ञान श्रीविष्णु को है। दूसरे लोग उसे नहीं जान सकते। ये सारी विज्ञान-सिद्धियां औपसर्गिक हैं। इन्हें परम वैराग्य द्वारा प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिए। इन अशुद्ध प्रतिभासिक गुणों में जिसका चित्त आसक्त है, उसे सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला निर्भय परम ऐश्वर्य नहीं सिद्ध होता। इसलिए देवता, असुर और राजाओं के गुणों तथा भोगों को जो तृण के समान त्याग देता है, उसे ही उत्कृष्ट योग सिद्धि प्राप्त होती है अथवा यदि जगत पर अनुग्रह करने की इच्छा हो तो वह योगसिद्ध मुनि इच्छानुसार विचरे। इस जीवन में गुणों और भोगों का उपभोग करके अन्त में उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी।

योग के प्रयोग

अब मैं योग के प्रयोग का वर्णन करूंगा। एकाग्रचित्त होकर सुनो—शुभकाल हो, शुभदेश हो,

भगवान् शिव का क्षेत्र आदि हो, एकान्त स्थान हो, जीव-जन्तु न रहते हों, कोलाहल न होता हो और किसी बाधा की सम्भावना न हो—ऐसे स्थान में लिपी-पुती सुन्दर भूमि को गन्ध और धूप आदि से सुवासित करके वहां फूल बिखेर दें। चंदोवा आदि तानकर उसे विचित्र रीति से सजा दें। वहां कुश, पुष्प, समिधा, जल, फल और मूल की सुविधा होनी चाहिए। फिर वहां योग का अभ्यास करें। अग्नि के निकट, जल के समीप और सूखे पत्तों के ढेर पर योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। जहां डंस और मच्छर भरे हों, सांप और हिंसक जन्तुओं की अधिकता हो, दुष्ट पशु निवास करते हों, भय की सम्भावना हो तथा जो दुष्टों से घिरा हो—ऐसे स्थान में कभी योगाभ्यास नहीं करना चाहिए।

श्मशान में चैत्यवृक्ष के नीचे, बांबी के निकट, जीर्णशीर्ण घर में, चौराहे पर, नदी और समुद्र के तट पर, गली या सड़क के बीच में, उजड़े हुए उद्यान में, गोष्ठ आदि में, अनिष्टकारी और निन्दित स्थान में भी योगाभ्यास न करें। जब शरीर में अजीर्ण का कष्ट हो, खट्टी डकार आती हो, विष्ठा और मूत्र से शरीर दूषित हो, सर्दी लगी हो या अतिसार रोग का प्रकोप हो, अधिक भोजन कर लिया गया हो या अधिक परिश्रम के कारण थकावट हो, अधिक भूख-प्यास सता रही हो तथा अपने गुरुजन के कार्य आदि में लगे हुए हों, उस अवस्था में भी योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। जिनके आहार-विहार उचित एवं परिमित हों, जो कर्मों में यथायोग्य समुचित चेष्टा करते हों तथा जो उचित समय से सोते और जागते हों एवं सर्वथा आयास रहित हों, उन्हीं को योगाभ्यास में तत्पर होना चाहिए।

आसन मुलायम, सुन्दर, विस्तृत, सब ओर से बराबर और पवित्र होना चाहिए। पद्मासन और स्वस्तिकासन आदि जो यौगिक आसन हैं, उन पर ही अभ्यास करना चाहिए। अपने आचार्य पर्यन्त गुरुजनों की परम्परा को क्रमशः प्रणाम करके अपनी गर्दन, मस्तक और छाती को सीधी रखें। होंठ और नेत्र अधिक सटे हुए न हों। सिर कुछ-कुछ ऊंचा हो। दांतों से दांतों का स्पर्श न करें। दांतों के अग्रभाग में स्थित हुई जिह्वा को अविचल भाव से रखते हुए, एड़ियों से दोनों अण्डकोशों और प्रजननेन्द्रियों की रक्षापूर्वक दोनों जांघों के ऊपर बिना किसी यत्न के अपनी दोनों भुजाओं को रखें। फिर दाएं हाथ के पृष्ठभाग को बाएं हाथ की हथेली पर रखकर धीरे से पीठ ऊंची करें और छाती को आगे की ओर से सुस्थिर रखते हुए नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाएं। अन्य दिशाओं की ओर दृष्टिपात न करें। प्राण का संचार रोककर पाषाण के समान निश्चल हो जाएं। अपने शरीर के भीतर मानस-मन्दिर में हृदय-कमल के आसन पर पार्वती सहित भगवान् शिव का चिन्तन करके ध्यान-यज्ञ के द्वारा उनका पूजन करें।

मूलाधार चक्र में, नासिका के अग्रभाग में, नाभि में, कण्ठ में, तालु के दोनों छिद्रों में, भौंहों के मध्य भाग में, द्वारदेश में, ललाट में या मस्तक में शिव का चिन्तन करें। शिवा और शिव के लिए यथोचित रीति से उत्तम आसन की कल्पना करके वहां सावरण या निरावरण शिव का स्मरण करें। द्विदल, चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल अथवा षोडशदल कमल के आसन पर विराजमान शिव का विधिवत् स्मरण करना चाहिए। दोनों भौंहों के मध्य भाग में द्विदल कमल है, जो विद्युत के समान प्रकाशमान है। भ्रूमध्य में स्थित जो कमल है, उसके क्रमशः दक्षिण और उत्तर भाग में दो पत्ते हैं, जो विद्युत के समान दीप्तिमान् हैं। उनमें दो अन्तिम वर्ण 'ह' और 'क्ष' अंकित हैं। षोडशदल कमल के पत्ते सोलह स्वररूप हैं, जिनमें 'अ' से लेकर 'अः' तक के अक्षर

क्रमशः अंकित हैं। यह जो कमल है, उसकी नाल के मूल भाग से बारह दल प्रस्फुटित हुए हैं, जिनमें 'क' से लेकर 'ठ' तक के बारह अक्षर क्रमशः अंकित हैं।

सूर्य के समान प्रकाशमान इस कमल के उन द्वादश दलों का अपने हृदय के भीतर ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात् गो-दुग्ध के समान उज्ज्वल कमल के दस दलों का चिन्तन करें। उनमें क्रमशः 'ड' से लेकर 'फ' तक के अक्षर अंकित हैं। इसके बाद नीचे की ओर दल वाले कमल के छः दल हैं, जिनमें 'ब' से लेकर 'ल' तक के अक्षर अंकित हैं। इस कमल की कांति धूमरहित अंगार के समान है। मूलाधार में स्थित जो कमल है, उसकी कान्ति सुवर्ण के समान है। उसमें क्रमशः 'व' से लेकर 'स' तक के चार अक्षर चार दलों के रूप में स्थित हैं। इन कमलों में से जिसमें ही अपना मन रमे, उसी में महादेव और महादेवी का अपनी धीर बुद्धि से चिन्तन करें। उनका स्वरूप अंगूठे के बराबर, निर्मल और सब ओर से दीप्तिमान् है अथवा वह शुद्ध दीपशिखा के समान आकार वाला है और अपनी शक्ति से पूर्णतः मण्डित है अथवा चन्द्रलेखा या तारा के समान रूप वाला है अथवा वह नीवार के सींक या कमलनाल से निकलने वाले सूत के समान है। कदम्ब के गोलक या ओस के कण से भी उसकी उपमा दी जा सकती है। वह रूप पृथ्वी आदि तत्वों पर विजय प्राप्त करने वाला है।

ध्यान करने वाले पुरुष जिस तत्व पर विजय पाने की इच्छा रखते हों, उसी तत्व के अधिपति की स्थूल मूर्ति का चिन्तन करें। ब्रह्मा से लेकर सदाशिव पर्यन्त तथा भव आदि आठ मूर्तियां ही शिवशास्त्र में शिव की स्थूल मूर्तियां निश्चित की गयी हैं। मुनीश्वरों ने उन्हें 'घोर', 'शान्त' और 'मिश्र' तीन प्रकार की बताया है। यदि फल की आशा न रखने वाले ध्यान-कुशल पुरुषों द्वारा इनका चिन्तन किया जाए तो वे शीघ्र ही पाप और रोग का नाश करती हैं। मिश्र मूर्तियों में शिव का चिन्तन करने पर चिरकाल में सिद्धि प्राप्त होती है। यदि सौम्यमूर्ति में शिव का ध्यान किया जाए तो सिद्धि प्राप्त होने में न तो अधिक शीघ्रता होती है और न अधिक विलम्ब ही। सौम्यमूर्ति में ध्यान करने से विशेषतः मुक्ति, शान्ति एवं शुद्ध बुद्धि प्राप्त होती है। क्रमशः सभी सिद्धियां भी प्राप्त होती हैं, इसमें संशय नहीं है।

ईश्वर भक्ति में प्रेमयोग

कैलासपति भगवान् शिव के प्रति अनन्य प्रेम होने में ही इस जीवन की सार्थकता है। जिस बड़भागी ने इस दिव्य, अनन्य एवं विशुद्ध प्रेम-पीयूष का पान कर लिया, उसका जन्म सफल हो जाता है। उसकी युग-युग की, जन्म-जन्मों की विषय-पिपासा बुझ जाती है। भवताप से संतप्त प्राणी भगवत्प्रेम की पावन मन्दाकिनी में निमज्जन करके ही पूर्ण शान्ति प्राप्त कर सकता है। यही वह परम रस है, जिसे पीकर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है। उसके प्राप्त होने पर प्राणी इच्छा-शोक-राग-द्वेष आदि की परिधि से बाहर अनन्त-अगाध आनन्दराशि में तरंगायमान होता रहता है। वह न तो विषय-भोगों में रमता है और न उनमें कभी उसका उत्साह ही होता है। प्रेम साधन भी है और साधनों का फल यानी साध्य भी। परमात्मा की ही भांति प्रेम का स्वरूप भी अनिर्वचनीय है। गूंगे के स्वाद की तरह यह वाणी का विषय नहीं होता। इसलिए प्रेम का स्वरूप अलौकिक बताया गया है; क्योंकि वह लोक से सर्वथा विलक्षण है।

लौकिक प्रेम भोग-कामनाओं और दुर्वासनाओं से वासित होने के कारण शुद्ध नहीं होता।

जहां वासना का आधिपत्य है, वह प्रेम नहीं, आसक्तिमूल मोह है। इसके अलावा लौकिक प्रेम के आलम्बन क्षणिक एवं नाशवान होते हैं; अतः वह भगवत्प्रेम के सामने हेय ही है। यदि भगवत्प्रेम भी किसी कामना से किया जाए तो वह सकाम कहलाता है। सकाम प्रेम में दिव्यता, अनन्यता एवं विशुद्धता का अभाव होता है। कामना लौकिक वस्तु के लिए ही होती है, अतः लौकिकता का सम्मिश्रण हो जाने से उसकी दिव्यता नष्ट हो जाती है तथा उक्त कामना में वह प्रेम बंट जाता है, इसलिए उसमें ऐकनिष्ठता एवं अनन्यता नहीं रह जाती।

इसी प्रकार कामना से मिश्रित या दूषित हो जाने से वह प्रेम विशुद्ध नहीं रह पाता। दिव्य, अनन्य एवं विशुद्ध प्रेम तो तीनों गुणों से अतीत और कामनाओं से रहित होता है। यह प्रतिक्षण बढ़ता है, कभी घटता नहीं, वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होता है, उसे वाणी द्वारा नहीं व्यक्त किया जा सकता, यह तो अनुभव की वस्तु है। हेतु या कामना ही प्रेम का दूषण है, निर्हैतुक अथवा निष्काम प्रेम में कामना की गन्ध भी नहीं है, इसलिए यह शुद्ध है। अपने अभिन्न प्रियतम परमात्मा भगवान् शंकर के सिवा कोई दूसरा इस प्रेम का लक्ष्य नहीं है, इसलिए यह अनन्य है तथा ऊपर कहे अनुसार लोक से सर्वथा विलक्षण होने के कारण यह प्रेम दिव्य है।

इस प्रेम को पाकर प्रेमी सदा आनन्द में मस्त रहता है। संसार की सारी चिन्ताएं उसका स्पर्श भी नहीं कर सकतीं, उसकी दृष्टि में प्रेम के सिवा और कुछ रह ही नहीं जाता। यह तो प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता और प्रेम का ही वर्णन तथा चिन्तन करता है। उसके मन, प्राण और आत्मा प्रेम की ही गंगा में अनवरत अवगाहन करते रहते हैं। वह अपने सब धर्म और आचरण प्रेममय भगवान् शंकर को ही अर्पण कर देता है। वह उनकी पलभर के लिए भी याद भूलने पर अत्यन्त व्याकुल और बेचैन हो जाता है। वह सर्वत्र प्रेममय भगवान् को ही देखता है, सब कुछ भगवान् में ही देखता है, ऐसी दृष्टि रखने वाले की नजरों से भगवान् अलग नहीं हो सकते तथा वह भी भगवान् से अलग नहीं हो सकता। इस प्रकार दोनों का नित्य ऐक्य शाश्वत संयोग बना रहता है। भगवान् ऐसे भक्त का लोकोत्तर अनुराग देख अपनी महेश्वरता भूल जाते हैं और मुग्ध होकर अपने प्राणप्रिय भक्त को निहारते रहते हैं। उसके साथ उसी के अनुरूप बनकर उसकी इच्छा के अनुकूल विग्रह धारण कर खेलते, नृत्य करते, गाते, बजाते और आनन्दित होते रहते हैं।

प्रेमी भक्त मिलन और विछोह की चिन्ता से भी परे होता है। उसे क्या गरज पड़ी है, जो मिलने के लिए विकल हो। उसे तो केवल प्रेम करना है, वह भी प्रेम के लिए। वह प्रेम तत्वज्ञ प्रियतम स्वयं ही मिले बिना नहीं रह सकता। उसे गरज होगी तो स्वयं ही आएगा, भक्त क्यों मिलने के लिए परेशान हो? वह विछोह से भी क्यों डरे? उसे अपने लिए तो सुख या आनन्द की चाह है नहीं; वह तो सब कुछ उस प्रियतम के ही सुख के लिए करता है। यदि उसे मिलन में सुख मिलता है तो स्वयं ही आकर मिले। विछोह से दुःख होता हो तो अपने आप दौड़ा आएगा, न होगा तो बुलाने से भी नहीं आएगा। इसीलिए जो निष्काम प्रेमी होते हैं, वे भगवान् को बुलाते भी नहीं।

वास्तव में न तो भगवान् को दर्शन देने के लिए बुलाने की आवश्यकता है, न रोकने की। बिना किसी कामना या हेतु के ही भगवान् में केवल प्रेम बढ़ाना आवश्यक है। अहंकार से दूर रहकर संयोग-वियोग की चिन्ता से बेपरवाह होकर उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ता रहे, इसी के लिए सारा प्रयत्न-सम्पूर्ण चेष्टा होनी उचित है। भक्त प्रहलाद ने कभी प्रार्थना नहीं की कि मुझे दर्शन दो। सब

कुछ भगवान् ने अपने आप ही किया।

भगवत्प्रेमी का पूजन; खाना, पीना, रोना-गाना आदि सब भगवत्प्रीत्यर्थ होना चाहिए। प्रेमी का प्रेममय भगवान् के सिवा कोई दूसरा लक्ष्य न हो। दार्शन-मिलन आदि तो आनुषंगिक फल हैं। अपने आप प्राप्त होते हैं। इस प्रेम की पूर्णता उस दिव्य, अनन्य एवं विशुद्ध प्रेम में ही है, जहां प्रेम, प्रेमी और प्रियतम की एकता होती है।

ऐसा प्रेम उस दिव्य प्रेम का साक्षात् स्वरूप होता है। उसकी वाणी प्रेम से ओतप्रोत तथा शरीर और मन प्रेमरस में सराबोर होते हैं। उसका रोम-रोम प्रेमानन्द से थिरकता दिखायी देता है। उसके साथ सम्भाषण, उसका चिन्तन तथा उसके निकट गमन करने से अपने अन्दर प्रेम के परमाणु आते हैं। उसका स्पर्श पाकर नीरस हृदय में भी प्रेम का संचार होता है। बड़े-बड़े नास्तिक भी उसके सम्पर्क में आने पर सब कुछ भूलकर प्रेम दीवाने बन सकते हैं। उसके अनन्य अनुराग या अलौकिक भावोद्रेक को ठीक-ठीक हृदयंगम कराने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं हैं। समझाने के लिए उसके भाव को चाहे कोई भाव कह दिया जाए; वास्तव में वह सब भावों से ऊपर होता है। यहां न भाव है, न अभाव। उसकी स्थिति सभी भावों से परे है। सख्यभाव से भी इस दिव्य प्रेम की तुलना नहीं हो सकती। यह सख्य से भी ऊंचा है। दास्यभाव से भी उस अनन्य प्रेम का भाव अत्यन्त उत्कृष्ट है। दास्यभाव में ऊंच-नीच, स्वामी-सेवक की दृष्टि है, पर यहां तो पूर्ण समता है—न कोई सेवक है, न स्वामी। भक्त भगवान् की प्रेम गंगा में निमज्जन करके प्रसन्न होता है तो भगवान् भी वैसे ही प्रेम में मग्न हो जाते हैं।

वात्सल्यभाव से भी इस दिव्य अनन्यभाव का स्थान ऊंचा है। वहां उस लोकोत्तर साम्य का दर्शन नहीं होता, जो यहां सहज ही अनुभव में आता है। उसमें छोटे-बड़े, पिता-पुत्र आदि भाव रहते हैं, किन्तु यहां न कोई छोटा है, न बड़ा; न कोई माता-पिता है, न कोई किसी का पुत्र। सब एक समान हैं। माधुर्यभाव से भी यह अद्भुत प्रेमभाव और परकीयाभाव है। परम श्रेष्ठ सतीशिरोमणि पतिव्रता नारी का अपने प्रियतम पति के प्रति जो भाव होता है, वही स्वकीयाभाव है तथा परस्त्री का परपुरुष में जो गुप्त प्रेम होता है, उसी भाव से जो भगवान् के दिव्य स्वरूप में उच्च श्रेणी का प्रेम हो, उसे परकीयाभाव कहते हैं। उपर्युक्त प्रेमी इन सभी भावों से ऊपर उठा होता है।

भगवान् के साथ उसका एक क्षण के लिए भी कभी वियोग नहीं होता। भगवान् उसके अधीन होते हैं, उसके हाथों बिके रहते हैं। उसका साथ छोड़कर कहीं जाते ही नहीं। वह अनन्यप्रेमी भक्त पूर्ण प्रेममय-भगवन्मय हुआ रहता है। भगवान् से वह भिन्न नहीं, भगवान् उससे भिन्न नहीं। इस अवस्था में न भय है न संकोच, मान, आदर और सत्कार का भी यहां कुछ खयाल नहीं रहता। बड़े-छोटे का कोई लिहाज नहीं किया जाता। उन (भक्त और भगवान) में न कोई उत्तम है न मध्यम। दोनों समान हैं। पतिव्रता पति को नारायण मानती है और अपने को उनकी दासी। यह भाव बड़ा ही उत्तम और परम कल्याणकारी है। फिर भी इसमें बड़े-छोटे का दर्जा तो है ही। परन्तु उपर्युक्त दिव्य प्रेम में बड़े-छोटे की कोई श्रेणी नहीं है। वहां दोनों की समान अवस्था है।

परकीयाभाव में भी दूसरों से भय है, छिपाव है, सदा यह डर बना रहता है कि कोई जान न ले, पर यहां इस दिव्य प्रेम में न भय है, न छिपाव। फिर संकोच की तो बात ही क्या है। भगवान्

के गुण और प्रभाव से प्रभावित होकर ही परकीया का मन उनकी ओर आकृष्ट होता है। जहां अपने से अन्यत्र श्रेष्ठता का अनुभव है, वहां अपने में किंचित् न्यूनता का आभास भी है। अतः वहां भी निर्भीकता एवं पूर्ण समानता नहीं है। परन्तु अनन्य और विशुद्ध प्रेम में गुण एवं प्रभाव की विस्मृति है। स्मृति होने पर भी उनका कोई मूल्य नहीं है। यहां तो दोनों में अनिर्वचनीय ऐक्य है। वहां सर्वशक्तिमान और सर्वान्तर्यामी कहकर स्तवन नहीं किया जाता। स्तुति की अवस्था तो बहुत पहले ही समाप्त हो जाती है। अब तो कौन सर्वशक्तिमान और कहां का सर्वेश्वर दोनों एक हैं, समान हैं। दोनों ही एक-दूसरे के प्रेमी और प्रियतम हैं; इनमें परस्पर हेतुरहित सहज प्रेम होता है। इसमें भक्त और भगवन्त—सब एक हो जाते हैं। किसी भावुक भक्त के निम्नांकित वचन से भी इसी भाव की पुष्टि हुई है—

त्रिधाप्येकं सदागम्यं गम्यमेकप्रभेदने ।
प्रेम प्रेमी प्रेमपात्रं त्रितयं प्रणतोऽस्म्यहम् ।।

अर्थात् प्रेम, प्रेमी और प्रेमपात्र (प्रियतम)—देखने में तीन होने पर भी वास्तव में एक हैं। इनका तत्व सदा सबकी समझ में नहीं आता। इन्हें एक रूप ही जानना चाहिए। मैं इन तीनों को, जो वस्तुतः एक हैं, प्रणाम करता हूं। ऐसे अनन्य प्रेमी की दृष्टि में सर्वत्र और सदा ही दिव्य प्रेम की अखण्ड ज्योति जगमगाती रहती है। वह सम्पूर्ण जगत पर समान रूप से प्रेमामृत की वर्षा करता है। उसकी दृष्टि में कोई घृणा या द्वेष का पात्र नहीं है। उसके लिए सर्वत्र ही प्रेम का महासागर लहराता है। ज्ञानमार्ग से चलने वाले महात्मा अद्वैत-अभेद रूप से ब्रह्म को प्राप्त होते हैं—'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।' पर यहां तो इस दिव्य प्रेम-संसार की अनुभूति ही निराली है। यहां न द्वैत है, न अद्वैत! दोनों से विलक्षण स्थिति है। प्रेमी और प्रियतमा का नित्य-नूतन प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता है। 'प्रतिक्षणं वर्धमानम्' की स्थिति में पुष्ट होता है। बढ़ते-बढ़ते यह असीम-अनन्त हो जाता है कि उनमें द्वैत का सा भान नहीं होता। इनके दिव्य भाव को वाणी द्वारा व्यक्त करना असम्भव है। यहां प्रेम के सिवा कुछ रहता ही नहीं। इन प्रेमियों का मिलन भी बड़ा ही विलक्षण और अत्यन्त अलौकिक होता है। यहां अद्वैत होते हुए भी द्वैत है और द्वैत होते हुए भी अद्वैत। हमारे दोनों हाथ परस्पर मिलकर एक हो जाते हैं। उस समय ये दो होते हुए भी एक हैं और एक होते हुए भी दो। इस प्रकार यहां न भेद है, न अभेद।

गंगा और समुद्र मिलकर एक से हो जाते हैं, किन्तु भगवान् और अनन्यप्रेमी भक्त का दिव्य मिलन इनसे भी विलक्षण एवं उत्कृष्ट है। वह अलौकिक एवं अनिर्वचनीय अवस्था है। भेद-अभेद से परे की फलरूपा स्थिति है। यह मिलन नित्य है। यहां वस्त्र, आभूषण या आयुध का व्यवधान भी वांछनीय नहीं है। वस्त्र का व्यवधान लज्जा-निवारण के लिए अपेक्षित होता है और लज्जा दूसरे से होती है। यहां तो प्रेमी और प्रियतम एकप्राण हो चुके हैं। भला अपने से भी कोई लज्जा करता है। यदि बंद एकान्त कमरे में अपने सिवा कोई दूसरा न हो तो लज्जा निवारण के लिए वस्त्र की आवश्यकता नहीं होती। इस दिव्य मिलन में द्वैतभाव मिट चुका है, दूसरों की ही दृष्टि में भेद प्रतीत होता है। इस मिलन में तो आभूषण भी दूषण जान पड़ते हैं। यहां परस्पर मान-सम्मान, आदर-सत्कार का भी कोई व्यवहार नहीं है। जहां पूर्णरूप से प्रेम है, वहां आदर-सत्कार तो एक विघ्न है। क्या कोई स्वयं ही अपना आदर करता है।

इस स्थिति में शोक, मोह और भय आदि का नामोनिशान भी नहीं रहता। यहां तो देखने मात्र

की भिन्नता होते हुए भी वास्तव में पूर्ण एकत्व है। अनन्य प्रेमी का ऊपरी व्यवहार चाहे जैसा हो, भीतर से वह एकनिष्ठ है, भगवन्मय है, इसीलिए वह भगवान् में नित्य स्थित है। जो पुरुष एकीभाव में स्थित होकर सम्पूर्ण भूतों में स्थित मुझ शिव को भजता है, वह योगी सब प्रकार से बरतता हुआ भी मेरे में ही बरतता है क्योंकि उसके अनुभव में मेरे सिवा अन्य कुछ है ही नहीं। यह द्वैत-अद्वैत, भेद-अभेद से विलक्षण एवं अनिर्वचनीय स्थिति है। इस अनन्य प्रेम को प्राप्त करना ही मानवमात्र का वास्तविक लक्ष्य है। इसी की प्राप्ति में जन्म और जीवन की सार्थकता है।

आदर्श ध्यान-योग महिमा

आदर्श ध्यान-योग इस प्रकार समझा जा सकता है कि साधक अपने सामने एक दर्पण रखें। फिर घी का दीया इस तरह व्यवस्थित करें कि उसकी ज्योति दर्पण के मध्य भाग पर प्रतिबिम्बित हो। दर्पण के मध्य भाग में सुगन्धित तेल की एक बूंद डाल दें। अनन्तर दर्पण के मध्य भाग में जहां ज्योति दिख रही हो, वहां उस ज्योति की शंखाकृति पर दृष्टि स्थिर करने का अभ्यास करें। इस अभ्यास के समय मौन रहें। मन में कोई विचार न आने दें। बाहर से आने वाले शब्दों की ओर ध्यान न जाए, इसके लिए नीचे लिखे अनुसार कर्णमुद्रा का उपयोग करें।

केसर, इलायची और जायफल का समभाग लेकर उसे कूटकर चूर्ण करें। फिर वस्त्र से छानकर किसी रेशमी कपड़े के टुकड़े में रखकर उसकी पोटली बनाकर इस तरह उसे सीयें कि कान में उसका डाट दिया जा सके। डाट देकर उस पर मोम लगा दें। यह कर्णमुद्रा कान में लगाकर तब दर्पण में ज्योति के प्रतिबिम्ब की शंखाकृति पर दृष्टि स्थिर करें। शुरू-शुरू में उष्णता के कारण आंखों से गरम पानी जाएगा, उसे जाने दें, बंद न करें। लगभग एक सप्ताह के अंदर ही पानी का जाना बंद हो जाएगा। यदि पानी से आंखें बीच ही में बंद हो जाएं तो कोई हर्ज नहीं। आंखें पोंछकर फिर से अभ्यास आरम्भ करें। चित्तवृत्ति को स्थिर करके, बिना पलक गिराए जितनी ही अधिक देर तक अभ्यास किया जा सके, उतना ही अधिक लाभप्रद है।

पहले प्रतिदिन दस-पंद्रह मिनट अभ्यास करें, फिर धीरे-धीरे घंटे या सवा घंटे तक बढ़ा ले जाएं। जब आधे घंटे तक चित्त को स्थिर रखकर बिना पलक गिराए एकाग्र दृष्टि से देखने का अभ्यास हो जाता है तो इष्टदेवता के दर्शन होते हैं। उनसे सम्भाषण होता है और भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान आदि अनेक विधि चमत्कार दिखाई पड़ते हैं। परन्तु इन चमत्कारों में न फंस कर साधक भगवत्स्वरूप की भावना को दृढ़ रखकर उसका प्रत्यक्ष होते ही उससे तन्मय हो जाएं। इस तरह कृतार्थता का लाभ करें।

मन्त्रानुष्ठान विधि

प्राचीन काल से ही वेदों तथा अन्यान्य धार्मिक ग्रन्थों में ऋषियों एवं देवताओं के बनाए नाना प्रकार के मंत्रों का वर्णन आता है जिनसे मानव जीवन में सुख, समृद्धि तथा अन्ततः मोक्ष व ईश्वर प्राप्ति का साधन किया जाता है। महान योगियों, संन्यासियों तथा महापुरुषों ने इन्हीं मंत्रों की सहायता से अपने जीवन में महान कार्यों को सम्पन्न कर लोकख्याति प्राप्त की। मंत्र एक चमत्कारिक भाषा का नाम है। मन्त्र शब्द का अर्थ है गुप्त परामर्श। वह श्रीगुरुदेव की ही कृपा से

प्राप्त होता है। यदि मन्त्र प्राप्त होने पर भी उसका अनुष्ठान न किया जाए, सविधि पुरश्चरण करके उसे सिद्ध न कर लिया जाए तो उससे उतना लाभ नहीं होता जितना होना चाहिए।

श्रद्धा, भक्तिभाव और विधि के संयोग से जब मंत्रों के अक्षर अन्तर्देश में प्रवेश करके एक दिव्य आहिण्डन करने लगते हैं तो उस संघर्ष से जन्म-जन्मान्तरीय पाप-तापों के संस्कार धुल जाते हैं। जीव की प्रसुप्त चेतना जीवन्त, ज्वलन्त एवं जागृत रूप में चमक उठेती है। मन्त्रार्थ के साक्षात्कार से वह कृतकृत्य हो जाता है। जब तक दीर्घकाल तक निरन्तर श्रद्धाभाव से मन्त्र का अनुष्ठान नहीं किया जाएगा, तब तक प्रेम अथवा ज्ञान के उदय की कोई सम्भावना नहीं है। इस अनुष्ठान में कुछ नियमों की आवश्यकता होती है। यम और नियम ही आन्तरिक एवं बाह्य शान्ति के मूल हैं। इन्हीं की नींव पर अनुष्ठान का प्रासाद प्रतिष्ठित है। इसलिए अनुष्ठान करने के पूर्व उन्हें जान लेना आवश्यक है। यहां संक्षेप में उनका दिग्दर्शन कराया जाता है।

मन्त्रानुष्ठान के योग्य स्थान

मन्त्रानुष्ठान स्वयं ही करना चाहिए। यह सर्वोत्तम कल्प है। यदि श्रीगुरुदेव ही कृपा करके मन्त्रानुष्ठान कर दें तब तो पूछना ही क्या। यदि ये दोनों सम्भव न हों तो परोपकारी, प्रेमी, शास्त्रवेत्ता एवं सदाचारी ब्राह्मण के द्वारा भी कराया जा सकता है। कहीं-कहीं अपनी धर्मपत्नी से भी अनुष्ठान कराने की आज्ञा है। परन्तु ऐसा उसी स्थिति में करना चाहिए, जब उसे पुत्र हो। अनुष्ठान स्थान निम्नलिखित स्थानों में से कोई होना चाहिए। सिद्धपीठ, पुण्यक्षेत्र, नदीतट, गुहा, पर्वतशिखर, तीर्थ, संगम, पवित्र जंगल, एकान्त उद्यान, बिल्ववृक्ष, पर्वत की तराई, तुलसीकानन, गोशाला (जिसमें बैल न हों), देवालय, पीपल या आंवले के वृक्ष के नीचे, पानी में अथवा अपने घर में मन्त्र का अनुष्ठान शीघ्र फलप्रद होता है। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओं के सामने बैठकर जप करना उत्तम माना गया है। यह नियम सार्वत्रिक नहीं है।

मुख्य बात यह है कि जहां बैठकर जप करने से चित्त की ग्लानि मिटे और प्रसन्नता बढ़े, वही स्थान सर्वश्रेष्ठ है। घर से दस गुना गोष्ठ, सौगुना जंगल, हजार गुना तालाब, लाख गुना नदीतट, करोड़ गुना पर्वत, अरबों गुना शिवालय और अनन्त गुना गुरु का सन्निधान है। जिस स्थान पर स्थिरता से बैठने में किसी प्रकार की आशंका अथवा आतंक न हो, म्लेच्छ, दुष्ट, बाघ, सांप आदि किसी प्रकार का विघ्न न डाल सकते हों, जहां के लोग अनुष्ठान के विरोधी न हों, जिस देश में सदाचारी और भक्त निवास करते हों, किसी प्रकार का उपद्रव अथवा दुर्भिक्ष न हो, गुरुजनों की सन्निधि और चित्त की एकाग्रता सहज भाव से ही रहती हो, वही स्थान जप करने के लिए उत्तम माना गया है। यदि किसी साधारण गांव अथवा घर में अनुष्ठान करना हो तो पहले कूर्म भगवान् का चिन्तन करना चाहिए। जैसे कूर्म भगवान् की पीठ पर स्थित मन्दराचल के द्वारा समुद्र मन्थन किया गया था, वैसे ही मैं कूर्माकार भूमिप्रदेश में स्थित होकर उन्हीं के आश्रय से अमृतत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रहा हूं—ऐसी भावना करनी चाहिए।

भोजन की पवित्रता

मन्त्र के साधक को अपने भोजन के सम्बन्ध में पहले ही विचार कर लेना चाहिए, क्योंकि भोजन के रस से ही शरीर, प्राण और मन का निर्माण होता है। जो अशुद्ध भोजन करते हैं, उनके

शरीर में रोग, प्राणों में क्षोभ और चित्त में ग्लानि की वृद्धि होती है। ऐसे में देवता और मन्त्र के प्रसाद का उदय नहीं होता। इसके विपरीत जो शुद्ध अन्न का भोजन करते हैं, उनके चित्त के मल और विक्षेप शीघ्र ही निवृत्त हो जाते हैं। अन्न का सबसे बड़ा दोष है न्यायोपार्जित न होना। जो अन्याय से, बेईमानी, चोरी, डकैती आदि करके अपने शरीर का पालन-पोषण करते हैं, उनकी उस क्रिया के मूल में ही अशुद्ध मनोवृत्ति रहने के कारण वह अन्न सर्वथा दूषित रहता है। उनके द्वारा शुद्ध चित्त का निर्माण असम्भवप्राय है।

जो लोग अन्याय तो नहीं करते, परन्तु संन्यासी अथवा ब्रह्मचारी न होने पर भी बिना परिश्रम किए ही दूसरों का अन्न खाते हैं, उनमें तमोगुण की वृद्धि होती है; वे अधिकांशतः आलस्य और प्रमाद में पड़े रहते हैं। उनके चित्त का मल दूर होना भी बड़ा कठिन है। अपनी कमाई के अन्न में भी जिससे दूसरों का चित्त दुखता है, उस अन्न से चित्त की शुद्धि सम्भव नहीं है। जिस गौ का बछड़ा अलग छटपटा रहा है, पेट भर भोजन न मिलने के कारण जिस गौ की आंखों से आंसू गिर रहे हों, उसका न्यायोपार्जित दूध भी चित्त को प्रसन्न कर सकेगा—इसमें सन्देह है। इसलिए भोजन में सबसे पहले यह बात देखनी चाहिए कि यह वर्णाश्रमोचित परिश्रम से प्राप्त किया हुआ है या नहीं? इसके उपयोग से किसी का हक तो नहीं मारा गया है? इसको स्वीकार करने से किसी को कष्ट तो नहीं हुआ है? कहीं इसके मूल में विषाद का बीज तो नहीं है? इन बातों को ध्यान में रखकर ही भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए।

इसके अलावा भोजन में तीन प्रकार के दोष माने गए हैं—जाति दोष, आश्रय दोष और निमित्त दोष। जाति दोष वह है, जो स्वभाव से ही कई पदार्थों में रहता है। इसके उदाहरण में प्याज, लहसुन और शलगम को रख सकते हैं। जाति दोष न होने पर भी स्थान के कारण बहुत सी वस्तुएं अपवित्र हो जाती हैं। यदि शुद्ध दूध भी शराबखाने में रख दिया जाए तो वह अपवित्र हो जाता है। यही आश्रय दोष है। शुद्ध स्थान में रखी हुई शुद्ध वस्तु भी कुत्ते आदि के स्पर्श से अशुद्ध हो जाती है। इस प्रकार के दोष का नाम निमित्त दोष है। साधक का भोजन अवश्य ही इन तीन दोषों से रहित होना चाहिए। गौ के दही, दूध, घी, श्वेत तिल, मूंग, कन्द, केला, आम, नारियल, आंवला, जड़हन धान, जौ, जीरा, नारंगी आदि हविष्यान्न जो विभिन्न व्रतों में उपादेय माने गए हैं तथा जिस देश में जिनकी पवित्रता शिष्टसम्मत है, उस देश में वहां के निवासी वही भोजन कर सकते हैं।

मधु, खारी नमक, तेल, पान, गाजर, उड़द, अरहर, मसूर, कोदौ, चना, बासी अन्न, रूखा अन्न और वह अन्न जिसमें कीड़े पड़ गए हों, नहीं खाना चाहिए। कांसे के बर्तन में भी भोजन न खाना चाहिए। भोजन के सम्बन्ध में एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिए। जितने भोजन की आवश्यकता हो, उससे कम ही खाया जाए। भोज्य अन्न खूब पका हुआ हो, थोड़ा गरम हो, हृदयदाही न हो। जिससे इन्द्रियों को अधिक बल और उत्तेजना मिले, पेट बढ़े एवं निद्रा, आलस्य आए, वह भोजन सर्वथा वर्जित है।

भगवान् शंकर ने एक स्थान पर पार्वती से कहा है—जिनकी जिह्वा परान्न से जल गयी है, जिनके हाथ प्रतिग्रह से जले हुए हैं और जिनका मन परस्त्री के चिन्तन से जलता रहता है, उन्हें भला मन्त्रसिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है! जिन्हें भिक्षा लेने का अधिकार है, उन संन्यासी आदि के लिए भिक्षा परान्न नहीं है। परन्तु वैदिक, सदाचारी, पवित्र एवं कुलीन ब्राह्मणों से ही भिक्षा

लेनी चाहिए। एक ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख मिलता है—सर्वोत्तम बात यह है कि अग्नि के अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु किसी से न ली जाए। यदि ऐसा सम्भव न हो तो तीर्थ के बाहर जाकर पर्वों को छोड़कर न्यायोपार्जित अन्न की भिक्षा लेनी चाहिए, वो भी एक दिन खाने भर। जो रागवश इससे अधिक भिक्षा ग्रहण करता है, उसे मन्त्र सिद्धि नहीं हो सकती।

कुछ आवश्यक बातें

स्त्री संसर्ग, उनकी चर्चा तथा जहां वे रहती हों, वह स्थान छोड़ देना चाहिए। ऋतुकाल के अतिरिक्त अपनी स्त्री का भी स्पर्श करना निषिद्ध है। स्त्री-साधिकाओं को पुरुषों के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। कुटिलता, क्षौर, उबटन, बिना भोग लगाए भोजन और बिना संकल्प के कर्म नहीं करने चाहिए। केवल आंवले से अथवा पंचगव्य से शास्त्रोक्त विधि से स्नान करना चाहिए। स्नान, आचमन, भोजन आदि मन्त्रोच्चारण के साथ ही हों। यथाशक्ति तीनों समय, दो समय अथवा एक ही समय स्नान, सन्ध्या एवं तर्पण किए बिना अपवित्र हाथ से, नग्न अवस्था में अथवा सिर पर वस्त्र रखकर जप करना निषिद्ध है। जप के समय माला पूरी हुए बिना बातचीत नहीं करनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो जप समाप्त करने और प्रारम्भ करने के पूर्व आचमन कर लेना चाहिए।

यदि जप करते समय एक शब्द का उच्चारण हो जाए तो एक बार प्रणव का उच्चारण कर लेना चाहिए। यदि वह शब्द कठोर हो तो प्राणायाम भी आवश्यक हो जाता है। यदि कहीं बहुत बात कर ली जाए तो आचमन, अंगन्यास करके पुनः माला प्रारम्भ करनी चाहिए। छींक और अस्पृश्य स्थानों का स्पर्श हो जाने पर भी यही विधान है। यदि जप करते समय शौच, लघुशंका आदि का वेग हो तो उसका निरोध करना चाहिए; क्योंकि ऐसी अवस्था में मन्त्र और इष्ट का चिन्तन तो होता नहीं, मल-मूत्र का ही चिन्तन होने लगता है। ऐसे समय का जप-पूजनादि अपवित्र होता है। मलिन वस्त्र, केश और मुख से जप करना शास्त्रविरुद्ध है। जप करते समय इतने कर्म निषिद्ध हैं—आलस्य, जंभाई, नींद, छींक, थूकना, डरना, अपवित्र अंगों का स्पर्श और क्रोध। जप में न बहुत जल्दी करनी चाहिए और न बहुत विलम्ब। गाकर जपना, सिर हिलाना, लिखा हुआ पढ़ना, अर्थ न जानना और बीच-बीच में भूल जाना—ये सब मन्त्रसिद्धि के प्रतिबन्धक हैं। जप के समय यह चिन्तन करना चाहिए कि इष्टदेवता, मन्त्र और गुरु एक ही हैं। जब तक जप किया जाए, यही बात मन में रहें।

पहले दिन जितने जप का संकल्प किया जाए, उतना ही जप प्रतिदिन होना चाहिए। उसे घटाना-बढ़ाना ठीक नहीं। मन्त्र सिद्धि के लिए बारह नियम हैं—1. भूमिशयन, 2. ब्रह्मचर्य, 3. मौन, 4. गुरुसेवन, 5. त्रिकालस्नान, 6. पापकर्म परित्याग, 7. नित्य पूजा, 8. नित्य दान, 9. देवता की स्तुति एवं कीर्तन, 10. नैमित्तिक पूजा, 11. इष्टदेव और गुरु में विश्वास, 12. जपनिष्ठा। जो इन नियमों का पालन करता है, उसका मन्त्र सिद्ध ही समझना चाहिए।

स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक आदि के साथ सम्भाषण, उच्छिष्ट मुख से वार्तालाप, असत्य भाषण और कुटिल भाषण छोड़ देना चाहिए। किसी भी अनुष्ठान के समय शपथ लेने से सब निरर्थक हो जाता है। अनुष्ठान आरम्भ कर देने पर यदि मरणाशौच या जननाशौच पड़ जाए तो भी अनुष्ठान नहीं छोड़ना चाहिए। अपने आसन, शय्या, वस्त्र आदि को शुद्ध एवं स्वच्छ रखना

चाहिए। किसी का गाना, बजाना या नाचना न सुनना चाहिए और न देखना चाहिए। उबटन, इत्र, फूल-माला का उपयोग और गरम जल से स्नान नहीं करना चाहिए।

एक वस्त्र पहनकर अथवा बहुत वस्त्र पहनकर एवं पहनने के वस्त्र ओढ़ कर और ओढ़ने का वस्त्र पहनकर जप नहीं करना चाहिए। सोकर, बिना आसन के, चलते या खाते समय, बिना माला ढके और सिर ढककर जो जप किया जाता है, अनुष्ठान के जप में उसकी गिनती नहीं होती। जिसके चित्त में व्याकुलता, क्षोभ, भ्रांति हो, भूख लगी हो, शरीर में पीड़ा हो, स्थान अशुद्ध एवं अन्धकाराच्छन्न हो, उसे वहां जप नहीं करना चाहिए। जूता पहने हुए अथवा पैर फैलाकर जप करना निषिद्ध है। इनके अलावा भी बहुत से नियम हैं, जिन्हें जानकर यथाशक्ति उनका पालन करना चाहिए। ये सब नियम मानस के जप के लिए नहीं हैं जैसा शास्त्रकारों ने कहा है—

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छस्तिष्ठन् स्वपन्नपि ।
मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत् ।।
न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेकृते सदा ।

अर्थात् मन्त्र के रहस्य को जानने वाला जो साधक एकमात्र मन्त्र की ही शरण हो गया है, वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र, सब समय चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, मन्त्र का अभ्यास कर सकता है। मानस जप में किसी भी समय और स्थान को दोषयुक्त नहीं समझा जाता। कुछ मन्त्रों के सम्बन्ध में अवश्य ही विभिन्न विधान हैं। उनके प्रसगं में वे नियम स्पष्ट कर दिए जाएंगे।

शिवतत्व और शैव-साधना

तावत्प्रसीद कुरु नः करुणाममन्दमाक्रन्दमिन्दुधर मर्षय मा विहासीः ।
ब्रूहि त्वमेव भगवन् करुणार्णवेन त्वक्तास्त्वया कमपरं शरणं व्रजामः ।।

भगवान् एक ही हैं, लीलाभेद से उन्हीं के अनेक दिव्य नाम-रूप हैं। साधक अपनी-अपनी प्रकृति और रुचि के अनुसार किसी भी नाम-रूप की उपासना करके भगवान् को प्राप्त कर सकता है। भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों ने जैसे भगवान् विष्णु की आराधना की है, वैसे ही भगवान् शिव की भी की है और यह सिद्ध कर दिया है कि एक ही परम तत्व इन दो रूपों में प्रकाशित है। जिस प्रकार भगवान् विष्णु परब्रह्म, सर्वव्यापी, सृष्टिकर्ता, साकार एवं सगुण भगवान् हैं, वैसे ही भगवान् शिव हैं। कल्पभेद से कभी विष्णुस्वरूप की प्रधानता होती है तो कभी शिवस्वरूप की। वे आप ही एक स्वरूप से स्रष्टा बनते हैं, दूसरे से सृष्टि। आप एक स्वरूप से उपासक बनते हैं, दूसरे से उपास्य! आप पूजते हैं और आप ही पुजवाते हैं। यह सारी लीला उनकी महान रहस्यमयी है। 'यजुर्वेद' की माध्यनिन्दनीय शाखा के 16वें अध्याय में शिवजी के निराकार-साकार स्वरूप का स्पष्ट वर्णन है। 'कैवल्योपनिषद्' में कहा गया है—

तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।।

अर्थात् वे आदि, मध्य और अन्तहीन हैं, निराकार हैं, एक हैं, विभु हैं, चिदानन्द हैं, अद्भुत हैं, स्वामी हैं, उमा के साथ रहने वाले हैं, त्रिनेत्र और नीलकण्ठ हैं तथा परम शान्त हैं।

इस मन में भी भगवान् शिव के निर्गुण-सगुण दोनों स्वरूपों का वर्णन है—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।

पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।।

अर्थात् वे ईश्वरों के भी परम महेश्वर, देवताओं के भी परम देवता, पतियों के भी परम पति, परात्पर, परम पूज्य और भुवनेश्वर हैं। वे भगवान् शिव सत्य, ज्ञान और अनन्त हैं, चिदानन्दस्वरूप हैं, निर्गुण, निरुपाणि, निरंजन तथा अविनाशी हैं। मन की वाणी जिनको न पाकर लौट आती है, अर्थात् जो मन वाणी की सीमा से परे हैं, वही ब्रह्म शिव नाम से पहले कहे गए हैं।

रुद्रो नाम स विज्ञातो लोकानुग्रहकारकः ।
ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपो रूपवानभूत ।।
स एव च शिवः साक्षाद् भक्तवात्सल्यकारकः ।।

संसार में अनुग्रह करने के लिए वे भगवान् शिव रुद्र नाम से जाने जाते हैं। सबके ध्यान में आने के लिए इन्होंने अरूप होने पर भी दिव्य रूप धारण किया। ये भक्तवत्सल रूपधारी (साकार) रुद्र साक्षात् शिव ही हैं। इन्हीं की शक्ति माया प्रकृति है। ये माया के अधिपति मायी महेश्वर हैं। इनकी मायाशक्ति के द्वारा इन्हीं के अवयव भूत जीवों से यह अखिल जगत व्याप्त हो रहा है। इन महेश्वर और इनकी माया से ही ये अखिल विश्व है। वे ही उसके परम आधार, स्रष्टा और अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। इन्हीं परमपुरुष भगवान् का नाम सृष्ट्युन्मुखी होने पर 'अनादि लिंगा' है। इन परम आधेय को आधार देने वाली इन्हीं की अनादि शक्ति देवी का नाम 'योनि' है। ये ही दोनों अखिल ब्रह्माण्ड चराचर के परम कारण हैं। इनके साकार रूप लीला भेद से अनेक प्रकार के हैं जो सभी अधिकारादि से पूज्य और उपास्य हैं। इनका पंचमुख स्वरूप प्रसिद्ध है। पांच मुख हैं—ईशान, घोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात। इसी प्रकार इनके अनेक रूप हैं। यहां तीन स्वरूपों के ध्यान और उपासना के मन्त्र प्रस्तुत हैं। इन्हें अच्छी तरह जानकर विधिपूर्वक ही इनका अनुष्ठान करना उचित है। परन्तु एक मन्त्र का अनुष्ठान सब लोग सभी अवस्थाओं में कर सकते हैं जो बड़ा ही कल्याणकारी है। वह मंत्र है—नमः शिवाय।

बालार्कायुततेजसं धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं
नागेन्द्रैः कृतशेखरं जपवटीं शूलं कपालं करैः ।
खट्वांगं दधतं त्रिनेत्रविलसत्पंचाननं सुन्दरं
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे ।।

अर्थात् भगवान् श्रीनीलकण्ठ दस हजार बालसूर्यों के समान तेजस्वी हैं। सिर पर जटाजूट, ललाट पर अर्धचन्द और मस्तक पर सांपों का मुकुट धारण किए हैं। चारों हाथों में जपमाला, शूल, नर कपाल और खट्वांग मुद्रा है। तीन नेत्र और पांच मुख हैं। अति सुन्दर विग्रह है, बाघाम्बर पहने हुए हैं और सुन्दर पद्म पर विराजित हैं। इन श्रीनीलकण्ठदेव का भजन करना चाहिए। इनका मंत्र है— **प्रों न्रीं ठः ।**

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्रिनेत्रं पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तम् ।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ।।

अर्थात् श्री शंकरजी का शरीर नील मणि और प्रवाल के समान सुन्दर (नील लोहित) है। तीन नेत्र हैं। चारों हाथों में पाश, लाल कमल, कपाल और त्रिशूल हैं। आधे अंक में अम्बिका जी और आधे में महादेवजी हैं। दोनों अलग-अलग शृंगारों से सज्जित हैं, ललाट पर अर्धचन्द्र है और

मस्तक पर मुकुट सुशोभित है। ऐसे स्वरूप को नमस्कार है।' इनका मंत्र है— **रं क्षं मं यं श्रौं ऊं ।**

स्वच्छं स्वच्छारविन्दस्थितमुभयकरे संस्थितौ पूर्णकुम्भौ
द्वाभ्यामेणाक्षमाले निजकरकमले द्वौ घटौ नित्यपूर्णौ ।
द्वाभ्यां तौ च स्रवन्तौ शिरसि शशिकलां चामृतैः प्लावयन्तं
देहं देवो दधानः प्रदिशतु विशदाकल्पजालः श्रियं वः ।।

अर्थात् भगवान् त्र्यम्बक का शरीर अत्यन्त निर्मल है। वे सुन्दर—स्वच्छ कमल पर विराजित हैं। आठ हाथ हैं। दो हाथों में दो अमृत के घड़े हैं, दो हाथों में क्रमशः मृगमुद्रा और अक्षमाला है। दो हाथों में अमृत से भरे दो घड़े और दो हाथ उन घड़ों के अमृत को अपने सिर में स्थित चन्द्रकला पर उड़ेल रहे हैं। ऐसे निर्मल वेश से सुसज्जित भगवान् त्र्यम्बक देव तुम लोगों का मंगल करें। इनका मन्त्र इस प्रकार है—

हौं ॐ जूं सः ॐ भुर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । ऊर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीय मामृतात् हौं ॐ जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ।

श्रीशिवपंचाक्षर स्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्मांगराय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ।।1।।
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूतिजाय तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ।।2।।
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ।।3।।
वसिष्ठकुम्भोद्भव गौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ।।4।।
यक्षस्वरूपाय जटाधाराय पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ।।5।।
पंचाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।।6।।

शिवताण्डवस्तोत्रम्

जटाकटाह-सम्भ्रमभ्रमन्निलिम्प-निर्झरी-
विलोलवीचि-वल्लरी-विराजमानमूर्धनि ।
धगद्-धगद्-धगज्ज्वलल्-ललाटपट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ।।1।।
धराधरेन्द्र-नन्दिनी-विलासबन्धुबन्धुर-
स्फुरद् दिगन्तसन्तति-प्रमोदमान-मानसे ।
कृपाकटाक्ष-धोरणी-निरुद्ध-दुर्धरापदि
क्वचिच्चिदम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि ।।2।।

जटभुजङ्गपिङ्गल-स्फुरत्फणामणिप्रभा-
कदम्बकुङ्कुमद्रव-प्रलिप्त-दिग्वधूमुखे ।
मदान्ध-सिन्धुरस्फुरत्-त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनोविनोदमद्भुतं बिभुर्त भूतभर्तरि ।।3।।
सहस्रलोचन-प्रभृत्यशेष-लेखशेखर-
प्रसूनधूलिधोरणी-विधूसराङ्घ्रिपीठभूः ।
भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः
श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः ।।4।।
ललाट-चत्वरज्वलद्-धनञ्जय-स्फुलिङ्गभा-
निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम् ।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं
महाकपालि सम्पदे शिरो जटालमस्तु नः ।।5।।
कराल-भालपट्टिका-धगद्धगद्धगज्ज्वलद्-
धनञ्जयाधरीकृत-प्रचण्डपञ्चसायके ।
धराधरेन्द्र-नन्दिनी-कुचाग्र-चित्रपत्रक-
प्रकल्पनैक-शिल्पिनि त्रिलोचने मतिर्मम ।।6।।
नवीनमेघ-मण्डली-निरुद्धदुर्धरस्फुरत्-
कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबन्धुकन्धरः ।
निलिम्प-निर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः
कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः ।।7।।
प्रफुल्लनीलपङ्कज-प्रपञ्चकालिमच्छटा-
विडम्बिकण्ठकन्धरा-रुचिप्रबन्धकन्धरम् ।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
गजच्छिदा-ऽन्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ।।8।।
अखर्व-सर्वमङ्गला-कलाकदम्बमञ्जरी-
रसप्रवाहमाधुरी-विजृम्भणामधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
गजान्तका-ऽन्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ।।9।।
जयत्वदभ्र-विभ्रम-भ्रमद्भुजङ्गमस्फुरद्-
धगद्धगद्विनिर्गमत्-कराल-भालहव्यवाट् ।
धिमिद्धिमिद्धिमि-ध्वनन् मृदङ्गतुङ्गमङ्गल-
ध्वनिक्रमप्रवर्तित-प्रचण्डताण्डवः शिवः ।।10।।
दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजो-
र्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्-विपक्ष-पक्षयोः ।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समं प्रवर्तयन् मनः कदा सदाशिवं भजे ।।11।।
कदा निलिम्पनिर्झरी-निकुञ्जकोटरे वसन्

विमुक्तदुमंतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन् ।
विमुक्तलोललोचना-ललाल-भाल-लग्नकः
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ।।12।।
इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं
पठन् स्मरन् ब्रु वन्नरो विशुद्धिमेति सन्ततम् ।
हरे गुरौ स भक्तिमाशु याति नाऽन्यथा गतिं
विमोहनं हि देहिनां तु शङ्करस्य चिन्तनम् ।।13।।
पूजाऽवसानसमये दशवक्त्रगीतं
यः शम्भुपूजनमिदं पठति प्रदोषे ।
तस्य स्थिरां रथ-गजेन्द्र-तुरङ्गयुक्तां
लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ।।14।।

द्वादश ज्योतिर्लिंग स्तोत्रम्

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम् ।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये ।।1।।
श्रीशैलशृंगे विबुधातिसंगे तुलाद्रितुंगेऽपि मुदा वसन्तम् ।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं नमामि संसारसमुद्रसेतुम् ।।2।।
अवन्तिकायां विहितावतारं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम् ।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं वन्दे महाकालमहासुरेशम् ।।3।।
कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे समागमे सज्जनतारणाय ।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्तमोंकारमीशं शिवमेकमीडे ।।4।।
पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने सदा वसन्तं गिरिजासमेतम् ।
सुरासुराराधितपादपद्मं श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि ।।5।।
याम्ये सदंगे नगरेऽतिरम्ये विभूषितांगं विविधैश्च भोगैः ।
सद्भक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये ।।6।।
महाद्रिपार्श्वे च तटे रमन्तं सम्पूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः ।
सुरासुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः केदारमीशं शिवमेकमीडे ।।7।।
सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं गोदावरितीरपवित्रदेशे ।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे ।।8।।
सुताम्रपर्णीजलराशियोगे निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः ।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं रामेश्वराख्यं नियतं नमामि ।।9।।
यं डाकिनीशाकिनिकासमाजे निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च ।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं तं शंकरं भक्तहितं नमामि ।।10।।
सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ।।11।।
इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन् समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम् ।

वन्दे महोदारतरस्वभावं घृष्णेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये ।।12।।
ज्योतिर्मयद्वादशलिंगकानां शिवात्मनां प्रोक्तमिदं क्रमेण ।
स्तोत्रं पठित्वा मनुजोऽतिभक्त्या फलं तदालोक्य निजं भजेच्च ।।13।।

बारह ज्योतिर्लिंगों का परिचय

परमात्मा सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है, ऐसी हमारी मान्यता है। लेकिन उसकी यह विद्यमानता सामान्य व विशेष इन दो रूपों में शास्त्र स्वीकारते हैं। जैसे अग्नितत्व सामान्य रूप से सभी स्थानों पर है, लेकिन वह अपना प्रभाव नहीं दिखाती, जबकि चकमक पत्थर में वह विशेष रूप से है—थोड़े से घर्षण से ही वहां वह प्रगट हो जाती है। यही धारणा इन विशेष लिंग स्थानों के संदर्भ में जाननी चाहिए। इसीलिए इनके दर्शन मात्र से शिवलोक की प्राप्ति होती है। और यदि इन स्थानों पर विशेष साधनाएं की जाएं तो चमत्कारिक प्रभाव उत्पन्न होते हैं।

सोमनाथ

यह ज्योतिर्लिंग सोमनाथ नामक विश्वप्रसिद्ध मन्दिर में स्थापित है। यह मन्दिर गुजरात प्रान्त के काठियावाड़ क्षेत्र में समुद्र के किनारे स्थित है। पहले यह क्षेत्र प्रभासक्षेत्र के नाम से जाना जाता था। यहीं भगवान् श्रीकृष्ण ने जरा नामक व्याध के बाण को निमित्त बनाकर अपनी लाली का संवरण किया था। यहां के ज्योतिर्लिंग की कथा पुराणों में इस प्रकार कही गयी है—

दक्ष प्रजापति की सत्ताईस कन्याएं थीं। उन सभी का विवाह चन्द्र देवता के साथ हुआ था। किन्तु चन्द्रमा का समस्त अनुराग उनमें से एक केवल रोहिणी के प्रति ही रहता था। उनके इस कार्य से दक्ष प्रजापति की अन्य कन्याओं को बहुत कष्ट था। उन्होंने यह व्यथा-कथा अपने पिता को सुनायी। दक्ष प्रजापति ने इसके लिए चन्द्रदेव को बहुत प्रकार से समझाया। किन्तु रोहिणी के वशीभूत उनके हृदय पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्ततः दक्ष ने क्रुद्ध होकर उन्हें 'क्षयी' हो जाने का शाप दे दिया। इस शाप के कारण चन्द्रदेव तत्काल क्षयग्रस्त हो गए।

चन्द्रमा के क्षयग्रस्त होते ही पृथ्वी पर सुधा-शीतलता वर्षण का सारा कार्य रुक गया। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। चन्द्रमा भी बहुत दुःखी और चिन्तित थे। उनकी प्रार्थना सुनकर इन्द्रादि देवता तथा वशिष्ठ आदि ऋषिगण उनके उद्धार के लिए पितामह ब्रह्माजी के पास गए। सारी बातों को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—चन्द्रमा! अपने शाप-विमोचन के लिए अन्य देवों के साथ पवित्र प्रभास क्षेत्र में जाकर मृत्युंजय भगवान् की आराधना करें। उनकी कृपा से अवश्य ही इनका शाप नष्ट हो जाएगा और ये रोगमुक्त हो जाएंगे।

ब्रह्माजी के कथनानुसार चन्द्रदेव ने मृत्युंजय भगवान् की आराधना का सारा कार्य पूरा किया। उन्होंने घोर तपस्या करते हुए दस करोड़ मृत्युंजय मन्त्र का जप किया। इससे प्रसन्न होकर मृत्युंजय भगवान् शिव ने उन्हें अमरत्व का वर प्रदान किया। उन्होंने कहा—चन्द्रदेव! तुम शोक न करो। मेरे वर से तुम्हारा शाप-विमोचन तो होगा ही, साथ ही साथ प्रजापति दक्ष के वचनों की रक्षा भी हो जाएगी। कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन तुम्हारी एक-एक कला क्षीण होगी, किन्तु पुनः शुक्ल पक्ष में उसी क्रम से तुम्हारी एक-एक कला बढ़ जाया करेगी। इस प्रकार प्रत्येक पूर्णिमा को तुम्हें पूर्ण चन्द्रत्व प्राप्त होता रहेगा।

चन्द्रमा को मिलने वाले इस वरदान से सारे लोकों के प्राणी पसन्न हो उठे। सुधाकर चन्द्रदेव पुनः दसों दिशाओं में सुधा वर्षण का कार्य पूर्ववत् करने लगे।

शापमुक्त होकर चन्द्रदेव ने अन्य देवताओं के साथ मिलकर मृत्युंजय भगवान् से प्रार्थना की कि आप माता पार्वती के साथ सदा के लिए प्राणियों के उद्धारार्थ यहां निवास करें। भगवान् शिव उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार करके ज्योतिर्लिंग के रूप में माता पार्वती के साथ तभी से यहां रहने लगे।

पावन प्रभास क्षेत्र में स्थित इस सोमनाथ-ज्योतिर्लिंग की महिमा महाभारत, श्रीमद्‌भागवत तथा स्कन्दपुराणादि में विस्तार से बतायी गयी है। चन्द्रमा का एक नाम सोम भी है, उन्होंने भगवान् शिव को ही अपना नाथ-स्वामी मानकर यहां तपस्या की थी। अतः इस ज्योतिर्लिंग को सोमनाथ कहा जाता है। इसके दर्शन, पूजन एवं आराधना से भक्तों के जन्म-जन्मान्तर के सारे पातक और दुष्कृत्य विनष्ट हो जाते हैं। वे भगवान् शिव और माता पार्वती की अक्षय कृपा का पात्र बन जाते हैं। मोक्ष का मार्ग उनके लिए सहज ही सुलभ हो जाता है। उनके लौकिक-पारलौकिक सारे कृत्य स्वयमेव, सफल हो जाते हैं।

श्रीमल्लिकार्जुन

यह ज्योतिर्लिंग आन्ध्रप्रदेश में कृष्णा नदी के तट पर श्रीशैल पर्वत पर स्थित है। इस पर्वत को दक्षिण का कैलास कहा जाता है। महाभारत, शिवपुराण तथा पद्मपुराण आदि धर्मग्रन्थों में इसकी महिमा और महत्ता का विस्तार से वर्णन किया गया है। पुराणों में इस ज्योतिर्लिंग की कथा इस प्रकार कही गयी है—एक बार की बात है, भगवान् शिव के दोनों पुत्र श्रीगणेश और श्री स्वामी कार्तिकेय विवाह के लिए परस्पर झगड़ने लगे। प्रत्येक का आग्रह था कि पहले मेरा विवाह किया जाए। उन्हें लड़ते-झगड़ते देखकर भगवान् शिव और मां भवानी ने कहा—तुम दोनों में से जो पहले पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाकर यहां वापस लौट आएगा, उसी का विवाह पहले किया जाएगा।

माता-पिता की यह बात सुनकर कार्तिकेयजी अपने वाहन पर आरूढ़ होकर तीव्र गति से पृथ्वी की परिक्रमा के लिए चले गए। परन्तु गणेशजी का वाहन चूहा कितना दौड़ सकता था, इस असमंजस में उन्होंने अपनी बुद्धि का इस्तेमाल किया और निर्णय लिया कि माता-पिता स्वयं आकाश एवं पृथ्वी स्वरूप हैं, अतः इन्हीं का चक्कर क्यों न लगा लिया जाए। यह विचार कर वह माता-पिता की पूजा के बाद सात परिक्रमा करके विजयी हो गए।

पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाकर जब तक स्वामी कार्तिकेय लौटे, तब तक गणेशजी 'सिद्धि' और 'बुद्धि' नामक दो कन्याओं के साथ विवाह कर चुके थे। उन्हें क्षमा तथा लाभ नामक दो पुत्र भी प्राप्त हो चुके थे। यह सब देखकर स्वामी कार्तिकेय अत्यन्त रुष्ट होकर क्रौंच पर्वत पर चले गए। माता पार्वती वहां उन्हें मनाने पहुंचीं। पीछे शंकर भगवान् वहां पहुंच कर ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हुए और तब से मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग के नाम से प्रख्यात हुए। इनकी अर्चना सर्वप्रथम मल्लिका-पुष्पों से की गयी थी। इसलिए इसका नाम मल्लिकार्जुन पड़ा।

एक दूसरी कथा यह भी कही जाती है—किसी समय शैल पर्वत के निकट राजा चन्द्रगुप्त की राजधानी थी। किसी विपत्ति विशेष के निवारणार्थ उसकी एक कन्या महल से निकलकर इस

पर्वतराज के आश्रय में आकर यहां के गोपों के साथ रहने लगी। उस कन्या के पास एक शुभ-सुन्दर श्यामा गौ थी। उस गौ का दूध रात में कोई चोरी से दुह ले जाता था। एक दिन संयोगवश उस राजकन्या ने चोर को दूध दुहते देख लिया और क्रुद्ध होकर उस चोर की ओर दौड़ी। किन्तु गौ के पास पहुंचकर उसने देखा कि वहां शिवलिंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। राजकुमारी ने कुछ काल पश्चात् उस शिवलिंग पर एक विशाल मन्दिर का निर्माण कराया। यही शिवलिंग मल्लिकार्जुन के नाम से प्रसिद्ध है। शिवरात्रि के पर्व पर यहां बहुत बड़ा मेला लगता है।

इस मल्लिकार्जुन शिवलिंग और तीर्थक्षेत्र की पुराणों में बड़ी महिमा बतायी गयी है। यहां आकर शिवलिंग का दर्शन एवं पूजन-अर्चन करने वाले भक्तों की सभी सात्विक मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। उनकी भगवान् शिव के चरणों में स्थिर प्रीति हो जाती है। दैहिक, दैविक तथा भौतिक सभी प्रकार की बाधाओं से वे मुक्त हो जाते हैं। भगवान् शिव की भक्ति मनुष्य को मोक्ष के मार्ग पर ले जाने वाली है।

श्रीमहाकालेश्वर

यह परम पवित्र ज्योतिर्लिंग मध्यप्रदेश के उज्जैन नगर में है। पुण्यसलिला शिप्रा नदी के तट पर अवस्थित यह उज्जैन नगर प्राचीन काल में उज्जयिनी के नाम से विख्यात था। इसे अवन्तिकापुरी भी कहते थे। यह भारत की परम पवित्र सप्तपुरियों में से एक है।

इस ज्योतिर्लिंग की कथा पुराणों में इस प्रकार है—प्राचीन काल में उज्जयिनी में राजा चन्द्रसेन राज्य करते थे। वह परम शिव भक्त थे। एक दिन श्रीकर नामक पांच वर्ष का एक गोप-बालक अपनी मां के साथ उधर से गुजर रहा था। राजा का शिवपूजन देखकर उसे बहुत विस्मय और कौतूहल हुआ। वह स्वयं उसी प्रकार की सामग्रियों से शिवपूजन करने के लिए लालायित हो उठा। सामग्री का साधन न जुटा पाने पर लौटते समय उसने रास्ते से एक पत्थर का टुकड़ा उठा लिया। घर आकर उसी पत्थर को शिवरूप में स्थापित कर पुष्प, चन्दन आदि से परम श्रद्धापूर्वक उसकी पूजा करने लगा। माता भोजन करने के लिए बुलाने आयी, किन्तु वह पूजा छोड़कर उठने के लिए किसी प्रकार तैयार नहीं हुआ। अन्त में माता ने झल्लाकर पत्थर का वह टुकड़ा उठाकर दूर फेंक दिया। इससे वह बालक बहुत दुःखी होकर जोर-जोर से भगवान् शिव को पुकारता हुआ रोने लगा। रोते-रोते अन्त में बेहोश होकर वह वहीं गिर पड़ा।

बालक की अपने प्रति यह भक्ति और प्रेम देखकर आशुतोष भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न हुए। बालक ने ज्यों ही होश में आकर अपने नेत्र खोले तो उसने देखा कि उसके सामने एक बहुत ही भव्य और अति विशाल स्वर्ण एवं रत्नों से बना हुआ मन्दिर खड़ा है। उस मन्दिर के भीतर एक बहुत ही प्रकाशपूर्ण, भास्वर तथा तेजस्वी ज्योतिर्लिंग है। बच्चा प्रसन्नता और आनन्द से विभोर होकर भगवान् शिव की स्तुति करने लगा। माता को जब यह समाचार मिला तब दौड़कर उसने अपने प्यारे लाल को गले से लगा लिया। बाद में राजा चन्द्रसेन ने भी वहां पहुंचकर उस बच्चे की भक्ति और सिद्धि की बड़ी सराहना की। धीरे-धीरे वहां बड़ी भीड़ जुट गयी।

तभी वहां हनुमानजी प्रकट हो गए। उन्होंने कहा—मनुष्यो! भगवान् शंकर शीघ्र फल देने वाले देवताओं में सर्वप्रथम हैं। इस बालक की भक्ति से प्रसन्न होकर उन्होंने ऐसा फल दिया है जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि करोड़ों जन्मों की तपस्या से भी नहीं प्राप्त कर पाते। इस गोप-बालक की

आठवीं पीढ़ी में धर्मात्मा नन्दगोप का जन्म होगा। द्वापरयुग में भगवान् विष्णु कृष्ण अवतार लेकर उनके यहां तरह-तरह की लीलाएं करेंगे। हनुमानजी इतना कहकर अन्तर्धान हो गए। उस स्थान पर नियम से भगवान् शिव की आराधना करते हुए अन्त में श्रीकर गोप और राजा चन्द्रसेन शिवधाम को चले गए।

एक अन्य कथा के अनुसार, किसी समय अवन्तिकापुरी (उज्जयिनी) में एक वेदपाठी, तपोनिष्ठ एवं अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मण रहते थे। एक दिन दूषण नामक एक अत्याचारी असुर उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए वहां आया। ब्रह्माजी के वर से वह बहुत शक्तिशाली हो गया था। उसके अत्याचार से चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। ब्राह्मण को कष्ट में पड़ा देखकर प्राणिमात्र का कल्याण करने वाले भगवान् शंकर वहां प्रकट हो गए। उन्होंने एक हुंकारमात्र से उस दारुण अत्याचारी दानव को वहीं जलाकर भस्म कर दिया। भगवान् वहां हुंकार सहित प्रकट हुए थे, अतः उनका नाम महाकाल पड़ गया। इसीलिए इस परम-पवित्र ज्योतिर्लिंग को महाकाल के नाम से जाना जाता है।

'महाभारत', 'शिवपुराण' एवं 'स्कन्दपुराण' में इस ज्योतिर्लिंग की महिमा का पूरे विस्तार के साथ वर्णन है।

श्री ओंकारेश्वर, श्री अमलेश्वर

यह ज्योतिर्लिंग, मध्यप्रदेश में पवित्र नर्मदा नदी के तट पर अवस्थित है। इस स्थान पर नर्मदा के दो धाराओं में विभक्त हो जाने से बीच में एक टापू सा बन गया है। इस टापू को मान्धाता पर्व या शिवपुरी कहते हैं। नदी की एक धारा इस पर्वत के उत्तर और दूसरी दक्षिण होकर बहती है। दक्षिणी धारा ही मुख्य धारा मानी जाती है। इसी मान्धाता पर्वत पर श्री ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग का मन्दिर है। पूर्वकाल में महाराजा मान्धाता ने इसी पर्वत पर अपनी तपस्या से भगवान् शिव को प्रसन्न किया था। इसी से इस पर्वत को मान्धता पर्वत कहा जाने लगा। इस ज्योतिर्लिंग मन्दिर के भीतर प्रवेश करने के लिए दो कोठरियों से होकर जाना पड़ता है। भीतर अंधेरा रहने के कारण यहां निरन्तर प्रकाश जलता रहता है। ओंकारेश्वरलिंग मनुष्य निर्मित नहीं है। स्वयं प्रकृति ने इसका निर्माण किया है। इसके चारों ओर हमेशा जल भरा रहता है। सम्पूर्ण मान्धाता पर्वत ही भगवान् शिव का रूप माना जाता है। इसी कारण इसे शिवपुरी भी कहते हैं। लोग भक्तिपूर्वक इसकी परिक्रमा करते हैं।

कार्तिक पूर्णिमा के दिन यहां बहुत भारी मेला लगता है। यहां लोग भगवान् शिवजी को चने की दाल चढ़ाते हैं। रात्रि की शयन-आरती का कार्यक्रम बड़ी भव्यता के साथ होता है। तीर्थयात्रियों को इसके दर्शन अवश्य करने चाहिए। इस ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग के दो स्वरूप हैं। एक को अमलेश्वर के नाम से जाना जाता है। यह नर्मदा के दक्षिण तट पर ओंकारेश्वर से थोड़ी दूर हटकर है। पृथक होते हुए भी दोनों की गणना एक ही में की जाती है।

लिंग के दो स्वरूप होने की कथा पुराणों में इस प्रकार दी गयी है—एक बार विन्ध्यपर्वत ने पार्थिव अर्चना के साथ भगवान् शिव की छः मास तक कठिन उपासना की। उनकी इस उपासना से प्रसन्न होकर भूतभावन शंकरजी वहां प्रकट हुए। उन्होंने विन्ध्य को उनके मनोवांछित वर प्रदान किए। विन्ध्याचल की इस वर प्राप्ति की प्रार्थना पर शिवजी ने अपने ओंकारेश्वर नामक

लिंग के दो भाग किए। एक का नाम ओंकारेश्वर और दूसरे का नाम अमलेश्वर पड़ा। दोनों लिंगों का स्थान और मन्दिर पृथक होते हुए भी दोनों की सत्ता एवं स्वरूप एक ही माना गया है।

'शिवपुराण' में इस ज्योतिर्लिंग की महिमा का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में ओंकारेश्वर और श्री अमलेश्वर के दर्शन का पुण्य बताते हुए नर्मदा-स्नान के पावन फल का भी उल्लेख है। प्रत्येक मनुष्य को इस क्षेत्र की यात्रा अवश्य करनी चाहिए। लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के उत्तम फलों की प्राप्ति भगवान् ओंकारेश्वर की कृपा से सहज ही हो जाती है। अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष के सभी साधन उसके लिए सहज ही सुलभ हो जाते हैं। अन्ततः उसे लोकेश्वर महादेव भगवान् शिव के परमधाम की प्राप्ति भी हो जाती है।

भगवान् शिव तो भक्तों पर अकारण ही कृपा करने वाले हैं। वह अवढरदानी हैं। फिर जो लोग यहां आकर उनके दर्शन करते हैं, उनके लिए तो सभी प्रकार के उत्तम पुण्य मार्ग सदा-सदा के लिए खुल जाते हैं।

श्री केदारनाथ

पुराणों एवं शास्त्रों में श्री केदारेश्वर ज्योतिर्लिंग की महिमा का वर्णन बारम्बार किया गया है। यह ज्योतिर्लिंग पर्वतराज हिमालय की केदार नामक चोटी पर अवस्थित है। यहां की प्राकृतिक शोभा देखते ही बनती है। इस चोटी के पश्चिम भाग में पुण्यमती मन्दाकिनी नदी के तट पर स्थित केदारेश्वर महादेव का मन्दिर अपने स्वरूप से ही हमें धर्म और अध्यात्म की ओर बढ़ने का सन्देश देता है। चोटी के पूर्व में अलकनन्दा के सुरम्य तट पर बद्रीनाथ का परम प्रसिद्ध मन्दिर है। अलकनन्दा और मन्दाकिनी—ये दोनों नदियां नीचे रुद्रप्रयाग में आकर मिल जाती हैं। दोनों नदियों की यह संयुक्त धारा उससे नीचे देवप्रयाग में आकर भागीरथी गंगा से मिल जाती हैं। इस प्रकार परम पावन गंगाजी में स्नान करने वालों को श्री केदारेश्वर और बद्रीनाथ के चरणों को धोने वाले जल का स्पर्श सुलभ हो जाता है।

इस अतीव पवित्र-पुण्यफलदायी ज्योतिर्लिंग की स्थापना के विषय में पुराणों में यह कथा दी गयी है—अनन्त रत्नों के जनक, अतिशय पवित्र तपस्वियों, ऋषियों, सिद्धों एवं देवताओं की निवास-भूमि पर्वतराज हिमालय के केदार नामक अत्यन्त शोभा वाली शृंग पर महातपस्वी श्री नर और नारायण ने बहुत वर्षों तक भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए बड़ी कठिन तपस्या की। कई हजार वर्षों तक वे निराहार रहकर एक पैर पर खड़े होकर शिवनाम का जप करते रहे। इस तपस्या से सारे लोकों में उनकी चर्चा होने लगी। देवता, ऋषि-मुनि, यक्ष, गन्धर्व—सभी उनकी साधना और संयम की प्रशंसा करने लगे। चराचर के पितामह ब्रह्माजी और सबका पालन-पोषण करने वाले भगवान् विष्णु ने भी महातपस्वी नर-नारायण के तप की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अन्त में अवढरदानी भूतभावन भगवान् शंकरजी भी उनकी उस कठिन साधना से प्रसन्न हो उठे। उन्होंने प्रत्यक्ष प्रकट होकर उन दोनों ऋषियों को दर्शन दिया। नर और नारायण ने भगवान् भोलेनाथ के दर्शन से भाव-विह्वल और आनन्द विभोर होकर बहुत प्रकार की पवित्र स्तुतियों एवं मन्त्रों से उनकी पूजा-अर्चना की। तब भगवान् शिव ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे वर मांगने को कहा। भगवान् शिव की यह बात सुनकर उन दोनों ऋषियों ने उनसे कहा—'देवाधिदेव महादेव!

यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो भक्तों के कल्याण हेतु आप सदा-सर्वदा के लिए अपने स्वरूप को यहां स्थापित करने की कृपा करें। आपके यहां निवास करने से यह स्थान सभी प्रकार से अत्यन्त पवित्र हो उठेगा। यहां आकर आपका दर्शन-पूजन करने वाले मनुष्यों को आपकी अविनाशिनी भक्ति प्राप्त हुआ करेगी। प्रभो! आप मनुष्यों के कल्याण और उनके उद्धार के लिए अपने स्वरूप को यहां स्थापित करने की हमारी प्रार्थना अवश्य ही स्वीकार करें।

नर-नारायण की प्रार्थना सुनकर भगवान् शिव ने ज्योतिर्लिंग के रूप में वहां वास करना स्वीकार किया। केदार नामक हिमालय शृंग पर अवस्थित होने के कारण इस ज्योतिर्लिंग को श्री केदारेश्वर ज्योतिर्लिंग के रूप में जाना जाता है। भगवान् शिव से वर मांगते हुए नर-नारायण ने इस ज्योतिर्लिंग और इस पवित्र स्थान के विषय में जो कुछ कहा है, वह अक्षरशः सत्य है। इस ज्योतिर्लिंग के दर्शन-पूजन तथा यहां स्नान करने से भक्तों को लौकिक फलों की प्राप्ति होने के साथ-साथ अचल शिवभक्ति तथा मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है।

श्री भीमेश्वर

यह ज्योतिर्लिंग गोहाटी के पास ब्रह्मपुर पहाड़ी पर अवस्थित है। इस ज्योतिर्लिंग की स्थापना के विषय में 'शिवपुराण' में यह कथा दी गयी है—प्राचीन काल में भीम नामक एक महाप्रतापी राक्षस था। वह कामरूप प्रदेश में अपनी मां के साथ रहता था। वह महाबली राक्षस, राक्षसराज रावण के छोटे भाई कुम्भकर्ण का पुत्र था। लेकिन उसने अपने पिता को कभी नहीं देखा था। उसके होश संभालने के पूर्व ही भगवान् राम के द्वारा कुम्भकर्ण का वध कर दिया गया था। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब उसकी माता ने उसे सारी बातें बतायीं। भगवान् विष्णु के अवतार श्रीरामचन्द्रजी द्वारा अपने पिता के वध की बात सुनकर वह महाबली राक्षस अत्यन्त सन्तप्त और क्रुद्ध हो उठा। अब वह निरन्तर भगवान् श्रीहरि के वध का उपाय सोचने लगा।

राक्षस भीम ने अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए एक हजार वर्ष तक कठिन तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उसे लोकविजयी होने का वर दे दिया। अब वह राक्षस ब्रह्माजी के उस वर के प्रभाव से सारे प्राणियों को पीड़ित करने लगा। उसने देवलोक पर आक्रमण करके इन्द्र आदि सारे देवताओं को वहां से बाहर निकाल दिया। पूरे देवलोक पर अब भीम का अधिकार हो गया। इसके बाद उसने भगवान् श्रीहरि को भी युद्ध में परास्त किया। श्रीहरि को पराजित करने के पश्चात् उसने कामरूप के परम शिवभक्त राजा सुदक्षिण पर आक्रमण करके उन्हें मन्त्रियों एवं अनुचरों सहित बन्दी बना लिया।

इस प्रकार धीरे-धीरे भीम ने सारे लोकों पर अपना अधिकार जमा लिया। उसके अत्याचार से वेदों, पुराणों, शास्त्रों और स्मृतियों का सर्वत्र एकदम लोप हो गया। वह किसी को कोई धार्मिक कृत्य नहीं करने देता था। अतः यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय आदि सारे काम एकदम रुक गए। उसके अत्याचार की भीषणता से घबराकर ऋषि-मुनि एवं देवगण भगवान् शिव की शरण में गए और उनसे अपना तथा अन्य प्राणियों का दुःख कहा। उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शिव ने कहा—मैं शीघ्र ही उस अत्याचारी राक्षस का संहार करूंगा। उसने मेरे प्रिय भक्त, कामरूप-नरेश सुदक्षिण को भी सेवकों सहित बन्दी बना लिया है। वह अत्याचारी असुर अब और अधिक जीवित रहने का अधिकारी नहीं है। भगवान् शिव से यह आश्वासन पाकर ऋषि-मुनि और देवगण

अपने-अपने स्थान को वापस लौट गए।

इधर, राक्षस भीम के बन्दीगृह में पड़े हुए राजा सुदक्षिण ने भगवान् शिव का ध्यान किया। वे अपने सामने पार्थिव शिवलिंग रखकर अर्चना कर रहे थे। उन्हें ऐसा करते देख क्रोधोन्मत्त राक्षस भीम ने अपनी तलवार से उस पार्थिव शिवलिंग पर प्रहार किया। परन्तु उसकी तलवार का स्पर्श उस लिंग से हो भी नहीं पाया था कि उसके भीतर से साक्षात् भूतभावन शंकरजी वहां प्रकट हो गए। उन्होंने अपनी हुंकार मात्र से उस राक्षस को वहीं जलाकर भस्म कर दिया। भगवान् शिवजी का यह अद्‌भुत कृत्य देखकर सारे ऋषि-मुनि और देवगण वहां एकत्र होकर उनकी स्तुति करने लगे।

उन लोगों ने भगवान् शिव से प्रार्थना की हे महादेव! आप लोक-कल्याणार्थ अब सदा के लिए इसे परम पवित्र पुण्यक्षेत्र बनाएं। भगवान् शिव ने उन सबकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह वहां ज्योतिर्लिंग के रूप में सदा के लिए निवास करने लगे। उनका यह ज्योतिर्लिंग भीमेश्वर के नाम से विख्यात हुआ। 'शिवपुराण' में यह कथा पूरे विस्तार से दी गयी है। इस ज्योतिर्लिंग की महिमा अमोघ है। इसके दर्शन का फल कभी व्यर्थ नहीं जाता। भक्तों की सभी मनोकामनाएं यहां आकर पूर्ण हो जाती हैं।

श्री विश्वेश्वर

यह ज्योतिर्लिंग उत्तर भारत की प्रसिद्ध नगरी काशी में स्थित है। इस नगरी का प्रलयकाल में भी लोप नहीं होता। उस समय भगवान् अपनी वासभूमि इस पवित्र नगरी को अपने त्रिशूल परे धारण कर लेते हैं और सृष्टिकाल आने पर पुनः यथास्थान रख देते हैं। सृष्टि की आदि स्थली भी इसी नगरी को बताया जाता है। भगवान् विष्णु ने इसी स्थान पर सृष्टि कामना से तपस्या करके भगवान् शंकरजी को प्रसन्न किया था। अगस्त्य मुनि ने भी इसी स्थान पर अपनी तपस्या द्वारा भगवान् शिव को सन्तुष्ट किया था। इस पवित्र नगरी की महिमा ऐसी है कि यहां जो भी प्राणी अपना प्राण त्यागता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। भगवान् शंकर उसके कान में 'तारक' मन्त्र का उपदेश करते हैं। इस मन्त्र के प्रभाव से पापी से पापी प्राणी भी सहज ही भवसागर की बाधाओं से पार हो जाते हैं।

विषयासक्तचित्तेऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ।
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारे न पुनर्भवेत् ।।

अर्थात् विषयों में आसक्त, अधर्मनिरत व्यक्ति भी यदि इस काशी क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त हो तो उसे भी पुनः संसार-बन्ध में नहीं आना पड़ता। 'मत्स्यपुराण' में इस नगरी का महत्व बताते हुए कहा गया है—जप, ध्यान-ज्ञान रहित तथा दुःखों से पीड़ित मनुष्यों के लिए काशी ही एकमात्र परमगति है। श्री विश्वेश्वर के आनन्द-कानन में दशाश्वमेध, लोलार्क, बिन्दुमाधव, केशव और मणिकर्णिका—ये पांच प्रधान तीर्थ हैं। इसी कारण इसे 'अविमुक्त क्षेत्र' कहा जाता है।

जपध्यानविहीनानां ज्ञानवर्जितचेतसाम् ।
ततो दुःखाहतानां च गतिर्वाराणसी नृणाम ।।
तीर्थानां पंचकं सारं विश्वेशानन्दकानने ।
दशाश्वमेधं लोलार्कः केशवो बिन्दुमाधवः ।।

पंचमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका ।
एभिस्तु तीर्थवर्यैश्च वर्ण्यते ह्यविमुक्तकम् ।।

इस परम-पवित्र नगरी के उत्तर की तरफ ऊंकारखण्ड, दक्षिण में केदारखण्ड और बीच में विश्वेश्वर खण्ड हैं। प्रसिद्ध विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग इसी खण्ड में अवस्थित हैं। पुराणों में इस ज्योतिर्लिंग के सम्बन्ध में यह कथा दी गयी है—भगवान् शंकर पार्वतीजी का पाणिग्रहण करके कैलास पर्वत पर रह रहे थे, लेकिन पिता के घर में ही विवाहित जीवन बिताना पार्वतीजी को अच्छा नहीं लगता था। एक दिन उन्होंने भगवान् शिव से कहा—आप मुझे अपने घर ले चलिए। यहां रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। सारी लड़कियां शादी के बाद अपने पति के घर जाती हैं, मुझे पिता के घर में ही रहना पड़ रहा है। भगवान् शिव ने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। वह माता पार्वती को साथ लेकर अपनी पवित्र नगरी काशी में आ गए। यहां आकर वे विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थापित हो गए।

शास्त्रों में इस ज्योतिर्लिंग की महिमा का वर्णन पुष्कल रूपों में किया गया है। इस ज्योतिर्लिंग के दर्शन-पूजन द्वारा मनुष्य समस्त पापों एवं तापों से छुटकारा पा जाता है। प्रतिदिन नियम से श्री विश्वेश्वर के दर्शन करने वाले भक्तों के योगक्षेम का समस्त भार भूतभावन भगवान् शंकर अपने ऊपर ले लेते हैं। ऐसा भक्त उनके परमधाम का अधिकारी बन जाता है। भगवान् शिवजी की कृपा उस पर सदैव बनी रहती है। रोग-शोक, दुःख-दैन्य उसके पास भूलकर भी नहीं जाते।

श्री त्र्यम्बकेश्वर

यह ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र प्रांत में नासिक से 30 किमी. पश्चिम में अवस्थित है। इस ज्योतिर्लिंग की स्थापना के विषय में 'शिवपुराण' में यह कथा दी गयी है—एक बार महर्षि गौतम के तपोवन में रहने वाली ब्राह्मणों की पत्नियां किसी बात पर उनकी पत्नी अहिल्या से नाराज हो गयीं। उन्होंने अपने पतियों को ऋषि गौतम का अपकार करने के लिए प्रेरित किया। इन ब्राह्मणों ने इसके निमित्त भगवान् गणेशजी की आराधना की। उनकी आराधना से प्रसन्न हो गणेशजी ने प्रकट होकर उनसे वर मांगने को कहा। उन ब्राह्मणों ने कहा—प्रभो! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो किसी प्रकार ऋषि गौतम को इस आश्रम से बाहर निकाल दें। ब्राह्मणों की यह बात सुनकर गणेशजी ने उनसे ऐसा वर न मांगने के लिए समझाया। किन्तु वे अपने आग्रह पर अटल रहे।

अन्ततः गणेशजी को विवश होकर उनकी बात माननी पड़ी। अपने भक्तों का मन रखने के लिए वे एक दुर्बल गाय का रूप धारण करके ऋषि गौतम के खेत में जाकर चरने लगे। गाय को फसल चरते देखकर ऋषि बड़ी नरमी के साथ हाथ में तृण लेकर उसे हांकने के लिए लपके। उन तृणों का स्पर्श होते ही वह गाय वहीं मरकर गिर पड़ी। अब तो बड़ा हाहाकार मचा। सारे ब्राह्मण एकत्र होकर गो हत्यारा कहकर ऋषि गौतम की भूरि-भूरि भर्त्सना करने लगे। ऋषि गौतम इस घटना से बहुत आश्चर्यचकित और दुःखी थे। अब उन ब्राह्मणों ने उनसे कहा—तुम्हें यह आश्रम छोड़कर कहीं दूर चले जाना चाहिए। गो हत्यारे के निकट रहने से हमें भी पाप लगेगा।

विवश होकर ऋषि गौतम अपनी पत्नी अहिल्या के साथ वहां से एक कोस दूर जाकर रहने लगे। किन्तु उन ब्राह्मणों ने वहां भी उनका रहना दूभर कर दिया। वे कहने लगे—गोहत्या के

कारण तुम्हें अब वेद-पाठ और यज्ञादि कार्य करने का कोई अधिकार नहीं है। अतः यह सब भी मत करो। तब अत्यन्त कातर भाव से ऋषि गौतम ने उन ब्राह्मणों से प्रार्थना की आप लोग मेरे प्रायश्चित और उद्धार का कोई उपाय बताएं।

ब्राह्मणों ने कहा—गौतम! तुम अपने पाप को सर्वत्र सबको बताते हुए तीन बार पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करो। फिर लौटकर यहां एक महीने तक व्रत करो। इसके बाद 'ब्रह्मगिरि' की 101 परिक्रमा करने के बाद तुम्हारी शुद्धि होगी अथवा यहां गंगाजी को लाकर उनके जल से स्नान करके एक करोड़ पार्थिव शिवलिंगों से शिवजी की आराधना करो। इसके बाद पुनः गंगाजी में स्नान करके इस ब्रह्मगिरि की 11 बार परिक्रमा करो। फिर सौ घड़ों के पवित्र जल से पार्थिव शिवलिंग को स्नान कराने से तुम्हारा उद्धार होगा।

ब्राह्मणों के कथनानुसार महर्षि गौतम वे सारे कृत्य पूरे करके पत्नी के साथ पूर्णतः तल्लीन होकर भगवान् शिव की आराधना करने लगे। इससे प्रसन्न हो भगवान् शिव ने प्रकट होकर उनसे वर मांगने को कहा। महर्षि गौतम ने कहा—भगवन्! मैं यही चाहता हूं कि आप मुझे गोहत्या के पाप से मुक्त कर दें। भगवान् शिव ने कहा—हे गौतम! तुम सदैव, सर्वथा निष्पाप हो। गोहत्या तुम्हें छलपूर्वक लगायी गयी थी। ऐसा करवाने वाले तुम्हारे आश्रम के दुष्ट ब्राह्मणों को मैं दण्ड देना चाहता हूं। गौतम ने कहा—प्रभो! उन्हीं के निमित्त तो मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। अब उन्हें मेरा परमहित समझकर उन पर आप क्रोध न करें।

बहुत से ऋषियों, मुनियों और देवगणों ने वहां एकत्र होकर गौतम की बात का अनुमोदन किया। फिर भगवान् शिव से सदा ज्योतिर्लिंग के रूप में वहां स्थित हो निवास करने की प्रार्थना की। वे उनकी बात मानकर वहां त्र्यम्बक ज्योतिर्लिंग के नाम से स्थित हो गए। गौतमजी द्वारा लायी गयी गंगाजी भी वहीं पास में गोदावरी नाम से प्रवाहित होने लगीं। यह ज्योतिर्लिंग समस्त पुण्यों को प्रदान करने वाला है।

श्री वैद्यनाथ

यह ज्योतिर्लिंग बिहार प्रान्त के सन्थाल परगने में स्थित है। शास्त्र और लोक दोनों में इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। इसकी महिमा का वर्णन भूरिशः किया गया है। इसकी स्थापना के विषय में यह कथा कही जाती है—एक बार राक्षसराज रावण ने हिमालय पर जाकर भगवान् शिव का दर्शन प्राप्त करने के लिए बड़ी घोर तपस्या की। उसने एक-एक करके अपने सिर काटकर शिवलिंग पर चढ़ाने शुरू किए। इस प्रकार उसने अपने नौ सिर वहां काटकर चढ़ा डाले। जब वह अपना दसवां और अन्तिम सिर काटकर चढ़ाने के लिए उद्यत हुआ, तब भगवान् शिव ने अति प्रसन्न हो रावण का हाथ पकड़कर उसे वैसा करने से रोक दिया। उसके नौ सिर भी पहले की तरह जोड़ दिए और अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे वर मांगने को कहा।

रावण ने वर के रूप में भगवान् शिव से उस लिंग को अपनी राजधानी लंका में ले जाने की आज्ञा मांगी। भगवान् शिव ने उसे यह वरदान तो दे दिया लेकिन एक शर्त भी उसके साथ लगा दिया। उन्होंने कहा—तुम इसे ले जा सकते हो, किन्तु यदि रास्ते में इसे कहीं रख दोगे तो यह वहीं अचल हो जाएगा। फिर तुम इसे उठा नहीं सकोगे। रावण इस बात को स्वीकार कर उस शिवलिंग को उठाकर लंका के लिए चल पड़ा। चलते-चलते एक जगह मार्ग में उसे लघुशंका करने की

आवश्यकता महसूस हुई। वह उस शिवलिंग को एक अहीर के हाथ में थमाकर लघुशंका की निवृत्ति के लिए चल पड़ा।

उस अहीर को शिवलिंग का भार बहुत अधिक मालूम दिया, वह उसे संभाल नहीं सका। विवश होकर उसने उसे वहीं भूमि पर रख दिया। रावण जब लौटकर आया तो फिर बहुत प्रयत्न करने के बाद भी उस शिवलिंग को किसी प्रकार उठा नहीं सका। अन्त में निरुपाय होकर उस पवित्र शिवलिंग पर अपने अंगूठे का निशान बनाकर उसे वहीं छोड़ लंका लौट गया। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने वहां आकर उस शिवलिंग का पूजन किया। इस प्रकार वहां उसकी प्रतिष्ठा कर वे लोग अपने-अपने धाम को लौट गए। यही ज्योतिर्लिंग श्री वैद्यनाथ के नाम से जाना जाता है।

वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग अनन्त फलों को देने वाला है। यह ग्यारह अंगुल ऊंचा है। इसके ऊपर अंगूठे के आकार का गढ़ा है। कहा जाता है कि यह वही निशान है जिसे रावण ने अपने अंगूठे से बनाया था। यहां दूर-दूर से तीर्थों का जल लाकर चढ़ाने का विधान है। रोग-मुक्ति के लिए भी इस ज्योतिर्लिंग की महिमा बहुत प्रसिद्ध है।

पुराणों में बताया गया है कि जो मनुष्य इस ज्योतिर्लिंग का दर्शन करता है, उसे अपने समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है। उस पर भगवान् शिव की कृपा सदा बनी रहती है। दैहिक, दैविक एवं भौतिक कष्ट उसके पास भूलकर भी नहीं आते। भगवान् भूतभावन की कृपा से वह सारी बाधाओं, समस्त रोगों तथा शोकों से छुटकारा पा जाता है। उसे परम शान्तिदायक शिवधाम की प्राप्ति होती है। शिव का कृपापात्र व्यक्ति सारे संसार के लिए सुखदायक होता है। उसके सारे कृत्य भगवान् शिव को समर्पित करके किए जाते हैं। सारे संसार में उसे भगवान् शिव के ही दर्शन होते हैं। सारे प्राणियों के प्रति उसमें ममता और दया का भाव होता है। सभी भेदों में उसकी अभेद दृष्टि हो जाती है। किसी भी प्राणी के प्रति उसमें ईर्ष्या, द्वेष, वैर, घृणा एवं क्रोध का अभाव हो जाता है। ऐसा भक्त सदैव सभी के कल्याण और हित में लगा रहता है। भगवान् शिव की भक्ति का यह अमोघ फल हमें अवश्य ही प्राप्त करना चाहिए।

श्री नागेश्वर

भगवान् शिव का यह प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग गुजरात प्रान्त में द्वारिकापुरी से लगभग 17 मील की दूरी पर स्थित है। इस ज्योतिर्लिंग के सम्बन्ध में पुराणों में यह कथा दी हुई है—सुप्रिय नामक एक बड़ा धर्मात्मा और सदाचारी वैश्य था। वह भगवान् शिव का अनन्य भक्त था। वह निरन्तर उनके आराधन, पूजन और ध्यान में तल्लीन रहता था। अपने सारे कार्य वह भगवान् शिव को अर्पित करके करता था। मन, वचन एवं कर्म से वह पूर्णतः शिवार्चन में ही रत रहता था। उसकी इस शिवभक्ति से दारुक नामक एक राक्षस बहुत क्रुद्ध रहता था। उसे भगवान् शिव की यह पूजा किसी प्रकार भी अच्छी नहीं लगती थी। वह निरन्तर इस बात का प्रयत्न करता था कि उस सुप्रिय की पूजा-अर्चना में विघ्न पहुंचे।

एक बार सुप्रिय नौका पर सवार होकर कहीं जा रहा था। तब उस दुष्ट राक्षस दारुक ने यह उपयुक्त अवसर देखकर उस नौका पर आक्रमण कर दिया। उसने नौका में सवार सभी यात्रियों को पकड़कर अपनी राजधानी में ले जाकर कैद कर दिया। सुप्रिय कारागार में भी अपने नित्य

नियम के अनुसार भगवान् शिव की पूजा-आराधना करने लगा। अन्य बन्दी यात्रियों को भी वह शिवभक्ति की प्रेरणा देने लगा। दारुक ने जब अपने सेवकों से सुप्रिय के विषय में यह समाचार सुना तब वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर कारागार में पहुंचा। उस समय सुप्रिय भगवान् शिव के चरणों में ध्यान लगाए दोनों आंखें बन्द किए बैठा था। उस राक्षस ने उसकी यह मुद्रा देखकर अत्यन्त भीषण स्वर में उसे डांटते हुए कहा—अरे दुष्ट वैश्य! तू आंखें बन्द कर इस समय यहां कौन से उपद्रव और षड्यन्त्र करने की बातें सोच रहा है?

उसके यह कहने पर भी धर्मात्मा शिवभक्त सुप्रिय वैश्य की समाधि भंग नहीं हुई। अब तो वह दारुक नामक महाभयानक राक्षस क्रोध से एकदम बावला हो उठा। उसने तत्काल अपने अनुचर राक्षसों को सुप्रिय वैश्य तथा अन्य सभी बन्दियों को मार डालने का आदेश दे दिया। उसके इस आदेश से सुप्रिय जरा भी विचलित और भयभीत नहीं हुआ। वह एकनिष्ठ भाव और एकाग्र मन से अपनी तथा अन्य बन्दियों की मुक्ति के लिए भगवान् शिव को पुकारने लगा। उसे यह पूर्ण विश्वास था कि मेरे आराध्य भगवान् शिवजी इस विपत्ति से मुझे अवश्य ही छुटकारा दिलाएंगे।

सुप्रिय की प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकर तत्क्षण उस कारागार में एक ऊंचे स्थान में एक चमकते हुए सिंहासन पर स्थित होकर ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हो गए। इस प्रकार उन्होंने सुप्रिय को दर्शन देकर उसे अपना पाशुपत अस्त्र भी प्रदान किया। उस अस्त्र से राक्षस दारुक तथा उसके सहायकों का वध करके सुप्रिय शिवधाम को चला गया। भगवान् शिव के आदेशानुसार ही इस ज्योतिर्लिंग का नाम नागेश्वर पड़ा। शास्त्रों में इस पवित्र ज्योतिर्लिंग के दर्शन की बड़ी महिमा बतायी गयी है।

एतद् यः शृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात् ।
सर्वान् कामानियाद् धीमान् महापातकनाशनम् ।।

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसकी उत्पत्ति और माहात्म्य की कथा सुनेगा, वह सारे पापों से छुटकारा पाकर समस्त सुखों का भोग करता हुआ अन्त में भगवान् शिव के परम-पवित्र दिव्य धाम को प्राप्त होगा।

श्री सेतुबन्ध रामेश्वर

इस ज्योतिर्लिंग की स्थापना मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने की थी। इसके विषय में यह कथा कही जाती है—जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लंका पर चढ़ाई करने के लिए जा रहे थे, तब इसी स्थान पर उन्होंने समुद्रतट की बालुका से शिवलिंग बनाकर उसका पूजन किया था। ऐसा भी कहा जाता है कि इस स्थान पर ठहरकर भगवान् राम जल पी रहे थे कि आकाशवाणी हुई—'मेरी पूजा किए बिना ही जल पीते हो? इस वाणी को सुनकर भगवान् श्रीराम ने बालुका से शिवलिंग बनाकर उसकी पूजा की तथा रावण पर विजय प्राप्त करने का वर मांगा। उन्होंने प्रसन्नता के साथ यह वर भगवान् श्रीराम को दे दिया। भगवान् शिव ने लोक-कल्याणार्थ ज्योतिर्लिंग के रूप में वहां निवास करने की सबकी प्रार्थना भी स्वीकार कर ली। तभी से यह ज्योतिर्लिंग यहां विराजमान है।

इस ज्योतिर्लिंग के विषय में एक दूसरी कथा इस प्रकार कही जाती है—जब भगवान् श्रीराम

रावण का वध करके लौट रहे थे तो उन्होंने अपना पड़ाव समुद्र के इस पार गन्धमादन पर्वत पर डाला था। वहां बहुत से ऋषि और मुनिगण उनके दर्शन के लिए आए। उन सभी का आदर-सत्कार करते हुए भगवान् राम ने उनसे कहा—मुनि पुलस्त्य के वंशज रावण का वध करने के कारण मुझ पर ब्रह्महत्या का पाप लग गया है। आप लोग मुझे इससे निवृत्ति का कोई उपाय बताइए। यह बात सुनकर वहां उपस्थित सारे ऋषियों-मुनियों ने एक स्वर से कहा—आप यहां शिवलिंग की स्थापना कीजिए। इससे आप ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा पा जाएंगे।

भगवान् श्रीराम ने उनकी यह बात स्वीकार कर हनुमानजी को कैलास पर्वत पर जाकर वहां से शिवलिंग लाने का आदेश दिया। हनुमानजी तत्काल ही वहां जा पहुंचे, किन्तु उन्हें उस समय वहां भगवान् शिव के दर्शन नहीं हुए। अतः वे उनका दर्शन प्राप्त करने के लिए वहीं बैठकर तपस्या करने लगे। कुछ काल पश्चात् शिवजी के दर्शन प्राप्त कर हनुमानजी शिवलिंग लेकर लौटे, किन्तु तब तक शुभ मुहूर्त बीत जाने की आशंका से यहां सीताजी द्वारा लिंग-स्थापन कराया जा चुका था।

हनुमानजी को यह सब देखकर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने अपनी व्यथा भगवान् श्रीराम से कह सुनायी। भगवान् राम ने पहले ही लिंग स्थापित किए जाने का कारण हनुमानजी को बताते हुए कहा—यदि तुम चाहो तो इस लिंग को यहां से उखाड़कर हटा दो। हनुमानजी अत्यन्त प्रसन्न होकर उस लिंग को उखाड़ने लगे, किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी वह टस-से-मस नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने उस शिवलिंग को अपनी पूंछ में लपेटकर उखाड़ने का प्रयत्न किया, फिर भी वह ज्यों का त्यों अडिग बना रहा। उलटे हनुमानजी ही धक्का खाकर एक कोस दूर गिरकर मूर्च्छित हो गए। उनके शरीर से रक्त बहने लगा। यह देखकर सभी लोग व्याकुल हो उठे। माता सीताजी पुत्र से भी प्यारे अपने हनुमान के शरीर पर हाथ फेरती हुई विलाप करने लगीं। मूर्च्छा दूर होने पर हनुमानजी ने भगवान् श्रीराम को परब्रह्म के रूप में सामने देखा। भगवान् राम ने उन्हें शंकरजी की महिमा बताकर उनका प्रबोध किया। हनुमानजी द्वारा लाए गए लिंग की स्थापना भी वहीं पास में करवा दी। 'स्कन्दपुराण' में इसकी महिमा विस्तार से वर्णित है।

श्री घुश्मेश्वर

द्वादश ज्योतिर्लिंगों में यह अन्तिम ज्योतिर्लिंग है। इसे घुश्मेश्वर, घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर भी कहा जाता है। यह महाराष्ट्र प्रदेश में दौलताबाद से बारह मील दूर वेरुलगांव के पास अवस्थित है। इस ज्योतिर्लिंग के विषय में पुराणों में यह कथा दी गयी है—दक्षिण देश में देवगिरि पर्वत के निकट सुधर्मा नामक एक अत्यन्त तेजस्वी एवं तपोनिष्ठ ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुदेहा था। दोनों में परस्पर बहुत प्रेम था। उन्हें किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं था, लेकिन उनके कोई सन्तान नहीं थी। ज्योतिष-गणना से पता चला कि सुदेहा के गर्भ से सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती। सुदेहा सन्तान की बहुत ही इच्छुक थी। उसने सुधर्मा का दूसरा विवाह अपनी छोटी बहन से करवाने का निर्णय किया। पहले तो ब्राह्मण देवता को यह बात नहीं जंची, लेकिन अन्त में उन्हें पत्नी की जिद के आगे झुकना ही पड़ा। वे उसका आग्रह टाल नहीं पाए और पत्नी की छोटी बहन घुश्मा को ब्याह कर घर ले आए।

घुश्मा अत्यन्त विनीत और सदाचारिणी स्त्री थी। वह भगवान् शिव की अनन्य भक्ता थी।

प्रतिदिन एक सौ एक पार्थिव शिवलिंग बनाकर हृदय की सच्ची निष्ठा के साथ उनका पूजन करती थी। भगवान् शिवजी की कृपा से थोड़े ही दिन बाद उसके गर्भ से अत्यन्त सुन्दर और स्वस्थ बालक ने जन्म लिया। बच्चे के जन्म से सुदेहा और घुश्मा दोनों के ही आनन्द का पार न रहा। दोनों के दिन बड़े आराम से बीतने लगे।

लेकिन न जाने कैसे थोड़े ही दिनों बाद सुदेहा के मन में एक कुविचार ने जन्म ले लिया। वह सोचने लगी—मेरा तो इस घर में कुछ है नहीं। सब कुछ घुश्मा का है। मेरे पति पर भी उसने अधिकार जमा लिया। सन्तान भी उसी की है। यह कुविचार धीरे-धीरे उसके मन में बढ़ने लगा। इधर घुश्मा का वह बालक भी बड़ा हो रहा था। धीरे-धीरे वह जवान हो गया। उसका विवाह भी हो गया। अब तक सुदेहा के मन का कुविचाररूपी अहंकार एक विशाल वृक्ष का रूप ले चुका था। अन्ततः एक दिन उसने घुश्मा के युवा पुत्र को रात में सोते समय मार डाला। उसके शव को ले जाकर उसने उसी तालाब में फेंक दिया जिसमें घुश्मा प्रतिदिन पार्थिव शिवलिंगों को फेंका करती थी।

सुबह होते ही सबको इस बात का पता लगा। पूरे घर में कुहराम मच गया। सुधर्मा और उसकी पुत्रवधू दोनों सिर पीटकर फूट-फूट कर रोने लगे। लेकिन घुश्मा नित्य की भांति भगवान् शिव की आराधना में तल्लीन रही। जैसे कुछ हुआ ही न हो। पूजा समाप्त करके वह पार्थिव शिवलिंग को तालाब में छोड़ने के लिए चल पड़ी। जब वह तालाब से लौटने लगी, उसी समय उसका प्यारा लाल तालाब के भीतर से निकलकर आता हुआ दिखायी पड़ा। वह सदा की भांति आकर घुश्मा के चरणों पर गिर पड़ा। जैसे कहीं आसपास से ही घूमकर आ रहा हो। उसी समय भगवान् शिव भी वहां प्रकट होकर घुश्मा से वर मांगने को कहने लगे।

शिवजी सुदेहा की घिनौनी करतूत से अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे थे। वे अपने त्रिशूल द्वारा उसका गला काटने को उद्यत दिखायी दे रहे थे। घुश्मा ने हाथ जोड़कर भगवान् शिव से कहा—प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरी उस अभागिन बहन को क्षमा कर दें। निश्चित ही उसने जघन्य पाप किया है, किन्तु आपकी दया से मुझे मेरा पुत्र वापस मिल गया। अब आप उसे क्षमा करें। प्रभो! मेरी एक प्रार्थना और है—लोक-कल्याण के लिए आप इस स्थान पर सदा-सर्वदा के लिए निवास करें। भगवान् शिव ने घुश्मा की ये दोनों बातें स्वीकार कर लीं। ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट होकर वह वहीं निवास करने लगे। सती शिवभक्ता घुश्मा के आराध्य होने के कारण वे यहां घुश्मेश्वर महादेव के नाम से विख्यात हुए।

ज्योतिर्लिंग की महिमा पुराणों में बहुत विस्तार से वर्णित है। इनका दर्शन लोक-परलोक दोनों के लिए अमोघ फलदायी है।

शिव-लीला

अजन्मा शिव के जीवन त्याग का प्रतीक है। इसीलिए उसमें ऐसा कुछ नवीन नहीं है जिसे साधारण व्यक्ति समझ सकें। शिव पति का विवाह और नटराज रूप उनके व्यक्तित्व का अद्वितीय पहलू है। पहला जहां शिव-शक्ति के मिलन की अपूर्व कथा है, वहीं दूसरा सृष्टि के रूप का दिव्यरूप। सृष्टि और लय की मनोरम झांकी है इन दोनों लीलाओं में। इसीलिए इन दोनों का श्रवण-गान भुक्ति-मुक्ति को देने वाला है।

प्रदोष नृत्य

एक बार की बात है—'नटराज' भगवान् शिव के ताण्डव नृत्य में सम्मिलित होने के लिए समस्त देवतागण रजतगिरि कैलास पर उपस्थित हुए। जगज्जननी आद्या मां श्रीगौरीजी वहां दिव्य रत्नसिंहासन पर आसीन होकर अपनी अध्यक्षता में ताण्डव नृत्य का आयोजन कराने के लिए उपस्थित थीं। देवर्षि नारदजी भी उस नृत्य कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए लोकों का परिभ्रमण करते हुए वहां आ पहुंचे। थोड़ी देर में भगवान् शिव ने भावविभोर होकर ताण्डव नृत्य प्रारम्भ कर दिया। समस्त देवतागण और देवियां भी उस नृत्य में सहयोगी बनकर विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाने लगे। पद्मासना मां सरस्वतीजी वीणा वादन करने लगीं, विष्णु भगवान् मृदंग बजाने लगे, देवराज इन्द्र वंशी बजाने लगे, ब्रह्माजी हाथ से ताल देने लगे, लक्ष्मीजी गायन करने लगीं तथा अन्य देवतागण, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, उरग, पन्नग, सिद्ध, अप्सराएं, विद्याधर आदि भाव-विह्वल होकर भगवान शिव के चतुर्दिक खड़े होकर उनकी स्तुति में तल्लीन हो गए।

भगवान् शिव ने उस प्रदोषकाल में समस्त दिव्य विभूतियों के समक्ष अत्यन्त अद्भुत एवं लोक-विस्मयकारी ताण्डव-नृत्य का प्रदर्शन किया। उनके अंग-संचालन-कौशल, मुद्रा-लाघव, चरण, कटि, भुजा, ग्रीवा के उन्मत्त किन्तु सुनिश्चित विलोल-हिल्लोह के प्रभाव से सभी के मन और नेत्र दोनों एकदम अचंचल हो उठे। सभी ने भूतभावन भगवान् शंकरजी के उस नृत्य की भूरि-भूरि सराहना की। परमाद्या मां भगवती (महाकाली) ते उन पर अत्यन्त ही प्रसन्न हो उठीं। उन्होंने शिवजी (महाकाल) से कहा—भगवान! आज आपके इस नृत्य से मुझे बड़ा आनन्द हुआ है। मैं चाहती हूं कि आप आज मुझसे कोई वर प्राप्त करें।

उनकी बातें सुनकर लोकहितकारी आशुतोष भगवान् शिव ने नारदजी की प्रेरणा से कहा—हे देवि! इस ताण्डव-नृत्य के जिस आनन्द से आप, देवगण तथा अन्य दिव्य योनियों के प्राणी विह्वल हो रहे हैं, उस आनन्द से पृथ्वी के सारे प्राणी वंचित रह जाते हैं। हमारे भक्तों को भी यह सुख प्राप्त नहीं हो पाता। अतः आप ऐसा करिए कि पृथ्वी के प्राणियों को भी इसका दर्शन प्राप्त हो सके। किन्तु मैं अब ताण्डव से विरत होकर केवल-'लास्य' करना चाहता हूं। भगवान् शिव की यह बात सुनकर तत्क्षण श्रीआद्या भुवनेश्वरी महाकाली ने समस्त देवताओं को विभिन्न रूपों में पृथ्वी पर अवतार लेने का आदेश दिया। स्वयं वह भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का अवतार लेकर वृन्दावन धाम में पधारीं। भगवान् श्रीशिवजी (महाकाल) ने ब्रज में श्रीराधा के रूप में अवतार धारण किया। यहां इन दोनों ने मिलकर देवदुर्लभ, अलौकिक रास-नृत्य का आयोजन किया। भगवान् शिव की 'नटराज' उपाधि यहां भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त हुई। पृथ्वी के चराचर प्राणी इस रास के अवलोकन से आनन्द-विभोर हो उठे। भगवान् शिव की इच्छा पूरी हुई।

बोलो नटराज भगवान् की जय।

शिव-बारात

पवित्र सप्तर्षियों द्वारा विवाह की तिथि निश्चित कर दिए जाने के बाद भगवान् शंकरजी ने अपने गणों को बारात की तैयारी करने का आदेश दिया। उनके इस आदेश से अत्यन्त प्रसन्न होकर गणेश्वर शंखकर्ण, केकराक्ष, विकृत, विशाख, विकृतानन, दुन्दुभ, कपाल, कुण्डक, काकपदोदर, मधुपिंग, प्रमथ, वीरभद्र आदि गणों के अध्यक्ष अपने-अपने गणों को साथ लेकर

चल पड़े। नन्दी, क्षेत्रपाल, भैरव आदि गणराज भी कोटि-कोटि गणों के साथ निकल पड़े। ये सभी तीन नेत्रों वाले थे। सबके मस्तक पर चन्द्रमा और गले में नील चिह्न थे। सभी ने रुद्राक्ष के आभूषण पहन रखे थे। सभी के शरीर पर उत्तम भस्म पुती हुई थी।

इन गणों के साथ शंकरजी के भूतों-प्रेतों, पिशाचों की सेना भी आकर सम्मिलित हो गयी। इनमें डाकिनी, शाकिनी, यातुधान, वेताल, ब्रह्मराक्षस आदि भी शामिल थे। इन सभी के रूप-रंग, आकार-प्रकार, चेष्टाएं, वेश-भूषा, हाव-भाव आदि सभी कुछ अत्यन्त विचित्र थे। किसी के मुख ही नहीं था और किसी के बहुत से मुख थे। कोई बिना हाथ-पैर के ही था तो कोई बहुत से हाथ पैरों वाला था। किसी के बहुत-सी आंखें थीं तो किसी के पास एक भी आंख नहीं। किसी का मुख गधे की तरह, किसी का सियार की तरह तथा किसी का कुत्ते की तरह था। उन सबने अपने अंगों में ताजा खून चुपड़ रखा था। कोई अत्यन्त पवित्र, कोई अत्यन्त वीभत्स तथा कोई अपवित्र वेश धारण किए था। उनके आभूषण बड़े ही डरावने थे। उन्होंने हाथ में नर-कपाल ले रखा था। वे सबके सब अपनी तरंग में मस्त होकर नाचते-गाते और मौज उड़ाते हुए महादेव शंकरजी के चारों ओर एकत्र हो गए। चण्डीदेवी बड़ी प्रसन्नता के साथ उत्सव मनाती हुईं भगवान् रुद्रदेव की बहन बनकर वहां आ पहुंचीं। उन्होंने सर्पों के आभूषण से स्वयं को विभूषित कर रखा था। वे प्रेत पर आरूढ़ थीं और अपने मस्तक पर सोने का एक अत्यन्त चमकीला कलश धारण किए थीं।

धीरे-धीरे वहां सारे देवता भी आकर एकत्र हो गए। उस देवमण्डली के मध्य भाग में सबके अन्तर्यामी भगवान् श्रीविष्णु गरुड़ के आसन पर विराज रहे थे। पितामह ब्रह्माजी भी उनकी बगल में मूर्तिमान वेदों, शास्त्रों, पुराणों, आगमों, सनकादि महासिद्धों, प्रजापतियों, पुत्रों तथा अन्यान्य परिजनों के साथ उपस्थित थे। देवराज इन्द्र भी नाना प्रकार के आभूषण धारण किए अपने विशाल ऐरावत गज पर आरूढ़ हो वहां पहुंच गए थे। सभी प्रमुख ऋषि भी वहां आ गए थे। तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहू आदि श्रेष्ठ गन्धर्व तथा किन्नरगण भी शिवजी की बारात की शोभा बढ़ाने के लिए वहां पहुंच गए थे। सम्पूर्ण जगन्माताएं, सारी देवकन्याएं, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी आदि सारी सिद्धिदात्री देवियां तथा सभी पवित्र देवांगनाएं भी वहां आ गयी थीं।

इन सबके वहां एकत्र हो जाने के उपरान्त भगवान् शंकरजी साक्षात् धर्मस्वरूप अपने स्फटिक के समान उज्ज्वल, सर्वांग सुन्दर वृषभ पर सवार हुए। उस समय सारे देवताओं, सिद्धों, महर्षियों और भूतों, प्रेतों, यक्षों, किन्नरों, गन्धर्वों से घिरे हुए दूल्हावेश में भगवान् शिवजी की अद्भुत शोभा हो रही थी। उस अति पवित्र, दिव्य और अत्यन्त विचित्र बारात के प्रयाण के समय डमरुओं की डिम्-डिम्, भेरियों की गड़गड़ाहट एवं शंखों के गम्भीर मंगल नाद, ऋषियों-महर्षियों के मन्त्रोच्चार, यक्षों, किन्नरों, गन्धर्वों के सरस गायन एवं देवांगनाओं के हर्ष-विभोर नृत्य-कूजन, क्रणन तथा रणन-ध्वनि के मांगलिक निनाद से तीनों लोक परिव्याप्त हो उठे। इस प्रकार भगवान् शिवजी की वह पवित्र बारात हिमालय की ओर रवाना हुई। महादेव की इस दिव्य बारात का स्मरण, ध्यान, वर्णन और श्रवण सभी प्रकार के लौकिक-पारलौकिक उत्तम फलों को प्रदान करने वाला है।

शिव-विवाह

सती विरह में भगवान् शंकर की विचित्र दशा हो गयी। वे दिन-रात सती का ही ध्यान करते

और उसी की चर्चा करते। सती ने भी देहत्याग करते समय यही संकल्प किया था कि मैं पर्वतराज हिमालय के यहां जन्म ग्रहण कर फिर से शंकरजी की अर्द्धांगिनी बनूं। भला जगदम्बा का संकल्प कहीं अन्यथा हो सकता है? वे काल पाकर हिमालय-पत्नी मैना के गर्भ में प्रविष्ट हुईं और यथासमय उनकी कोख से प्रकट हुईं। पर्वतराज की दुहिता होने के कारण वे 'पार्वती' कहलायीं। जब वे कुछ सयानी हुईं तो उनके माता-पिता को उनके अनुरूप वर तलाश करने की फिक्र पड़ी। एक दिन अकस्मात् देवर्षि नारद पर्वतराज के भवन में आ पहुंचे और कन्या को देखकर कहने लगे—इसका विवाह शंकरजी के साथ होना चाहिए, वही इसके योग्य हैं। यह जानकर कि साक्षात् जगन्माता सती ही उनके यहां प्रकट हुई हैं, पार्वती के माता-पिता के आनन्द का ठिकाना न रहा। वे मन ही मन अपने भाग्य की सराहना करने लगे।

एक दिन अकस्मात् शंकरजी सती विरह में व्याकुल, घूमते-घामते उसी प्रदेश में जा पहुंचे और पास ही गंगावतरण-स्थान में तपस्या करने लगे। हिमालय को जब इस बात का पता लगा तो वे अपनी पुत्री को साथ लेकर शिवजी के पास पहुंचे और अनुनय-विनयपूर्वक अपनी पुत्री को सेवा में ग्रहण करने की प्रार्थना की। शिवजी ने पहले तो उनकी सेवा स्वीकार करने में आनाकानी की, किन्तु पार्वती की अनुपम भक्ति देखकर उनका आग्रह न टाल सके। अब तो पार्वती प्रतिदिन अपनी सखियों को साथ लेकर शंकरजी की सेवा में उपस्थित होने लगीं। वे उनके बैठने का स्थान झाड़-बुहारकर साफ कर देतीं और उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो, इस बात का सदा ध्यान रखतीं। वे नित्यप्रति उनके चरण धोकर चरणोदक ग्रहण करतीं और षोडशोपचार से उनकी पूजा करतीं।

इस प्रकार पार्वती को भगवान् शंकर की सेवा करते सुदीर्घ काल व्यतीत हो गया। किन्तु त्रिभुवन सुन्दरी पूर्णयौवना बाला पार्वती से इस प्रकार एकान्त में सेवा लेते रहने पर भी शंकर के मन में कभी विकार नहीं उत्पन्न हुआ। वे सदा आत्मस्मरण करते हुए समाधि में निश्चल रहते।

इधर देवताओं को तारक नाम का असुर बड़ा त्रास देने लगा। यह जानकर कि शिव के पुत्र से ही उसकी मृत्यु हो सकती है, वे शिव-पार्वती का विवाह कराने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने शिव को पार्वती के प्रति अनुरक्त करने हेतु कामदेव को सिखा-पढ़ाकर उनके पास भेजा, किन्तु पुष्पायुध का पुष्पबाण भी शंकर के मन को विक्षुब्ध न कर सका। उलटे वह उनकी क्रोधाग्नि से भस्म हो गया। शंकरजी भी वहां अधिक रहना अपनी तपश्चर्या के लिए अन्तराय रूप समझ कैलास की ओर चल दिए। पार्वती को शंकर की सेवा से वंचित होने का बड़ा दुःख हुआ, किन्तु उन्होंने निराश न होकर अबकी बार तप के द्वारा शंकर को सन्तुष्ट करने की मन में ठानी। उनकी माता ने उन्हें सुकुमार एवं तप के अयोग्य समझकर बहुत कुछ मना किया। इसीलिए उनका नाम 'उमा' = उ+मा (तप न करो) प्रसिद्ध हुआ।

किन्तु पार्वतीजी अपने संकल्प से तनिक भी विचलित नहीं हुईं। वे तपस्या हेतु घर से निकल पड़ीं और जहां शिवजी ने तपस्या की थी, उसी शिखर पर तपस्या करने लगीं। तभी से लोग उस शिखर को 'गौरी-शिखर' कहने लगे। वहां उन्होंने पहले वर्ष फलाहारी जीवन व्यतीत किया, दूसरे वर्ष वे पर्ण (वृक्षों के पत्ते) खाकर रहने लगीं और फिर तो उन्होंने पर्ण का भी त्याग कर दिया, इसीलिए वे 'अपर्णा' कहलायीं। इस प्रकार उन्होंने तीन हजार वर्ष तक घोर तपस्या की। उनकी कठोर तपश्चर्या को देखकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी दंग रह गए। अन्त में भगवान् आशुतोष का

आसन हिला। उन्होंने पार्वती की परीक्षा के लिए पहले सप्तऋषियों को भेजा और बाद में स्वयं वटुवेश धारण कर पार्वती की परीक्षा के निमित्त प्रस्थान किया।

जब उन्होंने सब प्रकार से जांच-परखकर देख लिया कि पार्वती की उनमें अविचल निष्ठा है, तब वह अपने को अधिक देर तक न छिपा सके। वे तुरन्त अपने असली रूप में पार्वती के सामने प्रकट हो गए और उन्हें पाणिग्रहण का वरदान देकर अन्तर्धान हो गए।

पार्वती अपने तप को पूर्ण होते देख अपने घर लौट आयीं और अपने माता-पिता से शंकरजी के प्रकट होने तथा वरदान देने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अपनी एकमात्र दुलारी पुत्री की कठोर तपश्चर्या को फलोन्मुख देखकर हिमालय ने शंकर जी के पास विवाह का संदेश भेजा। इस प्रकार विवाह की शुभ तिथि निश्चित हुई। शंकरजी ने नारदजी के द्वारा सारे देवताओं को विवाह में सम्मिलित होने के लिए आदरपूर्वक निमन्त्रित किया और निश्चित तिथि को ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र प्रभृति सारे प्रमुख देवता अपने-अपने दल-बल सहित कैलास पर आ पहुंचे। उधर हिमाचल ने विवाह के लिए बड़ी धूम-धाम से तैयारियां कीं। शुभलग्न में शिवजी की बारात हिमालय के द्वार पर आ लगी। पहले तो शिवजी का विकट रूप तथा उनकी भूत-प्रेतों की सेना देखकर मैना बहुत डर गयीं। वे उनके साथ अपनी कन्या का पाणिग्रहण कराने में आनाकानी करने लगीं। बाद में जब उन्होंने शंकरजी का करोड़ों कामदेवों को लजाने वाला सोलह वर्ष की अवस्था का परम लावण्यमय रूप देखा तो वे देह-गेह की सुधि भूल गयीं। उन्होंने शंकर पर अपनी कन्या के साथ ही साथ अपनी आत्मा को भी न्योछावर कर दिया। हर-गौरी का शुभविवाह आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ तथा हिमाचल ने बड़े चाव से कन्यादान किया। भगवान् विष्णु, अन्यान्य देव और अन्य प्राणियों ने नाना प्रकार के उपहार भेंट किए। ब्रह्माजी ने वेदोक्त रीति से विवाह करवाया। सब लोग अमित उछाह से भरे अपने-अपने स्थानों को लौट गए।

❑❑

तृतीय खंड
तंत्र-मंत्र साधना

साधनाओं के सात्विक और तमोगुणी दो रूप हैं। रजोगुण क्योंकि स्वयं में कोई गुण नहीं है इसलिए ये दोनों प्रकार की साधनाएं जब विलास, भोग और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती हैं, तो रजोगुणी साधनाओं की श्रेणी में आ जाती हैं। शास्त्रों का अध्ययन करने पर सामान्य व्यक्ति तब आश्चर्यचकित हो जाता है, जब एक ही इष्ट की साधना-उपासन सात्विक और तमोगुणी दोनों प्रकार से करने का विधान किया जाता है। साधनाओं के लिए एक सामान्य नियम है—देवो भूत्वा देवं यजेत् अर्थात् देवता बनकर देवता की आराधना करें। इसका अर्थ हुआ, सात्विक देवता की उपासना करने के लिए तन-मन का सात्विक होना भी जरूरी है यदि वृत्ति सतोगुणी न हो, तो तंत्र में उसके लिए भी मार्ग बताया गया है। तमोगुण का कार्य है—आवरण करना। इस आवरण को हटाने के लिए जरूरी है कि साधक निष्काम-कर्म का प्रतिपादन करे। जिनकी वृत्ति तम प्रधान है, उनके लिए आगमों में कर्म के अलावा अन्य साधन विहित नहीं है। जबकि तंत्र उनके लिए भी साधनाओं का प्रतिपादन करता है।

कैकसी को विश्रवा ने कह दिया था कि वह जिस समय संतान की इच्छा लेकर आयी है, उस समय हुए गर्भाधान से जन्म लेने वाली संतान तमोगुण प्रधान होगी। वैसा ही हुआ भी। रावण के जन्म के समय प्रकृति में जो परिवर्तन हुए, वे भविष्य में होने वाली भयंकरता के ही संकेत थे रावण के जीवनवृत्त को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भले ही वह शास्त्र-पारंगत रहा हो लेकिन था मलिन वृत्ति वाला ही। रावण के रथ की ध्वजा गृद्ध से अंकित थी। गृद्ध आसुरी शक्ति का प्रतीक है। अपने स्वभाव को जानते-समझते हुए ही रावण ने तंत्र मार्ग को अपनाया और दिव्य सिद्धियों को प्राप्त किया। इस खंड में तंत्रमार्ग के उन्हीं विभिन्न पहलुओं का प्रतिपादन किया गया है।

तंत्र एक समग्र साधना

तंत्र शब्द का शब्दकोश में अर्थ है—तंतु और सूत। वैसे इसका अर्थ एक निश्चित व्यवस्था से भी है। लेकिन यदि हम शब्दकोश में दिए अर्थों के अनुसार भी इसकी व्याख्या करें, तो इसका अर्थ है संसाररूपी वस्त्र के एक-एक तंतु की संपूर्ण रूप से क्या, क्यों, कैसे इन शब्दों के संदर्भ में एक निश्चित जानकारी। यह समूची व्यवस्था शिव के उपदेश के आधार पर है। इसमें शिव और शक्ति दोनों का समान रूप से प्राधान्य है। गहरे में तंत्र इन दोनों को भिन्न नहीं स्वीकारता।

अर्धनारीश्वर शिव इसका आदर्श प्रतीक है।

शक्ति तत्त्व के बिना इसमें शिव को शववत् माना है, इसलिए तंत्र साधनाओं में साधिकाओं का विशेष महत्त्व है। सात्त्विक साधनाओं ने जिन वस्तुओं को अस्पृश्य व तामसिक माना गया है, तंत्र साधनाओं में उनका साधनों के रूप में प्रयोग जन सामान्य में दुविधा पैदा करता है। ऐसे प्रयोग तांत्रिक इसलिए करता है, ताकि वह अपने भीतर स्फुटित होने वाले उस तत्त्व को भलीभांति जान-पहचान सके, जिस पर बाह्य विषय प्रतिक्रिया करते हैं। महाकवि कालिदास ने कुमार संभव में सदाशिव के ऐसे ही रूप का वर्णन करते हुए शिव को 'धीर' कहा है। पार्वती को वे माया कहते हैं। उन्हें आश्चर्य है कि सजीव माया के सान्निध्य में भी शिव समाधि को प्राप्त करते हैं। माया तो मन में तरह-तरह के विकारों को उत्पन्न करती है। विकारहेतौ सति विक्रयन्ते येषां न चेतांसि ते एव धीराः । 'विकारों के कारण उपस्थित होने पर भी जिनके मन में विकार उत्पन्न नहीं होते, वे ही धीर हैं।' तांत्रिक भी इस मायने में धीर होता है। तांत्रिक का वह स्वरूप बिल्कुल भिन्न है, जो आज समाज में प्रचलित है। आगे जो तंत्र के विभिन्न पक्षों का प्रतिपादन किया गया है उससे भी आपको इस बात का सही अंदाजा हो जाएगा कि असल में तंत्र है क्या।

रावण ने जिन साधनाओं को किया, वह तंत्र का मायिक पक्ष है। इसमें दिव्यता है, लेकिन साधक के उद्देश्य के फलस्वरूप वह तंत्र की उच्चतम पराकाष्ठा से जरूर विचलित हो जाता है। इस तरह के प्रलोभनों की (सिद्धियों की) चर्चा तो सभी प्रकार की साधनाओं में हुआ करती है। वेद प्रतिपादित अग्निहोत्रादि अनुष्ठानों व दिव्य यज्ञों को करने वाले भी पथभ्रष्ट होते हैं, जबकि वे मुक्ति के दाता हैं।

शिव-शक्ति का मिलन

अनन्त भावमय भगवान् के समीप पहुंचने के रास्ते भी अनन्त हैं। जैसे मकड़ी अपने अंदर से जाल फैलाकर उसके केन्द्र में बैठी रहती है, वैसे ही ईश्वर इस विश्व-ब्रह्माण्ड का सृजन करके इसके बीच में बैठे हैं। वृत्त की परिधि के किसी भी बिन्दु से सीधे केन्द्र तक पहुंचने के लिए जैसे भिन्न-भिन्न सीधी रेखाओं की सहायता आवश्यक होती है, वैसे ही परिधि में स्थित प्रत्येक जीव को सृष्टि के केन्द्रस्थल में पहुंचने के लिए पृथक-पृथक साधनों का अभ्यास करना पड़ता है।

प्रत्येक जीव में अपना एक विशेषत्व है। प्रत्येक जीव ही अपूर्व है, परन्तु गन्तव्य स्थल सबका एक अर्थात् परब्रह्म परमात्मा अथवा परमेश्वर हैं। उनके अनन्त नाम, अनन्त रूप और अनन्त गुण हैं। साथ ही वे नाम, रूप और गुणों से अतीत हैं। उनकी शुद्ध सत्ता मन-वाणी से अतीत है, फिर भी मनुष्य का मन उनको लेकर नित्य क्रियाशील है। मनुष्य अपवित्र शरीर एवं अशुद्ध मन से जो कुछ कल्पना करता है, वह मलिन और अस्पष्ट होती है। परन्तु ज्यों-ज्यों उसके देह और मन शुद्ध होते जाते हैं, त्यों-त्यों वह विशुद्ध एवं स्पष्ट होता चला जाता है। फिर मन के तरंगहीन हो जाने पर और आगे चलकर चैतन्य में लीन हो जाने पर आत्मदर्शन होता है। इसी से अन्त में भगवत्कृपा से पूर्णत्व की प्राप्ति हो जाती है।

एक प्रकार से जितने जीव हैं, उतने ही मत हैं और जितने मत हैं, उतने ही पथ भी हैं। जैसे मनुष्य में रुचि और चरित्रगत सादृश्य होता है; वैसे ही रुचि, स्वभाव, संस्कार तथा वातावरण के अनुसार उसकी साधन-प्रणाली में भी सादृश्य होता है। इनके भाव एक से होते हैं, जो सम्प्रदाय में

भी शामिल होते हैं। हिन्दू धर्म में अनेक सम्प्रदाय हैं, उनमें तान्त्रिक सम्प्रदाय सबसे पुराना है। तन्त्र मनुष्य को शिक्षा देता है—पशुत्व को छोड़कर देवत्व में पहुंचने की, जीव से शिव होने की। तन्त्र की यह विशेषता है कि वह भोगप्रवण मन को बलपूर्वक अकस्मात् धक्का देकर त्याग के मार्ग पर नहीं ठेलता, बल्कि धीरे-धीरे भोग के अंदर से ही मन की स्वाभाविक गति का मुख त्याग की ओर मोड़ देता है। इस दृष्टि से तान्त्रिक साधना सबकी अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और सार्वजनीन है।

जीव में जड़ और चेतन दोनों तत्त्व हैं। देह, मन, बुद्धि आदि जड़ हैं जबकि आत्मा इनसे पृथक चेतन सत्ता है। इन दोनों के संयोग से जीव बनता है। किसी अचिन्त्य कारण से जीवात्मा अपने स्वरूप को भूलकर स्वयं को प्रकृति का परिणाम अथवा जड़ मान लेता है। इसी से त्रिविध दुःखों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए जीव बद्ध अथवा पशु है। जब जीव यह जान लेता है कि 'मैं शरीर, मन, बुद्धि आदि कुछ भी नहीं हूं, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त आत्मा हूं' तब वह मुक्त या शिव हो जाता है। आत्मज्ञान होने पर भगवत्कृपा से जब और भी उत्कृष्टतर ज्ञान की प्राप्ति होती है, तब उसे चित्-शक्ति की लीला का अनुभव होता है। उस समय वह मुक्त जीव अपने अंदर यह देखता है कि चित्-शक्ति कुलकुण्डलिनी षट्चक्र और सभी ग्रन्थियों को भेदकर सहस्रदल कमल में ज्ञानरूपी शिव के साथ मिल गयी है। जहां शिव-शक्ति के मिलन की पूर्णता है, वहीं साधक लीलानन्द का अनुभव करता है।

तंत्र में भक्ति तत्त्व

शास्त्रों में ईश्वर के प्रति भक्ति भाव भक्त की मूल धारणा के रूप में होती है। चित्तवृत्ति का निरन्तर अविच्छिन्नरूप से अपने इष्टस्वरूप श्रीभगवान् में लगे रहना अथवा भगवान् में परम अनुराग या निष्काम अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। भक्ति के अनेक साधन हैं, अनेक स्तर हैं और अनेक विभाग भी। प्राचीन महर्षियों ने बड़ी सुन्दरता के साथ भक्ति की व्याख्या की है। शास्त्रों में तन्त्र-शास्त्र भक्ति से भरे हैं, जिनमें भक्ति की तुलना भक्ति से ही हो सकती है। भक्ति इस शब्द का नाम लेते ही श्रीकृष्ण की छवि आंखों के सामने अनचाहे ही घूमने लगती है। महारास और राधा ये दो तत्त्व कृष्ण-भक्ति के आधार स्तंभ हैं। तंत्र और सदाशिव के बारे में बात हुए, श्रीकृष्ण की चर्चा करना एक आम पाठक को जरूर खटकेगा, लेकिन जिन्होंने तंत्र के बारे में थोड़ा-बहुत पढ़ा-जाना होगा, वे इस बात से अनभिज्ञ नहीं होंगे कि जो स्थान तंत्र में शिव व महाकाली का है, वही श्रीकृष्ण का भी। श्रीकृष्ण को तंत्राचार्यों का परमगुरु माना जाता है। काली के विग्रहों में एक रूप कृष्णकाली का भी है। भक्ति तत्त्व को समझाने के लिए, जिसमें भावतत्त्व की प्रधानता होती है, यहां इसीलिए श्रीकृष्ण को माध्यम बनाया गया है।

भक्ति में दो उपाधियां हैं—अन्याभिलाषिता और कर्मज्ञानयोगादि का मिश्रण। इन दोनों में जब तक एक भी उपाधि रहती है, तब तक प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती।

अन्याभिलाषा भोग-कामना और मोक्ष-कामना के भेद से दो प्रकार की होती है जबकि ज्ञान, कर्म तथा योग के भेद से भक्ति का आवरण तीन प्रकार का होता है। यहां ज्ञान से 'अहं ब्रह्मास्मि', योग से भजन रहित हठयोगादि और कर्म से भक्तिरहित योग-यज्ञादि शास्त्रीय एवं भोगादि की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले लौकिक कर्म समझने चाहिए। जिस ज्ञान से भगवान्

के स्वरूप और भजन का रहस्य जाना जाता है, जिस योग से चित्त की वृत्ति भगवान् के स्वरूप, गुण, लीला आदि में तल्लीन हो जाती है और जिस कर्म से भगवान् की सेवा होती है, वे ज्ञान-योग-कर्म तो भक्ति में सहायक हैं। वे भक्ति के अंग हैं, मगर भक्ति की उपाधि नहीं हैं।

जिस भक्ति में भोग-कामना रहती है, उसे सकाम भक्ति कहते हैं। सकाम भक्ति राजसी और तामसी भेद से दो प्रकार की है। विषय-भोग, यश-कीर्ति एवं ऐश्वर्य आदि के लिए जो भक्ति होती है, वह राजसी है जबकि हिंसा, दम्भ तथा मत्सर आदि के निमित्त से जो भक्ति होती है, वह तामसी है। विषयों की कामना रजोगुण और तमोगुण से ही उत्पन्न होती है। इस सकाम भक्ति को सगुण भक्ति भी कहते हैं। जिस भक्ति में मोक्ष की कामना है, उसे कैवल्यकामा या 'सात्विकी भक्ति' कहते हैं।

उत्तमा भक्ति

उत्तमा भक्ति चित्स्वरूपा है। इस भक्ति के तीन भेद हैं—साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति। इन्द्रियों के द्वारा जिसका साधन हो सकता हो, ऐसी श्रवण-कीर्तनादि का नाम साधन भक्ति है। इस साधन भक्ति के दो गुण हैं—क्लेशघ्नी और शुभदायिनी। क्लेश तीन प्रकार के होते हैं—पाप, वासना और अविद्या। इनमें पाप के दो भेद हैं—प्रारब्ध और अप्रारब्ध। जिस पाप का फल मिलना शुरू हो गया है, उसे 'प्रारब्ध पाप' और जिस पाप का फलभोग आरम्भ नहीं हुआ, उसे 'अप्रारब्ध पाप' कहते हैं।

पाप का बीज है—'वासना' और वासना का कारण है 'अविद्या।' इन सब क्लेशों का मूल कारण है—भगवद्विमुखता। भक्तों के संग के प्रभाव से भगवान् शिव की सम्मुखता प्राप्त होने पर क्लेशों के सारे कारण अपने आप ही नष्ट हो जाते हैं। इसी से साधन-भक्ति में 'सर्वदुःखनाशकत्व' गुण प्रकट होता है। 'शुभ' शब्द का अर्थ है—साधक द्वारा समस्त जगत के प्रति प्रीति-विधान, सारे जगत का साधक के प्रति अनुराग, समस्त सद्गुणों का विकास और सुख। सुख के भी तीन भेद हैं—विषयसुख, ब्राह्मसुख और पारमैश्वर सुख! ये सभी सुख साधन भक्ति से प्राप्त हो सकते हैं।

भाव भक्ति दो गुण हैं—'मोक्षलघुताकृत' एवं 'सुदुर्लभा'। इनके अतिरिक्त साधन भक्ति के दो गुण—क्लेशनाशिनी और शुभदायिनी' भी इसमें आ जाते हैं। जैसे आकाश के गुण वायु में और आकाश तथा वायु के गुण अग्नि में चले जाते हैं। जिस प्रकार अगले-अगले भूतों में पिछले-पिछले भूतों के गुण सहज ही रहते हैं, वैसे ही साधन भक्ति के गुण भाव भक्ति में तथा भाव भक्ति के गुण प्रेम भक्ति में रहते हैं। इस प्रकार भाव भक्ति में कुल चार गुण हो जाते हैं। प्रेम भक्ति में— 'सान्द्रानन्दविशेषात्मा' और 'श्रीकृष्णाकर्षिणी' गुणों सहित कुल छः गुण हो जाते हैं। यह उत्तमा भक्ति के छः गुण हैं।

❑ क्लेशनाशिनी और सुखदायिनी का स्वरूप ऊपर बताया जा चुका है।

❑ मोक्षलघुता से तात्पर्य है—भक्ति धर्म, काम और मोक्ष (सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सार्ष्टि और सायुज्य—पांच प्रकार की मुक्ति)—सबमें तुच्छ बुद्धि पा करके सबसे चित्त हटा देती है।

❑ सुदुर्लभा का अर्थ है—साम्राज्य, सिद्धि, स्वर्ग, ज्ञान आदि वस्तु विभिन्न साधनों द्वारा मिल

सकते हैं, उनको भगवान् सहज ही दे देते हैं, परन्तु अपनी भाव भक्ति को भगवान् भी शीघ्र नहीं देते। निष्काम साधनों द्वारा भी यह सहज ही नहीं मिलती। यह तो उन्हीं भक्तों को मिलती है, जो भक्ति के अतिरिक्त मुक्ति-भुक्ति सबका निरादर करके केवल भक्ति के लिए सब कुछ न्योछावर करके भगवान् की कृपा पर निर्भर रहते हैं।

❑ सान्द्रानन्दविशेषात्मा का अर्थ है—करोड़ों ब्रह्मानन्द भी इस प्रेमामृतमयी भक्ति-सुखसागर के एक कण की भी तुलना में नहीं आ सकते। यह अपार और अचिन्त्य प्रेम सुखसागर में निमग्न कर देती है।

❑ शिवाकर्षिणी का अभिप्राय है—ऐसी प्रेमभक्ति जो समस्त प्रियजनों के साथ भगवान् शिव को भी भक्तों के वश में कर देती है।

साधन भक्ति

साधन भक्ति के द्वारा भाव और प्रेम साध्य होते हैं। वस्तुतः भाव और प्रेम नित्यसिद्ध वस्तु हैं। ये साध्य हैं ही नहीं। साधन द्वारा जीव के हृदय में छिपे हुए भाव और प्रेम प्रकट हो जाते हैं। साधन भक्ति दो प्रकार की होती है—वैधी और रागानुगा। अनुराग उत्पन्न होने के पहले जो केवल शास्त्र की आज्ञा मानकर भजन में प्रवृत्त होती है, उसका नाम वैधी भक्ति है। भजन के 64 अंग होते हैं। जब तक भाव की उत्पत्ति नहीं होती, तभी तक वैधी भक्ति का अधिकार है। भगवान् शिव के प्रति स्वाभाविकी परमविष्टता अर्थात् प्रेममयी तृष्णा का नाम है राग। ऐसी रागमयी भक्ति को ही रागात्मिका भक्ति कहते हैं।

रागात्मिका भक्ति के भी दो प्रकार होते हैं—प्रथम कामरूपा और द्वितीय सम्बन्धरूपा। जिस भक्ति की प्रत्येक चेष्टा केवल भगवान् शिव के सुख के लिए ही होती है अर्थात् जिसमें काम प्रेम रूप में परिणत हो जाता है, उसी को कामरूपा रागात्मिका भक्ति कहते हैं। यह भक्ति भगवान् कृष्ण के प्रति गोपियों में ही है। मैं श्रीकृष्ण का पिता हूं, माता हूं, सखा हूं—इस प्रकार की बुद्धि का नाम सम्बन्धरूपा रागात्मिका भक्ति है। इस रागात्मिका भक्ति की जो अनुगता भक्ति है, उसी का नाम रागानुगा है। रागानुगा भक्ति में स्मरण का अंग ही प्रधान है।

इसी प्रकार रागानुगा के भी दो प्रकार हैं—कामानुगा और सम्बन्धनुगा। कामरूपा रागात्मिका भक्ति की अनुगामिनी तृष्णा का नाम कामानुगा भक्ति है। कामानुगा के दो प्रकार हैं—सम्भोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छात्मा। केलि-सम्बन्धी अभिलाषा से युक्त भक्ति का नाम सम्भोगेच्छामयी है और यूथेश्वरी ब्रजदेवी के भाव एवं माधुर्य की प्राप्ति विषय वासनामयी भक्ति का नाम तत्तद्भावेच्छात्मा है। श्रीविग्रह के माधुर्य का दर्शन करके या श्रीकृष्ण की मधुर लीला का स्मरण करके जिनके मन में उस भाव की कामना जाग उठती है, वे ही उपर्युक्त दोनों प्रकार की कामानुगा भक्ति के अधिकारी हैं। जिस भक्ति के द्वारा श्रीकृष्ण के साथ पितृत्व-मातृत्व आदि सम्बन्धसूचक चिन्तन होता है और अपने ऊपर उसी भाव का आरोप किया जाता है, उसी का नाम सम्बन्धानुगा भक्ति है।

शुद्ध सत्व भाव

विशेषस्वरूप प्रेमरूपी सूर्य की किरण के सदृश रुचि की अर्थात् भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा,

उनकी अनुकूलता की अभिलाषा और उनके सौहार्द्र की अभिलाषा के द्वारा चित्त को स्निग्ध करने वाली जो एक मनोवृत्ति होती है, उसी का नाम भाव है। भाव का ही दूसरा नाम रति है। रस की अवस्था में इस भाव का वर्णन दो प्रकार से किया जाता है—स्थायीभाव और संचारीभाव। इनमें स्थायीभाव भी दो प्रकार का है—प्रेमांकुर या भाव और प्रेम। प्रणयादि प्रेम के ही अन्तर्गत है। ऊपर जो लक्षण बताया गया है, वह प्रेमांकुर नामक भाव का ही है। नृत्य-गीतादि सारे अनुभव इसी भाव की चेष्टा या कार्य हैं।

इस प्रकार का भाव भगवान् की और उनके भक्तों की कृपा से ही प्राप्त होता है, किसी दूसरी साधना से नहीं। इस प्रकार उसे साध्य-भक्ति बताने का भी एक विशेष कारण है। साधन भक्ति, भाव भक्ति का साक्षात् कारण न होने पर भी उसका परम्परा कारण अवश्य है। साधन भक्ति की परिपक्वता होने पर ही श्रीभगवान् और उनके भक्तों की कृपा होती है तथा उस कृपा से ही भाव भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। निम्नलिखित नौ प्रीति के अंकुर ही इस भाव के लक्षण हैं—

क्षान्ति— धन-पुत्र-मान आदि के नाश, असफलता, निन्दा और व्याधि के क्षोभ के कारण उपस्थित होने पर भी चित्त का चंचल न होना।

अव्यर्थ-कालत्व— क्षणमात्र का समय भी सांसारिक विषय कार्यों में वृथा न बिताकर मन, वाणी एवं शरीर से निरन्तर भगवत्सेवा के कार्यों में लगे रहना।

विरक्ति— इस लोक के और परलोक के समस्त भोगों से स्वाभाविक अरुचि है।

मानशून्यता— स्वयं उत्तम आचरण, विचार और स्थिति से सम्पन्न होने पर भी मान-सम्मान का सर्वथा त्याग करके अधर्म का भी सम्मान करना।

आशाबन्ध— भगवान् के और भगवत्प्रेम के प्राप्त होने की चित्त में दृढ़ और बद्धमूल आशा है।

समुत्कण्ठा— अपने अभीष्ट भगवान् की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रबल और अनन्य लालसा है।

नाम-गान में सदा रुचि— भगवान् के मधुर और पवित्र नाम का गान करने की स्वाभाविक कामना है। इसके कारण भगवान् के एक-एक नाम में अपार आनन्द का बोध होता है।

भगवान् के गुण— कथन में आसक्ति, दिन-रात भगवान् के गुण-गान एवं भगवान् की प्रेममयी लीलाओं का कथन करते रहना और ऐसा न होने पर बेचैन हो जाना।

निवास स्थान में प्रीति— भगवान् ने जहां मधुर लीलाएं की हैं, जो भूमि भगवान् के चरण-स्पर्श से पवित्र हो चुकी है जैसे शिव के संदर्भ में काशी एवं कैलास इत्यादि स्थानों में रहने की इच्छा।

जब उपर्युक्त नौ प्रीति के अंकुर दिखायी दें, तब समझना चाहिए कि भक्त में भगवान् के साक्षात्कार की योग्यता आ गयी है। उपर्युक्त लक्षण कभी-कभी किसी-किसी अंश में कर्मयोगियों और ज्ञानियों में भी देखे जाते हैं; परन्तु वह भगवान् में रति नहीं है, रत्याभास है। रत्याभास भी दो प्रकार का होता है—प्रतिबिम्ब रत्याभास और छाया रत्याभास। गदो-गद्-भाव और आंसू आदि? एक रति के लक्षण दिखायी देने पर भी जहां भोग व मोक्ष की इच्छा बनी हुई है, वह प्रतिबिम्ब रत्याभास है और जहां भक्तों के संग से कथा-कीर्तनादि के कारण नासमझ मनुष्यों में

भी ऐसे लक्षण दिखायी देते हैं, वह छाया रत्याभास है।

भाव की परिपक्व अवस्था का नाम प्रेम है। चित्त के सम्पूर्ण रूप से निर्मल और अपने अभीष्ट भगवान् शिव में अतिशय ममता होने पर ही प्रेम का उदय होता है। किसी भी विघ्न के द्वारा जरा भी न घटना या न बदलना प्रेम का चिह्न है। प्रेम दो प्रकार का है—महिमाज्ञानयुक्त और केवल। विधिमार्ग से चलने वाले भक्त का प्रेम महिमाज्ञानयुक्त है जबकि राग-मार्ग पर चलने वाले भक्त का प्रेम केवल अर्थात् शुद्ध माधुर्यमय है। ममता की उत्तरोत्तर जितनी ही वृद्धि होती है, प्रेम की अवस्था भी वैसी ही बदलती जाती है। प्रेम की एक ऊंची स्थिति का नाम स्नेह है। स्नेह का चिह्न है, चित्त का द्रवित हो जाना। उससे ऊंची अवस्था का नाम है राग। राग का चिह्न है गाढ़ स्नेह। उससे ऊंची अवस्था का नाम है प्रणय। प्रणय का चिह्न है गाढ़ विश्वास।

श्री कृष्णरति-रूप स्थायीभाव विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव और व्यभिचारी भाव के साथ मिलकर जब भक्त के हृदय में आस्वादन के उपयुक्त बन जाता है, तब उसे भक्ति रस कहते हैं। उपर्युक्त कृष्णरति शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर के भेद से पांच प्रकार की है। जिसमें और जिसके द्वारा रति का आस्वादन किया जाता है, उसको विभाव कहते हैं। जिसमें रति विभावित होती है, उसका नाम है आलम्बन-विभाव और जिसके द्वारा रति विभावित होती है, उसका नाम है उद्दीपन-विभाव। आलम्बन विभाव भी दो प्रकार का है—विषयालम्बन और आश्रयालम्बन। जिसके लिए रति की प्रवृत्ति होती है, वह विषयालम्बन है और इस रति का जो आधार होता है, वह आश्रयालम्बन है। इस श्रीकृष्णरति के विषयालम्बन हैं—श्रीकृष्ण और आश्रयालम्बन हैं—उनके भक्तगण। जिनके द्वारा रति का उद्दीपन होता है, वे श्रीकृष्ण का स्मरण कराने वाली वस्त्रालंकारादि वस्तुए हैं उद्दीपन-विभाव। नाचना, भूमि पर लोटना, गाना, जोर से पुकारना, अंग मोड़ना, हुंकार करना, जंभाई लेना, लम्बे श्वास छोड़ना आदि अनुभाव के लक्षण हैं।

अनुभाव भी दो प्रकार का होता है—शीत और क्षेपण। गाना, जंभाई लेना आदि को शीत और नृत्यादि को क्षेपण कहते हैं। सात्विक भाव आठ हैं—इनमें स्तम्भ (जड़ता), स्वेद (पसीना), रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय (मूर्छा)। ये सात्विक भाव स्निग्ध, दिग्ध और रुक्ष भेद से तीन प्रकार के हैं। इनमें स्निग्ध सात्विक के दो भेद हैं—मुख्य और गौण। साक्षात् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाला स्निग्ध सात्विक भाव मुख्य है और परम्परा से अर्थात् किंचित् व्यवधान से श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाला स्निग्ध सात्विक भाव गौण है। स्निग्ध-सात्विक भाव नित्यसिद्ध भक्तों में ही होता है।

जातरति अर्थात् जिनमें प्रेम उत्पन्न हो गया है, उन भक्तों के सात्विक भाव को दिग्ध भाव कहते हैं। अजातरति अर्थात् जिसमें प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ है, ऐसे मनुष्य में कभी आनन्द-विस्मयादि के द्वारा उत्पन्न होने वाले भाव को रुक्ष कहा जाता है। ये सब भाव भी पांच प्रकार के होते हैं—धूमायित, ज्वलित, दीप्त, उद्दीप्त और सूद्दीप्त।

बहुत ही प्रकट, परन्तु गुप्त रखने योग्य एक या दो सात्विक भावों का नाम धूमायित है। एक ही समय उत्पन्न होने वाले दो-तीन भावों का नाम ज्वलित है। ज्वलित भाव को भी बड़े कष्ट से गुप्त रखा जा सकता है। बढ़े हुए और एक ही साथ उत्पन्न होने वाले तीन, चार या पांच सात्विक भावों का नाम दीप्त है। यह दीप्त भाव छिपाकर नहीं रखा जा सकता। अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त

एक साथ उदय होने वाले छः, सात या आठ भावों का नाम उद्दीप्त है। यह उद्दीप्त भाव ही महाभव में सूद्दीप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त रत्याभासजनित सात्विक भाव भी होते हैं जिनके चार प्रकार हैं। मुमुक्षु पुरुष में उत्पन्न सात्विक भाव का नाम रत्याभासज है। कर्मियों और विषयी जनों में उत्पन्न सात्विक भाव का नाम सत्वाभासज है। जिनका चित्त सहज ही फिसल जाता है या वे केवल अभ्यास में लगे हैं, ऐसे व्यक्तियों में उत्पन्न सात्विक भाव को निःसत्व कहते हैं जबकि भगवान् में विद्वेष रखने वाले मनुष्यों में उत्पन्न सात्विक भाव को प्रतीप कहा जाता है।

व्यभिचारी भावों की संख्या 33 बताई गयी है—निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शंका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मरण, आलस्य, जाड्य, लज्जा, अनुभावगोपन, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, उत्सुकता, उग्रता, अमर्ष, असूया, चपलता, निद्रा, सुप्ति और बोध। भक्तों के चित्त के अनुसार इन भावों के प्रकट होने में तारतम्य होता है। साठ सात्विक और तैंतीस व्यभिचारी भावों की व्याख्या स्थानाभाव के कारण यहां नहीं की जा सकती। इन तैंतीस व्यभिचारी भावों को संचारी भाव भी कहा जा सकता है। इनके द्वारा ही अन्य सभी भावों की गति का संचालन होता है।

भेद और अभेदवादी तान्त्रिक दृष्टियां

किसी साधन के विषय में आलोचना करने के लिए सबसे पहले आनुषंगिक दृष्टि के साथ उसका परिचय कर लेना आवश्यक है। दृष्टि से ही लक्ष्य का निर्देश होता है। लक्ष्य के निर्दिष्ट न होने तक साधना की चेष्टा उन्मत्त-प्रलाप के समान अर्थहीन होती है, क्योंकि लक्ष्य तथा उसकी प्राप्ति का उपाय जानकर उसका यथाविधि अनुशीलन करना ही साधना है। अतः तान्त्रिक साधना को समझने के लिए तान्त्रिक दृष्टि के साथ परिचित होने की उपयोगिता माननी पड़ती है। यह पूर्ण और अपूर्ण भेद की दृष्टि से दो प्रकार की है। अपूर्ण दृष्टि से जो लक्ष्य जान पड़ता है, पूर्ण दृष्टि होने पर वह साध्य नहीं गिना जाता। वह प्रकृत लक्ष्य का एक अंश ही होता है। परन्तु आलोचना के लिए इन दोनों दृष्टियों की मर्यादा पर्यवसान पूर्ण दृष्टि में ही होती है।

जिस प्रकार धर्म में संघ-त्रिरत्न यानी तीन रत्न स्वीकार करते हैं, वैसे ही भेदवादी तान्त्रिक आचार्यगण भी शिव, शक्ति और बिन्दु को तीन रत्न मानते हैं। ये समस्त तत्त्वों के अधिष्ठाता एवं उपादानरूप से प्रकाशमान हैं। तीन रत्नों के विषय में इस प्रकार जानना चाहिए—

कामिक, रौरव, स्वाम्भुव, मृगेन्द्र आदि आगमों में तथा अघोरशिव, सद्योजात, नारायणकण्ठ आदि आचार्यों के ग्रन्थों में इसका विस्तार से विवरण मिलता है। इसके मूल में भेददृष्टि रहती है। अभेदवादी आगम और आचार्यों के ग्रन्थों में न्यूनाधिक रूप से दूसरी तरह का विवरण भी है। इसका मूल कारण दृष्टिभेद ही है। शाक्तगण प्रधानतः अद्वैतवादी हैं। शैव सम्प्रदाय में द्वैत और अद्वैत दोनों ही प्रकार की दृष्टियां हैं। प्रसिद्धि ऐसी है कि शिव के ईशानादि पांच मुखों से ही समस्त मूलतन्त्रों का आविर्भाव हुआ है। उनमें भेदप्रधान शिवतंत्र दस हैं, भेदाभेदप्रधान रुद्रतन्त्र अठारह हैं एवं अभेदप्रधान भैरवतन्त्र चौंसठ हैं।

ईशान, तत्पुरुष एवं सद्योजात—इन तीनों मुखों से प्रत्येक की उद्भूत और उद्भवोन्मुख—ये दो अवस्थाएं हैं। इस प्रकार अलग-अलग तीन मुखों से छः तन्त्रों का आविर्भाव हुआ है। इसके पश्चात् दो-दो मुखों के मिलने से (अर्थात् ईशान+सद्योजात एवं सद्योजात+तत्पुरुष) तीन तन्त्र

होते हैं। फिर तीनों के मिलने से एक तन्त्र और होता है। इस प्रकार कुल तन्त्र दस हैं। ये भेद प्रधान हैं। इसी तरह अठारह भेदाभेद तन्त्र भी समझने चाहिए। वे पूर्वोक्त तीन मुखों के साथ वामदेव और अघोर नाम के दो मुखों के व्यष्टि एवं समष्टि भाव के मिलने से अथवा केवल वामदेव और अघोर—इन दो मुखों से ही उत्पन्न होते हैं। इस जगह इसकी विशेष प्रक्रिया नहीं दिखायी जाती है। यहां जो शिवज्ञान और रुद्रज्ञान नामक दो ज्ञानों की बात कही गयी है, वह ऊर्ध्वस्रोत के अन्तर्गत है। अभेदज्ञान या भैरवागम शिव के दक्षिण मुख अथवा योगिनी-वक्त्र से अभिव्यक्त होता है। यह शिवशक्ति संयोगरूप तथा अद्वयस्वभाव विशिष्ट है। जिस प्रकार मोर के अण्डे के रस में उसके पंखों के तरह-तरह के रंग अभिन्नभाव से अव्यक्तरूप से रहते हैं, उसी प्रकार अक्षर बिन्दु में स्थूल वाणी का सम्पूर्ण वैचित्र्य अव्यक्तरूप से अभिन्न होकर रहता है। यही मयूराण्डरस-न्याय है।

ये ही समस्त तत्त्वों के अधिष्ठाता एवं उपादानरूप से प्रकाशमान हैं। शुद्धतत्त्वमय कार्यात्मक शुद्ध जगत का उपादान बिन्दु है, कर्ता शिव है और करण शक्ति है। अशुद्ध तत्त्वमय जगत में भी परम्परा से शिव और शक्ति ही कर्ता एवं करण हैं तथा निवृत्ति आदि कलाओं के द्वारा बिन्दु आधार है। बिन्दु का ही दूसरा नाम महामाया है। शब्दब्रह्म, कुण्डलिनी, विद्याशक्ति, अनाहत और व्योम—इन विचित्र सुखमय भुवन और भोग्यादि के रूप में परिणत होकर यही शुद्ध जगत उत्पन्न करता है। भोगार्थी साधक भौतिक दीक्षा के प्रभाव से इस आनन्दमय राज्य में प्रवेश का अधिकार प्राप्त करता है। किन्तु जो पहले से ही इस महामाया के राज्य के सुखभोग की इच्छा नहीं रखते, वे नैष्ठिक दीक्षा प्राप्त करके शक्ति के साथ नित्य मिले हुए शिवस्वरूप साक्षात् परमेश्वर को उपलब्ध करते हैं। जिस प्रकार बिन्दु क्षुब्ध होकर एक ओर शुद्धदेह, इन्द्रिय, भोग और भुवन के रूप में परिणत होता है, जिसे 'शुद्ध अध्वा' कहते हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर यही शब्द की भी उत्पत्ति करता है।

शब्द सूक्ष्म-नाद, अक्षर बिन्दु और वर्णभेद से तीन प्रकार का है। सूक्ष्म-नाद अभिधेय बुद्धि का कारण एवं बिन्दु का प्रथम प्रसार है। यह चिन्तनशून्य है। अक्षर-बिन्दु सूक्ष्म-नाद का कार्य और परामर्शज्ञानस्वरूप है। यह मयूराण्डरस-न्याय की तरह अनिर्वचनीय है। आकाश और वायु से श्रोत्रग्राह्य वर्णात्मक स्थूल शब्द उत्पन्न होता है। 'कालोत्तर तन्त्र' में लिखा है— स्थूलं शब्द इति प्रोक्तं सूक्ष्मं चिन्तामयं भवेत् । चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम् ।। अर्थात् बिन्दु जड़ होने पर भी शुद्ध है। पांचरात्र अथवा भगवतसम्प्रदायान्तर्गत वैष्ण आगम में 'विशुद्ध सत्व' शब्द से जो कुछ समझा जाता है, यही बिन्दु है। परमेश्वर के साथ बिन्दु अथवा महामाया के सम्बन्ध के विषय में दो प्रकार के मत प्रचलित हैं—

प्रथम, इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मत यह है कि शिव की दो शक्तियां हैं—एक समवायिनी और दूसरी परिग्रहरूपा। समवायिनी शक्ति चिद्रूपा अपरिणामिनी, निर्विकारा और स्वाभाविकी है। यही शक्ति तत्त्व है। यह शिव में नित्य समवेत रहती है। इन शिव-शक्ति दोनों का तादात्म्य सम्बन्ध है। परिग्रह शक्ति अचेतन और परिणामशीला है। इसका नाम बिन्दु है। बिन्दु के शुद्ध और अशुद्ध दो रूप हैं। साधारणतः शुद्ध रूप को ही बिन्दु और महामाया कहा जाता है। अशुद्ध रूप का नाम माया है। दोनों ही नित्य हैं। अशुद्ध अध्वा का उपादानकरण माया है और शुद्ध अध्वा का उपादान महामाया है। यही इन दोनों का अन्तर है। सांख्यसम्मत तत्त्व एवं कलादिकंचुक अशुद्ध अध्वा के

ही अन्तर्गत हैं। यह सब माया का ही कार्य है (अवश्य पुरुष या आत्मा नित्य है तथा इनसे विलक्षण है, परन्तु उसमें भी पुंसत्व नामक आवरण रहता है)। माया से ऊपर के तत्त्व शुद्ध अध्वा के अन्तर्गत हैं।

द्वितीय, दूसरा मत यह है कि एकमात्र बिन्दु ही शुद्ध और अशुद्ध अध्वा का उपादान है। इस मत में माया नित्य नहीं है, किन्तु कार्यरूपा है। महामाया या बिन्दु की तीन अवस्थाएं हैं—परा, सूक्ष्मा और स्थूला। परा अवस्था को महामाया, परामाया, कुण्डलिनी आदि नामों से जाना जाता है। यही परम कारण और नित्य है। सूक्ष्म और स्थूल—ये दोनों अवस्थाएं कार्य होने के कारण अनित्य हैं। महामाया के विक्षुब्ध होने पर ही उसके शुद्ध धामों तथा उनमें रहने वाले मन्त्रों (विद्याओं) एवं मन्त्रेश्वरों (विद्येश्वरों) के शरीर और इन्द्रियादि रचे जाते हैं। अर्थात् शुद्ध लोकों में संस्थान और देहादि सब साक्षात् महामाया के कार्य हैं। ये शुद्ध महामायातीत और उज्ज्वल हैं। महामाया की सूक्ष्म या दूसरी अवस्था का नाम माया है। कलादितत्त्वसमूह का अविभक्त स्वरूप ही माया है। कलादि के सम्बन्ध के कारण ही द्रष्टा आत्मा भोक्ता पुरुष रूप में परिणत होता है। माया से तत्त्व एवं भुवनात्मक कलादि तथा प्रकृति आदि साक्षात् या परम्परारूप से उत्पन्न होते हैं। सारे अशुद्ध अध्वा का मूल कारण यह माया ही है।

आगम में जिस प्रकार इसे 'जननी' कहा गया है, वैसे ही 'मोहिनी' भी कहा गया है। महामाया की स्थूल या तीसरी अवस्था का नाम प्रकृति है। यह त्रिगुणमयी है। प्रकृति साक्षात् या परम्पराक्रम से भोक्ता पुरुष के बुद्धि आदि भोग-साधनों तथा समस्त भोग्य-विषयों को उत्पन्न करती है। कलादि के सम्बन्ध से पुरुष भोक्ता हो गया है, इसी से उसके भोग्य तथा भोगसाधनों की सृष्टि के लिए महामाया ने प्रकृति रूप स्थूल अवस्था ग्रहण की है। बिन्दु शिव में समवेत नहीं है, यही प्रचलित मत है। इस मत में बिन्दु परिणामी होने के कारण जड़रूप है। इसी से चिदात्मक परमेश्वर के रूप में इसका समवाय सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया जाता। शिव के साथ बिन्दु का समवाय स्वीकार करने पर उनके अचेतनत्य का प्रसगं अनिवार्य हो जाएगा।

किन्तु तान्त्रिक भेदवादियों में कोई-कोई बिन्दुसमवायवादी भी थे। उनके मतानुसार शिव की समवायिनी शक्ति दो प्रकार की है—एक दृक्शक्ति या ज्ञानशक्ति और दूसरी क्रियाशक्ति या कुण्डलिनी। क्रियाशक्ति का ही दूसरा नाम बिन्दु है। माया अवश्य ही इससे सर्वथा भिन्न है। माया शिव में समवेत नहीं होती। अपने में समवेत ज्ञानशक्ति से परमेश्वर जगद्विषयक ज्ञान और क्रियाशक्ति के द्वारा उनकी जगद्-रचना उत्पन्न होती है। ज्ञानशक्ति भिन्न-भिन्न पदार्थों के बिना वस्तुनिर्माणरूप फल नहीं हो सकता। ये ज्ञान और क्रियारूपा दो शक्तियां परमेश्वर में अविनाभूतरूप से प्रतिष्ठित हैं। जिस प्रकार बिन्दु का क्षोभ होने से शुद्ध जगत उत्पन्न होता है, वैसे ही माया का क्षोभ होने पर अशुद्ध जगत का आविर्भाव होता है। अपने में समवेत शक्ति के द्वारा परमेश्वर के बिन्दु को स्पर्श करने से बिन्दु में क्षोभ होकर वैषम्य होता है और किसी प्रकार नहीं। अतः एकमात्र साक्षात् परमेश्वर की शक्ति के प्रभाव से ही शुद्ध जगत की उत्पत्ति हो सकती है। किन्तु माया का क्षोभ साक्षात् रूप से परमेश्वर की शक्ति द्वारा नहीं होता।

तन्त्रमत में सृष्टि, पालन, संहार, निग्रह और अनुग्रह—इन पांच कार्यों का मुख्य कर्ता एकमात्र परमेश्वर को ही माना गया है, ब्रह्मादि तो केवल द्वारमात्र हैं। इसी से सर्वत्र उसे 'पंचकृत्यकारी' कहकर वर्णन किया गया है। इन्हीं कृत्यों का सम्पादन करने के लिए शुद्ध अध्वा

की आवश्यकता होती है। इसीलिए बिन्दु के क्षोभ की भी अपेक्षा है। यद्यपि वस्तुतः परमेश्वर एक और अद्वितीय है तथा उसकी शक्ति भी वैसी ही है, तथापि उपाधिभेद के कारण उसमें आरोपित किया हुआ भेद भी अवश्य है। जिस समय उसकी शक्ति अव्यक्त रहती है, उस समय वह निष्क्रिय, शुद्ध और संविद-रूपा होती है। उस समय बिन्दु भी स्थिर एवं अक्षुब्ध रहता है, क्योंकि शक्ति की सक्रिय अवस्था हुए बिना बिन्दु क्षुब्ध नहीं हो सकता। परबिन्दु के स्वरूप के अधिष्ठाता परमेश्वर की यह लयावस्था है। यहां प्रसंगवश एक बात कहना उचित जान पड़ता है।

प्रचलित मत में शक्ति एक होने के कारण उसमें ज्ञान और क्रिया का कोई भेद नहीं है। जो भेद प्रतीत होता है, वह औपाधिक है। अतः ज्ञान भी सदा क्रियारूप ही है। इसी से क्रिया शब्द से प्रायः शक्ति ही समझा जाता है। जिस समय यह शक्ति सारे व्यापारों को समाप्त करके स्वरूपमात्र में स्थित होती है, उस समय शिव को शक्तिमान कहा जाता है। क्रियारूपा शक्ति उस समय मुकुलिता-सी हुई शिव में स्थित रहती है। यही शिव की पूर्वोक्त लयावस्था है। जिस समय यह शक्ति उन्मेष को प्राप्त होकर उद्योगपूर्वक बिन्दु को कार्योत्पादन के अभिमुख करती है और कार्योत्पादन करके शिव के ज्ञान एवं क्रिया की समृद्धि करती है, तब शिव की भोगावस्था होती है। परमेश्वर का भोग या परमानन्द सुखसंवेदनरूप नहीं है, क्योंकि मलहीन चित्सत्ता में उपाधिभूत आनन्द और भोग की सम्भावना नहीं है। इस अवस्था में शक्ति सक्रिय रहती है। इसी से उसके साथ शिव को भी सक्रिय कहा जाता है—

स तथा रमते नित्यं समुद्युक्तः सदाशिवः ।
पंचमन्त्रातनुः श्रीमान् देवः सकलनिष्कलः ।।

अर्थात् लयावस्था में शिव निष्कल एवं भोगावस्था में सकल-निष्कल हैं। किन्तु इन दोनों के अतिरिक्त उनकी अधिकारावस्था नाम की एक अन्य अवस्था भी है, जिसका वर्णन आगे किया जाएगा। इस अवस्था में वे सकल रहते हैं। किन्तु उनका यह अवस्थाभेद वास्तविक नहीं है, औपचारिक मात्र है। शक्ति या कला की अविकास दशा, विकासोन्मुख दशा एवं पूर्ण विकास दशा के अनुसार ही शिव के इस अवस्थाभेद की कल्पना की जाती है। शिव और शक्ति के इस अवस्थाभेद के मूल में बिन्दु का अवस्थाभेद रहता है। निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति तथा शान्त्यतीत—ये कलाएं बिन्दु की ही पृथक-पृथक अवस्थाएं हैं। उनमें शान्त्यतीत कला बिन्दु का स्वरूप मानी जा सकती है। वह अक्षुब्ध बिन्दु या लयावस्था है।

शुद्ध और अशुद्ध जितने भी भोगाधिष्ठान हैं, ये सब शान्ति आदि चार कलाओं के ही परिणामस्वरूप हैं। वस्तुतः भोगाधिष्ठान कहने पर शान्ति आदि चार कलाओं के भुवन ठीक-ठीक भोगस्थान नहीं हैं, किन्तु सृष्टि के आरम्भ में ही उत्पन्न होने के कारण किन्हीं-किन्हीं आचार्यों ने इसकी भी भोगस्थानों में गणना की है। यह भोग की बीजावस्था है। कलात्मक शक्ति ही शिव के देहरूप में अध्यस्त होती है। अतएव लयावस्था में बिन्दु का विक्षोभ न रहने से कला का उद्भव न होने के कारण निष्कल शिव को अशरीर कहा जाता है। भोगावस्था में शिव सकल-निष्कल रहते हैं—तब उनका देह पंचमन्त्रात्मक रहता है। तन्त्रमत में शक्ति ही मन्त्र है, अतः वह पंचशक्तिमय होता है— मननात्सर्वभावानां त्राणात्संसारसागरात् । मन्त्ररूपा हि तच्छक्तिर्मननत्राणरूपिणी ।।

यह मन्त्ररूपा शक्ति मूल में एक ही है। किन्तु उपाधिवश कई हो गयी है। अधिष्ठान होने के कारण एक ही शक्ति कार्यभेद से पांच रूप में प्रतीत होती है। तद्नुसार बिन्दुभुवन की या

शान्त्यतीत कलाभुवन की अधिष्ठात्री शक्ति को ईशान मन्त्र एवं शान्ति आदि चार भुवनों की अधिष्ठात्री शक्तियों को क्रमशः तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव और अघोर मन्त्र कहा जाता है। ये भुवन भोगस्थान हैं।

ईशानादि पंचमन्त्रात्मिका शक्ति देह का कार्य करती है। इसलिए उसे 'शिवतनु' कहते हैं। वस्तुतः यह पारमार्थिक देह नहीं है। यह पंचमूर्ति परमेश्वर के पंचकृत्यों में उपयोगी है। बिन्दु की समस्त कलाएं कारणावस्था में लीन रहने पर अर्थात् परबिन्दु अवस्था में उनका कोई विभाग नहीं रहता। इसकी अधिष्ठात्री शक्ति शिव की परामूर्ति है। यह लयावस्था की बात है। जिस समय शिव को अशरीर कहा जाता है, उस समय इसी अवस्था की ओर लक्ष्य किया जाता है। तब शक्ति लीन रहती है तथा बिन्दु अक्षुब्ध एवं असत्कल्प रहता है। एकमात्र शिव ही उस समय अपनी महिमा में विराजमान रहते हैं। जिस समय बिन्दु की कलाएं कार्यावस्था में रहती हैं, उस समय उनकी अधिष्ठात्री शक्ति को शिव की अपरामूर्ति कहते हैं। भोगस्थानरूप में जिन कला और भुवनों का उल्लेख किया गया है, उनमें निवृत्तिभुवन सबकी अपेक्षा निम्न कोटि का है। इस के अधोवर्ती भुवन का नाम सदाशिव भुवन है। इसकी अधिष्ठात्री शक्ति शिव की अपरामूर्ति अथवा सदाशिवतनु है।

'सदाशिवतनु' नाम औपचारिक है—सदाशिव भुवन के अधिष्ठान के कारण इसका उद्‌भव हुआ है। दीक्षा के द्वारा जो जीव तत्तद् भुवन में जाते हैं, उनका भेद सत्य है किन्तु शिव और शक्ति का भेद कार्यभेद के कारण औपाधिक है— अधिकारी स भोगी च लयी स्यादुपचारतः । अर्थात् शिव की शक्ति से शोभित महामाया जो-जो कार्य उत्पन्न करती है, उससे उसके अधिष्ठाता शिव और शक्ति में कार्यभेद एवं स्थानभेद के कारण उपचार से तत्तद् संज्ञा का व्यपदेश होता है। दृष्टांतरूप से कह सकते हैं कि जैसे शान्तिभुवन के अधिष्ठान और उत्पादन के कारण शक्ति एवं शिव क्रमशः 'शान्ता' तथा 'शान्त' संज्ञा को प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

मृगेन्द्र आगम में लिखा है— किन्तु यः पतिभेदोऽस्मिन् स शास्त्रे शक्तिभेदवत् । कृत्यभेदोपचारेण तद्‌भेदस्थानभेदतः ।। इनमें अधिकार-अवस्थापन्न शिव सकल हैं। ये बिन्दु से अवतीर्ण और अणुसदाशिवों से आवृत्त हैं। ये सब सदाशिव वस्तुतः पशु-आत्मा हैं, शिवात्मा नहीं हैं। इनमें कुछ आणव मल शेष रहता है। इससे उस समय इनकी ज्ञान-क्रियारूपा शक्ति का कुछ संकोच रहता है। यह शिव के समान पूर्णरूप से अनावृत शक्तिसम्पन्न नहीं होते। यद्यपि ये भी मुक्तपुरुष हैं तथापि सर्वथा मलहीन न होने के कारण अभी तक इन्हें परामुक्ति या शिवसाम्य प्राप्त नहीं हुआ है।

सदाशिव भुवन के अधिष्ठाता होने के कारण परमेश्वर को भी सदाशिव कहा जाता है। वे स्वयं शिव हैं और पूर्वोक्त अणुसदाशिवों को अपने-अपने भुवन के भोग में नियोजित करते हैं। साथ ही विद्येश्वर एवं मन्त्रेश्वरों को अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार अशुद्ध अध्वा के अधिकार में नियुक्त करते हैं। यह दो प्रकार का नियोजन व्यापार ही अधिकारावस्था में शिव या सकलशिव का कार्य है। यही उनका प्रेरकत्व और प्रभुत्व है। ये सदाशिवरूपी शिव ही समस्त जगत् के प्रभुरूप से शुद्ध एवं अशुद्ध समस्त अध्वाओं के मूर्द्धदेश में विराजमान हैं। योगीजन इसी भाव से उनका ध्यान करते हैं।

माया के ऊपर शुद्ध अध्वा में अनेक भुवन हैं। प्रत्येक भुवन में तदनुरूप देह एवं करण आदि तथा भोग्यादि हैं। ये विशुद्ध बैन्दव उपादान से रचे हुए हैं। इनमें भी भुवन के ऊर्ध्व एवं अधोभाव से क्रमिक उत्कर्षाकर्ष है। दृष्टान्तरूप से कह सकते हैं कि विद्या में जो वामा एवं ज्येष्ठादि भुवन हैं, उनमें वामा के भुवन की अपेक्षा ज्येष्ठा का भुवन उत्कृष्ट माना जाता है। इसी प्रकार ज्येष्ठा के भुवन की अपेक्षा रौद्रीय भुवन उत्कृष्ट है इत्यादि। इस विद्यातत्त्व में सात करोड़ मन्त्र तथा उनकी अधीश्वरी सात विद्याराज्ञी स्थित हैं। ईश्वरतत्त्व में आठ विद्येश्वर अपने-अपने पुर में विराजते हैं। इनमें शिखण्डी सबसे नीचे हैं और अनन्त सबसे ऊपर। इनमें भी पूर्ववत् क्रमोत्कर्ष है। सदाशिव तत्त्व में भी ठीक ऐसा ही है।

यहां प्रसंगतः पशु-आत्मा के सम्बन्ध में दो-चार बातें बताना आवश्यक है। ये सब आत्मा स्वरूपतः नित्य विभु चेतन एवं अन्यान्य शिवधर्ममय होने पर भी संसारावस्था में इन सब धर्मों के विकास का अनुभव कर नहीं पाते। सर्वज्ञानक्रियारूपा चैतन्यशक्ति जिस प्रकार शिव की है, वैसी ही जीव या पशु-आत्मामात्र की भी है। किन्तु भेद यह है कि शिव के स्वरूप में यह सर्वज्ञत्व सर्वकर्तृत्वरूपा शक्ति सर्वदा अनावृत रहती है। पशु में भी यह है तो सर्वदा ही, तथापि अनादि काल से पाशसमूह के द्वारा अवरुद्ध रहती है। मल, कर्म और माया—इन तीन पाशों में से कोई आत्मा एक पाश से बंधी हुई है, कोई दो से और कोई तीनों से आबद्ध है।

जिन आत्माओं में इन तीनों पाशों का बन्धन है, वे 'सकल' कहलाते हैं। जिनकी मायिक कलादि प्रलयादि अवस्था में उपसंहृत हो गयी हैं तथा मल और कर्म क्षीण नहीं हुए हैं, उनका शास्त्रीय नाम 'प्रलयाकल' है। विज्ञानादि उपायों के अवलम्बन से कर्मक्षय हो जाने पर जब केवल 'मल' नामक एक ही पाश रह जाता है तो इस अवस्था में आत्मा को 'विज्ञानाकल' कहते हैं।

ये विज्ञानाकल अथवा विज्ञानकेवली आत्मा भी मल के परिपाकगत तारतम्य के कारण तीन प्रकार के हैं। वे सभी मायातीत हैं, सभी की कर्मवासनाएं कट गयी हैं। किन्तु किंचित् अधिकारमल रह जाने के कारण उन्हें शिवसाम्यरूप पूर्णत्व प्राप्त नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है— उत्तीर्णमायाम्बुधयो भग्नकर्ममहार्गलाः । अप्राप्तशिवधामानः त्रिधा विज्ञानकेवलाः । इन तीन प्रकार के विज्ञानाकल आत्माओं के नाम और परिचय संक्षेप में इस प्रकार है—

विद्यातत्त्ववासी मन्त्र और विद्या

ये संख्या में सात करोड़ हैं तथा विद्येश्वरवर्ग की आज्ञा के अधीन रहते हैं। इनका वासस्थान या भुवन विद्यातत्त्व में है। विद्येश्वरगण पाशबद्ध 'सकल' जीवों के उद्धार के समय इन मन्त्र और विद्यासंज्ञक विज्ञानाकल आत्मा या देवताओं का अपने अनुग्रह कार्य के कारणरूप से व्यवहार करते हैं। पंचकृत्यकारी होने के कारण विद्येश्वरगण में भी अनुग्राहकत्व है। यामादि विद्याभुवन उत्तरोत्तररूप से स्थित हैं। देह, भोग और इन्द्रिय आदि का उत्कर्ष इन भुवनों में क्रमशः अधिक है।

ज्ञान, योग एवं संन्यासादि उपायों से अथवा भोग के द्वारा कर्मराशि का क्षय होने पर कर्मों के फलभोग के साधनभूत मायिका सूक्ष्म तथा स्थूल देह का आत्यान्तिक विश्लेष हो जाता है। उस समय आत्मा कैवल्य को प्राप्त होकर माया के ऊपर शुद्ध विद्यातत्त्व को आश्रय करके अणुरूप

में स्थित होता है। तब कर्म और माया कट जाने पर भी मल शेष रह जाता है। इस मल के निवृत्त हुए बिना आत्मा का पशुत्व नष्ट न होने के कारण उसके शिवत्वलाभ की सम्भावना नहीं होती। मन परिपक्व न होने तक पशुत्व की निवृत्ति असम्भव है। अतः ये आत्मा मायातीत एवं केवलीभाव को प्राप्त होने पर भी अपरामुक्ति तक प्राप्त नहीं कर पाते, परामुक्ति की तो बात ही क्या है।

सृष्टि के आरम्भ में इन अणु या आत्माओं में से जिनका मल न्यूनाधिकरूप से परिपक्व हो जाता है, उन पर भगवान् स्वयं ही कृपा करते हैं अर्थात् उनके अपने-अपने मलपाक के अनुरूप उनमें ज्ञानक्रियाशक्ति उन्मीलित कर देते हैं। मन्त्र एवं मन्त्रेश्वर आदि पद पर शुद्ध अध्वा में भोग तथा अधिकार कार्य में नियोजित कर देते हैं। इनमें जो अत्यन्त शुद्ध होते हैं, वे एक साथ परतत्त्व या शिवतत्त्व में नियोजित हो जाते हैं। शेष आत्माओं का मलपाक न होने के कारण उनका आवरण बहुत सघन रहता है। ये विज्ञानकैवल्य अवस्था में ही विद्यमान रहते हैं।

आत्मा की स्वाभाविकी चैतन्यरूपा सर्वज्ञानक्रियाशक्ति इस अवस्था में सुप्त रहती है। इसलिए कैवल्य में भी उनका पशुत्व निवृत्त होकर शिवत्व की अभिव्यक्ति नहीं होती। वे केवली आत्मा कर्महीन होने के कारण जहां एक ओर माया के कार्य या मायिक जगत को पार कर लेते हैं, वहीं दूसरी ओर महामाया या बिन्दु के कार्यरूप विशुद्ध अध्वा या जगत् में प्रवेश भी नहीं कर पाते—ये बीच में ही रहते हैं। आत्मा स्वरूपतः विभु होने के कारण विज्ञानकेवलियों की यह मध्यस्थता औपचारिक मात्र होती है। इसमें सन्देह नहीं है कि कैवल्य तन्त्रसम्मत मुक्ति नहीं है।

ईश्वरतत्त्ववासी विद्येश्वर

ये संख्या में आठ हैं। उनमें 'अनन्त' प्रधान हैं। ईश्वरतत्त्व में इनके आठ भुवन हैं। इनमें भी उत्तरोत्तर गुणों की अधिकता पायी जाती है अर्थात् शिखण्डी से श्रीकण्ठ में विशेष गुण हैं। इनके भुवन भोग, देह और करण आदि भी उनसे श्रेष्ठ हैं। इसी प्रकार श्रीकण्ठ से त्रिमूर्ति अधिक शक्तिशाली हैं। इन विद्येश्वरों में अनन्त ही सबसे श्रेष्ठ और परम ईश्वर (समर्थ) हैं। इनका मल सर्वथा शान्त हो गया है, केवल अधिकारमात्र की थोड़ी-सी वासना रह गयी है। ये सभी शिव द्वारा अनुगृहीत होते हैं। ये प्रशान्तमलत्व, अधिकारमल सम्बद्धत्व और शिवानुगृहीतत्त्व मन्त्रगण में भी रहते हैं। किन्तु ये पंचकृत्यकारी होने के कारण जीवोद्धाररूप व्यापार में अनुग्रह के कर्ता होते हैं और मन्त्रगण अनुग्रह के कारण हैं—यही इनका भेद है। इन विद्येश्वरगण के विषय में 'रौरवागम' में लिखा है— सृष्टिसरंक्षणादानभावानुग्रहकारिणः शिवार्ककरसम्पर्कविकासात्मीयशक्तयः । इस वाक्य के अनुसार इनकी आत्मशक्तियां शिव के अनुग्रहात्मक संसर्ग से विकसित हो गयी हैं।

सदाशिवतत्त्वस्थ भुवनवासी पशु अथवा संस्कार्य सदाशिव

ये सदाशिव अथवा अधिकारावस्थापन्न शिव के समान पंचकृत्यकारी हैं। सदाशिवतत्त्व में आश्रित होने के कारण ये भी सदाशिव नाम से ही परिचित हैं। ये परमेश्वर की कृपा से शुद्ध अध्वा के ऊपर स्थित हैं। शुद्ध अध्वा में विद्या, ईश्वर और सदाशिव—इन तीन तत्त्वों के आश्रय से भोक्तृवर्ग सहित अठारह मुख्य भुवन हैं। प्रत्येक भुवन में उस भुवन के अधीश्वर तो रहते ही हैं, उनके सिवा और भी अगणित आत्मा रहते हैं। इन आत्माओं में से किन्हीं-किन्हीं तत्तद् भुवन के

अधिष्ठाता की आराधना करके और किन्हीं दीक्षा के प्रभाव से उन भुवनों में स्थान प्राप्त किया है। 'सूक्ष्म स्वाम्भुव' आगम में कहा गया है— यो यन्नाभिलषेद्भोगान् स तत्रैव नियोजितः । सिद्धिभाङ मन्त्रसामर्थ्यात् ।

इस विषय में 'स्वच्छन्द तन्त्र' में भी बहुत आलोचना की गयी है। अब प्रलयाकल और सकला नामक पशु-आत्माओं के सम्बन्ध में संक्षेप से कुछ कहा जाता है। प्रलय के समय ईश्वर समस्त मायिक कार्य का उपसंहार करके स्थित रहते हैं—यह प्रसिद्ध ही है। प्रलय का उद्देश्य दीर्घकाल तक संसार में परिभ्रमण करने के कारण थके हुए आत्माओं को विश्राम देना तथा उत्पत्ति के कारण जिसकी शक्ति का क्षय हुआ है, उस माया की शक्तिवृद्धि करना है। जिन कला आदि भोगसाधनों के द्वारा आत्मा विषयभोग करने में समर्थ होते हैं, वे प्रलयकाल में विलीन हो जाते हैं, इसलिए उस समय आत्मा कर्म और मल—इन दोनों पाशों में बंधकर नवीन सृष्टि का आरम्भ होने तक माया के भीतर रहते हैं। इन्हें 'प्रलयाकल या प्रलयकेवल जीव' कहकर वर्णन किया जाता है।

यद्यपि तब तक इनका कर्मक्षय नहीं हो पाता, तथापि ये प्रलय के प्रभाव से कलादिहीन होकर एक प्रकार की कैवल्यावस्था में ही रहते हैं। इनमें से जिनके कर्म और मल सम्यक् प्रकार से परिपक्व हो जाते हैं, उन्हें अधिकार प्रदान करने का अवसर नहीं रहता। मलपाक एवं कर्मपाक के विषय में बहुत-सी जानने योग्य बातें हैं। मलपाक प्रधानतः ईश्वर की शक्ति के सम्बन्ध से ही होता है। कर्मपाक भी किसी अंश में तो मलपाक के ही सदृश है। कर्मों में बहुत भेद रहता है। जो कर्म क्रमशः पक्व होने वाले हैं, उनका क्षय जीव का देह से सम्बन्ध होने पर भोग के द्वारा ही होता है। जो एक साथ पक्व होने होते हैं, उनका क्षय श्रीभगवान् के अनुग्रह से ही होता है। उन्हें भोग द्वारा क्षय नहीं करना पड़ता।

जिन जीवों के मल, कर्म एवं माया परिपक्व नहीं हो पाते, वे प्रलयकाल में नवीन सृष्टि का आरम्भ होने तक मुग्ध हुए से विश्राम करते रहते हैं। बाद में जब उन्हें भोगयोग्य अवस्था प्राप्त होती है, तब परमेश्वर अनन्त नामक विद्येश्वर में अपनी शक्ति का सन्निवेश करके उसके द्वारा मायातत्त्व को क्षोभित करते हैं तथा अशुद्ध जगत की रचना करते हैं। इस सृष्टि में वे अपक्वपाश जीव कलादि समस्त भोगसाधनों को प्राप्त कर सकल पशुरूप से आविर्भूत होते हैं। इनमें तीनों ही प्रकार के पाश रहते हैं।

इन सकल पशुओं के सिवा एक प्रकार के सकल जीव भी हैं। इनके मल और कर्म परिपक्व हो जाने पर भी ये सृष्टि के आरम्भ में साक्षात् परमेश्वर का अनुग्रह पाकर उसी के द्वारा माया के गर्भ में स्थित जगत का अधिकार पाने के लिए अपरमन्त्रेश्वर के पद पर प्रतिष्ठित होते हैं तथा अनन्त की कृपा से आतिवाहिक देह ग्रहण कर 'सकल' नाम से परिचित होते हैं। यह विश्व के व्यापार को सम्पन्न करने वाला माया के गर्भ में स्थित आधिकारिक मण्डल है। आतिवाहिक देह भी मायिक देह ही है, इसमें सन्देह नहीं। पहले शुद्ध जगत में माया से ऊपर जिन आधिकारिक गणों के विषय में चर्चा की गयी है, उनके देह बैन्दव (बिन्दुजनित) अर्थात् महामायारूप उपादान से गठित हैं। किन्तु परमेश्वर के अनुग्रह की प्राप्ति के समय उत्पन्न होने वाला बैन्दव देह इन सकल आधिकारिक गण को भी प्राप्त होता है। वह अत्यन्त सूक्ष्म होता है, इसलिए भीतर वर्तमान रहने पर भी उसके सकल पशु के अधिकार या शासन का कार्य नहीं हो सकता। इसलिए

इस बैन्दव देह के अधिकरण रूप से एक मायिक देह की आवश्यकता होती है।

यह मायिक देह और पूर्वोक्त बैन्दव देह अभिन्न रूप से प्रतीत होते हैं। बैन्दव देह शुद्ध और स्वच्छ होने के कारण बोधमय है तथा मायिक देह आतिवाहिक होने पर भी वस्तुतः मोहमय होता है। फिर भी यह बैन्दव देह के सम्बन्ध में अपनी स्वाभाविक मोहमयता को छोड़कर बोधमयरूप से भासमान होता है। मन्त्रवर्ग के विषय में भी यही नियम है। इनके सिवा ऐसे भी जीव होते हैं जिनके मल का पाक न होने पर भी पाप का क्षय और पुण्य का उत्कर्ष होने के कारण उन्हें भिन्न-भिन्न भुवनों में आधिपत्यलाभ के योग्य शरीर मिल जाता है। वे भुवन अंगुष्ठ से लेकर कालानलपर्यन्त विभिन्न स्वरों में विभक्त हैं।

पाश का निरूपण

पशु-आत्मा के निरूपण के पश्चात् अब पाश के सम्बन्ध में भी कुछ कहना आवश्यक जान पड़ता है, क्योंकि पाश से सम्बन्ध होने के कारण ही आत्मा को पशुभाव की प्राप्ति और संसार का अनुभव होता है। पाश अचेतन है और चेतन के अधीन, परिणामशाली एवं चैतन्य का प्रतिबन्धक है। मल, कर्म और माया साधारणतः—इन तीन प्रकार के पाशों का ही वर्णन पाया जाता है। इनमें मल ही प्रधान है। शुद्ध आत्म चैतन्यरूपा संवित्शक्ति मलहीना होने के कारण स्वरूप को प्रकाशित करने वाली है, यह सर्वदा अभिन्नरूपा और परिणामहीना है। तन्त्रमत में घट-पटादि बाह्यभेद भी असत्य नहीं, सत्य ही हैं। इन बाह्य पदार्थों की सन्निधि के कारण बौद्धज्ञान में तत्तद् प्रकार के विभिन्न आकारों की उत्पत्ति होती है और उनका आत्मा के बोध में आरोप होता है। किन्तु अर्थ-भेद की सन्निधि के कारण बौद्धज्ञान में भेद होने पर भी उस ज्ञान की आश्रयभूता आत्मशक्तिए अथवा ग्राहक चैतन्य सर्वदा एक रूप में ही भासमान होता है। यह नित्य और निर्विकार है।

इस आत्मसंवित् को ही पौरुषज्ञान कहते हैं। पौरुषज्ञान से बौद्धज्ञान के पार्थक्य का भान न रहने के कारण ही ज्ञान में नानात्व भ्रम का आविर्भाव होता है। इसका मूल कारण पशुत्व का हेतुभूत मल है— सा तु संविदविज्ञाता तैस्तैर्भावैर्विवर्तते । मलोपरुद्धदृक्छक्तेर्नरस्येवोडुराट् पशोः ।। जब तक मल की निवृत्ति नहीं होगी, तब तक पशुत्व दूर नहीं होगा और शिवत्व की अभिव्यक्ति भी नहीं होगी। केवल ज्ञान के द्वारा ही मल का नाश होना सम्भव नहीं है।

द्वैतमत में मल द्रव्यात्मक है। अतः जिस प्रकार आंखों की जाली चिकित्सक की अस्त्रोपचाररूपा क्रिया के द्वारा निवृत्त होती है, उसी प्रकार ईश्वर के दीक्षासंज्ञक व्यापार के द्वारा इस मल की निवृत्ति हो सकती है। मल की निवृत्ति का इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

'स्वायम्भुव' आगम में कहा गया है— दीक्षैव मोचयत्यूर्ध्वं शैव धामं नयत्यपि अर्थात् दीक्षा ही मल को छुटाती है और फिर ऊपर की ओर शिवलोक में भी ले जाती है। चित् और अचित् का अविवेक मल से उत्पन्न होता है, अतः उस मल की निवृत्ति न होने तक पूर्ण विवेक की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस अविवेक से ही विवर्त्त (अध्यास) का उदय होता है।

मल ही आणव पाश है। यदि आत्मा की नित्य और व्यापक चित्शक्ति का इस आणव पाश से अवरोध न होता तो संसारावस्था में भोगनिष्पत्ति के लिए कलादि के द्वारा अपने सामर्थ्य की उत्तेजना की आवश्यकता न होती तथा मोक्ष के लिए भी परमेश्वर की कृपा-बल का कोई प्रयोजन

न होता। मल एक होने पर भी उसकी शक्तियां अनेक हैं। उनमें से एक-एक शक्ति के द्वारा एक-एक आत्मा की चित्क्रिया का निरोध होता है। इसी से मल एक होने पर भी एक पुरुष की मलनिवृत्ति के साथ सभी की मलनिवृत्ति का प्रसंग नहीं प्राप्त होता तथा एक पुरुष के मोक्षलाभ से सभी के मोक्ष की आशंका भी नहीं होती। ये मल की शक्तियां अपने-अपने रोध और अपसरण व्यापार में स्वतंत्र नहीं हैं, किन्तु भगवान् की शक्ति के अधीन हैं।

इसी से भगवत्-शक्ति भी उपचार से अनेक रूप में व्यवहृत होती है। मलशक्तियां अपने-अपने अधिकार के समय चैतन्य का रोध किए रहती हैं। उस समय भगवत शक्ति उन शक्तियों का परिणाम करते हुए उनके निग्रह व्यापार का अनुसरण करती है और 'रोधशक्ति' के नाम से सम्बोधित की जाती है। किन्तु जिस समय वह सर्वानुकूल नित्योद्योगमय सदाशिव के ईशानसंज्ञक मस्तक से निकलती हुई मोक्ष प्रकाशिका ज्ञानप्रभा द्वारा अणुवर्ग के हृदयकमलों को उन्मीलित करती है, तब उसी को 'अनुग्रहशक्ति' कहा जाता है।

मलाधिकार की समाप्ति न होने तक मुक्ति नहीं हो सकती। मल की यह अधिकार समाप्ति अपने परिणाम की अपेक्षा से होती है। मल में परिणत होने की योग्यता रहने पर भी वह अपने-आप परिणत होने में समर्थ नहीं है, क्योंकि अचेतन होने के कारण यह सर्वदा सब प्रकार से चित्शक्ति द्वारा प्रयुक्त होने वाला है। अतः परमेश्वर की शक्ति के प्रभाव से ही मल का परिणाम होता है, यही युक्तिपूर्ण सिद्धान्त है। कर्मसंज्ञक पाश के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। यह धर्माधर्मात्मक होता है तथा अदृष्ट एवं बीज आदि नामों से प्रसिद्ध है। कर्मसन्तान प्रवाहरूप से अनादि है तथा सूक्ष्म देह के मध्य अवयवभूत बुद्धितत्त्व में आश्रित है।

माया के नाम से जिस पाश की बात कही गयी है, वह मायातत्त्व से भिन्न है। सृष्टि के आरम्भ में जिस समय मन्त्रेश्वर के द्वारा मायातत्त्व क्षोभित होता है, उस समय वह कला एवं विद्या आदि तत्त्व रूप में साक्षात् तथा परम्पराक्रम से परिणाम को प्राप्त होता है। कला से लेकर पृथ्वी पर्यन्त तीस तत्त्वों की समष्टि ही माया का स्वरूप है। पुर्यष्टक एवं सूक्ष्म देह आदि इस माया के ही नामान्तर हैं। यह प्रत्येक आत्मा के लिए अलग-अलग होता है तथा प्रलय या मोक्षकाल पर्यन्त उसके भोगसाधन रूप से कर्मानुसार सम्पूर्ण निम्नवर्ती भुवनों में पर्यटन करता रहता है। मायातत्त्व या मायासंज्ञक पाश एक नहीं है। कलादि तत्त्वों की समष्टिरूपा माया साधारण और असाधारण भेदों से दो प्रकार की है। साधारण माया अत्यन्त विस्तृत एवं समस्त आत्माओं की भोग्यरूपा भुवनावली की आधार है। बिन्दु की विद्या प्रतिष्ठा और निवृत्ति नाम की कलाओं में यह निश्चल-सी स्थित रहती है।

विद्याकला के भुवनाधार

विद्याकला में माया, कला, काल, नियति, विद्या (अविद्या), राग और प्रकृति—ये सात भुवनाधार हैं, जिनमें अंगुष्ठमात्र भुवन से लेकर वामदेव नामक भुवन पर्यन्त सत्ताईस भुवन अवस्थित हैं। प्रतिष्ठाकला में गुणों से लेकर जल पर्यन्त तेईस तत्त्वमय भुवनाधार हैं। इनमें श्रीकण्ठ भुवन से लेकर अमरेशभुवन पर्यन्त छप्पन भुवनों का सन्निवेश है। निवृत्तिकला में केवल पृथ्वीतत्त्व है। यह भद्रकालीपुर से लेकर कालाग्निभुवन पर्यन्त एक सौ आठ भुवनों का आधार है। इस साधारण माया के विशाल राज्य में प्रत्येक आत्मा के भोगसाधनभूत संकोच-विकासशील

सूक्ष्मदेहमय असंख्य तत्त्वों की समष्टि इधर-उधर संचार करती रहती है। इन्हें असाधारण माया या पुर्यष्टक कहते हैं। तत्तद् भुवन से उत्पन्न हुए स्थूल देहों के साथ जब इन सूक्ष्म देहों का सम्बन्ध होता है तो उनमें अपने-अपने कर्मों को भोगने की योग्यता उत्पन्न होती है।

मायातत्त्व नित्य विभु और एक है। किन्तु इसमें विचित्र शक्ति है। सृष्टि के आरम्भ में यह ईश्वरशक्ति के द्वारा क्षुब्ध होकर कला, काल और नियति—इन तीन तत्त्वों को उत्पन्न करता है। इनमें कलातत्त्व मलशक्ति को किंचित् अभिभूत करके आत्मा की चैतन्यशक्ति का किंचित् उद्बोध करता है। इसके परिणाम में आत्मा का स्वरूप उसके द्वारा अनुविद्ध होने के कारण उसमें अपने व्यापार के लिए स्वल्प मात्रा में कर्तृत्वभाव का विकास होता है। मल आत्मा का पराभव न करने पर भी उसकी शक्ति का रोध करता है। शक्ति ही करण है। अतः कलातत्त्व आत्मशक्ति के मलरूप आवरण को थोड़ा-सा हटाकर तथा आत्मा के कर्तृत्व को किंचित् मात्रा में उद्बुद्ध करके आत्मा के कर्मफल भोग में सहायता करता है। बुद्धितत्त्व का विषय से उपरंजित होना ही आत्मा का भोग है। यह एक प्रकार का संवेदन है, जिसका स्वरूप प्रवृत्तियों में अभिन्नरूप से भासित होता है।

अनन्त नामक विद्येश्वर के द्वारा ही माया का क्षोभ होता है, यह बात पहले कही जा चुकी है। तान्त्रिक आचार्यगण माया के क्षोभ में परमेश्वर का साक्षात् कर्तृत्व स्वीकार नहीं करते। लेकिन उनका प्रयोजकत्व अवश्य मानते हैं, क्योंकि उनसे अधिष्ठित हुए बिना अनन्तादिक का कर्तृत्व सम्भव नहीं है। 'किरणागम' में लिखा है— शुद्धऽध्वनि शिवः कर्त्ता प्रोक्तोऽनन्तोऽसिते प्रभुः । माया जो इस प्रकार विचित्र भुवनादि, नाना प्रकार के देह और इन्द्रियरूप से अर्थात् कर्मफल भोग के साधनरूप से परिणत होती है, वह त्रिविध बन्धनयुक्त सकलसंज्ञक पशु के लिए ही है। इन पशुओं की अनात्मा में आत्माभिमानरूप मायामय बन्धन, सुख-दुःख एवं मोह का हेतुभूत विपर्यय तथा अपराशक्ति प्रभृति, भावप्रत्ययात्मक कर्ममय बन्धन और पशुत्व की प्राप्ति कराने वाला अनादि आवरणमय आणव-बन्धन रहते हैं।

तन्त्रमत में शरीरी और अशरीरी आत्मा के कर्तृत्व में कुछ भेद हैं। इसलिए परमेश्वर का अपनी शक्ति द्वारा किया हुआ बिन्दु या महामाया का विक्षोभ और अपनी शक्ति द्वारा अनन्त का किया हुआ माया का विक्षोभ—ये दोनों सर्वथा एक प्रकार के व्यापार नहीं हैं। शिव की अपनी शक्ति शुद्धा संवित् अर्थात् विशुद्ध निर्विकल्पक ज्ञान है। किन्तु अनन्त की अपनी शक्ति सविकल्पक ज्ञान अर्थात् विकल्पविज्ञान है। शरीर एवं इन्द्रिय आदि के साथ सम्बन्ध न रहने पर कर्तृत्व नहीं हो सकता—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि अशरीर आत्मा का भी अपने देह के स्पन्दनादि में कर्तृत्व देखा जाता है। आत्मा के साथ मल आदि का सम्बन्ध होने पर भी शरीरादि की आवश्यकता होती है।

शिव मलहीन हैं, अतः उनके कर्तृत्व में शरीरादि की अपेक्षा नहीं है। मायापति अनन्त सर्वथा निर्मल नहीं हैं, क्योंकि उनमें अधिकार-मल रहता है। उनका शरीर बैन्दव या महामाया के उपादान से रचा हुआ है। अनन्तादि को यह सविकल्पक ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न होता है, यह बात जानने योग्य है। तन्त्र का मत तो ऐसा है कि 'यह घट है' इस प्रकार परामर्शस्वरूप शब्दोल्लेख होने पर आत्मा को सविकल्पक ज्ञान होता है— सविकल्पकविज्ञानं चितेः शब्दानुवेधतः । अर्थात् चेतन को शब्दानुवेध से सविकल्पक ज्ञान होता है। अतः अनन्त के

विकल्पविज्ञान में भी शब्दोल्लेख अवश्य रहता है, यह बात स्वीकार करनी पड़ती है।

किन्तु यह शब्दोल्लेख किस प्रकार सम्भव हो सकता है। हम जिस समय की आलोचना कर रहे हैं, उस समय अशुद्ध जगत की तो उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, क्योंकि माया का क्षोभ होने पर ही उसके परिणाम में इस जगत की उत्पत्ति होती है। इसी से तान्त्रिक लोग स्थूल आकाश को इस शब्द के अभिव्यंजक रूप से स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि परमेश्वरजनित महामाया या बिन्दु का क्षोभ होने पर भी शब्द की उत्पत्ति होती है। महामाया ही कुण्डलिनी या परव्योमस्वरूपा है। इसका ही परिणाम शब्द है। जिस प्रकार पंचभूतों में आदिभूत आकाश अवकाशदान तथा स्थूल शब्द के अभिव्यंजन से सूर्य, चंद्र आदि ज्योतिर्मण्डल का भोग एवं अधिकार सम्पादन करता है, उसी प्रकार बिन्दुरूप परमाकाश भी अवकाशदान तथा शब्दव्यंजन के द्वारा जगत-निवासी शिवों को अर्थात् सर्वज्ञत्व एवं सर्वकर्तृत्वसम्पन्न विद्येश्वरों के भोग तथा अधिकार का कारण बनता है। बिन्दु परा-पश्यन्ती प्रभृति अपनी शब्दात्मिका वृत्तियों के सम्बन्ध से 'यह घट लाल है' इस प्रकार के परामर्श रूप विकल्प का उल्लेख करते हुए सविकल्पक ज्ञान को उत्पन्न करता है।

जात्यादि विशेषणविशिष्ट सविकल्पक ज्ञान शब्दानुविद्ध होकर ही उत्पन्न होता है। यह ज्ञान प्रत्यक्षानुभव है। इसको पूर्वानुभूत वासनात्मक संस्कार अथवा भावनारूप में ग्रहण करने का कोई कारण नहीं है। यह अध्यवसाय बुद्धि का कार्य है। इसलिए कोई-कोई इस सविकल्पक अनुभव को भी बुद्धि का ही कार्य समझते हैं। परन्तु तान्त्रिक दृष्टि में अध्यवसाय बुद्धि का परिणाम होने पर भी विकल्पज्ञान का उद्‌भव बिन्दु के कार्य शब्द की सहकारिता से ही होता है। माया के ऊपर बुद्धि नहीं है—यह बात सत्य है, परन्तु विद्येश्वर प्रभृति शुद्ध जगत-वासियों का विकल्पानुभव बुद्धिजनित नहीं है, उसका एकमात्र निमित्त वाक्-शक्ति ही है। अनन्त किस प्रकार विकल्पज्ञान के द्वारा माया को शुद्ध करके जगत की सृष्टि करते हैं, यह बात पूर्वोक्त वर्णन से हृदयंगम हो सकती है। इस सविकल्पक ज्ञान से अनन्त के कर्तृत्व का एक दूसरी प्रक्रिया से भी उपपादन किया जाता है। परन्तु उस प्रक्रिया का सर्वत्र समादर न होने के कारण यहां उसका वर्णन नहीं किया जाता।

बिन्दु के शब्दात्मिका की वृत्ति वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा भेद से चार प्रकार की है। अणु अर्थात् जीवमात्र में ही इन वृत्तियों की सत्ता रहती है। इन वृत्तियों के भेद से किसी का ज्ञान उत्कृष्ट, किसी का मध्यम और किसी-किसी का अपकृष्ट माना जाता है। इनका अतिक्रम करने से पुरुष को शिवत्वलाभ अथवा मोक्ष की प्राप्ति होती है, इससे पहले नहीं।

शैव तथा शाक्ताद्वैत सिद्धान्तों का बहुत अंशों में सादृश्य है। पहले हमने जिस द्वैतदृष्टि की आलोचना की है, उससे अद्वैत का किसी-किसी अंश में मतभेद है। किन्तु यहां उसका विशेष विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। इस मत के अनुसार आत्मा चित् अर्थात् प्रकाशस्वरूप है। उसकी विमर्शरूपा शक्ति उससे अभिन्न है। यह शक्ति वाक्-रूपा है। (द्वैतमत में परावाक् बिन्दु की वृत्तिविशेष है। इसका अतिक्रम करने पर मोक्ष प्राप्त होता है। बिन्दु शुद्ध होने पर भी जड़ है। परन्तु अद्वैतमत में परावाक् परमेश्वर की स्वतन्त्र शक्ति का ही नामान्तर है और वह चिद्रूपा है। यह पूर्णावस्था में आत्मा या परमेश्वर में अभिन्न रूप से रहती है।) इसकी परावस्था का 'पूर्णाहन्ता' नाम से वर्णन किया जाता है। इसका स्वरूप सर्वदा प्रकाशमय महामन्त्रात्मक है,

जिसके गर्भ में अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त समस्त शक्तिचक्र निहित हैं। परावाक् पश्यन्ती आदि क्रम से उत्तरोत्तर भिन्न-भिन्न भूमियों को प्रकाशित करती है।

वस्तुतः आत्मा अपनी शक्ति से ही विमोहित होकर अपने पंचकृत्यकारित्व को मानो भूला रहता है। (वस्तुतः मायिक दशा में भी आत्मा का पंचकृत्यकारित्व सर्वथा आवृत नहीं होता। जो पुरुष भक्तिपूर्वक अपने पंचकृत्यकारित्व स्वभाव का दृढ़ भावना के साथ सर्वदा परिशीलन कर सकता है, उसका परमेश्वरभाव खुल जाता है। वह जगत को अपने स्वरूप का विकास समझकर जीवन्मुक्त पद में आरोहण कर सकता है। उस समय सभी जागतिक पदार्थ उसे अपने आत्मा के साथ अभिन्न रूप में प्रतीत होने लगते हैं और उसके सब बन्धन कट जाते हैं।) इसका मूल उसकी अपनी इच्छा या स्वातन्त्र्य है। फिर जब स्वेच्छा से अर्थात् शक्तिपात के प्रभाव से उसका बल उन्मीलित होता है, उस समय वह पूर्ण सर्वज्ञत्व एवं सर्वकर्तृत्वादिरूप अपने पारमेश्वरिक स्वभाव में सदा के लिए स्थित हो जाता है। अणवादि तीन प्रकार का मल संकुचित ज्ञानात्मक ही है। इसके द्वारा जिस परिच्छिन्न ज्ञेयपदार्थ का भान होता है, वह भी वस्तुतः ज्ञान से भिन्न नहीं है। अ से लेकर क्ष तक मातृका या वर्ण—ये सब ज्ञान अधिष्ठित हैं।

वर्णों से ही समस्त विश्व की उत्पत्ति होती है, इसलिए तन्त्रों में इन्हें विश्वजननी मातृका रूप में वर्णन किया गया है। अज्ञात रहने पर ये सब बन्धन का कारण होती हैं, परन्तु सम्यक् प्रकार से ज्ञान की विषय होने पर इन्हीं से परासिद्धि की भी प्राप्ति होती है। मलात्मक ज्ञानत्रय चाहे निर्विकल्प हो चाहे सविकल्प, दोनों ही अवस्थाओं में शब्दानुविद्ध रहता है। मातृकाओं के प्रभाव से तत्तद् शब्दों के अनुवेध द्वारा हर्ष-शोक प्रभृति विभिन्न भावों का आकार धारण करते हुए अष्ट वर्ग, निवृत्यादि पंचकला तथा कलादि छः अध्वाओं की अधिष्ठात्री ब्राह्मी प्रभृति शक्तिकोटि में भासमान होते हैं। अम्बिकादि शक्तिमण्डल का प्रभाव भी इन पर पड़ता है। मातृकाओं के अधिष्ठान से ही ज्ञान में अर्थात् पूर्णाहन्ता में अभेदानुसन्धान का लोप होता है और ज्ञानसमूह प्रत्येक क्षण में बहिर्मुख होकर बन्धन के हेतु होते हैं।

अम्बा, ज्येष्ठा, रौद्री तथा वामा—ये चार शक्तियां सब शक्तियों की कारण हैं। अकारादि मातृका ही कला, देवी, रश्मि आदि विभिन्न नामों से जानी जाती हैं। ये सब स्थूल वर्णरूप में तथा पठ् और वाक्यों की योजना से अनेक प्रकार के लौकिक एवं अलौकिक शब्दरूप में परिणत हो जाती हैं। इन कलाओं के प्रभाव से पशुओं का ज्ञान शब्दानुविद्ध होने के कारण कहा जाता है। इन्हीं के प्रभाव से जो ज्ञानाभास अथवा आणव, मायीय एवं कार्म मल उत्पन्न होता है, उसके द्वारा पशु का अपना वैभव अर्थात् ऐश्वर्य लुप्त हो जाता है। 'मैं अपूर्ण हूं' इस ज्ञानाभास का नाम 'आणव मल' है। 'मैं कृश हूं या स्थूल हूं' यह ज्ञानाभास 'मायामल' है तथा 'मैं यज्ञादि करता हूं' इस प्रकार का ज्ञानाभास 'कर्ममल' कहा जाता है।

यहां प्रश्न हो सकता है कि जब अनावृत प्रकाश ही जगत का स्वभाव है तो बन्धन का आविर्भाव कहां से होता है, क्योंकि अद्वैतमत में चित्प्रकाश को छोड़कर कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है। इस प्रश्न के समाधान में आचार्यों का कथन है कि परमेश्वर अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से सबसे पहले अपने स्वरूप को आच्छादित करने वाली महामाया शक्ति अभिव्यक्त करते हैं। उसके कारण आकाशवत् स्वच्छ आत्मा में संकोच का आविर्भाव होता है, जो अनाश्रित अथवा शिवतत्त्व से लेकर मायाप्रमा तक सर्वत्र व्यापक है। परमेश्वर के स्वातन्त्र्य की हानि ही इस

संकोच का स्वरूप है।

वस्तुतः यह अभिन्न परमेश्वरभाव का अस्फुरण है। इसी का नाम अपूर्णमन्यता या आणव मल है। इसी को अज्ञान भी कहा जाता है। आगम की परिभाषा में इसे अख्याति भी कहते हैं। इसका स्वरूप आत्मा में अनात्मभाव का अभिमान है। यह अज्ञानात्मक ज्ञान तो बन्धन है ही, परन्तु अनात्मा में आत्माभिमानरूप अज्ञानमूलक ज्ञान भी बन्धन ही है। इसलिए आणव मल दो प्रकार के बताए गए हैं। पहला—चिदात्मा में स्वातन्त्र्य का अप्रकाश अर्थात् अपूर्णमन्यता—यह मल विज्ञानाकल में पशु में रहता है। दूसरा—स्वातन्त्र्य रहते हुए भी देहादि अनात्माओं में अबोधात्मक आत्माभिमान। विश्व का कारण माया है, जिसका नामान्तर योनि है। उससे होने वाले कुला से लेकर पृथ्वी पर्यन्त तत्त्वसमूह, जिनसे विभिन्न भुवन, देह एवं इन्द्रिय आदि की उत्पत्ति होती है, मायामल हैं। इसको आश्रय करके जो शुभाशुभ कर्मों का अनुष्ठान होता है, वह कर्ममल है। कलादि तत्त्व आणव मल की भित्ति से सम्बद्ध होकर ही पुरुष का आच्छादन करते हैं, इसलिए ये मलपदवाच्य हैं।

मलत्रय और कलासमूह की अधिष्ठात्री मातृकाशक्ति है, यह बात पहले कही जा चुकी है। इसमें अभेदज्ञान की अधिष्ठात्री अघोराशक्ति है, जिसके प्रभाव से भीतर-बाहर आत्मभव की स्फूर्ति होती है। भेदज्ञान की अधिष्ठात्री घोराशक्ति है जिससे बहिरुन्मुखभाव और स्वरूप का आवरण होता है। परावाक् प्रसृत होकर पहले इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूप को प्राप्त होती है। उसके पश्चात् उसका पंचाशत मातृका रूप में परिणाम होता है। इनमें स्वरवर्णों में बीज अथवा शिवांश तथा व्यंजनों में योनि अथवा शक्त्यंश प्रबल रहते हैं। ये वर्ण तत्तद् प्रमात में सविकल्पक तथा निर्विकल्पक दोनों ही अवस्थाओं में अन्तःपरामर्श द्वारा स्थूल एवं सूक्ष्म शब्दों का उल्लेख करते हैं।

इसी प्रकार वर्गादि के देवताओं के अधिष्ठान से राग-द्वेष, सुख-दुःख, भय आदि की स्फूर्ति होती है। संकोचहीन स्वतन्त्र चिद्घन आत्मा का स्वरूप आच्छन्न होकर परिच्छिन्न एवं परतन्त्र देहादिमयभाव का आविर्भाव होता है। ये सब महाघोरा पशुमातृका-शक्तियां भेदज्ञान उत्पन्न करती हैं और ब्रह्मग्रन्थि के आश्रय से विद्यमान रहती हैं। पशुओं के अधःपतन की मूल कारण ये ही हैं। तत्त्वलाभ करने पर भी जब तक पुरुष सम्यक्तया प्रमादहीन नहीं होता, तब तक इन सब शक्तियों से शब्दानुवेधपूर्वक मोहगर्त में गिराए जाने की आशंका रहती है। प्रकाश तथा विमर्श के विषय में संक्षेप में दो-एक बात कहना उचित जान पड़ता है।

प्रकाश तथा विमर्श

सृष्टि आदि समस्त व्यापारों के मूल में प्रकाश तथा विमर्श दोनों की सत्ता रहती है, यह प्रसिद्धि है। पराशक्ति स्वातन्त्र्य के उन्मेष से जिस समय अन्तर्लीन अवस्था छोड़कर अभिव्यक्त होती है, उसी समय विश्वरूप चक्र का आवर्तन होता है। वस्तुतः अभिव्यक्ति शक्ति या विमर्श की ही होती है, प्रकाश में तो उसका उपचार मात्र होता है। इस दृष्टि से देखने पर प्रतीत होगा कि तत्त्वमात्र ही शक्ति के स्वातन्त्र्योल्लास की अवस्था विशेष है। इसलिए शिवत्व भी तत्त्व होने के कारण शक्तिकोटि में गिना जाता है। अतः प्रकाश और विमर्श एक प्रकार से परमविमर्श के ही रूप-भेद मात्र हैं। यह प्रकाश अनुत्तर, विश्वोत्तीर्ण तथा तत्त्वातीत है। विमर्श उसमें अन्तर्लीन रहता

है। इसलिए तत्त्वों का विचार करने के प्रसंग में प्रकाश एवं विमर्श दोनों ही विमर्शात्मक अथवा शक्त्यात्मक होने के कारण उनमें अंशकल्पना की जाती है।

'वामकेश्वरतन्त्र' के मत से प्रकाश के चार अंश हैं और उससे अविनाभूत विमर्श के भी चार ही अंश हैं। प्रकाशांशों के नाम अम्बिका, वामा, ज्येष्ठा और रौद्री हैं तथा विमर्शांशों के नाम शान्ता, इच्छा, ज्ञान और क्रिया हैं। अम्बिका तथा शान्ता की सामरस्यावस्था में शान्ताभावापन्ना पराशक्ति परावाक् नाम से प्रसिद्ध है। यह आत्मस्फुरण की अवस्था है— आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला । अम्बिकारूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता ।। इस आत्मस्फुरण की अवस्था में समग्र विश्व बीजरूप में अर्थात् अस्फुट रूप में आत्मसत्ता में वर्तमान रहता है। इसके बाद शान्ता से इच्छा का उदय होने पर यह अव्यक्त विश्वशक्ति के गर्भ से निकलता है। उस समय इच्छाशक्ति वामा शक्ति से तादात्म्य लाभ करती है और पश्यन्ती वाक् के नाम से परिचित होती है। इसके पश्चात् ज्ञानशक्ति का आविर्भाव होता है।

ज्ञानशक्ति ज्येष्ठा के साथ अभिन्न है और मध्यमा वाक् के नाम से परिचित है। यह शक्ति सृष्ट विश्व की स्थिति का कारण है। ज्ञान के अनन्तर क्रियाशक्ति रौद्री के साथ एक होकर वैखरी के नाम से प्रसिद्ध होती है। प्रपंचात्मक वाग्वैचित्र्य वैखरी का ही स्वरूप है। यह चार प्रकार की वाक् परस्पर मिलकर मूल त्रिकोण अथवा महायोनि के रूप में परिणत होती है। शान्ता और अम्बिका का सामरस्य अर्थात् परावाक् ही इस त्रिकोण का बिन्दु या केन्द्र है। यह नित्य स्पन्दमय है। पश्यन्ती इसकी वाम रेखा है, वैखरी दक्षिण रेखा है और मध्यमा सरल अग्ररेखा यानी आधार है। मध्यस्थ महाबिन्दु ही अभिन्न विग्रह शिव और शक्ति का आसन है। यह त्रिकोणमण्डल चित्कला के प्रभाव से उज्ज्वल है।

इस त्रिकोण मण्डल के बाहर क्रमविन्यस्तरूप से शान्त्यतीत, शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति—इन पांच कलाओं का आभामय स्तर विद्यमान है। इन स्तरों की समष्टि ही जगत का रूप है। अतएव भूपुर से महाबिन्दु पर्यन्त (तान्त्रिक साहित्य में देवतामात्र का यान्त्रिक रूप वासनाभेद से जगत का ही रूप है। प्रत्येक यन्त्र में सबसे बाहर जो चतुष्कोण अंकित किया जाता है, उसका नाम 'भूपुर' है। वही विश्वनगर का प्राकारस्वरूप है। पूर्वादि किसी भी मार्ग से उसमें प्रविष्ट होकर क्रमशः भीतर की ओर अग्रसर होना ही साधनामार्ग का उत्कर्ष है। इन यन्त्रों में सर्वत्र ही मध्य अर्थात् केन्द्र में जो बिन्दु रहता है, वही अन्तिम भूमि का सूचक है। इस भूमि में सर्वशक्तिसमन्वित परमेश्वर का अपरोक्षतया अनुभव अर्थात् साक्षात्कार होता है।) विस्तृत समस्त विश्वचक्र ही उस महाशक्ति का विकास है।

मध्यत्रिकोण बिन्दुविसर्गमय है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसकी प्रत्येक रेखा ही पंचस्वरमय है। पंचदशस्वरात्तक इस त्रिकोणमण्डल का बिन्दुस्थान विसर्ग (अः) कलाओं से आक्रांत है। इस त्रिकोण के स्पन्दनों से अष्टकोण कल्पित होते हैं। यह रौद्री शक्ति का रूप है और शान्त्यतीत कला से उज्ज्वल रहता है। इसका प्रत्येक स्तर प्रकाश तथा विमर्शमय अर्थात् शब्द और शब्दमय है। तत्तद् वर्ण (वाचक) और तत्तद् तत्त्व (वाच्य) का तादात्म्य तत्तद् चक्रांश में प्रत्यक्ष अनुभूत होता है। समस्त चक्र में 'अ' कार से लेकर 'क्ष' कार पर्यन्त वर्णमाला तथा शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त तत्त्वसमूह अभिव्यक्त होते हैं।

साधक जिस समय कुण्डलिनी के जागरण के बाद उत्तरोत्तर ऊपर की ओर उठने लगते हैं

अथवा इष्ट देवता के स्वरूपभूत चक्र के भीतर प्रवेश करने लगते हैं, उस समय वस्तुतः इस विश्वचक्र में ही उनकी यात्रा चलती है। अकुल से महाबिन्दु पर्यन्त विस्तृत महामार्ग के भीतर जितने अवान्तर चक्र हैं, उनकी समष्टि ही विश्वचक्र है। इसमें अकुल से आज्ञाचक्र पर्यन्त अंश सकल और आज्ञाचक्र से ऊपर बिन्दु से उन्मना पर्यन्त अंश सकल-निष्कल एवं उन्मना के बाद महाबिन्दु अंश निष्कल हैं। योनिमार्ग के सकलांशों में सबसे पहले अकुल अथवा विषुवत् स्थान है। इसके अनन्तर अष्टदल के बाद षड्दलविशिष्ट कुलपद्म की स्थिति है। यहां से आगे का सारा मार्ग ही 'कुलमार्ग' नाम से प्रसिद्ध है।

षड्दलकमल के ऊपर मूलाधार और उसके ऊपर शक्ति या हृल्लेखा का स्थान है। वह अनंगादि देवताओं से परिवेष्टित है और आधार-कमल से ढाई अंगुल ऊपर पीत-वर्ण की कर्णिका के भीतर प्रतिष्ठित है। हृल्लेखा से दो अंगुल ऊपर स्वाधिष्ठान कमल का स्थान है। इसके बाद क्रमशः मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, लम्बिकाग्र (अष्टकमल) और अन्त में आज्ञाचक्र है। अग्नि, सूर्य तथा चन्द्र के बिम्ब, अनाहत में सूर्यबिम्ब और विशुद्ध चक्र में चन्द्रबिम्ब का दर्शन होता है। आज्ञाचक्र के ऊपर बिन्दु से उन्मना पर्यन्त भूमियों के नाम ये हैं—बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका या व्यापिनी, समना और उन्मना। इतना मार्ग सकल-निष्कल है।

अर्धचन्द्रादि कलाएं बिन्दु का भेद करने के बाद ही क्रमशः मिलती हैं। उन्मना तक पहुंचने पर काल की कलाएं, तत्त्व, देवता और मन सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं। ये ही तन्त्रशास्त्र में निर्वाणात्मक 'रुद्रवक्त्र' नाम से जाने गए हैं। यह अन्तिम भूमि सर्वथा निराकार, उच्चारहीन, शून्यमय एवं विश्वातीत है। इसके बाद महाबिन्दु ही निष्कल भूमिस्वरूप है। इसका दूसरा नाम सादख्य अथवा सदाशिवरूपी आसन है। इसी पर तत्त्वातीत शिव और शक्ति का खेल होता है। यह सब योगमार्गीय चक्रवेध के क्रम से दिखाया गया है। उपासना के क्रम से भी इसका भेद दिखाया जा सकता है।

श्रीचक्र में प्रविष्ट होकर क्रमशः तत्त्वातीत अवस्था में चलने के मार्ग में तीन विभाग दिखायी देते हैं—चतुष्कोण से त्रिकोण, बिन्दु से उन्मना तक और महाबिन्दु। इनमें दूसरा एवं तीसरा विभाग पूर्वोक्त सकल-निष्कल तथा निष्कल मार्गों से सर्वथा अभिन्न है और पहला विभाग पूर्वोक्त सकल मार्ग का ही नामान्तर है। किन्तु दोनों में वासनाभेद रहने के कारण उनके स्थान एवं उपाधियों में भेद हो गया है। अतएव श्रीचक्र के अन्तर्गत भूपुर, षोडशदल, अष्टदल, चतुर्दश कोण, बाह्य दश कोण, आन्तर दश कोण, अष्टकोण और त्रिकोण—इतना अंशु सुषुप्तमार्ग में निम्नतम अकुल से आज्ञाचक्र पर्यन्त अवस्थित है। इसके बाद बिन्दु में प्रतिष्ठित होने के अनन्तर भिन्न वासना न रहने के कारण आगे की भूमियों में कोई भेद प्रतीत नहीं होता।

वस्तुतः महाबिन्दु ही विश्व का हृदय है। यही विश्वातीत परमेश्वर अथवा शिव-शक्ति का आविर्भाव स्थान या आसन है। महाबिन्दु ही शवरूपी सदाशिव है, जिसके ऊपर चित्कला अथवा चिच्छक्ति स्वातन्त्र्यमयी होकर खेलती है। यह खेल परावाक् या परामात्रा का विलास है। शुक्ल तथा रक्तबिन्दुरूप प्रकाश-विमर्शात्मक काम-कलाक्षर के परस्पर संघट्ट से चित्कला की अभिव्यक्ति होती है। तत्त्वातीत अवस्था में शिव और शक्ति का सामरस्य रहता है। उस समय विश्व शक्ति के गर्भ में अन्तःसंहृत भाव से अर्थात् शक्ति के साथ अभिन्न रूप से विद्यमान रहता है। परन्तु जब पराशक्ति स्वेच्छा से अपने स्फुरण से स्वयं को ही देखती है, तभी विश्व की सृष्टि

होती है। वस्तुतः इस स्फुरण का दर्शन ही विश्वदर्शन है और विश्वदर्शन ही विश्व की सृष्टि है। इस अवस्था में दृष्टि ही सृष्टि है। अनुत्तर दशा में स्वरूप में अभिन्नता रहने पर भी विश्व देखा नहीं जाता। इसी से वह अवस्था सृष्ट्यतीत है। इस दृष्टि या सृष्टि व्यापार में शिव तटस्थ रहते हैं। उनकी स्वरूपभूता स्वातन्त्र्य शक्ति ही सब कुछ करती है।

शिव अग्निस्वरूप हैं—'संवर्तानल अथवा प्रलयानल स्वरूप' और शक्ति सोमस्वरूप है (विवर्तचन्द्रस्वरूपा)। दोनों का साम्य ही तान्त्रिक भाषा में बिन्दु के नाम से जाना जाता है। इस बिन्दु का ही दूसरा नाम रवि अथवा काम है। इसका क्षोभ अर्थात् साम्य भंग होने पर ही सृष्टि का प्रारम्भ होता है। साम्यावस्था में अग्नि और चन्द्ररूपी रक्त एवं शुक्ल बिन्दु 'अ ह म्' रूप में अभिन्न रहता है। क्षुब्ध होने से ही चित्कला का आविर्भाव होता है। जैसे अग्नि के ताप से घृत पिघलकर बहने लगता है, उसी प्रकार प्रकाशरूप अग्नि के सम्बन्ध से विमर्शरूपा शक्ति का स्राव होता है। इस प्रकार श्वेत और रक्त बिन्दुओं के बीच से अर्धकला का निःसरण होता है। चैतन्य की अभिव्यक्ति का यही रहस्य है। ये अहंकार के ही नामांतर हैं। देह में इनके स्थान हृदय और भ्रूमध्य में हैं। मध्य बिन्दु उड्डीयान या श्रीपीठ है। यह चित्त स्वरूप है। इसमें जो ज़्योति प्रतिबिम्बित है, उसका नाम परलिंग है। इनमें से प्रत्येक प्रतिलिंग निर्दिष्ट संख्या वाले वर्णों से घिरा हुआ है; परन्तु परलिंग सभी वर्णों से वेष्टित है। यह परलिंग ही परमपद से प्रथम स्पन्दरूप में उदित होता है।

शिव-शक्ति या मल का अहंपरामर्श, पूर्ण और स्वाभाविक है। इसलिए इसे 'पूर्णाहन्ता' कहते हैं। यह निर्विकल्पक ज्ञानस्वरूप है। स्वातन्त्र्य से इसमें विभाग का आविर्भाव होता है। पूर्णाहन्ता या परावाक् विभागदशा में ही पश्यन्त्यादि तीन रूप धारण करती है, जिसके प्रत्येक रूप में स्थूल, सूक्ष्म तथा पर भेद से तीन-तीन अवस्थाएं हैं। परमतत्त्व निरंश प्रकाश स्वरूप है। फिर भी उसका मुख्य तीन शक्तियों के भेद के कारण ऐसा विभाग हो जाता है। मुख्य तीन शक्तियां ये हैं—पहली, परा अथवा अनुत्तरा—इसी का नाम चित्-शक्ति है। दूसरी, परपरा—इसी का नाम इच्छा-शक्ति है। तीसरी, अपरा—इसी का नाम उन्मेषरूपा ज्ञान-शक्ति है।

इन तीनों का अभिन्न स्वरूप ही परमेश्वर की पूर्णाशक्ति है। इसमें अनुत्तर अथवा चित् 'अ' है, इच्छा 'ह' है और उन्मेष अथवा ज्ञान 'उ' है। यह शक्तित्रय ही अ इ उ नामक त्रिकोण है। इनके क्षुब्धरूप लेकर शक्तियों की संख्या छः होती है। अ के क्षोभ से आ, इ के क्षोभ से ई और उ के क्षोभ से ऊ होता है। आ आनन्द का, ई ईशान का और ऊ ऊनत्व का वाचक है। आनन्दादि शक्तिनिचय क्षुब्ध होने पर भी उनके स्वरूप स्खलित नहीं होते। इसलिए ये मलिन नहीं होते। इसी कारण ये सब शक्तियां पारस्परिक संघट्ट से अन्यान्य शक्तियों को प्रकट कर सकती हैं। ये छः स्वर ही वर्ण सन्तति के मूल हैं। ये षड्देवता और सूर्य की मुख्य षड्रश्मि नामों से प्रसिद्ध हैं। इन छः शक्तियों का पारस्परिक संघर्ष ही क्रियाशक्ति है, जिससे बारह शक्तियों का विकास होता है। ऋ ॠ ऌ ॡ—ये चार स्वर नपुंसक हैं। इनसे सृष्टि नहीं होती। सम्पूर्ण शक्तियां उक्त बारह शक्तियों के ही अन्तर्गत हैं। यही प्रधान शक्तिचक्र है, जिससे समन्वित रहने के कारण शिव को पूर्णशक्ति कहा जाता है। ये सब शक्तियां प्रक्षीणमल शुद्ध और उद्रिक्त चैतन्य हैं। इनके ज्ञान-क्रियात्मक सामर्थ्य में किसी प्रकार का आरण नहीं है। चौंसठ योगिनियां इन बारह शक्तियों से ही उत्पन्न हुई हैं। इनकी समष्टि अघोरा शक्ति है। घोरा और घोरतरा शक्तियां इसी से प्रादुर्भूत होती हैं।

सृष्टियादि क्रम में इन बारह शक्तियों के पृथक-पृथक रूप हैं। अनाख्या क्रम में भी इनके

पृथक-पृथक रूपों का पता लगता है। जिस क्रम में सृष्टि आदि उपाधि नहीं है, उसी का नाम अनाख्या है। इसका तात्पर्य यह है कि निरुपाधिकस्वरूप सृष्टि में भी यह विभाग विद्यमान है। यह जो स्वरूपगत उपाधिहीनता की बात कही गयी है, दो प्रकार से सम्भव है—उपाधियों के अनुल्लास के कारण और उपाधियों के उपशम के कारण। उपाधियों का उपशम पाक से ही होता है। तान्त्रिक आचार्यगण मधुरापाक और हठपाक भेद से दो प्रकार के पाक स्वीकार करते हैं। जो लोग गुरु आदि की आराधना करके दीक्षित होते हैं तथा नित्य-नैमित्तिक प्रभृति कर्मों में निष्ठा रखते हैं, वे देहपात होने पर सृष्टि प्रभृति उपाधियों से मुक्त हो सकते हैं। इन उपाधियों का प्रशमन स्वाभाविक नहीं होता, उसे शास्त्रोपदेशादि की अपेक्षा है। यह उपाय धीरे-धीरे देहपात के अनन्तर उपाधि का नाश करने में समर्थ होता है। शक्तिपात तीव्र न होने से ऐसा ही होता है और जिनके ऊपर भगवत्कृपा की मात्रा अधिक होती है अर्थात् जिनमें तीव्र शक्तिपात होता है, वे केवल एक बार ही उपदेश प्राप्त करके उपाधि से मुक्त हो जाते हैं।

इस क्रम से सृष्टि आदि तीनों उपाधियां सर्वथा चिदग्नि में भस्म हो जाती हैं अर्थात् वे अचिद्भाव को छोड़कर आत्मशक्ति के स्फुरणरूप में प्रतिभात होने लगती हैं। इसका क्रम इस प्रकार है—ज्ञानाग्नि के उद्दीपन के अनन्तर इस प्रकार के पाक से सृष्टि आदि पदार्थगत भेद छूट जाता है। उस समय विश्व अमृतमय हो जाता है अर्थात् उसे बोध के साथ तादात्म्य प्राप्त होता है। इस अमृतरूप विश्व को पूर्व वर्णित (अ, आ इत्यादि) बारह शक्तियां अथवा करणेश्वरी भोग करती हैं। दूसरे शब्दों में वे परबोध अर्थात् परमेश्वर के साथ अभिन्न रूप में परामर्शन करती हैं, क्योंकि ये शक्तियां अघोरा शक्ति की ही प्रकाशस्वरूपा हैं। इस भोग से उन शक्तियों (देवियों) की तृप्ति होती है। उस समय उनको दूसरे के प्रति अपेक्षा या आकांक्षा नहीं रहती और वे हृदयस्थ द्योतनमात्र स्वरूप परप्रकाश या परमतत्त्व के साथ अभेदरूप से स्फुरित होने लगती हैं।

ये समस्त शक्तियां परमेश्वर के रूप में विभिन्न रूप में विश्रान्त हैं—उससे अभिन्न हैं। परन्तु इस प्रकार अभेद रहने पर भी कृत्यस, क्रियावेश, नाम तथा उपासना के भेद से ये भिन्न-भिन्न रूप से भासित होती हैं। इन शक्तियों के संकोच-विकास दोनों ही होते हैं। इसलिए ये संख्या में बारह होने पर भी एक ओर जिस प्रकार सब मिलकर एक हो सकती हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर करोड़ों विभिन्न रूपों में भी आविर्भूत हो सकती हैं।

ऊपर संक्षेप में जो कुछ लिखा गया है, उससे तान्त्रिक दृष्टिगत किंचित् परिचय मिल सकेगा। यह विषय इतना विशाल और जटिल है कि इसका पर्याप्त विवेचन करने के लिए पुस्तक का परिमित कलेवर पर्याप्त नहीं है। जो लोग इस विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें अनुसन्धान करने पर शास्त्रों में ही सभी प्रकार का विवरण और प्रश्नों का स्पष्ट समाधान मिल सकता है। यहां जो विवरण दिया गया है, उससे तान्त्रिक साधनप्रणाली को समझने में कुछ सहायता मिल सकती है। यहां वैष्णव आगमों में समालोचना का अवसर नहीं मिला। परन्तु स्थूलतया यह कहा जा सकता है कि वे भी द्वैत आगम के ही अन्तर्गत हैं। उनकी दृष्टि भी प्रायः उसी प्रकार की है। प्रस्थानगत तथा बाह्य उपाधिगत वैचित्र्य तो अवश्य ही है, परन्तु वह सुगमता से समझ में आ जाता है। विशुद्धसृष्टि, मन्त्रानुशीलन और दीक्षा प्रभृति का उपयोग वैष्णव आगम में भी स्वीकार किया गया है।

तन्त्र की वैज्ञानिक प्रामाणिकता

तन्त्रशास्त्र की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में आपस में मतभेद हैं। इसके सम्बन्ध में कहा गया है— श्रुतिश्च द्विविधा, वैदिकी तान्त्रिकी च । इस वचन के आधार पर कुछ आचार्यों का कथन है—जिस प्रकार वैदिक और तान्त्रिक वेद अपौरुषेय होने के कारण स्वतः प्रमाण हैं, उनकी सत्यता को सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार तन्त्र भी स्वत:प्रमाण हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार किसी अंश में तन्त्र के विरुद्ध होने पर भी वेद को अप्रमाण नहीं माना जाता, उसी प्रकार किसी अंश में वेद के विरुद्ध होने पर भी तन्त्र को अप्रमाण नहीं कहा जा सकता।

दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि वेद और तन्त्र प्रामाणिकता में एक दूसरे से न्यून नहीं, बल्कि समकक्ष हैं। इसलिए तन्त्र किसी विषय में वेद की अपेक्षा नहीं रखता। अगाध पण्डित एवं दार्शनिकों का मत है कि तन्त्रशास्त्र वेद के समकक्षरूप से प्रमाण नहीं माना जाएगा तो जैमिनी के इस सूत्रांश न शास्त्रपरिमाणात पर जो कुमारिल भट्ट का तन्त्रवार्तिक है, उससे विरोध पड़ेगा। उक्त सूत्र के तन्त्रवार्तिक में यह सिद्धान्त दिया गया है कि पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, वेद के छः अंग (शिक्षा, कल्पसूत्र, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्दशास्त्र) और चार वेद (ऋग्, यजु, साम तथा अथर्व)—ये सब शास्त्र धर्म के विषय में प्रमाण हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे शास्त्र प्रमाण नहीं हैं। तन्त्रशास्त्र को बिल्कुल स्वतन्त्र शास्त्र मानने पर मीमांसक दृष्टि से यह अप्रमाण हो जाएगा; इसलिए तन्त्र को स्वतन्त्र प्रमाण नहीं समझना चाहिए, किन्तु उसे धर्मशास्त्र (स्मृतिशास्त्र) के अन्तर्गत मानना चाहिए।

तन्त्रशास्त्र धर्मशास्त्र के अन्तर्गत होने पर भी मनु, याज्ञवल्क्य प्रभृति ऋषिप्रणीत स्मृतियों से उसमें कुछ विशेषता है। मनु प्रभृति की स्मृतियां वेद के कर्मकाण्ड से सम्बन्ध रखती हैं, किन्तु तन्त्रशास्त्र वेद के ब्रह्मज्ञान काण्ड से सम्बन्ध रखता है। 'शारदातिलक' नामक तन्त्रशास्त्र में स्पष्ट किया गया है कि वेद के तीन काण्ड हैं—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड। उनमें कर्मकाण्ड की व्याख्या जैमिनी आदि कर्ममीमांसक ऋषियों ने की, नारद प्रभृति भक्त ऋषियों ने उपासना काण्ड का विवरण किया और भगवान् बादरायण तथा अन्य ब्रह्मवादी ऋषियों ने ब्रह्मकाण्ड की व्याख्या की। आगमशास्त्र का मूल वेद का उपासनाकाण्ड है। सभी स्मृतियों का प्रमाण्य वेद के आश्रय से है। आगमस्मृति का प्रमाण्य भी उसी प्रकार वेद के आधार पर है। तन्त्र का प्रमाण्य स्वतन्त्ररूप से नहीं है।

इस प्रसंग से राघव भट्ट ने एक बात और कही है। उनके विचार में साकार उपासना से मनुष्यों को स्वर्गादि फल बहुत कम आयास से प्राप्त हो जाते हैं और अन्त में मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है। कर्मकाण्ड अथवा ब्रह्मकाण्ड की सहायता से मोक्ष की प्राप्ति इतने कम आयास से सम्भव नहीं है। इसलिए उपासना प्रधान आगमशास्त्र ही श्रेष्ठ है। ब्रह्मसूत्रों पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के जितने भी भाष्य हैं, वे इस समय उपलब्ध हैं। उनमें से तीन भाष्य विशिष्ट द्वैत के अनुसार हैं। उनमें रामानुज का 'श्रीभाष्य' वैष्णव मत के अनुकूल होता हुआ विशिष्टाद्वैत का समर्थन करता है। द्वैतमत के अनुसार भी दो भाष्य हैं, जो विशिष्टाद्वैत के पोषक हैं। उनमें श्रीकण्ठाचार्य का शैवभाष्य प्रसिद्ध है, जिस पर विश्वविख्यात पण्डित अप्पय दीक्षित की

‘शिवकर्मणि दीपिका’ नाम की टीका है। दूसरा श्रीभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है, जो दक्षिण देश के ‘वीरशैव-सम्प्रदाय’ नामक शैवसम्प्रदाय के अनुकूल है। दोनों शैवभाष्य के तन्त्र नामक शैवसम्प्रदाय के अनुकूल हैं। ये शैवभाष्य तन्त्र के अनुगामी हैं।

श्रीकण्ठ शैवभाष्य में तन्त्र को वेदवत प्रमाण माना गया है। उसमें कहा गया है कि वेद तथा आगम तन्त्र के प्रमाण्य में कोई अन्तर नहीं है, दोनों के निर्माणकर्ता एक ही शिव हैं; इसलिए वेद भी शिवागम हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि वेद केवल तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए हैं और आगम सभी के लिए हैं। ‘शिवकर्मणि दीपिका’ में तन्त्र के विषय में अधिकारादिभेद से व्यवस्था की गयी है। जो वेद के अधिकारी हैं, उनका वेद के अनुकूल तन्त्रों में अधिकार है तथा जो तन्त्र वेद के विरुद्ध हैं, उनमें वेद के अनधिकारियों का अधिकार है। सारांश यह है कि वेद के अनुकूल अथवा वेद से विरुद्ध सभी तन्त्र भिन्न-भिन्न अधिकारियों के लिए प्रमाण हैं।

इस प्रकार अधिकारादि भेद से प्रमाण्य की व्यवस्था होने पर किसी तन्त्र के अप्रामाण्य की शंका नहीं उठती। उपासना में तन्त्र का विशेष उपयोग है। इस बात को अस्वीकार करना भ्रम है। शाक्त और शैव सम्प्रदाय तो तन्त्र के अनुयायी हैं ही, वैष्णव सम्प्रदाय भी तन्त्र के अनुगामी हैं। वैष्णवों का परम माननीय ग्रंथ ‘पांचरात्र’ में उपासना करने का निर्देश पाया जाता है। इसलिए आस्तिक पुरुषों को अपने-अपने अधिकार के अनुसार तन्त्रों का उपयोग करना चाहिए। तन्त्रशास्त्र का प्रभाव इतना अधिक फैला है कि वैदिक तथा पौराणिक उपासनाओं में भी उसका कुछ न कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। तन्त्रशास्त्र का बिल्कुल परित्याग करके किसी प्रकार की उपासना करना असम्भव है, यह कहने में कुछ भी अत्युक्ति नहीं है।

तंत्र और योग

योग के दार्शनिक पहलू से भले ही कोई सहमति न रखता हो, लेकिन उसके व्यावहारिक पक्ष को सभी स्वीकारते हैं। कारण स्पष्ट है, जब तक तन-मन स्वस्थ न हो, तब तक किसी प्रकार की साधनाएं संपन्न नहीं हो सकतीं। तंत्र ने भी योग-क्रियाओं को इसी रूप में स्वीकारा है। सांख्य योग दोनों को थोड़ा-बहुत तंत्र शास्त्र प्रतिपादित करता है—अपनी शब्दावली और आवश्यकतानुसार। जैसे वह सांख्य के प्रकृति पुरुष को शिव-शक्ति नाम देता है।

षट्कर्म विधान

षट्कर्म योग-साधना की मूल सीढ़ियां हैं। इनके द्वारा ही योगीजन अपनी सिद्धियों की मनोभिलाषा पूरी करते हैं। शास्त्रों में योग की नाना प्रकार की पद्धतियों का वर्णन है, जिनमें षट्कर्म विधान प्रमुख है। प्रायः सभी विधान इसी के इर्द-गिर्द मंडराते हैं। ‘हठयोग प्रदीपिका’ के अनुसार धौति, नेती, न्योली, कपालभाति और त्राटक षट्कर्म हैं। परन्तु कुछ विद्वान नेती, धौति, वस्ति, गजकर्म, न्योली और त्राटक को षट्कर्म मानते हैं। कुछ इसमें कपालभाति, धौंकनी, बाघी और शंखपाल—इन चारों को भी सम्मिलित करते हैं। चूंकि षट्कर्म शाखामात्र है, अतः इसके विभेद का कोई वास्तविक अर्थ नहीं होता। इसके नियम प्रायः सभी योगियों ने अपने-अपने ढंग से अलग-अलग बताए हैं। शरीर शुद्धि की साधना किसी भी प्रकार से की जाए, वह अपना असर दिखाती है। इसके प्रभाव से साधक की इच्छापूर्ति होती है, वह क्रिया सिद्ध मानी जाती है।

इसीलिए जिन्हें जो पद्धति सुगम दिखी, उसी को अपनाकर एक विधि का निर्माण कर दिया। भारतीय प्राचीन ऋषियों ने इन समस्त विधाओं को योग-साधना के अन्तर्गत रखा है।

षट्कर्म के साधक के लिए हठयोग में दिखाए हुए स्थान, भोजन, आचार-विचार आदि के नियमों को मानना परमावश्यक है। अतः यही कहा जा सकता है कि स्थान रमणीक और निरापद, भोजन सात्विक—जैसे दूध, घी, घोटा हुआ बादाम और मिश्री आदि पुष्ट एवं लघु पदार्थ तथा परिमित होना चाहिए। आचार-विचार द्वारा एकान्त-सेवन, कम बोलना, वैराग्य, साहस इत्यादि समझना चाहिए।

न्योलीकर्म

कंधों को नवाए हुए अत्यन्त वेग के साथ, जल की भंवर के समान अपनी तुन्द को दक्षिण-वाम भागों से घुमाने को सिद्धों ने न्योलीकर्म कहा है। वास्तव में तुन्द को दाएं-बाएं घुमाने का रहस्य किताबों से पढ़कर मालूम करना असम्भव है, इसे किसी योग्य गुरु से ही सीखा जा सकता है। अतः इसका स्वरूप कुछ यों समझना चाहिए। जब शौच-स्नान, प्रातःसन्ध्या आदि से निवृत्त हो जाएं और पेट साफ एवं हलका हो जाए, तो पद्मासन (सिद्धासन या उत्कटासन) लगाकर, रेचक कर, वायु को बाहर रोक, बिना देह हिलाए, केवल मनोबल से पेट को दाएं से बाएं और बाएं से दाएं चलाने की भावना करें तथा तद्नुकूल प्रयास करें।

इसी प्रकार सायं-प्रातः स्वेद आने तक प्रतिदिन अभ्यास करते-करते पेट की स्थूलता जाती रहती है। तदनन्तर यह सोचना चाहिए कि दोनों कुक्षियां दब गयीं हैं और बीच में दोनों ओर से दो नल जुटकर मूलाधार से हृदय तक एक गोलाकार खंभा खड़ा हो गया है। यही खंभा जब बंध जाए, तब न्योली सुगम हो जाती है। मनोबल और प्रयासपूर्वक अभ्यास बढ़ाने से यह खंभा दाएं-बाएं घूमने लगता है। इसे चलाने में छाती के समीप, कण्ठ पर और ललाट पर भी नाड़ियों का द्वन्द्व मालूम पड़ता है। एक बार न्योली चल जाने पर चलती रहती है। पहले-पहल चलाने के समय दस्त ढीला होता है। जिसका पेट हल्का है तथा जो प्रयासपूर्वक अभ्यास करता है, उसको एक महीने के भीतर न्योली सिद्ध हो जाती है। यदि इस क्रिया को आरम्भ करने से पहले पश्चिमोत्तानासन और मयूरासन का थोड़ा अभ्यास कर लिया जाए तो न्योली शीघ्र सिद्ध हो जाती है।

जब तक आंत पीठ के अवयवों से भलीभांति पृथक न हो, तब तक आंत उठाने की क्रिया सावधानी के साथ करें, अन्यथा आंतें निर्बल हो जाएंगी। किसी-किसी समय आघात पहुंचकर उदररोग, शोथ, आमवात, कटिवात, गृध्रसी, कब्जवात, शुक्रवात, शुक्रदोष या कोई अन्य रोग हो जाता है। अतः इस किया को शान्तिपूर्वक करनी चाहिए। अंतड़ी में शोथ, पित्तप्रकोप, अतिसार (पेचिश), संग्रहणी आदि रोगों में न्योली क्रिया हानिकारक है।

यह न्योली मन्दाग्नि का भली प्रकार दीपन, अन्नादि का पाचन और सर्वदा आनन्द करती है तथा समस्त वात आदि दोष-रोग का शोषण करती है। न्योली हठयोग की सारी क्रियाओं में उत्तम है। न्योली के वश में अंतड़ियों के होने से पाचन और मल का निष्कासन स्वाभाविक हो जाता है। न्योली करते समय सांस की क्रिया रुक ही जाती है। मगर न्योली कर चुकने पर कण्ठ के समीप एक सुन्दर अकथनीय स्वाद मिलता है। यह हठयोग की सारी क्रियाओं से श्रेष्ठ इसलिए है कि

न्योली जान लेने पर तीनों बन्ध सुगम हो जाते हैं। अतएव यह प्राणायाम की सीढ़ी है। धौति, वस्ति में भी न्योली की आवश्यकता होती है। शंखपषाली क्रिया (इसमें मुख से जल लेकर अंतड़ियों में घुमाते हुए गुदा द्वारा ठीक उसी प्रकार निकाल दिया जाता है, जैसे शंख में एक ओर से जल देने पर घूमकर वह दूसरी राह से निकल जाता है) में भी न्योली सहायक है।

वस्तिकर्म

वस्ति मूलाधार के समीप है। इसका रंग लाल और इसके देवता गणेश हैं। वस्ति को साफ करने वाले कर्म को 'वस्तिकर्म' कहते हैं। 'योगसार' नामक पुस्तक में पुराने गुड़, त्रिफला और चीते की छाल के रस से बनी गोली देकर अपानवायु को वश में करने का उल्लेख है। इसके बाद ही वस्तिकर्म का अभ्यास करना चाहिए। यह कर्म दो प्रकार का होता है—पवनवस्ति एवं जलवस्ति। न्योली कर्म द्वारा अपानवायु को ऊपर खींच पुनः मयूरासन से त्यागने को 'वस्तिकर्म' कहते हैं। पवनवस्ति पूरी सध जाने पर जलवस्ति सुगम हो जाती है, क्योंकि जल को खींचने का कारण पवन ही होता है। जल में डूबे हुए पेट से न्योली हो जाए, तब न्योली से जल ऊपर खिंच जाएगा।

जलवस्ति के लिए गुदा के मध्य में छः अंगुल लम्बी बांस की नली रखें जिसका छिद्र कनिष्ठिका अंगुली के प्रवेश-योग्य हो। नली को घी अथवा तेल लगाकर सावधानी के साथ चार अंगुल गुदा में प्रवेश करें और दो अंगुल बाहर रखें। इसके बाद बैठने पर नाभि तक जल आ जाए, इतने जल से भरे हुए टब में उत्कटासन में बैठें अर्थात् दोनों पैर की एड़ियों को मिलाकर खड़ी रखकर उन पर अपने नितम्ब को रखें और पैरों के अग्रभाग पर बैठें। उक्त आसन से बैठकर आधाराकुंचन करें, जिससे बृहद् अन्त्र में अपने-आप जल चढ़ने लगेगा। बाद में भीतर प्रविष्ट हुए जल को न्योलीकर्म से चलाकर त्याग दें। इस जल के साथ अन्त्रस्थित मल, आंव, कृमि, अन्त्रोत्पन्न केंद्रीय विष आदि बाहर निकल आते हैं। इस उदर के क्षालन (धोने) को वस्तिकर्म कहते हैं।

धौति एवं वस्ति—दोनों कर्म भोजन से पूर्व ही करने चाहिए। इनको करने के अनन्तर खिचड़ी आदि हल्का भोजन शीघ्र कर लेना चाहिए तथा उसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। वस्तिक्रिया करने से जल का कुछ अंश बृहद् आंत में शेष रह जाता है, यह धीरे-धीरे मूत्र द्वारा बाहर आएगा। यदि भोजन नहीं किया जाएगा तो वह दूषित जल अन्त्रों से सम्बद्ध सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा शोषित होकर रक्त में मिल जाएगा। कुछ लोग पहले मूलाधार से प्राणवायु के आकर्षण का अभ्यास करके जल में अभ्यास करते हैं। उस प्रकार वस्तिकर्म करने से उदर में प्रविष्ट हुआ सम्पूर्ण जल बाहर नहीं आ सकता। इस कारण धातुक्षय आदि नाना दोष होते हैं। अतः इस प्रकार वस्तिकर्म नहीं करना चाहिए।

यहां यह भी जान लेना आवश्यक है कि छोटे-छोटे जल-जन्तुओं से बचने के लिए मल द्वार के मुख पर महीन वस्त्र देकर आकुंचन करना चाहिए और जल को बाहर निकालने के लिए खड़ा पश्चिमोत्तानासन करना चाहिए। कई साधक तालाब या नदी में जल का आकर्षण करते हैं, जिससे कभी-कभी जल के साथ सूक्ष्म-जहरीले जन्तु आंतों में प्रवेश कर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं। किंच गंगाजी और हिमालय से निकलने वाली अनेक बड़ी-बड़ी नदियों का

जल अधिक शीतल होने के कारण न्यून शक्ति वालों को इच्छित लाभ के बजाय हानि पहुंचा देता है। जल अधिक शीतल होने से उसे शोषण करने की क्रिया सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा तुरंत चालू हो जाती है और शीतल जल से आंव या कफ की उत्पत्ति होती है। अतः टब या किसी बड़े बरतन में बैठकर शुद्ध और सहने योग्य शीतल जल का आकर्षण करना विशेष हितकर है।

हठयोग एवं आयुर्वेद चिकित्साशास्त्रों की वस्तिक्रिया में भिन्न-भिन्न औषधियों के घृत-तैल-क्वाथादि चढ़ाए जाते हैं। इस क्रिया के लिए एक यंत्र भी बनाया जाता है जिसे एनिमा कहते हैं। इसके लिए साबुन मिला हल्का गुनगुना जल, रेड़ी का तेल तथा ग्लिसरीन आदि मलशोधक औषधि यन्त्र द्वारा गुदा के मार्ग से आंत में चढ़ाते हैं। पश्चिम में इसकी चाल इतनी बढ़ गयी है कि बहुत से लोग सप्ताह में एक बार एनिमा लगाना आवश्यक समझने लगे हैं। इस एनिमा द्वारा वस्तिकर्म के समान लाभ नहीं होता, क्योंकि चढ़ा हुआ सम्पूर्ण जल बाहर नहीं आता। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि अधिकांश जल भीतर रहकर भयंकर हानि कर देता है। अपने उद्योग और परिश्रम द्वारा जो जल चढ़ाया जाता है, उसमें उतना ही अन्तर है जितना दस मील पैदल और मोटर पर टहलने में है। इसके अतिरिक्त गरम जल चढ़ाने के कारण वीर्यस्थान और मूत्रस्थान को उष्णता पहुंचती है, जिससे थोड़ी हानि बार-बार पहुंचती रहती है। यह दोष हठयोग की वस्ति में नहीं है।

वस्तिकर्म में मूलाधार के शोधित और प्रक्षालित होने से लिंग एवं गुदा के रोगों का नाश होना स्वाभाविक है अर्थात् वस्तिकर्म के प्रभाव से गुल्म, प्लीहा, उदर (जलोदर) तथा वात-पित्त-कफ के द्वन्द्व या इनसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। यह कर्म अभ्यासी के सप्त धातुओं, दस इन्द्रियों और अन्तःकरण को प्रसन्न करता है। मुख पर सात्विक कान्ति छा जाती है। जठराग्नि उद्दीप्त होती है। वात-पित्त-कफ आदि दोषों की वृद्धि और न्यूनता दोनों को नष्ट कर साम्यरूप आरोग्य की उत्पत्ति होती है।

इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है कि वस्तिक्रिया करने वाले को पहले नेती और धौतिक्रिया करनी चाहिए, जिनका वर्णन यहां किया जा रहा है। अन्य क्रियाओं के लिए ऐसा नियम नहीं है। राजयक्ष्मा (क्षय), संग्रहणी, प्रवाहिका, अधोरक्त पित्त, भगन्दर, मलाशय और गुदा में शोथ, सतत ज्वर, आन्त्रसन्निपात (हल्का बुखार), आन्त्रशोथ, आन्त्रत्राण, कफवृद्धिजनित तीक्ष्ण श्वास प्रकोप आदि रोगों में वस्तिक्रिया नहीं करनी चाहिए। यह वस्तिक्रिया भी प्राणायाम का अभ्यास चालू होने के बाद नित्य करने की नहीं है। नित्य करने से आन्त्रशक्ति परावलम्बिनी और निर्बल हो जाएगी, जिससे बिना वस्तिक्रिया के भविष्य में मलशुद्धि नहीं होगी। जैसे तम्बाकू और चाय के व्यसनी को इनको पिए बिना शौच नहीं होता, वैसे ही नित्य वस्तिकर्म अथवा षट्कर्म करने वालों की स्वाभाविक आन्तरिक शक्ति के बल से शरीर-शुद्धि नहीं होती।

धौतिकर्म

धौतिक्रिया हेतु चार अंगुल चौड़े और पंद्रह हाथ लम्बे महीन वस्त्र को गरम जल में भिगोकर थोड़ा निचोड़ लें। फिर गुरुपदिष्ट मार्ग से धीरे-धीरे प्रतिदिन एक-एक हाथ उत्तरोत्तर निगलने का अभ्यास बढ़ाते जाएं। आठ-दस दिनों में पूरी धोती निगलने का अभ्यास हो सकता है। करीब एक हाथ कपड़ा बाहर रहने दिया जाए। मुख में जो प्रान्त रहे, उसे दाढ़ों से भली प्रकार दबाकर

न्योलीक्रिया करें। फिर धीरे-धीरे वस्त्र निकालें। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि वस्त्र निगलने के पहले पूरा जल पी लेना चाहिए। इससे कपड़े को निगलने में सुभीता तथा कफ-पित्त का उसमें लिपटना आसान हो जाता है। साथ ही कपड़े को बाहर निकालने में भी सहायता मिलती है। धोती को रोज साबुन से धोकर स्वच्छ रखना चाहिए, अन्यथा धोती में लगे हुए दूषित कफरूप विजातीय द्रव्य के परमाणु पुनः दूसरे दिन भीतर जाकर हानि पहुंचाएंगे।

अनेक साधक बांस की नवीन करची (कईनी) से या बट का बरोह (सवा हाथ का) लेकर पहले जल पीकर, बाद में शनैः शनैः उसे निगलने का अभ्यास करते हैं। सूत की एक चढ़ाव-उतार वाली रस्सी से भी धौति साधते हैं। जब-जब उसे निगलते हैं, तब-तब जल बाहर निकलने लगता है और करची आदि को भीतर घुसने में भी सुभीता होता है। धौतिकर्म में कुछ लोग लाल वस्त्र का प्रयोग करते हैं। इस क्रिया को दूर से देखने वाले यह अफवाह उड़ा देते हैं कि उन्होंने अमुक महात्मा को अपनी अंतड़ियां और कलेजा निकालकर धोते हुए अपनी आंखों से देखा था। इससे यद्यपि योगियों की मान्यता बढ़ती है तथापि झूठ का प्रचार होता है।

पाश्चात्यों ने स्टमक ट्यूब (Stomach Tube) बनाया है। उसमें सवा हाथ लम्बी रबर की नली लगी रहती है जिसका एक मुख खुला रहता है और दूसरे सिरे से कुछ ऊपर हटकर बगल में एक छेद होता है। जल पीकर खुला सिरा ऊपर रखकर दूसरा सिरा निगला जाता है और जल रबर की नलिका द्वारा गिर जाता है। धौति चाहे जैसी हो, उससे कफ, पित्त और रंग-बिरंगे पदार्थ बाहर गिरते हैं। ऊपर की नाड़ी में स्थित एकाध अन्न का दाना भी गिरता है तथा दांत खट्टा सा हो जाता है। परन्तु मन शान्त और प्रसन्न होता है। बसन्त या ग्रीष्मकाल में इसका साधन अच्छा होता है।

घटिका, कण्ठनलिका या श्वास नलिका में शोथ, शुष्क कास, हिक्का, वमन, आमाशय में शोथ, ग्रहणी, तीक्ष्ण अतिसार, ऊर्ध्व रक्तपित्त (मुंह से रक्त निकलना) इत्यादि रोग में धौतिक्रिया लाभदायक नहीं होती। आवश्यकता न रहने पर इस क्रिया को प्रतिदिन करने से उपयोगी पित्त और कफ धोती निगलने के कारण विकृत होकर बाहर निकलते रहेंगे, जिससे पाचनक्रिया मन्द होकर शरीर में निर्बलता आ जाएगी। यदि पित्त प्रकोप से ग्रहणीकला के दूषित होने पर धौतिक्रिया की जाए तो किसी समय धोती का भाग आमाशय और लघु अन्त्र के सन्धिस्थान में जाकर फंस जाएगा। इसी प्रकार धोती फट जाने पर भी उसके फंस जाने का भय रहता है। यदि ऐसा हो जाए तो थोड़ा गरम जल पीकर ब्रह्मदातुन चलाने से धोती निकल कर बाहर आ जाएगी। इन कारणों से पित्त प्रकोप जन्य रोगों में धौति का उपयोग करना अनुचित माना गया है।

नेतीकर्म

नेती दो प्रकार की होती है—जलनेती और सूत्रनेती। पहले जलनेती करनी चाहिए। प्रातःकाल दन्तधावन के पश्चात् जिस नाक से सांस चलती हो, उसी से चुल्लू में जल लें और दूसरी सांस बंदकर जल नाक द्वारा खींचें। जल मुख में चला जाएगा। सिर के पिछले सारे हिस्से में, जहां मस्तिष्क का स्थान है, उस कर्म के प्रभाव से गुदगुदाहट और सनसनाहट या गिनगिनाहट पैदा होगी। अभ्यास बढ़ने पर आगे ऐसा नहीं होगा। कुछ लोग नासिका के एक छिद्र से जल खींचकर दूसरे छिद्र से निकालने की क्रिया को जलनेती कहते हैं। एक समय में आधा सेर से एक

सेर तक जल को एक नासापुट से चढ़ाकर दूसरे नासापुट से निकाला जा सकता है। यह क्रिया स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए भी हितकर है।

तीक्ष्ण नेत्ररोग, तीक्ष्ण अम्लपित्त और नए ज्वर में जलनेती नहीं करना चाहिए। अनेक मनुष्य रोज सुबह नासापुट से जल पीते हैं। यह क्रिया हितकर नहीं है। कारण—जो दोष नासिका में संचित होंगे, वे आमाशय में चले जाएंगे। अतः उषापान मुंह से ही करना चाहिए।

जलनेती के अनन्तर सूत्र लेना चाहिए। महीन सूत के दस-पन्द्रह तार की एक हाथ लम्बी बिना बटी डोर को (जिसका छः-सात इंच लम्बा एक प्रान्त बटकर क्रमशः पतला बना दिया गया हो) पिघले हुए मोम से चिकना बनाकर जल में भिगो लेना उचित है। फिर इस स्निग्ध भाग को भी थोड़ा मोड़कर जिस छिद्र से वायु चलती हो, उस छिद्र में लगाकर और नाक का दूसरा छेद अंगुली से बन्दकर, खूब जोर से बारम्बार पूरक करने पर सूत का भाग मुख में आ जाता है। तब उसे तर्जनी और अंगुष्ठ से पकड़कर बाहर निकाल लें। पुनः नेती को धोकर दूसरे छिद्र में डालकर मुंह से निकाल लें। कुछ दिन के अभ्यास के बाद एक हाथ से सूत को मुंह से खींच कर और दूसरे हाथ से नाक वाला प्रान्त पकड़कर धीरे-धीरे चालन करें। इस क्रिया को 'घर्षणनेती' कहते हैं। इसी प्रकार नाक के दूसरे रन्ध्र से भी, जब वायु उस रन्ध्र से चल रही हो, अभ्यास करें। इससे भीतर लगा हुआ कफ पृथक होकर नेती के साथ बाहर आ जाता है।

नाक के एक छिद्र से दूसरे छिद्र में भी सूत चलाया जाता है, यद्यपि कुछ लोग इसे दोषयुक्त मानकर इसकी उपेक्षा करते हैं। उसका क्रम यह है कि सूत नाक के एक छिद्र से पूरक द्वारा जब खींचा जाता है तो रेचक मुख द्वारा न कर दूसरे रन्ध्र द्वारा करें। इस प्रकार सूत एक छिद्र से दूसरे छिद्र में आ जाता है। इस क्रिया को करने में किसी प्रकार का भय नहीं है। सध जाने पर इसे तीसरे दिन करना चाहिए। जलनेती प्रतिदिन कर सकते हैं। नेती डालने में किसी-किसी को छींक आने लगती है, इसलिए एक-दो सेकण्ड श्वासोच्छ्वास की क्रिया को बंद करके नेती डालनी चाहिए।

नेती कपाल को शुद्ध करती है तथा दिव्यदृष्टि देती है। स्कन्ध, भुजा और सिर की सन्धि के ऊपर के सारे रोगों को नेती शीघ्र ही नष्ट करती है। कफ से या नेती के कारण नासिका के ऊपर के भाग में दर्द हो, रक्त निकले या जलन हो तो गोघृत दिन में दो बार सूंघें। घृत को हथेली में लेकर एक नासापुट बन्दकर दूसरे नासापुट से सूंघें, तब यह ऊपर चढ़ेगा। पाण्डु, कामला, अम्लपित्त, ऊर्ध्व रक्तपित्त, पित्तज्वर, नासिका में दाह, नेत्रदाह, नेत्राभिष्यन्द (नेत्रों की लाली), मस्तिष्कदाह इत्यादि पित्तप्रकोपजन्य रोगों में नेती का उपयोग न करें। अधिक आवश्यकता हो तो सावधानीपूर्वक करें, परन्तु घर्षण क्रिया न करें। पित्तप्रकोप के समय जलनेती का उपयोग हितकर है।

त्राटककर्म

एकाग्रचित मनुष्य निश्चल दृष्टि से सूक्ष्म लक्ष्य अर्थात् लघु पदार्थ को तब तक देखे, जब तक अश्रुपात न हो जाए। इसे मत्स्येन्द्र आदि आचार्यों ने त्राटक कर्म कहा है। त्राटक क्रिया सफेद दीवार पर सरसों बराबर काला चिह्न बनाकर उसी पर दृष्टि ठहराते-ठहराते चित्त समाहित (एकाग्रचित्त) और दृष्टि शक्तिसम्पन्न हो जाती है। जो शक्ति मेस्मेरिज्म में आ जाती है, वही शक्ति

त्राटक से भी प्राप्य है। त्राटक नेत्ररोगनाशक है। यह तन्द्रा, आलस्य आदि को भीतर नहीं आने देता। त्राटक कर्म संसार में इस प्रकार गुप्त रखने योग्य है, जैसे सुवर्ण की पेटी गुप्त रखी जाती है। उपनिषदों में त्राटक के आन्तर, बाह्य और मध्य—इस प्रकार तीन भेद किए गए हैं। हठयोग के ग्रन्थों में प्रकारभेद नहीं हैं। उक्त तीनों भेदों का वर्णन क्रमशः नीचे दिया जा रहा है।

हृदय अथवा भ्रूमध्य में नेत्र बन्द रखकर एकाग्रतापूर्वक चक्षुवृत्ति की भावना करने को 'आन्तर त्राटक' कहते हैं। इस आन्तर त्राटक और ध्यान में बहुत अंशों में समानता है। भ्रूमध्य में त्राटक करने से आरम्भ में कुछ दिनों तक कपाल में दर्द हो जाता है तथा नेत्र की बरौनी में चंचलता प्रतीत होने लगती है। परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् नेत्रवृत्ति में स्थिरता आ जाती है। हृदय देश में वृत्ति की स्थिरता के लिए प्रयत्न करने वालों को ऐसी प्रतिकूलता नहीं होती। चन्द्र, प्रकाशित नक्षत्र, पर्वत के तृणाच्छादित शिचार अथवा किसी अन्य दूरवर्ती लक्ष्य पर दृष्टि स्थिर करने की क्रिया को 'त्राटक' कहते हैं। केवल सूर्य पर त्राटक करने की मनाही है। कारण—सूर्य और नेत्रज्योति में एक ही प्रकार की शक्ति होने से नेत्रशक्ति सूर्य द्वारा आकर्षित होती रहेगी, जिससे नेत्र दो-तीन मास में कमजोर हो जाएंगे। यदि सूर्य पर त्राटक करना हो तो जल में खड़े होकर सूर्य के प्रतिबिम्ब पर करें। इस प्रकार किसी दूरवर्ती पदार्थ पर त्राटक करने की क्रिया को 'बाह्य त्राटक' कहते हैं।

काली स्याही से कागज पर लिखे हुए ॐ, बिन्दु, कोई देवमूर्ति अथवा भगवान् के चित्र, मोमबत्ती या तिल के तेल की अचल बत्ती या बत्ती के प्रकाश से प्रकाशित धातु की मूर्ति, नासिका के अग्रभाग अथवा समीपवर्ती किसी अन्य लक्ष्य पर दृष्टि स्थिर रखने की क्रिया को 'मध्य त्राटक' कहते हैं। केवल भ्रूमध्य में खुले नेत्र से देखने की क्रिया प्रारम्भ में अधिक समय तक न करें, अन्यथा नेत्रों की नाड़ियां निर्बल होकर दृष्टि कमजोर हो जाएगी।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के त्राटक के अधिकारी भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस साधक की पित्त प्रधान प्रकृति हो, जिसके मस्तिष्क, नेत्र, नासिका या हृदय में दाह रहता हो, नेत्र में फूला, जाला या कोई अन्य रोग हो, वह केवल आन्तर त्राटक का अधिकारी है। यदि वह बाह्य लक्ष्य पर त्राटक करेगा तो उसके नेत्र को हानि पहुंचेगी। जिनकी दृष्टि दूर की वस्तुओं के लिए कमजोर हो, जिनकी वातप्रधान प्रकृति हो या जिन्हें शुक्र की निर्बलता हो, वे समीपस्थ मूर्ति आदि पर त्राटक न करें। चन्द्रादि उज्ज्वल लक्ष्य पर त्राटक करें।

जिनकी दृष्टि दोषरहित हो, त्रिधातु सम हों, कफप्रधान प्रकृति के हों और नेत्रों की ज्योति पूर्ण हो, वे मध्य त्राटक करें। जिनको दो-चार वर्ष पहले उपदंश या सूजाक रोग हुआ हो अथवा जो अम्लपित्त, जीर्णज्वर, विषमज्वर, मज्जातन्तु-विकृति, पित्ताशयविकृति इत्यादि किसी व्यथा से पीड़ित हों अथवा तम्बाकू, गांजा आदि के व्यसनी हों, वे किसी प्रकार का त्राटक न करें। इसी प्रकार मानसिक चिन्ता, क्रोध, शोक, पुस्तकों का अध्ययन, सूर्यताप या आंच का सेवन करने वाले भी इस त्राटक क्रिया में प्रवृत्त न हों। पाश्चात्यों का अनुकरण करने वाले कुछ लोग मद्यपान, मांसाहार तथा अम्ल पदार्थादि अपथ्य वस्तुओं का सेवन करते हुए भी मेस्मेरिज्म विद्या की सिद्धि के लिए त्राटक करते हैं। परन्तु ऐसे लोगों का अभ्यास पूर्ण नहीं होता। अनेक के नेत्र चले जाते हैं तो अनेक पागल हो जाते हैं। जिन्होंने पथ्य का पालन किया है, वही सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

यम-नियमपूर्वक आसनों के अभ्यास से नाड़ी समूह मृदु हो जाने पर ही त्राटक करना

चाहिए। कठोर नाड़ियों को आघात पहुंचते देर नहीं लगती। त्राटक के जिज्ञासुओं के लिए आसनों के अभ्यास के परिपाककाल में नेत्र के व्यायाम का अभ्यास करना विशेष लाभदायक है। प्रातःकाल शान्तिपूर्वक दृष्टि को शनैः-शनैः, दाएं, नीचे की ओर एवं ऊपर की ओर चलाने की क्रिया को नेत्र का व्यायाम कहते हैं। इस व्यायाम से नेत्र की नसें दृढ़ होती हैं। इसके अनन्तर त्राटक करने से नेत्र को हानि पहुंचने की भीति कम हो जाती है। त्राटक के अभ्यास से नेत्र और मस्तिष्क में उष्णता बढ़ जाती है। अतः नित्य जलनेती करनी चाहिए तथा रोज सुबह त्रिफला के जल से अथवा गुलाबजल से नेत्रों को धोना चाहिए। भोजन में पित्तवर्द्धक और मलावरोध (कब्ज) करने वाले पदार्थों का सेवन न करें। नेत्र में आंसू आ जाने के बाद फिर उस दिन दोबारा त्राटक न करें। केवल एक ही बार प्रातःकाल में करें।

वास्तव में त्राटक का अनुकूल समय रात्रि दो से पांच बजे तक है। शान्ति के समय में चित्त की एकाग्रता बहुत शीघ्र होने लगती है। एकाध वर्ष पर्यन्त नियमित रूप से त्राटक करने से साधक के संकल्प सिद्ध होने लगते हैं, दूसरे मनुष्य के हृदय का भाव मालूम होने लगता है, सुदूर स्थान में स्थित पदार्थ अथवा घटना का सम्यक् प्रकार से बोध हो जाता है।

गजकर्म

जैसे हाथी सूंड से जल खींचकर फिर फेंक देता है, वैसे ही गजकर्म में किया जाता है। इसे गजकरणी क्रिया भी कहते हैं। इस कर्म को भोजन करने से पहले करना चाहिए। यदि विषयुक्त या दूषित भोजन कर लिया हो तो भोजन के बाद भी इसे किया जा सकता है। प्रतिदिन दन्तधावन के पश्चात् इच्छाभर जल पीकर अंगुली मुख में दे उलटी कर दें। क्रमशः बढ़ा हुआ अभ्यास इच्छामात्र से जल बाहर फेंक देगा। भीतर गए जल को न्योलीकर्म से भ्रमाकर फेंकना अधिक अच्छा होता है। जब स्वच्छ जल आ जाए, तब जानना चाहिए कि अब मैल मुख की राह में नहीं है। पित्तप्रधान पुरुष के लिए यह क्रिया हितकर है। अर्थात् लोहार की भाथी के समान अत्यन्त शीघ्रता से क्रमशः रेचक-पूरक प्राणायाम को शान्तिपूर्वक करना योगशास्त्र में कफदोष का नाशक कहा गया है जो 'कपालभाति' नाम से विख्यात है।

जब सुषुम्ना में से अथवा फुफ्फुस में से श्वास नलिका द्वारा कफ बार-बार ऊपर आता हो अथवा प्रतिश्याय (जुकाम) हो गया हो, तब वृत्रनेती और धौति क्रिया से इच्छित शोधन नहीं होता। ऐसे समय पर यह कपालभाति ही लाभदायक होती है। इस क्रिया से फुफ्फुस और तत्संबंधित नाड़ियों में इकट्ठा हुआ कफ कुछ जल जाता है और कुछ प्रस्वेद द्वारा बाहर निकल जाता है, जिससे फुफ्फुस-कोषों की शुद्धि होकर फुफ्फुस बलवान होते हैं। साथ ही साथ सुषुम्ना, मस्तिष्क और आमाशय की शुद्धि होकर पाचनशक्ति प्रदीप्त होती है। परन्तु उरःक्षत हृदय की निर्बलता, वमनरोग, हृल्लास (उबाक), हिक्का, स्वरभंग, मन की भ्रमित अवस्था, तीक्ष्ण ज्वर, निद्रानाश, ऊर्ध्व रक्तपित्त इत्यादि दोषों के समय, यात्रा में और वर्षा होने पर इस क्रिया को न करें। यदि यह क्रिया अधिक वेगपूर्वक की जाएगी तो किसी नाड़ी में आघात पहुंच सकता है। यदि यह शक्ति से अधिक प्रमाण में की जाएगी तो फुफ्फुस कोषों में शिथिलता आ जाएगी, जिससे वायु को बाहर फेंकने की शक्ति न्यून हो जाएगी, जीवनी शक्ति भी क्षीण हो जाएगी तथा फुफ्फुसों में वायु शेष रहकर बार-बार डकार बनकर मुंह से निकलती रहेगी।

इस क्रिया से आमाशय में संगृहीत दूषित पित्त, पाक न होकर शेष आहार-रस और विकृत श्लेष्म जल में मिश्रित होकर वमन के साथ बाहर आ जाते हैं। कुछ जल आमाशय में से अन्त्र में चला जाता है। कुछ सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा रक्त में मिल जाता है। परन्तु इससे कुछ भी हानि नहीं होती। वह जल मल-मूत्र द्वार से और प्रस्वेदरूप से एक-दो घण्टे में बाहर निकल जाता है। इस क्रिया को करने वाले के लिए भोजन में खिचड़ी अथवा दूध-भात लेना विशेष हितकर है। अजीर्ण, धूप में भ्रमण से पित्तवृद्धि, पित्त प्रकोपजन्य रोग, अजीर्ण, कफ-व्याधि, कृमि, रक्तविकार, आमवात, विषविकार और त्वचारोगादि व्याधियों को दूर करने के लिए यह क्रिया गुणकारी है। तीक्ष्ण कफप्रकोप, वमनरोग, अन्त्रनिर्बलता, क्षतयुक्त संग्रहणी, हृदय की निर्बलता एवं उरःक्षतादि रोगों में यह क्रिया न करें। इसी प्रकार आवश्यकता न होने पर इस क्रिया को नित्य न करें। शरद-ॠतु में स्वाभाविक पित्तवृद्धि होती रहती है। ऐसे समय पर आवश्यकतानुसार यह क्रिया की जा सकती है।

शिव साधना की विशिष्ट पद्धति

भगवान् शिव ने संसार मात्र को दुःखमय मानकर 'दुःखनिरोध' को सबका अन्तिम ध्येय निश्चित किया था और इसके लिए सभी संस्कारों का शमन, चित्तमलों का त्याग एवं तृष्णा का क्षय परमावश्यक बताया था। इस निरोध या विरागमयी पूर्ण शान्ति की अवस्था को ही 'निर्वाण' का नाम दिया जाता है जिसकी उपलब्धि चित्त को सर्वप्रथम वस्तुस्थिति का अनुभव प्राप्त करने योग्य और पूर्णरूपेण चिन्तनशील बनाने पर अवलम्बित रहती है। वस्तुस्थिति के ज्ञान का अभिप्राय पहले उनके द्वारा निर्दिष्ट प्रसिद्ध माध्यम या आष्टांगिक मार्ग के रहस्य को हृदयंगम करना था, जो क्रमशः एक अनिर्वचनीय 'धर्म' के रूप में समझा जाने लगा। यह आगे चल कर किसी न किसी प्रकार शून्य, धर्म तथा सिद्धों का 'वोहि' (बोधि), 'जिण रअण' (जिनरत्न), 'सहज', 'महासुह' (महासुख), 'धाम', 'अणुत्तर' (अनुत्तर) या 'जिनउर' (जिनपुर) आदि होता है, जिसको साधन द्वारा प्राप्त कर लेना परमार्थ या परम पुरुषार्थ समझा जाता है।

भव एवं निर्वाण

'निर्वाण' शब्द वास्तव में निषेधार्थक नहीं है और न 'शून्य' शब्द ही निषेधाची हैं। दोनों का तात्पर्य एक ही स्थिति या वस्तुस्थिति के पारमार्थिक रूप से है। जो न तो सत् है, न असत् ही है, परन्तु जो सभी के लिए परमलक्ष्य है। आचार्यों ने संज्ञा या चेतना को ही चित्त, मन या विज्ञान माना था और इसी चित्त को हम अनेक अबौद्ध दर्शनों की शब्दावली के अनुसार 'आत्मा' की भी संज्ञा दे सकते हैं। यह स्वभावतः शुद्ध और मलरहित है; किन्तु इसी के अन्तर्गत वह मूलबीज भी वर्तमान है जिससे 'भव' एवं 'निर्वाण' दोनों का विस्फुरण होता है। इसीलिए उसके बद्ध हो जाने से बन्धन और मुक्त होने से परममोक्ष का लाभ भी होता है।

वज्रयानाचार्यों के अनुसार, जब चित्त में अनेकानेक संकल्पों का अन्धकार भरा रहता है और जब वह तूफान के समान उन्मत्त, बिजली की भांति चंचल एवं रागादि के मलों से अवलिप्त रहता है तो उसी को संसार का नाम दिया जाता है। जब वही प्रकाशमय होने के कारण, सारी कल्पनाओं से रहित होता है, जब उसमें रागादि के मल नहीं रहते और जब उसके विषय में ज्ञाता

अथवा ज्ञेय होने का प्रश्न भी नहीं उठता, तब उसी श्रेष्ठ वस्तु को निर्वाण भी कहा जाता है।

इसको इस प्रकार समझा जा सकता है कि जब हरिणरूपी चंचल चित्त अपने मांस (संकल्प-विकल्पादि दोषों) के कारण आप-ही-आप शत्रु भी बन जाता है और इसी प्रकार जब वह निश्चल होकर समरस की अवस्था में प्रवेश करता है तो काण्हपा के अनुसार, साधक को विषयादि निराश होकर आप ही आप त्याग देते हैं और वह स्वयं वज्रधर या सिद्धाचार्य की अवस्था प्राप्त कर लेता है। परन्तु चित्त की उक्त चंचलता किस प्रकार दूर की जाए तथा उसे फिर से किस प्रकार निश्चल बनाया जाए—अब हम इस प्रकरण पर दृष्टिपात करेंगे।

मन का निःस्वभावीकरण

सिद्ध सरहपा के अनुसार, हमारे चित्त की यह विशेषता है कि वह रागादि द्वारा ग्रस्त या बद्ध रहने पर ही इधर-उधर चारों ओर भागा फिरता है, इनसे मुक्त होकर यह स्वभावतः स्थिर हो जाता है। इसलिए मूलतत्त्व को 'खसम' (ख=आकाश, सम=समान) अथवा शून्य मानते हुए अपने मन को भी तदनुसार 'खसम-स्वभाव' या शून्यरूप कर देना आवश्यक है, जिससे वह 'अमन' (अर्थात् अपना चंचल स्वभाव छोड़कर अमनस्क-सा) हो जाए और उसे सहजावस्था की उपलब्धि सरलतापूर्वक हो सके। जिस समय चित्त खसम (शून्यरूप) होकर समसुख में प्रवेश करता है, उस समय किसी भी इन्द्रिय के विषय अनुभव में नहीं आ पाते। यह समसुख आदि एवं अन्त दोनों से रहित होता है और आचार्य इसे ही अद्वय नाम देते हैं। इस प्रकार मन को 'अमन' करने वाली क्रिया को सिद्धों ने 'मन का मार डालना' या 'मन का निःस्वभावीकरण' कहा है।

इसका आशय यह है कि मन को धुनते-धुनते इसे इतना सूक्ष्म बना दें जिस प्रकार रुई को धुन कर बारीक रेशे में बदल दिया जाता है। फिर इसमें किसी प्रकार का कोई मल शेष नहीं रह जाता। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए यों समझा जा सकता है कि चमड़े की ऊपरी वस्तु को अपनी बुद्धि की सहायता से अलग कर दें और तब अपनी प्रज्ञा द्वारा अस्थिपंजर से मांस को भी निकाल दें। फिर हड्डियों को भी दूर कर अपने विवेक द्वारा सोचें तो स्वयं समझ जाएंगे कि अन्त में कुछ भी तत्त्व शेष नहीं रह जाता। सब कुछ वास्तव में निःसारमात्र है। मन का आकार-प्रकार पूर्ण करने वाले संकल्प-विकल्पादि को दूर करने पर भी इसी प्रकार शून्यमात्र रह जाता है।

प्रभा स्वर

सिद्ध सरहपा का कहना है कि घर अथवा वन—जहां कहीं भी हम रहें, हमें केवल अपने मन के स्वभाव का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। बोध सब कहीं निरन्तर वर्तमान है, इसलिए किसी एक स्थिति में 'भव' और दूसरी में 'निर्वाण' का अस्तित्त्व ढूंढ़ना निरी मूर्खता होगी। हमें केवल इस रहस्य से परिचित हो जाना चाहिए कि मूल में चित्त नितान्त निर्मल और विकल्परहित है। यही अवस्था हमारे लिए परम पद की स्थिति है, जिसे समरस के रूप में प्राप्त कर लेने पर जहां कहीं भी चित्त जाता है, वहां उसे अचित्त के रूप में ही हम अनुभव करते हैं। उस निर्मल और भावाभावरहित दशा को प्राप्त कर लेने पर चित्त कहीं भी विस्फुरित हो, उसे नाथ (प्रभास्वर) के स्वरूप का ही बोध होता है। जैसे जल और उसका तरंग दोनों वास्तव में एक ही अभिन्न वस्तु है, उसी प्रकार भव का साम्य भी आकाश के साम्य के ही स्वभाव का होता है।

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नामक पांचों स्कन्ध एवं पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश नामक पांचों तत्त्व और आंख, कान, नाक, जीभ, मन एवं काम नामक छहों आयतन इन्द्रियां—ये सभी सहज स्वभाव द्वारा बद्ध-सी हैं। अतएव हमें चाहिए कि अपने संकल्पाभिनिविष्ट मन का विशोधन कर उसे निःस्वभाव बना दें, जिससे वह शून्य में प्रवेश कर समरस की स्थिति में आ जाए। जिस प्रकार जल में जल प्रवेश करता है, उसी प्रकार चित्त भी सहज से मिलकर समरस की अवस्था में आता है। सहज जैसा बाहर है, वैसा ही भीतर भी रहता है। चौदहों भुवनों में वह निरन्तर वर्तमान है; वह अशरीरी शरीर में ही छिपा है; उसे जो जानता है, वही मुक्त है।

महासुख का उत्पत्ति स्थान

शरीर के भीतर पाए जाने वाले उक्त सहज या महासुख का उत्पत्तिस्थान इड़ा एवं पिंगला नामक दो प्रसिद्ध नाड़ियों के संयोग के निकट ही वर्तमान है। उसे पवन के नियमन द्वारा प्राप्त करना आवश्यक होता है। बाईं नासिका की ललना नामक (प्रज्ञास्वरूप) चन्द्र नाड़ी और दाईं नासिका की रसना नामक (उपायस्वरूप) सूर्य नाड़ी उस महासुख-कमल में दो खण्डस्वरूप हैं। उसका पौधा गगन के जल में, जहां अमिताभ या परम आनन्द प्रकाश-पंकरूप में वर्तमान है, उत्पन्न होता है। उसका मुख्य नाल अवधूती अथवा मूलशक्ति होती है और रूप हंकार अथवा अनाहत शब्द का होता है।

इस महासुख-कमल के मकरन्द का पान योगी या साधक लोग साधन द्वारा, शरीर के भीतर ही करते हैं। यदि पवन के निर्गमन द्वार पर दृढ़ ताला लग जाए, वहां के घोर अन्धकार में शुद्ध या निश्चल मन का दीप जलाया जाए और वह जिनरत्न की ओर उच्च गगन से स्पर्श कर जाए तो संसार का उपभोग करते समय भी हमारे लिए निर्वाण की सिद्धि हो जाएगी। जिसका मन निश्चल हो गया, उसका उसी क्षण वायुनिरोध भी सिद्ध है। वायुनिरोध होने पर मन अपने आप निश्चल होता है। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध है। उक्त प्रकार से पवन एवं मन को जिस स्थान पर एक साथ निश्चल किया जाता है, उसे सिद्धों ने 'उद्धमेरु' अथवा मेरुदण्ड (सुषुम्ना) का सिरा कहा है। यह पर्वत के समान सम-विषम है, अतएव वहां चढ़ना-उतरना सरलतापूर्वक नहीं हो सकता। उसकी गम्भीर कन्दरा में सारा जगत विनष्ट होकर शून्य में लीन हो जाता है और हमारे द्रवाकार चंचल चित्त का निर्मल जल भी तन्मय हो जाता है। उसी ऊंचे पर्वत के शिखर को सिद्धों ने महामुद्रा या मूलशक्ति (नैरात्मा) का निवास स्थान भी बताया है।

नैरात्मा

सिद्ध शवरपा कहते हैं कि उक्त पर्वत पर अनेक बड़े-बड़े वृक्ष पुष्पित हैं और उनकी डालें गगनचुम्बिनी हैं। वहां अकेली शबरी (नैरात्मा) वन का एकान्त-विहार किया करती है। वहीं त्रिधातु की सुन्दर सेज भी पड़ी है। साधक योगी वहां पहुंचकर उक्त दारिका के साथ प्रेमपूर्वक समय व्यतीत करने लगते हैं। नैरात्मा को सिद्धों ने शबरी के अतिरिक्त डोंवी, चण्डाली, शुण्डिनी, जोइणि (योगिनी) या पवनधारिणी के नामों से भी अभिहित किया है और उसका अनेक प्रकार से वर्णन भी किया है। इस डोंवी को चौंसठ पंखुड़ी वाले कमलपुष्प के ऊपर चढ़कर सदा नाचती

रहने वाली बताकर, उसके साथ अपना विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने का रूपक बांधा है। सिद्धों ने उसे ही शीघ्र पार कराकर जिनपुर पहुंचाने वाली कहा है।

इसी प्रकार सिद्ध विरूपा का कहना है कि अकेली शुण्डिनी (कलाली) इधर इड़ा और पिंगला नाड़ियों को एक साथ सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट कराती है और उधर बोधिचित्त को ले जाकर प्रभास्वर शून्य में भी बांधा करती है। उसके निकट चौंसठ घटीयन्त्रों में मद (महासुख) संभालकर रखा रहता है। वहां एक बार भी पहुंचकर मदपी फिर लौटने का नाम तक नहीं लेता। सिद्धों ने अपनी साधना को सहज मार्ग का नाम देकर उसे अत्यन्त सरल और सीधा भी बताया है। सिद्ध साधक इसके सीधेपन के विषय में कहते हैं—जब नादबिन्दु अथवा चन्द्र और सूर्य के मण्डल का अस्तित्त्व नहीं है तथा चित्तराज भी स्वभावतः मुक्त है, तो फिर सरल मार्ग का त्याग कर वक्रमार्ग ग्रहण करना कहां तक उचित कहा जा सकता है? बोधि सदा निकट वर्तमान है, उसे लंका (कहीं दूर) जाने की आवश्यकता नहीं; हाथ में ही कंकण है, दर्पण ढूंढ़ते फिरने से कोई भी लाभ नहीं होगा। अपने मन में ही स्वयं को सदा अवस्थित समझ लें। पार वही लगता है जो दुर्जनों के साथ पड़कर विपथ नहीं होता। सहज मार्ग ग्रहण करने वाले के लिए ऊंचा-नीचा, बायां-दायां—सभी एक भाव हो जाते हैं।

इसी प्रकार सिद्ध भादेपा ने अपने निजी अनुभव द्वारा इसके महत्व का वर्णन करते हुए कहा है—अभी तक मैं मोह में पड़ा था। अब मैंने सद्गुरुबोध द्वारा इसका ज्ञान प्राप्त किया है। मेरा चित्त अब नष्ट (शान्त) हो गया और गगन समुद्र में रल (हिल-मिल) कर एक या तदाकार हो गया। अब मुझे दसों दिशाओं में शून्य ही शून्य का अनुभव होता है। ब्रजगुरु के उपदेश द्वारा गगन-समुद्र को मैं अपने मन में ही उतार लाया हूं।

सहज के वास्तविक रूप का वर्णन अत्यन्त कठिन होने से उसके मार्ग का उपदेश भी बिना निजी अनुभव के स्पष्टरूप से हृदयंगम नहीं हो सकता। इसी कारण सिद्ध काण्हपा का कहना है–जो कुछ भी इस विषय में कहा जाता है, वह सभी मिथ्या-सा है। गुरु वास्तव में गूंगा है और शिष्य बधिर है। फिर वाक्पथातीत वस्तु का वर्णन कैसे संभव हो सकता है।

मंत्र जप साधन

शास्त्रों में जप की बड़ी महिमा गायी गयी है। सभी यज्ञों की अपेक्षा जप-यज्ञ को श्रेष्ठ बताया गया है। जप-यज्ञ में किसी भी बाह्य सामग्री अथवा हिंसा आदि की आवश्यकता नहीं होती। पद्म एवं नारदीय पुराण में कहा गया है कि समस्त यज्ञ वाचिक जप की तुलना में सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं। वाचिक जप से सौ गुना उपांशु और सहस्र गुना मानस जप का फल होता है। मानस जप वह है, जिसमें अर्थ का चिन्तन करते हुए मन से ही मन्त्र के वर्ण, स्वर और पदों की बार-बार आवृत्ति की जाती है। उपांशु जप में कुछ-कुछ जीभ और होंठ चलते हैं, अपने कानों तक ही उनकी ध्वनि सीमित रहती है, दूसरा कोई उसे नहीं सुन सकता। वाचिक जप वाणी के द्वारा उच्चारण है। तीनों ही प्रकार के जपों में मन के द्वारा इष्ट का चिन्तन होना चाहिए। मानसिक स्तोत्र-पाठ और जोर-जोर से उच्चारण करके मंत्र-जप करना—दोनों ही निष्फल हैं।

'गौतमीय तन्त्र' में कहा गया है कि केवल वर्णों के रूप में जो मंत्र की स्थिति है, वह उसकी जड़ता अथवा पशुता है। सुषुम्ना के द्वारा उच्चारित होने पर उसमें शक्ति संचार होता है। पहले

ऐसी भावना करनी चाहिए कि मंत्र का एक-एक अक्षर चिच्छक्ति से ओतप्रोत है और परम अमृतस्वरूप चिदाकाश में उसकी स्थिति है। ऐसी भावना करते हुए जप करने से पूजा, होम आदि के बिना ही मंत्र अपनी शक्ति प्रकाशित कर देते हैं।

मंत्र जप करने की यही विधि है कि प्राणबुद्धि से सुषुम्ना के मूलदेश में स्थित जीवरूप से मंत्र का चिन्तन करके मंत्रार्थ और मंत्रचैतन्य के ज्ञानपूर्वक उनका जप किया जाए। 'कुलार्णव तन्त्र' में भगवान् शंकर ने कहा है कि मन एक जगह, शिव दूसरी जगह, शक्ति तीसरी जगह और प्राण चौथी जगह—ऐसी स्थिति में मंत्र सिद्धि की क्या सम्भावना है। इसलिए इन सबको एकत्र-चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिए।

मंत्र में सूतक और मंत्र सिद्धि के साधन

मंत्र में दो प्रकार के सूतक होते हैं—एक जात सूतक और दूसरा मृत सूतक। इन दोनों अशौचों का भंग किए बिना मंत्र सिद्ध नहीं होते। इसके भंग करने की विधि यह है कि जप के प्रारम्भ में एक सौ आठ बार अथवा असमर्थ होने पर सात बार ओंकार से पुटित करके अपने इष्ट मंत्र का जप कर लेना चाहिए। मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्य का उल्लेख किया जा चुका है। उनके साथ ही योनिमुद्रा का अनुष्ठान करना भी आवश्यक होता है। उसके विकल्प में भूत-लिपि का विधान होता है। उसे अनुलोम-विलोम पुटित करके मंत्र जप करने से बहुत शीघ्र मंत्र सिद्ध होता है। भूत-लिपि क्रम निम्नलिखित है—

अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख ग घ ज च छ झ ज ण ट ठ ढ ड न त थ ध द म प फ भ ब श ष स (इसके बाद इष्टमंत्र, फिर) स ष श ब भ फ प म द ध थ त न ड ढ ठ ट ण ज झ छ च ज घ ग ख क ड. व ल र य ह औ ओ ऐ ए लृ ऋ उ इ अ।

इस प्रकार एक महीने तक एक हजार जप करना चाहिए। ऐसा करने से मंत्र जाग्रत हो जाता है। तीन प्राणायाम पहले और तीन बाद में कर लेने चाहिए। प्राणायाम की साधारण विधि यह है कि चार मंत्र से पूरक, सोलह मंत्र से कुम्भक और आठ मंत्र से रेचक करना चाहिए। जप पूरा हो जाने पर उसको तेज स्वरूप ध्यान करके इष्ट देवता के दाएं हाथ में समर्पित कर देना चाहिए। यदि देवी का मंत्र हो तो बाएं हाथ में समर्पण करना चाहिए। प्रतिदिन अथवा अनुष्ठान के अन्त में जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। होम, तर्पण आदि में से जो अंग पूरा न किया जा सके, उसके लिए और भी जप करना चाहिए। होम न कर सकने पर ब्राह्मणों के लिए होम की संख्या से चौगुना, क्षत्रियों के लिए छः गुना और वैश्यों के लिए आठ गुना जप करने का विधान है।

यह कार्य स्त्रियों के लिए वैश्यों के समान ही समझना चाहिए। यदि शूद्र किसी वर्ण का आश्रित हो, तब उसके लिए अपने आश्रय की संख्या समझनी चाहिए। यदि वह स्वतन्त्र हो तो उसे होम की संख्या का दस गुना जप करना चाहिए। अर्थात् एक लाख का अनुष्ठान हो तो होम के लिए भी एक लाख जप करना चाहिए। 'योगिनी हृदय' ग्रंथ में यह संख्या कुछ कम करके लिखी गयी है। ब्राह्मणों के लिए होम-संख्या का दुगुना, क्षत्रियों के लिए तिगुना, वैश्यों के लिए चौगुना और शूद्रों के लिए पांच गुना है। अनुष्ठान के पांच अंग हैं—जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण भोजन। यदि होम, तर्पण और अभिषेक न हो सकें तो केवल ब्राह्मणों के आशीर्वाद

से भी काम चल जाता है। स्त्रियों के लिए ब्राह्मण भोजन की भी आवश्यकता नहीं है। उन्हें न्यास, ध्यान और पूजा की भी छूट है। केवल जपमात्र से ही उनके मंत्र सिद्ध हो जाते हैं। अनुष्ठान में दीक्षा सम्पन्न ब्राह्मणों को ही खिलाना चाहिए।

अनुष्ठान पूरा हो जाने पर गुरु, गुरुपुत्र, गुरुपत्नी अथवा उनके वंशजों को दक्षिणा देनी चाहिए। वास्तव में यह सब उनकी प्रसन्नता के लिए ही है। जब तक वे प्रसन्न न हों, तब तक परम रहस्यमय ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती। अपने प्रयत्न एवं विचार से चाहे कोई कितना ही ऊपर क्यों न उठ जाए, वह पूर्णरूप से सन्देहरहित नहीं हो सकता। इसलिए विशेष करके उपासना के सम्बन्ध में गुरु के अतिरिक्त और कोई गति नहीं है। उनके बिना वह रहस्य कौन बता सकता है, जिसमें गुरु और शिष्य एक हैं। शिष्य स्वयं गुरु का अस्तित्त्व कभी नहीं मिटा सकता। केवल गुरु ही अपने गुरुत्व को मिटाकर शिष्य को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित करते हैं। यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे निगुरे नहीं जान सकते। अतः समझना चाहिए कि अनुष्ठान की पूर्णता गुरु की प्रसन्नता में है। एक बार एक मंत्र सिद्ध हो जाने पर दूसरे मंत्रों की सिद्धि में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं होता, वे निर्विघ्न सिद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार विधि-निषेध आदि जानकर गुरुदेव के आश्रय में रहते हुए, श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन्त्रानुष्ठान करने से अवश्यमेव मन्त्रसिद्धि होती है—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मंत्र साधन एवं सिद्धादि शोधन विधि

जिस प्रकार सामान्य जीवन में किसी भी संस्कार के लिए शुभ घड़ी, नक्षत्र, स्थान व समय देखना पड़ता है; उसी प्रकार मंत्र दीक्षा-निर्णय के पूर्व साधक और मंत्र के सम्बन्ध का विचार भी मंत्रशास्त्र के अनुसार किया जाता है। इसका विस्तार बहुत है, परन्तु संक्षेप में कुछ आवश्यक चक्रों का वर्णन कर दिया जाता है। पहले कुलाकुल चक्र का विचार होता है। पचास वर्णों को पंचभूतों के अन्तर्गत करके साधक के नाम के साथ विचार किया जाता है। यदि मंत्र का आदि अक्षर साधक के नाम के आदि अक्षर वाली पंक्ति में ही आता है तो वह मंत्र और साधक एकदैवत हैं, ऐसा समझना चाहिए।

यह चक्र पांच कोष्ठों में विभक्त है। ऊपर पांच तत्त्वों के नाम लिखे हुए हैं। एक भूत के नीचे जो अक्षर लिखे हुए हैं, वे एकदैवत हैं। साधक के नाम का आदि अक्षर एवं मंत्र का आदि अक्षर यदि एक ही कोष्ठक में पड़ते हों तो वह अपने कुल का मंत्र है और उसे ग्रहण करना चाहिए। यदि वह कोष्ठक में न पड़े तो अपने मित्र के कोष्ठक का मंत्र लिया जा सकता है। जलवर्ण भूमिवर्ण का और वायुवर्ण अग्निवर्ण का मित्र है। वायुवर्ण भूमिवर्ण का एवं अग्निवर्ण जल और भूमिवर्ण का शत्रु है। आकाशवर्ण सभी भूतों का मित्र है। जिन मन्त्रों के आदि अक्षर शत्रुतत्त्व के वर्ण हों, उन्हें नहीं ग्रहण करना चाहिए।

राशिचक्र में उल्लिखित अक्षरों के द्वारा अपनी और मन्त्र की राशि निश्चित करनी चाहिए। फिर अपनी राशि से मन्त्र की राशि तक गिनकर उसका फलाफल निश्चित करना चाहिए। यदि छठा, आठवां अथवा बारहवां पड़े तो मंत्र श्रेष्ठ नहीं है। एक, पांच और नौ मित्र हैं तथा दो, छः, दस हितकारी हैं। तीन, सात, ग्यारह पुष्टिकर हैं। चार, आठ, बारह घातक हैं। इसके पश्चात नक्षत्र का विचार करना चाहिए।

इस चक्र के अनुसार अपना और मंत्र का गण निश्चित कीजिए। यदि आप मनुष्यगण हैं तो मनुष्य गण का मंत्र ही आपके लिए श्रेष्ठ है। देवगण भी उत्तम है, किन्तु राक्षसगण घातक है। देवगण के लिए मनुष्यगण मंत्र मध्यम है और राक्षसगण का मंत्र शत्रु है। राक्षसगण के लिए केवल राक्षसगण का मंत्र ही उपयोगी है। इसी चक्र के अनुसार अपना और मंत्र का नक्षत्र निश्चित करके अपने नक्षत्र से मंत्र का नक्षत्र गिनें। क्रमशः जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मित्र और परम मित्र समझना चाहिए। यदि मन्त्र इतनी संख्या के अंदर न आएं तो इनको दोबारा और तिबारा गिन लेना चाहिए।

इसके बाद अकडम-चक्र का विचार करना चाहिए। यह चक्र अ, क, ड, म—अक्षरों से प्रारम्भ होता है, इसलिए इसका यही नाम है। साधक के नाम का पहला अक्षर जिस प्रकोष्ठ में हो, उसे गिनना प्रारम्भ कीजिए। मंत्र का पहला अक्षर जिस प्रकोष्ठ में हो यहां तक गिनते चलिए। यह गणना दक्षिणावर्त होनी चाहिए। मंत्र का पहला अक्षर पहले प्रकोष्ठ में हो तो सिद्ध, दूसरे में हो तो साध्य, तीसरे में हो तो सुसिद्ध, चौथे में हो तो अरि—ऐसा समझना चाहिए। मान लीजिए कि साधक का नाम 'श्याम' है और 'ऐम' मंत्र का विचार करना है। जिस प्रकोष्ठ में 'श' है, उससे ग्यारहवें प्रकोष्ठ में 'ऐ' पड़ता है। श्याम के लिए 'ऐम' सुसिद्ध मंत्र है। अरि मंत्र त्याज्य है, साध्य मंत्र मध्यम है, सिद्ध और सुसिद्ध उत्तम हैं।

इसी प्रकार एक अकथह चक्र है। उसमें भी सिद्ध-साध्य आदि का विचार होता है। साधक के नाम का आदि अक्षर जिस प्रकोष्ठ में हो, उससे मंत्र के आदि अक्षर वाले प्रकोष्ठ तक गिनते चलिए। पहले प्रकोष्ठ में मन्त्राक्षर हो तो सिद्ध, दूसरे में हो तो साध्य, तीसरे में हो तो सुसिद्ध और चौथे में हो तो अरि—इस प्रकार जब तक मन्त्राक्षर न मिले, गिनते जाना चाहिए। इसकी गिनती क्रमशः दाईं ओर चलती है।

एक ऋणी-धनी चक्र है। उससे भी ग्राह्य मंत्र का विचार होता है। इस प्रक्रिया में चक्र में अंकित ऊपर के अंक मंत्रवर्णों के हैं और नीचे साधक के वर्णों के अंक हैं। मंत्र और साधक के स्वर तथा वर्ण अलग-अलग करके प्रत्येक के अंक पृथक-पृथक जोड़ लेने चाहिए। दोनों में अलग-अलग आठ का भाग देना चाहिए। शेष में मंत्र का अंक अधिक होने पर वह ऋणी होता है और कम होने पर धनी। ऋणी मंत्र से बहुत शीघ्र सिद्धि मिलती है, बराबर होने पर भी उत्तम होता है मगर धनी होने पर विलम्ब होता है। यदि शेष शून्य हो, तो मृत्यु कारक है।

मान लीजिए, साधक का नाम 'राम' है। इसके नाम में चार अक्षर हैं—र, आ, म और अ। इनके अंक हुए क्रमशः 0, 2, 5 और 2। इनका योग 9 हुआ। इसमें 8 का भाग देने पर 1 शेष बचा। अब इसके 'ऐम' मंत्र की साधना करनी है। इसमें दो अक्षर हैं, ऐ और म। इनके अंक हुए क्रमशः 4 और 6। योग 10 हुआ और 8 का भाग देने पर 2 बचा। साधक की अपेक्षा मंत्र के अंक अधिक हैं, इसलिए 'राम' के लिए 'ऐम' मंत्र ऋणी हुआ। इसलिए वह उत्तम है।

इस प्रकार और भी कई चक्र हैं, किन्तु उनका उल्लेख यहां विस्तारभय से नहीं किया जा रहा है। इन सब चक्रों के अनुवार शुभ होने पर ही मंत्र ग्रहण करना चाहिए। कुछ मंत्रों में इसका अपवाद भी है। जैसे—

> स्वप्नेलब्धे स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे च त्रयक्षरे ।
> वैदिकेषु च सर्वेषु सिद्धादिचैव शोधयेत् ।।

हंसस्याष्टक्षरस्यापि तथा पंचाक्षरस्य च ।
एकद्वित्रयादिबीजस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ।।

अर्थात् जो मंत्र स्वप्न में प्राप्त हुआ हो, स्त्री गुरु ने जिसकी दीक्षा दी हो, जो मंत्र बीज अक्षर से अधिक का हो, जिसमें तीन ही अक्षर हों और जितने भी वैदिक मंत्र हैं, उनमें सिद्धादि शोधन की आवश्यकता नहीं है। हंस मंत्र, अष्टाक्षर मंत्र, पंचाक्षर मंत्र, एक, दो, तीन आदि बीजरूप मंत्र—इनमें भी सिद्धादि शोधन की आवश्यकता नहीं होती। समस्त ऐश्वर्य और ज्ञान के एकमात्र आश्रय परमानन्द स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के मंत्रों में भी सिद्धादि शोधन की आवश्यकता नहीं है। 'त्रैलोक्य-सम्मोहनतन्त्र' में गोपाल-मंत्र को लक्ष्य करके यह कहा गया है।

इसी प्रकार दश महाविद्या, सिद्धविद्या आदि के सम्बन्ध में भी वचन मिलते हैं। परन्तु इस विषय में निबन्धकारों ने ऐसा निर्णय किया है कि मंत्रों के विचार का प्रकरण दूसरा है और उनकी प्रशंसा का प्रकरण दूसरा है। उनके विचार का जहां प्रकरण है, वहां विचार करना चाहिए तथा उनकी महिमा और प्रशंसा के प्रकरण में उनके प्रति श्रद्धाभाव की अभिवृद्धि करनी चाहिए। तात्पर्य यह कि साधारणतः इनका विचार ही करना चाहिए। जहां अनन्य श्रद्धा का विषय हो, वहां ये बातें लागू नहीं होतीं।

यह चक्रों का विषय एक प्रकार से तन्त्र-ज्योतिष का विषय है, इसलिए इस प्रसंग में यदि मंत्रग्रहण के मास, पक्ष, तिथि आदि का निर्णय कर लिया जाए तो अनुपयुक्त नहीं होगा। मास निर्णय में ऐसा समझना चाहिए कि वैशाख, श्रवण, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ और फाल्गुन माह मंत्र ग्रहण करने में उत्तम हैं। चैत्र में केवल गोपाल मंत्र लिया जा सकता है। आषाढ़ में केवल श्रीविद्धा का ग्रहण वर्जित है, अन्य मंत्र ले सकते हैं। मलमास सर्वथा निषिद्ध है। उपर्युक्त उत्तम मासों में से किसी के भी शुक्ल या कृष्ण पक्ष में दीक्षा ले सकते हैं। शुक्ल पक्ष उत्तम है। कुछ विद्वान कृष्ण पक्ष की पंचमी तक ग्राह्य मानते हैं।

'कालोत्तर-तंत्र' के अनुसार सम्पत्ति चाहने वाले को शुक्ल पक्ष में और मोक्ष चाहने वाले को कृष्ण पक्ष में दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। मंत्रग्रहण में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी और पूर्णिमा ग्राह्य हैं, शेष निषिद्ध। कुछ महीनों की विशेष तिथियां भी अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं—जैसे अक्षयतृतीया, नागपंचमी आदि।

सौर गणना से मास और चान्द्र गणना से तिथियों का विचार करना चाहिए। शनि और मंगल को छोड़कर शेष दिन दीक्षा ग्रहण में उपयोगी हैं। नक्षत्रों में अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी से स्वाति तक, अनुराधा, मूल, पूर्वोत्तराषाढ़ा, शतभिषा, पूर्वोत्तरभाद्रपद, रेवती—ये नक्षत्र उत्तम हैं। शुभ, सिद्ध, आयुष्मान् आदि उत्तम योग और बव, बालव आदि उत्तम करणों का भी विचार कर लेना चाहिए। इस प्रकार नक्षत्र, चन्द्र, तारा आदि की शुद्धि देखकर लग्न का विचार करना चाहिए। वृष, सिंह, कन्या, धनु और मीन—ये लग्न उत्तम हैं। विष्णुमंत्र लेने में स्थिर-चर लग्न उत्तम कहे गए हैं। लग्न निर्णय में ग्रह विचार की भी आवश्यकता होती है। लग्न से तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थान में पापी ग्रह तथा केन्द्र—1, 4, 7, 10 और त्रिकोण—9, 5 में शुभ ग्रह हों तो उत्तम हैं। ये सब विचार करके ही मंत्र ग्रहण का दिन रखना चाहिए। सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण आदि अवसरों पर विशेष मुहूर्त की अपेक्षा नहीं होती।

इन सब विचारों में साधक की उपादानगत विशेषता, मंत्र की विशेष शक्ति और ज्योतिषचक्र

का स्थूल-सूक्ष्म एवं सृष्टि पर प्रभाव—इन सबका सम्बन्ध आ जाता है। किस तिथि को साधक का ब्रह्माण्ड के साथ कैसा सम्बन्ध रहता है, उसके अन्तःकरण के द्रव्य किस प्रकार प्रभावित रहते हैं, कैसी स्थिति में कौन-सा मंत्र उसके हृदय का स्पर्श करेगा और किस शक्ति के साथ उसकी एकता हो सकेगी—इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही दीक्षा के मुहूर्त का निर्णय किया जाता है। सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान गुरु की दृष्टि से ये बातें छिपी नहीं रहतीं। इसी से दीक्षा के सम्बन्ध में पूर्णतः उन्हीं पर निर्भर रहना चाहिए। वे जिस दिन, जिस अवस्था में शिष्य पर कृपा कर देते हैं, चाहे जो मंत्र दे देते हैं, विधिपूर्वक या अविधिपूर्वक—सब ज्यों-का-त्यों शास्त्रसम्मत है। शुभ मुहूर्त वही है, जब श्रीगुरुदेव की कृपा हो। वही मंत्र शुभ है, जो वे दे दें। उसमें किसी प्रकार के सन्देह या विचार के लिए स्थान नहीं है। वे अनधिकारी को अधिकारी बना सकते हैं। एक-दो की तो बात ही क्या, सारे संसार का उद्धार कर सकते हैं। गुरु की महिमा के सम्बन्ध में कहा गया है—

यः समः सर्वभूतेषु विरागो वीतमत्सरः ।
कर्मणा मनसा वाचा भीते चाभयदः सदा ।।
समबुद्धिपदं प्राप्तस्तन्नापि भगवन्मयः ।
पंचकालपरश्चैव पांचरात्रार्थवित्तथा ।।
विष्णुतत्त्वं परिज्ञाय एकं चानेकभेदगम् ।
दीक्षयेन्मेदिनीं सर्वा किं पुनश्चोपसन्नतान् ।।

अर्थात् जो समस्त प्राणियों में सम हैं, राग-द्वेषहीन हैं, कर्म, मन और वाणी से आर्तत्राणपरायण हैं, जिन्हें समत्व की प्राप्ति हो गयी है, जो भगवन्मय हो गए हैं, जो नित्यकर्म का पालन करते हैं और वैष्णवशास्त्र का रहस्य जानते हैं—वे एक ही विष्णुतत्त्व को अनेक रूपों में जानकर सारी पृथ्वी को दीक्षित कर सकते हैं, फिर शरण में आए हुए अधिकारियों की तो बात ही क्या है। श्री गुरुदेव की ऐसी ही महिमा है। ये विधि-विधान भी उनकी लीला और उनकी प्रसन्नता के साधन हैं।

मन्त्र-चैतन्य

साधारणतः लोगों की ऐसी धारणा है कि शब्दों के तीन ही प्रकार हो सकते हैं—एक तो आकाश के कारण तन्मात्रा के रूप में शब्द, दूसरा आकाशरूप शब्द और तीसरा आकाश के गुण अथवा कार्य के रूप में शब्द। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने वायु के गुण के रूप में ही शब्दों को स्वीकार किया है। परन्तु ये सब दृष्टियां बहुत ही स्थूल हैं। आध्यात्मिक जगत में शब्द तत्त्व की बड़ी ही सुन्दर विवेचना हुई है। शब्द दो प्रकार के हैं—एक तो किसी अर्थ के अवगत हो जाने पर उसको व्यक्त करने के लिए मनःप्रेरित वायु के आघात से कण्ठ, तालु आदि विशेष स्थानों से उच्चारित होने वाला शब्द और दूसरा अन्तःकरण में अर्थ को उद्भासित करने वाला चैतन्य शब्द, जिसको वैयाकरणों ने 'स्फोट' अथवा 'शब्द ब्रह्म' कहा है।

'स्फोट' शब्द का अर्थ है—जिससे अर्थ स्फुटित हो। अर्थ का स्फुरण स्पन्दन अथवा कम्पन से होता है और कम्पन नादसहकारी है। अतः कम्पन शब्द रूप ही है। चैतन्य-स्पन्दन जिससे समस्त सूक्ष्म अर्थ, शब्दतन्मात्रा, आकाश, स्थूल शब्द और स्थूल सृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है, वह

शब्द-ब्रह्म अथवा सगुण ब्रह्म ही है। यही मंत्र का मूल स्वरूप है। इसी अर्थ में मंत्र देवता और गुरु का ऐक्य है। यही कारण है कि मन्त्रशास्त्र ने मंत्रों को साधारण शब्दों की भांति किसी सामान्य अर्थ का बोधक नहीं माना है, जिसके समझ लेने पर मंत्र का काम समाप्त हो जाए, बल्कि मंत्र को समस्त सृष्टि का मूल एवं चैतन्यस्वरूप परमात्मा ही माना है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि साधक के चित्त में अपने मंत्र के प्रति साधारण शब्द भाव न रहे, ब्रह्म-भाव जाग्रत हो जाए, मंत्र चैतन्य रूप में स्फुरित होने लगे और वह उसी में तल्लीन एवं तन्मय हो जाए। इस मंत्र चैतन्य की प्रक्रिया अनेक प्रकार से शास्त्रों में वर्णित हुई है। उन प्रक्रियाओं में से कुछ यहां प्रस्तुत की जा रही हैं—

❑ जिन्हें षट्चक्र की प्रक्रिया ज्ञात है, वे जानते हैं कि षट्चक्रों के कमल एक प्रकार से वर्णरूप ही हैं। ये वर्ण सृष्टिक्रम से समस्त कमलदलों पर आते हैं और संहारक्रम से कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा अपने मूलस्थान में विलीन कर दिए जाते हैं। पुनः दिव्यरूप में उनकी सृष्टि होती है। इसी प्रकार अपने मंत्र को, जो चिच्छक्ति अथवा कुण्डलिनी शक्ति से ही ध्वनित हो रहा है, वर्णभाव से परे चैतन्य रूप में स्थित अनुभव करना, षड्चक्रों का भेदन करके सनातन शब्दरूप में अर्थात् नाद-बिन्दु संयुक्त चैतन्य से एक कर देना और पुनः उन्हीं देदीप्यमान, जीवन्त, ज्वलन्त और जाग्रत चैतन्य वर्णों की समष्टि से निर्मित मंत्र का साक्षात् करना—यह एक प्रकार का मंत्र चैतन्य है।

❑ ऐसा ध्यान करना चाहिए कि मेरे हृदय में अनाहत चक्र पर मेरे मंत्र के सब वर्ण स्थित हैं। मूलाधार से जाग्रत होकर कुण्डलिनी सुषुम्ना मार्ग से आती है और मेरे मंत्र को कण्ठस्थित विशुद्ध चक्र का भेदन करके सहस्रार में ले जाती है। वहां सहस्रदलकमल की कर्णिका पर नाद-बिन्दु संयुक्त मंत्र के सम्पूर्ण अक्षर स्थित हैं और चैतन्यरूप मंत्र-शक्ति स्फुरित हो रही है। मंत्र का प्रत्येक अक्षर चैतन्य-शक्ति से ही निर्मित एवं ग्रथित है, ऐसी भावना करके मंत्र-वर्णों को नाभि स्थित मणिपूर चक्र में ले आएं। वहां से वे वाणी में आते हैं, ऐसा जानकर चिद्रूप से ही उनका जप करें। यह दूसरे प्रकार का मंत्र चैतन्य है।

❑ मंत्र के पूर्व कामबीज, श्रीबीज और शक्तिबीज तथा अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त समस्त स्वर-वर्णों को बोलें। फिर मंत्र का उच्चारण करके बाद में भी उन्हीं बीजों और अक्षरों का उच्चारण करें। इस प्रकार इस मूलविद्या का 108 बार जप करें। इस प्रयोग से मंत्र-चैतन्य हो जाता है। मान लीजिए—मंत्र है 'ऐं', इसको चैतन्य करना है, तो पहले पूर्वोक्त तीनों बीजों का उच्चारण करना चाहिए— **उं क्लीं श्रीं ह्रीं।** इसके बाद **कं खं गं घं ङं चं छं** —इस प्रकार 'क्षं' पर्यन्त उच्चारण करें। तत्पश्चात् उसी 'ऐं' मंत्र और पुनः उन्हीं बीज तथा अक्षरों का 108 बार जप करने से मंत्र चैतन्य हो जाता है। इसका जप फल कोटि-कोटि गुणित होता है।

❑ सूर्यमण्डल में बहिःस्थित अथवा अन्तःस्थित द्वादश कलात्मक सूर्य में अपने मंत्र का चिन्तन करें और 108 बार जप करें। सूर्यमण्डल में अपने सनातन शिवस्वरूप गुरु एवं ब्रह्मरूपा उनकी शक्ति का भी ध्यान करें। इस प्रकार श्री गुरुदेव, उनकी शक्ति और मंत्र का चिन्तन करते हुए जो साधक 108 बार अपने मंत्र का जप करता है, उसका मंत्र चैतन्य हो जाता है।

❑ 'वरदातंत्र' में उल्लेख मिलता है कि यदि मंत्र को 'ई' से सम्पुटित करके जप किया जाए तो स्वयं ही मंत्र चैतन्य हो जाता है।

उपर्युक्त भावनाओं, क्रियाओं अथवा तत्त्वज्ञान से मंत्र चैतन्य अवश्य ही सम्पन्न कर लेना चाहिए। बिना मंत्र चैतन्य के मंत्र सिद्धि होनी बहुत ही कठिन है। इसलिए जप के पूर्व मंत्र चैतन्य की क्रिया कर लेनी चाहिए।

मन्त्रार्थ

मंत्र साधारण शब्दमात्र नहीं है, उसकी शक्ति दिव्य है और उसका एक अर्थ होता है। वह इष्टदेवता से अभिन्न होने पर भी देवता के स्वरूप का बोध कराता है, इसलिए इष्टदेव का अनुग्रह विशेष ही मंत्र है। मंत्र जिस वस्तु का संकेत करता है और साधक को जहां ले जाना चाहता है, यदि साधक को भी उस लक्ष्य का पता हो तो यात्रा में अर्थात् साधना में अधिक सुविधा हो जाती है। यही कारण है कि शास्त्रों में मंत्र जप के साथ उसके अर्थ-ज्ञान की भी आवश्यकता बतायी गयी है। 'योगदर्शन' में तो मन्त्रार्थ भावना को ही जप कहा गया है। 'मन्त्र' शब्द का धातुगत अर्थ है—गुप्त परिभाषण। परन्तु साधक के लिए वह गुप्त नहीं, प्रकट होना चाहिए। श्रीगुरुदेव की कृपा से कुछ बीज-मंत्रों के अर्थ साधकों के लिए यहां प्रकट किए जा रहे हैं—

ह्रौं— इसको प्रसाद बीज कहते हैं। इसमें हकार का अर्थ है 'शिवं, औकार का अर्थ है 'सदाशिव'और बिन्दु दुःखहरण के अर्थ में है। इसलिए इस-बीज का अर्थ है—शिव और सदाशिव की कृपा-प्रसाद से मेरे समस्त दुःख नष्ट हो जाएं।

दूं —'द' का अर्थ है दुर्गा, ऊकार का अर्थ है रक्षा और बिन्दु का अर्थ है करो। इस प्रकार दुर्गा-बीज अर्थात् 'दूं' का अर्थ हुआ—हे मां दुर्गे, मेरी रक्षा करो।

क्रीं— क का अर्थ है काली, 'र' का अर्थ है ब्रह्म, ईकार का अर्थ है महामाया, नाद का अर्थ है विश्वमाता और बिन्दु का अर्थ है दुःखहरण। इस काली बीज अथवा कर्पूर बीज 'क्रीं' का अर्थ हुआ—ब्रह्मशक्तिस्वरूपिणी महामाया काली माता मेरे दुःखों का नाश करें।

ह्रीं— ह=शिव; र=महामाया; नाद=विश्वमाता और बिन्दु=दुःखहरण। इस शक्ति बीज अथवा माया बीज का अर्थ है—शिवयुक्त विश्वमाता महामाया शक्ति मेरे दुःखों का नाश करें।

श्रीं— श=महालक्ष्मी; र=धन-सम्पत्ति; ई=तुष्टि; नाद=विश्वमाता और बिन्दु=दुःखहरण। इस लक्ष्मी बीज अथवा श्रीबीज का अर्थ है—धन-सम्पत्ति, तुष्टि-पुष्टि की अधिष्ठात्री माता महालक्ष्मी मेरे दुःखों का नाश करें।

ऐं— ऐ=सरस्वती और बिन्दु=दुःखहरण। इसका अर्थ हुआ—देवी सरस्वती मेरे दुःखों का नाश करें। यह सरस्वती बीज है।

क्लीं— क=कृष्ण अथवा काम; ल=इन्द्र; ई=तुष्टि और बिन्दु=सुखकर। इसका अर्थ हुआ—सर्वश्रेष्ठ मन्मथ भगवान् श्रीकृष्ण मुझे सुख और शान्ति दें। यह कृष्णबीज अथवा कामबीज है।

हूं— ह=शिव; ऊ=भैरव; नाद=सर्वोत्कृष्ट और बिन्दु=दुःखहरण। इसका अर्थ है—सर्वश्रेष्ठ असुर-भयंकर भगवान् शिव मेरे दुःखों का नाश करें। इसको कर्मबीज अथवा कूर्चबीज कहते हैं।

गं— ग=गणेश और बिन्दु=दुःखहरण। इस गणेश बीज का यही अर्थ है कि भगवान् गणेश मेरे दुःखों को दूर करें।

ग्लौं— ग=गणेश; ल=व्यापक; औ=तेज और बिन्दु=दुःखहरण। इसका अर्थ हुआ—परम

व्यापक ज्योतिर्मय भगवान् गणेश मेरे दुःखों का नाश करें। यह भी गणेशबीज है।

क्ष्रौं— क्ष=नृसिंह; र=ब्रह्म; औ=ऊर्ध्वदन्त और बिन्दु=दुःखहरण। यह नृसिंहबीज है। इसका अर्थ हुआ—ब्रह्मस्वरूप ऊर्ध्वदन्त भगवान् नृसिंह दुःखों से मेरी रक्षा करें।

स्त्रीं— स=दुर्गोत्तारणात=तारक; र=मुक्ति; ई=महामाया; नाद=विश्वमाता और बिन्दु=दुःखहरण। इस वधूबीज का अर्थ हुआ—दुर्गोत्तारिणी, मुक्तिस्वरूपा, विश्वमाता भगवती महामाया दुःखों से मेरी रक्षा करें।

इसी प्रकार और भी अनेक बीज हैं—जैसे आकाश का 'हं', वायु का 'यं', अग्नि का 'र', जल अथवा अमृत का 'वं', पृथ्वी का 'लं' आदि। उन्हें एकाक्षरी कोष से देख लेना चाहिए। ऐसा कोई अक्षर नहीं है, जो मंत्र न हो। केवल उनका ठीक-ठीक प्रयोग करने की विधि जाननी चाहिए।

परन्तु यह अर्थ तो साधक के लिए भावनाविशेष है। मंत्र का वास्तविक अर्थ तो मंत्रप्रतिप्रादित देवता का साक्षात्कार होने पर ही मालूम होता है। इसी से 'सरस्वती तंत्र' में मंत्रार्थ का ज्ञान और साक्षात्कार प्राप्त करने की एक विधि बतायी गयी है। उसमें कहा गया है कि मूलाधार चक्र में शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ इष्टदेवता और मंत्ररूप इष्टविद्या का चिन्तन करना चाहिए। आधे मुहूर्त तक ध्यान करके फिर नाभिचक्र में इष्टदेवता और इष्टमंत्र का चिन्तन करना चाहिए। वहां उनका वर्ण रक्त होगा। फिर हृदय में मरकत मणि के समान दोनों का ध्यान होगा और विशुद्धादि चक्रों के क्रम से सहस्रार में जाकर ब्रह्मस्वरूप में दोनों एक हो जाएंगे—इस स्थिति का अनुभव किया जाएगा। इस प्रकार ध्यान करते-करते जब साधक इतना तन्मय हो जाएगा कि वह स्वयं मंत्रदेवतात्मक ब्रह्म से पृथक नहीं रह जाएगा, तब कहीं इस स्थिति के फलस्वरूप मंत्र का वास्तविक अर्थ अर्थात् लक्ष्यार्थ प्रकट होगा। वास्तव में वही मंत्रार्थ है। परन्तु एकाएक वह बुद्धिगम्य नहीं होता, इसलिए उस तत्त्व तक पहुंचने का दृष्टिगम्य नहीं हो सकता। अतः उस तत्त्व तक पहुंचने की दृष्टि से इस प्रकार के अर्थ कहे जाते हैं। भगवान् शंकर के वचन हैं—

ध्यानेन परमेशानि यद्रूपं समुपस्थितम् ।
तदेव परमेशानि मन्त्रार्थं विद्धि पार्वति ।।

अर्थात् सहस्रार में पहुंच कर ब्रह्मस्वरूप का ध्यान करते-करते जो स्वरूप स्वयं प्रकट होता है, वही मन्त्र का अर्थ है। उसी मन्त्रार्थ को प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।

मन्त्रों की कुल्लुका

'सरस्वती तन्त्र' में कहा गया है कि मन्त्रों के जप के पूर्व उसकी कुल्लुका का ज्ञान भी आवश्यक है। जप प्रारम्भ करने के समय जिस मन्त्र का जप करना हो, उसकी कुल्लुका सिर पर स्थापित कर लेनी चाहिए अर्थात् मूर्द्धा में उसका न्यास कर लेना चाहिए। कुछ मन्त्रों की कुल्लुका यहां दी जा रही है—

- ❑ तारा मंत्र की कुल्लुका—**ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं।**
- ❑ काली मंत्र की कुल्लुका—**ॐ क्रीं हूं स्त्री ह्रीं फट्।**
- ❑ छिन्नमस्ता मंत्र की कुल्लुका—**ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।**
- ❑ वज्रवैरोचनी मंत्र की कुल्लुका—**ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रीं स्वाहा हूं।**
- ❑ भैरवी मंत्र की कुल्लुका—**ॐ हं स रैं।**
- ❑ त्रिपुरसुन्दरी मंत्र की कुल्लुका—**ॐ ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा अथवा क्लीं।**
- ❑ मंजुघोषा मंत्र की कुल्लुका—**ॐ अ र व च ल धीं।**
- ❑ भुवनेश्वरी मंत्र की कुल्लुका—**ॐ ह्रीं।**
- ❑ विष्णु मंत्र की कुल्लुका—**ॐ नमो नारायण।**
- ❑ मातंगी मंत्र की कुल्लुका—**ॐ।**
- ❑ धूमावती मंत्र की कुल्लुका—**ॐ ह्रीं।**
- ❑ षोडशी मंत्र की कुल्लुका—**ॐ स्त्रीं।**

- ❑ लक्ष्मी मंत्र की कुल्लुका—**ॐ श्रीं।**
- ❑ सरस्वती मंत्र की कुल्लुका—**ॐ ऐं।**
- ❑ अन्नपूर्णा मंत्र की कुल्लुका—**ॐ क्लीं।**
- ❑ शिव मंत्र की कुल्लुका—**ॐ हौं।**

अन्य देवताओं के अपने-अपने मन्त्र ही कुल्लुका हैं।

मन्त्रसेतु— प्रधानतः मंत्रों का सेतु प्रणव ही है। ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिए 'प्रणव', वैश्यों के लिए 'फट्' तथा शूद्रों के लिए 'ह्रीं' सेतु है। जप प्रारम्भ करने के पूर्व हृदय में इसका जप कर लेना चाहिए।

महासेतु— जप के पहले महासेतु का जप किया जाता है। इसके जप से सभी समय और सभी अवस्थाओं में जप करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। त्रिपुरसुन्दरी का महासेतु 'ह्रीं', कालिका का 'क्रीं' तथा तारा का 'हूं' है। अन्य सभी देवताओं का महासेतु 'स्त्रीं' है। इसका जप कण्ठदेश स्थित विशुद्धचक्र में करना चाहिए।

निर्वाण— पहले 'प्रणव' और उसके पश्चात् 'अ' इत्यादि समस्त स्वरवर्णों का उच्चारण करके अपना मंत्र पढ़ें। तत्पश्चात् 'ऐं', समस्त स्वर-वर्णों का और अन्त में 'प्रणव' का जप करें। इस प्रकार सम्पुट करके मणिपूर चक्र में जप करना चाहिए। इसका नाम निर्वाण है।

मुखशोधन— मन्त्रशास्त्र विशेषज्ञों का मत है कि मंत्र जप के पूर्व मुखशोधन अवश्य करना चाहिए। क्योंकि अशुद्ध मुख से जप करने से सिद्धि के बदले हानि होती है। जिह्वा पर अनेक

प्रकार के मल निवास करते हैं—भोजन का मल, झूठ बोलने का मल और कलह का मल। इनके शोधन के बिना जिह्वा मंत्रोच्चारण के योग्य नहीं होती। इसलिए शास्त्रों में जिह्वा शोधन की विधि बतायी गयी है। जिस देवता का मंत्र जपना हो, उसके अनुसार मुखशोधन मंत्र का पहले दस बार जप कर लेना चाहिए। ये मंत्र इस प्रकार हैं—

- ❑ त्रिपुरसुन्दरी — श्रीं ऊं श्रीं ऊं श्रीं ऊं।
- ❑ श्यामा — क्रीं क्रीं क्रीं ऊं ऊं ऊं क्रीं क्रीं क्री।
- ❑ तारा — ह्रीं हूं ह्रीं।
- ❑ दुर्गा — ऐं ऐं ऐं।
- ❑ बगलामुखी — ऐं ह्रीं ऐं।
- ❑ मातंगी — ऊं ऐं ऊं।
- ❑ लक्ष्मी — श्रीं।
- ❑ धूमावंती — ऊं।
- ❑ धनदा — ऊं धूं ऊं।
- ❑ गणेश — ऊं गं।
- ❑ विष्णु — ऊं हं।

अन्य देवताओं का केवल ॐकार ही मुखशोधन मन्त्र है। मन्त्र-जप के पहले दस बार इसका जप कर लेना चाहिए।

प्राणयोग— जैसे प्राणयुक्त शरीर सचेष्ट होता है, वैसे ही प्राणयुक्त मंत्र सिद्ध होता है। इसकी विधि केवल इतनी ही है कि मायाबीज अर्थात् 'ह्रीं' से पुटित करके अपने मंत्र का सात बार जप कर लेना चाहिए।

दीपनी— जैसे दीपक से घर का अन्धकार दूर होकर उसकी सारी चीजें दिखने लगती हैं, वैसे ही दीपनी क्रिया से मन्त्र प्रकाश में आ जाता है। यह दीपनी क्रिया केवल इतनी ही है कि मंत्र-जप प्रारम्भ करने के पहले मंत्र को प्रणव से पुटित करके सात बार जप लेना चाहिए।

मंत्र के आठ दोष

'हरितत्त्वदीधिति' ग्रंथ में मंत्र के आठ दोष गिनाए गए हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं—अभक्ति, अक्षरभ्रांति, लुप्त, छिन्न, ह्रस्व, दीर्घ, कथन और स्वप्रकथन।

❑ मंत्र को अक्षर और वर्णों का समष्टिमात्र समझना 'अभक्ति' है जैसा कि सिद्धान्तदृष्टि से है। मंत्र देवतास्वरूप हैं, ऐसा अनुभव करके एक-एक मंत्र के उच्चारण में परमानन्द का अनुभव करते हुए जो जप करते हैं, उन्हें बहुत शीघ्र सिद्धि मिलती है। परन्तु जो मन्त्र को केवल अक्षर-

वर्णमात्र समझते हैं अथवा दूसरे मंत्र को श्रेष्ठ समझकर अपने मन्त्र को हीन समझते हैं, उन्हें सिद्धि नहीं, विपरीत फल मिलता है। इस अभक्ति को दूर करने के लिए उस मंत्र का बहुत-बहुत जप करना चाहिए। जप, हवन और तपस्या से जब मंत्र के अधिष्ठात्र देवता प्रसन्न होते हैं, तब उसमें भक्ति का उदय होता है। भक्ति का उदय होने पर सिद्धि लाभ में विलम्ब नहीं होता।

❑ गुरु अथवा शिष्य के भ्रम-प्रमाद से मंत्र के अक्षरों में उलट-फेर हो जाना अथवा एक-आध अक्षर बढ़ जाना—'अक्षरभ्रांति' है। ऐसा हो जाने पर गुरु से, उनकी अनुपस्थिति में उनके पुत्र से अथवा किसी अन्य योग्य साधक से पुनः मंत्र ग्रहण करना चाहिए।

❑ मंत्र में किसी वर्ण की न्यूनता 'लुप्त' दोष है। इसके लिए भी पुनः मंत्र ग्रहण करने की आवश्यकता होती है।

❑ 'छिन्न' दोष उसको कहते हैं जिसमें संयुक्त वर्णों में से कोई अंश छूट जाता है। यह दोष भी उपर्युक्त पद्धति से ही दूर होता है।

❑ दीर्घ वर्ण के स्थान में ह्रस्व वर्ण का उच्चारण 'ह्रस्व' नामक दोष है।

❑ ह्रस्व वर्ण के स्थान पर दीर्घ वर्ण का उच्चारण करना 'दीर्घ' दोष है।

❑ जाग्रत अवस्था में अपना मंत्र किसी को कह देना 'कथन' दोष है।

❑ स्वप्न में अपना मंत्र किसी को बता देना 'स्वप्नकथन' नामक दोष है।

उपर्युक्त पांचवें और छठे दोष का निराकरण तो पूर्वोक्त पद्धति से ही होता है, परन्तु 7वें एवं 8वें दोष का निवारण श्रीगुरुदेव के चरणों में निवेदन करने पर, उनके द्वारा प्रायश्चित की व्यवस्था करने पर उसके अनुष्ठान से होता है। इन आठ प्रकार के दोषों से बचकर ही मंत्र जप करना चाहिए, तभी सिद्धि होती है।

मन्त्र सिद्धि के उपाय

श्रद्धा और विधि के साथ मन्त्रानुष्ठान करने पर भी यदि सिद्धि-लाभ न हो तो पुनः-पुनः उसका अनुष्ठान करना चाहिए। यदि तीन बार के अनुष्ठान से भी मंत्र सिद्ध न हो तो निम्नलिखित सात उपाय करने चाहिए। एक साथ ही इन सबको करने की आवश्यकता नहीं है। इनके द्वारा अवश्य ही मन्त्र सिद्धि प्राप्त होती है। वे उपाय निम्नलिखित हैं—

भ्रामण, रोधन, वश्य, पीडन, पोषण, शोषण, और दाहन।

❑ 'भ्रामण' उसको कहते हैं जिसमें वायु-बीज 'यं' द्वारा मंत्र को ग्रथित किया जाता है। यन्त्र पर एक वायुबीज और एक मन्त्राक्षर—इस क्रम से मन्त्र के सम्पूर्ण अक्षरों को सम्पुटित करना चाहिए। तत्पश्चात् शिलारस, कर्पूर, कुंकुम, खस और चन्दन को मिलाकर उसी से यन्त्र पर पूरा मन्त्र लिखें। लिखित मन्त्र को दूध, घी, मधु एवं जल में छोड़कर पूरा जप और होम करें। इस तरह अनुष्ठान करने से मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है।

❑ वाग्बीज 'ऐं' के द्वारा मन्त्र को पुटित करके यथासाध्य जप करने से 'रोधन' क्रिया सम्पन्न होती है।

मन्त्रों के दस संस्कार

शिव भक्त रावण कहते हैं—बिना गुरु से प्राप्त तथा शास्त्रों द्वारा ग्रहण किए गए मंत्रों का संस्कार करना अति आवश्यक होता है। स्वयं सिद्ध एवं गुरु द्वारा प्रदत्त सिद्ध मंत्रों के लिए ऐसी कोई आवश्यकता नहीं होती, परन्तु अन्य मंत्रों में यह आवश्यक है। क्योंकि कोई भी मंत्र छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, पराङ्मुख आदि पचास दोषों से बच नहीं सकता। सभी मंत्र किसी न किसी दोष से युक्त पाए जाते हैं। इन दोषों की निवृत्ति के लिए मन्त्र के निम्नलिखित दस संस्कार करने चाहिए—

दोषानिमानविज्ञाय यो मन्त्रान् भजते जडः ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ।।

मन्त्रोद्धार के अनन्तर यंत्र को धोकर शुद्ध जल में डाल दें।

❑ हंस मन्त्र का सम्पुट करने से एक हजार जप द्वारा मंत्र का 'दीपन' नामक दूसरा संस्कार होता है। यथा— **हंसः शिवाय नमः सोऽहम्।**

❑ हूं-बीज सम्पुटित मंत्र का पांच हजार जप करने से 'बोधन' नामक तीसरा संस्कार होता है। यथा— **हूं शिवाय नमः हूं।**

❑ फट्-सम्पुटित मन्त्र का एक हजार जप करने से 'ताडन' नामक चतुर्थ संस्कार होता है। यथा— **फट् शिवाय नमः।**

❑ भोजपत्र पर मंत्र लिखकर **रों हंसः ओं** मंत्र से अभिमंत्रित करें और एक हजार बार जपे हुए जल से अश्वत्थपत्रादि द्वारा मंत्र का अभिषेक करें। ऐसा करने पर 'अभिषेक' नामक पांचवां संस्कार होता है।

❑ ओं त्रों वषट्—वर्णों से सम्पुटित मंत्र का एक हजार बार जप करने से 'विमलीकरण' नामक छठा संस्कार होता है। यथा— **ओं त्रों वषट् शिवाय नमः वषट् त्रों ओं।**

❑ स्वधा-वषट् सम्पुटित मूलमंत्र का एक हजार बार जप करने से 'जीवन' नामक सातवां संस्कार होता है। यथा— **स्वधा वषट् शिवाय नमः वषट् स्वधा।**

❑ दुग्ध, जल एवं घृत से मूलमंत्र द्वारा सौ बार तर्पण करना ही आठवां 'तर्पण' नामक संस्कार होता है।

❑ ह्रीं-बीज सम्पुटित एक हजार जप करने से 'गोपन' नामक नौवां संस्कार होता है। यथा— **ह्रीं रामाय नमः ह्रीं।**

❑ ह्रौं-बीज सम्पुटित एक हजार जप करने से 'आप्यायन' नामक दसवां संस्कार होता है। यथा— **ह्रौं शिवाय नमः ह्रौं।**

इस प्रकार संस्कृत किया हुआ मंत्र शीघ्र सिद्धिप्रद होता है।

कूर्मचक्र

प्रसंगवश दीपस्थान (कूर्मचक्र) का भी निर्णय किया जाता है—

दीपस्थानं समाश्रित्य कृतं कर्म फलप्रदम् ।

जिस स्थान में, क्षेत्र में, नगर में अथवा गृह में पुरश्चरण करना हो, उसके नौ समान भाग कल्पना करके मध्य भाग में स्वर लिखें और पूर्वादि क्रम से कवर्गादि लिखें। ईशान कोण में ल, क्ष

लिखें।

जिस कोष्ठ में क्षेत्र का पहला अक्षर हो, उस कोष्ठ को मुख समझना चाहिए। उसके दोनों ओर के दो कोष्ठ भुजा, फिर दोनों ओर के दो कोष्ठ कुक्षि, फिर दोनों ओर के दो कोष्ठ पैर तथा शेष कोष्ठ पुच्छ समझने चाहिए। मुखस्थान में जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है। भुजा में स्वल्पजीवन, कुक्षि में उदासीनता, पैरों में दु:ख और पुच्छ में वध-बन्धनादि पीड़ा होती है।

जप में माला की महत्ता

साधना में माला का बहुत ही महत्व है। माला भगवान् के स्मरण और नाम जप में बड़ी सहायक होती है। इसलिए साधक उसे अपने प्राणों के समान प्रिय समझते हैं और गुप्त धन की भांति सुरक्षित रखते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जप की संख्या अवश्य होनी चाहिए। इससे निश्चित संख्या पूर्ण करने के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है तथा उत्साह-लगन में किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाती। जो लोग बिना संख्या के जप करते हैं, उन्हें इस बात का अनुभव होगा कि जब कभी जप करते-करते मन अन्यत्र चला जाता है, तब मालूम ही नहीं होता कि जप हो रहा था या नहीं अथवा कितने समय तक जप बंद रहा। यह प्रमाद हाथ में माला रहने पर या संख्या से जप करने पर नहीं होता। यदि कभी कहीं मन चला भी जाता है तो माला का चलना बंद हो जाता है, संख्या आगे नहीं बढ़ती। यदि माला चलती रही तो जीभ भी अवश्य ही चलती रहेगी। इस प्रकार ये दोनों कुछ ही समय में मन को खींच लाने में समर्थ हो सकेंगी।

कुछ लोग कहते हैं कि मैं जप तो करता हूं, पर मेरा मन कहीं अन्यत्र रहता है। ऐसे लोगों को यह विश्वास रखना चाहिए कि यदि जीभ और माला दोनों घूमती रहीं (क्योंकि बिना कुछ न कुछ मन में रहे ये घूम ही नहीं सकतीं) तो बाहर घूमने वाला मन कहीं भी आश्रय न पाकर अपने उसी स्थिर अंश के पास लौट आएगा। माला के फेरने में जो श्रद्धा और विश्वास की शक्ति काम कर रही है, वह एक दिन व्यक्त हो जाएगी और सम्पूर्ण मन को आत्मसात कर लेगी। माला के द्वारा जब इतना काम हो सकता है, तो आदरपूर्वक उसका विचार न करके उसे यों ही साधारण सी वस्तु समझ लेना भूल ही होगी। माला को अशुद्ध अवस्था में पास न रखें। बाएं हाथ से गिनना, लोगों को दिखाते फिरना, पैर तक लटकाए रहना, जहां कहीं रख देना, जिस किसी चीज से बना लेना तथा चाहे जिस प्रकार गूंथ लेना सर्वथा वर्जित है। ऐसी बातें समझदारी और श्रद्धा की कमी से ही होती हैं। विशेषकर उन लोगों से जिन्होंने किसी गुरु से विधिपूर्वक दीक्षा न लेकर माला के विधि-विधान पर विचार ही नहीं किया है।

माला के प्रकार

शास्त्रों में माला के सम्बन्ध में बहुत विचार किया गया है। यहां संक्षेप में माला के बारे में कुछ आवश्यक जानकारी दी जा रही है। माला प्राय: तीन प्रकार की होती है—करमाला, वर्णमाला और मणिमाला।

करमाला —अंगुलियों पर जो जप किया जाता है, वह 'करमाला' कहलाती है। जप दो प्रकार से होता है—एक तो अंगुलियों से ही गिनना और दूसरा अंगुलियों के पर्वों पर गिनना। शास्त्रतः दूसरा प्रकार ही स्वीकृत है। इसका नियम यह है कि अनामिका के मध्यभाग से नीचे की

ओर चले, फिर कनिष्ठिका के मूल से अग्रभाग तक और फिर अनामिका एवं मध्यमा के अग्रभाग पर होकर तर्जनी के मूल तक जाए। इस क्रम से अनामिका के दो, कनिष्ठिका के तीन, पुनः अनामिका का एक, मध्यमा का एक और तर्जनी के तीन पर्व—कुल दस संख्या होती है। मध्यमा के दो पर्व सुमेरु के रूप में छूट जाते हैं। साधारणतः करमाला का यही क्रम है। परन्तु अनुष्ठान भेद से इसमें अन्तर भी पड़ता है। जैसे शक्ति के अनुष्ठानों में अनामिका के दो पर्व, कनिष्ठिका के तीन, पुनः अनामिका का अग्रभाग एक, मध्यमा के तीन और तर्जनी का एक मूलपर्व—इस प्रकार दस संख्या पूरी होती है।

लेकिन श्रीविद्या में इससे भिन्न नियम है। मध्यमा का मूल एक, अनामिका का मूल एक, कनिष्ठिका के तीन, अनामिका और मध्यमा के अग्रभाग एक-एक तथा तर्जनी के तीन—इस प्रकार दस संख्या पूरी होती है। करमाला से जप करते समय अंगुलियां अलग-अलग नहीं होनी चाहिए। थोड़ी-सी हथेली मुड़ी रहनी चाहिए। सुमेरु का उल्लंघन और पर्वों की सन्धि (गांठ) का स्पर्श निषिद्ध है। यह निश्चित है कि जो इतनी सावधानी रखकर जप करेगा, उसका मन अधिकांशतः अन्यत्र नहीं जाएगा। हाथ को हृदय के सामने लाकर, अंगुलियों को कुछ टेढ़ी करके वस्त्र से ढंककर दाएं हाथ से ही जप करना चाहिए।

यदि जप अधिक संख्या में करना हो तो इन दशकों को स्मरण नहीं रखा जा सकता। इसलिए उसको स्मरण करने के लिए एक प्रकार की गोली बनानी चाहिए। लाक्षा, रक्तचन्दन, सिन्दूर और गौ के सूखे कंडे को चूर्ण करके सबके मिश्रण से वह गोली तैयार करनी चाहिए। अक्षत, अंगुली, अन्न, पुष्प, चन्दन अथवा मिट्टी से उन दशकों का स्मरण रखना निषिद्ध है। माला की गिनती भी इनके द्वारा नहीं करनी चाहिए।

वर्णमाला —वर्णमाला में अक्षरों के द्वारा संख्या की गणना की जाती है। यह प्रायः अन्तर्जप में काम आती है, परन्तु बहिर्जप में भी इसका निषेध नहीं है। वर्णमाला के द्वारा जप करने का प्रकार यह है कि पहले वर्णमाला का एक अक्षर बिन्दु लगाकर उच्चारण कीजिए। फिर मंत्र का इस क्रम से—अ वर्ग के सोलह, क वर्ग से प वर्ग तक के पच्चीस, य वर्ग के हकार तक आठ और पुनः एक लाकर—इस प्रकार पचास तक गिनते जाइए; फिर लकार से लौटकर अकार तक आ जाइए; सौ की संख्या पूरी हो जाएगी। क्ष को सुमेरु मानते हुए उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

संस्कृत में त्र और ज्ञ स्वतन्त्र अक्षर न मानकर संयुक्त माने गए हैं। इसलिए उनकी गणना नहीं होती। वर्ग भी सात नहीं, आठ माने जाते हैं। आठवां शकार से प्रारम्भ होता है। इनके द्वारा अं कं चं टं तं पं यं शं की गणना करके आठ बार और जपना चाहिए। ऐसा करने से जप की संख्या 108 हो जाती है। ये अक्षर माला के मणि हैं। इनका सूत्र है—कुण्डलिनी शक्ति। वह मूलाधार से आज्ञाचक्र पर्यन्त सूत्ररूप से विद्यमान है। उसी में ये सब स्वर-वर्ण मणिरूप में गुंथे हुए हैं। इन्हीं के द्वारा आरोह और अवरोह क्रम से अर्थात् नीचे से ऊपर तथा ऊपर से नीचे जप करना चाहिए। इस प्रकार जो जप होता है, वह सद्यः सिद्धिप्रद होता है।

मणिमाला —जिन्हें अधिक संख्या में जप करना हो, उन्हें मणिमाला रखना अनिवार्य होता है। मणि यानी मनिया या माला। इसे 'मणिमाला' भी कहते हैं। यह माला अनेक वस्तुओं की होती है। रुद्राक्ष, तुलसी, शंख, पद्मबीज, जीवपुत्रक, मोती, स्फटिक, मणि, रत्न, सुवर्ण, मूंगा,

चांदी, चन्दन और कुशमूल—इन सभी के मनियों से माला तैयार की जा सकती है। इनमें वैष्णवों के लिए तुलसी और स्मार्त, शैव, शाक्त आदिकों के लिए रुद्राक्ष सर्वोत्तम माना गया है।

माला बनाने में इतना ध्यान रखना चाहिए कि एक चीज की माला में दूसरी चीज न लगायी जाए। विभिन्न कामनाओं के अनुसार भी मालाओं में भेद होता है और देवता के अनुसार भी—उनका विचार अवश्य कर लेना चाहिए। माला के मणि (दाने) छोटे-बड़े न हों। एक सौ आठ दानों की माला सब प्रकार के जपों में काम आती है। यदि ब्राह्मण-कन्याओं द्वारा निर्मित सूत से माला बनायी जाए तो सर्वोत्तम है। शान्तिकर्म में श्वेत, वशीकरण में रक्त, अभिचार में कृष्ण और मोक्ष तथा ऐश्वर्य के लिए रेशमी सूत की माला विशेष उपयुक्त है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लिए क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण के सूत्र श्रेष्ठ हैं। रक्त वर्ण का प्रयोग सभी वर्णों के लोग सब प्रकार के अनुष्ठानों में कर सकते हैं। सूत को तिगुना करके फिर से तिगुना कर देना चाहिए। प्रत्येक मणि को गूंथते समय प्रणव के साथ एक-एक अक्षर का उच्चारण करते जाना चाहिए—जैसे 'ॐ अं' कहकर प्रथम मणि तो 'ॐ आं' कहकर दूसरी मणि। बीच में जो गांठ देते हैं, उसके सम्बन्ध में विकल्प है। चाहें तो गांठ दें और चाहें तो न दें। दोनों ही बातें ठीक हैं। माला गूंथने का अपना इष्टमंत्र भी है। अन्त में ब्रह्मग्रन्थि देकर सुमेरु गूंथें और पुनः ग्रन्थि लगाएं। स्वर्ण आदि के सूत्र से भी माला पिरोई जा सकती है।

रुद्राक्ष के दानों में मुख और पुच्छ का भी भेद होता है। मुख कुछ ऊंचा होता है और पुच्छ नीचा। माला गूंथते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि दानों का मुख अथवा पुच्छ परस्पर मिलता जाए। यदि गांठ देनी हो तो तीन फेरे अथवा ढाई फेरे की लगानी चाहिए। ब्रह्मग्रन्थि भी लगा सकते हैं। इस प्रकार माला का निर्माण करके उसका संस्कार करना चाहिए।

माला संस्कार विधि

माला संस्कार के लिए पीपल के नौ पत्ते लाकर एक को बीच में और आठ को अगल-बगल इस ढंग से रखें कि वह अष्टदल कमल-सा मालूम हो। बीच वाले पत्ते पर माला रखें और 'ॐ अं आं' इत्यादि से लेकर 'हं क्षं' पर्यन्त समस्त स्वर-वर्णों का उच्चारण करके पंचगव्य द्वारा उसका क्षालन करें। फिर 'सद्योजात' मंत्र पढ़कर पवित्र जल से उसको धो डालें। 'सद्योजात' मंत्र इस प्रकार है—

ॐ सद्योजाते प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवेनाति भवे भवस्व मां भवोद्‌भुवाय नमः ।

इसके पश्चात् वामदेव मंत्र से चन्दन, अगर, गन्ध आदि के द्वारा घर्षण करें। वामदेव मंत्र निम्नलिखित है—

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमः ।

बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ।

तत्पश्चात् निम्नलिखित अघोर मंत्र से धूपदान करें—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशवेभ्यो नमस्ते अस्तु

रुद्ररूपेभ्यः ।

तदनन्तर निम्नलिखित तत्पुरुष मंत्र से लेपन करें—

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

इसके पश्चात् एक-एक दाने पर एक-एक बार अथवा सौ-सौ बार ईशान मंत्र का जप करना चाहिए। ईशान मन्त्र यह है—

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो अधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ।

फिर माला में अपने इष्टदेवता की प्राण-प्रतिष्ठा करें। प्राण-प्रतिष्ठा की विधि पूजा के प्रकरण में देखी जा सकती है। इसके बाद इष्टमंत्र से सविधि पूजा करके निम्न प्रार्थना करनी चाहिए—

माले माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणि । चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।।

यदि माला में शक्ति की प्रतिष्ठा की हो तो इस प्रार्थना के पहले 'ह्रीं' जोड़ लेना चाहिए और रक्त वर्ण के पुष्प से पूजा करनी चाहिए। वैष्णवों के लिए माला-पूजा का मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ऐं श्रीं अक्षमालायै नमः।

अकारादि क्षकारान्त प्रत्येक वर्ण से पृथक-पृथक पुटित करके अपने इष्टमंत्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए। इसके पश्चात् एक सौ आठ आहुति हवन करें अथवा दो सौ सोलह बार इष्टमंत्र का जप कर लें। उस माला पर दूसरे मंत्र का जप न करें। स्वयं हिलें नहीं और माला को हिलाएं नहीं। आवाज नहीं होनी चाहिए और माला हाथ से छूटकर नहीं गिरनी चाहिए। माला का टूटना मृत्यु ही है—ऐसा समझकर निरन्तर सावधान रहना चाहिए। उसे बड़े आदर से पवित्र स्थान में रखना चाहिए और निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिए—

ॐ त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता । तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते ।।

ऐसी प्रार्थना करके माला को गुप्त रखना चाहिए। अंगुष्ठ और मध्यमा के द्वारा जप करना चाहिए तथा तर्जनी से माला का कभी स्पर्श नहीं करना चाहिए। सूत पुराना हो जाए तो फिर से गूंथकर सौ बार जप करना चाहिए। यदि माला प्रमादवश हाथ से गिर पड़े अथवा निषिद्ध स्पर्श हो जाए तो भी सौ बार जप करना चाहिए। टूट जाने पर फिर गूंथ कर पूर्ववत् सौ बार जप करना चाहिए। माला के इन नियमों में सावधानी बरतने से शीघ्र ही सिद्धि लाभ होगा, इसमें संदेह नहीं।

माला के संस्कार की एक अन्य प्रक्रिया है जिसका 'कल्पद्रुम आगम' में उल्लेख हुआ है। भूतशुद्धि आदि करके माला में विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश का आह्वान करके पूजा करनी चाहिए। फिर माला को पंचगव्य में डालकर **ऊं हे सौः** मंत्र से निकालकर उसको सोने के पात्र में रखें। उसके ऊपर पंचामृत के नियम से दूध, दही, घी, मधु और शीतल जल से स्नान कराएं। इसके पश्चात् चन्दन, कस्तूरी और कुंकुम आदि सुगन्ध द्रव्यों से माला को लिप्त करें। फिर **हे सौः** मंत्र का एक सौ आठ बार जप करें। इसके पश्चात् माला में नवग्रह, दिक्पाल और गुरुदेव की पूजा करके उस माला को ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार की माला ही प्रत्येक क्षण भगवान् का स्मरण दिलाती रहती है। साधक को माला की आवश्यकता, उसके भेद, निर्माण पद्धति,

संस्कार और प्रायश्चित जानकर उनके अनुसार अनुष्ठान करना चाहिए।

विभिन्न मुद्राएं

भोगी मनुष्यों ने तन्त्र की पवित्र साधना को अपनी वासनापूर्ति का साधन बनाकर उसे सर्वसाधारण की दृष्टि में निन्दनीय बना दिया है, परन्तु वास्तव में तन्त्र के समान ज्ञान-विज्ञान सम्मत साधनपद्धति कोई दूसरी नहीं है। तन्त्रोक्त पंच मकार में मुद्रा सबसे श्रेष्ठ है। सर्वसाधारण में इसका प्रचार भी बहुत कम है। अधिकार भेद से सद्गुरु योग्य शिष्य को इस विद्या का दान करते हैं। मुद्रा में आसन, प्राणायाम, धारणा और ध्यान आदि सभी क्रियाओं का सम्मिश्रण है। मुद्रा की सहायता से जीव सर्वशक्तिमान होकर शिव की पदवी प्राप्त कर सकता है। 'घेरण्ड संहिता', 'शिव संहिता', 'दत्तात्रेय संहिता' और 'ग्रहयामल' आदि ग्रन्थों में मुद्रा का वर्णन मिलता है, परन्तु इनको अनुभवी और पारदर्शी गुरु से ही सीखना चाहिए।

किसी-किसी महापुरुष की कृपा से आसन, प्राणायाम और मुद्रा आदि बहुत ही सहज रूप में अपने-आप होने लगते हैं। मन के शुद्ध और सरल होने पर सभी कुछ हो सकता है। 'घेरण्ड संहिता' के अनुसार मुद्राएं 25 प्रकार की होती हैं— 1. महामुद्रा, 2. नभोमुद्रा, 3. उड्डीयान, 4. जालन्धर, 5. मूलबन्ध, 6. महाबन्ध, 7. महामेध, 8. खेचरी, 9. विपरीतकरणी, 10. योनि, 11. वज्रोली, 12. शक्तिचालिनी, 13. ताड़गी, 14. माण्डवी, 15. शाम्भवी, 16. अधोधारणा, 17. आम्भसी धारणा, 18. वैश्वानरी धारणा, 19. वायवी धारणा, 20. नभोधारणा, 21. अश्विनी, 22. पाशिनी, 23. काकी, 24. मातंगी और 25. भुजंगिनी मुद्रा। ये सभी मुद्राएं योगियों के लिए सिद्धिदायिनी हैं। गुरुकृपा से जब सोयी हुई कुण्डलिनी शक्ति जग जाती है, तब षट्चक्रों में स्थित कमलों और ग्रथियों का भेद हो जाता है। इसीलिए ब्रह्मरन्ध्र के मुख पर स्थित निद्रिता परमेश्वरी कुलकुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए मुद्रा का अभ्यास करना उचित है।

'शिव संहिता' में 10 प्रकार की मुद्राएं बतायी गयी हैं—1. महामुद्रा, 2. महाबन्ध, 3. महाभेद, 4. खेचरी, 5. जालन्धरबन्ध, 6. मूलबन्ध, 7. विपरीतकरणी, 8. उड्डीयान, 9. वज्रोली और 10. शक्तिचालन। इन सभी मुद्राओं का एकमात्र आधार कुलकुण्डलिनी शक्ति है। इस शक्ति के जाग्रत होने पर षट्चक्र का भेद हो जाता है और सुषुम्ना के मार्ग से प्राणवायु का सुखपूर्वक आना-जाना होने लगता है। बिना किसी अवलम्बन के चित्त स्थिर हो जाने पर काल को वंचित किया जा सकता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इसलिए चित्-शक्ति को जगाने के निमित्त बड़ी चेष्टा के साथ मुद्रा का अभ्यास करने की खास जरूरत है। ये मुद्राएं सिद्धों को बड़ी प्रिय और मरुद्गणों के लिए दुर्लभ हैं। रत्नों की पिटारी की तरह इनको छिपाकर रखना चाहिए।

महामुद्रा

महामुद्रा के विषय में 'शिव संहिता' में लिखा है कि गुरु के उपदेशानुसार बाएं टखने से योनिमण्डल (गुदा एवं उपस्थ के बीच का स्थान) को दबाकर और दाएं पैर को फैलाकर दोनों हाथों से पकड़ लें। फिर शरीर के नवों द्वारों को संयत करके छाती के ऊपरी भाग पर ठुड्डी को लगा दें और चित्त को चैतन्यमार्ग में अर्पित करके कुम्भक द्वारा वायु को धारण करें। इस मुद्रा का पहले बाएं अंग में अभ्यास करके फिर दाएं में करें और अभ्यास करते मन को रोककर उसी

नियम से प्राणायाम करते रहें।

इस मुद्रा से देह की सारी नाड़ियां चलने लगती हैं। जीवनी-शक्तिस्वरूप, शुक्र जीवन को आकर्षण करके स्तम्भित हो जाता है, सारे रोग मिट जाते हैं तथा शरीर पर निर्मल लावण्य छा जाता है। बुढ़ापा और मृत्यु का आक्रमण नहीं हो पाता। मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है। मनुष्य जितेन्द्रिय होकर दुष्कर भवसागर से पार हो जाता है। यह साधन बहुत गुप्तरूप से करना चाहिए और हर किसी को इसे नहीं बताना चाहिए।

खेचरी मुद्रा

खेचरी मुद्रा में जीभ के निचले हिस्से में जिह्वा मूल के साथ और जीभ के साथ जो नाड़ी जुड़ी है, उसे काटकर जीभ के उस निचले भाग पर जीभ के अग्रभाग को सदा चलाते रहना चाहिए तथा मक्खन से जीभ का दोहन करके लोहे की शलाका से उसे खींचना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करने से जीभ लंबी हो जाती है। जीभ को इतनी लंबी कर लेना चाहिए जिससे उसके द्वारा दोनों भौंहों के बीच में सहज ही स्पर्श किया जा सके। जीभ को क्रम से तालु के बीच में ले जाना चाहिए। तालु के बीच में स्थित गड्ढा, जिसे कपाल कुहर कहते हैं, में जीभ को ऊपर की ओर उलटा कर घुसा देना चाहिए और दोनों भौंहों के बीच में दृष्टि जमानी चाहिए। इसे 'खेचरी मुद्रा' कहते हैं।

विपरीतकरणी मुद्रा

इस मुद्रा में नाभि के मूल में सूर्य नाड़ी और तालु के मध्य में चन्द्र नाड़ी स्थित होती है। नाभि स्थित सूर्य नाड़ी सहस्रार-कमल से निकली हुई अमृतधारा का पान करती है। इसी से मनुष्य को मृत्यु के वश में होना पड़ता है। यदि तालु के मूल में स्थित चन्द्र नाड़ी द्वारा योगी उस सुधाधारा को पी सके तो उसे मृत्यु के वश नहीं होना पड़ता। अतएव योग के द्वारा सूर्य नाड़ी को ऊपर और चन्द्र नाड़ी को नीचे ले जाना चाहिए। इसका उपाय यह है कि मस्तक को जमीन पर रखकर दोनों हाथ उसके नीचे दोनों ओर लगा दें और दोनों पैरों को सीधे ऊपर उठाकर कुम्भक करते रहें। यह विपरीतकरणी मुद्रा है।

योनिमुद्रा

पहले सिद्धासन में बैठकर दोनों अंगूठों से दोनों कान, दोनों तर्जनी से दोनों आंखें, दोनों मध्यमा से दोनों नाकों के छिद्र और दोनों अनामिकाओं से मुंह को बन्द कर देना चाहिए। काकी मुद्रा द्वारा प्राणवायु को खींचकर अपानवायु के साथ मिला देना चाहिए। देहस्थित चक्रों का ध्यान करके 'हुं' और 'हंस'—मन्त्रों द्वारा सोयी हुई कुण्डलिनी को जगाना चाहिए। साथ ही जीवात्मा के साथ युक्त कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रदल-कमल पर ले जाकर ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि 'मैं स्वयं शक्तिमय होकर शिव के साथ नाना प्रकार विहार कर रहा हूं।'

अब दृढ़ चित्त से यह चिन्तन करना चाहिए कि शिव-शक्ति के संयोग से आनन्दस्वरूप होकर मैं ही ब्रह्मरूप में स्थित हूं। इसी का नाम योनिमुद्रा है। यह देवताओं के लिए भी दुर्लभ और अत्यन्त गोपनीय है। इस मुद्रा का एक बार साधन करने पर सिद्धि प्राप्त हो जाती है और साधक

अनायास ही समाधिस्थ हो सकता है।

शाम्भवी मुद्रा

दोनों भौंहों के बीच में दृष्टि जमाकर संयत मन से ध्यान द्वारा परमात्मा का दर्शन करना चाहिए। इसे 'शाम्भवी मुद्रा' कहते हैं। यह सभी तन्त्रों में गोपनीय है। वेद, पुराण आदि सर्वत्र प्रकाशित है, किन्तु यह मुद्रा कुलकामिनी की भांति अत्यन्त गोपनीय है। दृष्टान्तस्वरूप यहां पांच मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। जो लोग इस विषय के बारे में विस्तार से जानना और अभ्यास करना चाहें, उन्हें उपयुक्त अनुभवी गुरु का आश्रय लेना चाहिए। केवल पढ़कर मनमाने ढंग से कुछ भी नहीं करना चाहिए। पहले-पहल मोटी दृष्टि से ये मुद्राएं कुछ अस्वाभाविक सी लग सकती हैं; परन्तु मनुष्य का जीवन स्वभाव से इतना दूर चला गया है कि देह और मन को स्थिर करके बहिर्मुखी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने के लिए अनुशासन की बड़ी आवश्यकता है।

जीवन की स्वाभाविक गति और प्रेरणा से शक्तिसंचय करके सारी शक्ति को भगवान् के श्रीचरणों में समर्पित कर देने पर वे कृपा करके वांछित फल प्रदान करते हैं। सार बात है—उनके (भगवान् के) साथ हमारा जो अन्तर का सम्बन्ध है, उसे खोज निकालना। ईश्वर के साथ जीव का सम्बन्ध नित्य है जो अनादिकाल से चला आया है। उस व्यक्तिगत आन्तरिक सम्बन्ध को जानकर तथा अनन्य भाव से उन्हें अपना निजजन मानकर अपने प्रतिदिन के जीवनकेंद्र में यदि हम उन्हें बैठा लें तो उनकी परमकृपा सहज ही प्राप्त हो सकती है। इस कृपा के सामने मुक्ति भी तुच्छ है।

चैतन्यशक्ति जड़शक्ति के अतीत है। यह शक्ति स्थिर भी है और चंचल भी। स्थिर अवस्था ज्ञानमय शिव है और चंचल अवस्था क्रियाशीला शक्ति। शिव और शक्ति सृष्टि के आधार हैं; जगत के पिता-माता हैं। साधक अपनी रुचि और संस्कार के अनुकूल उनके साथ कोई-सा भी सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। उस सम्बन्ध को लेकर मुद्रा आदि का अभ्यास करने पर भगवान् की कृपा से ज्ञान और शक्ति का अधिकारी होकर वह शीघ्र ही पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

उपासना रहस्यम्

आध्यात्मिक जगत में किसी भी विद्या की साधना अथवा इष्ट का सान्निध्य प्राप्त करना ही उपासना का तात्पर्य है। संसार में मनुष्य अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार अवस्था और व्यवस्था देखकर अपने-अपने उद्देश्य स्थिर कर लेते हैं। इसीलिए इस त्रिगुणात्मक संसार में मनुष्यों के भिन्न-भिन्न उद्देश्य होते हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए वे नाना प्रकार की साधनाएं करते हैं। कभी-कभी वे अपना उद्देश्य तो कुछ और ही बनाते हैं, लेकिन उनकी उपासना उन्हें अन्यत्र ले जाती है। प्रकृति के इस अज्ञात, अलक्षित प्रभाव को मनुष्य नहीं समझता। जब उसको स्वनिर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती, तब वह उस अप्राप्ति के लिए किसी न किसी को दोषी ठहराता है।

अज्ञानी प्राणी यह नहीं देखता या समझता कि वस्तुतः दोष है उसी के अज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान का, जो उसे अपनी प्रकृति को समझने नहीं देता। फिर वह यह भी नहीं सोचता कि दैवी शक्ति सभी के अंतर में है— ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुपन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया अर्थात् सबके ऊपर, सबके भीतर एक ऐसी अदृश्य प्रबल शक्ति है, जो प्राणियों को स्वसंकेतानुसार घुमाती रहती है। विवश होकर मनुष्य को कठपुतली की तरह नाचना

पड़ता है। इसीलिए उद्देश्य स्थिर करने के पूर्व मनुष्य को खूब सोचना-विचारना चाहिए। यथार्थ उद्देश्य को स्थिर कर लेने पर भी वह उद्देश्य कभी कर्म-वैगुण्य, कभी कर्तृ-वैगुण्य, कभी साधन-वैगुण्य—इस प्रकार कभी एक वैगुण्य से, कभी दो वैगुण्यों से और कभी तीन वैगुण्यों से सिद्ध नहीं होता।

उद्देश्य ठीक हो, साधन भी ठीक हो और कर्ता सावधान रहे, तो साधना सफल समझें। संसार के समस्त उद्देश्यों का समावेश धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चार तत्त्वों में समझिए। एक-एक के भेद करने बैठें तो अल्पज्ञ प्राणी इनका अन्त नहीं पा सकता, पर उपर्युक्त चार में सब आ जाते हैं। इसलिए यदि उपर्युक्त चार में एक उद्देश्य हो, दो हों, तीन हों अथवा चारों हों तो उनके साधना-प्रकार भी भिन्न-भिन्न होंगे, यह स्पष्ट है।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ।।
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ।।

साधना के लिए—उत्तम अधिष्ठान चाहिए। उत्तम सावधान कर्ता चाहिए। उपयुक्त उपकरण चाहिए। उपयुक्त विधि प्रयत्न चाहिए। इन सबसे बढ़कर दैव की अनुकूलता चाहिए, जिसके बिना प्रथम चार व्यर्थ हो जाते हैं। जब यह तत्त्व की बात है, तब जो मूर्ख अपने अज्ञान एवं मिथ्या ज्ञान से यही समझ बैठता है कि सब कुछ मैं ही करने वाला हूं—वह दुर्मति यथार्थ रीति से न कुछ देखता है, न समझता है।

साधना क्या है

साधना के बारे में विद्वानों का मत है कि सब प्रकार के उपकरण प्राप्त हो जाने पर उनके द्वारा उद्देश्य की प्राप्ति की ओर बढ़ना ही स्थूल रूप से साधना है। लेकिन उस साधना में भक्ति भी परम आवश्यक है, जिसके बिना न साधना चलती है, न आगे बढ़ती है, प्रत्युत ठप-सी हो जाती है। संसार की साधारण से साधारण इच्छाओं की पूर्ति में भी जब इतनी-इतनी विघ्न-बाधाएं आ जाती हैं, तब उच्चतम उद्देश्यों की प्राप्ति में क्या होता होगा? इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। ययाति जैसे महाराज को भी अन्त में हारकर कहना अथवा मानना पड़ा था—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णत्मेंव भूय एवाभिवर्द्धते ।।

अर्थात् कभी किसी ने अग्नि में घृत डालकर उसको बुझाने में सफलता नहीं प्राप्त की। सदाशिव का नाम ही एकमात्र जगत में सर्वशरणों में श्रेष्ठ है।

सबसे पहले धर्म के तत्त्व को ही समझना कठिन होता है तो उस पर चलना कितना कठिन होगा—स्वयं अनुमान लगाया जा सकता है। यह एक तलवार की धार पर चलने के समान है। इसी प्रकार सांसारिक भोगों में लिप्त होने का भी यही भाव है, इनसे मनुष्य का उद्धार कभी नहीं हो पाता। काम के संकुचित अर्थ न किए जाएं तो अर्थ भी उसी में आ जाता है। अब रही मोक्ष की बात तो जिन्होंने योग दर्शन का सूक्ष्म अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि मोक्ष की साधना

कितनी कठिन है। वह किसी को एक जन्म में सिद्ध हो जाए तो समझ लेना चाहिए कि पूर्वजन्म का कोई तीव्र पुण्य फल था, नहीं तो वह अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् की बात हो जाती है।

साधना शब्द बहुत व्यापक अर्थ रखता है। अ-आ, इ-ई से लेकर पूर्ण विद्वान, महामहोपाध्याय बनने तक जो भी श्रद्धायुक्त कर्म हैं, वे सभी साधना में आ जाते हैं। चित्तवृत्ति निरोध से लेकर कैवल्य प्राप्ति तक जो भी करना पड़ता है, सब साधना में समाहित है। परन्तु सात्विक प्रधान भावना से ओतप्रोत सच्ची साधना आध्यात्मिक वातावरण में जन्म लेती है, पलती है, पुष्ट होती है, पनपती है, खेलती है, कूदती है तथा आमोद-प्रमोद करती है।

राजसी सधना संसार के मिश्रित वातावरण में उत्पन्न होती है। वह कभी मुरझाती है, कभी खेलती है, कभी हंसती है, कभी रोती है, कभी अन्धकार में ठोकरें खाती है और कभी प्रकाश में खिल उठती है। लेकिन तामसी साधना तो यही नहीं समझ सकती कि वह कहां है, क्यों है और उसका क्या करना है। वह दिखने में सबसे अच्छी है, पर वैसे सबसे बुरी है। साधना का उद्देश्य-सात्विक, कर्ता-सात्विक, साधन-तदनुरूप सात्विक, कर्म-तदनुरूप सात्विक तथा श्रद्धा-तदनुरूप सात्विक होनी चाहिए। तब साधना फलती-फूलती है और करने वाले को आनन्द देती है। संसर्ग में आने वालों को हर्षाती है। पूर्णरूप से फलने-फूलने पर संसार को भी नीचे के वातावरण से ऊपर उठाती हुई एक अनिर्वचनीय आनन्द देती है। बस, फिर उस आनन्द की व्याख्या नहीं हो सकती।

उपनिषदों में नाना प्रकार के आनन्दों की व्याख्या है—मनुष्यों का आनन्द, चक्रवर्ती राजा का आनन्द, देवों का आनन्द और उच्चकोटि के देवों का आनन्द। सबसे बड़ा आनन्द मोक्षानन्द है, जिसके एक बिन्दु में वह आनन्द होता है। उसकी तुलना संसार के समस्त अमूल्य पदार्थों के आनन्द से भी नहीं की जा सकती। वह मनुष्य धन्य है तथा उसका कुल, जाति और देश भी धन्य है जो संसार से ऊपर उठा हुआ, पाप-पुण्य से ऊपर उठा हुआ, उत्पन्न हो जाए। भारतवर्ष धर्मभूमि है, पुण्यभूमि है। इसकी ऋषि-मुनि-महर्षि परम्परा में ऐसे महापुरुष सदा होते रहे हैं।

ऐसे महर्षियों से ही भारतवर्ष का सिर संकटपूर्ण एवं हीन दशा में भी उसी मधुविद्या के कारण, उसी ब्रह्मविद्या के कारण, उन्हीं नाना प्रकार के साधन और साधनाओं के कारण, उन्हीं सिद्ध-साधक महापुरुषों के कारण, उन्हीं सायुज्य, सालोक्य, समीप्य पदों के कारण तथा उसी कैवल्य पद के कारण अब भी संसार में सबसे ऊंचा उठा हुआ है। यही नहीं, अपितु जहां ऐसे महापुरुष बैठ-बैठकर तपस्या-साधन कर गए, हिमालय की वे पवित्र अधित्यकाएं, उपत्यकाएं एवं गुफाएं भी अब तक संसार में अपना सिर ऊपर उठाए हुए हैं।

साधना, साध्य एवं साधक का आत्मीकरण

साधक, साधना और साध्य का परस्पर वही सम्बन्ध है जो ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय का है। साधक भक्त है, साधना उसकी भक्ति है और साध्य उसका आराध्य भगवान् है। साधना के इच्छुक साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षता से सम्पन्न हो तथा सांसारिक विषय-वासना, राग-द्वेष, काम, क्रोध, मोह आदि के कीचड़ से बाहर निकल गया हो। इसमें सन्देह नहीं कि इनसे बाहर निकलना भी एक महान साधना है, जिसमें

बहुत थोड़े व्यक्ति ही सफल हो सकते हैं।

साधक के हृदय में साध्य की प्राप्ति के लिए इतनी अधिक उत्कट अभिलाषा होनी चाहिए, जिसके सामने सभी सांसारिक इच्छाएं एवं अभिलाषाएं समाप्त हो जाएं। प्रायः कहा जाता है कि साधक के हृदय में साध्य की प्राप्ति के लिए उसी प्रकार की अभिलाषा होनी चाहिए, जैसे किसी युवती के हृदय में अपने प्रियतम को प्राप्त करने के लिए होती है। परंतु मैं समझता हूं कि साधक के हृदय में इससे भी अधिक उत्कट अभिलाषा का होना आवश्यक है। ऐसी अभिलाषा, जो हृदय में साध्य की प्राप्ति के लिए बेचैनी और तड़प पैदा कर दे, जिससे साधक साध्य के ध्यान में ही पागल हो जाए, सिद्धि का परम लक्षण है।

एक बार किसी शिष्य ने अपने गुरुजी से पूछा—महाराज! भगवान् की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? गुरुजी ने कहा—बाद में बताऊंगा। थोड़ी देर बाद दोनों नदी में स्नान करने गए। जब शिष्य स्नान करने के लिए नदी के मध्य में पहुंचा तो गुरुजी ने उसके सिर पर जोर से पैर रखकर पानी के नीचे दबा दिया। इस घटना से शिष्य घबरा गया और छटपटाने लगा। बहुत प्रयत्न करने के पश्चात् वह पानी के बाहर निकल सका।

उस समय उससे गुरुजी ने पूछा—जिस समय तुम पानी में डूब रहे थे, तुम्हारे हृदय में केवल पानी से बाहर निकलने की इच्छा थी। शिष्य ने कहा—आपने ठीक ही कहा गुरुजी! उस समय मैं वास्तव में उसी के लिए तड़प रहा था। मुझे किसी अन्य वस्तु या बात का जरा भी ध्यान नहीं था। गुरुजी ने कहा—बस, जब इस प्रकार की उत्कट अभिलाषा और छटपटाहट भगवान् की प्राप्ति के लिए होती है, तभी भगवान् की प्राप्ति हो सकती है।

इस प्रकार उत्कट अभिलाषा के अतिरिक्त साधक को साध्य तक पहुंचने के लिए तीव्र संकल्पभावना या मन्त्राश्रय की आवश्यकता है। वह मंत्र के मोहन, वशीकरण आदि प्रयोगों द्वारा अथवा केवल एक ही मंत्र का दृढ़ विश्वास से जप करता हुआ सफल हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि साधक 'ओम्' महामंत्र का जप करता हुआ अपने हृदय में यह ध्यान करता रहे कि मैं अ-उ-म्, सत्-चित् आनन्द हूं। मैं स्थूल-सूक्ष्म कारण, मन-बुद्धि-अहंकार, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, प्राण-अपान-उदान-व्यान-समान से परे साक्षी सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्ण ब्रह्म हूं। काम, क्रोध और मोह मुझ तक पहुंच भी नहीं सकते। मैं सर्वप्रकाश, सर्वज्ञान और सर्व आनन्द का घर हूं। मैं दृश्य और द्रष्टा से परे हूं, प्रकृति का अधिष्ठाता हूं। सोऽहम्, सोऽहम्—मैं भगवान् ही हूं और कुछ नहीं—ऐसा मन्त्राश्रय लेकर इस प्रकार की भावना करता हुआ साधक साध्य तक पहुंच सकता है।

साध्य तक पहुंचने के लिए एकवृत्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। साध्य की प्राप्ति के लिए साधक की दृष्टि होनी चाहिए। उसके लिए संसार की सारी क्रियाएं एवं सारी घटनाएं शून्य हो जानी चाहिए। उसके सम्मुख साध्य के अतिरिक्त किसी भी वस्तु का चित्र नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार लक्ष्य तभी बेधा जा सकता है जब तीर चलाने वाला, तीर और लक्ष्य बिल्कुल एक सीध में हों, इसी प्रकार साधक, साधना एवं साध्य में भी एकवृत्ति होना अत्यन्त आवश्यक है। जिस समय साधक अपने अन्तर्गत साध्य के लिए उत्कट अभिलाषा और तड़प पाए, जिस समय उसे मंत्र एवं मंत्रेश्वर का ऐक्य प्रतीत हो, जिस समय उसे अपने में, साधना में तथा साध्य में एक ही वृत्ति दिखायी दे, उस समय उसे समझ लेना चाहिए कि अब वह और साध्य एक हो गए हैं, जीव ब्रह्म में मिल गया है, भक्त को भगवान् शिव ने अपना लिया है।

साधनाओं में गोपनीयता का महत्व

समस्त साधनाओं के विषय में उपनिषदों एवं वेदों का एक ही मत है कि इन्हें सदैव गुप्त रखना चाहिए। उसे प्रकट करने का निषेध किया गया है। इस सम्बन्ध में कहा गया है— गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः । त्वयापि गोपितव्यं हि न देयं यस्य कस्यचित् । इन शब्दों में साधना को प्रकट करने का निषेध है, किन्तु साथ ही यह भी कहा गया है कि ये साधनाएं भोग-मोक्ष देने वाली, जीव और ब्रह्म को एक बनाने वाली तथा आवागमन के बन्धन से मुक्त करने वाली हैं। इनसे बढ़कर प्राणियों का हितकर साधन दूसरा नहीं है। इनका तो सर्वसाधारण में इतना अधिक प्रचार करना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति इनसे अपरिचित न रहे। सभी इनसे लाभ उठाकर आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाएं, संसार के दुःखों में न भटककर भगवान् तक पहुंच जाएं।

हमारे शास्त्रों में स्वादिष्ट वस्तु को दूसरों को न देकर स्वयं खा लेने और धन व्यय न करके कंजूस की भांति गाड़ देने को घोर पाप कहा गया है। यदि इतनी साधारण वस्तुओं को दूसरों को न देकर स्वयं उपभोग करने से ही पातक लगता है तो परब्रह्म को प्राप्त कराने वाली विद्या को छिपाने में कितना घोर पातक लगेगा, यह प्रश्न विचारणीय है। धर्मशास्त्रों में साधनाओं को गुप्त रखने का जो आदेश है, उसके दो कारण हैं। प्रथम यह कि जब सामान्य साधना भी जनसाधारण के सम्मुख प्रकट हो जाती है तो लोग साधक का सम्मान करने लगते हैं या यों कहिए कि उससे साधक का यश जनसाधारण में फैलने लगता है। इस प्रकार यश का फैलना साधक के लिए अत्यन्त अहितकर होता है।

तन्त्रों में लिखा है कि यदि जनता को यह ज्ञात हो जाए कि यह व्यक्ति तान्त्रिक साधक है तो उसी दिन तान्त्रिक की मृत्यु समझ लेनी चाहिए। साधना के प्रकट होने पर साधक को जितना ही यश प्राप्त होगा, उतनी ही मात्रा में वह साधना के फल को कम कर देगा। इसीलिए 'बाइबिल' में लिखा है कि ढोल बजाकर दान-पुण्य न करो। जो ढोल बजाकर दान-पुण्य करते हैं, उन्हें उसका फल उसी समय मिल गया, आगे उनके लिए कुछ भी नहीं रहता।

कहते हैं कि ययाति के यज्ञों का फल केवल इतने ही में नष्ट हो गया था कि किसी ने उसको अपने मुख से प्रकट कर दिया था। सर्वसाधारण में यश फैलने से जनता साधक का सम्मान करने लगती है। इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे साधक भी यह समझने लगता है कि मैं अवश्य सम्मान के योग्य हूं। इससे उसके हृदय में सम्मान के प्रति राग बढ़ता है तथा अंततः वह अहंकार का शिकार हो जाता है। यदि किसी व्यक्ति विशेष ने उसी प्रकार का सम्मान न किया तो द्वेष या दुःख होता है। इससे उससे क्रोध उत्पन्न होता है।

इस प्रकार साधक अपनी साधना को प्रकट करके फिर उसी राग-द्वेष, अहंकार, क्रोध आदि के कीचड़ में फंस जाता है, जिससे ऊपर उठने का वह प्रयत्न कर रहा था। राग-द्वेष या अहंकार में फंसना ही साधना को नष्ट करना है। अनेक महर्षियों ने इसका समर्थन किया है कि कोई पुत्र कामना से उसके चरण छूता है तो कोई रोग नाश के लिए और कोई शत्रु नाश के लिए उसकी सेवा करने लगता है, इससे साधना में बाधा आती है।

भीड़ उपस्थित होने से साधना से मन सर्वथा हट जाता है। उचित समय पर उसका अपना कार्यक्रम पूरा नहीं होता। मौनव्रत भंग करना पड़ता है। उसका ध्यान साध्य की ओर न रहकर

उन्हीं लोगों की बातों में लग जाता है। वे सारी सांसारिक बातें होती हैं, इसलिए ध्यान शिव के चरणों में न रहकर सांसारिक बातों में ही रह जाता है। इस प्रकार कई तरह की भावनाओं से प्रेरित होकर साधक कभी-कभी इन सेवा करने वाले व्यक्तियों को कुछ आशीर्वाद दे देता है। यह आशीर्वाद देना साधक के लिए अत्यन्त घातक होता है। यदि उसकी साधना इतनी अधिक हुई कि उसका आशीर्वाद सफल हो गया तो आशीर्वाद का फल उसकी साधना के फल में से काट लिया जाएगा। इस प्रकार उसे अपनी साधना का जो फल मिलना चाहिए था, वह नष्ट होता जाएगा। दूसरी ओर यदि साधना थोड़ी हुई और उससे आशीर्वाद सफल नहीं हुआ तो साधक झूठा कहा जाएगा तथा उसका अपमान-अपयश होगा।

किसी साधक की साधना सुनकर जो बहुत से व्यक्ति उसके पास आते हैं, वे प्रायः कुछ न कुछ साधक के चरणों में चढ़ाते हैं। इनको ग्रहण करने या इन्हें खा लेने से साधक की साधना को बहुत हानि पहुंचती है। 'कुलार्णव तंत्र' में लिखा है— यस्यान्नेन तु पुष्टाङ्गों जपं होमं समाचरेत् । जो व्यक्ति अन्न से पुष्ट होकर जप, होम इत्यादि साधना करता है, उसकी साधना का आधा फल अन्नदाता को मिलता है और आधा उसे (करने वाले को)। इस प्रकार साधक दो रोटियों या सामान्य-सी वस्तुओं के लिए अपनी आधी साधना खो देता है। शेष आधे फल में से कुछ तो ये चरण दबाने, पानी भरने, पंखा झलने आदि सेवा करने वाले लोग छीन लेते हैं और कुछ साधक राग-द्वेष आदि की भावनाओं में आकर स्वयं ही बाकी फल खो देते हैं। इस प्रकार साधक को वर्षों तक साधना करने पर भी कुछ नहीं मिलता।

एक साधु की कथा इस प्रकार आती है जिसने सुनार का अन्न खाने से उसी के घर चोरी की थी। इस प्रकार यदि साधक के पास किसी ऐसे व्यक्ति का अन्न आया जो पाप द्वारा अर्जित किया गया हो तो साधक केवल अपनी साधना का अर्धांश ही नहीं खोएगा, उसकी मति भी भ्रष्ट हो जाएगी। इससे भी अधिक हानि उस समय होती है, जब साधक के पास चेलियां जुटने लगती हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक श्रद्धालु होती हैं और किसी भी व्यक्ति के साधारण आडम्बर पर भी विश्वास कर लेती हैं। यदि उन्हें किसी साधक का पता लग जाए तो किसी न किसी उपाय से उसके पास पहुंच जाती हैं। वे समझती हैं कि बाबाजी धन, पुत्र, सुख आदि सभी इच्छाएं पूर्ण कर सकते हैं जबकि 'गीता' के अनुसार, संग से काम उत्पन्न होता है। इस प्रकार साधकगण साधना एवं साध्य को भूलकर चेलियों को धन, पुत्र, सुख आदि देने लगते हैं। धीरे-धीरे उनका कितना पतन हो सकता है, यह विश्वामित्र-मेनका आदि की कथाओं से ज्ञात हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साधना के प्रकट हो जाने पर साधक को स्वयं कितनी हानि पहुंचती है। इसीलिए तंत्र में कहा गया है कि अपने बाएं हाथ को यह न जानने दो कि तुम्हारा दायां हाथ क्या पुण्य कर रहा है? साधना एक ही से होती है। साधना जब दूसरे व्यक्ति पर प्रकट हो जाती है तो उसी दिन नष्ट हो जाती है। साधना करते हुए साधक को अनेक अत्यन्त विचित्र दृश्य स्वप्न में प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। ऐसी अवस्था में यदि साधक उन्हें गुप्त रख सका तो उन स्वप्नों की परम्परा लगी रहती है। किन्तु यदि उन्हें साधक ने तनिक भी प्रकट कर दिया तो फिर वे दृश्य नहीं दिखायी देते। इससे साधक का उत्साह भंग हो जाता है।

साधना को प्रकट करने से दूसरी हानि यह होती है कि वह अनधिकारियों के पास चली जाती है। बहुत सी साधनाएं इतनी रहस्यमय होती हैं जिनके तत्त्व को समझना अत्यन्त कठिन है।

तांत्रिक या वाममार्गी साधना के रहस्य को तो विरले ही समझ सकते हैं। जब लोग किसी बात को नहीं समझ सकते तो उसकी निन्दा करने लगते हैं। जनता उसका मजाक उड़ाती है, जिसे वह नहीं समझ सकती। इसीलिए साधनाओं में उन्हें गुप्त रखने के लिए कहा गया है।

संत मत्ती के सुसमाचार में कहा गया है कि तुम्हें भगवान् के रहस्यों को जानने की आज्ञा दी जाती है, किन्तु उनको नहीं जो इसके अधिकारी नहीं हैं। प्राचीन ऋषि जब अपने साधकों को दीक्षा देते थे तब वे अग्नि के सम्मुख यह शपथ दिलाते थे कि वे किसी अनधिकारी के सामने इन्हें कभी प्रकट नहीं करेंगे। जो अनधिकारियों के पास प्रकट कर देते हैं, वे उस रहस्य को जानने के सर्वथा अयोग्य हैं। ऐसे अयोग्य व्यक्तियों का इस रहस्य से परिचित होना सारे सम्प्रदाय के लिए हानिप्रद होता है। अनधिकारी लोग साधना के रहस्य से कोई भी लाभ नहीं उठा पाते, बल्कि अधिकारी साधक को हानि पहुंचाते हैं।

अस्तु, आप चाहे कैसी भी साधना करें, उसका महत्व अधिक हो या कम, उसे कभी प्रकट न करें। अन्तर्यामी भगवान् उसे स्वयं ही देख लेते हैं। वे ही उसका फल देने वाले हैं। जनसाधारण तो उसके फल को छीनने वाले हैं। जो कुछ तुम्हें प्राप्त हो चुका है, उसे अपने ही पास गुप्त सुरक्षित रखो, नहीं तो बर्फ जैसी ठंडी अंगुलियां तुम्हारे होंठों को सदा के लिए बन्द कर देंगी। तन्त्रों में स्थान-स्थान पर साधना को योनि के समान दूसरों से गुप्त रखने की आज्ञा दी गयी है। इसका तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार कुलीन स्त्री अपने अंगों को परपुरुषों से छिपाकर केवल अपने पति के पास प्रकट करती है, उसी प्रकार साधक को अपनी साधना दूसरों से छिपाकर केवल हृदय स्थित अपने पति भगवान् के सामने ही प्रकट करनी चाहिए।

साधक को चाहिए कि वह नित्य सावधानी से यह देखता रहे कि उसकी साधना दूसरों पर प्रकट तो नहीं हो रही है। उसकी साधना का फल चुराने के लिए कोई उसके निकट तो नहीं आ रहा है। जानते हुए या अनजाने में वह अपनी साधना को नष्ट तो नहीं कर रहा है। एक सफल तांत्रिक या साधक बनने के लिए यह तथ्य दीपक के तेल के समान आवश्यक है। जिस प्रकार बिना तेल के दीपक धीरे-धीरे बुझ जाता है, उसी प्रकार बिना गोपनीयता के योग या साधना स्वतः क्षीण होकर अन्ततः साधक को नष्ट कर देती है।

साधना एक विज्ञान है

साधना के विषय में तत्त्वज्ञों का मत है कि समस्त आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इष्टसिद्धि तथा सफलता भी एक विज्ञान है। सम्पूर्ण इष्टसिद्धि एवं सफलता इसी क्रियात्मक साधना-विज्ञान पर निर्भर है। यही कारण है कि साधना की छोटी से छोटी प्रक्रिया के दोष से मात्र असफलता ही नहीं मिलती, अपितु कभी-कभी साधक दुर्धर्ष विघ्नों का शिकार भी हो जाता है। यह साधना-विज्ञान मुख्यतः निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है—

साधना का स्वरूप— किसी भी लक्ष्य या उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो स्वाभाविक प्रयत्न किए जाते हैं, उन्हें आम भाषा में 'साधना' कहा जाता है। परन्तु धार्मिक दृष्टि से विशेषतः हिन्दू दृष्टिकोण से उस परम पुरुषार्थ को ही साधना कहते हैं जो आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति के लिए किया जाता है। इस साधना का अर्थ किसी भी प्रकार की क्रिया या कर्म होता है और वस्तुतः यही वास्तविक साधना भी है।

साधना का महत्व— पूर्वकथनानुसार साधना ही असल में प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति कोई उपाय है। यह सफलता की कुंजी है, कवि का कवित्व है और ऋषि का ऋषित्व है; क्योंकि ये सब साधना के ही द्वारा प्राप्त किया जाता है। ऐसे ही मुक्ति-भुक्ति भी साधना का फल है। सत्य यह है कि संसार में प्रत्येक वस्तु या तत्त्व साधना से ही सिद्ध होती है। साधक को साध्य वस्तु साधना द्वारा ही प्राप्त होती है। सारांश यह है कि सब कुछ साधना का ही विषय है।

साधना सौन्दर्य— साधना का सौन्दर्य इसी में है कि वह दिव्य-सौन्दर्यात्मक हो, उसकी प्रत्येक बात अपने दिव्य साध्य की उत्पादक हो, वह स्वयं सत्य, शिव और सौन्दर्यमय हो, हृदय के प्रसुप्त स्वर्गीय सौन्दर्यात्मक भावों तथा विचारों को क्रियात्मक बनाने वाली हो, उसमें दिव्य आध्यात्मिक गन्ध एवं सरसता हो, साथ ही वह अलौकिक माधुर्य और ऐश्वर्य की व्यंजना से व्यंजित हो। उसकी सजीव कर्ममय स्वरलहरी से अनन्त का निनाद निकलता हो, जिससे मानव-मन और हृदय सौन्दर्य के स्वर्ग में परिणत हो जाए, तभी वह वास्तविक साधना कहलाने के योग्य हो सकती है। ऐसी दशा में सहज ही यह बात सामने आती है कि साधना अपने कार्य-कारणात्मक भावों और फलों से पहचानी जाती है। साथ ही वह सच्ची तभी हो सकती है जब उससे दिव्य भाव की प्राप्ति हो। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में योग के अष्टांग अथवा अष्टांग-प्रधान सम्पूर्ण भाव-भावना और क्रिया को साधन माना गया है।

साधना के अंगावयव —साधना के अंगावयव इस प्रकार हैं—

❑ अधिकार —साधना में अधिकार-भेद की अपार महिमा है। अधिकार की परवाह न कर असल में कोई भी साधक साधना द्वारा साध्य को नहीं प्राप्त कर सकता। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य जब, जहां, जिस अवस्था में भी हो, वहीं से अपने लक्ष्य पर पहुंच सकता है; उसे अधिकार और अवस्था-विरुद्ध अन्य मार्ग या सोपान से जाने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए सती 'सतीत्व' से और शूर 'शूरत्व' से ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति प्रत्येक अवस्था, धर्म और काल में अपनी साधना से लाभ उठा सकता है, साधारण से साधारण और विशेष से विशेष दोनों। परन्तु लाभ में दोनों ही समान रहते हैं।

❑ विश्वास —साधना में विश्वास भी अन्यतम साधन है। इसके अनेक कारण हैं, जिनमें मुख्यतः ये तीन हैं—

● विश्वास स्वयं एक दिव्य भाव है। वह त्रिपुटी का कारण और कार्य भी है। साथ ही जिस विश्वास में ज्ञान और प्रेम का पुट है, वह तो दिव्य वस्तु होता है। परन्तु यहां विश्वास का तात्पर्य अन्धविश्वास से नहीं वरन् वास्तविकता से है।

● आधुनिक दृष्टि से भी आत्मविश्वास एक महतो महीयान् तत्त्व है और यही असल में सिद्धि का साधन है। इसी की प्रेरणा से कर्मठ व्यक्ति को इष्टफल प्राप्त होता है। यह वस्तुतः एक मनोवैज्ञानिक रहस्य है।

● परन्तु इसकी योगात्मक व्याख्या विचित्र है। यही वास्तव में विश्वास तत्त्व की आत्मा की साधना है। इसका सुगुप्त रहस्य इस प्रकार है—

विश्वास शब्द 'वि' उपसर्ग और 'श्वास' के योग से बना है। इसका साधारण अर्थ यहां साधक का श्वास रहित होना है, परन्तु इसका योगात्मक अर्थ श्वास अर्थात् इड़ा-पिंगला नाड़ी के साम्य द्वारा संकल्प तथा ज्ञान की विशुद्धि और आत्मैश्वर्य की प्राप्ति है।

❑ गुरु-दीक्षा —साधना गुरु-दीक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि अनेक बार बिना गुरु-दीक्षा के भी किसी बात अथवा आन्तरिक प्रेरणा से या संस्कारों के प्राबल्य से मनुष्य स्वतः सन्मार्ग के द्वारा लक्ष्यबिन्दु तक पहुंच जाता है, फिर भी इसका प्रशस्त राजमार्ग तो गुरु-दीक्षा ही है। दीक्षा में भी मुख्य वस्तु शक्तियों की मंत्र द्वारा जाग्रति और भाव-भावना का उद्बोधन है। सच्चा गुरु मंत्र-शक्ति द्वारा यथाधिकार शिष्य में साधना-विषयक शक्ति का संचार कर देता है। इससे शिष्य फिर स्वतः साधना-पथ पर अग्रसर हो जाता है।

❑ सम्प्रदाय —साधना में साधक का साम्प्रदायिक होना भी आवश्यक है। यहां सम्प्रदाय का अर्थ है—साधना सम्बन्धी वातावरण उत्पन्न करना और सत्सगं का लाभ उठाना। परन्तु इसका सच्चा लाभ तो जन्मान्तरीय संस्कारों के सिद्धान्तानुसार जन्म से वर्ण या जाति मानने पर होता है। इससे वर्ण-जाति के परम्परागत गुण सदैव विकासोन्मुख रहते हैं। इसी प्रकार एक ही परम्परागत सम्प्रदाय में सुदीक्षित होते रहने के भी अनन्त लाभ हैं। इससे भी सम्प्रदायात्मक गुणों के संस्कार स्वतः विकासोन्मुख हो जाते हैं।

❑ मन्त्र-देवता —साधना में देवता का भी विशेष स्थान है। साम्प्रदायिक दृष्टि से मंत्र और देवतात्मक दीक्षा अनिवार्य है, परन्तु मंत्र एवं देवता दो वस्तुएं होती हुई भी एक ही वस्तु हैं। इन दोनों का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये असल में एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं; क्योंकि मंत्र की आत्मा ही देवता और देवत्व का स्थान मंत्र है। देवता असल में मंत्रात्मक ही हैं, इसलिए मंत्र के द्वारा ही देवता का आकर्षण होता है। किन्तु देवता का चुनाव शिष्य के संस्कारानुसार ही किया जाना चाहिए और देवता के अनुरूप ही मन्त्र का चुनाव भी। साधक, देवता और मंत्र—ये एक ही वस्तु के विभिन्न स्तर हैं। इनका समन्वय ही अन्त में साधक को मुख्य ध्येय तक पहुंचा देता है। इस तरह साधक, मंत्र, इष्टदेव, महाशक्ति, परमतत्त्व और मुक्ति आदि सब एक ही विकास के विविध स्तर हैं। यही अन्त में ब्राह्मी स्थिति में परिणत हो जाते हैं।

साधना का मुख्य उद्देश्य— साधना के द्वारा आत्मलाभ होता है और आत्मलाभ से व्यक्ति को सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता प्राप्त हो जाती है। आत्मलाभ के फल से ही अनन्त विभूतियों की प्राप्ति होती है। साधन मुक्ति-परक, आत्म-परक अथवा ब्रह्म-परक है। आप किसी भी सम्प्रदाय पर दृष्टिपात करें, उसमें साधना का अभिप्राय यही मिलेगा। मंत्र-तंत्र के अनुयायियों का विश्वास है कि—

मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते ।
न योगेन बिना मन्त्रो न मन्त्रेण बिना हि सः ।।
द्वयोरभ्याससंयोगो ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ।

अर्थात् मंत्र और उसके अभ्यासरूपी योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है। मंत्र के बिना योग और योग के बिना मंत्र नहीं सधते। दोनों के अभ्यास रूपी संयोग से ब्रह्म की सिद्धि होती है।

साधना के मूल तत्त्व— साधना के मूल तत्त्व तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान हैं। इनसे साधक की शक्ति तथा ज्ञान की वृद्धि होती है। स्वाध्याय की ज्ञान एवं तप की शक्ति बढ़ती है। साथ ही ज्ञान और शक्ति द्वारा साधक परम साध्य तक पहुंच जाता है। परन्तु अभीप्सा ही साधना की मूल भित्ति है, इसी से सब कुछ हो सकता है। ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक की हुई समस्त साधना-आराधना का चरम फल आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति ही है।

साधना का सरल उपाय— साधना में आवरण को हटाने के लिए विघ्नों का सामना करने और अभावों को हटाने की अपेक्षा सद्भावों को उत्पन्न कर उन्हें सुपुष्ट करना ही सिद्धि का सर्वोत्तम उपाय है। इससे विघ्न स्वतः नष्ट हो जाते हैं और अति शीघ्र सफलता हस्तगत हो जाती है; क्योंकि किसी सीधी रेखा को हाथ से छोटी करने की अपेक्षा उसके बराबर एक बड़ी रेखा खींच देना ही ठीक है, उससे वह अपने-आप छोटी हो जाएगी। यही दशा मल, विक्षेप और आवरण की भी है। वे भी सात्विक तत्त्वों के सेवन से अपने आप नाम-शेष हो जाते हैं।

सब कुछ साधनात्मक— हमारे सम्पूर्ण क्रिया-कलाप साधनामय ही हैं। ऐसी दशा में हम कुछ भी करें, कहें या सोचें—सब कुछ साधना ही है। परन्तु इन क्रियाओं का समन्वय साधनात्मक तत्त्वों के साथ होना चाहिए। साथ ही इनमें आवश्यक सामंजस्य भी पर्याप्त मात्रा में हो। ऐसी दशा में प्रत्येक साधना सम्पन्न मार्ग और सम्प्रदाय यथाधिकार पृथक होता हुआ भी एक ही सम्पूर्ण लक्ष्य का प्रदर्शक हो जाता है। यही कारण है कि लता-गुल्म, कीट-पतंग, पशु-पक्षी और देव-मानव—सभी अपनी-अपनी योनि एवं स्थान से कभी-न-कभी अन्तिम लक्ष्य पर पहुंच जोते हैं।

रहस्य रहित रहस्य

साधना में अनेक वर्ष, संलग्न विचार एवं सावधानी का प्रयोग करके मैंने जो कुछ पाया, उससे यही नतीजा निकलता है कि सतत्, सुदृढ़ और अविचल भाव से सत्य का आचरण करना तथा प्रेमभाव व सहानुभूति को बढ़ाए चलना, यही सबसे सुगम, सबसे स्पष्ट और सबसे अधिक अमोघ साधन है। इस बात को सभी शास्त्रों में एकमत से स्वीकार किया गया है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि तुम लोग पहले भगवान् के राज्य और उनके दिव्य गुणों की इच्छा करो। ये सब चीजें तुम्हारे साथ जुट जाएंगी।

योग अथवा अध्यात्म साधना का भी यही सार है। फिर भी यह शिक्षा इतनी स्पष्ट और सुगम है कि सामान्य साधकों की बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है। वे उत्साह के साथ इसे धारण करने में असमर्थ हो जाते हैं। साधनपथ बड़ा विकट है, मन और इन्द्रियों को वश में ले आना हंसी-खेल नहीं—यह सब हम लोग कहा करते हैं। परन्तु जो कुछ कठिन एवं दुस्साध्य है, उसी ओर लोग अपनी प्रवृत्ति के कारण दौड़ते हैं। यदि राह चलते सब रोगों की कोई अचूक, लेकिन मामूली दवा मिलती है तो उस पर हमें विश्वास नहीं होता। हम उस पर हंस देते हैं, उसकी अव्यर्थता पर हमें गहरा सन्देह होता है।

अव्यर्थ शक्ति के साथ प्रतिकूल वेदना और किसी प्रकार की जटिलता का होना जरूरी समझने के हम लोग आदी हो गए हैं। हम लोग बचपन से ही 'सत्य' और 'प्रेम' की प्रशंसा बराबर सुनते आए हैं। इसी अति परिचय के कारण ही उनके वस्तुगत गुणों से हमारी आंखें अन्धी हो गयी हैं। हम लोग समझते हैं कि यह सब बच्चों के लिए भुलावा है, इतनी मामूली सी बात में भला क्या रखा है। परन्तु यदि हम लोग अपने ऋषि-मुनियों के वचनों पर कुछ भी विश्वास रखें, उनके अनुशासनों का पालन करके देखें तो बहुत जल्द ही हमें यह पता चलेगा कि सत्य और प्रेम का आचरण इतना आसान नहीं है जितना कि सामान्यतः इन नामों से सूचित होता है।

यही नहीं, प्रत्युत इनका आस्थापूर्वक पालन करने लग जाइए तो पग-पग पर ऐसी

कठिनाइयां सामने उपस्थित होंगी कि आपके निश्चय और सहिष्णुता की पूरी परीक्षा होगी। आपके उत्तमोत्तम गुण बाहर निकल आएंगे। इस प्रकार उन गुणों का विकास होगा जिन्हें मानव समाज के महान आचार्यों ने मनुष्य की परम सिद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक माना है।

सत्य सीधी-सादी, सबकी समझ में आने वाली चीज है, प्रेम और सहानुभूति भी ऐसी ही है। इनके बारे में कोई बात दुर्बोध नहीं है; कोई गुप्त चीज नहीं है, कहीं से बंद या आच्छादित नहीं है। तथापि ज्यों ही आप इन सत्य और प्रेम को अपने जीवन के सिद्धान्त बना लेंगे, त्यों ही आप यह अनुभव करने लगेंगे कि आपके उत्तमोत्तम कर्मों और गम्भीरतम शक्तियों पर इनका कितना बोझ पड़ता है। इनके लिए आपको अपने सभी विचारों, भावों और कर्मों में बड़ी सावधानी रखनी पड़ेगी। इससे क्रमशः आपके मन की एकाग्र होने की शक्ति खूब बढ़ेगी और वह आत्मसंयम होगा जो सब योग-साधनाओं का चरम लक्ष्य है।

भगवान् का राज्य क्या है? सत्य और प्रेम ही तो उनका राज्य है; सब दैवी गुण उसी राज्य की प्रजा हैं। इस प्रकार सत्य और प्रेम के पथ पर सच्चाई के साथ निरन्तर चलकर आप एक तरफ भगवद्राज्य में पहुंचते हैं और दूसरी तरफ उस भगवद्राज्य को पृथ्वी पर उतार लाते हैं। योग ही सबसे कठिन साधना है, जिसे कहीं मिलन और कहीं समत्व कहकर लक्षित किया गया है। दोनों ही सही अभिधान हैं, पर 'मिलन' अधिक अभिव्यंजक है।

क्या मिलन का सर्वोत्तम उपाय प्रेम नहीं है, जैसे द्वेष बिगाड़ का निश्चितम उपाय है? क्या परमात्मा के साथ सायुज्य अर्थात् उनके स्वरूप के साथ संयोग या मिलन ही हम लोगों के जीवन का परम लक्ष्य नहीं है? क्या सत्य और प्रेम परमात्मा के ही स्वरूप नहीं हैं? यदि प्रेम तथा सत्य एवं सत्य और प्रेम भगवान् के ही स्वरूप हैं और सौन्दर्य तथा आनन्द का उनके हृदय में निवास है तो हम क्यों न इन्हीं सरल-स्वाभाविक गुणों के द्वारा सीधे ही उनके समीप बढ़ चलें? आसन, प्राणायाम, मुद्रा, मंत्र, कुण्डलिनी चक्र और न जाने क्या-क्या के फेर में क्यों पड़ें। इन रास्तों की जोखिम क्यों उठाएं?

योगीजन कहते हैं कि हमारी भगवती माता ही हमें सीधा-सच्चा रास्ता दिखाती हैं, वे ही प्रकृति के रूप में प्रकट हैं और प्रेम तथा सत्य उन्हीं की सन्तान हैं। इसलिए प्रेम और सत्य का स्वागत है। ये ही हमारे रक्षक हैं जो कभी गलत रास्ते पर नहीं जाते। यही चाहे जहां जिसके द्वारा पहचाने भी जाते हैं।

साधना के चार सहायक अंग

ऐसे चार महान सहायक अंग हैं, जिनके एक साथ मिलकर कार्य करने से मनुष्य बहुत शीघ्र योगसिद्ध, योग और साधना से प्राप्त होने वाली पूर्णता को हासिल प्राप्त कर सकता है। उनमें से पहला है शास्त्र—उन सत्यों, सिद्धांतों, शक्तियों और प्रक्रियाओं का ज्ञान। दूसरा सहायक अंग है —उत्साह अर्थात् निर्धारित कार्यप्रणाली के अनुसार धैर्यपूर्वक एवं निरन्तर कार्य करते जाने का दृढ़ भाव तथा हमारे व्यक्तिगत प्रयत्न की शक्ति। इसके बाद तीसरे सहायक हैं—शिक्षक या गुरु, जो हमारे ज्ञान तथा प्रयास को ऊपर उठाकर आध्यात्मिक अनुभव के क्षेत्र में ले जाते हैं—तथा अपने निर्देश, आदर्श जीवन और प्रभाव के द्वारा सहायता पहुंचाते हैं। चौथा है—काल, क्योंकि सभी चीजों में उनकी क्रिया का एक चक्र और दैवी गति का एक निश्चित समय होता है।

शास्त्र

हमारे पूर्णयोग-श्रेष्ठतम शास्त्र हैं सनातन वेद, जो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में गुप्त रूप से उपस्थित हैं। उस सनातन ज्ञान और सनातन पूर्णत्व का कमल हमारे अंदर बंद संकुचित कली के रूप में विद्यमान है। जब एक बार मनुष्य का मन सनातन प्रभु की ओर देखना आरम्भ कर देता है, जब उसका हृदय असीम रूपों के मोहपाश से एकदम मुक्त होकर असीम भगवान् की ओर आकर्षित हो जाता है, तब क्रमशः होने वाली अनुभूतियों द्वारा यह ज्ञान-कमल शीघ्रता से या धीरे-धीरे, एक-एक दल करके विकसित हो जाता है। उसके बाद सारा जीवन, सारे आचार, सारी वृत्तियों के कार्य, ऐसे प्रहार बन जाते हैं जो अन्तरात्मा के आच्छादन को भंग करते हैं और उसके अनिवार्य विकास के मार्ग की बाधाओं को दूर कर देते हैं।

जो 'अनन्त' का वरण करता है, वह 'अनन्त' द्वारा वरण किया जा चुका है। उसने भगवान् का दिव्य स्पर्श अवश्य प्राप्त किया है, क्योंकि उसके बिना आत्मा कभी जाग्रत नहीं हो सकता। सभी भगवान् की ओर उन्मुख नहीं हो सकते और जब एक बार यह स्पर्श प्राप्त हो गया, तब सिद्धि निश्चित है। फिर चाहे यह एक ही मनुष्य जीवन में शीघ्रता से प्राप्त हो या इसके लिए उसे दृश्यमान जगत में अनेक जन्मों तक धैर्यपूर्वक प्रयत्न करना पड़े।

ऐसा कोई ज्ञान किसी की बुद्धि को नहीं सिखाया जा सकता, जो उसके विकासोन्मुख अन्तरात्मा के अंदर पहले से ही गुह्यरूप में विद्यमान न हो। उसी प्रकार मनुष्य अपने बाह्य भाव से जो-जो सिद्धि लाभ करने में समर्थ होता है, वह सब आत्मा के अंदर विद्यमान सनातन पूर्णता की ही उपलब्धि मात्र है। हम भगवान् को जानते हैं और भगवान् हो जाते हैं, क्योंकि हम अपने मूलस्वरूप में 'वही' हैं। जो कुछ शिक्षा हम प्राप्त करते हैं, वह सब हमारे अंदर गुप्त रूप से विद्यमान ज्ञान का ही प्रकाशित होना है। हम जो कुछ होते हैं, अपने गुप्त स्वरूप को ही व्यक्त करते हैं। आत्मोपलब्धि ही रहस्य की वस्तु है, आत्मज्ञान और विकासशील चेतना उसके साधन एवं साधनाक्रम हैं।

साधारणतः इस आत्मप्रकाश का साधन श्रुत शब्द होता है, जिसे 'शब्द ब्रह्म' कहते हैं। यह शब्द अंदर से आ सकता है अथवा बाहर से भी। परन्तु दोनों ही अवस्थाओं में वह केवल हमारे अन्तःस्थित गुप्त ज्ञान को जगाने एवं क्रियाशील बनाने का कारणमात्र होता है। अंदर से आने वाला शब्द अन्तःस्थित अन्तरात्मा का हो सकता है, जो हृदय में गुप्त रूप से रहने वाले जगद्गुरु जगदीश्वर का होता है। विरले ही कोई पुरुष ऐसे होते हैं, जिन्हें इसके अतिरिक्त किसी अन्य सहायक का प्रयोजन नहीं होता। क्योंकि इसके बाद योग में जो कुछ करना बाकी रह जाता है, वह उस अनवरत स्पर्श और पथ प्रदर्शन द्वारा आत्मोद्घाटन करता है। हृत्कमल में निवास करने वाले प्रभु के समुज्ज्वल प्रकाश की शक्ति से ही तब ज्ञानरूपी कमल भीतर से उद्घाटित होता है। ऐसे लोग निश्चय ही महान एवं दुर्लभ होते हैं, जिनके लिए भीतर से प्राप्त होने वाला अमर ज्ञान ही पर्याप्त होता है। उन्हें किसी लिखित ग्रन्थ या गुरु के प्रबल प्रभाव की अधीनता में रहने की आवश्यकता नहीं होती।

साधारण तौर पर साधक को आत्मविकास के कार्य में, बाहर से प्राप्त होने वाले भगवत्प्रतिनिधि स्वरूप शब्द से सहायता लेने की आवश्यकता होती है। यह या तो कोई पुराकालीन शब्द होता है अथवा वर्तमानकालीन किसी गुरु का अधिक शक्तिशाली शब्द। कुछ

साधकों के लिए प्रतिनिधिक शब्द उनकी अन्तःशक्ति को जगाने और व्यक्त करने का केवल एक निमित्त होता है। एक प्रकार से यह सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ प्रभु का प्रकृति के एक सामान्य नियम की मर्यादा रखने जैसा है। उपनिषद् में देवकीपुत्र श्रीकृष्ण के विषय में यह वर्णन आता है कि उन्हें घोर ऋषि से शब्द प्राप्त हुआ जिससे उन्हें ज्ञान हो गया। इसी प्रकार परमहंस श्री रामकृष्ण ने स्वयं अपनी आन्तरिक चेष्टा से केंद्रस्थ ज्ञान का प्रकाश पाने के बाद विभिन्न योगमार्गों की साधना की। विभिन्न मार्गों में उन्हें जिस प्रकार और जिस शीघ्रता से सिद्धि मिलती गयी, उससे यही प्रकट होता था कि उनका गुरु से दीक्षा लेना केवल उस सामान्य नियम की मर्यादा का पालनमात्र था जो शिष्य के लिए गुरु से ही सिद्ध ज्ञान प्राप्त करने का नियम है।

परन्तु सामान्यतः साधक के जीवन में उस प्रतिनिधिक प्रभाव का कार्य बहुत अधिक है। यदि कोई व्यक्ति किसी लिखित शास्त्र अथवा पूर्व के योगियों का अनुभव बताने वाले वचनों के अनुसार योग-साधना करना चाहता है, तो वह केवल अपने प्रयास द्वारा या गुरु से सहायता लेकर कर सकता है। इस हालत में वह उस ग्रंथ के वचनों का मनन निदिध्यासन करके आध्यात्मिक ज्ञान लाभ कर सकता है और उस ज्ञान को अपनी अपरोक्षानुभूति से सजीव एवं चिन्मय बना सकता है। योग का क्रम इसमें यही है कि शास्त्र या परम्परा से जो प्रक्रिया प्राप्त हुई और गुरु के उपदेश से जो बलवती एवं समुज्ज्वलित हुई, उसी प्रक्रिया को करके उसका अनुभव प्राप्त करना और इस तरह आगे बढ़ना। योगाभ्यास की यह पद्धति अवश्य ही कुछ तंग-सी है, पर अपनी मर्यादा के अंदर बहुत निरापद और फलप्रद है। इसमें एक पक्की सड़क से अपने जाने-समझे हुए लक्ष्य की ओर सीधे चले जाना है।

पूर्ण योग के साधक को यह स्मरण रखना होगा कि कोई भी लिखित शास्त्र, चाहे उसका प्रामाण्य कितना ही बड़ा और विचार कितना ही उदार क्यों न हो, सनातन ज्ञान के प्रकाश का केवल एक अंशमात्र है। जो शास्त्र-ग्रंथ गंभीर, विशाल और उदार होगा, उसका परम कल्याणकारी एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव उस पर पड़ेगा। सत्य के उच्चातिउच्च विविध स्वरूपों का प्रकाश पाने और परमानुभूति को प्राप्त करने में शास्त्र का यह प्रभाव उसके अनुभव का संगी होकर रह सकता है। उसका योग साधन किसी एक शास्त्र-ग्रंथ के द्वारा अथवा बारी-बारी से अनेक शास्त्र-ग्रंथों जैसे गीता, उपनिषद् और वेद के द्वारा (यदि उसके संस्कार महान हिन्दू-परम्परा के अनुकूल हों तो) नियत हो सकता है।

दूसरे शब्दों में शास्त्र की साधना का एक उत्तम अंग हो सकता है कि वह उसमें अनेक सद्ग्रंथों के चार तत्त्वों का विविध समृद्ध अनुभव सम्मिलित कर ले और पुराकाल के सर्वोत्तम भाग से भविष्य को सुसमृद्ध बना दे। परंतु अन्त में अधिक अच्छा यही है कि सदा ही तथा आरम्भ से ही उसे स्थित होना चाहिए अपने अन्तरात्मा में। जो 'शब्दब्रह्मातिवर्तते' या अनेक ग्रंथों का साधक नहीं है, वह अनन्त का साधक है।

एक दूसरे प्रकार का शास्त्र होता है, जो श्रुतिस्वरूप न होने पर भी योगविशेष के विज्ञान, साधन, साधकत्व और उसके मार्गक्रम का विवरण समेटे रहता है। साधक जिस किसी योगमार्ग पर चलना चाहे, उसका विवरण उसे इस प्रकार मिलता है। प्रत्येक योगमार्ग का ऐसा एक अपना शास्त्र होता है, चाहे वह लिखित हो या गुरु-परम्परा या गुरुमुख से ही प्राप्त होता रहता हो।

भारतवर्ष में ऐसे लिखित या परम्परागत उपदेशों की साधारणतः बड़ी मान्यता है। लोग उन

पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं। योग का प्रत्येक मार्ग, इस प्रकार, यहां सुनिश्चित माना जाता है। जिन गुरु ने परम्परा से शास्त्र साधना द्वारा उसे अनुभवसिद्ध किया है, वे अपने शिष्यों को उसी पुरातन मार्ग से ले चलते हैं। कोई नवीन साधना, कोई नयी योग शिक्षा, कोई नवीन प्रकार सामने आ जाए तो लोग प्रायः तुरंत यह कह उठते हैं कि यह तो अशास्त्रीय है। परन्तु न तो यह कोई सच बात है, न योगियों का अनुभव ही ऐसा है।

योग को हम लोग लोहे के फाटक से बंद जैसा या पेच से कसा हुआ कोई ऐसा साधन-मार्ग समझ लें, जिसके अंदर कोई नवीन सिद्धांत, नवीन प्रकाश या नवीन विशेष अनुभव प्रवेश ही न कर सके। लिखित या परम्परागत शास्त्र अनेक शताब्दियों का ज्ञान और अनुभव है जो क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित होकर आज नवीन साधक के लिए सुलभ हुआ है। अतः इसकी महत्ता और उपयोगिता बहुत बड़ी है, परंतु साधना में नया परिवर्तन एवं विकास का साधन करने की स्वतंत्रता सदा ही व्यवहार्य है। राजयोग जैसे कसे हुए वैज्ञानिक योग का साधन पतंजलि द्वारा निर्दिष्ट सुव्यवस्थित मार्ग की अपेक्षा भिन्न मार्ग से भी किया जा सकता है। त्रिमार्ग के अन्तर्भूत प्रत्येक मार्ग के कई उपमार्ग हो जाते हैं, जो अन्त में लक्ष्य तक पहुंचने पर पुनः सब मिल जाते हैं। योग का आधारभूत सामान्य ज्ञान से सुनिश्चित है। यह तो होना ही चाहिए, क्योंकि सामान्य ज्ञान स्थिर और सदा एक होने पर भी, साधक की व्यक्तिगत प्रकृति की आवश्यकताओं एवं विशेष प्रवृत्तियों को भी संतुष्ट करना आवश्यक है।

पूर्ण और समन्वयात्मक योग के लिए विशेष रूप से इस बात की आवश्यकता है कि यह किसी लिखित या परम्परागत शास्त्र से न बंध जाए। क्योंकि एक ओर जहां वह भूतकाल से प्राप्त ज्ञान को अपना लेता है, वहीं वह दूसरी ओर वर्तमान और भविष्य के लिए उस ज्ञान को नए रूप में व्यवस्थित करने का प्रयत्न करता है। अतः आत्मनिर्माण के लिए यह आवश्यक है कि उसे अनुभूतियों के क्षेत्र में तथा ज्ञान को नए शब्दों एवं नए रूपों में पुनः निरूपित करने की पूरी स्वतंत्रता हो। चूंकि वह योग समस्त जीवन का अपने अंदर समावेश करना चाहता है, इसलिए इसकी अवस्था उस यात्री की सी नहीं है जो एक राजमार्ग से सीधे अपने गन्तव्य स्थान को जाता है, बल्कि कम से कम उस हद तक ऐसे एक मार्ग ढूंढ़ने वाले पथिक की-सी है जो किसी निर्जन-गहन जंगल के भीतर से रास्ता बनाता हुआ चल रहा हो।

कारण, इधर बहुत काल से योग के साथ जीवन का विच्छेद हो गया है। ऐसे प्राचीन योग साधन जैसे हमारे पूर्वपुरुषों के वैदिक साधन, जो जीवन को अपनाने में प्रयत्नवान थे, अब हमसे बहुत दूर हो गए हैं। जिन शब्दों में उनका वर्णन हुआ है, उनके अर्थों का अब ठीक पता नहीं चलता और जो रूप उन्हें दिए गए हैं, वे अब प्रायः व्यवहार्य नहीं हैं। उस समय से अब तक मनुष्य जाति सनातन काल प्रवाह में बहुत आगे निकल आयी है। इसलिए अब उसी बात को नवीन दृष्टि से देखना और समझना होगा।

इस योग के द्वारा हम केवल असीम भगवान् को प्राप्त करना ही नहीं चाहते, बल्कि उन भगवान् का इस उद्देश्य से आह्वान भी करते हैं कि वे मनुष्य जीवन के अंदर अपने आपको अभिव्यक्त करें। अतएव हमारे योग का शास्त्र ऐसा होना चाहिए, जिसमें योग की इच्छा करने वाले मानव जीवन को अबाधित स्वतन्त्रता प्राप्त हो। मनुष्य चाहे जिस रीति से, चाहे जिस रूप में विश्व पुरुष या विश्वातीत परम पुरुष को ग्रहण करे, ऐसी स्वतन्त्रता होना ही मनुष्य में पूर्ण

आध्यात्मिक जीवन के होने की अनुकूल स्थिति है। सभी धर्मों की एकता ऐसी होगी कि उसके नित्य, नवीन और समृद्ध रूप प्रकट होंगे। मूलगत एकता अपनी पूर्णावस्था को तभी प्राप्त होगी, जब प्रत्येक मनुष्य का अपना-अपना स्वतन्त्र धर्म होगा अर्थात् जब मनुष्य धर्म के साम्प्रदायिक या पारम्परिक रूपों में न अटक कर भगवान् के साथ अपनी प्रकृति का सहज सम्बंध निर्वाह में उसी पूर्ण स्वच्छन्द अनुकूलता का ही अनुसरण करेगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह पूर्ण योग तभी अपनी पूर्णता को प्राप्त होगा, जब प्रत्येक मनुष्य अपने विशिष्ट योगमार्ग का अनुसरण करने में समर्थ होगा अर्थात् वह अपनी प्रकृति की ऊर्ध्व गति का अनुगमन करके ही उसकी तरफ जाएगा, जो प्रकृति के परे है। कारण, स्वतन्त्रता ही परम विधि और परम गति है। परन्तु जब तक मनुष्य उस योग्य नहीं हो जाता, तब तक ऐसी मोटी-मोटी बातें बता देना जरूरी है, जो साधक की विचारधारा और साधना का सम्यक् नियमन करने में सहायक हों।

ऐसी बातें, जहां तक सम्भव हो, सामान्य सिद्धांतों के रूप में, तत्त्वों के एक सामान्य विवरण के रूप में, प्रयत्न और प्रगति के अत्यन्त शक्तिशाली तथा व्यापक निर्देशों के रूप में ही होनी चाहिए। शास्त्र मात्र भूतकाल के अनुभव का फल और भविष्यकाल के अनुभव का सहायक है। इससे सहायता मिलती है और अंशतः पथ-प्रदर्शन भी होता है। यह मार्गों में मार्गदर्शक चिह्न खड़े करता है और प्रधान मार्गों में जाती हुई दिशाओं के नाम बता देता है। इससे साधक को यह पता चलता है कि वह किस ओर और किस मार्ग से जा रहा है। इसके सिवा और जो कुछ है, वह साधक के अपने प्रयत्न एवं अनुभव पर तथा मार्ग बताने वाले की शक्ति पर निर्भर करता है।

उत्साह

साधना की प्रारम्भिक अवस्था में और बाद में भी बहुत काल तक आध्यात्मिक अनुभव का शीघ्र होना, उसकी प्रचुरता, उसके परिमाणों की तीव्रता और शक्ति—ये सब मुख्यतः साधक की अभीप्सा एवं वैकल्पिक चेष्टा पर अवलम्बित रहता है। योग-साधना का अर्थ तो यही है कि उसकी अहंभावापन्न चेतना, जो विषयों के बाह्य रूपों और उनके मोह में डूबी रहती है, अपनी इस अहंता से मुंह फेर ले तथा चैतन्य की उस उच्च स्थिति के सम्मुख हो जाए, जिसमें विश्वचैतन्य एवं विश्वातीत परमचैतन्य मनुष्य के वैयक्तिक आधार में उतरकर उसे रूपान्तरित कर सकते हैं। अतएव सिद्धि की सबसे पहली सीढ़ी इस जगत के विषयों से दृढ़तापूर्वक पीछे हटना और अन्तर्मुख होना है। इस दृढ़ता की ठीक पहचान हृदय की अभीप्सा के बल से, संकल्प की शक्ति से मन की एकाग्रता से और साधना में लगी हुई शक्ति के अध्यवसाय एवं तीव्रता से ही होती है। उत्तम साधक का भाव ऐसा होना चाहिए कि भगवान् के लिए मेरा उत्साह मुझे खा गया। भगवान् के लिए इस प्रकार का जो उत्साह है, समस्त प्रकृति की अपने दिव्य पर्यवसान के लिए जो व्याकुलता है, भगवत्प्राप्ति की हृदय में जो छटपटाहट है, वह अहंकार को तोड़ डालती है ताकि वह अपनी उस ध्येय वस्तु को पूर्ण रूप से, सब तरफ से ग्रहण कर सके, जो विश्वासात्मक होने से विशालतम और उच्चतम व्यष्टिपुरुष, प्रकृति से महान तथा विश्वातीत परमतत्त्व होने से सर्वोत्तम है।

परन्तु यह उस शक्ति का केवल एक पहलू है, जो पूर्णता की साधिका है। पूर्ण योग के साधन

क्रम की तीन अवस्थाएं हैं। ये तीनों अवस्थाएं एक-दूसरी से सर्वथा भिन्न या पृथक नहीं हैं, बल्कि एक हद तक परस्पर सम्बद्ध हैं। इनमें पहली अवस्था वह है, जिसमें साधक यथासम्भव स्वयं को स्थापित करने का प्रयत्न करता है। उसके बाद की अवस्था है, जिसमें साधक अपनी सारी सचेतन सत्ता को रूपान्तरित करने के लिए अपने अंदर 'उसे' धारण करता है जो उससे परे है तथा जिसके साथ उसने सम्बंध स्थापित किया है। उसके बाद की तीसरी और अन्तिम अवस्था वह है, जिसमें साधक संसार में भगवान् के एक केन्द्र के रूप में अपनी रूपान्तरित मानव-सत्ता का उपयोग करता है।

जब तक भगवान् के साथ साधक का सम्बंध पर्याप्त मात्रा में नहीं स्थापित हो जाता, जब तक वह एक हद तक भगवान् के साथ सायुज्य नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक साधारण तौर पर साधना में व्यक्तिगत प्रयत्न की प्रधानता रहती है। परंतु जैसे-जैसे यह सम्बन्ध स्थायी होता जाता है, वैसे-वैसे साधक को यह ज्ञान होता जाता है कि उसकी शक्ति से भिन्न कोई शक्ति, उसके अहंकारपूर्ण प्रयत्न और योग्यता के परे उसके अंदर कार्य कर रही है। फिर वह धीरे-धीरे उस शक्ति के अधीन होना सीख जाता है और अपने योग का सारा भार उसे सौंप देता है। अन्त में उसकी अपनी इच्छा और शक्ति उस उच्चतर शक्ति के साथ एक हो जाती है। वह अपनी इच्छा और शक्ति को भगवदिच्छा, उनकी परात्परा तथा विश्वात्मिका शक्ति के अंदर मिला देता है। इसके बाद वह स्पष्ट रूप में देखता है कि वह शक्ति उसके मन, प्राण और शरीर के आवश्यक रूपान्तर के कार्य का संचालन निष्पक्ष ज्ञान एवं पूर्वद्रष्टा साफल्य के साथ कर रही है, जो आतुर व आसक्त अहंकार से नहीं हो सकता।

इस प्रकार जब साधक भगवान् के साथ पूर्ण तादात्म्य लाभ कर लेता है और अपने आपको पूर्ण रूप से उनके अंदर मिला देता है, तब वह जगत में भगवान् का केन्द्र हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह शुद्ध मुक्त, भगवदिच्छा-ग्रहणक्षम, ज्ञानोज्ज्वल पुरुष मानव जाति या देव-मानव जाति के बृहत्तर योग में, पृथ्वी के आध्यात्मिक विकास या उसके रूपान्तर के योग में भगवान् की परमा शक्ति के प्रत्यक्ष कर्म-साधन का एक यंत्र बनकर कर्म करना आरम्भ कर सकता है।

यदि वास्तव में देखा जाए तो वह उच्चतर शक्ति ही सब समय कार्य करती है। हमारे अंदर जो व्यक्तिगत प्रयत्न और अपनी अभीप्सा का भाव आता है, उसका कारण यही है कि हमारा अहंकारपूर्ण मन उस दैवी शक्ति की क्रियाओं के साथ दोषपूर्ण तथा अपूर्ण रीति से तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है। वह असाधारण स्तर के अनुभवों का विचार भी उसी साधारण मन-बुद्धि के ढंग से करता है, जिससे वह सामान्य सांसारिक अनुभवों का विचार करता है।

संसार में हम अहंभाव से प्रेरित होकर कर्म करते हैं। विश्व की जो विश्वशक्तियां हमारे अंदर कार्य करती हैं, उन्हें हम अपनी ही शक्तियां समझते हैं। हमारे मन, प्राण, शरीर के बने हुए इस ढांचे के भीतर परम पुरुष भगवान् जो कुछ निर्वाचन, घटन और विकासन का कार्य करते हैं, उसे हम अपने ही वैयक्तिक संकल्प, ज्ञान, बल तथा गुण का प्रभाव मानते हैं। परंतु जब हमारे अंदर ज्ञान का उदय होता है, तब हमें यह पता लगता है कि हमारा 'अहं' तो केवल एक यंत्र है। जिन चीजों को हम अपनी कहते हैं, वे केवल इसी अर्थ में अपनी हैं कि ये हमारे परम पूर्णतम आत्मा की हैं, जो विश्वातीत परम पुरुष से अभिन्न हैं। उन पर अहंकार का कोई दखल नहीं है।

इस प्रकार दैवी शक्ति के द्वारा हमारे अंदर जो कार्य होता है, उसमें हमारा हिस्सा तो केवल हमारी बद्धता और विपरीत गतिमात्र है। वास्तविक शक्ति तो भगवान् की ही है। जब मनुष्य का अहंकार यह अनुभव करता है कि उसका मन एक यंत्रमात्र है, उसका सारा ज्ञान केवल अज्ञान और लड़कपन है, उसकी शक्ति एक बच्चे का केवल हाथ-पैर पटकना है, उसका गुण केवल एक दम्भ एवं अपवित्रता है और जब वह अपने से परे की शक्ति का भरोसा करना सीख लेता है, तब उसे मुक्ति मिलती है। हम अपनी जिस वैयक्तिक सत्ता में इतने आसक्त हैं, उसकी बाह्यतः कुछ स्वतन्त्रता दिखाई पड़ती है और कुछ अहं भी। लेकिन इसके भीतर एक बड़ी ही दयनीय दासता छिपी हुई है।

हजारों ऐसी सूचनाएं, कल्पनाएं और प्रवृत्तियां हमारे अंदर उठती हैं, जो हमारी नहीं हैं, लेकिन हम उनके दास होकर रहते हैं। हमारा अहंकार स्वतन्त्रता का अभिमानी, प्रतिक्षण विश्वप्रकृति की असंख्य सत्ताओं, शक्तियों, वृत्तियों और प्रभावों का दास, खिलौना एवं कठपुतली बना फिरता है। अपने अहंकार को भगवान् के अंदर मिटा देना ही सर्वोत्तम गति है। अपने से परे की शक्ति के हाथ अपने आपको समर्पित कर देना ही सब बन्धनों और सीमाओं से मुक्त होकर पूर्ण स्वातन्त्र्य लाभ करना है।

वस्तुतः साधन क्रम में उपरोक्त तीनों ही अवस्थाओं में से प्रत्येक की विशिष्ट आवश्यकता और उपयोगिता है। इसलिए प्रत्येक को ही यथायोग्य समय और स्थान मिलना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति साधन को बिल्कुल ऊपर से आरम्भ करना चाहे, तो इससे काम नहीं बनेगा। ऐसा करना निरापद और फलप्रद भी न होगा। यदि कोई समय से पहले ही एक अवस्था से दूसरी अवस्था में छलांग मारकर जाना चाहे तो यह भी उसके लिए ठीक नहीं होगा। कारण, आरम्भ से ही यद्यपि हम मन-बुद्धि और हृदय में भगवान् की सत्ता मान लेते हैं, फिर भी यह स्मरण रखना होगा कि प्रकृति में कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो इस सत्ता का साक्षात्कार न होने देने में बहुत काल तक सचेष्ट रहते हैं। जब तक मनोगत विश्वास साक्षात्कृत नहीं होता, तब तक वह सशक्ति सत्य स्वरूप नहीं धारण करता। वह ज्ञान का केवल एक प्रतीक-सा रह जाता है, सजीव सत्य नहीं होता—एक विचार रहता है, शक्ति नहीं होती। यदि विश्वास के अनुसार कुछ-कुछ अनुभव होने लगा हो, तो भी यह समझ लेना या मान बैठना कि हम भगवान् के हाथों में आ गए या उनके यंत्र होकर ही हम सब कर्म कर रहे हैं, बड़ा धोखा खाना है।

इस प्रकार की धारणा हमारे अंदर एक धोखे की टट्टी खड़ी कर सकती है, घोर तामसिक भावना उत्पन्न कर सकती है अथवा भगवान् के नाम पर अहंकार के ही कार्यों को बड़ा-सा रूप देकर सारी योगसाधना को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर सकती है। साधना में आन्तरिक प्रयास और संघर्ष का, थोड़ा या बहुत, एक समय होता है। उसमें साधक का यह काम है कि वह अपने व्यक्तिगत संकल्प से निम्न प्रकृति के सारे अन्धकार और विचार को हटाता रहे तथा अपनी शुभेच्छा को दृढ़ता के साथ दिव्य ज्ञान के अनुकूल बनाता रहे। मन की वृत्तियों, हृदय के भावों, प्राणों की वासनाओं एवं शरीर की पार्थिव सत्ता को बरबस अपनी शुभेच्छा के अनुकूल बना ले। उन्हें ऐसा अभ्यास करा दे कि वे सत्-प्रभाव को ही ग्रहण करें और उसी के अनुरूप आचरण करें। इतना हो चुकने पर ही निम्न प्रकृति का उच्च पराप्रकृति में आत्मसमर्पण हो सकता है, क्योंकि ऐसी ही स्थिति में आत्मदान स्वीकार्य होता है।

सर्वप्रथम साधक को अपनी वैयक्तिक संकल्प शक्ति द्वारा अपनी अहंवृत्तियों को वश में करके उन्हें प्रकाश और सत्य की ओर मोड़ देना चाहिए। जब वे इस तरह हो जाएं, तब इस बात का अभ्यास कराना चाहिए कि वे प्रकाश और सत्य को सर्वदा पहचानें, सर्वदा उनको स्वीकार करें और सर्वदा उनका अनुसरण करें। इस प्रकार साधना में आगे बढ़ते हुए साधक अपने व्यक्तिगत संकल्प, व्यक्तिगत प्रयास और व्यक्तिगत शक्तियों से ही सभी काम लेते हुए उन्हें उच्चतर शक्ति के प्रतिनिधि एवं उच्चतर प्रभाव के आज्ञाधारक जानकर उनका उपयोग करना सीख लेते हैं।

आगे बढ़ने पर उसके संकल्प, प्रयास एवं शक्तियां व्यक्तिगत एवं पृथक वस्तुएं नहीं रह जातीं, बल्कि व्यक्ति के अंदर काम करने वाली उच्चतर शक्ति तथा उच्चतर प्रभाव की कृतियां बन जाती हैं। परंतु फिर भी दिव्यमूल स्रोत और बहिर्गत मानवधारा के बीच एक प्रकार की खाई या अन्तर रह ही जाता है, जिससे मूलस्रोत से मानव-मात्र-तक पहुंचने की क्रिया तमसाच्छन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह सदा ठीक तरह से नहीं हो पाती और कभी-कभी विकृत भी हो जाती है। साधना की अन्तिम अवस्था में जब अहंकार, अशुचिता और अज्ञान क्रमशः दूर हो जाते हैं तथा अन्तिम अलगाव भी हट जाता है तो व्यक्ति के अंदर जो कुछ रहता है, वह सब दैवी शक्ति का कार्य हो जाता है।

गुरु

जिस प्रकार पूर्ण योग का परम शास्त्र प्रत्येक मनुष्य के हृदय में छिपा हुआ सनातन वेद है, उसी प्रकार इसके परम पथप्रदर्शक और गुरु ही अन्तर्यामी जगद्‌गुरु हैं, जो हमारे अंदर गुप्तरूप से विराजमान हैं। वे ही अपने भास्वर ज्ञान दीप से हमारे तम का नाश करते हैं। उनकी प्रभा से हमारे अंदर आत्म प्रकाश की महिमा बनी रहती है। उनका जो मुक्त, आनन्दमय, प्रेममय एवं सर्वशक्तिमय अमृतस्वरूप है, उसे वे क्रमशः हमारे अंदर खोलकर दिखा देते हैं। वे अपने दिव्य दृष्टान्त द्वारा हमारे ऊपर एक आदर्श अंकित कर देते हैं जो हमारी निम्नतर सत्ता को उसके ध्येय का प्रतिरूप बना देता है। वे हमारे अंदर अपने प्रभाव और सत्ता को भरकर हमारी व्यक्तिगत सत्ता को ऐसा बना देते हैं कि वह विश्वात्मिका एवं परात्परा सत्ता के साथ तादात्म्य प्राप्त कर सके।

उनकी कार्यपद्धति और विधि क्या है? उनकी कोई पद्धति नहीं है और प्रत्येक पद्धति उनकी है। साधक की प्रकृति के अंदर जो ऊंची-ऊंची वृत्तियां और गतियां हो सकती हैं, उन्हें सहज भाव से सुव्यवस्थित करना ही उनकी विधि है। छोटी से छोटी बातों और बाह्यतः तुच्छ से तुच्छ कामों में भी ये सुव्यवस्थित शक्तियां वैसी ही सावधानी एवं पूर्णता के साथ लग जाती हैं, जैसे बड़ी से बड़ी बातों और बड़े से बड़े कामों में। इस तरह अन्त में साधक के अंदर जो कुछ भी है, वे उसे उन्नति कर प्रकाश में ले जाती हैं और दिव्य बना देती हैं। कारण, कोई भी चीज उनके योग के लिए इतनी छोटी नहीं है जिसका कोई उपयोग न हो; और न ही कोई चीज इतनी बड़ी है जिसके लिए प्रयत्न करना व्यर्थ हो। जैसे प्रभु के सेवक एवं शिष्य का दर्प और अहंकार से कोई वास्ता नहीं रहता (क्योंकि उसके लिए सब कुछ ऊपर से ही किया जाता है), वैसे ही उसे अपनी प्रकृति के वैयक्तिक दोषों या स्खलनों से निराश होने का भी कोई कारण नहीं है। कारण, उसके अंदर जो

शक्ति काम कर रही है, वह अपौरुषेय है, वह परम पौरुषेय और अनन्त है।

इस पूर्ण योग की सिद्धि के मार्ग में इन अन्तर्यामी गुरु—जो योग के ईश्वर, सब यज्ञों एवं कर्मों के प्रभु हैं—का प्रकाश, भोक्ता और लक्ष्य पूर्ण रूप से वरण करना अत्यन्त आवश्यक है। आरम्भिक अवस्था में हमें चाहे किसी भी रूप में उनके दर्शन हों—जगत के सब पदार्थों के पीछे अव्यक्त रूप से रहने वाले अपौरुषेय ज्ञान या प्रेमशक्ति के रूप में हों या इस सापेक्ष जगत के रूप में प्रकट होने और इसे अपनी ओर आकर्षित करने वाले निरपेक्ष के रूप में हों, अपने परम आत्मा तथा सबके परमात्मा के रूप में हों या अपने अंदर एवं जगत के अंदर अवस्थित भगवान् के रूप में हों अथवा भगवान् के अनन्त नाम-रूपों में से किसी एक नाम-रूप में या मनसा निर्धारित किसी आदर्श के रूप में हों—इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। कारण, अन्त में तो यह अनुभव होता ही है कि भगवान् सब कुछ हैं और सबसे अधिक हैं। आरम्भ में उनके विषय में मनुष्य की धारणा, पूर्व के विकास और वर्तमान प्रकृति के अनुसार, भिन्न-भिन्न प्रकार की होगी।

साधना के आरम्भ में साधक के अंदर उसका व्यक्तिगत प्रयत्न भाव तीव्र होता है। उसका अहंकार अपने-आप में और अपने वैयक्तिक उद्देश्य में ही लगा रहता है। इस कारण अन्तर्यामी गुरु की ज्योति उसे स्पष्ट नहीं दीख पड़ती, मेघाच्छन्न सूर्य के समान आच्छन्न रहती है। परंतु ज्यों-ज्यों हमारी दृष्टि विमल होती है और अहंभाव युक्त प्रयास के कोलाहल के स्थान में प्रशान्त आत्मज्ञान की प्रतिष्ठा होती है, त्यों-त्यों हम अपने अंदर बढ़ने वाले प्रकाश के उस मूल को पहचानने लगते हैं। अपने पिछले जीवन की घटनाओं को देखकर हम यह अनुभव करने लगते हैं कि किस प्रकार हमारे सभी अज्ञानजनित और परस्पर विरोधी कर्म हमें किसी निश्चित लक्ष्य की ओर ले जा रहे थे, जिसे अब हम कुछ-कुछ समझने लगे हैं। हमारे योगमार्ग पर पैर रखने से पहले भी हमारे जीवन का विकास ऐसा ही साधित किया जा रहा था कि हम इस मार्ग की ओर मुड़ें। जैसे-जैसे हम इन बातों को सोचने-समझने लगते हैं, वैसे-वैसे हम अन्तर्यामी को पहचानने लगते हैं। फिर हमें अपने संघर्षों और प्रयासों, सफलताओं एवं विफलताओं के मर्म का बोध होने लगता है। अन्त में हम अपनी सभी कठिन परीक्षाओं और दुःखों का भी वास्तविक अभिप्राय जान लेते हैं।

जिस-जिस चीज से हमें चोट पहुंची, जो कुछ हमें अपने रास्ते में बाधक मालूम हुआ, उससे हमारी कितनी बड़ी मदद हुई—यह अब हम ठीक तरह से समझ सकते हैं। साथ ही यह भी जानते हैं कि जिन कर्मों को हम अपना पतन और स्खलन समझते थे, उनका इसमें क्या उपयोग था। इसके बाद हम इस दैवी संचालन को, पूर्व जीवन की घटनाओं के अवलोकन से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष रूप से देख लेते हैं कि कोई परम साक्षी चैतन्य हमारे विचारों को, कोई सर्वव्यापिनी चिच्छक्ति हमारे संकल्पों और कर्मों को, कोई सर्वाकर्षक-सर्वसमाहारक आनन्द तथा प्रेम हमारे भावमय जीवन को एक नए सांचे में ढाल रहे हैं। हम उन्हें अपने व्यक्तिगत सम्बंध से भी अब पहचान लेते हैं कि आरंभ से ही हमें इनका स्पर्श प्राप्त था। अन्त में इन्होंने ही हमें अपने हाथ में कर लिया है।

हमें इन अन्तर्यामी के रूप में परम प्रभु, सखा, प्रेमी, गुरु का सतत् सामीप्य अनुभूत होने लगता है। जैसे-जैसे हमारी व्यष्टिसत्ता महासत्ता के साथ तद्रूप और एकीभूत होती जाती है, वैसे-वैसे हम उन्हें अपनी सत्ता के सत्तात्व के अंदर भी अनुभव करने लगते हैं। कारण, जिस

चमत्कृतिजनक विकास को हम देख पाते हैं, वह हमारे अपने प्रयत्नों का फल नहीं हो सकता—यह हम अच्छी तरह जानते हैं। हमें अनुभव होता है कि कोई पूर्ण तत्त्व हमें नित्य अपने सांचे में ढाल रहा है। हम देखते हैं कि योगदर्शन के जो ईश्वर हैं, सचेतन जीव के अंदर जो चैत्यगुरु या अन्तर्यामी हैं, जो ज्ञानियों के 'केवल' और अज्ञेयवादियों के 'अज्ञेय' हैं, जड़वादियों की जो विश्वशक्ति हैं, जो परम पुरुष और परम शक्ति हैं, जिन्हें जगत के विभिन्न धर्मसम्प्रदायों ने नाना नामों से पुकारा तथा नाना रूपों में मूर्तिमान किया, वही एकमेवाद्वितीय हमारे योग के ईश्वर हैं।

इन्हीं एक को अपने अन्तरात्मा एवं समस्त बाह्य प्रकृति में देखना, जानना, वही हो जाना, उन्हीं से परिपूर्ण होना—यही हमारे सशरीर सत्ता का सदा से ही गुप्त लक्ष्य रहा है और यही अब उसका चेतनगत अभिप्राय हो गया है। अपनी सत्ता के सब अंग-प्रत्यंगों में तथा उन सब पदार्थों में भी, जिन्हें हमारा विभाजक मन अपनी सत्ता से पृथक देखा करता है, उन्हीं एक को अनुभव करना वैयक्तिक चेतना की परम गति है। उनके द्वारा अधिकृत होना, उन्हें अपने अंदर और सब वस्तुओं में अधिकृत करना ही सम्पूर्ण साम्राज्य तथा आधिपत्य है। नैष्कर्म्य और कर्म, शांति और शक्ति, एकत्व और अनेकत्व—इन सभी अनुभवों में उनका आनन्द लेना ही वह परम सुख है, जिसे जीव जगत में बिना जाने ढूंढ़ रहा है। पूर्ण योग के लक्ष्य की यही परिभाषा है। इसका यही अर्थ है कि वह सत्य व्यक्तिगत अनुभव में आ जाए, जिसे विश्वप्रकृति अपने अंदर छिपाए हुए है और उसे बाहर प्रकट करने के लिए महान कष्ट उठा रही है। यह मानवात्मा का देवात्मा होना और प्राकृत जीवन का दिव्य जीवन होना है।

इस पूर्ण योग की प्राप्ति का सुनिश्चित मार्ग यह है कि हम अपने अन्तःस्थ निगूढ़ अन्तर्यामी स्वामी को ढूंढ़ लें। अपने आपको निरंतर उन भागवत शक्ति की ओर उन्मुख रखें जो शक्ति होने के साथ ही भागवतज्ञान और भागवत प्रेम भी हैं। मानवात्मा से देवात्मा होने का जो कार्य है, उसकी सिद्धि के लिए उन्हीं पर निर्भर करें। परन्तु अहं भावापन्न चेतना के लिए आरम्भ में किसी प्रकार ऐसा कर पाना बहुत कठिन है। यदि किसी प्रकार ऐसा हो भी, तो पूर्णतया नहीं हो सकता—प्रकृति के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग में नहीं हो सकता। आरम्भ की कठिनाई यह है कि हमारे विचार करने, विषयों को ग्रहण करने और सुख-दुःखादि अनुभव करने का जैसा अहंकारपूर्ण अभ्यास पड़ा हुआ है, उससे ज्ञान के वे सब द्वार बंद हो जाते हैं, जिनसे साधक को आवश्यक आत्मप्रत्यय हो सकता है। फिर इसके बाद की कठिनाई यह है कि इस मार्ग में जिन श्रद्धा-विश्वास, शरणागति और साहस की आवश्यकता होती है, वे अहंभाव से आच्छादित जीव के लिए सुलभ नहीं होते। भागवती क्रिया वह क्रिया नहीं है, जिसे अहंकारयुक्त मन चाहता या ठीक समझता है, क्योंकि भागवती क्रिया भूलों से काम लेती है सत्य को पाने का, दुःखों से काम लेती है आनन्द लाभ करने का और अपूर्णता से काम लेती है पूर्णता को सिद्ध करने का। अहंकार यह नहीं समझ सकता कि अन्तर्यामी उसे कहां ले जा रहे हैं।

आत्मा का बल विश्वास खो देता है और हिम्मत हार जाता है। अहंकार की इन त्रुटियों से अन्तर्यामी के कार्य में तो कोई बाधा नहीं पड़ती, क्योंकि हमारे विद्रोह करने से अन्तर्यामी रुष्ट नहीं होते। हमारी अश्रद्धा से उनका उत्साह भंग नहीं होता। हमारी दुर्बलता को देख वे हमारा तिरस्कार नहीं करते। माता में जो प्रेम होता है, वह सारा प्रेम और गुरु में जो धैर्य होता है, वह सारा धैर्य उनके अंदर होता है। परंतु अंतर्यामी के नेतृत्व से जब हम अपनी सहमति हटा लेते हैं,

तब उसका यह फल अवश्य होता है कि हम अपना आत्मचैतन्य खो बैठते हैं। इससे वस्तुस्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता और न ही हम अन्तर्यामी के मंगल विधान के फल से वंचित होते हैं। उनके विधान से हम अपनी सहमति जो हटा लेते हैं।

इसका कारण यह है कि हम अपने उस उच्च आत्मस्वरूप को अपने इस निम्नस्वरूप से पृथक नहीं देख पाते, जिसके द्वारा अन्तर्यामी अपने आपको प्रकट करने की भूमिका का निर्माण कर रहे हैं। हम जगत में और अपने आप में भगवान् को उनके क्रिया-कलाप के कारण नहीं देख पाते। विशेषकर इस कारण से कि उनका कार्य हमारे अंदर हमारी प्रकृति के द्वारा होता है, ऐन्द्रजालिक कला के द्वारा नहीं। मनुष्य देखना चाहता है कि इन्द्रजाल जैसे चमत्कार को। इसके बिना उसको भगवत्सत्ता का विश्वास नहीं होता। वह अपनी आंखों में चकाचौंध चाहता है। इसके बिना वह देख नहीं सकता।

परन्तु यह अधीरता है, अज्ञान है, यह महान विपत्ति और विनाश का कारण बन सकता है। यदि हम भागवत मार्ग निर्देश का विरोध करके अपनी वासनाओं-कामनाओं को तृप्त और योगमार्ग से भ्रष्ट करने वाली किसी दूसरी शक्ति को अपने अंदर बुला लें और उसे भगवान् मानकर उससे रास्ता दिखाने के लिए कहें तो हमें सिवाय निराशा एवं कष्ट के कुछ अन्य नहीं हासिल होगा।

मनुष्य के लिए अपने अंदर अवस्थित किसी अदृश्य सत्ता पर विश्वास करना कठिन होता है। उनके लिए यह जरूरी हो जाता है कि वे ऐसी सत्ता पर विश्वास करें, जो उनके अंदर नहीं बल्कि बाहर है, उनसे भिन्न है। इसीलिए बहुत से मनुष्यों की आध्यात्मिक उन्नति में कोई बाह्य आश्रय या श्रद्धा का बाह्य विषय आवश्यक हो जाता है। भगवान् की किसी बाह्य मूर्ति अथवा उनके किसी मानव प्रतिनिधि, किसी अवतार, पैगम्बर, नबी या गुरु की यहां आवश्यकता होती है। ये दोनों ही प्रकार आवश्यक होते हैं और उनकी पूर्ति भी हो जाती है। कारण, भगवान् मनुष्य की आवश्यकता के अनुसार अपने आपको देवता, अवतार या सामान्य मनुष्य के रूप में प्रकट करते हैं। अवश्य ही वे इस रूप में मार्गदर्शक का काम करते हुए ऐसे घने आवरण का उपयोग करते हैं जिससे उनका ईश्वरत्व छिपा रहता है।

मानव जीव की इस प्रकार की आवश्यकता को पूरा करने के लिए हिंदुओं की आध्यात्मिक साधना में इष्टदेवता, अवतार और गुरु की व्यवस्था है। इष्टदेवता से अभिप्राय है भगवान् के उस विशिष्ट नाम-रूप का, जिसे हमने वरण किया हो। वह निम्न स्तर की कोई कनिष्ठ शक्ति नहीं, प्रत्युत उस नाम-रूप से स्वयं भगवान् ही हैं। प्रायः सभी धर्म भगवान् के किसी ऐसे नाम-रूप को अपना आश्रय बना लेते हैं और उसका उपयोग करते हैं। मनुष्य के लिए इसकी जो आवश्यकता है, वह स्पष्ट है। भगवान् समग्र हैं और समग्र से भी अधिक हैं। परंतु मनुष्य उसकी धारणा कैसे कर सकता है, जो समग्र से भी अतीत है? केवल समग्र की धारणा करना भी प्रारम्भ में उसके लिए अत्यन्त कठिन है, क्योंकि वह स्वयं अपनी प्राकृत चेतना के अंदर एक परिसीमित और पृथकृत पदार्थ है।

वस्तुतः मानव ऐसी ही सत्ता की ओर उन्मुख हो सकता है, जिसका उसकी इस परिसीमित प्रकृति के साथ मेल हो। समग्र में तो ऐसी-ऐसी चीजें हैं, जिनकी धारणा उसके लिए अत्यन्त कठिन है अथवा जो उसके कोमल हृदय और दुर्बल इन्द्रियों को बहुत ही भयानक प्रतीत हो

सकती है। मनुष्य किसी ऐसी वस्तु में भगवद्बुद्धि नहीं कर सकता, जो उसके अज्ञान युक्त और खण्डस्वरूप सिद्धांतों के कक्ष के बिल्कुल बाहर हो—वह उसके समीप पहुंच नहीं सकता, उसे पहचान नहीं सकता। अतः यह आवश्यक है कि वह अपनी ही आकृति के अनुरूप भगवान् की कल्पना करे अथवा भगवान् के किसी ऐसे रूप की भावना करे, जो उसकी आकृति के प्रतिकूल परंतु उसकी उच्चातिउच्च प्रवृत्तियों के अनुकूल तथा उसके हृदय और बुद्धि के लिए ग्राह्य हो। इसके विपरीत भगवान् के संसर्ग में आना और उनसे युक्त होना उसके लिए कठिन होगा।

यह सब होने पर भी मनुष्य की कुछ ऐसी प्रकृति है कि वह मानव मध्यस्थ को चाहती है। इसलिए कि उसे ऐसी किसी वस्तु में भगवान् का स्पर्श प्राप्त हो, जो उसकी मानवता के अति समीप हो और वह मानव-प्रभाव एवं दृष्टांत के अंदर गोचर हो सके। मनुष्य की यह आकांक्षा भगवान् पूर्ण करते हैं मानवरूप में अवतार लेकर। परंतु यदि भगवदवतार की धारणा करना भी उसके लिए कठिन हो तो भगवान् या गुरु के रूप में—जो अवतार जैसा विस्मयजनक नहीं है—मनुष्य के सामने आते हैं। कारण, बहुत से लोग जो देव-मानव की धारणा नहीं कर सकते या करना नहीं चाहते, उनके लिए श्रेष्ठ मनुष्य पर विश्वास करना सहज होता है। वे ऐसे मनुष्य को भगवान् का अवतार नहीं, बल्कि जगद्गुरु या भगवत्प्रतिनिधि मानते हैं। लेकिन इतने से भी काम पूरा नहीं होता। अतः इसके लिए जरूरी है कि कोई सजीव प्रभाव या कोई सजीव दृष्टांत सामने हो, जिससे प्रत्यक्ष में उपदेश मिले।

ऐसे लोग बहुत कम होते हैं, जो किसी पूर्वकालीन गुरु और उनकी शिक्षा को, किसी पूर्वकालीन अवतार के दृष्टान्त और प्रभाव को अपने जीवन का सजीव आश्रय बना सकें। हिन्दू साधना में इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए गुरु और शिष्य के सम्बन्ध की व्यवस्था है। ऐसे गुरु भी कभी-कभी हो सकते हैं, जो भगवदवतार या जगद्गुरु हों। यहां इस प्रकरण में इतना ही पर्याप्त है कि गुरु ऐसे हों, जो शिष्य को भगवत ज्ञान प्रदान करें, भगवदीय आदर्श का कोई बोध उसे करा दें या इस योग्य बना दें कि वह भगवान् के साथ-साथ मानव जीव के स्वानुभूत सम्बन्ध को अनुभव कर सके।

पूर्ण योग का साधक अपनी प्रकृति के अनुसार इन सभी उपायों से काम ले सकता है। परंतु इसके लिए यह आवश्यक है कि वह इन्हें अपना बन्धन न बना ले। अहंकारयुक्त मन की उस व्यावर्त्तक प्रवृत्ति को अपने अंदर से निकाल दे जो 'हे मेरे ईश्वर, मेरे अवतार, मेरे नबी, मेरे गुरु' की पुकार मचाकर साम्प्रदायिक धर्मोन्मादिनी बुद्धि से अन्य धर्मों और अनुभूतियों का तिरस्कार करती है। साधक को तो सभी प्रकार की साम्प्रदायिकता एवं धर्मान्धता का सर्वथा त्याग करना होगा, क्योंकि ये चीजें भागवत अनुभूति की अखण्डता से विसंगत हैं।

पूर्ण योग के साधक को तब तक संतोष नहीं हो सकता, जब तक वह अपने भगवद्भाव में भगवान् के सब नाम और रूप भी शामिल न कर ले, अन्य सभी देवताओं में अपने ही इष्टदेव को न देखे, अपने उन प्रभु की एकमेवाद्वितीय सत्ता के अंदर सब अवतारों का अन्तर्भाव न कर ले, जो स्वयं ही अवतार रूप से उतरते हैं तथा जब तक सभी प्रकार की शिक्षा-दीक्षाओं और उपदेशों के सारभूत सिद्धांतों को सनातन ज्ञान-विज्ञान के साथ समस्वर न बना ले।

पूर्ण योग के साधक को यह नहीं भूलना चाहिए कि इन सब बाहरी उपायों का एकमात्र उद्देश्य उसकी अन्तरात्मा को जगाकर उसे अन्तःस्थित भगवान् के सम्मुख कर देना है। यदि यह

काम न बना, तो कुछ भी नहीं हुआ। यदि हमारे अंदर श्रीकृष्ण या भगवान् शंकर न प्रकट हुए तो बाहर-ही-बाहर शिव नाम की पूजा से पूरा काम नहीं होगा। इसी प्रकार अन्य सब उपायों का भी यही लक्ष्य है। प्रत्येक उपाय मनुष्य की प्राकृत अवस्था और अन्तःस्थित भगवान् के प्राकट्य के बीच एक सेतु है। पूर्ण योग के गुरु, जहां तक सम्भव होगा, हमारे अन्तःस्थित अन्तर्यामी गुरु की पद्धति का ही अवलम्बन करेंगे। वे शिष्य को उसी रास्ते ले चलेंगे, जो उसकी प्रकृति का रास्ता है।

उपदेश, दृष्टांत और प्रभाव—ये गुरु के तीन उपकरण हैं। ज्ञानी गुरु कभी अपने आपको या अपने विचारों को बलात् शिष्य के मन पर लादना पसंद नहीं करेंगे। वे शिष्य में उतना ही निक्षेप करेंगे, जो व्यर्थ न होगा और बीज की तरह जमकर अंतर्यामी भगवान् से पुष्टि पाकर बढ़ेगा। उपदेश करने की अपेक्षा अन्तर्ज्ञान को ही जगाने का वे अधिक ध्यान रखेंगे। शिष्य के अन्दर उसकी शक्तियों और अनुभूतियों को स्वाभाविक एवं स्वच्छन्द गति से बढ़ने देने का यत्न करेंगे। वे जो कोई प्रक्रिया बताएंगे, वह एक उपाय के तौर पर होगी—किसी अनतिक्रम विधान या नित्यक्रम के तौर पर नहीं। गुरु सदा इस बात से सावधान रहेंगे कि उनका बताया हुआ कोई साधन बन्धन न बन जाए। उनकी दी हुई प्रक्रिया यंत्र क्रिया न हो जाए। गुरु का सम्पूर्ण कार्य यही होगा कि वे शिष्य के अंदर उस दिव्य आत्मज्योति को जगा दें और उस दिव्य शक्ति को चालित कर दें जिनके स्वयं गुरु भी एक साधन, एक उपाय, एक आधार और प्रवाह के एक पात्र हैं।

उपदेश का दृष्टांत बहुत अधिक शक्तिशाली होता है, परंतु बाह्य कर्मों या वैयक्तिक आचरण का ही दृष्टांत सर्वोपरि महत्व नहीं रखता। इनका भी प्रमुख स्थान और महत्व अवश्य है, परंतु सबसे मुख्य बात दूसरों में अभीप्सा जगाने वाली होगी। वह गुरु के उस भगवत साक्षात्कार की बात है, जिससे गुरु का सारा जीवन, सम्पूर्ण आन्तरिक स्थिति और उनके सारे कर्म नियत होते हैं। यही सार्वभौम और मूल तत्त्व की बात है। बाकी जो कुछ है, वह वैयक्तिक पात्र एवं परिस्थिति है। गुरु का यही सक्रिय साक्षात्कार वह चीज है, जिसे साधक को अनुभव करना होगा और अपनी प्रकृति के अंदर उतारना होगा। बाह्य अनुकरण करने की उसके लिए कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि ऐसा अनुकरण समुचित स्वाभाविक फलों का उत्पादक नहीं, बल्कि बाधक होता है।

दृष्टांत की अपेक्षा प्रभाव अधिक काम करता है। प्रभाव का अर्थ शिष्यों पर गुरु का बाहरी रोब-दाब नहीं, बल्कि उनकी अन्तरात्माओं के साथ गुरु का संग-सामीप्य ही वह शक्ति है, जिसमें गुरु मौन रहकर भी शिष्यों के अंदर वही चीज डालता रहता है, जो उसके अधिकार में है। यही गुरु का परम लक्षण है। सर्वश्रेष्ठ गुरु उपदेशक होने की अपेक्षा प्रधानतः ऐसे सत्ता स्वरूप होते हैं, जो अपने चारों ओर रहने वाले सभी ग्रहणशील साधकों के अंदर भागवत चैतन्य और उसके अंगभूत ज्योति, शक्ति, शुचिता तथा आनन्द ही बरसाया करते हैं।

पूर्ण योग के गुण का एक अन्य लक्षण यह है कि गुरु मानव-दम्भ और आत्मगौरदव की बुद्धि से अपने गुरु होने का दर्प नहीं करते। यदि जगत में उनका कोई कार्य है, तो वह ऊपर से प्राप्त एक दायित्व है। गुरु उस दायित्व-निर्वाह के केवल एक पात्र, भाजन और प्रतिनिधि मात्र हैं। वे अपने भाइयों के सहायक एक मनुष्य हैं, बच्चों को ले चलने वाले पिता हैं, अन्य दीपों को प्रज्वलित करने वाले एक दीप-ज्योति हैं, आत्माओं को जगाने वाले एक आत्मा हैं तथा अधिक

से अधिक भगवान् की अन्य शक्तियों को अपने पास बुलाने वाली एक शक्ति या सत्ता हैं।

काल

जिस साधक को ये सब सहायताएं प्राप्त हों, उसके द्वारा लक्ष्य को प्राप्त करना सुनिश्चित है। कहीं वह गिर भी जाए, तो वह उसके उठ खड़े होने का ही एक साधन होगा और उसका मरण भी पूर्णता की ओर ले जाने वाला मार्ग बनेगा। कारण, इस मार्ग पर जो कोई आ जाता है, उसके लिए जन्म-मरण एवं उसके स्वरूप के विकास-साधन और यात्रा के विश्राम स्थान बन जाते हैं। साधनक्रम पूर्ण होने में शेष अपेक्षा काल की होती है। मानव-प्रवास के सामने काल शत्रु बनकर आता है या मित्र बनकर, बाधक होकर खड़ा होता है या साधक होकर। परन्तु यथार्थ में वह सदा ही आत्मा का एक उपकरण मात्र होता है।

काल परिस्थितियों और त्रिगुण की शक्तियों के मिलने तथा परिणामस्वरूप विकास-साधन करने का एक क्षेत्र है। काल विकास-साधन के इस क्रम का मापक यंत्र है। यह अहंकार को बड़ा उत्पीड़क या प्रतिरोधस्वरूप प्रतीत होता है, पर भगवान् के हाथ का यह एक यंत्र है। इसलिए जब तक हमारा प्रयत्न अपने पुरुषार्थ के बल पर होता है, तब तक काल बाधक ही प्रतीत होता है। काल हमारे सामने उन सब शक्तियों को ला खड़ा कर देता है, जो हमारे पुरुषार्थ से संघर्ष कर हमारा रास्ता रोक देती हैं। जब भागवत क्रिया और हमारे वैयक्तिक पौरुष की क्रिया दोनों हमारी चेतना में एक दूसरी रीति से मिलती हैं, तो काल एक साधन एवं उपादान बनता है। जब ये दोनों क्रियाएं एक हो जाती हैं, तब काल सेवक और उपकरण बन जाता है।

काल के सम्बंध में सर्वोत्तम भाव यही है कि पूर्ण योग सिद्धि के लिए अनन्त काल साधक के हाथ में है, अतः अत्यंत धैर्य धारण करें। साथ ही अपनी शक्ति को सतत् वर्द्धनशील, आत्मवशिता और वेगवती क्षिप्रता के साथ बढ़ाएं कि उन्हें परम भागवत रूपान्तर की आश्चर्यमयी त्वरा प्राप्त हो।

नवधा भक्ति में सर्वसाधनों का समावेश

पामर और विषयी पुरुष को भी उसके अधिकार के अनुसार साधन बताकर, उसे स्वधर्म परायण बनाकर, उसमें मुमुक्षुता उत्पन्न कर, उसे ज्ञान देकर तथा भक्त बनाकर अन्त में मोक्ष दान करने वाले हमारे वैदिक सनातन धर्म के अनेक साधनों में यह नवधा भक्ति भी एक साधन है। इसमें पहला साधन श्रवण है। जिसे विष्णु-व्यापक परमात्मा के विषय में कुछ भी ज्ञान न हो और इस विषय को जानने की इच्छा भी न हो, उसके अंदर परमात्मा के गुणगान से भरे हुए ग्रंथों की रसमयी वार्ता का श्रवण करने से भी धीरे-धीरे व्यापक परमात्मा के प्रति श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार की भक्ति के द्वारा उस बात में रस आने पर दूसरी कीर्तन भक्ति का आविर्भाव होता है। कीर्तन कीर्ति लाने वाली क्रिया को कहते हैं। भगवान् की बातों में रस आने पर भक्त गद्य या पद्य पर किसी भी रीति से अकेले या अन्य पुरुषों के साथ उनकी बातें करने लगता है। इससे उस वातावरण में, दूसरे लोगों में और अपने हृदय में भगवान् की कीर्ति फैलने लगती है। यही 'कीर्तन' कहलाता है। यह कीर्तन-भक्ति स्मरण-भक्ति में परिणत हो जाती है।

भगवान् का स्मरण तो श्रवण और कीर्तन में भी होता है, परन्तु उनकी साधना बहिरंग मानी

गयी है। श्रवण और कीर्तन में किसी बाह्य क्रिया अथवा अन्य व्यक्ति की अपेक्षा के बिना जो अकेले ही परमात्मा के गुण एवं चरित्र का स्मरण करता है, वह 'स्मरण भक्ति' कहलाता है। भगवान् के किसी भी चरित्रादि का स्मरण होने पर उसका हम तीन रूपों में समावेश कर सकते हैं —अर्थात् भगवान् की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता। ऐसी तीन प्रकार की भावना का स्मरण रहने पर, केवल श्रवण और कीर्तन भक्ति में लगे रहने वाला, पामर और विषयी होने के कारण यदि दुराचारी भी रहा हो तो अब वह दुराचार से छूटकर उत्तम फल प्राप्त करता है। भगवान् की सर्वव्यापकतादि की स्मृति रहने पर 'अब वह अपने को प्रभु से नहीं छिपा सकता'— ऐसा समझकर वह दुराचारादि से छूटने के प्रयत्न में लग जाएगा और उनकी भक्ति की सहायता तथा कृपा से उस दुराचार से मुक्त हो जाएगा।

भगवान् के अपि चेत सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक वचन की संगति श्रवण और कीर्तन भक्ति के साथ लगती है। साधुरेव व मन्तव्य सम्यग्व्यवसितों हि सः वाक्य का मेल उसी से लगता है, जो स्मरण भक्ति के द्वारा अपने को सुधारने का प्रयत्न करने लगा है। यदि वह इस प्रकार सुधार का प्रयत्न करके दुराचार से मुक्त न हो तो यहां भगवान् के कहे हुए 'साधु' और 'सम्यग्व्यवसितः' शब्द व्यर्थ ही हो जाएंगे। भगवान् का कथन व्यर्थ नहीं हो सकता, अतः यदि भक्ति के दिखायी देने पर भी दुराचार की निवृत्ति न हो तो वह भक्ति दिखावटी ही कही जाएगी। सच्ची भक्ति में तो भगवान् शिव के वचन चरितार्थ होते हैं।

पाद सेवन-भक्ति, स्मरण-भक्ति के पीछे उत्तरोत्तर बढ़ते हुए भक्तिभाव की एक अवस्था है। श्रवण और कीर्तन तक तो भक्त दुराचारी भी रह सकता है, परन्तु स्मरण भक्ति का उदय होने पर वह दुराचारी नहीं रह सकता। उसका दुराचार समाप्त हो जाता है। इतना ही नहीं, अपितु धीरे-धीरे धर्मपालन की स्थिति भी लानी पड़ती है। ऐसा करने पर सबसे पहले सेवाधर्म जो सर्वसामान्य धर्म है, ही भाता है। उसी का नाम 'पाद सेवन-भक्ति है'। पाद सेवन का अर्थ चरणों की सेवा होता है। किन्तु उसके बदले पाद का अर्थ अंश करके 'अंश की सेवा' अथवा अंश के द्वारा सेवा का अर्थ करना अधिक उपयुक्त होता है। यह भक्ति भगवत्प्राप्ति का साधन है। इसलिए यहां भगवान् के साक्षात् चरणों की सेवा की बात नहीं समझी जा सकती। इसके सिवा गुरु अथवा प्रतिमा की सेवा—यह अर्थ भी लिया जा सकता है। किन्तु उसके आचरण में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है, नहीं तो वह आपत्तिजनक हो जाती है।

'पाद' शब्द का अर्थ पादोऽस्य विश्वा भूतानि न्यास से करते हुए, जगत के सम्पूर्ण भूतरूप भगवान् के अंश की सेवा ही पाद सेवन-भक्ति है—ऐसा मानना अधिक उपयुक्त है। भूतमात्र, प्राणिमात्र, जनता अथवा देश—इनमें से अपनी शक्ति के अनुसार जितने अंश की हो सके, उतने अंश की सेवा करना—यही पाद सेवन-भक्ति कही जाती है। इसमें केवल वैसी भावना की ही आवश्यकता है। सेवा धर्म में किसी अन्य विशेष धर्म की आवश्यकता नहीं है। सभी वर्ण और आश्रमों के लोग अपने अधिकार के अनुसार सेवा कर सकते हैं। यह तो एक प्रकार का सामान्य धर्म ही है। इस प्रकार पाद-सेवन में सामान्य सेवा धर्म आता है। फिर जब आगे चलकर विशेष धर्म की प्रवृत्ति होती है तो वह 'अर्चन-भक्ति' कहलाती है।

अर्चन का अर्थ पूजन हो सकता है। किन्तु यहां इसका अर्थ सभी वर्णों को अपने अधिकारानुसार किए जाने वाले कर्म (कर्मकाण्ड के षट्कर्मादि) ग्रहण करने चाहिए अर्थात् अब

सेवा सामान्य धर्म से अपने शास्त्रोक्त वर्णाश्रम धर्मों में प्रवृत्ति होने लगती है। अब भक्ति के साथ कर्मानुष्ठान भी होने लगता है। परन्तु कर्मानुष्ठान में गर्व न आने पाए, इसके लिए उसे वन्दन भक्ति करनी चाहिए। जिसे कर्म का अधिकार नहीं है, उसके लिए वन्दन में ही कर्म का भाव आ जाता है। इसी से अर्चन के बाद वन्दन भक्ति आती है।

वन्दन का अर्थ तो नमस्कार होता है। किन्तु इस प्रसंग में एक बात ध्यान में आती है कि अर्चन अर्थात् पूजन में पूज्य को नमस्कार करने का भाव आ ही जाता है, फिर वन्दन को अलग रखने का क्या कारण है? इसका उत्तर यह है कि जिसमें गर्व होता है, वह वन्दन नहीं करता। गर्व का अभाव ही वन्दनोचित नम्रता प्रदान करता है। जो नम्र होता है, वही सम्पूर्ण निम्नकोटि के गिने जाने वालों का भी गर्व त्याग कर वन्दन करता है। अतः वन्दन का अर्थ सबके प्रति विनम्र भाव रखना है। दास्य भक्ति में अपने वर्णाश्रम और अवस्था के अनुसार पूर्ण धर्म का अन्तर्भाव समझना चाहिए। दास का अर्थ है—पूर्णरूप से आज्ञा के अनुसार चलने वाला। 'विष्णुपुराण' में श्री भगवान् का वचन है—

श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञे यस्ते उल्लंघ्य वर्तते ।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः ।।

अर्थात् श्रुति-स्मृति मेरी ही आज्ञा है। जो उनका उल्लंघन करता है, वह मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वाला और मेरा ही द्वेषी है। वह न मेरा भक्त है और न ही वैष्णव। इससे सिद्ध होता है कि जो व्यक्ति श्रुति-स्मृति प्रतिपादित धर्म का यथावत् पालन करता है, वही सच्चा वैष्णव है अर्थात् वही दास-भक्त है। धर्मात्मा बनने के लिए इसी लक्षण की आवश्यकता है। भक्त धीरे-धीरे भगवत्कृपा से इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यदि इसका ऐसा अर्थ न किया जाए तो भगवान् के प्रत्यक्ष होने के बाद उनकी आज्ञा के अनुसार आचरण करना ही दास्य भक्ति कही जाएगी। किन्तु यह बात तो भगवत्साक्षात्कार के बाद की होगी। इस समय विचार साधन भक्ति का हो रहा है। अतः भगवत्साक्षात्कार, जो साधन के बाद प्राप्त होने वाली सिद्धावस्था है, से सम्बंधी अर्थ लेना ही अधिक उपयुक्त है। भक्तिपूर्वक स्वधर्म का पालन करने से चित्त की शुद्धि होती है और चित्त शुद्धि से ज्ञान प्राप्त होता है—श्रुति का भी यही सिद्धान्त है। भगवान् शिव का भी यही आदेश है।

सख्य भक्ति में भक्त भगवान् के प्रति मित्रता का अधिकार प्रकट करता है। अवश्य ही यह मित्रता का अधिकार किसी सबल कारण के बिना नहीं हो सकता। हरेक भक्त में सुदामा के समान सहपाठी होने, गोपों के समान साथ खेलने और अर्जुन के समान सहचारी होने की बातें तो घट नहीं सकतीं। किंतु द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया श्रुति के अनुसार परमात्मा के साथ जीवात्मा की मित्रता होने की बात घट सकती है। इस प्रकार भगवान् भक्त में सच्चिदानन्द रूप से जीवात्मा और परमात्मा के सदृश ज्ञान की जाग्रति कर देते हैं—उसी से उसमें सख्य भक्ति हो सकती है। फलतः अब भक्ति में वेदान्त का ज्ञान मिल जाता है और वह भक्ति ज्ञानमिश्रा हो जाती है।

श्रवण से लेकर दास्य पर्यन्त भक्ति में जीवात्मा और परमात्मा के सदृश ज्ञान न हो तो भी चल सकता है, किन्तु सख्य भक्ति में तो वह ज्ञान होना ही चाहिए। इस प्रकार वेदान्त ज्ञान अभी एकदेशीय ही है। पूर्णज्ञान तो अद्वैतज्ञान है। धीरे-धीरे भगवान् उसे भी भक्त में प्रकट कर देते हैं। वह ज्ञान आत्मनिवेदन नाम की अंतिम भक्ति में देखा जाता है। जिस ज्ञान से पराभक्ति प्राप्त

होती है, वह तो सख्य ज्ञान ही है। पराभक्ति के द्वारा भगवान् के पावन यश्चास्मि तत्त्वतः शब्दों के अनुसार जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह आत्मनिवेदन भक्ति में देखा जाता है। जिसे पराभक्ति कहते हैं, वही आत्मनिवेदन भक्ति है।

आत्मनिवेदन का अर्थ दो प्रकार से होता है—आत्मा को परमात्मा के प्रति अर्पण कर देना अथवा आत्मस्वरूप में परमात्मा को अभेदरूप से अनुभव करना। यही एकात्मवाद या अद्वैत ज्ञान है। भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत रूप अद्वैतभावना को लाने एवं द्वैतभ्रम को निवृत्त करने वाले ध्यान के फल का वर्णन आता है। इन तीनों अद्वैतों को सिद्ध करने के लिए इस आत्मनिवेदन भक्ति का स्वरूप फलात्मक है। यहां जीवात्मा अपनेपन को परमात्मा में होम कर देता है। अतः अब वास्तविक रीति से 'मैं' कहने योग्य कोई दूसरा नहीं रहता। इसलिए यह 'भावाद्वैत' कहलाता है। यहां अपनी पृथकता की भ्रांति दूर हो गई है। अखा भक्त के समान 'अब हरि कहूं या मैं' इस स्थिति को वह समझता है। ज्ञानमार्ग में तो 'तू' को अलग न बताकर 'मैं' की ही एकता का अनुभव किया जाता है। वह तत्त्वदृष्टि से होने वाला अनुभव इस भावाद्वैत वाली आत्मनिवेदन भक्ति में भी होता है।

परमात्मा तो एक है ही, अब उसने जीवरूप 'मैं' को भी एक मान लिया। सर्वत्र परमात्मदृष्टि तो वन्दन-भक्ति में ही बतायी गयी थी। अतएव अब एक ही चेतन-सच्चिदानन्द रह जाने के कारण ये शरीरादि द्रव्य भी उस एक ही के कहे जाते हैं। इस विचार से द्रव्य सम्बंधी द्वैतभ्रम की निवृत्ति हो जाने से द्रव्याद्वैत भी सिद्ध हो जाता है। इससे जो कुछ अनात्म एवं जड़ द्रव्य दिखाई देते हैं, उन सबका एक ही स्वामी रह जाने के कारण वह भक्त द्रव्यों का स्वामित्व एकमात्र परमात्मा को ही समझता है।

एक ही सच्चिदानन्द को मानने के कारण अनात्म में जो कुछ चेतन दिखाई देता है, वह क्रिया भी अब एक ही परमात्मा की समझकर उसकी चेष्टा कराने वाला माना गया है। अतः मुक्ति के साधन की दृष्टि से भक्ति ही ऐसी जान पड़ती है जिसमें बड़े से बड़ा दुराचारी भी प्रवेश कर सकता है। फिर वह धीरे-धीरे दुराचार छोड़कर धर्मसाधन करते-करते स्वधर्म का पूर्णतया अनुष्ठान करके क्रमशः ज्ञान प्राप्त कर अन्त में अद्वैतज्ञान के द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस तरह विचार करने से जान पड़ता है कि नवधा भक्ति जीव को अधिकार के अनुसार मुमुक्षुता की प्राप्ति कराकर अन्त में उसे मोक्ष प्राप्त कराने वाला सोपान है।

प्रहलाद जैसे भक्त ने भी इसी का उपदेश किया था। हमारे यहां मोक्ष के जो निष्काम कर्मयोग, राजयोग और ज्ञानयोग आदि अनेक मार्ग हैं, उनमें भक्ति तो 'सूत्रे मणिगया इव' सभी में अत्स्यूत है। यहां सर्वणि छोड़कर कोई भी साधन सफल नहीं हो सकता तथा भक्ति के समान सरल और प्राणिमात्र के अधिकार से युक्त भी कोई दूसरा साधन नहीं है। अतः पहले इसी साधन को पकड़ना चाहिए। दूसरे साधन तो अपने आप ही इसके पीछे आ जाएंगे, उन्हें भगवान् स्वयं ही दे देंगे। हमारी तो उन कृपालु प्रभु से यही प्रार्थना है कि वर्तमान समय में वे प्रत्येक जीवन को विशेषतया यही साधन प्रदान करें।

साधना के चौंसठ सोपान

यद्यपि शास्त्रों में संसार से छुड़ाने के अनेक साधन कहे गए हैं, तथापि भगवान् ने स्वयं भक्ति

को सब साधनों का 'मुकुटमणि' कहा है। कल्याणमयी-कल्याणकारिणी इच्छा से उच्चारित 'कल्याण' का मुख्य उद्देश्य कल्याण परायण तथ्यों को प्रकाश में लाना है, जो साक्षात् अथवा परम्परा से परमार्थ के अनुकूल हों। 'परमार्थ' शब्द का अर्थ कई प्रकार से किया गया है। कई लोगों ने इसका अर्थ किया है—दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति। दूसरे लोगों ने दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति को पर्याप्त न मानकर उसके साथ-साथ सुख की प्राप्ति को भी परमार्थ का वाच्य माना है।

कुछ दूसरे लोगों ने स्वरूपानुभूति को परमार्थ का वाच्य कहा है और कुछ लोगों ने परम सुख की सर्वदा अनुभूति करना ही परमार्थ का अर्थ समझा है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिन्होंने दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति के विषय में उदासीन रहकर साध्य-भक्ति में मग्न रहने को ही परमार्थ का स्वरूप माना है। परमार्थ के इन विविध अर्थों में ही समस्त दार्शनिक सिद्धांतों का समावेश हो जाता है। ये सब दर्शन तात्पर्य-भेद की दृष्टि से ही परस्पर भिन्न हैं।

उपर्युक्त परमार्थ के साधन भी कर्म, ज्ञान, भक्ति और योग—इस प्रकार चार माने गए हैं! ये सब साधन समान कोटि के नहीं हैं, किन्तु योग्यतानुसार इनमें से कुछ अंतरंग साधन हैं और कुछ बहिरंग। उदाहरणतः—अन्तःकरण की शुद्धि के लिए सन्ध्यादि नित्यकर्म अवश्य करने चाहिए और चित्त की एकाग्रता के लिए योग साधने की अपेक्षा होती है। अनादि संसार-प्रवाह में संस्कारों की विचित्रता से जिनका चित्त द्रवीभूत नहीं होता, ऐसे अधिकारी ज्ञानप्रवण होते हैं अर्थात् उनकी प्रवृत्ति ज्ञान की ओर होती है तथा जिनका चित्त द्रवीभूत हो जाता है, वे अधिकारी भक्तिनिष्ठ होते हैं। परन्तु ऐसी व्यवस्था होने पर भी अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक उपयोगी होने के कारण भक्ति साधनों की प्रमुखता मानी गयी है। क्योंकि जो फल भक्ति से प्राप्त होता है, वह कर्म, ज्ञान अथवा योग से भी सिद्ध नहीं होता। किन्तु जो फल कर्म, ज्ञान और योग से सिद्ध होता है, वह साधन भक्ति से भी सिद्ध हो सकता है। अतः यहां साधन भक्ति के चौंसठ अंगों का निर्देश किया जा रहा है—

❑ श्रीगुरुचरणों का आश्रय लेना।

❑ शिव-मंत्र की दीक्षा तथा उसी से सम्बंधित उपदेश ग्रहण करना।

❑ विश्वासपूर्वक श्रीगुरु-चरणों की सेवा करना।

❑ शिव-भक्तों द्वारा परिगृहीत मार्ग का अवलम्बन करना।

❑ शैव धर्म के सम्बंध में प्रश्न करना।

❑ भगवान् के निमित्त भोगों का त्याग करना।

❑ शिव स्थानों व शक्तिपीठों में निवास करना।

❑ केवल आवश्यक वस्तुओं को स्वीकार करना।

❑ चतुर्दशी तिथि का सम्मान करना।

❑ पीपल, वट, बिल्व आदि वृक्षों का आदर करना।

❑ भगवान् शिव के विमुख पुरुषों के संग का त्याग करना।

❑ अनधिकारियों को शिष्य न बनाना।

❑ शिव विरोधी ग्रंथों का अवलोकन न करना।

❑ शिव विरोधी कार्यों में हाथ न डालना।

❑ उचित व्यवहार में कृपणता न करना।

❑ शोक-क्रोध आदि विकारों के वशीभूत न होना।

❑ अन्य देवों की अवज्ञा न करना।

❑ किसी भी जीव को उद्वेग न पहुंचाना।

❑ सेवापराधों तथा नामापराधों से बचना।

❑ भगवान् तथा भक्तों की निन्दा न सुनना।

❑ शिव चिह्नों को धारण करना।

❑ शिवाक्षरों को शरीर पर धारण करना।

❑ शिव को निवेदित की हुई रुद्राक्ष माला आदि धारण करना।

❑ शिव-विग्रह को दण्डवत् प्रणाम करना।

❑ शिव-विग्रह का दर्शन होने पर अभ्युत्थान देना (उठ खड़े होना)।

❑ शिव-विग्रह के सामने प्रेमावेश में नृत्य करना।

❑ भगवान् शिव की सवारी के पीछे-पीछे चलना।

❑ भगवान् के मन्दिर की प्रदक्षिणा करना।

❑ भगवान् के श्रीविग्रह की परिचर्या करना (उन्हें पंखा झलना, उनके लिए प्रसाद तैयार करना, माला गूंथना, चन्दन घिसना, उनके मन्दिर में झाड़न लगाना)।

❑ भगवान् शिव के श्रीविग्रह के सम्मुख गान करना।

❑ भगवान् के नाम, गुण, लीला आदि का कीर्तन करना।

❑ इष्ट-मंत्र का जप करना।

❑ भगवान् शिव से प्रार्थना करना।

❑ भगवान् के स्तोत्रों का पाठ करना।

❑ भगवान् को निवेदित किए हुए प्रसाद को ग्रहण करना।

❑ भगवान् के चरणामृत का पान करना।

❑ भगवान् को चढ़ाई हुई धूप की गंध को ग्रहण करना।

❑ पवित्रता के साथ भगवान् के श्रीविग्रह का स्पर्श करना।

❑ भगवान् शिव के श्रीविग्रह का दर्शन करना।

❑ उनकी आरती का दर्शन करना।

❑ उनकी कृपा की बाट जोहते रहना।

❑ उनका नित्य निरन्तर स्मरण करना।

❑ उनके रूप का ध्यान करना।

❑ अपने द्वारा किए हुए शुभ कर्म भगवान् को अर्पित करना।

❑ प्रभु में दृढ़ विश्वास करना।

❑ अपनी आत्मा तथा उससे सम्बंध रखने वाले व्यक्तियों एवं वस्तुओं को शिवार्पित करना।

❑ अपनी प्रिय वस्तु का भगवान् के चरणों में निवेदन करना।

❑ शिव की शरण में जाना।

❑ शिव के लिए सारी चेष्टाएं करना।

❑ बिल्व के बिरवे की सेवा करना (उसे सींचना, उसकी प्रदक्षिणा करना तथा दीपदान करना)।

❑ भक्ति-शास्त्रों की चर्चा करना।

❑ भगवद्धाम में प्रीति करना।

❑ शिवभक्तों सेवा करना (उन्हें भोजन कराना तथा उनकी अन्य आवश्यकताओं को पूर्ण करना)।

❑ यथाशक्ति भगवान् के उत्सवों को मनाना।

❑ श्रावण मास को विशेष आदर देना।

❑ शिवरात्रि पर रात्रि जागरण कर रुद्राभिषेक करना।

❑ भगवद्विग्रह की सेवा में प्रीति करना।

❑ शिव भक्तों का संग करना।

❑ नाम-कीर्तन का अभ्यास करना।

❑ काशी सेवन करना।

ऊपर भक्ति के चौंसठ अंगों का परिचय मात्र दिया गया है। इनके लक्षण, प्रमाण एवं उदाहरण आदि लेखावृद्धि के भय से नहीं दिए गए हैं। यह विषय इतना विशद् है कि इस पर एक शास्त्र भी लिखा जा सकता है।

विभिन्न सिद्धियों का स्वरूप

तांत्रिक शास्त्रों में नाना प्रकार की सिद्धियों का वर्णन किया गया है। उनकी निश्चित संख्या तो जानी ही नहीं जा सकती, क्योंकि हर साधक अपनी साधना के रूप और प्रकार के अनुसार विभिन्न स्वरूपों एवं अनुभवों के द्वारा उन्हें प्राप्त करता है। ये जलतरंगों के समान ही हैं, जिनका एक निश्चित रूप कभी हो ही नहीं सकता।

महासिद्धियां

आचार्यों ने महासिद्धियों को आठ भागों में बांटा है। इनमें पहली 'अणिमा', दूसरी 'महिमा' और तीसरी 'लघिमा' देहसम्बन्धी सिद्धियां हैं। अणिमा सिद्धि से देह को अणु-परमाणु परिमाण में छोटा बनाया जा सकता है। इसके विपरीत महिमा सिद्धि से देह को चाहे जितना बड़ा या भारी

बनाया जा सकता है। लघिमा सिद्धि से शरीर को कपास से भी हल्का अर्थात् हवा में तैरने लायक बनाया जा सकता है। चौथी 'प्राप्ति' इन्द्रियों की महासिद्धि है।

पांचवीं 'प्राकाम्य' परलोकगत अदृश्य विषयों का परिज्ञान कराने वाली सिद्धि है। छठी 'ईशिता' माया और तदंशभूत अन्य शक्तियों को प्रेरित करने वाली सिद्धि है। सातवीं 'वशिता' कर्मों में अलिप्त रहने और विषय-भोगों में आसक्त ने होने की सामर्थ्य देने वाली सिद्धि है। आठवीं 'ख्याति' त्रिभुवन के भोग और वांछित सुखों को अकस्मात् एक साथ दिलाने वाली सिद्धि है। ये अष्ट महासिद्धियां भगवान् में स्वभावगत हैं। ये भगवदितरों को महान कष्ट और प्रयास से प्राप्त हो सकती हैं। भगवान् के भगवदितर सिद्धियों के बीच वैसा ही प्रभेद है, जैसा कि प्राकृतिक लौहचुम्बक और कृत्रिम लौहचुम्बक के बीच होता है।

गौण सिद्धियां

गौण सिद्धियां दस हैं—पहली 'अनूर्मिसिद्धि' अर्थात् क्षुधा, तृषा, शोक-मोह, जरा-मृत्यु—इन षड् उर्मियों से देह का बेलाग रहना। दूसरी 'दूरश्रवणादिसिद्धि' अर्थात् अपने स्थान से चाहे जितनी दूर का भाषण सुन लेना। तीसरी 'दूरदर्शनसिद्धि', चौथी 'मनोजवसिद्धि' अर्थात् मनोवेग से चाहे जिस जगह सशरीर तुरंत पहुंच जाना (चित्रलेखा को मनोजवसिद्धि तथा दूरदर्शनसिद्धि भगवान् नारद के प्रसाद से प्राप्त हुई थी)। पांचवीं 'कामरूपसिद्धि' अर्थात् चाहे जो रूप धारण कर लेना। छठी 'परकाया प्रवेश', सातवीं 'स्वच्छन्दमरणसिद्धि' अर्थात् काल के वश में होकर न मरना यानी इच्छा मृत्यु। आठवीं 'देवक्रीड़ानुदर्शनसिद्धि' अर्थात् स्वर्ग में देवता जो क्रीड़ा करते हैं, उन्हें यहां से देखना और वैसी क्रीड़ा स्वयं कर लेना। नौवीं 'यथासंकल्प संसिद्धि' अर्थात् संकल्पित वस्तु तुरंत प्राप्त कर लेना, संकल्पित कार्य तुरंत सिद्ध कर लेना। दसवीं 'अप्रतिहतगति और आज्ञा' अर्थात् आज्ञा और गति का कहीं भी न रुकना। इस सिद्धि से योगीजन अपनी आज्ञा से राजा का भी सिर झुका देते हैं। ऐसे योगी कहीं भी जा सकते हैं।

क्षुद्र सिद्धियां

क्षुद्र सिद्धियां पांच हैं—पहली 'त्रिकालज्ञता'—भूत, भविष्य, वर्तमान—इन तीनों कालों का ज्ञान। दूसरी 'अद्वन्द्वता'—शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मृदु-कठिन आदि द्वन्द्वों के वश में न होना। तीसरी 'परचित्ताद्यभिज्ञता'—दूसरों के मन का हाल जानना, दूसरों के देखे हुए स्वप्नों को जान लेना। चौथी 'प्रतिष्टम्भ'—अग्नि, वायु, जल, शस्त्र, विष और सूर्य के ताप का कोई असर न होना। पांचवीं 'अपराजय'—सबके लिए अजेय होकर सब पर जयलाभ करना। इन सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के साधन हैं। मन में तरह-तरह की कामनाएं रखे हुए लोग इष्टसिद्धि के साधन में महान कष्ट सहते हैं। परन्तु भगवान् कहते हैं कि इन अनेक प्रकार के साधनों के बिना सब सिद्धियों की प्राप्ति जिस एक धारणा से होती है, वह मैं तुम्हें बताता हूं—

जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितस्वात्मनो मुने ।
मद्धराणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ।।

अर्थात् पंचज्ञानेन्द्रियों और पंचकर्मेन्द्रियों को जिसने शम-दम आदि से जीता है, प्रखर वैराग्य

के द्वारा जिसने प्राण एवं अपान को अपने वश में किया है, विवेक बल से जिसने अपने चित्त को सावधान बनाया है तथा मेरे चिन्तन से जिसने मनोजय लाभ किया है और इस प्रकार जो सतत् मेरा ही ध्यान करता है, उसके लिए कौन-सी सिद्धि दुर्लभ है? सब सिद्धियां उसकी दासियां बनकर सदा उसके समीप रहती हैं। परंतु उसको चाहिए कि वह इन सिद्धियों का अपने स्वार्थ में प्रयोग न करे। सिद्धियां किसी को जन्मतः, किसी को दिव्य औषधियों से, किसी को मन्त्र से, किसी को तप से और किसी को योगाभ्यास से प्राप्त होती हैं।

सांप का वायुभक्षण करके रहना, मत्स्य का जल में तैरना, पक्षी का आकाश में उड़ना—ये जन्मतः प्राप्त सिद्धियां हैं। राजहंस का नीरक्षीर विवेक, कोकिल का मधुर स्वर, चकोर का चन्द्रामृतप्राशन—ये भी जन्मसिद्ध सिद्धियां हैं। औषधियों से प्राप्त होने वाली सिद्धियों के सम्बन्ध में कहा गया है कि मंगलवार की चतुर्थी अर्थात् अहंकार की चतुर्थी का व्रत श्वेतमन्दार के नीचे बैठकर जो कोई बराबर इक्कीस वर्ष तक करता रहेगा, उसे वृक्ष के नीचे श्रीगणेशजी की मूर्ति मिलेगी। इससे उसे सभी बिद्याओं का ज्ञान प्राप्त होगा तथा उसका घर धन-धान्य से भर जाएगा।

अजानवृक्ष का लासा चाटने वाला आदमी अजर-अमर हो जाता है। नित्य कड़वा नीम खाने वाले पर कोई विष असर नहीं करता। पातालगारुड़ी का मुख प्राशन करने वाले को देह-दुःख से कोई क्लेश नहीं होता। पूतिकावृक्ष की जड़ महाशक्ति की एक मूर्ति ही है। इस जड़ को हाथ में रखकर कोई चाहे तो अप्सराओं के बीच में जा सकता है और उनसे क्रीड़ा कर सकता है। ऐसी-ऐसी कितनी ही औषधियां हैं, जिनसे विलक्षण सिद्धियां प्राप्त होती हैं। परन्तु इन्हें पाना सचमुच बड़ा ही कठिन होता है। तप से होने वाली सिद्धियों के विषय में बताते हैं कि कृच्छ, पराक्, चान्द्रायण आदि व्रत, मेघ की जलधारा में बैठे रहना, जल में खड़े होना आदि—इन साधनों को जिस भावना से किया जाता है, उससे वही सिद्धि प्राप्त होती है।

मन्त्रसिद्धि के सम्बन्ध में कहा गया है—यदि रातभर शव पर बैठकर अनुष्ठान करें तो प्रेतदेवता प्रसन्न होते हैं और भूत, भविष्य, वर्तमान अर्थात् त्रिकाल के ज्ञान की सिद्धि होती है। सूर्यमन्त्र का अनुष्ठान करने से दूरदर्शन सिद्धि प्राप्त होती है। मन्त्र जैसा हो और जैसी बुद्धि हो, वैसी ही सिद्धि मिलती है। इन सब सिद्धियों के रहने का एक निधान योगधारणा है। आसन दृढ़ कर प्राणापान को एक करके जो योगधारणा करता है, उसे सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

ऐसा होने पर भी भगवान् शिव कहते हैं कि यह सब कुछ भी न करके जो मुझ एक परमात्मा को अपने हृदय में धारण करता है, सभी सिद्धियां उसके चरण तले आ जाती हैं। चारों मुक्तियां स्वभाव से ही उसकी दासियां होकर रहती हैं। अनेक सिद्धियों की धारणा से मेरी सलोकता, समीपता और सरूपता भी नहीं प्राप्त होती, सायुज्यता की तो कोई बात ही नहीं। जो मेरे अनघ अनन्य भक्त-मुक्ति को भी छोड़कर मेरी भक्ति में ही नित्य तृप्त होते हैं, वे मेरे लिए पूज्य हैं।

परमसिद्धि अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति

मनुष्य का सारा प्रयास आनन्दलाभ के लिए है। ऊपर जिन सिद्धियों के लाभ के प्रचण्ड घटाटोप का कुछ वर्णन हुआ, उन सिद्धियों का लक्ष्य भी आनन्द ही होता है। परंतु आनन्द को भी परखकर ग्रहण करना चाहिए। आनन्द तीन प्रकार के हैं—इन्द्रियगम्य, मनोगम्य और बुद्धिगम्य।

इन्द्रियगम्य आनन्द पशु का, मनोगम्य आनन्द मनुष्य का और बुद्धिगम्य आनन्द 'बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्' है, जिसे संत या भक्त लेते हैं। इसी को 'परमानन्द' भी कहते हैं।

गुप्त होकर परगट होवे, जावे मथुरा कासी ।
ब्रह्मरन्ध्र से प्राण निकाले, सत्य लोक का बासी ।।
सोई कच्चा बे कच्चा बे । नहीं गुरु का बच्चा बे ।।

बड़ी-बड़ी सिद्धियों से प्राप्त होने वाला आनन्द शाश्वत आनन्द नहीं है, परमानन्द नहीं है। वैसा आनन्द लेने वाले योगी को कच्चा ही कहा गया है। इसलिए वास्तविक कल्याण की इच्छा रखने वाले पुरुष को ऐसे आनन्द के पीछे न पड़कर परमानन्द की प्राप्ति में ही प्रयत्नवान होना चाहिए। यही सच्चा पुरुषार्थ है। इस परमानन्द का साधन श्रीभगवान् इस प्रकार बताते हैं—

निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनः ।
परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ।।

इस प्रकार चित्तदेवता सत्वगुण है, इन्द्रिय रजोगुण हैं और विषय तमोगुण। यही परमानन्द का आवरण है। परमानन्द को छिपा रखने वाले यही प्रकृति के तीन गुण हैं, ये ही परमानन्द की प्राप्ति में बाधक हैं। इन तीन गुणों को छोड़कर जो मेरे निर्गुण ब्रह्मस्वरूप का ध्यान करता है, वह परमानन्द का लाभ करता है। (निर्गुण का अर्थ है प्रकृतिगुणों के परे जो दिव्यगुण है, वह भगवान् शिव का सगुण-साकार रूप प्राकृत नहीं बल्कि दिव्य है। शिव का कहना है कि 'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' अर्थात् जो जन्म-कर्म को तत्त्वतः जान लेता है, वह देह छोड़कर मुझे प्राप्त होता है, पुनर्जन्म को नहीं।) मेरे ध्यान से परमानन्द लाभ होता है और इस आनन्द में उसकी सब इच्छाएं विलीन हो जाती हैं। सूर्योदय के होते ही चन्द्र सहित सब नक्षत्र जिस तरह लुप्त हो जाते हैं, उसी तरह परमानन्द में करोड़ों इच्छाएं मिलकर शेष हो जाती हैं। इन्द्रिय सुख की बातें तो मारे लज्जा के जहां की तहां ही ठंडी हो जाती हैं। भगवान् शिव कहते हैं—हे रावण सुनो! जब तक परमानन्द नहीं मिलता, तब तक लाख उपाय करने पर भी काम की निवृत्ति नहीं होती। इसलिए प्रत्येक साधक को परमानन्द पाने में ही यत्नवान होना चाहिए। यही परमसिद्धि है।

तांत्रिक साधनाओं में गुरु का महत्व

प्राचीन काल से ही विद्याध्ययन की परम्परा ज्ञानी ऋषियों-मुनियों के सान्निध्य में लम्बे समय तक रहकर की जाती रही है। इस प्रकार जितने भी प्रख्यात विद्वान हुए हैं, उनमें आदिकालीन ऋषियों को गुरुकुल परम्परा में ही गुरु के आश्रम में रहकर शिक्षा मिली है। इसके उदाहरण शास्त्रों में मिलते हैं। अतः यह तथ्य निर्विवाद सत्य है कि बिना सक्षम गुरु के किसी भी विद्या को धारण करना या उसमें प्रवीणता हासिल करना असम्भव तो नहीं परन्तु दुष्कर अवश्य होता है। अतः गुह्य विद्याओं की साधना में जिनके विषय में साधक या शिष्य कुछ भी नहीं जानता, उनका अभ्यास निश्चय ही गुरु के सान्निध्य में ही होना चाहिए। साधना का श्रीगणेश गुरु से ही होता है, अतएव साधना के प्रायः सभी मार्गों में गुरु का पद सर्वोच्च स्वीकार किया गया है।

गुरु महिमा का गुणगान प्रायः सभी आध्यात्मिक एवं वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। किन्तु तन्त्रशास्त्र जो एक अत्यन्त गुह्य विद्या है, इसमें गुरु की महत्ता सर्वोपरि है। तन्त्र-गुरु और इष्टदेव में अभेद का वर्णन किया गया है। साधक के प्रति तन्त्र का वाक्य है— **यथा देवे तथा मन्त्रे यथा**

मन्त्रे तथा गुरौ । यथा गुरौ तथा स्वात्मन्येवं भक्तिक्रमः स्मृतः ।। यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थवाचकाः । तथा मन्त्रो देवता च गुरुश्चैकार्थवाचकाः ।।

इसी प्रकार पुनः कहा गया है— **शिरःपद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरुः । तत्समो नास्ति देवेशि पूज्यो हि भुवनत्रये । तदंशं चिन्तयेद्देवि बाह्ये गुरुचतुष्टयम् ।।**

अर्थात् मूलाधारादि षड्चक्रों में सर्वोपरि स्थान श्रीगुरुदेव का ही नियत किया गया है। अधोमुख सहस्रदल-कमल कर्णिकान्तर्गत मृणाली, चित्रिणी नाड़ी से भूषित गुरु मन्त्रात्मक द्वादश पद्म में अ क थ आदि त्रिरेखा और ह ल क्ष कोण से भूषित कामकला त्रिकोण में नाद-बिन्दुरूपी मणिपीठ अथवा हंसपीठ पर शिवस्वरूप श्रीगुरु का स्थान है। तन्त्रवर्णित श्रीगुरु का ध्यान शिव-शक्ति का ध्यान है—

निजशिरसि श्वेतवर्णं सहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गत चन्द्रमण्डलोपरि स्वगुरुं सच्चिदानन्दविग्रहं चतुर्भुजं ज्ञानमुद्रापुस्तकवराभयकरं त्रिनयनं प्रसन्नवदनेक्षणं सर्वदेवदेवं वामांगे वामहस्तधृतलीलाकमलया रक्तवसनाभरणया स्वप्रियया दक्षभुजेनालिंगितं परमशिवस्वरूपं शान्तं सुप्रसन्नं ध्यात्वा तच्चरणकमलयुगलविगलदमृतधारया स्वात्मानं प्लुतं विभाव्य मानसोपचारैराराध्य ।

अर्थात् तन्त्र में श्रीगुरु का सर्वोच्च पद स्वीकार किया गया है, अतः तन्त्रमतानुयायी साधक के लिए गुरुपूजा अत्यावश्यक मानी गयी है। गुरुपूजा के बिना साधक की सब साधना निष्फल हो जाती है— **गुरुपूजां बिना देवि स्वेष्टपूजां करोति यः । मन्त्रस्य तस्य तेजांसि हरते भैरवः स्वयम् ।।**

इसी प्रकार 'रुद्रयामल तन्त्र' में कहा गया है— **पूजाकाले च चार्वंगि आगच्छेच्छिष्यमन्दिरम् । गुरुर्वा गुरुपुत्रो वा पत्नी वा वरवर्णिनि ।। तदा पूजां परित्यज्य पूजयेत्स्वगुरुं प्रिये । देवतापूजनार्थं यद् गन्धपुष्पादिकंच यत् ।। तत्सर्वं गुरवे दद्यात्पूजयेन्नगनन्दिनि । तदैव सहसा देवि देवता प्रीतिमाप्नुयात् ।।**

श्रीगुरु पूजा का विस्तृत वर्णन तन्त्रों में किया गया है। देवोपासना के पंचांग की तरह 'गुरुपटल', 'गुरुपद्धति', 'गुरुकवच', 'गुरुस्तोत्र' और 'गुरुसहस्रनाम' आदि अनेक तन्त्र-ग्रन्थों में गुरु नाना प्रकार से वर्णित है। 'स्कन्दपुराण' के अन्तर्गत गुरुगीता प्रसिद्ध है। 'रुद्रयामल तन्त्र' का गुरुपादुकास्तोत्र एक अद्‌भुत चमत्कारी रहस्यमय स्तोत्र है। 'वामकेश्वर तन्त्र' में गुरुस्तव वर्णित है। 'कुब्जिका तन्त्र' में श्लोकों का श्रीगुरुस्तोत्र है। इसमें शिवरूप से श्रीगुरु की स्तुति की गयी है। 'श्रीशिवोक्त पादुका' का पंचक विख्यात है। कालीचरण की 'अमला' नामक टीका में इससे सम्बंधित गूढ़ रहस्य खोला गया है।

तन्त्रवर्णित श्रीगुरुपूजा में सबसे विचित्र बात श्रीगुरुमण्डलार्चन है। गुरुमण्डलार्चन-मन्त्र कई तन्त्रग्रन्थों में मिलता है। यह एक अपूर्व, अद्‌भुत एवं रहस्यमय मंत्र है। प्रायः किसी भी तन्त्रग्रन्थ में इसका विस्तृत रहस्य नहीं खोला गया है। किसी-किसी तन्त्र में कहीं-कहीं इसका उल्लेख देखने में आता है। 'आम्नायसप्तविंशति रहस्य' में इसका अधिकतर रहस्य खोला गया है। इस ग्रन्थ में आम्नायभेद से देवसमूह का विभाग करके श्रीगुरुमण्डल के देवताओं का उल्लेख हुआ है। श्रीगुरुमण्डलार्चन के समय साधक पृथक-पृथक देवता का मन्त्रसहित नाम उच्चारण करके अन्त में **श्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः** उच्चारण करते हैं। यहां देवताओं के मंत्र लेखावृद्धि

एवं गुह्यतम होने के कारण नहीं दिए जा रहे हैं।

मन्त्र— ॐ श्रीनाथदिगुरुत्रषं गणिपतिं पीठत्रयं भैरवं सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् । वीरानष्ट चतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीं पंचकं, श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ।।

'आम्नायसप्तविंशति रहस्य' में इसका अधिक उल्लेख नहीं किया गया; किन्तु विद्यार्णव-निबन्ध में जिन ओघत्रय (दिव्य, सिद्ध और मानव) का षोडशोपासना में वर्णन है, वे रूपान्तर से आम्नायसप्तविंशति रहस्य में दिए गए हैं—

❑ दिव्यौघ—1. श्रीशिवानन्दनाथ पराशक्त्यम्ब, 2. श्रीसदाशिवानन्दनाथ चिच्छक्त्यम्बा, 3. श्रीईष्वरानन्दनाथ आनन्दशक्त्यम्बा, 4. श्रीरुद्रदेवानन्दनाथ इच्छाशक्त्यम्बा, 5. श्रीविष्णुदेवानन्दनाथ ज्ञानशक्त्यम्बा, 6. श्रीब्रह्मदेवानन्दनाथ क्रियाशक्त्यम्बा,

❑ सिद्धौघ—1. श्रीसनकानन्दनाथ, 2. श्री सनन्दनानन्दनाथ, 3. श्रीसनातनानन्दनाथ, 4. श्रीसनत्कुमारानन्नाथ, 5. श्रीशौनकानन्दनाथ, 6. श्रीसनत्सुजातानन्दनाथ, 7. श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ, 8. श्रीरैवतानन्दनाथ 9. श्रीवामदेवानन्दनाथ, 10. श्रीव्यासानन्दनाथ, 11. श्रीशुकानन्दनाथ।

❑ मानबौघ—1. श्रीनृसिंहानन्दनाथ, 2. श्रीमहेन्द्रानन्दनाथ, 3. श्रीमहेशानन्दनाथ, 4. श्रीभास्करानन्दनाथ, 5. श्रीमहेन्द्रानन्दनाथ, 6. श्रीमाधवानन्दनाथ, 7. श्रीविष्णुदेवानन्दनाथ।

कादि विद्या के उपासकों के दक्षिणामूर्ति संप्रदायानुसार नाम—

❑ दिव्यौघ—1. परप्रकाशानन्दनाथ, 2. परशिवानन्दनाथ, 3. पराशक्त्यम्बानन्दनाथ, 4. कौलेश्वरानन्दनाथ, 5. शुक्लदेव्यम्बानन्दनाथ, 6. कुलेश्वरानन्दनाथ, 7. कामेश्वर्यम्बानन्दनाथ, 8. कौलेश्वरानन्दनाथ।

❑ सिद्धौघ—भोगानन्दनाथ, 2. क्लिन्नानन्दनाथ, 3. समयानन्दनाथ, 4. सहजानन्दनाथ।

❑ मानबौघ—1. गगनानन्दनाथ, 2. विश्वानन्दनाथ, 3. विमलानन्दनाथ, 4. मदनानन्दनाथ, 5. भुवनानन्दनाथ, 6. लीलानन्दनाथ, 7. स्वात्मानन्दनाथ, 8. प्रियानन्दनाथ।

'ज्ञानार्णव-तन्त्र' के मत से षोडशी-उपासना में भी ओघत्रय की यही परम्परा है।

हादिविद्योपासकानां परम्परा

❑ दिव्यौघ—1. परमशिवानन्दनाथ, 2. कामेश्वर्यम्बानन्दनाथ, 3. दिव्यौघानन्दनाथ, 4. महौघानन्दनाथ, 5. सर्वानन्दनाथ, 6. प्रज्ञादेव्यम्बानाथ, 7. प्रकाशानन्दनाथ।

❑ सिद्धौघ—1. दिव्यानन्दनाथ, 2. चिदानन्दनाथ, 3. कैवल्यानन्दनाथ, 4. सिद्धानन्दनाथ, 5. महोदयानन्दनाथ, 6. अनुदेव्यम्बानन्दनाथ।

❑ मानबौघ—1. परानन्दनाथ, 2. मनोहरानन्दनाथ, 3. स्वात्मानन्दनाथ, 4. प्रतिभानन्दनाथ, 5. कमलानन्दनाथ, 6. रामानन्दनाथ, 7. विस्श्वानन्दनाथ (विश्वशक्तयानन्दनाथ), 8. चिदानन्दनाथ।

षोडश्युपासकानां परम्परा-विद्यार्णवनिबन्धे

❑ दिव्यौघ—1. व्योमस्थाम्बा, 2. व्योमचारिण्यम्बा, 3. व्योमाकाम्बा, 4. व्योमेश्यम्बा, 5. व्योमातीताम्बा।

❑ सिद्धौघ—1. उमानाकाशानन्दनाथ, 2. इन्द्वाकाशानन्दनाथ, 3. अनाहताकाशानन्दनाथ, 4. ध्वनिमात्राकाशानन्दनाथ, 5. ध्वन्याकाशानन्दनाथ, 6. शक्तयाकाशानन्दनाथ, 7. व्यापकाशाननन्दनाथ, 8. समनाकाशानन्दनाथ, 9. विन्द्वाकाशानन्दनाथ।

❑ मानबौघ—1. परमात्मानन्दनाथ, 2. विश्वानन्दनाथ, 3. प्रसन्नानन्दनाथ, 4. चिदानन्दनाथ, 5. सम्भ्रमानन्दनाथ, 6. लीलानन्दनाथ, 7. वाग्भवानन्दनाथ, 8. चिन्मुद्रानन्दनाथ, 9. शाम्भवानन्दनाथ।

मन्वादिविद्यानां परम्परा

❑ दिव्यौघ—1. अघोरानन्दनाथ, 2. पुरुषानन्दनाथ, 3. सिद्धानन्दनाथ, 4. मोक्षानन्दनाथ, 5. कामेश्वर्यम्बानन्दनाथ, 6. परविमर्शानान्दनाथ, 7. परप्रकाशानन्दनाथ, 8. अमृतानन्दनाथ।

❑ सिद्धौघ—1. प्रकाशानन्दनाथ, 2. उत्तमानन्दनाथ, 3. सिद्धौघानन्दनाथ, 4. सदानन्दनाथ।

❑ मानबौघ—1. शंकरानन्दनाथ, 2. गोविन्दानन्दनाथ, 3. सिद्धानन्दनाथ, 4. सर्वानन्दनाथ, 5. सर्वज्ञानन्दनाथ, 6. परमानन्दनाथ, 7. उत्तरानन्दनाथ।

परोपासकानामोघत्रयम्

❑ दिव्यौघ—1. परा भट्टारिका, 2. श्रीकण्ठ, 3. अघोर।

❑ सिद्धौघ—1. त्र्यम्बक, 2. क्रोध, 3. शक्तिधर।

❑ मानबौघ—1. योग, 2. श्रीराम, 3. ज्ञान, 4. मधुरादेव्यम्बा, 5. संविदानन्द, 6. वीर, 7. प्रतिभादेव्यम्बा, 8. आनन्द।

❑ **गुरुत्रयम्—** 1. श्रीमदुमाम्बासहित श्रीविश्वनाथनन्दनाथ श्रीगुरु, 2. श्रीमदन्नपूर्णाम्बसहित श्रीविश्वेरानन्दनाथ श्रीपरमगुरु, 3. श्रीमत्पराम्बासहित श्रीपरात्मानन्दनाथ श्रीपरमेष्ठिगुरु।

❑ **गणपति—** श्रीमहागणपति।

❑ **पीठत्रयम्—** 1. श्रीजालन्धरपीठ रुद्रात्मकश्ज्ञक्तयम्ब, 2. श्रीपूर्णगिरिपीठ विष्णुवात्मकशक्तयाम्ब, 3. श्रीकामगिरिपीठ ब्रह्मात्मकशक्तयम्बा।

❑ **भैरव—** 1. श्रीभ्रमरभास्कर भैरव, 2. श्रीनामोनिर्मल भैरव, 3. श्रीचण्ड भैरव, 4. श्रीरविभक्ष्य भैरव (रविभैरव आम्राय), 5. एकात्मक भैरव (एकान्त, आम्नाय), 6. श्रीफट्कार भैरव, 7. श्रीषट्चक्र भैरव, 8. श्रीमन्थान भैरव।

❑ **सिद्धौघ—** 1. श्रीमहादर्मनाम्बा सिद्ध, 2. श्रीविधिशालीनाम्बा सिद्ध, 3. श्रीखराननाम्बा सिद्ध, 4. श्रीकराल्याम्बा सिद्ध, 5. श्रीभीमाम्बा सिद्ध, 6. श्रीत्रिबाणाम्बा सिद्ध (शवीबीजाम्बा सिद्ध आम्नाय), 7. श्रीकरालिकाम्बा सिद्ध, 8. श्रीसुन्दर्यम्बा सिद्ध।

❑ **वटुकत्रयम्—** 1. श्रीविरंचि वटुक, 2. श्रीचित्र वटुक, 3. श्रीस्कन्द वटुक।

❑ **पदयुगम्—** 1. श्रीविमर्शचरणम्, 2. श्रीप्रकाशचरणम्।

❑ **दूतीक्रम—** 1. श्रीपद्मयोनि सिद्धनाथाम्बा दूती आम्नायसप्तविंशति रहस्य में केवल आट दूतियां वर्णित हैं, प्रथम और द्वितीय नहीं, 2. श्रीपद्मयोनिसिद्धनाथाम्बा दूती, 3. श्रीशंखयोनिसिद्धनाथाम्बा दूती, 4. श्रीदिव्ययोनि सिद्धनाथाम्बा दूती, 5. श्रीमहायोनि सिद्धनाथम्बा दूती, 6. श्रीमहायोन्याम्बा दूती, 7. श्रीयोनि सिद्धनाथाम्बा दूती, 8. श्रीयोन्यम्बा दूती, 9. श्रीशंखयोन्यम्बा दूती, 10. श्रीसिद्धयोन्यम्बा दूती।

❑ **मण्डलम्—** 1. सोममण्डल, 2. अग्निमण्डल, 3. सूर्यमण्डल।

❑ **वीरा अष्ट—** 1. श्रीसृष्टिवीरभैरव, 2. श्रीकालाग्निरुद्रवीरभैरव, 3. श्रीमार्तण्डवीरभैरव, 4. श्रीपरमार्कवीरभैरव, 5. श्रीभद्रवीरभैरव, 6. श्रीमृत्युवीरभैरव, 7. श्रीयमवीरभैरव, 8. श्रीरक्तबीरभैरव, 9. श्रीसंहारवीरभैरव, 10. श्रीस्थितिवीरभैरव।

❑ **चतुष्कषष्टि—** श्रीमंगलनाथ, चण्डिक, कन्तुका, पटह्य, कूर्म, धनदा, गन्ध, गगन, मतंग, चम्पका, कैवर्त, मातंगम्, सूर्यभक्ष्य, नमोभक्ष्य, स्तौतिका, रूपिका, दंष्ट्रापूज्य, धूम्राक्ष, ज्वाला, गान्धार, गगनेश्वर, माया, महामाया, नित्या, शान्ता, विश्वा, कामिनी, उमा, श्रिया, सुभगा, सर्वगा, लक्ष्मी, विद्या, मीना, अमृता, चन्द्र, अन्तरिक्ष, सिद्धा, श्रद्धा, अनन्ता, शम्बरा, उल्क, त्रैलोक्या, भीमा, राक्षसी, मलिना, प्रगचण्डा, अनंगविधि, रवि, अनाभिमता, नन्दिनी, अभिमता, सुन्दरी, विश्वेशा, काल, महाल, अभया, विकार, महाविकार, सर्वगा, सकला, पूतना, षार्वरी, व्योमां।

❑ **नवकम्—** 1. सर्वसंक्षोभणी, 2. सर्वयोनि, 3. सर्वबीजेश्वरी, 4. सर्वखेचरी, 5. सर्वमहांकुशे, 6. सर्वोन्मादिनी, 7. सर्ववशंकरी, 8. सर्वाकर्षिणी, 9. सर्वविद्राविणी

आम्नायसप्तविंशति रहस्य के अनुसार-1. मुद्रानवकाम्बा, 2. (क) महिषमर्दिनी दुर्गाम्बा, (ख) जयदुर्गाम्बा, (ग) वनदुर्गाम्बा, 3. ताराम्बा, 4. महाकाल्यम्बा, 5. वाग्वादिन्यम्बा, 6. मिश्राम्बा, 7. अश्वारूढ़ाम्बा, 8. महार्धाम्बा, 9. तुरीयाम्बा।

❑ **वीरावली—** 1. श्रीसदाशिववीरावली, 2. श्रीईश्वरवीरावली, 3. श्रीरुद्रवीरावली, 4. श्रीविष्णुवीरावली, 5. श्रीब्रह्मवीरावली। (विशेष—मन्त्र में 'वीर' की गणना 8 है, किन्तु ग्रन्थों में 10 दिए गए हैं)।

❑ **पंचकम्—**

पंच लक्ष्य—

1. श्रीमहालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीविद्यालक्ष्म्यम्बा।

2. श्रीमहा .... श्रीएकाक्षरलक्ष्मीलक्ष्म्यम्बा।
3. श्रीमहा .... श्रीमहालक्ष्मीलक्ष्म्यम्बा।
4. श्रीमहा .... श्रीत्रिशक्तिलक्ष्मीलक्ष्म्यम्बा।
5. श्रीमहा .... श्रीसर्वसाम्राज्यलक्ष्मीलक्ष्म्यम्बा।

पंचकोश—

1. श्रीमहाकोशेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीविद्याकोशाम्बा।
2. श्रीमहा .... श्रीपरज्योतिः कोशाम्बा।
3. श्रीमहा .... श्रीपरनिष्कलशाम्भवीकोशाम्बा।
4. श्रीमहा .... श्रीअजपाकोशाम्बा।
5. श्रीमहा .... श्रीमातृकाकोशाम्बा।

पंच कल्पलता—

1. श्रीमहाकल्पलतेश्वरी वृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीविद्याकल्पलताम्बा।
2. श्रीमहा .... श्रीत्वरिता कल्पलताम्बा।
3. श्रीमहा .... श्रीपारिजातेश्वरी कल्पलताम्बा।
4. श्रीमहा .... श्रीत्रिपुटा कल्पलताम्बा।
5. श्रीमहा .... श्रीपंचबाणेश्वरीकल्पलताम्बा।

पंच कामदुधा—

1. श्रीमहाकामदुधेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्व सौभाग्यजननी श्रीविद्या कामदुधाम्बा।
2. श्रीमहा .... श्रीअमृतपीठेश्वरी कामदुधाम्बा।
3. श्रीमहा .... श्रीसुधांसूः कामदुधाम्बा।
4. श्रीमहा .... श्रीअन्नपूर्णा कामदुधाम्बा।
5. श्रीमहा .... श्रीअमृतेश्वरी कामदुधाम्बा।

पंच रत्नविद्या—

1. श्रीमहारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीविद्यारत्नाम्बा।
2. श्रीमहा .... श्रीसिद्धिलक्ष्मीरत्नाम्बा।
3. श्रीमहा .... श्रीमातंगेश्वरीरत्नाम्बा।
4. श्रीमहा .... श्रीभुवनेश्वरीरत्नाम्बा।
5. श्रीमहा .... श्रीवाराहीरत्नाम्बा।

इति पंचपंचिका।

❑ **श्रीमन्मालिनी—**

ऊं अं आं .... क्षं।

❑ **मन्त्रराज—**

श्रीनृसिंहमन्त्र—

उपरोक्त विवरण से तान्त्रिक उपासनाओं की गम्भीरता स्पष्ट होती है। तन्त्रवर्णित श्रीगुरु आजकल के नाना आडम्बरभूषित गुरु से सर्वथा भिन्न हैं। तन्त्रानुसार श्रीगुरु इष्टदेव के ही रूप हैं। तन्त्रमतानुयायी साधकों द्वारा गुरु साधना करने से न केवल मन्त्रदाता गुरु की पूजा होती है, अपितु स्वेष्टदेवाभिन्न शिव-शक्ति सामरस्यत्वरूप नादबिन्दुकलातीत परमानन्द तत्त्व की पूजा होती है। यही तन्त्रवर्णित श्रीगुरु और श्रीगुरुसाधना की अद्‌भुत सर्वोत्कृष्टता है।

तांत्रिक साधना विविध सोपान

तांत्रिक विद्या की गोपनीयता के कारण इसकी साधना विधि एवं साधकों की पात्रता आदि के सम्बन्ध में उचित निर्णय एक योग्य-सिद्ध गुरु ही कर सकता है। संसार में जितने प्रकार के साधन हैं, उनमें चार प्रकार के साधन श्रेष्ठ हैं। प्रथम वेदविहित साधनचतुष्टय; द्वितीय सांख्यप्रदर्शित साधनत्रय; तृतीय योगशास्त्रोक्त साधन की रीति तथा चतुर्थ तन्त्रशास्त्रोक्त साधन प्रणाली। परन्तु कलिकाल में केवल तन्त्रशास्त्रोक्त साधन ही प्रशस्त और सिद्धिप्रद हैं। यही शास्त्र की उक्ति है। 'महानिर्वाण तन्त्र' में कहा गया है—

तपःस्वाध्यायहीनानां नृणामल्पायुषामपि ।
क्लेशप्रयासाशक्तानां कुतो देहपरिश्रमः ।।
गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा आगमोक्ताः कलौ शिवे ।
नान्यमार्गैः क्रियासिद्धिः कदापि गृहमेधिनाम् ।।

अर्थात् कलिकाल में मनुष्य तप से हीन, वेदपाठ से रहित और अल्पायु होंगे। वे दुर्बलता के कारण उस प्रकार के क्लेश और परिश्रम को सहने में समर्थ नहीं होंगे। अतएव उनसे दैहिक परिश्रम किस प्रकार सम्भव हो सकता है? कलिकाल में गृहस्थ लोग केवल आगमोक्त विधानों के अनुसार ही कर्मानुष्ठान करेंगे। दूसरे प्रकार की विधियों से अर्थात् वैदिक, पौराणिक और स्मार्त्तसम्मत विधियों का अवलम्बन करके क्रियानुष्ठान करने से कदापि सिद्धिलाभ करने में समर्थ नहीं होंगे।

षट्‌चक्र भेद

तांत्रिकाचार्यों ने साधना विधि को दो प्रकार का बताया है—बहिर्याग और अन्तर्याग। बहिर्याग में गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, तुलसी, बिल्वपत्र और नैवेद्यादि के द्वारा पूजा की जाती है। अन्तर्याग में इन सब बाह्य वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती। मानसोपचार के उपकरण स्वतंत्र होते हैं। इसमें पंचभूतों द्वारा कल्पना करनी पड़ती है। जैसे—

पृथिव्यात्मकगन्धः स्यादाकाशात्मकपुष्पकम् ।
धूपो वाय्वात्मकः प्रोक्तो दीपो वह्यात्मकः परः ।।
रसात्मकं च नैवेद्यं पूजा पंचोपचारिका ।।

अर्थात् पृथ्वीतत्त्व को गन्ध, आकाशतत्त्व को पुष्प, वायुतत्त्व को धूप, तेजस्तत्त्व को दीप तथा रसात्मक जलतत्त्व की नैवेद्य के रूप में कल्पना करके पंचोपचार द्वारा पूजा करनी पड़ती

है। इसी का नाम अन्तर्याग है। षट्चक्रों का भेद ही इस अन्तर्याग का प्रधान अंग है।

षट्चक्रों का अभ्यास हुए बिना आत्मज्ञान नहीं होता; क्योंकि किसी वस्तु के प्रत्यक्ष हुए बिना मन का सन्देह नहीं छूटता, अतएव वास्तविक ज्ञान नहीं होता। दार्शनिक विचारों के द्वारा केवल मौखिक ज्ञान होता है, यथार्थ ज्ञान नहीं होता। इसके प्रत्यक्ष होने का उपाय है षट्चक्र-साधन।

षट्चक्र क्या हैं

इड़ा और पिंगला नामक दो नाड़ियों के मध्य जो सुषुम्ना नामक नाड़ी है, उसकी छः ग्रन्थियों में पद्माकार के छः चक्र संलग्न हैं। यथा—गुह्यस्थान में, लिंगमूल में, नाभिदेश में, हृदय में, कण्ठ में और दोनों भ्रू के बीच में। इन छः चक्रों की सुषुम्ना-नाल की छः जीवात्मा का परमात्मा के साथ संयोग करना पड़ता है। इसी को प्रकृत योग कहते हैं। जैसे—

न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।
ऐक्यं जीवाष्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ।।

योगविशारद लोग जीवात्मा के साथ परमात्मा की एकता साधन करने को ही योग के नाम से निर्देश करते हैं। योग की क्रिया-सिद्धि के अंश का नाम साधन है। अब किस स्थान में कौन सा चक्र है? इसे क्रमशः स्पष्ट करेंगे। गुह्यस्थल में मूलाधार चक्र चतुर्दलयुक्त है, उसके ऊपर लिंगमूल में स्वाधिष्ठानचक्र षड्दलयुक्त है, नाभिमण्डल में मणिपूरचक्र दशदलयुक्त है, हृदय में अनाहतचक्र द्वादश दलयुक्त है, कण्ठदेश में विशुद्धचक्र षोडशदलयुक्त है और भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र द्विदलयुक्त है। ये षट्चक्र सुषुम्ना नाड़ी में ग्रंथित हैं।

मानव-शरीर में तीन लाख पचास हजार नाड़िया हैं। इन नाड़ियों में चौदह नाड़ियां प्रधान हैं—सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, कुहू, सरस्वती पूषा, शंखिनी, पयस्विनी, वारुणी, अलम्बुषा, विश्वेदरी और यशस्विनी। इनमें भी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना—ये तीन नाड़ियां प्रधान हैं। पुनः इन तीनों में सुषुम्ना नाड़ी सर्वप्रधान है और योगसाधन में उपयोगिनी है। अन्यान्य समस्त नाड़ियां इसी सुषुम्ना नाड़ी के आश्रय से रहती हैं। इस सुषुम्ना नाड़ी के मध्यगत चित्रा नाड़ी के मध्य सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ब्रह्मरन्ध्र है। यह ब्रह्मरन्ध ही दिव्यमार्ग है। यह अमृतदायक और आनन्दकारक है। कुलकुण्डलिनी शक्ति इसी ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा मूलाधार से सहस्रार में गमन करती है और परम शिव में मिल जाती है। इसी कारण इस ब्रह्मरन्ध्र को दिव्यमार्ग कहा जाता है।

इड़ा नाड़ी वाम भाग में स्थित होकर सुषुम्ना नाड़ी को प्रत्येक चक्र में घेरती हुई दक्षिण नासापुट से और पिंगला नाड़ी दक्षिण भाग में स्थित होकर सुषुम्ना नाड़ी को प्रत्येक चक्र में परिवेष्टित करती हुई वाम नासापुट से आज्ञाचक्र में मिलती है। इड़ा और पिंगला के बीच-बीच में सुषुम्ना नाड़ी के छः स्थानों में छः पद्म एवं छः शक्तियां निहित हैं। कुण्डलिनी देवी ने अष्टधा कुण्डलित होकर सुषुम्ना नाड़ी के समस्त अंश को घेर रखा है। वे अपने मुख में अपनी पूंछ को डालकर साढ़े तीन घेरे दिए हुए स्वयंभूलिंग को वेष्टन करके ब्रह्मद्वार का अवरोध कर सुषुम्ना के मार्ग में स्थित हैं। ये कुण्डलिनी सर्प जैसा आकार धारण करके अपनी प्रभा से देदीप्यमान होकर जहां निद्रा ले रही हैं, उसी स्थान को मूलाधार चक्र कहते हैं। ये कुण्डलिनी शक्ति ही वाग्देवी हैं अर्थात् वर्णमयी बीजमन्त्रस्वरूपा हैं। यही सत्व, रज और तम—इन तीनों गुणों की मूलस्वरूपा

प्रकृति देवी हैं। इस कन्द के बीच में बन्धूक पुष्प के समान रक्तवर्ण कामबीज विराजमान है। इस स्थान में द्विरण्ड नामक एक सिद्धलिंग और डाकिनी शक्ति रहती है।

जिस समय योगी मूलाधार स्थित स्वयंभूलिंग का चिन्तन करता है, उस समय उसकी समस्त पापराशि क्षणमात्र में ध्वंस हो जाती है। वह मन ही मन जिस वस्तु की कामना करता है, उसकी प्राप्ति हो जाती है। इस साधना को निरन्तर करने से साधक मुक्तिदाता के रूप में उसका दर्शन करता है।

मूलाधार चक्र के ऊपर लिंगमूल में विद्युद्वर्ण षड्दलविशिष्ट स्वाधिष्ठान नामक पद्म है। इस स्थान में बाल नामक सिद्धलिंग और देवी राकिणी शक्ति अवस्थान करती है। जो योगी सर्वदा इस स्वाधिष्ठान चक्र में ध्यान करते हैं, वे सन्देह विरहित चित्त से बहुतेरे अश्रुत शास्त्रों की व्याख्या कर सकते हैं तथा सर्वतोभावेन रोगरहित होकर सर्वत्र निर्भय विचरण करते हैं। इसके अतिरिक्त उनको अणिमादि गुणों से युक्त परम सिद्धि प्राप्त होती है।

स्वाधिष्ठानचक्र के ऊपर नाभिमूल में मेघवर्ण मणिपूर नामक दशदल पद्म है। इस मणिपूर पद्म में सर्वमंगलदायक रुद्र नामक सिद्धलिंग और परम धार्मिकी देवी लाकिनी शक्ति अवस्थान करती है। जो योगी इस चक्र में सर्वदा ध्यान करते हैं, इहलोक में उनकी कामना सिद्धि, दुःखनिवृत्ति और रोगशान्ति होती है। इसके द्वारा वे परदेह में भी प्रवेश कर सकते हैं तथा अनायास ही काल को भी वंचित करने में समर्थ हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त सुवर्णादि के बनाने, सिद्ध पुरुषों का दर्शन करने, भूतल में औषधि तथा भूगर्भ में निधि के दर्शन करने की सामर्थ्य भी उनमें उत्पन्न हो जाती है। मणिपूरचक्र के हृदयस्थल में अनाहत नामक एक द्वादशदल रक्तवर्ण पद्म है। इस पद्म की कर्णिका के बीच में विद्युतप्रभा से युक्त धूम्रवर्ण पवनदेव अवस्थित हैं। इस षट्कोण वायुमण्डल में 'यं' बीज के ऊपर ईशान नामक शिव काकिनी शक्ति के साथ विद्यमान हैं।

कुछ लोगों के मत से इन्हें त्रिनयनी शक्ति के साथ बाणलिंग कहा जाता है। इस बाणलिंग के स्मरणमात्र से इष्टादृष्ट दोनों वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं। इस अनाहत नामक पद्म में पिनाकी नामक सिद्धलिंग और काकिनी नामक शक्ति रहती है। इस अनाहतचक्र के ध्यान की महिमा नहीं कही जा सकती। ब्रह्मा प्रभृति समस्त देवगण बहुत यत्नपूर्वक इसको गुप्त रखते हैं। कण्ठमूल में विशुद्ध नामक चक्र का स्थान है। यह चक्र षोडशदलयुक्त है और धूम्रवर्ण पद्माकार में अवस्थित है। इसकी कर्णिका के बीच में गोलाकार आकाशमण्डल है। इस मण्डल में श्वेत, हस्ती पर आरूढ़ आकाश, 'हं', बीज के साथ विराजित है। इसकी गोद में अर्द्धनारीश्वर शिवमूर्ति है। दूसरे मत से इसे हर-गौरी कहते हैं। इस शिव की गोद में पीतवर्ण चतुर्भुजा शाकिनी शक्ति विराजित है।

इस चक्र में पंच स्थूल भूतों के आदिभूत महाकाल का स्थान है। इस आकाशमण्डल से ही अन्यान्य चारों स्थूल भूत क्रमशः चक्ररूप में उत्पन्न हुए हैं अर्थात् आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई है। इस चक्र में छगलाण्ड नामक शिवलिंग और शाकिनी नामक शक्ति अधिदेवता के रूप में विराजित हैं। जो प्रतिदिन इस विशुद्धचक्र का ध्यान करते हैं, उनके लिए दूसरी साधना आवश्यक नहीं होती। यह विशुद्ध नामक षोडशदल कमल ही ज्ञानरूप अमूल्य रत्नों की खान है। क्योंकि इसी से रहस्य सहित चतुर्वेद स्वयं प्रकाशित होते हैं।

ललाट मण्डल में भ्रूमध्य में आज्ञा नामक चक्र का स्थान है। इस चक्र को चन्द्रवत् श्वेतवर्ण

द्विदल पद्म कहा जाता है। इस चक्र में महाकाल नामक सिद्धलिंग और हाकिनी शक्ति अधिष्ठित हैं। इस स्थान में शरद्कालीन चन्द्र के समान प्रकाशमय अक्षर बीज (प्रणव) देदीप्यमान है। यही परमहंस पुरुष है। जो लोग इसका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, वे किसी भी कारणवश दु:ख या शोक-ताप से अभिभूत नहीं होते। पहले कहा गया है कि सुषुम्ना नाड़ी की अन्तिम सीमा ब्रह्मरन्ध्र है तथा यह नाड़ी मेरुदण्ड के आश्रय से ऊपर उठी हुई है। इड़ा नाड़ी इस सुषुम्ना नाड़ी से ही लौटकर (उत्तपर वाहिनी होकर) आज्ञापथ की दाईं ओर होकर वाम नासापुट में गमन करती है। आज्ञाचक्र में पिंगला नाड़ी भी उसी रीति से बाईं ओर से घूमकर दक्षिण नासापुट में गयी है। इड़ा नाड़ी वरणा नदी के नाम से और पिंगला नाड़ी असी नदी के नाम से अभिहित होती है।

इन दोनों नदियों के बीच में वाराणसी धाम और विश्वनाथ शिव शोभायमान हैं। योगी लोग कहते हैं कि आज्ञाचक्र के ऊपर तीन पीठस्थान हैं। उन तीनों पीठों का नाम है—बिन्दुपीठ, नादपीठ और शक्तिपीठ। ये तीनों पीठस्थान कपाल देश में रहते हैं। शक्तिपीठ का अर्थ है—ब्रह्मबीज ऊंकार। ऊंकार के नीचे निरालम्बपुरी तथा उसके नीचे षोडशदलयुक्त सोमचक्र स्थित हैं। इसके एक-एक दल से क्रमशः रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द और स्वप्न ज्ञान उत्पन्न होते हैं। इसी के नीचे आज्ञाचक्र का स्थान है। आज्ञाचक्र के नीचे तालुमूल में एक गुप्तचक्र है। इस चक्र को द्वादशदलयुक्त रक्तवर्ण पद्म कहा जाता है। इस पद्म में पंचसूक्ष्म भूतों के पंचीकरण द्वारा पंचस्थूलभूतों का प्रादुर्भाव होता है। इस चक्र के नीचे विशुद्ध चक्र का स्थान है।

इसके बाद सहस्रार चक्र का वर्णन करते हैं। आज्ञाचक्र के ऊपर अर्थात् शरीर के सर्वोच्च स्थान मस्तक में सहस्रार कमल है। इसी स्थान में विवरसमेत सुषुम्ना का मूल आरम्भ होता है। इसकी अन्तिम सीमा मूलाधार स्थित योनिमण्डल है। सहस्रार या सहस्रदलकमल शुभवर्ण है। यह तरुण सूर्य के सदृश रक्तवर्ण केशर द्वारा रंजित और अधोमुखी है। उसके पचास दलों में अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त सबिन्दु पचास वर्ण हैं। इस अक्षरकर्णिका के बीच में गोलाकार चन्द्रमण्डल है। यह चन्द्रमण्डल छत्राकार में एक ऊर्ध्वमुखी द्वादशकमल को आवृत्त किए है। इस कमल की कर्णिका में विद्युत-सदृश अकथा त्रिकोण यन्त्र मणिद्वीप के आकार का हो गया है। इस द्वीप के मध्यस्थल में मणिपीठ है। उसके बीच में नाद-बिन्दु के ऊपर हंसपीठ का स्थान है। हंसपीठ के ऊपर गुरु की पादुका है।

इसी स्थान में गुरुदेव के चरण-कमल का ध्यान करना पड़ता है। गुरुदेव ही परमशिव या परम ब्रह्म हैं। सहस्रदलकमल में चन्द्रमण्डल है, उसकी गोद में अमर कला नाम की षोडशी कला है तथा उसकी गोद में निर्वाणकला है। इस निर्वाणकला की गोद में निर्वाणशक्तिरूपा मूल प्रकृति बिन्दु और विसर्ग शक्ति के साथ परमशिव को वेष्टन किए हुए है। इसके ध्यान से साधक निर्वाण-मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। सहस्रदल स्थित परमशिव-शक्ति को वेदान्त के मत से परम ब्रह्म और माया कहते हैं तथा पद्म को आनन्दमय कोष कहते हैं। सांख्यमत से परमशिव-शक्ति को प्रकृति-पुरुष कहा जाता है। इसी को पौराणिक मत से लक्ष्मी-नारायण, राधा-कृष्ण तथा तन्त्र मत से परमशिव और परमशक्ति कहते हैं।

नवचक्र साधन विधान

'शिवसंहिता' के मत से सुषुम्ना स्थित षट्चक्रों का वर्णन संक्षेप में किया गया है। अब

अन्यान्य तंत्रों में कथित नवचक्रों का वर्णन किया जाता है। यथा— नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपंचकम् । स्वदेहे यो न जानति स योगी नामधारकः । अर्थात् शरीर में नवचक्र, षोडशाधार, त्रिलक्ष्य और पंच प्रकार के व्योम को, जो व्यक्ति नहीं जानता, वह केवल नामधारी योगी ही है। इन चक्रों को इस प्रकार जानना चाहिए—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, तालु, ब्रह्मरन्ध्र और सहस्रार।

षोडशकलाधार इस प्रकार हैं—अंगुष्ठ, पादमूल, गुह्यदेश, लिंगमूल, जठर, नाभि, हृदय, कण्ठ, जिह्वाग्र, तालु, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, नासापुट, भ्रूमध्य और नेत्र। त्रिलक्ष्य ये हैं—स्वयंभूलिंग, बाणलिंग और ज्योतिर्लिंग। पंचव्योम ये हैं—आकाश, महाकाश, पराकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश।

प्रथम चक्र साधन— प्रथम चक्र साधन में ब्रह्मचक्र अर्थात् आधारचक्र भगाकृति है। इसमें तीन आवर्त्त हैं। यह स्थान अपानवायु का मूलदेश है और समस्त नाड़ियों का उत्पत्ति स्थान है। इसी कारण इसका नाम कन्दमूल है। कन्दमूल के ऊपर अग्निशिखा के समान तेजस्वी कामबीज 'क्लीं' है। इस स्थान में स्वयंभूलिंग हैं। इन स्वयंभूलिंग को तेजोरूपा कुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन बार गोलाकार वेष्टन करके अधिष्ठित है। इस ज्योतिर्मयी कुण्डलिनी शक्ति को जीवरूपा में ध्यान करके उसमें चित्त को लय करने की शक्ति उत्पन्न होती है। यह चक्र सबका मूल गाना जाता है।

द्वितीय चक्र साधन— स्वाधिष्ठान नामक द्वितीय चक्र है। यह प्रवालांकुर के समान और पश्मिाभिमुखी है। इसमें उड्डीयान पीठ के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करने से जगत को आकर्षण करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

तृतीय चक्र साधन— मणिपूर नामक चक्र को तीसरे चक्र के नाम से जाना जाता है। यह पंच आवर्त्त से विशिष्ट विद्युद्वर्णी है। यह चित्स्वरूपा मध्यशक्ति भुजगावस्था में रहती है। उसका ध्यान करने से योगी निश्चयपूर्वक सर्वसिद्धियों का पात्र हो जाता है।

चतुर्थ चक्र साधन— अनाहत चक्र को चौथे चक्र की संज्ञा प्राप्त है। यह हृदयदेश में अधोमुख अवस्थित है। उसके बीच में ज्योतिस्वरूप हंस का यत्नपूर्वक ध्यान करके उसमें चित्तलय करना चाहिए। इस ध्यान से समस्त जगत वश में हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

पंचम चक्र साधन— विशुद्ध नामक पांचवां चक्र कालचक्र के नाम से जाना जाता है। यह कण्ठदेश में स्थित है। उसके वाम भाग में इड़ा, दक्षिण भाग में पिंगला और मध्य भाग में सुषुम्ना नाड़ी है। इस चक्र में निर्मल ज्योति का ध्यान करके चित्तलय करने से योगी सर्वसिद्धि का पात्र हो जाता है।

षष्ठ चक्र साधन— ललनावा तालु नामक छठवां चक्र है। इस स्थान को घंटिका स्थान और दशम द्वारमार्ग कहते हैं। इसके शून्य स्थान में मनोलय करने से उस लययोगी पुरुष को निश्चय ही मुक्ति प्राप्त होती है।

सप्तम चक्र साधन— आज्ञापूर नामक सातवां चक्र भ्रूचक्र के नाम से जाना जाता है। इस स्थान को बिन्दु स्थान भी कहते हैं। इस स्थान में वर्त्तुलाकार ज्योति का ध्यान करने से मोक्षपद की प्राप्ति हो जाती है।

अष्टम चक्र साधन— ब्रह्मरन्ध्र में स्थित अष्टम चक्र निर्वाण प्रदान करने वाला है। इस चक्र

में सूचिका के अग्रभाग के समान धूम्राकार जालन्धर नामक स्थान में ध्यान करके चित्तलय करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

नवम चक्र साधन— ब्रह्म चक्र नामक नौवां चक्र षोडशदल में सुशोभित है। उसमें सच्चिद्रूपा अर्द्धशक्ति प्रतिष्ठित है। इस चक्र में पूर्णा चिन्मयी शक्ति का ध्यान करने से मुक्ति प्राप्त होती है।

एतेषां नवचक्राणामेकैकं ध्यायतो मुने ।
सिद्धयो मुक्तिसहिताः करस्थाः स्युर्दिने दिने ।।
कोदण्डद्वयमध्यस्थं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ।
कदम्बगोलकाकारं ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ।।

इन नौ चक्रों में एक-एक चक्र का ध्यान करने वाले योगी के लिए सिद्धि और मुक्ति करतलगत हो जाती है। क्योंकि ज्ञाननेत्र के द्वारा कोदण्डद्वय के मध्य कदम्ब के समान गोलाकार ब्रह्मलोक का दर्शन करते हैं और अन्त में ब्रह्मलोक को गमन करते हैं।

❑❑

उड्डीश तंत्र (पूर्वार्द्ध)

(भगवान् शंकर एवं महात्मा रावण संवाद)

इस अध्याय में तंत्र विज्ञान का विस्तृत वर्णन किया गया है, जिससे महात्मा रावण के प्रसिद्ध तांत्रिक होने की पूर्ण रूप से पुष्टि होती है। जहां वे अनेक विद्याओं के विद्वान थे, वहीं अपने समय के जाने-माने तांत्रिक भी थे। तंत्र विद्या के ज्ञाता होने से ही राक्षसराज रावण, उनके भाई कुम्भकर्ण, पुत्र मेघनाद तथा उनके राज्य के अन्य राक्षस भी बड़े मायावी थे। उनकी गतिविधियों को देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे।

अपनी मायावी और तांत्रिक चालों से मेघनाद एवं कुम्भकर्ण आदि ने भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मणजी को भी भ्रमित कर दिया था। युद्ध में भयंकर नाद करना, अदृश्य होकर अस्त्र-शस्त्र एवं रक्त आदि की चमत्कारिक वर्षा करना उनके मायावी होने की बात सिद्ध करता है। इसी तंत्र विद्या के प्रभाव से वे मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि कई तरह के कार्य कर जाते थे। आकाश मार्ग में विचरण करना तथा अदृश्य होकर युद्ध करना इनकी मुख्य क्रियाएं होती थीं।

रावण द्वारा रचित, 'उड्डीश तंत्र', नामक ग्रन्थ में शिव तथा रावण संवाद है। यहां पर पाठकों की जानकारी के लिए उसी ग्रन्थ का संकलन तथा अन्य तांत्रिक प्रयोगों आदि का वर्णन किया जा रहा है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

उड्डीश तंत्र के प्रयोगों को करने के लिए सबसे पहले मन शान्त होना चाहिए और मंगलाचरण करना चाहिए। मन में छाए हुए अज्ञानता रूपी अन्धकार को ज्ञानरूपी अंजन की ज्योति जगाकर महान गुरु का ध्यान करना चाहिए। मन में चंचलता नहीं होनी चाहिए, अन्यथा यह सब बेकार हो जाएगा। दृढ़ विश्वास तथा गुरु के प्रति सच्ची निष्ठा होना जरूरी है।

रावण उवाच—

कैलासशिखरासीनं रावणः शिवमब्रवीत् ।
तंत्रविद्यां क्षणं सिद्धिं कथयस्व मम प्रभो ।।

इस प्रकार अपने मन में तीव्र जिज्ञासा लिए हुए महात्मा रावण ने अपने आराध्य देव कैलास पर्वत पर बैठे भगवान् भोलेनाथ से नतमस्तक हो याचना की—हे स्वामी! हे प्रभो! मैं उस तंत्र विद्या के बारे में जानना चाहता हूं जिसके प्रभाव से क्षण भर में कई मनोकामनाएं सफलतापूर्वक पूरी हो जाती हैं। कृपया मुझे उनके विषय में बताएं। तब भगवान् भोलेनाथ ने अपने प्रिय भक्त रावण से कहा—

शिव उवाच—

साधु पृष्टं त्वया वत्स लोकानां हितकाम्यया ।
उड्डीशाख्यमिदं तन्त्रं कथयामि तवाग्रतः ।।
उड्डीशं यो न जानाति स रुष्टः किं करिष्यति ।
मेरुं चालयते स्थानात्सागरैः प्लावयेन्महीम् ।।
इन्द्रस्य च यथा वज्रं पाशश्च वरुणस्य च ।
यमस्य च यथा दण्डो वह्नेः शक्तिर्यथा दहेत् ।।
तथैतन्वै महायोगान्प्रयोज्योद्यम कर्मणि ।
सूर्यं तु पातयेद्भूमौ नेदं मिथ्या भविष्यति ।।
शशिहीना यथा रात्री रविहीनं यथा दिनम् ।
नृपहीनं यथा राज्यं गुरुहीनस्तथा मनुः ।।
पुस्तके लिखिता विद्या नैव सिद्धि प्रदा नृणाम् ।
गुरुं विनापि शास्त्रेऽस्मिन्नाधिकारः कथंच न ।।
अग्रेऽभिधास्ये शास्त्रेऽस्मिन्सम्यक् षट्कर्मलक्षणम् ।
सर्वतन्त्रानुसारेण प्रयोगफलसिद्धिदम् ।।

हे मेरे प्रिय भक्त! हे वत्स! तुम सचमुच धन्य हो जो तुमने लोक कल्याण के लिए इस तंत्र विद्या को जानने की इच्छा प्रकट की। मैं तुम्हें 'उड्डीश' नामक विशेष तंत्र विद्या के बारे में बताता हूं। यह उत्तम तंत्र ज्ञान है। जो व्यक्ति इस उड्डीश तंत्र को नहीं जानता, वह सब कुछ जानते हुए भी अनजान है, उसे कुछ भी हासिल नहीं हो पाता। जो व्यक्ति इस उड्डीश तंत्र को जानता है, वह कई पर्वत व शिखरों को चलायमान कर सकता है, सागरों को सुखा सकता है, सागरों में पृथ्वी को डुबो सकता है और बड़े-बड़े वृक्षों को अदृश्य कर सकता है।

सुनो! जिस प्रकार इन्द्र का वज्र, वरुण का पाश, यमराज का दण्ड तथा अग्नि की शक्ति दाहक है, ठीक उसी प्रकार उड्डीश तंत्र के महायोगों का अनुष्ठान करके सूर्य को भी पृथ्वी पर पटका जा सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। जिस प्रकार सूर्य के बिना दिन, चन्द्रमा के बिना रात तथा राजा के बिना प्रजा निष्फल रह जाती है, उसी प्रकार गुरु के बिना उड्डीश तंत्र का ज्ञान असंभव है। तात्पर्य यह है कि गुरु के बिना कोई भी तंत्र विद्या निष्फल ही रहेगी। उड्डीश तंत्र को जानने के लिए उचित गुरु का होना अनिवार्य है। शिष्य का गुरु के प्रति समर्पित भाव का होना भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

इस प्रकार भगवान् शंकर ने रावण को गुरु के बारे में बताया, फिर आगे बोले— इस उड्डीश तंत्र शास्त्र में समय की पाबन्दी भी अति आवश्यक है। हर सिद्धि और हर तंत्र का समय निर्धारित होता है। अब सर्वप्रथम इस शास्त्र में सम्यक् प्रकार से किए गए षट्कर्मों का वर्णन करता हूं। ध्यान से सुनो, ये सभी योग तंत्रानुसार प्रयोग करने से अनेक प्रकार की सिद्धियां प्रदान करते हैं। इन्हें समझना भी जिज्ञासु व्यक्ति के लिए परमावश्यक है।

षटकर्मों के नाम

शान्तिवश्य स्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने तथा ।
मारणान्तानि शंसन्ति षट् कर्माणि मनीषिणः ।।

शान्तिकर्म, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, वशीकरण एवं मारण—इस प्रकार ये षट्कर्म के नाम से जाने जाते हैं।

षट्कर्मों के लक्षण

रोगकृत्याग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरिता ।
वश्यं जनानां सर्वेषां विधेयत्व मुदीरितम् ।।
प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं समुदाहृतम् ।
स्निग्धानां द्वेषजननं मिथो विद्वेषणं मतम् ।।
उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रंशनं परिकीर्तितम् ।
प्राणिनां प्राणहरणं मारणं समुदाहृतम् ।
स्वदेवतादिक्कालीदीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ।।

❑ **शान्तिकर्म—** तंत्र विद्या में जो काम रोग को ठीक करने, कुकृत्यों को शान्त करने एवं ग्रहों आदि के दोषों को दूर करने के लिए किया जाता है, वह 'शान्तिकर्म' कहलाता है।

❑ **विद्वेषण—** तंत्र विद्या द्वारा जो काम दो मित्रों या परिवारों में परस्पर शत्रुता पैदा कर देता है, वह 'विद्वेषण कर्म' कहलाता है।

❑ **वशीकरण—** जिसके द्वारा किसी को भी अपने वश में किया जाता है, वह 'वशीकरण' कहलाता है।

❑ **स्तम्भन—** किसी भी चीज की गतिविधि को रोकने वाले तंत्र कर्म को 'स्तम्भन कर्म' कहते हैं।

❑ **उच्चाटन—** जिस तंत्र विद्या द्वारा किसी भी चीज या व्यक्ति को उसके स्थान से दूर भगा दिया जाता है, उसे 'उच्चाटन' कहते हैं।

❑ **मारण—** जिस तंत्र द्वारा किसी भी प्राणी का प्राण हर लिया जाता है अर्थात् उसे मार दिया जाता है, वह 'मारण' कहलाता है।

इस प्रकार इन षट्कर्मों की अच्छी तरह से जानकारी होनी चाहिए तथा इनको प्रयोग में लाने के लिए बड़ी समझबूझ से काम लेना चाहिए। गुरु व इष्टदेव, दिशा तथा समय की जानकारी पहले से ही रखनी चाहिए। प्रयोग करते समय उतावलापन हानि पहुंचा सकता है।

षट्कर्मों के देवता

उड्डीश तंत्र के षट्कर्मों को करने के साथ-साथ उनके देवताओं के बारे में जानना भी आवश्यक है, तभी हम तंत्र विद्या का प्रयोग जान सकते हैं। सभी षट्कर्मों के अलग-अलग देवता (इष्ट) माने गए हैं जो निम्न प्रकार हैं—

रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा काली यथाक्रमात् ।
षट्कर्मदेवताः प्रोक्ताः कर्मादौ ताः प्रपूजयेत् ।।

❑ शान्तिकर्म के लिए 'रति' हैं।

❑ विद्वेषण के लिए 'ज्येष्ठा' हैं।

❑ वशीकरण के लिए 'वाणी' हैं।

❑ स्तम्भन के लिए 'रमा' हैं।

❑ उच्चाटन के लिए 'दुर्गा' हैं।

❑ मारण के लिए 'काली' हैं।

इस प्रकार ये सभी छः कर्मों के देवता बताए गए हैं। जब तक इन देवी-देवताओं का विधि-विधान से पूजन नहीं होगा, तब तक कोई भी कार्य फलदायी नहीं होगा।

षट्कर्मों में दिशाओं का नियम

उड्डीश तंत्र में षट्कर्मों में दिशाओं की भी जानकारी होना आवश्यक है। षट्कर्मों की दिशाएं भी अलग-अलग मानी गई हैं। किस दिशा में बैठकर कौन सा प्रयोग करना चाहिए, यह पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिया जा रहा है—

ईशचन्द्रेनिर्ऋतिवाय्वग्नीनां दिशो मताः ।
क्रमेण कर्मषट्के वै प्रशस्ताः स्युरिसा दिशः ।।

सभी षट्कर्मों में अलग-अलग दिशाओं का महत्व माना गया है, जैसे—

❑ शान्तिकर्म के लिए ईशान दिशा सही होती है।

❑ विद्वेषण में नैर्ऋत्य दिशा को महत्व दिया गया है।

❑ वशीकरण में उत्तर दिशा का प्रभाव है।

❑ स्तम्भन में पूर्व दिशा उपयोगी है।

❑ उच्चाटन में वायव्य कोण में बैठना उत्तम होता है।

❑ मारण के लिए आग्नेय कोण में बैठना सिद्धिदायक होता है।

इस प्रकार सभी षट्कर्मों को करने में दिशाओं का भी सही ध्यान करना उपयोगी सिद्ध होगा।

ऋतु-कालादि का महत्व

उड्डीश तंत्र प्रयोग के लिए समय अथवा ऋतुकाल का भी ज्ञान होना आवश्यक है। ठीक सूर्योदय से शुरू करके दस-दस घड़ी (जिसमें ढाई घड़ी का एक घण्टा होता है, इस हिसाब से प्रति चार-चार घण्टे) के अन्तर से क्रमशः वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर ऋतुएं होती हैं। इस प्रकार ये सभी षट्कर्मों के लिए ऋतुएं बन जाती हैं। कौन सी ऋतु में कौन सा कर्म उचित होगा, यह निम्न प्रकार से जान लें—

सूर्योदयात्समारभ्य घटिकादशकं क्रमात् ।
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिनेदिने ।
वसन्तग्रीष्मवर्षाश्च शरद्धेमन्तशैशिराः ।।
हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि ।
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो ग्रीष्मे विद्वेष ईरितः ।
प्रावृड्डुच्चाटने ज्ञेया शरन्मारणकर्मणि ।।

❑ शान्तिकर्म को हमेशा हेमन्त ऋतु में ही करना चाहिए।

❑ विद्वेषण कर्म प्रयोग हमेशा ग्रीष्म में ही करना चाहिए।

❑ वशीकरण के लिए वसन्त ऋतु अति उत्तम मानी गई है।

❑ स्तम्भन कर्म को शिशिर ऋतु में करना सिद्धिदायक होता है।

❑ उच्चाटन के लिए वर्षा ऋतु उपयोगी मानी गई है।

❑ मारण कर्म प्रयोग हमेशा शरद ऋतु में ही करना चाहिए।

तिथि-वारादि का महत्व

उड्डीश तंत्र विद्या में तिथियों का भी अपना महत्व होता है। अतः इसकी भी जानकारी रखना आवश्यक हो जाता है, जो निम्न प्रकार से है—

प्रयोगा विधिना कार्यास्तच्च संप्रोच्यतेऽधुना ।
द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ।
बुधेज्यकाव्यसोमाश्च शान्तिकर्मणिकीर्तिताः ।।
गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी ।
नवमी पौष्टिके शस्ता चाष्टमी दशमी तथा ।
पुष्टिर्धन जनादीनां वर्द्धनं परिकीर्तितम् ।।
दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रदिने तथा ।
आकर्षणे त्वमावस्या नवमी प्रतिपत्तथा ।
पौर्णमासी मन्दभानुयुता विद्वेषकर्मणि ।
षष्ठी चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्दवारकः ।
उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषे सुविशेषतः ।।
चतुर्द्दश्यष्टमी कृष्णा अमावस्या तथैव च ।
मन्दारार्कदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि ।।
बुध चन्द्रदिनोपेत्ता पंचमी दशमी तथा ।
पौर्णमासी च विज्ञेया तिथिः स्तम्भनकर्मणि ।।
शुभग्रहोदये कुर्यादशुभान्यशुभोदये ।
रौद्रकर्माणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम् ।।

❑ शान्तिकर्म करने के लिए हमेशा द्वितीया, तृतीया, पंचमी और सप्तमी तिथियां तथा सोमवार, बुधवार एवं गुरुवार अत्यन्त शुभकारक माने जाते हैं।

❑ विद्वेषण करने के लिए पूर्णमासी तिथि तथा शनिवार व रविवार उपयुक्त होते हैं।

❑ वशीकरण करने के लिए दशमी, एकादशी, अमावस्या और प्रतिपदा तिथियां तथा शुक्रवार व शनिवार शुभ माने गए हैं।

❑ स्तम्भन कर्म के लिए चतुर्थी, त्रयोदशी, नवमी एवं अष्टमी तिथियां तथा सोमवार और बुधवार अनुकूल प्रभाव डालते हैं।

❑ उच्चाटन कर्म के लिए चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी तथा शनिवार और विशेषकर प्रदोष का समय

उचित रहता है।

❑ मारण कर्म के लिए कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी एवं अमावस्या तिथि तथा सोमवार एवं शनिवार अत्यन्त सिद्धिदायक है।

इसी क्रम में अशुभ ग्रहों के उदय होने के समय में मारण कर्म करना चाहिए तथा शुभ ग्रहों के उदय के समय शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन आदि कर्म करना चाहिए। ग्रहों का भी तंत्र विद्या में महत्वपूर्ण योग समझा जाता है अर्थात् जब तक आपके ग्रह लग्नों का योग सही रहता है, आपकी सारी क्रियाएं स्वतः सुचारु रूप से चलती रहती हैं। जब ग्रह स्थिति बिगड़ जाती है, तो बैठे-बिठाए ही मुसीबत आन पड़ती है। इस प्रकार ग्रह दोषों का भी तंत्र विद्या में प्रयोग किया जा सकता है जिससे इन षट्कर्मों को करने में सफलता मिलती है।

नक्षत्र-कालादि नियम

उड्डीश तंत्र में नक्षत्रों तथा कालादि का भी महत्व सुझाया गया है जो निम्न प्रकार है—

स्तम्भनं मोहनं चैव वशीकरणमुत्तमम् ।
माहेन्द्रे वारुणे चैव कर्त्तव्यमिह सिद्धिदम् ।।
विद्वेषोच्चाटने वह्निवायुयोगे च कारयेत् ।
वश्यं पूर्वेऽह्नि मध्याह्ने विद्वेषोच्चाटने तथा ।
शान्तिपुष्टी दिनस्यान्ते संध्याकाले च मारणम् ।।

ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा एवं रोहिणी नक्षत्रों (जो माहेन्द्रमण्डल के नक्षत्र कहलाते हैं) में स्तम्भन, मोहन तथा वशीकरण करने से अलौकिक सिद्धि प्राप्त होती है। उत्तराभाद्रपद, मूल, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद तथा आश्लेषा—ये पांच नक्षत्र वारुण मण्डल के नक्षत्र कहलाते हैं। इनमें वशीकरण, स्तम्भन तथा आकर्षण आदि कर्म किया जाता है। वास्तिमण्डल तथा वायुमण्डल में आने वाले नक्षत्रों जैसे—अश्विनी, भरणी, आर्द्रा, धनिष्ठा, श्रवण, मघा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी और रेवती में विद्वेषण एवं उच्चाटन कर्म करना सिद्धिदायक होता है। उसी प्रकार स्वाति, हस्त, मृगशिरा, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, पुष्य और पुनर्वसु—ये सात नक्षत्र अग्निमण्डल के हैं। इन नक्षत्रों में शान्तिकर्म करना फलदायी सिद्ध होता है।

दिन तथा रात का भी उड्डीश तंत्र में अपना महत्व है। शान्तिकर्म दिन के अंतिम भाग में शुभ माना गया है। वशीकरण करने के लिए दिन का पूर्वभाग अच्छा होता है। विद्वेषण कर्म करने के लिए दिन का मध्य भाग उपयुक्त माना गया है। स्तम्भन कर्म के लिए दिन का अन्तिम भाग तथा उच्चाटन और मारण कर्म के लिए सन्ध्याकाल का समय सिद्धिदायक समझा जाता है। इस प्रकार उड्डीश तंत्र में प्रयोगों को सिद्ध करने के लिए समय की जानकारी अति आवश्यक है।

लग्नों, तत्त्वों एवं वर्णों का महत्व

अब हम लग्नों, तत्त्वों एवं वर्णों का भी अध्ययन करेंगे जिनका तंत्र विद्या को सफल बनाने में महत्वपूर्ण स्थान होता है—

कुर्याच्च स्तम्भनं कर्म हर्यक्षे वृश्चिकोदये ।
द्वेषोच्चाटादिकं कर्म कुलीरे वा तुलोदये ।।

मेषकन्याधनुर्मीने वश्यशान्तिकपौष्टिकम् ।
मारणोच्चाटने चासौ रिपुभेद विनिग्रहे ।।
जलं शान्तिविधौ शस्तं वश्ये वह्निरुदीरितः ।
स्तम्भने पृथिवी शस्ता विद्वेषे व्योम कीर्तितम् ।
उच्चाटने स्मृतो वायुर्भूम्यग्निर्मारणे मतः ।।
तत्तद्भूतोदये सम्यक्तत्तन्मंडलसंयुतम् ।
तत्तत्कर्म विधातव्यं मन्त्रिणा निश्चितात्मना ।।
वश्ये चाकर्षणे क्षोभे रक्तवर्णं विचिन्तयेत् ।
निर्विषीकरणे शान्तौ पुष्टौ चाप्यायने सितम् ।।
पीतं स्तम्भनकार्येषु धूम्रमुच्चाटने स्मृतम् ।
उन्मादे शक्रगोपाभं कृष्णवर्णं तुमारणे ।।

मेष, कन्या, धनु तथा मीन लग्न में वशीकरण, शान्ति, पुष्टि, मारण, शत्रु निवारण एवं उच्चाटन कर्म अत्यधिक प्रभावी बनते हैं। स्तम्भन कर्म सिंह तथा वृश्चिक लग्न में विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। विद्वेषण कर्म कर्क अथवा तुला लग्न में करना चाहिए। उच्चाटन कर्म कर्क लग्न तथा कुछ परिस्थितियों में तुला लग्न में भी किया जा सकता है। इस प्रकार लग्न सही होने पर तंत्र की प्रभाव क्षमता तीव्र हो जाती है।

अब षट्कर्मों के तत्त्व को सत्यापित (निरूपण) करते हैं। जल तत्त्व के उदय में शान्तिकर्म, अग्नि तत्त्व के उदय में वशीकरण, पृथ्वी तत्त्व के उदय में स्तम्भन, आकाश तत्त्व के उदय में विद्वेषण, वायु तत्त्व के उदय में उच्चाटन तथा पृथ्वी या अग्नि तत्त्व के उदय में मारण प्रयोग करना चाहिए। इस तरह जिस तत्त्व के उदय में जो-जो कार्य करने उचित बताए हैं, उसी कर्म को करना चाहिए। कर्म के समय उसके अनुसार तत्त्वमण्डल का सामंजस्य करना चाहिए।

इन तंत्र विधियों को भगवान् भोले शंकर मायावी रावण को विस्तारपूर्वक बता रहे थे और रावण उन्हें ध्यानपूर्वक सुन रहा था। इसके बाद कैलासपति भगवान् शंकर ने उड्डीश तंत्र के अन्तर्गत सभी षट्कर्मों के ईश्वर रूप वर्ण भेद को समझाते हुए कहा—वशीकरण, आकर्षण तथा क्षोभण—इन तीन कर्मों के लिए देवता को लोहित वर्ण तथा शान्ति कर्म, विष दूरकर्म एवं पुष्टि कर्म सम्बन्धी प्रयोग में इष्टदेव का श्वेतवर्ण रूप में ध्यान करना चाहिए। इसी प्रकार उच्चाटन कर्म में धूम्रवर्ण, स्तम्भन कर्म में पीतवर्ण, उन्माद कर्म में लाल वर्ण तथा मारण कर्म में इष्टदेव को नील (कृष्ण) वर्ण का ध्यान करना चाहिए।

अवस्था निरूपण

उत्थितं मारणे ध्यायेत्सुप्तमुच्चाटने प्रभुम् ।
उपविष्टं राक्षसेन्द्र सर्वत्रैव विचिंतयेत् ।।

वर्ण विशेष चिन्तनं

आसीनं श्वेतरूपं तु सात्त्विके समुदाहृतम् ।
राजसे पीतवर्णं तु रक्तं श्याममुदाहृतम् ।।

यानमार्ग स्थितं तूर्णं कृष्णं तामस उच्यते ।
सात्त्विकं मोक्षकामानां राजसं राज्यमिच्छताम् ।।
तामसं शत्रुनाशार्थं सर्वं व्याधि निवारणम् ।
सर्वोपद्रव शान्त्यर्थ तामसं तु विचिन्तयेत् ।।

मन्त्रस्य अधिष्ठातृ देवता निरूपणं

रुद्रारताक्ष्र्यगन्धर्वयक्षरक्षोऽहि किन्नराः ।
पिशाचभूत दैत्येन्द्रसिद्धाः किं पुरुषाः सुराः ।।
सर्वेषामपि मंत्राणामेते पञ्चदश स्मृताः ।
केचिदष्टादशः प्राहुः समग्राणां नृणां मताः ।।

भगवान् शंकर बोले—हे रावण! अब मैं तुम्हें देवता के ध्यान की अवस्था के बारे में बताता हूं। मारण कर्म में खड़े होकर, उच्चाटन कर्म में सुप्त रहकर तथा शान्तिकर्म, वशीकरण, स्तम्भन एवं विद्वेषण आदि कर्म में दण्डवत् बैठकर देवता का ध्यान करना चाहिए।

सात्विक-कार्यों में देवता को समासीन एवं शुभ्रवर्ण, राजस-कर्म में पीला, लोहित या काला वर्ण और तामसिक-कार्यों में वाहन पर सवार कृष्णवर्ण का ध्यान करना चाहिए। मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष सात्विक एवं राज्य की इच्छा रखने वाले को राजसी रूप का ध्यान करना चाहिए। दुश्मनों का नाश, सम्पूर्ण पीड़ा निवारण एवं उपद्रव के निवारण के लिए देवता के तामसिक रूप का ध्यान करना चाहिए।

रुद्र, मंगल, गरुड़, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सांप, किन्नर, पिशाच, दैत्य, भूत, इन्द्र, सिद्ध, विद्याधर तथा देवता—ये पन्द्रह सभी मन्त्रों के अधिष्ठाता देवतागण हैं। कुछ ऋषि-मुनि अट्ठारह देवताओं को पूरे मन्त्रों का अधिष्ठाता बताते हैं।

वर्णभेद से मंत्र संज्ञा निरूपण

कर्त्तरी ह्येकवर्णश्च सूची द्वयक्षरवर्णकः ।
त्र्यक्षरो मुद्गरः प्रोक्तो मुसलश्चतुरक्षरः ।।
क्रूरः शनिः पंचवर्णैः षड्भिर्वर्णैस्तु शृंखलः ।
क्रकचः सप्तभिः शूलं चाष्टभिर्नवभिः पविः ।।
शक्तिश्च दशभिश्चैकादशभिः परशुः स्मृतः ।
चक्रं द्वादशभिर्वर्णैः कुलिशः स्यात् त्र्योदशैः ।।
चतुर्द्दशैस्तु नाराचो भुशुंडी पक्षवर्णकः ।
पद्मं षौडशभिर्वर्णैमंत्रच्छेदे तु कर्त्तरी ।।
भेदे तु कथिता सूची भंजने मुद्गरः स्मृतः ।
मुसलं क्षोभणे बंधे शृंखलः क्रकचश्छिदि ।।
घाते शूलं पविं स्तंभे शक्तिं बंधे च कर्मणि ।
विद्वेषे परशुं चक्रं सर्वकर्मसु योजयेत् ।।
उत्सादे कुलिशः स्तंभो नाराचः सैन्यभेदने ।

भुशुंडी मारणे पद्मं शांतिपुष्ट्यादिकर्मणि ।।

एकवर्ण का मंत्र कर्त्तरी, दोवर्ण का मंत्र सूची, तीन अक्षर का मंत्र मुद्गर, चार अक्षर का मंत्र मूसल, पांच वर्ण का मंत्र क्रूर शनि, छह अक्षर का मंत्र शृंखल, सात अक्षर का क्रकच, आठ अक्षर का शूल, नौ अक्षर का वज्र, दस अक्षर का शक्ति, ग्यारह अक्षर का परशु, बारह अक्षर का चक्र, तेरह अक्षर का कुलिश, चौदह अक्षर का नाराच, पंद्रह अक्षर का भुशुंडी, सोलह अक्षर का पद्म कहलाता है। मंत्रच्छेद में कर्त्तरी भेदकर्म में सूची, भजन में मुद्गर, क्षोभण में मूसल, बंधन में शृंखल, विद्वेषण में दंड, सभी कार्यों में चक्र, उन्माद में कुलिश, सैन्य भेदन में नाराच, मारण कर्म में भुशुंडी व शांति-पुष्टि कर्मों में पद्म भेद का उच्चारण करने से अभीष्ट की प्राप्ति होती है।

कार्यविशेष में योजना पल्लवादि निर्णय

पंचाशद्वर्णरूपात्मा मातृका परमेश्वरी ।
तत्रोत्पन्ना महाकृत्या त्रैलोक्याभयदायिनी ।।
यथाकामं जपः कार्यो मंत्राणामपि मे शृणु ।
मंत्रादौ योजनं नाम्नः पल्लवः प्रकीर्तितः ।।
मारणे विश्वसंहारे ग्रहभूतनिवारणे ।
उच्चाटनेषु विद्वेषे पल्लवः परिकीर्तितः ।।

पचास वर्णों वाली मातृका देवी से प्रादुर्भूत मंत्र तीनों लोकों के भय को हरने वाले हैं। जो प्राणी जिस किसी कामना से तत्संबंधी मंत्र का जप करता है, उसकी वह मनोकामना पूरी होती है। मंत्र के प्रारंभ में आने वाला नाम **पल्लव** कहलाता है। मारण, विनाश, ग्रहभूतादि शमनार्थ, उच्चाटन, विद्वेषण कर्मों में पल्लव युक्त मंत्र का ही जप किया जाता है।

मंत्रांते नामसंस्थानं योग इत्यधिभीयते ।
शांतिके पौष्टिके वश्ये प्रायश्चित्तविशोधने ।।
मोहने दीपने योगं प्रयुंजंति मनीषिणः ।
स्तंभनोच्चाटनोच्छेदविद्वेषेषु स चोच्यते ।।
नाम्न आद्यंत मध्येषु मंत्रः स्याद्रोधसंज्ञकः,
मंत्राभिमुख्यकरणे सर्वव्याधिनिवारणे ।
ज्वरग्रहविषाद्यार्त्तिशांतिकेषु स च उच्यते ।।

मंत्र के अंत में आने वाला नाम **योजन मंत्र** कहलाता है। इस मंत्र का जप वशीकरण, प्रायश्चित, मोहन, दीपन आदि कर्मों में किया जाता है। इनके अतिरिक्त स्तंभन व विद्वेषण कर्मों में भी इस मंत्र का जप करने से सिद्धि मिलती है। नाम के प्रारंभ, मध्य और अंत में मंत्र आने से इसे **रोध मंत्र** महा जाता है। अभिमुखीकरण, सभी प्रकार की व्याधियों, ज्वर, ग्रह प्रकोपों, विष प्रभाव आदि दूर करने हेतु रोध मंत्र का ही जप किया जाना चाहिए।

एकैकांतरितं यत्तु ग्रंथनं प्रकीर्तितम् ।
तच्छांतिके विधातव्यं नामद्यांते यथा मनुः ।।
तत्संपुटं भवेत्तत्तु कीलने परिभाषितम् ।
स्तंभे मृत्युंजये हीच्छेद्रक्षादिषु च संपुटम् ।।

नाम के आदि, मध्य और अंत में जो मंत्र आता है वह ग्रंथन मंत्र कहलाता है। इस मंत्र का जप शांति कर्म में किया जाना चाहिए। नाम के प्रारंभ में अनुलोम व अंत में विलोम रूप से जो मंत्र आता है वह संपुट मंत्र कहलाता है। कीलन कर्म में संपुट मंत्र का ही जप किया जाता है। इसके अलावा स्तंभन, मृत्यु टालने, रक्षा करने जैसे कर्म में भी इस मंत्र का जप करने से सिद्धि मिलती है।

मंत्रमादौ वदेत्सर्वं साध्यसंज्ञामनंतरम् ।
विपरीतं पुनश्चांते संपुटं तत्स्मृतं बुधै ।।
मंत्रार्णद्वंद्वमेकैकं साध्यनामाक्षरं क्रमात् ।
कथ्यते सविदर्भस्तु वश्याकर्षणपौष्टिके ।।

प्रारंभ में पूर्ण मंत्र बोलकर साध्य का नामोच्चारण कर फिर प्रतिकूल भाव से पूर्ण मंत्र का उच्चारण करने को भी तंत्रशास्त्र में संपुट मंत्र ही कहा गया है। इसी प्रकार मंत्र व साध्य नाम के दो-दो वर्णों का क्रमानुगत उच्चारण ही सविदर्भ मंत्र कहलाता है। इस मंत्र का उपयोग वशीकरण, आकर्षण व पुष्टि कर्म आदि में करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

कर्मविशेष में हुं, फट् और वौषट् आदि निरूपण

बंधनोच्चाटने द्वेषे संकीर्णे हुं पदं जपेत् ।
फट् कारं छेदने हुं फट् अरिष्टग्रहनिवारणे ।।
पुष्टौ चाप्यायने वौषट् बोधने मलिनीकृतौ ।
अग्निकार्ये जपेत्स्वाहां नमः सर्वत्र चार्च्चने ।।
शांतिपुष्टि वशद्वेषाकृष्ट्युच्चाटन मारणे ।
स्वाहा स्वधा वषट् हुं च वौषट् फट् योजयेत्क्रमात् ।।

बंधन, उच्चाटन व विद्वेषण में हुं, अरिष्ट ग्रहशांति हेतु हुं फट्, पुष्टि-शांति कर्म हेतु वौषट्, हवन करते समय स्वाहा, पूजन काल में नमः का उच्चारण किया जाना चाहिए। शांति व पुष्टि कर्म में स्वाहा, वशीकरण में स्वधा, विद्वेषण में वषट्, आकर्षण में हुं, उच्चाटन में वौषट्, मारण में फट् बीजमंत्र का उच्चारण किया जाना चाहिए।

वश्याकर्षणसंतापज्वरे स्वाहां प्रकीर्तयेत् ।
क्रोधोपशमने शांतौ प्रीतौ योज्यं नमो बुधैः ।।
वौषट् सम्मोहनोद्दीपपुष्टि मृत्युंजयेषु च ।
हुं कारं प्रीतिनाशे च छेदने मारणे तथा ।।
उच्चाटने च विद्वेषे वौषट् चांधीकृतौ वषट् ।
मंत्रोद्दीपनकार्येषु लाभालाभ वषट् स्मृतम् ।।

वशीकरण, आकर्षण, ज्वर निवृत्ति हेतु स्वाहा का उच्चारण लाभकारी रहता है। क्रोध दूर करने, शांति अनुष्ठान व प्रेमाभिवृद्धि कर्म में भी नमः का उच्चारण करने से फल प्राप्ति होती है। मोहन, उद्दीपन, पुष्टि, मृत्युनिवृत्ति जैसे अनुष्ठानों में वौषट् का, प्रीति तोड़ने, भंजन व मारणादि अनुष्ठानों में हुं का उच्चारण किया जाना चाहिए। इसी प्रकार उच्चाटन, वैर-भाव पैदा करने में वौषट्, दृष्टि बांधने, मंत्र को जाग्रत करने व लाभ-हानि जैसे कर्मों हेतु वषट् बीजमंत्र का उच्चारण

किया जाना चाहिए।

मंत्रों के स्त्रीपुंनपुंसकादि निरूपण

स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिधा स्युर्ममंत्रजातयः ।
स्त्रीमंत्रा वह्निजायांता नमोऽन्ताश्च नपुंसकाः ।।
हुं फट् पुमांस इत्युक्ता वश्यशांत्यभिचारके ।
क्षुद्रक्रियाद्युपध्वंसे स्त्रियोऽन्यत्र नपुंसकाः ।।

लिंगभेद के अनुसार मंत्र तीन प्रकार के होते हैं। यथा स्त्रीलिंग, पुंल्लिंग व नपुंसक लिंग। इस क्रम में स्त्रीलिंग मंत्र के अंत में स्वाहा आता है। नपुंसक लिंग मंत्र के अंत में नमः आता है जबकि पुंल्लिंग मंत्र के अंत में हुं फट् आता है। वशीकरण, शांति व अभिचार कर्म में पुंल्लिंग मंत्र का, हीन क्रियाओं के क्षय में स्त्रीलिंग मंत्र का और अन्य कर्मादिक में नपुंसक मंत्र का प्रयोग किया जाना चाहिए।

तारांत्याग्निविषप्रायो मंत्र आग्नेय उच्यते ।
सौम्यश्च मनवः प्रोक्ता भूयिष्ठेंद्वमृताक्षराः ।।
आग्नेयमंत्राः सौम्याः स्युः प्रायशोअंते नमोऽन्विताः ।
मंत्रः शांतोऽपि रौद्रत्वं हुं फट् पल्लवितो यदि ।
सुप्तः प्रबुध्यमानोऽपि मंत्रः सिद्धिं न गच्छति ।।

आग्नेय मंत्र के अंत में ॐ आता है। चंद्रबिंदु व अमृताक्षर जिस मंत्र में हो वह सौम्य मंत्र कहलाता है। इसी प्रकार नमः शब्द यदि आग्नेय मंत्र के अंत में आता है तो वह सौम्य मंत्र कहलाता है। यदि सौम्य मंत्र के अंत में फट् आता है तो वह आग्नेय मंत्र कहलाता है। स्मरण रहे कि सुप्त मंत्र अर्थात् जो जाग्रत न हो, कोई प्रतिफल नहीं देता।

स्वापकालो वामवाहो जागरो दक्षिणावहः ।
स्वापकाले तु मंत्रस्य जपो न च फलप्रदः ।।

बाएं (वाम) नासिका-छिद्र से श्वसन क्रिया हो तब मंत्र सुप्तावस्था में होता है। इसके विपरीत दाएं (दक्षिण) नासिका-छिद्र से श्वसन क्रिया हो तब मंत्र जाग्रतावस्था में होता है। मंत्र का सुप्तावस्था में जप सिद्धिदायक नहीं होता।

आग्नेयाः संप्रबुध्यंते प्राणे चरति दक्षिणे ।
वामे चरति सौम्याश्च प्रबुद्धा मंत्रिणां सदा ।।
नाडीद्वयगते प्राणे सर्वे बोधं प्रयांति च ।
प्रयछंति फलं सर्वे प्रबुद्धा मंत्रिणां सदा ।।

दाएं (दक्षिण) छिद्र से श्वसन-क्रिया काल में आग्नेय मंत्र प्रबुद्ध (जाग्रत) रहता है जबकि बाएं (वाम) नासिका-छिद्र से श्वसन क्रिया काल में सौम्य मंत्र जाग्रत रहता है। इसके अतिरिक्त दोनों नासिका-छिद्रों से श्वसन-क्रिया काल में सभी प्रकार के मंत्र जाग्रत रहते हैं। जाग्रत मंत्रों का जप करने से ही अभीष्ट की प्राप्ति होती है।

आसन निरूपण

आसनानि प्रवक्ष्यामि कर्मणां विहितान्यपि ।
पद्मासनं पौष्टिके तु शांतिके स्वस्तिकासनम् ।।
आकृष्टे पौष्टिके तद्वद्विद्वेषे कुक्कुटासनम् ।
अर्द्धस्वस्तिक मुच्चाटे अर्द्धस्थापनपार्ष्णिकम् ।।
मारणे स्तंभने तद्वद्विकटं परिकीर्त्तितम् ।
वश्ये भद्रासनं तेषां कथ्यते चाथ भावना ।।
वश्ये मेषासनं प्रोक्तमाकृष्टौ व्याघ्रचर्म च ।
उष्ट्रासनं तथोच्चाटे विद्वेषे तुरगासनम् ।।
मारणे माहिषं चर्म मोक्षे गजाजिनं भवेत् ।
अथवा कम्बलं रक्तं सर्वकर्मसु कारयेत् ।।

षण्मुद्रा निरूपण

षण्मुद्रा क्रमशो ज्ञेयाः पद्मपाशगदाह्वयाः ।
मुसलाशनि खङ्गाख्याः शांतिकादिषु कर्मसु ।।

देवध्यान निरूपण

शान्तिपौष्टिक वश्येषु सौन्दर्यातिशयान्विताः ।
सर्वाभरणसंदीप्ताः प्राप्तकालमनोरथाः ।
ध्यातव्या देवताः सम्यक् सुप्रसन्नाननाम्बुजाः ।।
आकर्षणेऽपि तद्वच्चबडिशैरिव मत्स्यकान् ।
साध्यमाकर्षणे द्वेषे भर्त्स्यमानं जनैरिव ।।
वध्यमानो जनैर्दण्डैर्दारितस्तस्करो यथा ।
उलूको वा यथाऽरिष्टैर्मन्तव्योच्चाटने रिपुः ।।
यत्किञ्चिच्दवमारुह्य सन्दष्टोष्टपुटः क्रुधा ।
कर्म कुर्यात्ततो मन्त्री यथा क्रूरेषु कर्मसु ।।

तंत्रशास्त्र में षट्कर्मों के आसनों का क्रम इस प्रकार है—पुष्टि कर्म पद्मासनावस्था में एवं शांतिकर्म स्वस्तिकासन में करना चाहिए। कुक्कुटासन द्वारा आकर्षण, पुष्टिकर्म एवं विद्वेषण कर्म करना चाहिए। विकटासन का प्रयोग मारण और स्तम्भन कर्म में करना चाहिए तथा 'भद्रासन' का प्रयोग 'वशीकरण' कर्म में करना श्रेष्ठ बताया गया है। (पद्मासन लगाने के बाद दोनों जांघों के उरुओं के मध्य में दोनों हाथ डालकर दोनों हाथों से दोनों पांवों के अंगूठे पकड़ने की क्रिया को 'कुक्कुटासन' कहते हैं।)

केवल दाएं जांघ में बायां हाथ डालकर, पांव के अंगूठे को पकड़ने को 'अर्द्धस्वस्तिकासन' कहा जाता है। जानु और जंघाओं के मध्य दोनों हाथ डालकर बैठने को 'विकटासन' कहते हैं। अण्डकोषों के नीचे दोनों गुल्फों को विपरीत भाव से रखकर, पीठ की ओर, दोनों हाथों से दोनों पांवों के अंगूठों को पकड़कर 'जालंधर बंध' करके, नाक के अगले भाग को देखना 'भद्रासन' कहा जाता है। इस आसन के अभ्यास से सभी रोग दूर हो जाते हैं।

अब नीचे बिछाने के आसनों के सम्बंध में बताते हैं—मेढ़ा के चमड़े पर आसन की मुद्रा में बैठकर 'वशीकरण' कर्म करें। बाघ के चमड़े पर बैठकर 'आकर्षण' कर्म करें। ऊंट के चर्म पर उच्चाटन, घोड़े के चर्म पर बैठकर विद्वेषण और भैंसे के चर्म पर बैठकर मारण कर्म करना चाहिए। इसी प्रकार हाथी के चमड़े पर बैठकर मोक्ष-साधना करें तथा लाल कम्बल का आसन सभी कार्यों (कर्मों) के लिए बताया गया है।

अब षण्मुद्रा निरूपण के बारे में सुनो—पद्ममुद्रा में 'शान्तिकर्म', पाशमुद्रा में 'वशीकरण', गदामुद्रा में 'स्तम्भन', मूसल मुद्रा में विद्वेषण, वज्रमुद्रा में उच्चाटन एवं खड्गमुद्रा के योग में 'मारण' अनुष्ठान करना चाहिए। जिन-जिन कार्यों के लिए जिन-जिन मुद्राओं का उल्लेख है, उसी मुद्रा के योग से वह कार्य सिद्ध होता है।

अब षट्कर्मों के देवताओं के ध्यान की विधि सुनो—शान्ति, पुष्टि, वशीकरण एवं आकर्षण—इन चारों कार्यों के अनुष्ठान में देवता को अत्यधिक सुन्दरी, सभी गहनों से विभूषित, नवयौवना, सम्पन्ना तथा प्रसन्न मुद्रा में स्त्री के रूप में ध्यान करना चाहिए। जिस तरह कांटे द्वारा मछली को खींच लिया जाता है, उसी तरह आकर्षण के प्रयोग से इच्छित व्यक्ति को खींच लिया जाता है। जब दुश्मन के ऊपर उच्चाटन का प्रयोग करना हो, तब यह ध्यान करना चाहिए कि वह बंधा हुआ है एवं चोर के समान पीटा जा रहा है या जिस तरह दिन में कौए आदि उल्लू पक्षी को कष्ट देते हैं, उसी तरह उसे भी दुःख पहुंचाया जा रहा है। क्रूर-कर्मों के समय किसी मरे-मनुष्य के लाश के ऊपर बैठकर तथा क्रोध से अपने दोनों होंठों को काटते हुए प्रयोग करना चाहिए।

कुण्ड-निर्णय

विद्वेषे चाभिचारे च त्रिकोणं कुंडमिष्यते ।
द्विमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रं तु सर्वतः ।।
उच्चाटनं तु नैर्ऋत्यां शत्रुपक्षस्य कारयेत् ।
उत्सादनं तु वायव्यां देवानामपि कारयेत् ।।
शत्रुणां तापने शस्तं योन्याख्यमग्निकोणगम् ।
अर्द्ध चन्द्रं तु याम्यायांशत्रूणां मारणे स्थितम् ।।
त्रिकोणं नैर्ऋते कुण्डं रिपूणां व्याधिवर्द्धनम् ।
दाहायाग्नौ च विद्वेषे कुण्डं पूणेन्दुसन्निभम् ।।
कर्त्तव्यं चतुरस्रं वा द्वेषादौ तु विचक्षणैः ।
कुण्डं सुलक्षणं कृत्वा तत्र कर्माणि साधयेत् ।।
चतुरस्रे भवेद्वश्यमाकर्षण त्रिकोणके ।
कर्षणस्तम्भने वत्स विद्वेषं च त्रिकोणके ।
अथैवोच्चाटनं प्रोक्तं षट्कोणेमारणं स्मृतम् ।।

प्रधानता निरूपण

वश्यात्स्तम्भनमुत्कृष्टं स्तम्भनान्मोहनं महत् ।
मोहनाद्द्वेषणं श्रेष्ठं द्वेषादुच्चाटनं वरम् ।।
उच्चाटनादपि महन्मारणं सर्वतो महत् ।

मारणादधिकं कर्म न भूतं न भविष्यतिः ।।

कुंभ स्थापना

शान्ति के स्वर्णकुम्भं च नवरत्नैर्विभूषितम् ।
तदभावे रौप्यकुम्भं ताम्रं वापि सुलक्षणम् ।।
अभिचारे लौहकुम्भं स्थापयेत्सुसमाहितः ।
उत्सादे काचकुंभं च मोहने पैत्यकुम्भकम् ।।
उच्चाटने च मृत्कुंभं कालमंडल संस्थितम् ।
सर्वकर्माणि वा कुर्यात्कुंभं ताम्रमयं तथा ।।

अब षट्कर्मों के लिए कुण्ड-निर्णय के बारे में बताते हैं—विद्वेषण प्रयोग के लिए 'त्रिकोण कुण्ड' बनाएं। यह कुण्ड दो मेखला वाला, एक हाथ का और नैर्ऋत्य कोण की तरफ मुख वाला होना चाहिए। शत्रु उच्चाटन के लिए कुण्ड का मुख नैर्ऋत्य कोण में तथा देवोच्चाटन के लिए वायव्य कोण में होना चाहिए। शत्रु-तापन के लिए 'योनि कुण्ड' का निर्माण आग्नेय कोण में करना चाहिए। शत्रु मारण हेतु 'अर्द्धचन्द्र कुण्ड' का निर्माण मण्डल के दक्षिण कोण में करना चाहिए। दुश्मन की बीमारियों को बढ़ाने के लिए 'त्रिकोण कुण्ड' को नैर्ऋत्य कोण में बनाएं। विद्वेषण हेतु 'पूर्ण चन्द्राकार कुण्ड' का निर्माण आग्नेय कोण में करना चाहिए। विद्वेषण के लिए 'चतुरस्र कुण्ड' बनाने का भी विधान है। सुन्दर लक्षणों वाला कुंड बनाकर कर्म का साधन करना चाहिए। 'चतुरस्र कुण्ड' में वशीकरण, 'त्रिकोण कुंड' में आकर्षण, स्तम्भन, विद्वेषण या उच्चाटन कर्म के प्रयोग करने चाहिए। 'षट्कोण कुण्ड' में मारण का अनुष्ठान करें।

वशीकरण से स्तम्भन श्रेष्ठ बताया गया है। स्तम्भन से मोहन, मोहन से विद्वेषण तथा विद्वेषण से उच्चाटन को बड़ा माना गया है। उच्चाटन से मारण श्रेष्ठ है। इसलिए मारण को सर्वोपरि माना गया है। मारण से अधिक श्रेष्ठ कर्म न तो भूत में ही कोई हुआ है और न भविष्य में ही हो सकता है।

अब षट्कर्मों में कुंभ (कलश) स्थापना के बारे में बताते हैं—शान्तिकर्म में नवरत्नों से विभूषित सोने का कलश स्थापित करें। उसके अभाव में चांदी का कलश या तांबे का सुन्दर कलश स्थापित करना चाहिए। अभिचार कर्म में लोहे का कलश, उत्सादन (विनाश) कर्म में कांच का कलश एवं मोहन कर्म में पीतल का कलश स्थापित करना चाहिए। उच्चाटन कर्म में मिट्टी का कलश एवं अन्य सभी कर्मों में कालमण्डल के बीच तांबे का कलश स्थापित करना चाहिए।

कुंभ पूजन

तत्कुम्भं चाध संस्थाप्य रुद्रं देवीं च पूजयेत् ।
उपचार क्रमेणैव देवं ध्यायेद्यथाविधि ।।
शूलहस्तं महारौद्रं सर्ववैरि निषूदनम् ।
पूर्णचन्द्रसमाभासं रूद्रं वृषभवाहनम् ।।
अथवाऽन्य प्रकारेण ध्यानं कुर्यात्समाहितः ।
काश्मीरस्फटिक प्रभं त्रिनयनं पञ्चाननं शूलिनं ।

खट्वांगासिवर प्रसादडमरूचक्राब्ज बीजाभयम् ।।
बिभ्राणं दशदोर्भिरिक्षजटिलं वीरासने संस्थितं ।
गौरीश्री सहितं सदैवमखिलंध्यायेच्छिवंचर्मिणम् ।
रुद्रमन्त्रेण कुर्य्याच्च हयुपचारान्पृथग्विधान ।।
भद्रकालीं च संपूज्य नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ।
पहवस्त्रैरलङ्कारैर्बलिदानैः पृथग्विधैः ।।
यत्र न स्यादुपायोऽन्यः शत्रौर्भनिवृत्तये ।
तदाऽनन्यगतित्त्वेन मारणादीनि कारयेत् ।।
दीपादग्निं समानीय धूपाद्वा चान्त्यजादपि ।
विद्वेषणाभिचारे चक्रव्यादांशं च संत्यजेत् ।।
अत्र चैव विधायाग्निं परिस्तीर्य शरैस्तृणैः ।
विभीतकपरिध्या च कल्पयेद्यस्य मारणम् ।।
जुहुयान्निम्बतैलाक्तैः काकोलूकैश्च पिच्छकैः ।
दारयैनं शोषयैनं मारयेत्यभिधाय च ।।
अष्टोत्तरशतेनैव मनसा जुहुयादृचा ।
होमान्ते विधिवत्कृत्यामाराध्याग्नेश्च सन्निधौ ।।
यो मेच कण्टकं दूराद्दूरं वा चान्तिकेऽपि च ।
पिब हृद्यमसृक् तस्य इत्युक्त्वा च निवेदयेत् ।।
संरक्ष्याग्निं विधानेन नवरात्रैः समापयेत् ।
मृतस्तिष्ठति ज्ञातव्यं तामदस्य रिपोमृतिः ।।
वसनं लोहितं प्रोक्तमुष्णीषं लोहित स्मृतम् ।
संकल्प्य जपहोमादौ तदाचरणमारभेत् ।।

अब कलश (कुंभ) पूजन के नियम का वर्णन करते हैं—कलश को नियमपूर्वक स्थापित करने के बाद अनेक तरह के उपचारों से रुद्र एवं भद्रकाली देवी का पूजन करें। उपचार क्रम के अन्त में नियमपूर्वक देवता का ध्यान इस तरह करें—रुद्रदेव वृषभ पर सवार होकर हाथ में शूल लिए, पूर्ण चन्द्रमा के समान कांतिमान, महारौद्र रूप में समस्त शत्रुओं का संहार करने में तत्पर हैं या इस प्रकार ध्यान करें—कश्मीरी स्फटिक के समान शारीरिक-कान्ति वाले, तीन आंखों वाले, पांच मुखों वाले, हाथों में त्रिशूल, खट्वांग, असि, वर-मुद्रा, प्रसाद-मुद्रा, डमरू, चक्र, पद्म, बीज तथा अभयमुद्रा धारण किए विराजमान हैं। वे शंकरजी सिर पर जटा धारण किए वीरासन में बैठे हैं। उनके एक बगल पार्वती तथा दूसरी बगल लक्ष्मी शोभायमान हैं। ऐसे शंकर रूप का ध्यान करके रुद्रमन्त्र द्वारा उपचारों सहित पूजन करें। रुद्रमन्त्र यह है— **ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । ऊर्वारुकमिव बन्धनात मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।**

इसके पश्चात् नैवेद्य आदि द्वारा भद्रकाली की पूजा करें। इन देवी-देवता की आराधना में रेशमी कपड़े, गहने एवं बलिदान आदि सभी विधि अलग-अलग करनी चाहिए। मारण-कर्म का अनुष्ठान अन्तिम रूप से तभी करना चाहिए, जब शत्रु के डर से छुटकारा पाने का कोई दूसरा उपाय न हो। शत्रु के घर के दीपक की आग या धूप की आग को लाकर विद्वेषण आदि अभिचार कर्म करके, होम के कव्याद अंश को भी नहीं त्यागना चाहिए। नियमपूर्वक अग्नि को स्थापित

करके शर-तृण से अग्नि का परिस्तरण करें। उसके बाद नीम के तेल में भिगोए हुए कौए एवं उल्लू पक्षी के पंखों से हवन करें। जिसे मारने के लिए अनुष्ठान किया जाए, उसी के उद्देश्य से **एनं दारय एनं शोषय एनं मारय—** इस प्रकार मन ही मन कहते हुए एक सौ आठ बार होमाहुति देनी चाहिए।

होम के आखिर में अग्नि के नजदीक कृत्यादेवी की आराधना करके यह प्रार्थना करनी चाहिए कि 'दूर या नजदीक में मेरा जो भी शत्रु है, उसके मांस का भक्षण कीजिए।' इस नियम से आग को लगातार जलाते हुए नौ रातों तक जप तथा होम करते रहने से, अनुष्ठान के पूरा होने तक शत्रु की मृत्यु हो जाती है। मारण प्रयोग में लाल कपड़े के वस्त्र एवं लाल रंग की ही पगड़ी पहननी चाहिए। जप एवं होम से पहले संकल्प लेकर ही काम शुरू करना चाहिए।

जप माला निर्णय

प्रवाल वज्रमणिभिर्वश्यपौष्टिक योर्जयेत् ।
मत्ते भदन्तमणिभिर्ज्जपेदाकृष्टिकर्म्मणि ।।
साध्यकेश सूत्रयुक्तै स्तुरंगदशनोद्भवैः ।
अक्षैर्मालां परिष्कृत्य विद्वेषोच्चाटने जपेत् ।।
मृतस्य युद्धशून्यस्य दशनैर्गर्द्दभस्य च ।
कृत्वाऽक्षमालां जप्तव्यं शत्रुमारणमिच्छता ।।
क्रियते शंखमणिभिर्धर्मकामार्थ सिद्धये ।
पद्माक्षैः प्रजयेन्मंत्रं सर्वकामार्थ सिद्धये ।।
रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रः सर्वफलप्रदः ।
स्फाटिकी मौक्तिकी वापि रौद्राक्षी वा प्रवालजा ।
सारस्वताप्तये शस्ता पुत्रजीवैस्तथाप्तये ।।
पद्मसूत्रकृता रज्जुः शस्ता शान्तिकपौष्टिके ।
आकृष्ट युच्चाटयोर्वाजिपुच्छ वालसमुद्भवा ।।
नरस्नायु विशेषैस्तु मारणे रज्जुरुत्तमा ।
अन्यासां चाक्षमालानां रज्जुः कार्पासिकीमता ।।
सप्तविंशति संख्याकैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति ।
अक्षैस्तु पंचदशभिरभिचार फलप्रदा ।।
अक्षमाला विनिर्द्दिष्टा तत्राद्यौ तत्त्वदर्शिभिः ।
अष्टोत्तरशतेनैव सर्वकर्मसु पूजिता ।।

अब जप करने की माला के बारे में बताते हैं—पुष्टि कर्म में मूंगा एवं हीरों की माला से जप करना चाहिए। आकर्षण के कार्य में मतवाले हाथी के दांतों की मणियों की माला से मन्त्र जप करना चाहिए। मनुष्य के बालों में घोड़े के दांतों को गूंथ कर तैयार की गई माला से विद्वेषण तथा उच्चाटन कर्म में मंत्र जप करना चाहिए। धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिए शंख एवं मणियों की माला से मंत्र जप करना चाहिए। सभी कामों की सिद्धि के लिए कमलगट्टों की माला पर मन्त्र-जप करना उचित रहता है। रुद्राक्ष की माला पर जप करने से सारे मंत्र सिद्ध होते हैं। स्फटिक, मोतियों, रुद्राक्ष, मूंगे एवं जियापोता की माला पर जप करने से विद्या का लाभ होता है।

कमलनाल के डोरे से पिरोई गई माला शान्ति एवं पुष्टि कर्म में उपयोगी होती है।

आकर्षण एवं उच्चाटन कर्म में घोड़े के पूंछ के बालों से माला गूंथनी चाहिए। मारण कर्म में मनुष्य की नसों से माला गूंथनी चाहिए। अन्य कर्मों में कपास के डोरों से माला गूंथनी चाहिए। मुक्ति की इच्छा रखने वाले को 27 दानों वाली माला से मन्त्र जप करना चाहिए। 15 दानों की माला अभिचार कर्म में लाभदायक होती है। तत्त्वदर्शियों ने सभी प्रकार के कार्यों में 108 दानों वाली रुद्राक्ष की माला का प्रयोग करना बताया है।

जपांगुली जप-दिशा-लक्षणादि नियम

शान्त्यादिस्तंभ वश्येषु वृद्धाग्रेण च चालयेत् ।
अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु जपेदाकर्षणे मनुम् ।।
अङ्गुष्ठ तर्जनीभ्यां तु विद्वेषोच्चाटयोर्जपेत् ।
कनिष्ठांगुष्ठयोगेन मारणे जप ईरितः ।।
जपेत्पूर्वमुखो वश्ये दक्षिणां चाभिचारके ।
आयुष्यरक्षाशान्तिं च पुष्टिं वापि करिष्यति ।।
यः श्रूयतेऽन्यै स तु वाचिकः स्यादुपांशुसंज्ञो निजदेहवेद्यः ।
निष्कम्पदन्तौष्ठमथाक्षराणां यच्चिन्तनं स्यादिहमानसाख्यः ।।
पराभिचारे किल वाचिकः स्यादुपांशुरुक्तोऽप्यथ शान्तिपुष्टौ ।
मोक्षेषु जापः किल मानसाख्यः संज्ञा त्रिधा पापनुदे तथोक्ता ।।

अब जपांगुलि, जप-दिशा एवं जप-लक्षण आदि के बारे में जानकारी देते हैं—शान्ति, पुष्टि, स्तम्भन एवं वशीकरण कर्म में अंगूठे के अगले भाग से माला को चलाना चाहिए। आकर्षण कर्म में अंगूठे तथा अनामिका अंगुली से माला को चलाएं। विद्वेषण में अंगूठे एवं तर्जनी से तथा मारण कर्म में अंगूठे और कनिष्ठिका से माला को चलाना चाहिए।

वशीकरण में पूर्व की तरफ मुंह करके मन्त्र जप करें। अभिचारादि में दक्षिण दिशा की ओर मुंह करके मन्त्र जप करें। आयु-रक्षा, शान्ति कर्म एवं पुष्टि कर्म में उत्तर दिशा की ओर मुंह करके मन्त्र जपना चाहिए।

जप के वक्त यदि मन्त्र को दूसरा मनुष्य भी सुन सके तो वह 'वाचिक' जप कहा जाता है। जप के समय मन्त्र स्वयं को ही सुनाई दे, तो उसे 'उपांशु' जप कहते हैं। जप के वक्त होंठ एवं जीभ बिल्कुल न चलें तथा मन में ही ध्यान करते हुए मन्त्र का जप चलता रहे, तो उसे 'मानसिक जप' कहा जाता है। मारण आदि कर्म में 'वाचिक', शान्ति और पुष्टि कर्म में 'उपांशु' तथा मोक्ष के लिए 'मानसिक जप' करना चाहिए।

होम कुण्ड की दिशा

शान्तिके पौष्टिके चैव होमः स्याद्रोग्यसाधनैः ।
कार्यं प्राग्वदनेनाथ सौम्येन वदनेन वा ।।
आकृष्टौ वायुकुण्डे च कौबेर दिङ्मुखेन तु ।
नैर्ऋतीदिङ्मुख स्तन्मिन्कुण्डे विद्वेषणे हुनेत ।।

आग्नेयीदिङ्मुख स्वेतत्कुण्डे मारुतकेऽपिवा ।
उच्चाटने हुनेन्मंत्री मारणे याम्यदिङ्मुखः ।
जुहुज्ञाम्यग्निकुण्डे तु मंत्री तत्साधनैस्ततः ।।
वज्रलाञ्छितकुण्डे वा ग्रहभूतनिवारणे ।
वायव्य दिगमुखो वश्ये कुण्डे यौन्याकृतौ हुनेत् ।
वज्र लाञ्छित कुण्डे वा स्तम्भेप्राग्वदनो हुनेत् ।।

हवन द्रव्य निरूपण

द्रव्याण्यथ प्रवक्ष्यामि तत्तत्कर्मानुसारतः ।
शांतिके तु पयः सर्पिस्तिलाः क्षीरद्रुमेण वा ।
अमृताख्या लता चैव पायसं तत्र प्रकीर्तितम् ।।
पौष्टिके तु प्रवक्ष्यामि होमद्रव्याण्यतः परम् ।
बिल्वपत्रैस्तथाऽऽज्यैः स्याज्जातीपुष्पैतथैव च ।।
कन्यार्थो जुहुयाल्लाजैः श्रीकामः कमलैस्तथा ।
वध्ना च श्रियमाजोति चान्नैश्चान्नं घृतप्लुतैः ।
समृद्धौ जुहुयान्मंत्री महादारिद्रयशान्तये ।।
लक्षहोमाल्लभेच्छान्तिं घृतबिल्वतिलैर्निधिम् ।
आकर्षणे च हवनं प्रियंगु बिल्वकं फलम् ।
जातीपलाशकुसुमैः सैन्धवैस्त्र्यहमेव च ।।
राजिकालवणैर्वापि वश्ये वा पौष्टिकादिषु ।
वश्यार्थी जाति कुसुमैराकृष्टौ करवीरजैः ।।
कार्पास निम्बैस्तक्राक्तैः साध्यकेशैरथापि वा ।
उच्चाटने काकपक्षैरथवा मोहने पुनः ।।
उन्मत्तबीजैर्जुहुयाद्विषारक्तेन मारणम् ।
अजापयस्तथा सर्पिः कार्पासास्थि नृणामपि ।
तन्मासं चापि साध्यस्य नखलोमगणैरपि ।।
एकीकृत्य हुनेन्मन्त्री शत्रुमारण कांक्षया ।
जुहुयात्सार्ष पैस्तैलैरथ वा शत्रु मारणे ।
रोहीबीजैस्तिलोपेतैरुत्सादे जुहुयाद्यवैः ।।

अब होम कुण्ड की दिशा का निर्णय करते हैं—शान्ति एवं पुष्टि कर्म में पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की तरफ मुंह करके होम आदि कार्य करने चाहिए। आकर्षण कर्म में उत्तर की ओर वायव्य कोणस्थ मुंह करके हवन करना चाहिए। विद्वेषण के लिए वायव्य कोण में स्थित कुण्ड में नैर्ऋत्यमुखी होकर हवन करना चाहिए। उच्चाटन में आग्नेय कोण की ओर मुंह करके वायव्य कोण में स्थित कुण्ड में हवन करें। मारण कर्म में दक्षिण की ओर मुंह करके दक्षिण दिशा में स्थित कुण्ड में हवन करें। ग्रह-भूत आदि को शांत करने के लिए वायव्य कोण की तरफ मुंह करके षट्कोण कुण्ड में हवन करना चाहिए। वशीकरण के लिए योनि जैसी आकृति वाले कुण्ड में वायव्य कोण की तरफ मुंह करके हवन करें। स्तम्भन के लिए षट्कोण कुंड में पूर्व दिशा की

ओर मुंह करके हवन करें।

अब हवन की समिधा के बारे में बताते हैं—शान्ति कार्यों के लिए दूध, घी, पीपल के पत्ते, सरसों, तिल, दूध वाले वृक्ष, गिलोय नामक लता तथा खीर से हवन करना चाहिए। पुष्टि कर्म में बेलपत्र, घी तथा चमेली के फूल की आहुति देनी चाहिए। कन्या प्राप्ति हेतु खीलों द्वारा, स्त्री प्राप्ति हेतु कमलों द्वारा, बन्धन-मुक्ति हेतु घी में डूबे हुए अन्न द्वारा एवं अत्यधिक दरिद्रता की शान्ति हेतु दही और घी से होम करना चाहिए। घी, बिल्व तथा तिल द्वारा एक लाख आहुतियां देकर हवन करने से शान्ति प्राप्त होती है।

आकर्षण के लिए प्रियंगु, बेल के फल, चमेली के फूल, पलाश के फूल एवं सेंधा नमक से आहुति देनी चाहिए। सफेद सरसों (राई) एवं नमक से पुष्टिकर्म में, चमेली के फूलों से वशीकरण में तथा कनेर के पुष्प से आकर्षण कर्म में हवन करना चाहिए। उच्चाटन कार्य में कपास, नीम के बीज एवं वांछित मनुष्य के बालों को मट्ठे में मिलाकर हवन करना चाहिए। मोहन कर्म में कौए के पंखों से हवन करना चाहिए। दुश्मन के संहार के लिए बकरी के दूध, घी, कपास के बीज, मनुष्य की हड्डी और मांस एवं वांछित शत्रु के नाखून तथा रोमों को मिलाकर हवन करना चाहिए या मारण कर्म में सरसों के तेल द्वारा हवन करना चाहिए। उत्सादन कर्म में रोहितक के बीज, तिल एवं जौ से हवन करना चाहिए।

तुषकण्टकसंयुक्तैर्बीजैः कार्पास कैरपि ।
सर्षपैर्लवणाक्तैश्च हुनेत्सर्वाभिचारके ।।
काकोलूकच्छदैः क्रूरैः कारस्करविभीतकैः ।
मरीचैः सर्षपैः सिक्थैरर्कक्षीरैः कटुत्रयैः ।।
कटुतैलैः स्नुहीक्षीरैः कुर्यान्मारणकर्मणिः ।
आयुष्कामे घृत तिलैर्दूर्वाभिराम्रपर्णकैः ।।
प्रयुक्तै राम्रपर्णेश्च ज्वरं सद्यो विनाशयेत् ।
गुडूच्या मृत्युजपने तथा शान्तौ गजाश्वयोः ।।
गौरैस्तु सर्षपैर्हुत्वा सद्यो रोगं हरेद्गवाम् ।
वृष्टि कामो वैतसीभिः समिद्भिः पत्रकैस्तथा ।।
हुत्वा पुष्टिमवाप्नोति पुत्रजीवैस्तु पुत्रकम् ।
घृतगुग्गुलहोमेन वाक्पतित्त्वं प्रजायते ।।
पुन्नागमल्लिका जातीनागविद्रुमसम्भवैः ।
पुष्पैः सरस्वती सिद्धिस्तथा सर्वार्थ साधनम् ।
पयसा लवणैर्वापि हुनेद् वृष्टि निवारणे ।।

वह्नि जिह्वा निरूपण

पद्मरागासुवर्णाख्या तृतीया भद्रलोहिता ।
लोहिताऽनन्तरं श्वेता धूमिनी च करालिका ।
राजस्यो रसना वह्नेर्बिहिताः काम्यकर्मसु ।।
विश्वमूर्तिस्फुलिङ्गिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा ।
लोहिताख्या करालाख्या काली तामस्य ईरिताः ।।

एताः सप्त नियुञ्जन्ति क्रूरकर्मसु मन्त्रिणः ।
हिरण्यागगना रक्ता कृष्णाऽन्या सुप्रभा मता ।।
बहुरूपाऽतिरिक्ता च सात्त्विक्यो योगकर्मसु ।
तस्वस्वनाम समाभाः स्युर्जिह्वा कनकरेतसः ।।

कपास के बीज, सरसों तथा लवण से अभिचार कर्म में हवन करना चाहिए। कौआ, उल्लू आदि क्रूर पक्षियों के पंख, कुचला, भिलावां, सरसों के तेल, मिर्च, सरसों, सिक्थ, आक का दूध, सोंठ, कालीमिर्च एवं पीपल, कटुतैल तथा सेंहुड़ से मारण कर्म में हवन करना चाहिए। आयु में बढ़ोत्तरी के लिए घी, तिल, दूर्वा एवं आम के पत्तों से हवन करना श्रेयस्कर है। आम के पत्तों से हवन करने पर बुखार समाप्त हो जाता है।

मृत्यु को जीतने तथा घोड़ा व हाथी को शांत करने के लिए गिलोय से हवन करना चाहिए। गाय की पीड़ा दूर करने के लिए सफेद सरसों का हवन करना चाहिए। वर्षा की कामना हेतु बेंत की समिधा और बेंत के पत्ते से हवन करना चाहिए। जियापोता की समिधा से हवन करने पर पुष्टि लाभ होता है। घी एवं गुग्गुल से हवन करने वाला व्यक्ति विद्वान होता है। सरस्वती की सिद्धि के लिए पुन्नाग, मल्लिका, जाती, नागकेसर के फूल एवं मूंगा के द्वारा हवन करना चाहिए। दूध व लवण द्वारा हवन करने से वर्षा रुक जाती है।

पद्मराग, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी एवं करालिका—ये सात नाम अग्नि (वह्नि) की 'राजसी' जिह्वाओं के हैं। काम्य-कर्म में इनकी जरूरत होती है। अग्नि की 'तामसी' जिह्वाएं हैं—विश्वमूर्ति, स्फुरलिंगनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, कराला और काली। इन जिह्वाओं का मारणादि कर्मों में उपयोग किया जाता है। हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अतिरिक्ता—ये सात नाम अग्नि की 'सात्विकी' जिह्वाओं के हैं। योग कर्म में इनकी जरूरत होती है। इन सभी जिह्वाओं का वर्ण उनके नाम के आधार पर जान लेना चाहिए।

संन्यस्या रुद्रभागे द्रुत कनकनिभाऽऽकर्षणादौ हिरण्या ।
वैदूर्य्या पूर्वभागे प्रभवति गगना स्तम्भनादौ रसज्ञा ।।
रक्ताबालार्कवर्णा हुतवहविदिशि द्वेषणादौ प्रशस्ता ।
कृष्णानीलाम्बुजाभादिशि दनुजपतेर्मारणे सुप्रशस्ता ।
वारुण्यां सुप्रभाख्या प्रभवति रसना शान्तिके शोणवर्णा ।
हेमाभा चातिरिक्ता पवनदिशि गतोच्चाटने संप्रशस्ता ।।
मध्ये कुंडस्य चान्ते प्रभवति बहुरूपा यत् यथार्थाभिमाना ।
एताजिह्वाः प्रयोज्या विविधविधिषु यत्कोविदैस्तंत्रविदभिः ।।

वह्नि नाम निरूपण

पूर्णाहुत्यां मृडो नाम शान्तिके वरदस्तथा ।
पौष्टिके बल दश्चैव क्रोधोऽग्निश्चाभिचारके ।।
वश्यार्थे कामदो नाम वरदाने च चूडकः ।
लक्ष होमे वह्नि नामा कोटिहोमे हुताशनः ।।

होम व्यवस्था

द्रव्याशक्तौ घृतं होमे त्वशक्तौ सर्वतो जपेत् ।
मूलमंत्राद्दशांशः स्यादंगादीनां जपक्रिया ।।
अशक्तावुक्त होमस्य जपस्तु द्विगुणो मतः ।
येषां जपे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः ।
तेषामष्टसहस्त्राणि संख्योक्ता जप होमयोः ।।
स्वाहान्तेनैव मंत्रेण कुर्याद्धोमं बलिं तथा ।
नमोऽन्तेन नमस्कार मर्चनं च समाचरेत् ।।
मन्त्रान्ते नाम संयोज्य तर्पयामीति तर्पणम् ।
संख्यानुक्तौ जपे होमे चाष्टोत्तर सहस्रकम् ।।

आकर्षण कर्म में ईशान कोण में स्थित अग्नि की स्वर्णवर्णा 'हिरण्या' नामक जिह्वा की आवश्यकता होती है। स्तम्भन आदि कर्मों में पूर्व दिशा में नीलकान्त मणि के समान आभा वाली 'वैदूर्य्या' नामक अग्नि की जरूरत होती है। विद्वेषण कर्म में आग्नेया कोण में स्थित बालसूर्य के समान रंग वाली 'रक्ता' नामक अग्नि की जिह्वा की जरूरत होती है। मारणकर्म में नैर्ऋत्य कोण में स्थित नीलपद्म (नीला कमल) के समान रंग वाली 'कृष्णा' नामक अग्नि की जिह्वा की आवश्यकता होती है। शान्तिकर्म में पश्चिम दिशा में स्थित लोहित रंग वाली 'सुप्रभा' नामक अग्नि की जिह्वा की आवश्यकता होती है। मध्यकुण्ड में 'बहुरूपा' नामक अग्नि की जिह्वा की जरूरत होती है। उच्चाटन कर्म में वायव्य कोण में स्थित सोने के समान रंग वाली 'अतिरिक्ता' नामक अग्नि की जिह्वा है, उसमें हवन करने से अर्थ-सिद्धि होती है। तन्त्र के जानकार विद्वानों ने इन सभी जिह्वाओं को अनेक तरह के कर्मों के लिए प्रयोजनीय बताया है।

अब वह्नि के नामों के बारे में बताते हैं—पूर्ण आहुति के समय अग्नि के 'मृड' नाम का उच्चारण करना चाहिए। शान्ति कर्म में अग्नि के 'वरद' नाम का उच्चारण करते हुए होम करना चाहिए। पुष्टि कर्म में 'बलद' नाम का, अभिचार कर्म में 'क्रोध' नाम का, वशीकरण में 'कामद' नाम का, वरदान में 'चूड़क' नाम का, लक्ष संख्या वाले में 'वह्नि' नाम का तथा कोटि संख्यक हवन में अग्नि के 'हुताशन' नामक का उच्चारण करना चाहिए।

यदि हवन सामग्री का अभाव हो तो केवल घी से हवन करना चाहिए। यदि घी भी न हो तो केवल जप ही करना चाहिए। मूल-देवता के मंत्र का जितनी संख्या में जप किया जाए, उसका दसवां भाग अंगदेवता आदि का जप करना चाहिए। यदि घी से हवन करने में असमर्थ हों तो जप की संख्या दुगुनी कर देनी चाहिए। यदि कहीं जप तथा होम की संख्या का उल्लेख न हो तो वहां आठ-आठ हजार की संख्या में जप एवं हवन करना चाहिए। बलि और होम के आखिर में 'स्वाहा' शब्द एवं पूजन तथा नमस्कार के समय मंत्र के आखिर में 'नमः' शब्द का उपयोग करना चाहिए। तर्पण के वक्त मंत्र के आखिर में देवता का नाम लेते हुए 'तर्पयामि' बोलना चाहिए। जहां जप तथा हवन की संख्या न बतायी गयी हो, वहां 1008 बार जप तथा हवन करना चाहिए।

स्रुकस्रुव नियम

षट्त्रिशदंगुला स्रुक् स्याच्चतुर्विंशा गुलः स्रुवः ।

मुखं कण्ठं तथा वेदीं सप्त चैकाष्टभिः क्रमात् ।।
आयामानाहतो दण्डोविंशतिश्च षडङ्गुलः ।
वेदरामांगुलैः कुण्डो गर्तो हि चतुरंगलः ।।
खातं वेदांगुलैर्वृत्तमंगुलत्रितयं खनेत् ।
मेखला द्वयंगुला तद्वच्छोभाशेषं विचिन्तयेत् ।।
वेदित्र्यंशेन विस्तारं कुर्यात्कुण्डमुखाग्रयेः ।
कनिष्ठाग्रमितं रन्ध्रं स्रुचो घृतविनिर्गमे ।।
सुवर्णरूप्यताम्रैर्वा स्रुक्स्रुवौ दारुजावपि ।
आयसीयौ स्रुक्स्रुवौ वा कारस्करमयावपि ।
नागेन्द्रलतयोर्विद्यात्क्षुद्रकर्मणि संस्थिते ।।

होम मुद्रा

न देवाः प्रतिगृह्णाति मुद्राहीनां यथाऽऽहुतिम् ।
मुद्रयैवेति होतव्यं मुद्रहीनं न भोक्ष्यति ।।
मुद्राहीनं च यो मोहाद्धोममिच्छति मन्दधीः ।
यजमानं स चात्मानं पातयेत्तेन निश्चितम् ।।
तिस्रो मुद्राः स्मृता होमे मृगी हंसी च शूकरी ।
शूकरी करसंकोची हंसी मुक्तकनिष्ठिका ।।
मृगी कनिष्ठातर्जन्योर्होम मुद्रेयमीरिता ।
अभिचारिक कार्येषु शूकरी परिकीर्त्तिता ।।
नमः स्वाहा वषट् वौषट् हुं फडन्ताश्च जातयः ।
शान्तौ वश्ये तथा स्तम्भे विद्वेषोच्चाट मारणे ।।

अब स्रुक एवं स्रुव के बारे में कहते हैं—स्रुक 36 अंगुल का एवं स्रुव 24 अंगुल के बराबर बनाना चाहिए। उनका मुख 7 अंगुल का, कण्ठ 1 अंगुल का एवं वेदी 8 अंगुल की होनी चाहिए। दण्ड की लम्बाई एवं चौड़ाई क्रमशः 20 और 6 अंगुल रखें। स्रुक एवं स्रुव—दोनों के कुण्डल का भाग 4 अंगुल या 3 अंगुल रखकर उसमें चौकोर गड्ढा करें। गड्ढा 4 अंगुल भर तथा वृत्त 3 अंगुल वर्तुलाकार हो। गड्ढे के बाहर 2 अंगुल मेखला तथा उसके बाहर शोभा बनाएं।

कुण्ड का मुख तथे कुण्ड का अगला भाग वेदी का तीन गुना होना चाहिए। स्रुक तथा स्रुव के अगले भाग में घी निकालने के लिए कनिष्ठिका अंगुली के अगले भाग जितना छिद्र बनाना चाहिए। स्रुक एवं स्रुव सोना, चांदी, तांबा, लोहा या काठ का बनाना चाहिए। छोटे कर्मों के लिए नागेन्द्र लता का स्रुक एवं स्रुव बनाना चाहिए।

अब होम की मुद्रा के बारे में बताते हैं—मुद्रा के बगैर हवन में दी गई आहुति को देवता नहीं ग्रहण करते, इसलिए मुद्रा के साथ हवन करना चाहिए। जो व्यक्ति दुर्बुद्धिवश बिना मुद्रा के हवन करता है, वह खुद को एवं यजमान को पतित बना देता है।

होम हेतु तीन मुद्राएं कही गई हैं—मृगी, हंसी एवं शूकरी। शूकरी मुद्रा हाथों को सुंकचित करने से बनती है। हंसी मुद्रा कनिष्ठिका को विलाग करके अन्य अंगुलियों को मिलाने से बनती

है। मृगी मुद्रा कनिष्ठिका एवं तर्जनी अंगुलियों को मिलाने से बनती है। षट्कर्मों में इन मुद्राओं का बड़ा महत्व है। शूकरी मुद्रा अभिचारिक कर्मों में उपयुक्त मानी गई है। 'नमः' शांतिकर्म में, 'स्वाहा' वशीकरण में, 'वषट्' स्तंभन में, 'वौषट्' विद्वेषण (वैरभाव) में तथा 'फट्' मारणकर्म के अन्त में लगाकर होम करने का विधान है।

प्रायोगिक षट्कर्म

इस अध्याय में भगवान् शंकर महापंडित रावण को षट्कर्मों के प्रयोगों के बारे में बताया है। इन प्रयोगों में शांतिकर्म मंत्र, वशीकरण मंत्र, स्तम्भन मंत्र, मोहन मंत्र, विद्वेषण के मंत्र, उच्चाटन मंत्र, आकर्षण मंत्र और मारण मंत्र के अनेक प्रकारों का वर्णन है।

शांतिकर्म मंत्र

ज्वरादि शांति मंत्र

ॐ शांते शांते सर्वारिष्ट नाशिनी स्वाहा ।
एकलक्ष जपेनापि सर्वशांतिभवेद् ध्रुवम् ।।

ॐ शांते शांते सर्वारिष्टनाशिनी स्वाहा इस मंत्र का एक लाख बार जप करने से ज्वर व तत्संबंधी अन्य रोग ठीक होते हैं।

कुकृत्य शांति मंत्र

ॐ सं सां सिं सीं सुं सूं से सैं सों सौं सं सः वं वां विं वीं वुं वूं वें वैं वों वौं वं वः हंसः अमृतवर्च्चसे स्वाहा ।।

अनेन मंत्रेण उदकशरावं अष्टोत्तरशताभिमंत्रितं पिबेत् ।
प्रातरुत्थाय सर्वव्याधिरहितः संवत्सरेण भविष्यति ।।

सकोरे (मिट्टी का एक छोटा पात्र) को जल से भर लें। फिर उस जल को एक सौ आठ बार उक्त मंत्र से अभिमंत्रित करके प्रातः सेवन करने से सभी प्रकार के रोगों का क्षय होने के साथ ही किसी के भी द्वारा किया गया कुकृत्य (अभिचार कर्म) प्रभावहीन होता है।

विविध आपत् शांति मंत्र

ॐ हं हां हिं हीं हुं हूं हें हैं हों हौं हं हः क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः हंसः हम् ।।

मंत्रेणानेन दुष्टस्य चरितं संप्रणश्यति,
स्थावरं जंगमं चैव कृत्रिमं विषमेव च ।
भूतप्रेत पिशाचाश्च राक्षसा दुष्टचेतसः ।।
नराश्च व्याघ्रसिंहाद्या भल्लुका जम्बुकास्तथा ।
नागा गजा हयाश्चैव सर्वे पशव एव च ।।
नश्यंति स्मृतिमात्रेण ये केचिद् भूतविग्रहाः ।

सर्वे ते प्रलयं यांति मंत्रस्यास्य प्रभावतः ।।

इस मंत्र का जप करने या स्मरण करने मात्र से ही कई प्रकार की आपदाएं नष्ट हो जाती हैं। जो मनुष्य इस मंत्र का नित्य जप करता है उस पर किसी भी प्रकार का विष प्रभाव नहीं होता। इसके अलावा उस मनुष्य को भूत, प्रेत, पिशाच, दुष्ट मनुष्यों, व्याघ्र, सिंह, भालू (रीछ), शृंगाल (सियार), सर्प, गज (हाथी), अश्व (घोड़ा) आदि से किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती है।

ईश्वरादि क्रोधशांति मंत्र

ॐ शांते प्रशांते सर्वक्रोधोपशमनि स्वाहा ।
अनेन मंत्रेण त्रिः सप्तधा जप्तेन मुखं मार्जचेत् ।।

उक्त मंत्र द्वारा इक्कीस बार अभिमंत्रित जल से मुंह प्रक्षालन (धोने) करने से ईश्वर (स्वामी) या किसी के भी क्रोध की शांति होती है।

वशीकरण मंत्र

अथाग्रे संप्रवक्ष्यामि वशीकरणमुत्तसमम् ।
राजप्रजापशूनां च शृणु रावण यत्नतः ।।

भगवान शिव बोले, हे रावण! अब मैं तुम्हें वशीकरण मंत्रों के बारे में बता रहा हूं। ध्यानपूर्वक श्रवण करो। इन वशीकरण मंत्रों से राजा, प्रजा, पशु आदि को वशीभूत किया जा सकता है।

प्रियंगु तगरं कुष्ठं चंदनं नागकेशरम् ।
कृष्णधत्तूरपंचांगं समभागं तु कारयेत् ।।
छायायां वटिका कार्या प्रदेयाऽदनपानयोः,
पुरुषो वाथ नारी च यावज्जीवं वशे भवेत् ।
त्रिसप्ताहं मंत्रयेत्तां मंत्रेणानेन मंत्रवित् ।।
मंत्रस्तु—ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय ।
मोहय मोहय मिलि मिलि ठः ठः ।।
एक चित्तस्थितो मंत्री जपेन्मंत्रमतंद्रितः ।
त्रिंशत्सहस्रसंख्याकं सर्वलोकवशं करम् ।।

कांगनी (प्रियंगु), तगर, कूठ, चंदन, नागकेसर, काले धतूरे का पंचांग (जड़, छाल, पत्र, पुष्प व फल) को सममात्रा में लेकर वटिका (गोली) बनाकर छाया में सुखा लें। फिर वटिका सात बार अभिमंत्रित कर खाने या पीने के पदार्थों में मिश्रित कर जिस स्त्री या पुरुष को खिला दी जाए, वह जीवन भर हेतु उसका दास बन जाता है। इसके अतिरिक्त जो प्राणी इस मंत्र का तीस हजार बार जप करता है वह किसी भी स्त्री-पुरुष को वशीभूत कर सकता है।

पुष्येपुनर्नवामूलं करे सप्तभिमंत्रितम्,
बद्ध्वा सर्वत्र पूज्यः स्यात्सर्वलोकवशंकरः ।
मंत्रः ॐ नमः सर्वलोकवशं कराय कुरु कुरु स्वाहा ।।
बिल्वपत्राणि संगृह्य मातुलुंगं तथैव च ।
अजादूधेन संपिष्य तिलकं लोकवश्यकृत् ।।

पुष्य नक्षत्र काल में पुनर्नवा (एक प्रकार का पौधा) की जड़ को सम्मानपूर्वक लाकर उसे **ॐ नमः सर्वलोकवशं कराय कुरु कुरु स्वाहा** मंत्र द्वारा सात बार अभिमंत्रित कर हाथ में बांधने से मनुष्य सभी लोकों में पूजनीय होता है और उसमें सभी लोकों को वशीभूत करने की शक्ति आ जाती है।

बिल्वपत्र या मातुलुंग (बिजौरा नीबू) वृक्ष के पत्तों को बकरी के दूध में पीसकर ललाट पर तिलक धारण करने से भी मनुष्य लोकों को वशीभूत कर सकता है।

कुंकुमं चंदनं चैव रोचनं शशिमिश्रितम् ।
गवां क्षीरेण तिलकं राजवश्यकरं परम् ।।

ॐ ह्रीं सः अमुकं मे वशमानय स्वाहा । पूर्वमेव सहस्रं जप्त्वाऽनेन मंत्रेण सप्ताभिमंत्रितं तिलकं कार्यम् ।

उक्त मंत्र को पहले एक सहस्र बार जप द्वारा सिद्ध कर लेना चाहिए। फिर केसर, चंदन, गोरोचन, भीमसेनी कपूर को गाय के दूध में घिसकर अभिमंत्रणोपरांत ललाट पर धारण करने से राजा (शासक) को भी वश में किया जा सकता है।

स्त्री वशीकरण मंत्र

अथातः संप्रवक्ष्यामि योगानां सारमुत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण नारी भवति किंकरी ।।

ॐ नमः कामाख्यादेवि अमुकी मे वशमा नय स्वाहा ।।

भगवान् शिव बोले, हे राक्षसाधिपति रावण! अब मैं तुम्हें वह प्रयोग बताता हूं जिसके द्वारा स्त्री का वशीकरण किया जाता है। **ॐ नमः से सिद्धि** तक मंत्र को एक सौ आठ बार जप करके सिद्ध कर लेना चाहिए। फिर इस मंत्र द्वारा आगे दी जा रही रीति से स्त्री का वशीकरण किया जाना चाहिए।

ब्रह्मदंडी चिताभस्म यस्या अंगे क्षिपेन्नरः ।
वशीभवति सा नारी नान्यथा शंकरोदितम् ।।

कृष्णोत्पलं मधुकरस्य च पक्षयुग्मं मूलं तथा तगरजं सितकाकजंघा ।
यस्याः शिरोगतमिदं विहितं विचूर्ण दासी भवेज्झटिति सा तरुणी विचित्रम् ।।

ब्रह्मदंडी (एक प्रकार की बूटी) व चिता की राख को अभिमंत्रित कर जिस किसी भी स्त्री पर डाला जाए तो वह वशीभूत हो जाती है। हे रावण! मेरा यह कथन मिथ्या नहीं है। इसी प्रकार काले कमल, भ्रमर (भौंरे) के पंखों, तगर की जड़, काकजंघा (श्वेत) का चूर्ण बनाकर उक्त मंत्र से अभिमंत्रित कर स्त्री के शीश पर डालने से वह स्त्री दासी बन जाती है।

सिंधूत्थमाक्षिककपोतमलांश्च पिष्ट्वा लिंगं विलिप्य तरुणीं रमते नवोढाम् ।
साऽन्यं न याति पुरुषं मनसापि नूनं दासी भवेदतिमनोहरदिव्यमूर्तिः ।।

जो पुरुष सेंधा नमक और कबूतर की विष्ठा (बीट) को पीसकर शहद में मिलाकर उस अवलेह को अपनी कामध्वजा (लिंग) पर लेप करके जिस किसी स्त्री से रमण (रतिक्रिया) करता है, वह स्त्री उस पुरुष को छोड़कर अन्य पुरुष के साथ कभी रमण नहीं करती। वह सदैव के लिए

उसके वशीभूत हो जाती है।

पति वशीकरण मंत्र

रोचनं मत्स्यपित्तं च मयूरस्य शिखां तथा ।
मधुसर्पिः समायुक्तं स्त्रीवरांगे तु लेपयेत् ।।
निभृते मैथुने भावे पतिर्दासो भविष्यति ।
कुलत्थं बिल्वपत्रं च रोचना च मनःशिला ।।
एतानि समभागानि स्थापयेत्ताम्रभाजने ।
सप्तरात्रस्थिते पात्रे तैलमेवं पचेत्ततः ।।
तैलेन भगमालिप्य भर्त्तारमनुगच्छति ।
संप्राप्ते मैथुने भर्त्ता दासो भवति नान्यथा ।।

हे रावण! इसी प्रकार यदि कोई स्त्री गोरोचन, मछली के पित्त अथवा मयूर की चोटी (पंख) को पीसकर शहद व घी में मिलाकर उस अवलेह (लेप) का अपनी भग (योनि) में लेप करके पति के साथ रतिक्रिया (कामक्रीड़ा) करे तो पति उसके वशीभूत हो जाता है। एक अन्य योग और भी है। वह यह कि कुलथी, बिल्वपत्र, गोरोचन, मैनसिल को समभाग लेकर ताम्रपात्र में सात रात तक तेल में पकाकर उस तेल का अपनी भग (योनि) में लेप करके पति से रतिक्रिया करे तो पति उसके वशीभूत हो जाता है।

स्तम्भन मंत्र

आसन स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो दिगंबराय अमुकासनस्तंभनं कुरु स्वाहा ।। इति मंत्रः ।। अष्टोत्तरशत जपेन सिद्धिः ।।

श्वेतगुंजाफलं क्षिप्तं नृकपाले तु मृत्तिकाम् ।
बलिं दत्त्वा तु दुग्धस्य तस्यो वृक्षो भवेद्यदा ।।
तस्य शाखा लता ग्राह्या यस्याग्रे तां विनिक्षिपेत् ।
तस्य स्थाने भवेत्स्तंभः सिद्धियोग उदाहृतः ।।

सर्वप्रथम **ॐ नमो दिगंबराय** से स्वाहा तक मंत्र को एक सौ आठ बार जप द्वारा सिद्ध कर मृत मनुष्य की खोपड़ी में मिट्टी भरकर सफेद घुंघची के बीजों का रोपण करें। बीजों का सिंचन नित्य दूध से करें। जब बेल उग आए तो उसकी शाखा उखाड़कर उसे मंत्र द्वारा अभिमंत्रित कर जिस मनुष्य के आसन पर फेंका जाए, वह अपने ही आसन पर स्थिर हो जाएगा।

विशेष— आसन का तात्पर्य यहां उठने-बैठने के स्थान से है, न कि किसी विशिष्ट आसन से।

अग्नि स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो अग्निरूपाय मम शरीरे स्तंभनं कुरु कुरु स्वाहा ।

वसां गृहीत्वा माणडूकीं कौमारीरसपेषिताम् ।
लेपमात्रे शरीराणामग्निस्तंभः प्रजायते ।।
आज्यं शर्करया पीत्वा चर्वयित्वा च नागरम् ।
तप्तलोहं मुखे क्षिप्तं क्वचिद् वक्रं न दह्यते ।।

ॐ अग्निरूपाय से स्वाहा तक मंत्र को एक सौ आठ बार जप करके सिद्ध करें। फिर घीकुवार (घृतकुमारी या ग्वारपाठा) के सत्व (अर्क) में मेढक की चर्बी को पीसकर शरीर पर लेप करने से अग्नि का प्रभाव नहीं होता अर्थात् अग्नि का स्तम्भन हो जाता है। एक अत्य योग यह है कि यदि घी व शक्कर का सेवन करके सोंठ चबा ली जाए और फिर मुख में अंगारा भी रख दिया जाए तो दाह नहीं होता।

शस्त्र स्तम्भन मंत्र

ॐ अहो कुंभकर्ण महाराक्षस कैकसीगर्भसंभूत परसैन्यस्तंभन महाभगवान् रुद्रोऽर्पयति स्वाहा ।।

खर्जूरी मुखमध्यस्था कटिबद्धा च केतकी ।
भुजदंडे स्थिते चार्के सर्वशस्त्र निवारणम् ।।
गृहीत्वा रविवारे तु बिल्वपत्रं च कोमलम् ।
पिष्ट्वा बिससमं सद्यः शस्त्र स्तंभस्तु लेपनात् ।।

सर्वप्रथम **ॐ अहो कुंभकर्ण स्वाहा** तक मंत्र को एक सौ आठ बार जप कर सिद्ध कर लें। फिर मुख में खजूरी, कमर (कटि) में केतकी (एक प्रकार का पुष्प) व बांहों में आक (आकड़े) को पहनने से सभी प्रकार के शस्त्र प्रभावहीन (स्तंभित) होते हैं। इसी प्रकार रविवार को कोमल बेलपत्र (बेलपत्र की कोंपल) व सिवार (एक प्रकार की घास) को पीसकर शरीर में लेप करने से भी सभी प्रकार के शस्त्र प्रभावहीन (स्तंभित) होते हैं।

सैन्य स्तम्भन मंत्र

ॐ नमः कालरात्रि त्रिशूलधारिणि मम शत्रु सैन्य स्तंभनं कुरु कुरु स्वाहा ।

रविवारे तु गृह्णीयाच्छ्वेतगुंजाफलं सुधीः ।
निखनेच्च श्मशाने वै पाषाणं तत्र धापयेत् ।।
अष्टौ च योगिनीः पूज्या रौद्री माहेश्वरी तथा ।
वाराही नारसिंही च वैष्णवी च कुमारिका ।।
लक्ष्मीब्राह्मी च संपूज्या गणेशो बटुकस्तथा ।
क्षेत्रपालः सदा पूज्यः सेनास्तंभो भविष्यति ।।
पृथक् पृथक् बलिं दत्त्वा दशनामविभागतः,
मांसं मद्यं तथा पुष्पं धूपं दीपावलीक्रिया ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं यान्यथा शंकरोदितम् ।।

पहले मंत्र को सिद्ध करके फिर रविवार को घुंघची (श्वेत) के फल को श्मशान भूमि में गाड़कर उस पर पत्थर रख दें। फिर आठ योगिनियों (रौद्री, माहेश्वरी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवी,

कौमारी, महालक्ष्मी व ब्राह्मी) का पूजन करने के बाद गणेश, बटुक, क्षेत्रपाल का भी पूजन कर अलग-अलग बलि दें। तत्पश्चात मांस, मद्य (शराब), पुष्प, धूप व दीपक आदि क्रियाएं करने से सेना का स्तंभन होता है। भगवान् शिव बोले, हे दशानन! यह क्रिया सामान्य लोगों के सम्मुख प्रकट नहीं करनी चाहिए।

सैन्य विमुखीकरण मंत्र

ॐ नमो भयंकराय खंगधारिणे मम शत्रुसैन्य पलायनं कुरु कुरु स्वाहा ।। अष्टोत्तरशत जपेन सिद्धिः ।

भौमवारे गृहीत्वा तु काकोलूकौ तु पक्षिणौ ।
भूर्जपत्रे लिखेन्मंत्रं तस्य नामसमन्वितम् ।।
गोरोचने गले बद्ध्वा काकोलूकस्य पक्षिणः ।
सेनानी सम्मुखं गच्छेन्नान्यथा शंकरोदितम् ।।
शब्दमात्रे सैन्यमध्ये पलायंतेऽतिनिश्चितम् ।
राजा प्रजा गजादिश्च नान्यथा शंकरोदितम् ।।

हे रावण! यदि युद्धभूमि से शत्रु सेना का पलायन कराना हो तो पहले उक्त मंत्र सिद्ध करके भौमवार (मंगलवार) को भोजपत्र पर शत्रु का नाम गोरोचन से लिखकर कौए व उल्लू के गले में बांधकर छोड़ देने से जब वह शत्रु सेना के सम्मुख जाएंगे तो शत्रु सेना मैदान छोड़कर भाग खड़ी होगी।

जल स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो भगवते रुद्राय जलं स्तंभय स्तंभय ठः ठः ठः ।। इति मंत्र ।। अष्टोत्तरशत जपेन सिद्धिः ।

पद्मकं नाम यद्द्रव्यं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।
वापीकूपतडागादौ निक्षिपेत्स्तंभते जलम् ।।

सर्वप्रथम उक्त मंत्र को सिद्ध करके पद्मक (एक वृक्ष) की लकड़ी का चूर्ण बनाकर, अभिमंत्रित कर कुएं, बावड़ी, तालाब में डाल देने से जल का स्तंभन होता है।

मेघ स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो भगवते रुद्राय मेघं स्तंभय स्तंभय ठः ठः ठः । इति मंत्रः ।

अष्टोत्तरशत जपेनास्य सिद्धिः ।
इष्टकाद्वायमादाय श्मशानांगार संपुटे ।
स्थापयेद्वनमध्ये च मेघस्तंभनकारकम् ।।

अर्थात् ऊपर लिखे मंत्र को एक सौ आठ बार जप करके सिद्ध कर लेने के बाद दो ईंट के बीच में श्मशान के अंगार को रख वन में गाड़ देने से मेघ स्तंभित हो जाते हैं अथवा वर्षा आदि होनी रुक जाती है।

नौका स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो भगवते रुद्राय नौकां स्तंभय स्तंभय ठः ठः ठः । इति मंत्रः ।

उपरोक्त मंत्र को एक सौ आठ बार जप करके सिद्ध करें। फिर भरणी नक्षत्र में क्षीरवृक्ष की पांच अंगुली की कील बनाकर नौका में डाल देने से चलती हुई नौका रुक जाती है।

मनुष्य स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो भगवते रुद्राय अमुकं स्तंभय स्तंभय ठः ठः ठः । इति मंत्रः ।

अष्टोत्तरशत जपेनास्य मन्त्रस्य **सिद्धिः ।**
नीत्वा रजस्वलावस्त्रं गोरोचन समन्वितम् ।
यस्य नाम क्षिपेत्कुम्भेसद्यः स्तंभन कारकम् ।।

अर्थात् ऊपर लिखे मंत्र को पहले एक सौ आठ बार जप कर सिद्ध कर लेना चाहिए। इसके बाद रजस्वला स्त्री का वस्त्र लेकर गोरोचन मिलाकर शत्रु का नाम लिखकर जलपूर्ण कलश में डालकर रखने से शत्रु का स्तम्भन हो जाता है।

निद्रा स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो भगवते रुद्राय निद्रां स्तंभय स्तंभय ठः ठः ठः । इति मंत्रः ।

सबसे पहले इस मंत्र को एक सौ आठ बार जप कर सिद्ध कर लें। तत्पश्चात् बृहति और मुलहठी को पीसकर माथे पर लगाने से निद्रा आ जाती है। यह मंत्र विशेष रूप से प्रयोग किया हुआ है। विधिपूर्वक करने से सफलता प्राप्त होती है।

गोमहिष्यादि स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो भगवते रुद्राय गोमहिष्यादिन् स्तंभय स्तंभय ठः ठः अष्टोत्तरशत जपेन सिद्धिः ।

उष्ट्रस्यास्थि चतुर्द्दिक्षु निखनेद्भूतले ध्रुवम् । गोमहिष्यादिकस्तंभः सिद्धयोग उदाहृतः ।

अर्थात् उपरोक्त मंत्र को एक सौ आठ बार अभिमंत्रित करके सिद्ध कर लें। उसके बाद गोशाला के चारों ओर ऊंट की हड्डी गाड़ देने से गौ-महिषि आदि का स्तंभन हो जाता है। यह मंत्र सिद्ध किया हुआ है।

पशु स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो भगवते रुद्राय अमुकं पशु स्तंभय स्तंभय ठः ठः ठः । अष्टोत्तरशत जपेन मंत्रस्य सिद्धिः ।

ऊष्ट्रलोमगृहीत्वा तु पशुपरि विनिक्षिपेत ।
पशूनां भवतिस्तंभः सिद्धियोग उदाहृतः ।।

अर्थात् उपरोक्त मंत्र को एक सौ आठ बार जप करके सिद्ध कर लें। उसके बाद जिस पशु

को स्तंभित करना हो, ऊंट के बाल उसके ऊपर डाल देने से वह पशु एक ही स्थान पर रुक जाता है।

मोहन मंत्र

ॐ ह्रीं कालि कपालिनि घोर नादिनि विश्वं विमोहय जगन्मोहय सर्वं मोहय मोहय ठः ठः ठः स्वाहा । इति मंत्रः ।

लक्षजपेनास्य मंत्रस्य सिद्धिः ।

इस मंत्र को पूर्व लिखित विधि के अनुसार पूजा-अर्चना करके एक लाख बार जप करने से मनुष्य मोहित हो जाते हैं।

सर्वजगमोहन मंत्र

ॐ ह्रीं कालि कपालिनि घोर नादिनि विश्वं विमोहय जगन्मोहय सर्वं मोहय मोहय ठः ठः ठः स्वाहा । इति मंत्रः ।

श्वेतगुंजारसैः पेष्यं ब्रह्मदण्डयाश्च मूलकम् ।
लेपमात्रं शरीराणां मोहनं सर्वतो जगत् ।।

अर्थात् सफेद घुंघची के रस में ब्रह्मदण्डी की जड़ को पीसकर शरीर में मंत्र से अभिमंत्रित करके लगाने से मनुष्य सारे जगत को मोहित कर सकने में सफल हो जाता है।

❑ गृहीत्वा तुलसी पत्रंछायाशुष्कम् तु कारयेत् ।
अश्वगंधा समायुक्तं विजयाबीजसंयुतम् ।।
कपिलाक्षीरसहिता वटी रक्ति प्रमाणतः ।
भक्षिता प्रातरुत्थाय मोहयेत्सर्वतो जगत् ।।

अर्थात् तुलसी के पत्तों को छाया में सुखाकर भांग के बीज और असगंध के साथ गाय के दूध में पीसकर रत्ती भर की गोली बनाएं। प्रातःकाल इनको खाने से सब जग मोहित हो जाता है। इसका मंत्र पहले ही वाला है।

❑ श्वेतार्कमूलं सिन्दूरं पेषयेत्कदलीरसे ।
अनेनैव तु तंत्रेण तिलकम् लोकमोहनम् ।।

अर्थात् पहले मंत्र को एक सौ आठ बार अभिमंत्रित करें। उसके बाद सफेद आक की जड़ और सिन्दूर को केले के रस में पीसकर तिलक लगाने से पूरा जगत मोहित हो जाता है।

❑ बिल्वपत्रं गृहीत्वा तु छायाशुष्कं तु कारयेत ।
कपिलापयसार्द्धेन वटीं कृत्वा तु गोलकम् ।
एभिस्तु तिलकं कृत्वा मोहयेत्सर्वतो जगत् ।।

अर्थात् बेलपत्र को छाया में सुखाकर चूर्ण कर लें और गाय के दूध के साथ मिलाकर गोली बनाएं। फिर गोली को घिसकर तिलक लगाने से समस्त संसार मोहित हो जाता है।

विद्वेषण के मंत्र

विद्वेषण कर्म के प्रयोग के लिए भी भगवान् शंकर ने राक्षसराज रावण को अनेक प्रकार के

मंत्र सुझाए, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य अमुकेन सह विद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा ।

इस मंत्र को किसी भी क्रिया के साथ करने से पहले एक सौ आठ बार जप करके सिद्ध कर लें। उसके बाद निम्न द्रव्यों के साथ प्रयोग फलदायी होगा—

एक हस्ते काकपक्षमुल्लूपक्षंकरे परे ।
मंत्रयित्वा मितेदग्रं कृष्णसूत्रेण बन्धयेत् ।।
अञ्जलिं च जले चैव तर्पयेद्धस्तपक्षके ।
एवं सप्तदिनं कुर्यादष्टोत्तरशतंजपेत् ।।

अर्थात् एक हाथ में कौए के पंख तथा दूसरे हाथ में उल्लू पक्षी के पंख लेकर उपरोक्त मंत्र से अभिमंत्रित कर दोनों पंखों के अग्रभाग को काले सूत के डोरे से बांध दें। फिर इन दोनों पंखों को दोनों हाथ में लेकर जल में तर्पण करें। सात दिन बराबर ऊपर लिखे मंत्र का एक सौ आठ बार तर्पण करने से परस्पर विद्वेषण हो जाएगा।

❑ गृहीत्वा गजकेशं च गृहीत्वा सिंहकेशकम् ।
गृहीत्वामृत्तिकापादं पुत्तली निखनेद्भुवि ।
अग्निस्तस्योपरि स्थाप्योमालती कुसुमं हुनेत् ।
विद्वेषो कुरुते तस्य नान्यथा शंकरोदितम् ।।

अर्थात् हाथी और सिंह के बालों को लाकर जिन दो मनुष्यों में विद्वेष कराना हो, उनकी पुतली बनाकर बालों के साथ भूमि में गाड़ दें। फिर उस भूमि पर अग्नि को स्थापन कर मालती के फूलों से हवन करें। ऐसा करने से उन दोनों मनुष्यों में विद्वेष हो जाता है। महादेवजी कहते हैं कि यह मंत्र कभी भी असत्य नहीं हो सकता।

❑ गृहीत्वा गज दन्तं च गृहीत्वा सिंहदन्तकम् ।
पेषयेन्नवनीतेन तिलकं द्वेषकारकम् ।।

अर्थात् हाथी के दांत एवं शेर के दांतों को मक्खन के साथ पीसकर, जिन दो मनुष्यों में विद्वेष करवाना हो, उनके मस्तक पर उक्त मंत्र से अभिमंत्रित कर तिलक लगाएं। ऐसा करने से उन दोनों में अवश्य विद्वेष हो जाएगा। यह प्रायोगिक मंत्र सिद्ध किया हुआ है।

उच्चाटन मंत्र

उच्चाटन कर्म करने के लिए निम्नलिखित मंत्र का प्रयोग किया जाना चाहिए—

ॐ नमो भगवते रुद्राय दंष्ट्राकरालाय अमुकं स्वपुत्रबांधवैः सह हन हन दह दह पच पच शीघ्रमुच्चाटय उच्चाटय हुं फट् स्वाहा ठः ठः ।

अष्टोत्तरशत जपेन मंत्र सिद्धिः ।

इस मंत्र को एक सौ आठ बार जप करके सिद्ध करने के बाद निम्न प्रयोग किए जा सकते हैं —

काकोलूकस्य पक्षं तु हुत्वा चाष्टाधिकंशतम् ।
यन्नाम्ना मंत्रयोगेन तदाऽस्योच्चाटनं भवेत् ।।

अर्थात् जिसका उच्चाटन कर्म करना हो, उसका नाम मंत्र में लेकर काक पक्षी और उल्लू के

पंखों द्वारा एक सौ आठ बार हवन करने से उसका उच्चाटन हो जाता है। यह सिद्धि प्राप्त मंत्र है।

❑ ब्रह्मदण्डी चिताभस्म शिवलिङ्गे प्रलेपयेत् ।
सिद्धार्थं चैव संयुक्तं शनिवारे क्षिपेदगृहे ।
उच्चाटनं भवेतस्य जायते भरणान्तिकम् ।।

अर्थात् ब्रह्मदण्डी और चिता की भस्म लेकर एक शिवलिंग बनाकर उस पर लेप करें। फिर शनिवार के दिन सायंकाल सफेद सरसों के साथ उक्त मंत्र से अभिमंत्रित करके जिसके घर में डालेंगे, उस मनुष्य का उच्चाटन हो जाता है। इस प्रकार कैलासपति भगवान् भोलेनाथ ने रावण को उच्चाटन मंत्रों के बारे में बताया।

आकर्षण मंत्र

भगवान् शंकर ने महात्मा रावण को आकर्षण मंत्र के विषय में विस्तारपूर्वक समझाते हुए निम्नलिखित मंत्र बताया—

ॐ नमः आदि पुरुषाय अमुकस्य आकर्षणं कुरु कुरु स्वाहा ।

इस मंत्र को विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप कर सिद्ध करने के बाद आकर्षण के प्रयोग करने चाहिए। बतायी गई सामग्री आदि के बिना मंत्र फलदायी नहीं होगा।

कृष्णधत्तूर पत्राणां रसं रोचनया युतम् ।
भूर्जपत्रेलिखेन्मंत्र श्वेतकरवीर लेखनैः ।।
यस्य नाम लिखेन्मध्ये तापयेत्खदिराग्निभिः ।
शतयोजनमायाति नान्यथाशंकरोदितम् ।।

अर्थात् काले धतूरे के रस में गोरोचन को घिसकर कनेर की जड़ की कलम से भोजपत्र में मंत्र के साथ जिसका नाम लिखकर खैर के अंगारे पर तपाएंगे, वह मनुष्य सौ योजन दूर होने पर भी निश्चय आकर्षित हो जाता है।

❑ अनामिकाया रक्तेन लिखेन्मत्रं च भूर्जके ।
यस्य मध्ये लिखेन्नाम मधुमध्ये च निक्षपेत् ।।
तदाचाकर्षणं याति सिद्धियोग उदाहृतः ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं देवानामपि दुर्लभम् ।।

अर्थात् अनामिका अंगुली के रक्त द्वारा मंत्र के साथ जिसका नाम भोजपत्र पर लिखकर शहद में रखेंगे, वह आकर्षित हो जाएगा। यह सिद्धि योग देवताओं को भी दुर्लभ है। इस कारण इसे साधारण मनुष्य को नहीं देना चाहिए।

मारण मंत्र

शिवजी बोले—हे रावण! अब मारण मंत्र के प्रयोग बताता हूं, जिसके साधन से मनुष्यों को शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। अतः ध्यानपूर्वक सुनो—

मारणं न वृथा कार्य यस्य कस्य कदाचन ।
प्राणांतसंकटे जाते कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।।

अर्थात् यह मारण प्रयोग किसी पर भी बेकार नहीं जाता। जब अपना प्राण संकट में हो तो

अन्तिम समय में इस मारण मंत्र का प्रयोग करें।

मूर्खेण तु कृते तन्त्रे स्वस्मिन्नेव समापतेत ।
तस्माद्रक्ष्यः सदाऽऽत्मा वै मारणं नक्वचिच्चरेत ।।

अर्थात् मूर्ख मनुष्य द्वारा मारण का प्रयोग करने से उस पर ही इसका उल्टा प्रभाव हो सकता है। अतः मूर्ख प्राणी को भूलकर भी इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे उसे ही हानि हो सकती है।

ब्रह्मात्मानं तु विततं दृष्ट्वा विज्ञान चक्षुषा ।
सर्वत्र मारणं कार्यमन्यथादोषभाग् भवेत् ।
कर्त्तव्यं मारणं चेत्स्यात्तदा कृत्यं समाचरेत् ।।

अर्थात् यदि ब्रह्मज्ञानी व्यक्ति विज्ञान की दृष्टि से अपने समान जानकर आवश्यकतानुरूप मारण के प्रयोग करें तो ठीक है, अन्य प्रकार से दोषी होता है। यदि मारण का प्रयोग करना हो तो इस प्रकार करें—

ॐ चाण्डालिनी कामख्यावासिनि वन दुर्गे क्लीं कलीं ठः स्वाहा । अयुतजपेन मंत्र सिद्धिः ।

<table>
<tr><td colspan="3">स्वाहा</td></tr>
<tr><td>मारय</td><td rowspan="2">हुं</td><td>अमुकं</td></tr>
<tr><td>ह्रीं</td><td>फट्</td></tr>
</table>

इदं यंत्रं लिखेद् भूर्जे रोचनाकुंकमेन तु ।
भौमे वा मन्दवारे वा बद्ध्वाऽरिंनाशयेद्गले ।।

अर्थात् उपरोक्त मन्त्र को पहले दस हजार बार जप कर सिद्ध कर लें, तब मारण के प्रयोग करें। ऊपर दिए गए यन्त्र को भोजपत्र पर गोरोचन और केसर से लिखकर मंगलवार या शनिवार के दिन गले में धारण करने से शत्रु की मृत्यु अवश्य ही हो जाती है।

❑ **ॐ नमः सर्वकाल संहारय अमुकं हन हन क्रीं हुं फट् भस्मी कुरु स्वाहा ।** इति मंत्रः ।

सहस्रजपादस्य सिद्धिः रिपुपादतलात्पांसु ।
गृहीत्वा पुत्तली कुरु ।
चिताभस्मसमायुक्तां मध्यमारुधिरान्विताम् ।।
कृष्णवस्त्रेण संवेष्टय कृष्णसूत्रेण बन्धयेत् ।
कुशासने सुप्तमूर्तिर्दीपं प्रज्वालयेत्ततः ।।
अयुतं प्रजपेन्मंत्रं पश्चादष्टोत्तरं शतम् ।
मंत्रराजप्रभावेण भाषांश्चाष्टोत्तरं शतम् ।।

पुत्तली मुखमध्ये च निक्षिपेत्सर्वमाषकान् ।
अर्द्धरात्रिकृतेयोगे शक्रतुल्योऽपि मृत्युभाक ।।
प्रातःकाले पुत्तलिकां श्मशानान्ते विनिक्षिपेत् ।
मासात्मकप्रयोगेण रिपोमृत्युर्भविष्यति ।।

अर्थात् उपरोक्त मंत्र को एक हजार बार जप करके सिद्ध कर लें। फिर मारण के प्रयोग करें। शत्रु के दोनों चरणों की मिट्टी लाकर उसमें चिता की भस्म और बीच की अंगुली का रक्त मिलाकर पुतला बनाएं। फिर काले कपड़े से उस पुतले को लपेट उस पर काले सूत के डोरे से बन्धन लगाएं। अब कुशासन पर उस पुतले को सुलाकर दीपक जलाएं। फिर वहां पर दस हजार बार मंत्र को जपें और एक सौ आठ बार मंत्र से अभिमंत्रित कर एक सौ आठ दाने उड़द उस पुतले के मुख में डालें। आधी रात के समय इस प्रयोग को करें। प्रातःकाल उस पुतले को श्मशान में जाकर डाल दें। एक महीने तक इस प्रयोग को करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

आर्द्रपटी विद्या मंत्र

ॐ नमो भगवती आर्द्रपटेश्वरि हरितनीलपटे कालि । आर्द्र जिह्वे चाण्डालिनि रुद्राणि कपालिनि ज्वालामुखि सप्तजिह्वे सहस्त्रनयने एहि एहि अमुकं ते पशुं ददामि अमुकस्य जीवं निकृंतय एहि एहि तज्जीवितापहारिणी हुं फट् भूर्भुवः स्वः फट् रुधिरार्द्रवसारवादिनि मम शत्रून् छेदय छेदय शोणितं पिब पिब हूं फट् स्वाहा । इति मंत्रः ।

अयुतजपेन सिद्धिः ।

अर्थात् उपरोक्त ॐ नमो भगवती आर्द्रपटेश्वरि मंत्र को पहले दस हजार बार विधिपूर्वक जप कर सिद्ध कर लें, फिर मारण के प्रयोग शुरू करें। अमुक के स्थान पर शत्रु का नाम लेकर मंत्र जप करना चाहिए।

❑ ॐ अस्य श्रीआर्द्रपटी महाविद्यामंत्रस्य दुर्वासा ऋषिर्गायत्री छंदः हुं बीजं स्वाहा शक्तिः मम अमुकशत्रुनिग्रहार्थे जपे विनियोगः ।

अर्थात् जल हाथ में लेकर उपरोक्त मंत्र पढ़कर जल धरती पर छोड़ दें। अमुक स्थान पर शत्रु का नाम लें।

❑ केवलं जपमात्रेण मासान्ते शत्रुभारणम् ।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावतकृष्ण चतुर्दशी ।।
शत्रुनामसमायुक्तं मंत्रं तावज्जपेन्नरः ।
रिपुपादस्थधूल्याश्च कुर्यात्पुत्तलिकां ततः ।।
अजापुत्रं बलिं दत्त्वा वस्त्रं रक्तेन संलिपेत् ।
ततो गृहीत्वा तद्वस्त्रं न्यसेत्पुत्तलिकोपरि ।।
यावच्छुष्यति तद्वस्त्र तावच्छत्रुर्विनश्यति ।
मंत्रराजप्रभावेण नात्र कार्या विचारणा ।।

अर्थात् उपरोक्त मंत्र के जप से एक मास में शत्रु की मृत्यु हो जाती है। कृष्णपक्ष की अष्टमी से कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तक शत्रु के नाम के साथ प्रतिदिन एक सौ आठ बार मंत्र का जप करें।

इस प्रयोग में शत्रु के पैर तले की मिट्टी लाकर पुतली बनाकर बकरे की बलि दें और बकरे के रुधिर में वस्त्र भिगोकर पुतली को ओढ़ा दें। जब तक वह वस्त्र सूखेगा, तब तक मंत्रराज के प्रभाव से निश्चय ही शत्रु की मृत्यु हो जाएगी। इस प्रकार शिवजी ने राक्षसराज रावण को मंत्रों का ज्ञान कराया।

उड्डीश तंत्र (उत्तरार्द्ध)

उड्डीश तंत्र के उत्तरार्द्ध खंड में भगवान् भोले शंकर ने महापंडित रावण को मंत्र सिद्धि के विषय में महत्वपूर्ण बातें बताई हैं। इसके अंतर्गत मंत्र सिद्धि के लक्षण, मंत्रों के दोष, पादुका साधन मंत्र, गुटिका साधन मंत्र तथा कुछ अन्य मंत्रों का भी ज्ञान कराया है।

रावण उवाच—

सम्यगनुष्ठितो मंत्रो यदि सिद्धो न जायते ।
किं कुर्याच्च ततो देव ब्रूहि मे परमेश्वर ।।

रावण बोला—हे प्रभो! यदि भली प्रकार अनुष्ठान करने पर भी मंत्र की सिद्धि न हो, तब क्या करना चाहिए? कृपा करके मुझे बताएं।

शिव उवाच—

सम्यगनुष्ठितो मंत्रो यदि सिद्धो न जायते ।
पुनस्तेनैव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ।।
पुनरनुष्ठितो मंत्रो यदि सिद्धो न जायते ।
पुनस्तेनैव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो न संशयः ।।

भगवान् शिव बोले—हे रावण! यदि भली प्रकार से अनुष्ठान करने पर भी मंत्र की सिद्धि न हो तो उसी मंत्र का पुनः विधिवत् अनुष्ठान करना चाहिए। यदि दूसरी बार भी मंत्र सिद्धि न हो तो तीसरी बार अनुष्ठान करने पर निश्चित ही मंत्र सिद्धि होगी। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

पुनः सोऽनुष्ठितो मंत्रो यदि सिद्धो न जायते ।
उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सप्त रावण प्रेमत ।।

हे रावण! यदि किसी कारणवश तीसरी बार भी मंत्रसिद्धि नहीं होती तो उन सात उपायों को प्रेमपूर्वक करना चाहिए, जो मैं तुम्हें बता रहा हूं।

भ्रामणं रोधनं वश्यं पीडनं शोषपोषणे ।
दाहनांतं क्रमात्कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।।

ये सात उपाय हैं—भ्रामण, रोधन, वशीकरण, पीड़न, शोषण, पोषण और दाहन। इन प्रमुख उपायों से अवश्य ही मंत्रसिद्धि होती है। यह मेरा कथन है। यह लेशमात्र भी असत्य नहीं है।

भ्रामण क्रिया

भ्रामणं वायुबीजेन ग्रथनं क्रमयोगतः ।
यंत्रे त्वालिख्य तन्मंत्रं शिल्हकर्पूरकुंकुमैः ।।

उशीरचंदनाभ्यां तु मंत्रं संग्रथितं लिखेत् ।
क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तल्लिखितं भवेत् ।
पूजनाज्जपनाद्धोमाद्भ्रमितः सिद्धिदो भवेत् ।।

भगवान् शिव बोले—हे रावण! अब मैं तुम्हें उपरोक्त क्रियाओं की पद्धति बता रहा हूं। भ्रामण मंत्र क्रिया में मंत्र के प्रत्येक वर्ण के आदि एवं अंत में 'वं' वायुबीज लगाकर सभी वर्ण को शिलारस, कपूर, केसर, खस तथा चंदन से यंत्र में अंकित करने चाहिए। तत्पश्चात् यंत्र को दूध, घी, शहद और जल के मिश्रण में डाल दें। पुनः पूजन, होम, जप आदि करने से मंत्र की सिद्धि होती है।

रोधन और वशीकरण क्रिया

भ्रामितो नैव सिद्धः स्याद्रोधनं तस्य कारयेत् ।
सारस्वतेन बीजेन संपुटीकृत्य संजपेत् ।
एवं रुद्धो भवेत्सिद्धो न चेदेतद्वशीकुरु ।।
अलक्तं चंदनं कुष्ठं हरिद्रा मादनं शिला ।
एतैस्तु मंत्रमालिख्य भूर्जपत्रे सुशोभने ।
धार्यः कंठे भवेत्सिद्धः पीडनं वाऽस्य कारयेत् ।।

हे रावण! यदि भ्रामण मंत्र क्रिया द्वारा भी मंत्रसिद्धि न हो तो रोधन मंत्र को 'ऐं' बीज से संपुटित कर मंत्र जप करना चाहिए। यदि इस रोधन मंत्र क्रिया से भी मंत्रसिद्धि न हो तो वशीकरण क्रिया करनी चाहिए। वशीकरण क्रिया में आलता, चंदन, कूठ, हरिद्रा (हल्दी) एवं मैनसिल से भोजपत्र पर मंत्र अंकित कर गले में पहनने से अवश्य ही मंत्रसिद्धि होती है। यदि फिर भी मंत्रसिद्धि न हो तो पीड़न क्रिया करनी चाहिए।

पीड़न एवं पोषण क्रिया

अधरोत्तरयोगेन पदानि परिजप्य वै ।
ध्यायेच्च देवतां तद्वदधरोत्तररूपिणीम् ।।
विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वाऽऽक्रम्य चांघ्रिणा,
तथाभूतेन मंत्रेण होमः कार्यो दिनेदिने ।
पीडितो लज्जयाऽऽविष्टः सिद्धः स्यादथ पोषयेत् ।।
बालायास्त्रितयं बीजमाद्यंते तस्य योजयेत् ।
गोक्षीरमधुनाऽऽलिख्य विद्यां पाणौ विधारयेत् ।
पोषितोऽयं भवेत्सिद्धो न चेत्कुर्वीत शोषणम् ।।

हे रावण! पीड़न क्रिया में मंत्र के पदों का जप करके अधरोत्तर रूपा देवी का पूजन कर आक के दूध से भोजपत्र पर मंत्र लिखकर उस पर अपने पैरों का आघात करते हुए नित्य होम किया जाता है। यदि पीड़न क्रिया से भी मंत्रसिद्धि न हो तो पोषण क्रिया करनी चाहिए। इस क्रिया में मंत्र के आदि एवं अंत में बाला बीज मिलाकर जप करना चाहिए। फिर गौदुग्ध और शहद से भोजपत्र पर मंत्र अंकित कर गले में धारण कर लें। इससे मंत्रसिद्धि हो जाती है। यदि

फिर भी मंत्रसिद्धि न हो तो शोषण क्रिया करनी चाहिए।

शोषण तथा दाहन क्रिया

द्वाभ्यां तु वायुबीजाभ्यां मंत्रं कुर्याद्विदर्भितम् ।
एषा विद्या गले धार्या लिखित्वा वरभस्मना ।
शोषितश्चाप्य सिद्धश्चेद्दहनीयोऽग्निबीजतः ।।
आग्नेयेन तु बीजेनमंत्रेष्वेकैकमक्षरम् ।
आद्यंत मध्ये ह्यूर्ध्वं च योजयेद्दाहकर्मणि ।।
ब्रह्मवृक्षस्य तैलेन मंत्रमालिख्य धारयेत् ।
स्कंधदेशे ततो मंत्रः सिद्धः स्याच्छंङ्करोदितः ।।

हे रावण! शोषण क्रिया में मंत्र को 'वं' बीज से संपुटित कर मंत्र जप किया जाता है। फिर होम के भस्म से भोजपत्र पर मंत्र अंकित कर उसे गले में धारण कर लें। यदि इस शोषण क्रिया से भी मंत्रसिद्धि न हो तो दाहन क्रिया करनी चाहिए। इस क्रिया में मंत्र के प्रारंभ, मध्य एवं अंत में 'रं' बीज का संपुटन देकर जप किया जाता है तथा ढाक के बीजों से निर्मित तेल द्वारा मंत्र को भोजपत्र पर अंकित कर कंधों पर धारण किया जाता है। भगवान् शिव बोले—हे रावण! इस तरह किए गए अनुष्ठान द्वारा अवश्य ही मंत्रसिद्धि होती है।

इत्येवं कथितं सम्यक्केवलं तव भक्तितः ।
एकेन तु कृतार्थः स्याद्वहुभिः किमु रावण ।।

भगवान् शिव ने कहा—हे असुरपति रावण! इतना कुछ मैंने तुम्हारी मेरे प्रति भक्ति होने के कारण ही बताया है। यदि इन क्रियाओं में से एक भी क्रिया के करने से मंत्रसिद्धि होती है तो शेष क्रियाओं को करने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।

मंत्रसिद्धि के लक्षण

रावण उवाच—

देवदेव महेशान कृपां कृत्वा ममोपरि ।
लक्षणं मंत्रसिद्धेस्तु ब्रूहि मे भक्तवत्सल ।।

रावण बोला—हे देवों के देव महादेव! अब आप मुझ पर कृपादृष्टि कर मंत्रसिद्धि के लक्षण बताने की कृपा करें।

शिव उवाच—

मनोरथानाम क्लेशसिद्धिरुत्तम लक्षणम् ।
मृत्यूनां हरणं तद्वद्देवतादर्शनं तथा ।।

भगवान् शिव बोले—हे रावण सुनो! तुम्हारी भावना के अनुकूल मैं तुम्हें मंत्रसिद्धि के लक्षण बता रहा हूं। कामना की पूर्ति होना ही मंत्रसिद्धि का श्रेष्ठ लक्षण कहा गया है अर्थात् साधक जिस भावना या कामना से मंत्र जप करता है और उस कामना या मनोरथ की अकस्मात् पूर्ति हो जाती है, तब यह मान लेना चाहिए कि मंत्र की सिद्धि हो गई। मृत्यु का क्षय और फिर देवता का दर्शन होना—ये सब भी मंत्रसिद्धि के लक्षण हैं।

प्रयोगस्याक्लेशसिद्धिः सिद्धेस्तु लक्षणं परम् ।
परकाय प्रवेशश्च पुरप्रावेशनं तथा ।
ऊर्ध्वोत्क्रमणमेवं हि चराचरपुरे गतिः ।।

हे रावण! साधना काल में बिना व्यवधान के जो सिद्धि प्राप्त होती है, वही सिद्धि का परम लक्षण कहा गया है। इसमें देवदर्शन भी सम्मिलित है। ऐसा साधक मंत्रसिद्धि होने पर दूसरे शरीर एवं स्थान में प्रवेश करने जैसी शक्ति प्राप्त कर लेता है। वह चराचर जगत में गति करने वाला (भ्रमणकर्ता) बन जाता है।

खेचरीमेलनं चैव तत्कथाश्रवणादिकम् ।
भूच्छिद्राणि प्रपश्येत्तु तत्त्वमस्य च लक्षणम् ।।
ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ।
नृपाणां तद्गणानां च वशीकरणमुत्तमम् ।।

ऐसा साधक आकाशचारिणी देवियों के साथ रहकर उनका वार्तालाप सुनने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। वह भूगर्भगत वस्तुओं का साक्षात्कार भी कर सकता है। ऐसे मनुष्य का यश चहुं ओर प्रसारित होता है। वह अनेक वाहनों एवं आभूषणों से लाभान्वित होकर दीर्घायु होता है। ऐसा मनुष्य राजा का प्रिय होने के साथ ही राजा और राजपरिवार को वशीभूत करने की शक्ति से संपन्न होता है।

मंत्रसिद्धि का फल

सर्वत्र सर्वलोकेषु चमत्कारकरः सुखी ।
रोगापहरण दृष्ट्या विषापहरणं तथा ।।
पांडित्यं लभते मंत्री चतुर्विधम यत्नतः ।
वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं त्यागितां सर्ववश्यताम् ।।

सिद्धि प्राप्त कर लेने वाला मनुष्य समस्त लोकों में अद्भुत चमत्कार दिखाकर सभी को सुखी कर देता है। उसके दर्शन मात्र से ही रोग एवं विष प्रभावहीन हो जाते हैं। ऐसा मनुष्य बिना प्रयास के ही चारों वेदों का ज्ञाता होकर पांडित्य प्राप्त करता है। वैराग्य, मुमुक्षा और त्याग— सभी पर उसका नियंत्रण रहता है अर्थात् विषय भोग, कामना आदि पर नियंत्रण पाकर वह सदैव भक्ति की कामना वाला होता है।

अष्टांग योगाभ्यसनं भोगेच्छा परिवर्ज्जनम् ।
सर्व भूतेष्वनुकंपा सार्वज्ञादि गुणोदयः ।
इत्यादि गुणसंपत्तिर्मध्यसिद्धेस्तु लक्षणम् ।।

सिद्धि प्राप्त मनुष्य अष्टांग योग का अभ्यासी, भोग कामनाओं से विरक्त, समदृष्टा एवं सर्वज्ञ शक्ति से संपन्न हो जाता है। जब ऐसे गुण साधक में आ जाते हैं तो इसे मध्यम सिद्धि का लक्षण जानना चाहिए।

ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ।
नृपाणां तद्गणानां च वात्सल्यं लोकवश्यता ।।
महैश्वर्यं धनित्वं च पुत्रदारादिसंभवः ।

अधमाः सिद्धयः प्रोक्ता मंत्रिणामाद्यभूमिकाः ।
सिद्धमंत्रस्तु यः साक्षात्स शिवोनात्र संशयः ।।

हे रावण! यशस्विता, वाहनसुख, भूषणादि का लाभ, दीर्घायुता, राजा का प्रिय पात्र होना, राजपरिवार से नेह रखना, लोगों को वश में करना, ऐश्वर्यवान होना, धन-पुत्र-पत्नी आदि संपदाओं से युक्त होना आदि सब अधम मंत्रसिद्धि के लक्षण कहे गए हैं। वस्तुतः मंत्रसिद्धि हो जाने पर तो मनुष्य साक्षात् शिव स्वरूप हो जाता है। इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

मंत्रों के दोष

रावण उवाच—

देवदेव महादेव पार्वतीप्राणवल्लभ ।
इदानीं मंत्रदोषांस्तु कथयस्व कृपानिधे ।।

रावण बोला—हे देवाधिदेव महादेव! हे पार्वती प्रिय! हे कृपा के सागर! अब आप कृपा करके मंत्र के दोषों का भी वर्णन करें।

शिव उवाच—

राक्षसाधिप अत्रैव मंत्रदोषो निरूप्यते ।
तत्सर्वं शृणु विप्र त्वमेकचित्तेन चेतसा ।।

शिवजी बोले—हे राक्षसाधिपति! अब मैं मंत्र दोष के बारे में बता रहा हूं। तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो।

छिन्नो रुद्धः शक्तिहीनः परांगमुख उदीरितः ।
बधिरो नेत्रहीनश्च कीलितः स्तंभितस्तथा ।।
दग्धः स्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृतः ।
भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्छितः ।।
हृतवीर्यश्च हीनश्च प्रध्वस्तो बालकः पुनः ।
कुमारस्तु युवा प्रौढो वृद्धोनिस्त्रिंशकस्तथा ।।
निर्वीर्यः सिद्धिहीनश्च मंदः कूटस्तथा पुनः ।
निरंशकः सत्त्वहीनः केकरो जीवहीनकः ।।
धूमितालिंगितौ स्यातां मोहितस्तु क्षुधार्त्तकः ।
अतिदृप्तोऽङ्गहीनः स्यादतिक्रुद्धः समीरितः ।।
अतिक्रूरश्च सव्रीडः शांतमानस एव च ।
स्थानभ्रष्टश्च विकलो निऽस्नेहः प्रकीर्त्तितः ।
अतिवृद्धः पीडितश्च वक्षाम्येषां च लक्षणम् ।।

मंत्रदोष ये हैं—छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, परांगमुख, उदीरित, बधिर, नेत्रहीन, कीलित, स्तंभित, दग्ध, स्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुषुप्त, मदोन्मत्त, मूर्च्छित, हृतवीर्य, हीन, प्रध्वस्त, बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निस्त्रिंश, तेजहीन, सिद्धिहीन, मंद, कूट, निरंशक, सत्त्वहीन, केकर, जीवहीन, धूमित, आलिंगित, मोहित, क्षुधार्त्त, अतिदृप्त, अंगहीन, अतिक्रुद्ध, अतिक्रूर, सव्रीड, शांतमानस, स्थान च्युत (पथभ्रष्ट), विकल (उग्र), स्नेहशून्य (निःस्नेह), अतिवृद्ध एवं

पीड़ित। उपरोक्त सभी मंत्रों के दोष हैं।

मनोर्यस्यादि मध्यांतेष्वानिलं बीजमुच्यते ।
संयुक्तं वारियुक्तं वा पुराक्रांतं त्रिधा पुनः ।
चतुर्द्धा पंचधा वापि स मंत्रश्छिन्नसंज्ञकः ।।
आदिमध्यावसानेषु भूबीजद्वयलक्षितः ।
रुद्धमंत्रः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिविवर्जितः ।।
मायात्रितत्त्व श्रींबीजऐंविहीनश्च यो मनुः ।
शक्तिहीनः स कथितो यस्य मध्ये न वर्त्तते ।।
कामबीजं मुखे माया शिरस्यंकुशमेव च ।
असौ पराङ्मुखः प्रोक्तो हकारो बिन्दुसंयुतः ।।

आदि, मध्य एवं अंत में 'वं' अथवा 'यं' बीज (अनिल बीज) से युक्त या चौथे-पांचवें स्वर से युक्त मंत्र 'छिन्न मंत्र' कहलाता है। इसी प्रकार आदि, मध्य और अंत में दो 'लं' बीज (भू बीज) से युक्त मंत्र 'रुद्ध मंत्र' कहलाता है। यह मंत्र योग और मोक्ष देने में असमर्थ होता है। जिसमें माया के तीन बीज तत्त्व 'ह्रीं' और 'श्रीं' या 'ऐं' न हों, वह 'शक्तिहीन मंत्र' कहलाता है। जिसमें 'क्लीं' (काम बीज) मध्य में, 'ह्रीं' (माया बीज) प्रारंभ में तथा 'क्रों' अंत में हो, वह 'परांगमुख मंत्र' कहलाता है।

आद्यंतमध्येष्विंदुर्वा स भवेद्बधिरः स्मृतः ।
पंचवर्णो मनुर्यः स्याद्रेफार्केंदुविवर्ज्जितः ।
नेत्रहीनः स विज्ञेयो दुःखशोकामयप्रदः ।।

जिसके आदि, मध्य और अंत में 'हं' या 'सं' बीज आता है, वह 'बधिर मंत्र' कहलाता है। इसी तरह र, श, स से रहित मंत्र 'नेत्रहीन मंत्र' कहलाता है। यह मंत्र शोक व दुःखदाता है। अतः इस मंत्र से उपासना करना उचित नहीं है।

आदिमध्यावसानेषु हंसः प्रासादवाग्भवौ ।
बिन्दुयुक्तं हकारं वा फट्कारं व तथैव च ।।
अंकुशं च तथा मायां नमामि च ततः परम् ।
स एव कीलितो मंत्रः सर्वसिद्धिविवर्ज्जितः ।।

जिस मंत्र के आदि, मध्य तथा अंत में 'हंसः', 'हौं', 'ऐं', 'हं', 'फट्', 'क्रौं', 'ह्रीं' व 'नमामि' आता है, वह 'कीलित मंत्र' कहलाता है। ऐसे मंत्र के जप से सभी सिद्धियों का क्षय हो जाता है।

एकं मध्ये द्वयं मूर्ध्नि यस्मिन्नस्त्रिपुरंदवौ ।
न विद्यते स मंत्रस्तु स्तंभितः सिद्धि विवर्ज्जितः ।।
वह्निर्वायुसमायुक्तो यस्य मंत्रस्य मूर्द्धनि ।
सप्तधा दृश्यते तं तु दग्धमंत्रं प्रचक्षते ।।
अत्रा द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टभिर्दृश्यतेऽक्षरैः ।
स्रस्तः स कथितो मंत्रः सर्वसिद्धिविवर्ज्जितः ।।
यस्य नास्ति मुखे माया प्रणवो वा विधानतः ।
भीतः स कथितो मंत्रः सर्वसिद्धिविवर्ज्जितः ।।

आदौ मध्ये तथा चांते यस्य वर्णचतुष्टयम् ।
स एव मलिनौ मंत्रः सर्वविघ्नसमन्वितः ।।

जिस मंत्र के मध्य में 'लं' या 'फट्' हो और मंत्रांत में कोई भी बीज न हो तो ऐसा मंत्र 'स्तंभित मंत्र' कहलाता है। ऐसे मंत्र के जप से सिद्धियां प्राप्त नहीं होतीं। यदि सात अक्षरी मंत्र में 'रं' (अग्नि बीज) और 'यं' (वायु बीज) मूर्द्धा में हो तो वह 'दग्ध मंत्र' कहलाता है। दो, तीन, छह और आठ अक्षरयुक्त एवं 'फट्' युक्त मंत्र 'स्रस्त मंत्र' कहलाता है जो सिद्धि प्रदान नहीं करता। जिस मंत्र के प्रारंभ में 'ह्रीं' या 'प्रणव' में से किसी का भी उच्चारण नहीं किया जाता, वह 'भीत मंत्र' कहलाता है। यह भी सिद्धिदाता नहीं है। इसी तरह जिस मंत्र के आदि, मध्य व अंत में चार-चार वर्ण होते हैं, वह 'मलिन मंत्र' कहलाता है। इस मंत्र के जप से विघ्न-बाधाएं उत्पन्न होती हैं।

यस्य मध्ये दकारो वा कवचं मर्ध्नि दृश्यते ।
त्रिविधं दृश्यते चास्त्रं तिरस्कृत उदाहृतः ।।
हद्वयं हृदये शीर्षे वषट् वौषट् च मध्यतः ।
स एव भेदितो मंत्र, सर्वशास्त्रविवर्ज्जितः ।
त्रिवर्णो हंसहीनो यः स सुषुप्त उदाहृतः ।।

जिस मंत्र के मध्य में 'द', आदि में 'हुं' व अंत में 'फट्' हो, वह 'तिरस्कृत मंत्र' कहलाता है। जिसके हृदय में दो, शीर्ष में 'वषट्' और मध्य में 'वौषट्' हो, वह 'भेदित मंत्र' कहलाता है। इस मंत्र द्वारा उपासना या साधना करने के संदर्भ में शास्त्रों में निषेध किया गया है। 'हंसः' बीज रहित त्रिवर्ण का मंत्र 'सुषुप्त मंत्र' कहलाता है।

मंत्रो वाप्यथवा विद्या सप्ताधिकदशाक्षरः ।
फट्कार पंचकादिर्यो मदोन्मत्त उदाहृतः ।।
सप्तदशाक्षरो मंत्रो मध्ययेऽर्द्धं च यदा भवेत् ।
मूर्च्छितः कथितो मंत्रः सर्वसिद्धिविवर्जितः ।।
पंच फट् यस्य मंत्रस्य विरामस्थानसंयुतः ।
हृतवीर्यः स कथितो नास्ति तेन प्रयोजनम् ।।

जो स्त्री या पुरुष दैवत मंत्र सत्रह अक्षरों वाला तथा फट्कार आदि से युक्त हो, वह 'मदोन्मत्त मंत्र' कहलाता है। यदि सत्रह अक्षरों वाला मंत्र मध्य में 'फट्' से युक्त हो तो वह 'मूर्च्छित मंत्र' कहलाता है। यह मंत्र भी सिद्धिदाता नहीं कहा गया है। इसी प्रकार हे रावण! जिस मंत्र के अंत में पांच 'फट्' हों, वह 'हृतवीर्य मंत्र' कहलाता है। इस मंत्र द्वारा जप कर्म नहीं किया जाता।

आदौ मध्ये तथा चांते चतुरस्त्र युतो मनुः ।
स एव हीनमंत्रः स्यात्तथा चाष्टादशाक्षरः ।।
एकोनविंशो यो मंत्रस्तारवर्णसमन्वितः ।
हृल्लेखांकुशबीजाढ्यं प्रध्वस्तं तं प्रचक्षते ।।

यदि कोई मंत्र अठारह अक्षरों वाला हो और उसके आदि, मध्य व अंत में चार-चार बार 'फट्' का उच्चारण किया जाता है तो वह 'हीन मंत्र' कहलाता है। इसके अलावा 'ह्रां', 'क्रों' आदि से युक्त इक्कीस अक्षरों का मंत्र 'प्रध्वस्त मंत्र' कहलाता है।

मंत्रों के सम्बोधन

सप्तवर्णः स्मृतो बालः कुमारोऽष्टाक्षरः स्मृतः ।
षोडशार्णो युवा मंत्रः सर्वसिद्धिविवर्जितः ।।
चतुर्विंशल्लिपिर्यः स्यात्प्रौढः स परिकीर्त्तितः ।
त्रिंशद्वर्णश्चतुः षष्टिवर्णो मंत्रः शताक्षरः ।।
चतुः शताक्षरश्चापि वृद्धः स परिकीर्त्तितः ।
नवाक्षरो ध्रुवयुतो मनुर्निस्त्रिंश ईरितः ।।

हे रावण! कितने अक्षर या वर्ण के मंत्र को क्या संबोधन दिया जाता है, यह भी ध्यानपूर्वक श्रवण करो—सात वर्ण का मंत्र 'बालक' कहलाता है, आठ अक्षर का मंत्र 'कुमार' कहलाता है और सोलह वर्ण का मंत्र 'युवा' कहलाता है। ये सभी मंत्र साधना के योग्य हैं। इसी तरह चौबीस अक्षरी मंत्र 'प्रौढ़' तथा तीस, पैंसठ, सौ और चार सौ अक्षरों वाले मंत्र 'वृद्ध' कहलाते हैं जबकि नौ अक्षरी मंत्र 'निस्त्रिंश' कहलाता है।

यस्यावसाने हृदयं शिवमंत्रौ च मध्यतः ।
शिखा वर्म च न स्यातां वौषट् फट्कार एव च ।
शिवशक्त्यविहीनो वा स निर्वीर्य उदाहृतः ।।
एषु स्थानेषु फट्कारः प्रौढो यस्मिन्प्रदृश्यते ।
स मंत्रः सिद्धिहीनः स्यान्मंदः पंक्त्यक्षरोमनुः ।।
कूट एकाक्षरो मंत्रः स वोक्तो निरंशकः ।
द्विवर्णः सत्त्वहीनः स्याच्चतुर्वर्णस्तु केकरः ।।

जिस मंत्र के अवसान (अंत) में 'नमः', हृदय (मध्य) में 'स्वाहा' आए, जिसमें 'वषट्' व 'हुं' बीज न हो तथा जो 'वौषट्-फट्' से युक्त हो या फिर जो मंत्र शिव शक्ति वर्ण से रहित हो, वह 'निर्वीर्य मंत्र' कहलाता है। जिस मंत्र के प्रारंभ में ही छह बार 'फट्' की आवृत्ति हो अर्थात् छह फट्कार हों, वह 'सिद्धिहीन मंत्र' कहलाता है जबकि दस अक्षरों वाला मंत्र 'मंद मंत्र' कहलाता है। एक अक्षरी मंत्र 'कूट' तथा 'निरंशक' कहलाता है तो दो वर्ण का मंत्र 'सत्वहीन' कहलाता है जबकि चार वर्ण का मंत्र 'केकर' कहलाता है।

षडक्षरो जीवहीनः सार्द्धसप्ताक्षरो मनुः ।
सार्द्धद्वादशवर्णोऽपि धूमितः स तु निंदितः ।।
सार्णाबीजद्वयं तद्वदेकविंशतिवर्णकः ।
विंशार्णास्त्रिंशवर्णो वा यः स्यादालिंगितः स्मृतः ।
द्वाविंशत्यक्षरो मंत्रो मोहितः परिकीर्त्तितः ।।

छह अक्षर का मंत्र 'जीवहीन', साढ़े सात अक्षर का मंत्र 'मनु' और साढ़े बारह वर्ण का मंत्र 'धूमित' कहलाता है। धूमित नामक मंत्र निंदित कहा गया है। इक्कीस, बीस व तीस वर्ण के ढाई बीज वाले मंत्र 'आलिंगित' कहलाते हैं जबकि बाईस अक्षर का मंत्र 'मोहित मंत्र' कहलाता है।

चतुर्विंशतिवर्णो यः सप्तविंशतिवर्णकः ।
क्षुधार्त्तः स तु विज्ञेयो द्वात्रिंशद्वर्णसंज्ञकः ।।
एकादशाक्षरो वापि पंचविंशतिवर्णकः ।

त्रयोविंशतिवर्णो वा मंत्रो दृप्त उदाहृतः ।।
षड्विंशत्यक्षरो मंत्रः षट्त्रिंशद्वर्णकस्तथा ।
त्रिंशदेकोनवर्णो वा त्वंगहीनः स एव हि ।।
अष्टाविंशदक्षरो वा एकविंशदथापि वा ।
अतिक्रुद्धः स विज्ञेयो निंदितः सर्वकर्मसु ।।

हे रावण! चौबीस और सत्ताईस अक्षर वाले मंत्र 'क्षुधार्त्त' तथा बाईस, ग्यारह, पच्चीस व तेईस अक्षरों से युक्त मंत्र 'अतिदृप्त' कहलाते हैं। छब्बीस, छत्तीस व इकतीस अक्षरों से युत मंत्र 'अंगहीन मंत्र' कहलाते हैं। अट्ठाईस तथा इक्कीस अक्षरी मंत्र 'अतिक्रुद्ध' कहलाते हैं जिनका किसी भी दृष्टि से जप करना अनुचित कहा गया है। इसी तरह तीस एवं तैंसीस अक्षरी मंत्र 'अतिक्रूर' कहलाते हैं। इनका भी जप निषेधनीय कहा गया है।

चतुर्विंशं समारभ्य त्रिषष्टिर्यावता भवेत् ।
यावत्संख्या निगदिता मंत्राः सव्रीडसंज्ञकाः ।
पंचषष्ट्यक्षरा ये स्युर्मंत्रास्ते शांतमानसाः ।।
एकोनशतपर्यंतं पंचष्टयक्षरादितः ।
ते सर्वे कथिता मंत्राः स्थानभ्रष्टा न शोभनाः ।।

चौबीस से तिरसठ अक्षर वाले मंत्र 'सव्रीड' कहलाते हैं। पैंसठ अक्षरी मंत्र 'शांतमानस मंत्र' कहलाते हैं। पैंसठ से निन्यानवे अक्षर तक के मंत्र 'पथभ्रष्ट मंत्र' कहलाते हैं। ये मंत्र भी शुभ नहीं होते।

त्रयोदशाक्षराद्याः स्युर्मंत्राः पंचदशाक्षराः ।
ते सर्वे विकला ज्ञेयाः शतं सार्द्ध शतं तु वा ।।
शतद्वयं द्विनवतिरेकहीना तथाऽपि वा ।
यावच्छतद्वयं संख्या निःस्नेहास्ते प्रकीर्तिताः ।।
चतुःशतमथारभ्य यावद्वर्णसहस्रकम् ।
अतिवृद्धः स मंत्रस्तु सर्वशास्त्र विवर्ज्जितः ।
सहस्रार्णाधिका मंत्रा दंडकाः पीडिताक्षराः ।।

तेरह, चौदह व पंद्रह अक्षरों से युक्त मंत्र 'विकल मंत्र' कहलाते हैं। सौ, डेढ़ सौ, दो सौ, इक्यानवे, बानवे या दो सौ अक्षरों से युक्त मंत्र 'निःस्नेह' कहलाते हैं। इसी तरह चार सौ से एक हजार अक्षर वाले मंत्र 'अति वृद्ध मंत्र' कहलाते हैं। शास्त्रों में इनके बारे में मंत्र साधना निषेध कही गई है। हे रावण! दस हजार से अधिक वर्णाक्षरों वाले मंत्र 'पीड़िता' कहलाते हैं।

द्विसहस्राक्षरा मंत्राः खंडशः सप्तधाश्रिताः ।
ज्ञातव्याः स्तोत्ररूपास्ते मंत्रा एते न संशयः ।
तथा विद्याश्च बोद्धव्या मंत्रिभिः सर्वकर्मसु ।।
दोषानिमानविज्ञाय यो मंत्रं भजते बुधः ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ।।

भगवान् शिव बोले—हे रावण! यदि किसी मंत्र में दो हजार अक्षर हैं तो ऐसे मंत्र को किसी भी साधना काल में सात खंड करके जप करना चाहिए। जप से पूर्व तत्संबंधी ज्ञान प्राप्त कर

लेना चाहिए। जो मनुष्य किसी भी मंत्र के दोष का ज्ञान प्राप्त किए बिना ही मंत्र जप आरंभ कर देता है, वह सौ करोड़ (एक अरब) कल्प तक भी सिद्धि नहीं पा सकता। अतः कहा गया है कि किसी भी मंत्र का जप करने से पूर्व उसके दोषों को दूर करना चाहिए। तभी सिद्धि की प्राप्ति होती है।

मंत्रों का दोष-मोचन

रावण उवाच—

भगवंस्त्वप्रसादेन मंत्राणां दोषलक्षणम् ।
श्रुतं सर्वं विधिं ब्रूहि मंत्रा दुष्टाः फलप्रदाः ।।

रावण बोला—हे प्रभु! आपकी कृपा से मैंने मंत्रों के गुण-दोषों का एकाग्रता से श्रवण किया। अब आप कृपा करके वह उपाय बताएं जिसको करने से दोषयुक्त मंत्र श्रेष्ठ फल प्रदान करने योग्य बन जाए।

शिव उवाच—

छिन्नादिदुष्टा ये मंत्रास्ते तंत्रे च निरूपिताः ।
ते सर्वे सिद्धिमायांति मातृकार्णप्रभावतः ।।

भगवान् शिव बोले—हे दशानन! तंत्र में छिन्नादि दुष्ट प्रवृत्ति के मंत्रों का जो वर्णन किया गया है, वे मंत्र मातृका वर्ण के प्रभाव से निर्दोष हो जाते हैं अर्थात् उनका दोष मोचन हो जाता है।

मातृकार्णैः पुटीकत्य मंत्रं विद्याद्विशेषतः ।
शतमष्टोत्तरं पूर्वं प्रजपेत्फलसिद्धये ।
तदा मंत्रो महाविद्या यथोक्तफलदो भवेत् ।।

हे रावण! मंत्र या विद्या का मातृका वर्ण द्वारा संपुटन देकर एक सौ आठ बार जप करने से मंत्र या विद्या का छिन्नादि दोषमोचन होकर वह मंत्र या विद्या अभीष्ट की प्राप्ति कराने में समर्थ हो जाता है।

विशेष— जब किसी मंत्र द्वारा देवी शक्ति की आराधना की जाती है तो वह विद्यारूप कहलाता है जबकि देवता की आराधना से मंत्र का रूप मंत्र ही रहता है। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसीलिए मंत्र को विद्या भी कहा गया है।

बध्वा तु योनि मुद्रां तां संकोच्याधारपंकजम् ।
तदुत्पन्नान्मंत्रवर्णान्कुर्वतश्च गतागतान् ।।

योनिमुद्रा बनाकर मूलाधार स्थित कमल को संकुचित कर ब्रह्मरंध्र (सहस्रार) तक सभी वर्णों का ध्यान करें। फिर वायुचक्र पूर्ण कर कुंभक करने के बाद एक हजार बार मंत्र जपने से मंत्रदोष की निवृत्ति होती है।

विशेष— तांत्रिक अंगुलियों द्वारा योनिमुद्रा बनाकर तंत्र साधना करते हैं। योनि का आकार त्रिभुजाकार होता है। इस श्लोक में मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक वायुचक्र क्रिया का जो संकेत किया गया है, वह अष्टांग योग के संदर्भ में है। इसमें मूलाधार से सहस्रार तक षट्चक्रों की साधना की जाती है। साधना काल में ही साधक को अलौकिक शक्ति का दर्शन होने लगता है। इसे ही

विद्वजन कुंडली जागरण भी कहते हैं।

ब्रह्मरंध्रावधि ध्यात्वा वायुमापूर्य कुंभयेत् ।
सहस्रं प्रजपेन्मंत्री मंत्रदोषप्रशम्यते ।।
एषु दोषेषु प्राप्येषु मायां काममथापिवा ।
क्षिप्त्वा चादौ श्रियं चैव तद्दूषणविमुक्तये ।।

भगवान् शिव बोले—हे रावण! मंत्रदोष दूर करने की कुछ अन्य पद्धतियां भी हैं। यथा—यदि कोई मंत्र छिन्नादि दोषयुक्त हो तो माया, काम एवं श्री बीज का संपुटन देकर मंत्र जपने से मंत्र दोषमुक्त हो जाता है।

रावण उवाच—

भगवच्छ्रोतुमिच्छामि जायते च कुतूहलम् ।
पादुका गुटिकासिद्धिं भ्रमणं च जलोपरि ।।
मृतसंजीविनी विद्या मदृश्योपायमुत्तमम् ।
सम्यक्कथय मे सर्वं कृपां कृत्वा दयानिधे ।।

रावण बोला—हे कृपानिधान! अब आप मुझ जिज्ञासु को पादुका एवं गुटिका साधन के अतिरिक्त जलोपरि भ्रमण (जल पर भमण करना), मृतसंजीवनी तथा अदृश्य होने की विद्या के बारे में बताएं। इन सबको जानने की मेरी इच्छा है।

शिव उवाच—

क्रमतः संप्रवक्ष्यामि शृणु रावण यत्नतः ।।

भगवान् शिव बोले—हे रावण! तुम जो कुछ जानना चाहते हो, उन सबका मैं क्रम से वर्णन कर रहा हूं। तुम प्रयत्नपूर्वक एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो।

पादुका साधन मंत्र

ॐ नमश्चंद्रमसे चंद्रशेखर नमो भगवते तिष्ठ नमो भगवते नमः शिखरे नमः शूलिने नमः पादप्रचारिणे वेगिने हुं फट् स्वाहा ।।

त्रिलक्ष जपेन सिद्धिः ।

सारिकाया वसां नेत्रमंत्राणि रुधिरं तथा ।
काकपित्तं तथा नेत्रं हरिचंदनवेतसम् ।।
शुनो मज्जां वसां तुल्यमुष्ट्रीक्षीरेण भावयेत् ।
पादलेपः प्रकर्त्तव्यो नमस्कृत्य शिवं तथा ।।
योजनं लक्षमेकं तु निमिषार्द्धेन गच्छति ।
गगनाशेषचारी च क्रीडत्येव यथा शिवः ।।

उक्त मंत्र 'पादुका साधन मंत्र' कहलाता है। इसका तीन लाख बार जप करने से यह सिद्धि प्रदान करता है। प्रयोग इस प्रकार है—मैना की चर्बी, नेत्र, आंतें व रक्त तथा कौए का पित्त, नेत्र, केसर, बेंत की लता, कुत्ते की मज्जा और चर्बी को सममात्रा में संगृहीत कर ऊंटनी के दूध में पीसकर भगवान् शिव (मुझे) को प्रणाम करें। फिर इस द्रव्य को ऊपर बताए गए मंत्र से तीन बार

अभिमंत्रित कर पैरों में लेपने से आधे क्षण में मनुष्य एक लाख योजन की दूरी तय करने की क्षमता पा सकता है। ऐसा प्राणी शिव (मेरे) के समान आकाश में भ्रमण करने वाला बन जाता है।

गुटिका साधन मंत्र

साधकश्चिल्हालयं गत्वा नित्यं तस्यै निवेदयेत् । देवताबुद्धयाऽतिभक्त्या भक्षणार्थं किंचित्किंचिद्यममांसं निक्षिपेत् यावत् प्रसूता भवति । ततः पारदं रसं सार्द्धनिष्कत्रयं सिक्थकेन रुद्ध्वा चिल्हालयं गत्वा अंडद्वयस्योपरि नालिकाद्वयं निधाय लोहशलाकया नालिका मध्य मार्गेण तदंडं लघुहस्तेन वेधयित्वा शलाकामुद्धरेत् । तेनैव मार्गेण अंडमध्ये यथा रसो गच्छति तथा यत्नं कुर्यात् ततश्छिद्रं चिल्हा विष्ठया लिंपेत् । ततस्तद्वृक्षाधो नित्यमतिबल्युपहारेण पूजां कुर्यात् । यावत्स्वयमेवांडानि स्फुटंति तावन्नित्यमुपरि गत्वा वीक्षयेत् । स्फुटिते सति गुटिकाद्वयं ग्राह्यम् । ततो वृक्षादुत्तीर्य यो गिलति मनुष्यस्तस्मै एका देया अपरां स्वयं मुखे धारयेत् । योजनद्वादशं गत्वा पुनरेव निवर्त्तते । ह्रीं हुं फट् चिल्लाचक्रेश्वरि परात्परेश्वरी पादुकामासनं देहि मे देहि स्वाहा । अनेन मंत्रेण जपं पूजां च कुर्यात् ।।

हे रावण! अब गुटिका साधन मंत्र का प्रयोग सुनो—सर्वप्रथम चील के घोंसले के समीप जाकर चील का सम्मान करते हुए उसकी देव रूप में पूजा करनी चाहिए। पूजाकार्य तब तक करते रहना चाहिए। जब तक चील प्रसविनी न हो जाए। जब उसका प्रसवकाल निकट आए तो दो नलिकाएं बनाएं तथा उसके नीचे के भाग को मोम से आवरित कर इसमें पूर्व नलिकाओं में साढ़े तीन तोला पारा भर लें और दोनों नलिकाओं को अंडों पर रख दें। फिर एक लौह-शलाका लेकर नलिकाओं के ऊपरी भागों में डालकर अंडों में चतुराई से छिद्र करें ताकि नलिकाओं का पारा अंडों में प्रविष्ट हो जाए।

अब अंडों के छिद्रों को चील की बीट से सावधानीपूर्वक भर दें। तत्पश्चात् नित्य अंडों का दर्शन करें तथा चील का पूजन कर मांस की बलि दें। जब अंडे स्वतः फूटें तब उनमें मौजूद दो चूजों को उठा लाएं। फिर एक का स्वयं भक्षण करें, दूसरा किसी अन्य को भक्षणार्थ दे दें। यह प्रयोग करने से साधक में इतनी शक्ति आ जाती है कि वह सौ योजन तक जाकर लौट सकता है। **ह्रीं हुं फट्** से **स्वाहा** तक मंत्र का एक लाख बार जप कर इसे सिद्ध कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् अनुष्ठान करना चाहिए।

जलोपरि भ्रमण मंत्र

ॐ रमायै रामाय महेशाय महेशिन्यै इंद्राय इंद्राण्यै ब्रह्मणे ब्रह्माण्यै नमो नमः रुद्राय रुद्राण्यै तोयं स्तंभय वरुणं स्तंभय शोषय गच्छ गच्छ पादुकां देहि देहि स्वाहा । इति मंत्रः ।

लक्ष जपेनास्य सिद्धिः ।

स्योनाकबीजचूर्णं कृत्वाथारुह्य पादुका युगलम् ।
मह्यामिव सलिलोपरि पर्यटति नरः सुविस्पष्टम् ।।

नवनीतरुक्मगैरिक दुर्गंधामीनतैलकल्केन ।
सकलस्रोतो भंगाद् भ्रमति नरो नक्र वत्सलिले ।।

हे रावण! अब जलोपरि भ्रमण मंत्र का प्रयोग बता रहा हूं। एकाग्रचित्त होकर सुनो। उपरोक्त मंत्र को सर्वप्रथम कृष्णपक्ष की अष्टमी को रात्रिकाल में किसी नदी तट पर स्थित श्मशान में जाकर नारायण व लक्ष्मी, शिव व दुर्गा, इंद्र व शची, ब्रह्मा व ब्रह्माणी, रुद्र व रुद्राणी का षोडशोपचार पूजन कर एक वर्ष तक एक लाख बार जप करके सिद्ध कर लेना चाहिए। फिर जब कभी जल के ऊपर भ्रमण करना हो या चलना हो तो मंत्र का पहले एक सौ आठ बार जप करना चाहिए।

सोनापाढ़ा या अरलु वृक्ष के बीजों को पीसकर खड़ाऊओं पर लेप कर सुखा लें। फिर खड़ाऊं पहनकर जल पर चलने से मनुष्य नहीं डूबता। वह भूभ्रमण की तरह ही जल भ्रमण भी कर सकता है। एक अन्य प्रयोग यह है कि लौनी घी, स्वर्ण गेरु और प्याज का समभाग लेकर लुगदी बनाकर मत्स्य-तेल में मिलाकर मुख आदि छिद्रों में लगाने वाला मनुष्य भी जल पर मगरमच्छ के समान चल सकता है।

मृतसंजीवनी विद्या

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः शर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः । इति मंत्रः ।

भौमे श्मशाने अन्यैरदृष्टे लक्षजपेन सिद्धिः ।

लिंगमंकोलवृक्षाधः स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ।
नवं घटं च तत्रैव पूजयेल्लिंगसन्निधौ ।
वृक्षं लिंगं घटं चैव सूत्रेणैकेन वेष्टयेत् ।।
चतुर्भिः साधकैर्नित्यं प्रणिपत्य क्रमेण तु ।
एवं द्विद्विदिनं कुर्यादघोरेण समर्चयेत् ।।

अब मैं तुम्हें मृतसंजीवनी विद्या के बारे में बता रहा हूं। सर्वप्रथम मंगलवार को किसी श्मशान या निर्जन स्थान पर ऊपर दिए गए मंत्र को एक लाख बार जप करके सिद्ध कर लेना चाहिए। फिर अंकोल (एक प्रकार का पहाड़ी वृक्ष जिसकी छाल से औषधि बनती है) वृक्ष के नीचे शिव का (मेरा) लिंग प्रतिष्ठापित कर विधिवत पूजन करना चाहिए। शिवलिंग के निकट ही नए कुंभ (घड़े) को प्रतिष्ठापित कर उसका भी पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् कुंभ और शिवलिंग को सूत्र से बांध दें। चार सहयोगी साधकों सहित गठबंधित कुंभ तथा शिवलिंग को नित्य नमस्कार करना चाहिए। प्रत्येक साधक को नित्य अघोर मंत्र द्वारा शिव का (मेरा) पूजन करना चाहिए।

पुष्पादिपलपाकांतं साधनं कारयेद् बुधः ।
फलानि पक्वान्यादाय पूर्वोक्तं पूरयेद् घटम् ।।
तद् घटं पूजयेन्नित्यं गंधपुष्पाक्षतादिभिः ।
तुषवर्जं ततः कुर्याब्बीजानां घर्षयेन्मुखम् ।।
तन्मुखे बृहणं वृत्तं किंचिकिंचित्प्रलेपयेत् ।
विस्तीर्णमुखभागांतः कुंभकार करोद् भवाम् ।।

मृत्तिकां लेपयेत्तत्र तानि बीजानि रोपयेत् ।
कुंडल्याकार योगेन यत्नादूर्ध्वमुखानि वै ।।

हे रावण! यह प्रयोग तब तक करते रहना चाहिए, जब तक उस वृक्ष में फल-पुष्प न लग जाएं। जब फल पक जाएं तो साधकों को चाहिए कि वे उन फलों द्वारा उस कुंभ (घड़े) को भर दें। कुंभ भरने के बाद पुष्प, गंध एवं अक्षत से विधिवत पूजन कर भूसी (बीज के छिलके) पृथक कर मुख में रखें। फिर कुम्हार द्वारा निर्मित बड़े मुख का मिट्टी-पात्र लाकर उसमें वह बीज डालकर मिट्टी पात्र का मुंह सुहागे से वेष्टित कर दें अर्थात् सुहागा पात्र के मुख भाग पर लेप दें। अब उस पात्र पर मिट्टी का लेपन कर उसमें गोलाकृति रूप में बीजों को ऊर्ध्वमुखी करके बो दें।

विशेष — यह क्रिया ठीक उसी प्रकार करनी चाहिए, जैसे नवरात्र के समय जौ का रोपण किया जाता है। सरावी (सकोरा) लेकर उसको कुंभ पर रखकर उसमें मिट्टी भरकर बीजों का रोपण कर देना चाहिए।

शुष्कं तं ताम्रपात्रोर्ध्वं भांडं देयमधोमुखम् ।
आतपे धारयेत्तैलं ग्राहयेत्तं च रक्षयेत् ।।
माषार्द्धं चैव तत्तैलं माषार्द्धं तिलतैलकम् ।
तस्य देयं मृतस्यैतत्सम्यक् तस्य सितेन तु ।।
तत्क्षणाज्जीवयेत्सत्यं गतो वापि यमालयम् ।
रोगादिसर्पादिमृता पुनर्ज्जीवंति निश्चितम् ।।

हे रावण! उपरोक्त क्रिया के बाद जब बीज पूरी तरह सूख जाएं तो उनके ऊपर ताम्रपत्र ढंक दें और कुंभ (मटके) के नीचे अग्नि देकर प्रयत्नपूर्वक बीजों का तेल निकाल लें। यदि यह तेल आधा माशा तिल के तेल में मिश्रित कर मृत मनुष्य पर डाला जाए तो वह जीवित हो जाता है। चाहे उसकी मृत्यु विष प्रभाव या रोगादि के कारण ही क्यों न हुई हो। यह योग अन्यथा नहीं अपितु शत-प्रतिशत सत्य है।

अदृश्योपाय मंत्र

ॐ हुं फट् कालि कालि मांसशोणितं खादय खादय देवि मा पश्यतु मानुषेति हुं फट् स्वाहा । इति मंत्रः ।

लक्ष जपेन सिद्धिः ।

अर्क शाल्मलि कार्पास पट्टपंकज तन्तुभिः ।
पंचभिर्वर्त्तिकाभिश्च नृकपालेषु पंचसु ।।
नरतैलेन दीपाः स्युः कज्जलं नृकपालके ।
ग्राहयेत् पंचभिर्यत्नात्पूर्ववच्च शिवालये ।।
पंचस्थानीयजातं तु एकीकुर्यावच्च तं पुनः ।
मंत्रयित्वा ऽञ्जयेन्नेत्रे देवैरपि न दृश्यते ।।
गोरोचनेंगुदीतरुकुसुमं मार्जारस्याक्षि रोमाणि ।
द्विकभुक्तोच्छिष्टयुता गुटिकेयं कल्पलतिकाख्या ।।

हे रावण! अब तुम अदृश्य होने का प्रयोग और मंत्र का श्रवण करो, जिसके प्रभाव से मनुष्य में अदृश्य होने की शक्ति आ जाती है। सर्वप्रथम उक्त मंत्र को एक लाख बार जप करके सिद्ध कर लेना चाहिए। फिर प्रयोग काल में आक, सेमल, कपास, रेशम व कमलनाल की पांच वर्तिकाएं (बत्तियां) बनाकर पांच मृत मनुष्यों की खोपड़ियों में रखकर उन्हें तेल से भरकर दीप प्रज्वलित कर काजल तैयार करें। यह क्रिया श्मशान अथवा निर्जन स्थान पर करनी चाहिए। इस प्रकार तैयार काजल को एक सौ आठ बार मंत्र जप कर अभिमंत्रित करके नेत्रों में लगाने से वह मनुष्य अदृश्य हो जाएगा। सामान्य मनुष्यों की बात छोड़ो, वह देवताओं को भी दृष्टिगोचर नहीं होगा।

हे रावण! यह सत्य प्रयोग है। तुम्हारे निमित्त एक अन्य प्रयोग भी बताता हूं। ध्यानपूर्वक श्रवण करो। गोरोचन, मालकांगनी का पुष्प, बिल्ली की आंख और बाल को एकत्र कर कौए की जूठन में पीसकर गोली बना लें। फिर उस गोली को तीन प्रकार के लौह (स्वर्ण, रजत, ताम्र) से बने संपुट में भरकर ऊपर बताए मंत्र से अभिमंत्रित कर मुख में रख लेने से भी मनुष्य में अदृश्य होने की शक्ति आ जाती है। यह गोली 'कल्पलतिका' के नाम से भी जानी जाती है।

।। इति श्रीरावण संहितायाः उड्डीशतंत्र संपूर्णम् ।।

क्रियोड्डीश तंत्र

(शिव-पार्वती संवाद)

क्रियोड्डीश की ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के निमित्त भगवान् शिव के मुखारविंद से निःसृत ज्ञान-गंगा को तंत्र ग्रंथ के रूप में उन्नीस पटलों में विखंडित किया गया है। प्रत्येक पटल की अपनी विशिष्टता है। संपूर्ण ग्रंथ में तंत्र द्वारा रोगोपचार, कवच, विभिन्न मंत्रों के प्रभाव एवं निर्माण का जहां स्पष्ट विश्लेषण किया गया है, वहीं षट्कर्मों और भूतिनी साधना यथा—यक्षिणी, रक्षिणी, भैरवी व यक्ष-साधना की विधियां भी दी गई हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त परम सिद्धि अर्थात् विजया (भांग) सेवन का प्रभाव एवं गुण-दोषों का सरल रूप में विश्लेषण किया गया है। मूलतः यह ग्रंथ शिव-पार्वती संवाद है, लेकिन कुछ विद्वजन इसे रावण पुत्र इंद्रजीत (मेघनाद) कृत बताते हैं, जो शोधनीय है। क्योंकि ग्रंथ में शिव या पार्वती द्वारा कहीं भी इंद्रजीत को संबोधन नहीं किया गया है।

प्रथमः पटलः

पार्वत्युवाच—

आनंदशिखरारूढं पार्वत्या सह शंकरम् ।
पप्रच्छ गिरिजाकांता पुनर्नत्वा वृषध्वजम् ।।
भगवन्सर्वदेवेश सर्वज्ञानमय प्रभो ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्रियोड्डीशं विभो वदः ।।

आनंद नामक पर्वत पर भगवान् शिव के साथ विराजमान भगवती पार्वती बोलीं—हे भगवन्! देवताओं के भी देवता व सर्वज्ञाता प्रभो! क्रियोड्डीश तंत्र को सुनने की मेरी प्रबल इच्छा है। कृपा करके आप मुझे इस तंत्र के बारे में बताएं।

ईश्वरोवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि क्रियोड्डीशं तंत्रमुत्तमम् ।
गोपितव्यं प्रयत्नेन मम स्वप्राणवल्लभे ।।

भगवान् शिव बोले—हे देवी! तंत्रों में सर्वोत्तम तंत्र क्रियोड्डीश तंत्र है जो अति गोपनीय है। लेकिन तुम मेरी प्राणवल्लभा हो, इसलिए बता रहा हूं।

स्वदेवतादिक्कादि ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ।
शीतांशु सलिलक्षोणी व्योमवायुहविर्भुजः ।
एतेषां बीजयोगेन ग्रथनादिक्रमेण कर्म साधयेत् ।

ठं वं लं हं यं वं ।।

हे देवी! मैं तुमसे इस तंत्र के छह कर्मों एवं उनके लक्षणों के बारे में बता रहा हूं। इनका अनुष्ठान स्वदेवता, दिशा, काल आदि को जानकर ही करना चाहिए। इनके देवता हैं—चंद्र, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु एवं अग्नि। इन देवताओं के बीज योग ठं, वं, लं, हं, यं, वं हैं। इनकी क्रमपूर्वक साधना करनी चाहिए।

तत्तद्देवता

रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा मातंगी कुलकामिनी ।
दुर्गा चैव भद्रकाली कर्मादौ ताः प्रपूजयेत् ।।
वसंताद्यृतुकालनियमः ।

सर्वप्रथम रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, मातंगी, कुलकामिनी, दुर्गा, भद्रकाली आदि की देवता-रूप में पूजा करनी चाहिए।

द्वितीयः पटलः

सर्वरोगमुक्ति कवच

पार्वत्युवाच—

देवदेव महादेव सुरासुरनमस्कृत ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि रोगमुक्तः कथं प्रभो ।।
नास्ति त्राता च जगतां त्वां विना परमेश्वर ।
ज्वरादिनिवारणं शीघ्र कृपया परया वद ।।

पार्वती बोलीं—देवताओं एवं असुरों द्वारा वंदित हे महादेव! हे देवाधिदेव! अब मैं रोगमुक्ति के उपायों के बारे में आपके मुखारविंद से सुनना चाहती हूं। कृपा कर बताएं। हे प्रभो! आपके अतिरिक्त तीनों लोगों का रक्षक और कोई भी नहीं है। इसलिए हे स्वामी! आप मुझे वह उपाय

बताएं जिससे ज्वर आदि रोगों की निवृत्ति शीघ्र हो सके।

ईश्वरोवाच—

कथयामि तव स्नेहात्कवचं वारणं महत् ।।

शिव बोले—हे प्राणवल्लभे! तुम्हारे स्नेहाभिभूत होकर मैं ज्वर आदि रोग दूर करने वाले कवच का वर्णन कर रहा हूं।

ॐ नमो भगवति वज्र शृंखले हनतु भक्षतु खादतु अहो रक्तं पिब पिब नरवक्षास्थिरक्तपटे भस्मांगिभस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे वज्रप्राकारानिचिते पूर्वां दिशं मुंचतु दक्षिणां दिशं मुंचतु पश्चिमां दिशं मुंचतु उत्तरादिशं मुंचतु नागार्थं धनग्रहपति बंधतु नामपीठं बंधतु यक्षराक्षसपिशाचान् बंधतु प्रेत भूतगंधर्वादयो ये केचिद् उपद्रवास्तेभ्यो रक्षतु ऊर्ध्वं अधो रक्षतु श्येनिकां मुंचतु ज्वल महाबले एह्येहि तु मोटि मोटि सटावलि वज्राग्नि वज्रप्राकारे ऐं फट् ह्रीं ह्रीं श्रीं फट् ह्रं हं फुं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्व व्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यः ह्रीं अशेषेभ्यो मारक्षतु ।।

इतीदं कवचं देवि सुरासुरसुदुर्लभम् ।

ग्रहज्वरादिभूतेषु सर्वकर्मसु योजयेत् ।।

हे पार्वती! यह कवच देवताओं तथा दानवों के लिए भी दुर्लभ है। इसका नित्य पाठ करने से ज्वर आदि पाठकर्ता से कई योजन दूर रहते हैं। इस कवच का पाठ सर्वकार्य सिद्धि हेतु भी किया जाना चाहिए।

न देयं यस्य कस्यापि कवचं मन्मुखाच्युतम् ।
तद्दत्ते सिद्धिहानिः स्याद्योगिनीनां भवेत्पशुः ।।
दद्याच्छांताया वीराय सत्कुलीनाय योगिने ।
सदाचाररतो यश्च निर्जिताशेष एव हि ।।

हे देवी! मेरे मुखारविंद से निःसृत इस कवच का उपदेश हर किसी को नहीं देना चाहिए। ऐसा करने से सिद्धि नहीं प्राप्त होती। इतना ही नहीं, उपदेशकर्ता को योगिनियों का पशु बनना पड़ता है। इस कवच का उपदेश योग्य मनुष्य को ही करना चाहिए।

ऐकाहिको द्वयाहिकश्च त्र्याहिकश्चातुराहिकः ।
सर्वे ज्वरा विनश्यंति कवचं धारयेद्यदि ।।

इस कवच को धारण करने से सभी प्रकार के ज्वर दूर होते हैं—जैसे नित्य आने वाला, एक दिन छोड़कर एक दिन आने वाला ज्वर या तीसरे अथवा चौथे दिन आने वाला ज्वर।

स्त्रियं वामकरे धार्यं पुंसां च दक्षिणे करे ।
अवश्यमेव सिद्धिः स्यात्सत्यं सत्यं वरानने ।।

स्त्रियों को यह कवच बाएं हाथ में और पुरुषों को दाएं हाथ में धारण करना चाहिए। हे वरानने! यह सत्य है कि इस कवच को धारण करने से सभी प्रकार की सिद्धियां हस्तगत होती हैं।

तृतीयः पटलः

अतः परं महेशानि पूजनं पार्थिवं शिवम् ।

विशेषतः सर्वरोगे त्र्यंबकस्य प्रपूजनम् ।।
यत्कृत्वा सर्वतः शांतिर्भवेद्देवि न संशयः ।
ततः प्रयोगं सर्वेषां वश्यादीनां च कारयेत् ।
विधानं तत्र वक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ।।

हे देवी! सभी प्रकार के रोगों का निवारण करने के लिए भगवान् शिव के पार्थिव लिंग की पूजा करनी चाहिए। हे पार्वती! अब मैं तुम्हें पार्थिव लिंग पूजा के बारे में बता रहा हूं। सभी प्रकार के रोगों की निवृत्ति के लिए सामान्यतः त्रिनयन की पूजा अवश्य कर लेनी चाहिए। हे महेशानि! पार्थिव लिंग पूजा करने से रोग निवृत्ति तो होती ही है, साथ ही संभावित रोगों की रोकथाम भी होती है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे देवी! अब तुम पार्थिव पूजा विधि शांत चित्त से सुनो।

शिवपूजा विधान

मृदा लिंगं विनिर्माय शततोलकमानया । तत्रानीय मृतं मुंडं स्थापयित्वा ममार्चनम् । पूर्वमाग्निं च संस्थाप्य यज्ञस्थानं चतुर्विधम् । उत्तरे दक्षिणे वापि पूर्वे च पश्चिमे तथा । सर्वकामेषु होतव्यमन्यथा निष्फलं भवेत् । घटं संस्थाप्य मम पूजां यथाशक्ति कुर्यात् । ततो वह्नि स्थापनम् । मुंडस्थापनम् ।। नरमहिषमार्जारमुंडत्रयम् वा नृमुंडत्रयम् । एकमुंडं वा तदुपरि मां संपूज्य गंधोदकैः स्नापयित्वा वितस्तिमितधरातले पोथयित्वा तस्योपरि वेदीं कल्पयेत् । तत्रैव भूतनाथादीन् चतुर्दिक्षु समर्चयेत् । पूर्वे ॐ भूतनाथाय नमः इति पाद्यादिभिः । पूजयित्वा बलिं दद्यात् । एवं दक्षिणे श्मशानाधिपाय । पश्चिमे काल भैरवाय । उत्तरे च ईशानाय । वेदी मध्ये हौं प्रेतबीजं विलिख्य तत्रैव भारतीं पूजयेत् ।।

सौ तोला मिट्टी का शिवलिंग बनाकर मृत पुरुष की खोपड़ी पर प्रतिष्ठापित कर अग्रलिखित विधि से पूजा करनी चाहिए। पूर्व दिशा में अग्नि की स्थापना कर चतुर्दिशाओं में होम करना चाहिए। क्योंकि चतुर्दिशाएं यज्ञस्थल कहलाती हैं। सभी प्रकार की मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम में होम करना चाहिए। इन दिशाओं में होम न करने से कार्य सिद्धि नहीं होती। सर्वप्रथम कुंभ प्रतिष्ठापित कर सामर्थ्य के अनुसार मेरी (शिव की) पूजा कर अग्नि की प्रतिष्ठापना करनी चाहिए। तत्पश्चात् मनुष्य, भैंस एवं बिल्ली की खोपड़ी प्रतिष्ठापित करनी चाहिए। यदि भैंस व बिल्ली की खोपड़ी न मिल सके तो मनुष्य की तीन खोपड़ियां प्रतिष्ठापित की जा सकती हैं। यदि तीन मनुष्यों की खोपड़ियां न मिल सकें तो एक मनुष्य की खोपड़ी ही पर्याप्त है। लेकिन एक मनुष्य की खोपड़ी अवश्य ही प्रतिष्ठापित करनी चाहिए।

इसके बाद उस खोपड़ी पर पार्थिव लिंग (शिव) की प्रतिष्ठापना कर सुगंधित जल से लिंग को स्नान कराएं। अब बारह अंगुल भूमि पर गड्ढा खोदकर उस पार्थिव लिंग को दबा देना चाहिए। फिर उसी स्थान पर होमवेदी बनाकर चारों दिशाओं में भूतनाथों की पूजा करनी चाहिए। उनके मंत्र हैं—पूर्व दिशा में **ॐ भूतनाथाय नमः** कहकर पाद्य अर्पित करें। दक्षिण दिशा में **ॐ नमः श्मशानाधिपाय** कहकर, पश्चिम दिशा में **ॐ काल भैरवाय नमः** कहकर और उत्तर दिशा में **ॐ ईशाय नमः** कहकर बलि देनी चाहिए। होमवेदी के बीच में 'हौं' बीजमंत्र अंकित कर सरस्वतीजी की पूजा करनी चाहिए।

पुष्पांजलि

रे वीर शव देवेश मुंडरूप जगत्पते । दयां कुरु महाभाग सिद्धिदो भव मज्जपे । इति पुष्पांजलि त्रयं दत्त्वा आग्नेयां ह्रीं नमः नैर्ऋत्यां ह्रीं चंडिकायै नमः । वायव्यां ह्रीं भद्रकाल्यै नमः । ईशाने ह्रीं दयामयै नमः । श्मशानवासिनो ये ये देवादेवाश्च भैरवाः । दयां कुर्वन्तु ते सर्वे सिद्धिदाश्च भवन्तु मे । अनेन प्रणवाद्येन पुष्पांजलि त्रयं क्षिपेत् । ततः स्थानं तु संस्पृश्य वश्वो भव वदेदिति ।।

जप कार्य में सिद्धि प्राप्ति की कामना कर शव, देवेश, मुंडरूप जगत्पते से दयाभाव रखने की प्रार्थना करें। फिर तीन बार पुष्पांजलि अर्पित कर अग्रलिखित बीजमंत्रों का उच्चारण करना चाहिए। यथा— **आग्नेयां ह्रीं नमः, नैर्ऋतयां ह्रीं चंडिकायै नमः, वायव्यां ह्रीं भद्रकाल्यै नमः, ईशाने ह्रीं दयामयै नमः ।** इस प्रकार बीजमंत्रों का उच्चारण कर श्मशानस्थ देवता-अदेवता आदि से दयाभाव रखने एवं सिद्धि देने की प्रार्थना करके प्रणवादि से तीन बार पुष्पांजलि अर्पित करें। इसके बाद उस भू-भाग को छूकर यह कहें— **वश्यो भवः** अर्थात् मेरे वशीभूत हों।

ततः स्नानं तत्र लिंगं संस्थाप्य परमेश्वरि । स्नानं तु पंचगव्येन दधिदुग्धादिकं तथा । अथवा परमेशानि शर्करामधुना युतम् । पंचामृतैस्ततः स्नानं कारयेत्परमेश्वरि । ईशानाय प्रथमं स्नानं वामदेवाय द्वितीयकम् । तृतीये सद्योजाताय चतुर्थे च पिनाकधृक् । पंचमं देवदेवेशं पूजयेत्पार्थिवं शिवम् । अधुना मूलमंत्रेण शर्करया गायत्रिकं परम् । ततो जीवन्यासं कृत्वा न्यासादिकं ततः परम् ।।

हे पार्वती! साधकों को चाहिए कि वे लिंग स्थापित कर उसे दही, दूध आदि पंचगव्यों से स्नान कराएं। फिर शहद मिली शक्कर से स्नान कराएं। उसके बाद पंचामृत से स्नान कराएं। स्नान-क्रम इस प्रकार है— **ईशानाय** (प्रथम स्नान), **वामदेवाय** (द्वितीय स्नान), **सद्योजाताय** (तृतीय स्नान), **पिनाकधृक्** (चतुर्थ स्नान) और **देवदेवेश** (पंचम स्नान)। स्नानोपरांत शिव की पू करके शिव के मूलमंत्र या गायत्री मंत्र का उच्चारण करते हुए शक्कर से स्नान कराएं। इसके बाद जीवन्यास तथा करन्यासादि करना चाहिए।

ध्यानं शृणु महादेवि स्नेहेन कथितं मया । हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतर सैराप्लावयंतं शिरो द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहंतं परम् । अंके न्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकांतं शिवं स्वच्छांभोज गतं नवेंदुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे । पुनर्ध्यात्वा तु सेपूज्य अंगन्यासं ततः परम् ।।

हे पार्वती! तुम्हारे प्रति स्नेह-भाव होने के कारण ही मैं तुम्हें ध्यान विधि बता रहा हूं। भगवान् शिव का (मेरा) ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि शिव अपने हाथों से अमृत कलशों का अमृत अपने शीश पर उड़ेल रहे हैं। उनके हाथों में अमृत कलशों सुशोभित हैं तथा हाथ रूपी कमल के मणिबंध में मृगाक्षवलय धारण किए हैं। उनकी गोद में अमृत कलश सुशोभित है और उन्होंने नवोदित चंद्रमा का मुकुट धारण कर रखा है। इस प्रकार ध्यानोपरांत निम्नलिखित विधि से अंगन्यास करना चाहिए। अंगन्यास के बाद करन्यास करने का विधान है।

अंगन्यास

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं हृदयाय नमः । त्र्यंबकं सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनं शिरसे स्वाहा । भर्गोदेवस्य धीमहि शिखायै वषट् । उर्वारुकमिव बंधनात् कवचाय हुं । धियो यो नः प्रचोदयात् नेत्रत्रयाय वौषट् । मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् अस्त्राय फट् एवं करन्यासः ।

षोडशोपचार

पूजा जपापराजिता कृष्णबिल्वपत्रं च पिप्पलम् । करवीरमपामार्गं प्रत्येक जुहुयाच्छिवे । अष्टाधिकशतेनैव पूजयेत् ।।

हे देवी! षोडशोपचार पूजा के बाद जपा, अपराजिता, काले बिल्व पत्रों एवं पीपल, अपामार्ग, कनेर आदि से क्रमपूर्वक एक सौ आठ आहुति देनी चाहिए।

अतः परं महेशानि मधु देयं विशेषतः । गुडार्द्रकरसेनैव सुरास्तु ब्राह्मणस्य तु । नारिकेलोदकं चैव कांस्ये तु क्षत्रिस्य च । कांस्यस्थं माक्षिकम् वैश्यस्य । शूद्रस्य ताम्रपात्रे तु मधुयुक्तं निवेदयेत् । अथवा सार्षपं तैलमाज्येन होमयेद्‌द्विजः । जुहुयात्सर्वकर्माणि कथितानि महेश्वरि ।।

हे पार्वती! फिर ब्राह्मण को गुड़ व अदरक के रस में मिली हुई सुरा (मद्य) देनी चाहिए। विशेषकर ब्राह्मण को शहद भी देना चाहिए। क्षत्रिय को कांसे के पात्र में नारियल का जल भरकर, कांसे के ही पात्र में शहद भरकर वैश्य को तथा ताम्रपात्र में शहद भरकर शूद्र को देना चाहिए या फिर ब्राह्मण ही सरसों के तेल और घृत से होमादि करें। हे देवी! यह अति गुप्त विधि है जो मैंने केवल तुम्हें बताई है।

मंत्रं शृणु महादेवि कथितं तव श्रद्धया—ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनं भर्गोदेवस्य धीमहि उर्वारुकमिव बंधनात् धियो यो नः प्रचोदयात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।

हे देवी! अब मैं तुम्हारे कारण ही मंत्र का वर्णन कर रहा हूं। इस मंत्र का पुरश्चरण क्रिया के साथ एक लाख आठ बार जप किया जाना चाहिए। उक्त मंत्र सभी कार्यों के लिए वैध कहा गया है।

स्थान भेद

शून्यागारे नदीतीरे पर्वते वा चतुष्पथे । बिल्वमूले श्मशाने वा निर्जने च प्रपूजयेत् । अणिमाद्यष्टशक्तिं च वंध्या वा मृतवत्सा बद्धो वा राजशत्रुके । सर्वशांतिकरं देवि पूजनं त्र्यंबके शिवे । अत एव कथितं मे च सत्यं वरानने ।।

हे देवी! साधकों को चाहिए कि वे अणिमादि आठ दैवीय शक्तियों की निर्जन स्थल या नदी तट पर, पर्वत, चौराहे, बिल्ववृक्ष की जड़ अथवा श्मशान भूमि आदि में पूजा करें। इस पूजा से बंध्या मृतवत्सा (जिसके गर्भ में ही पुत्रादि मर जाते हैं) दोष की निवृत्ति होती है। इससे राज या शत्रु भय भी नहीं रहता। हे पार्वती! यह पूजा विधि सभी प्रकार से सुखकारी है। यह मैंने सत्य-सत्य कहा है।

चतुर्थः पटलः

सर्वव्याधि विमोचन

शृणु वक्ष्यामि चार्वंगि सर्वव्याधि विमोचनम् । एकादश पूजये द्रुद्रांदशांशं गुग्गुलैर्घृतैः । चत्वारः कुंभाः संस्थाप्याः पंचपल्लवसंयुताः । मंत्रेण रौप्याष्टदल पद्ममध्ये लिंगं पूजयेत् । प्रतिवासरं सप्तलिंगं पूजयेत् लक्षं जप्त्वा । पलाशसमिधा होमं मंत्रेण तत्क्रमात् । अत्र पीठे यजमानमभिषेकयेत् । दक्षिणां दद्याद्गोभूहेम तिलांजलीन् ब्राह्मणेभ्यः किंचिद्देया आचार्याय दद्यात् ।।

हे श्रेष्टांगी! अब अनेक प्रकार की विपदाओं से निवृत्ति के उपाय बता रहा हूं, सुनो! दशांश गुग्गुल व घृत से ग्यारह रुद्रों की पूजा कर पांच पत्तों से युक्त पांच कुंभ प्रतिष्ठापित करने चाहिए। तत्पश्चात् चांदी के अष्ट दलयुक्त कमल में लिंग प्रतिष्ठापित कर उसकी पूजा करनी चाहिए। फिर एक लाख बार मंत्र जप कर पलाश की समिधा से क्रमबद्ध होम करना चाहिए। होमोपरांत यजमान का अभिषेक कर गाय, भूमि, स्वर्ण, तिल आदि दक्षिणा के रूप में देने का विधान है। इनमें से कुछ भाग ब्राह्मणों को देने के बाद शेष भाग आचार्य को देना चाहिए।

पंचमः पटलः

क्रियोपदेश

वशीकरणादिकर्माणि वारतिथिनक्षत्रमंडलविशेषे कर्तव्यानि । स्फाटिकी माला सर्वसिद्धिदा । मणिसंख्या पंचविंशतिभिर्मोक्षं पुष्टौ तु सप्तविंशतिः । त्रिंशदभिर्धनसिद्धिस्तु पंचाशमंत्रसिद्धये । अष्टोत्तरशतैः सर्वसिद्धिः ।।

हे पार्वती! अब मैं क्रियोपदेश का वर्णन करता हूं—वशीकरण आदि कर्म वार, तिथि, नक्षत्र एवं मंडल विशेष में ही करने का विधान है। सभी प्रकार की सिद्धि प्राप्ति के लिए स्फटिक की माला पर मंत्र जप करना चाहिए। सांसारिक बंधनों से मुक्ति के लिए पच्चीस मनकों की माला, पुष्टि कर्म के लिए सत्ताईस मनकों की माला और धन कामना के लिए तीस मनकों की माला द्वारा मंत्र जप करना उत्तम होता है। वैसे मंत्रसिद्धि के लिए पचास मनकों की माला अवश्य होनी चाहिए। एक सौ आठ मनकों की माला द्वारा मंत्र जप करने से सभी प्रकार की सिद्धियां हस्तगत हो जाती हैं।

शिवमंत्रसमायुक्तमौषधं सफलं भवेत् । वंध्यादिदोषनिवारणम् । स्त्रीणां बाधक मोचनम् । रक्तमाद्रयादि चतुर्विधबाधक दोषनिवारणम् । तत्र यंत्रम् त्रिकोणमथ षट्कोणं नवकोणं मंडलाकृतिः । यंत्राण्येतानि संलिख्य वाहयेन्मंत्र पूर्वकम् । तंत्रपूजनात् औषधादि भक्षणाद्दोषशांतिः ।।

हे देवी! युदि शिव के मंत्र का जप करते हुए औषधि उखाड़ी जाए तो वह प्रभावी होती है। बांझपन एवं स्त्रियों की अन्य बीमारियों के लिए ऐसी जड़ का उपयोग किया जाना चाहिए। स्त्रियों के रक्तादि्र आदि दोष इस जड़ से दूर होते हैं। यंत्रों के बारे में कहा गया है कि गोलाकृति,

त्रिकोण, षट्कोण या नवकोण में मंत्र अंकित कर यदि उसकी पूजा की जाए और फिर औषधि का सेवन किया जाए तो सभी तरह के रोगों का क्षय हो जाता है।

षष्ठमः पटलः

मृतवत्सादि शांति कवच

मृतवत्सामृतगर्भापुत्रहीनानां शांतिः कवच धारणात् । कवचं प्रथमम् ।

ॐ नमो नरसिंहाय नमो महाविपन्नाशाय दिव्यरूपाय नरसिंहाय नमः । स्थौं सौं क्षौं रामाय नमः । रां रामाय नमः । ॐ ह्रीं श्रीं फणं हुं हां फेत्कारशब्देन सर्वबालकस्य सर्वभयोपद्रवनाशाय इमां विद्यां पठति धारयति यदि तदा नरसिंहो रक्षति सदा हुं फट् स्वाहा ।।

ॐ नमां नरसिंहाय हिरण्यकशिपोर्वक्षः स्थलविदारणाय त्रिभुवन व्यापकाय भूतप्रेतपिशाचडाकिनीकुलनाशाय स्तंभोद् भवाय समस्तदोषान हर हर विष विष पच पच मथ मथ हन हन फट् हुं फट् ठः ठः एहि रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा ।।

ॐ क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय ज्वालामालिने दीप्तदंष्ट्राय अग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशाय सर्वज्वर विनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।

गोरोचनया भूर्जे विलिख्य स्वर्णथा गुटिका स्त्रिया वामकरे पुरुषेण दक्षिणे करे धार्या कदापि न दोषः ।।

हे देवी पार्वती! अब मैं मृतवत्सादि शांति कवच बताता हूं। ऐसी स्त्रियां जिनके गर्भ में ही पुत्रादि संतान की मृत्यु हो जाती है, वे 'मृतवत्सा' कहलाती हैं। ऐसी स्त्रियों को इस कवच के धारण से अवश्य ही लाभ होता है। एक अन्य कवच है जिसको भोजपत्र पर अंकित कर स्वर्ण-संपुट में डालकर यदि स्त्री बाईं भुजा में और पुरुष दाईं भुजा में बांध लें तो मृतवत्सा दोष दूर होता है। यह कवच सदैव और सभी अवस्थाओं में पवित्र रहता है।

सप्तमः पटलः

यंत्र प्रकरण

श्रीपार्वत्युवाच—

श्रुतं कवचचरितमपूर्वं देववांछितम् । इदानीं श्रोतुमिच्छामि यंत्रं कथय मे प्रभो ।।

पार्वती बोलीं—हे प्रभो! मैंने मनोनुकूल फलदाता कवच के बारे में आपके मुखारविंद से सुना। अब कृपा करके यंत्र के बारे में भी आप वर्णन करें।

ईश्वरोवाच—

मात्राहीनं रकारं तु पार्श्वे शीर्षं तथा पुनः । मायात्मकं तेन भवेत् षट्कोणं यंत्रमुत्तमम् । माया बीजं ह्रीं गर्भम् ।।

स्त्रिया वामहस्ते धारणाद्वन्ध्या पुत्रवती भवेत् । बालाया बालकस्यापि कंठे संधार्य सुखी भवेत् । भूर्जे गोरोचनया विलिख्य स्वर्णस्थं धारयेत् । षोडशीचक्रस्य गोरोचनया भूर्जे विलिख्य धारणात् स्त्रीणां सौभाग्यवृद्धिः । चतुष्कोणचक्रं संलिख्य ह्रीं गर्भ बाहौ धारणात् नारी जीवत्पुत्रिका अथवा चतुष्कोणे प्रणवादि क्षं पुनः मीनचक्रं संलिख्य धारणात् वंध्या जीवत्पुत्रिका भवति ।।

शिवजी बोले—हे देवी! छह भुजा वाला यंत्र बनाकर उसके मध्य भाग में 'ह्रीं' बीज मंत्र लिखना चाहिए। यह शुभ कहा गया है। ऐसे यंत्र को भोजपत्र पर अंकित कर यदि स्त्री बाईं भुजा में धारण करे तो बंध्या दोष दूर होकर पुत्र की प्राप्ति होती है। यदि यह यंत्र पुत्र या पुत्री के गले में गोरोचन द्वारा भोजपत्र पर अंकित कर धारण कराया जाए तो ऐसे बच्चे सुखी रहते हैं।

हे देवी! यदि षोडशी चक्र (यंत्र) को गोरोचन से भोजपत्र पर अंकित कर कोई स्त्री धारण करती है तो वह सौभाग्यवती होती है। इसी प्रकार चतुष्कोण यंत्र के बीच में 'ह्रीं' (माया बीज) अंकित कर भुजा में धारण करने वाली स्त्री पुत्रवती होती है। मीन चक्र या मीन यंत्र के चतुष्कोणों में प्रणवयुक्त 'क्षं' बीजमंत्र अंकित कर धारण करने वाली स्त्री यदि बांझ भी हो तो उसे संतान की प्राप्ति होती है। इसमें तनिक भी संशय नहीं करना चाहिए।

अतः परम् अष्टदल कर्णिकामध्ये माया । ततः परम दल मध्ये द्वे द्वे मायाबीजे पुनः पुनः । इतः परं नवदलं मायाबीजं विलिख्य बाहौ धारणात् मृतवत्सा जीवद्वत्सा । गोरोचना कुंकुमेन संलिख्य रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य गुटिकां पंचामृतैः पंचगव्यैः स्नापयित्वा । प्रणवेन तु संमंत्र्य स्नापयेद् गंधद्रव्यकैः प्राणान् प्रतिष्ठाप्य देवतारूपां गुटिकां संपूज्य धारयेत् ।।

इसी प्रकार अष्टदल कर्णिका के मध्य में 'ह्रीं' (माया बीज) अंकित कर दल के मध्य में दो-दो माया बीज (ह्रीं-ह्रीं) अंकित करने चाहिए। फिर नवदल में 'ह्रीं' अंकित कर रक्त वर्ण के धागे से आवेष्टित करने तथा गोली रूप बन जाने पर उसे पंचामृत (दूध, दही, घृत, शहद, शर्करा) और पंचगव्य (गाय के दूध, दही, घृत, गोबर व मूत्र) से स्नान कराकर प्रणव (ॐ) से अभिमंत्रित करें। इसके बाद गंधदव्यों (सुगंधित केसर, चंदन आदि) से स्नान कराएं। तत्पश्चात् प्राण-प्रतिष्ठित कर देव-रूप गुटिका की पूजा करके धारण करना चाहिए।

शिव स्नान

घृतेन मधुना वापि स्नापयेद्वश्यकर्मणि । दुग्धादिना तथा देवि शांतौ मृत्युंजयेऽपि च ।। आकर्षणे तु मधुना भस्मना क्रूरकर्मणि ।।

हे पार्वती! अब मैं शिव स्नान के बारे में बताता हूं—वशीकरण कर्म में घी और शहद से स्नान कराना चाहिए। इसी तरह शांति कर्म और मृत्युंजय जपादि कर्म में दूध आदि से, आकर्षण कर्म में शहद से तथा क्रूर कर्म में भस्म (राख) से स्नान कराना चाहिए।

अस्य परिमाणम् शततोलकमानेन द्रव्यमेतत्प्रकीर्तितम् । तन्मानं संविदा चूर्णं नैवेद्यं च सुरेश्वरि । बिल्वपत्रं तथा पुष्पंदद्यादष्टोत्तरं शतम् । शांतिकादौ द्रोणपुष्पं चाभिचारके । स्तंभनेमोहने चैव धत्तूरं कनकाह्वयम् । विद्वेषोच्चाटने देविजियाप्यपराजिता । चतुर्दश्यां समारभ्य यावदन्याचतुर्दशी । एकैकं क्रमशो लिंगं पूजयेद्भक्तिभावतः । अष्टाधिकसहस्रं तु जपं कुर्याद्दिनेदिने । सप्ताहेसप्त लिंगानि पंचाहेवाथ पंचकम् । चंडोग्रेण विधानेन

जपपूजादिकं स्मृतम् । बटुकेन तु मंत्रेण मंजुघोषेण वा प्रिये । त्रैयंबकेण देवेशि शांतिके जप पूजनम् । तत्तत्कल्पविधानेन जपं पूजां समाचरेत् । जातिध्वंसे कुलोच्छेदे ज्वेरादौ रोगसंकटे । महाभये समुत्पन्ने सर्वाभिचारसंभवे । यत्नेन पूजयेद्देवि लिंगमष्टोत्तरं शतम् । अतिरुद्रयोगादौ रुद्राध्यायेन वा पुनः । नीलकंठेन वा देवि स्तवेन तोषायेच्छिवम् ।।

हे पार्वती! अब मैं तुम्हें द्रव्य माप के बारे में बताता हूं—सौ तोला स्नान द्रव्य के साथ उतना ही नैवेद्य लेना चाहिए। बिल्वपत्र तथा पुष्प एक सौ आठ की संख्या में लेने चाहिए। शांत्यादि कर्म में द्रोण पुष्प, अभिचार कर्म में बर्बरा पुष्प (वनतुलसी पुष्प) स्तंभन और मोहनादि कर्म में धतूरे के पुष्प तथा उच्चाटनादि कर्म में विजया व अपराजिता के पुष्पों का उपयोग किया जाना चाहिए।

हे देवी! एक पक्ष की चतुर्दशी से शुरू करके दूसरे पक्ष की चतुर्दशी तक कर्म-प्रयोग समाप्त कर देना चाहिए। श्रद्धापूर्वक एक-एक लिंग की पूजा कर नित्य एक सौ आठ बार मंत्र जप करना चाहिए। फिर सप्ताह में सात या पांच दिनों में पांच लिंगों की पूजा करनी चाहिए। पूजन और जप उग्र विधि से करने का विधान है। हे प्राणवल्लभे! शांति कर्म में जप व पूजा के समय बटुक या त्र्यंबक मंत्र का शुद्ध रूप से उच्चारण करना चाहिए। भावनानुसार पूजा तथा जप किया जाना चाहिए। जाति का नाश, कुल का विघटन, भयंकर ज्वर, आपदा के समय, अत्यधिक भय लगने पर एवं अभिचार कर्मकाल में एक सौ आठ लिंगों की पूजा करनी चाहिए। हे पार्वती! शिव की (मेरी) प्रसन्नता के लिए साधकों को रुद्राध्यायी या नीलकंठ स्तोत्र का पाठ भी करना चाहिए।

लिंग स्तवन

सर्वज्ञ ज्ञानविज्ञानप्रदानैक महात्मने । नमस्ते देवदेवेश सर्वभूतहितेरत । अनंतकांति संपन्न अनंतासनसंस्थित । अनंतकांतिसंभोग परमेश नमोस्तु ते । परापरपरातीत उत्पत्तिस्थिति कारक । सर्वार्थसाधनोपाय विश्वेश्वर नमोस्तु ते । सर्वार्थनिर्मलाभोग सर्वव्याधिविनाशन । योगियोगी महायोगी योगीश्वर नमोस्तु ते । कृत्वा लिंगप्रतिष्ठां च ध्यात्वा देवं सदाशिवम् । पूजयित्वा विधानेन स्तव पाठमुदीरयेत् । लिंगस्तवं महापुण्यं यः शृणोति सदा नरः । नोत्पद्यतेच संसारे स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शृणुयाच्च सुसंस्तवम् । पापकर्ता कलेर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम् ।।

हे पार्वती! अब मैं तुम्हें स्तोत्र पाठ के बारे में बता रहा हूं। लिंग की स्तुति इस प्रकार करनी चाहिए— सभी प्रकार का ज्ञान प्रदान करने वाले हे देवों के देव! सभी जीवों का हित करने वाले आपको नमस्कार है। असीमित कांति वाले, विभिन्न आसनों (मुद्राओं) में आरूढ़ रहने वाले, परातत्त्व से भी अलग अस्तित्त्व वाले, उत्पत्ति व प्रलय के कारणभूत तथा सभी साधनों के उपाय स्वरूप जगत्पति (विश्वेश्वर) आपको नमस्कार है। सभी प्रकार का भोग करते हुए भी आप निर्लेप रहते हैं। सभी प्रकार की पीड़ाओं का नाश करने वाले, योगियों के योगी! हे महायोगी! योगीश! आपको नमस्कार है। हे पार्वती! इस प्रकार जो साधक लिंग प्रतिष्ठापित कर भगवान् शिव का (मेरा) स्मरण कर पूजन व स्तोत्र का पाठ करता है, वह सांसारिक दुःख नहीं भोगता तथा शिव का परमधाम प्राप्त करता है। इसलिए इस श्रेष्ठ स्तोत्र का पाठ और श्रवण अवश्य करना चाहिए।

अष्टमः पटलः

रुद्र कवच

भैरव उवाच—

वक्ष्यामि देवि कवचं मंगलं प्राणरक्षकम् । अहोरात्रं महादेवराक्षार्थ देवमण्डितम् ।।

भैरव (शिव) बोले—हे देवी! अब मैं तुम्हारे निमित्त शुभ एवं प्राणरक्षक रुद्र नामक कवच का वर्णन करता हूं, जो दिन-रात रक्षा करता है। यह कवच देवताओं ने भगवान् महादेव की रक्षार्थ कहा था। इस कवच का विनियोग निम्नलिखित है—

ॐ अस्य श्रीमहादेव कवचस्य वामदेव ऋषिः पंक्तिश्छन्दः सौः बीजं रुद्रो देवता सर्वार्थसाधने विनियोगः ।

इस कवच के ऋषि वामदेव, छंद पंक्ति, बीज सौः एवं देवता रुद्र हैं। इसका विनियोग सभी प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिए कहा गया है। कवच इस प्रकार है—

रुद्रो मामग्रतः पातु पृष्ठतः पातु शंकरः । कपर्दी दक्षिणे पातु वामपर्श्वे तथा हरः । शिवः शिरसि मां पातु ललाटे नीललोहितः नेत्रं मे त्र्यंबकः पातु बाहुयुग्मं महेश्वरः । हृदये च महादेव ईश्वरश्च तथोदरे । नाभौ कुक्षौ कटिस्थाने पादौ पातु महेश्वरः । सर्व रक्षतु भूतेशः सर्वगात्राणि मे हरः । पाशं शूलं च दिव्यास्त्रं खंग वज्रं तथैव च । नमस्करोमि भूतेश रक्ष मां जगदीश्वर । पापेभ्यो नरकेभ्यश्च त्राहि मां भक्तवत्सल । जन्ममृत्युजराव्याधिकामक्रोधादपि प्रभो । लोभमोहान्महादेव रक्ष मां त्रिदशेश्वर । त्वं गतिस्त्वं मतिश्चैव त्वं भूमिस्त्वं परायणः । कायेन मनसा वाचा त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे ।।

भगवान रुद्र मेरे अग्रभाग (पूर्व भाग) की, शंकर पृष्ठभाग (पिछले भाग) की, कपर्दी देव दक्षिण भाग (दाएं भाग) की, हर वामभाग (बाएं भाग) की, शिव शीश की, नील लोहित ललाट की और त्र्यंबक (तीन नेत्रों वाले) मेरे नेत्रों की रक्षा करें। इसी प्रकार महेश्वर भुजाओं की, महादेव हृदय की, ईश्वर उदर (पेट) की, महेश्वर नाभि, कुक्षि (कोख), कटि (कमर) व हाथ-पैरों की तथा भगवान् भूतेश संपूर्ण शरीर की रक्षा करें। हे भूतेश (जीवों के स्वामी)! आप पाश, शूल, दिव्यास्त्र, खंग, वज्र आदि की रक्षा करें। आपको नमस्कार है। हे भक्तप्रिय! आप पाप व नरक आदि से मेरी रक्षा करें। हे प्रभो! आप मेरी जन्म-मरण, जरा (वृद्धावस्था) की व्याधियों, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से भी रक्षा करें। हे प्रभु! गति (संसार-चक्र), मति (बुद्धि या बौद्धिक ज्ञान), भूमि (आधाररूप), आश्रय (अंतिम शरण) आदि जो कुछ भी हैं, वह सब आप ही हैं। हे देव! मन, वचन, कर्म (तीनों) से आपके प्रति मेरी निष्ठा दृढ़ हो, यही मेरी प्रार्थना है। इस कवच की फलश्रुति निम्नलिखित है—

इत्येतद्रुद्रकवचं पाठनात्पाप नाशनम् । महादेवप्रसादेन भैरवेन च कीर्तितम् । न तस्य पापं देहेषु न भयं तस्य विद्यते । प्राप्नोति सुखमारोग्यं पुत्रमायुः प्रवर्द्धनम् । पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी धनमाप्नुयात् । विद्यार्थी लभते विद्यां च मोक्षार्थी मोक्षमेव च । व्याधितो मुच्यते रोगाद्बद्धे मुच्येत बंधनात् । ब्रह्महत्यादि पापं च पठनादेव नश्यति ।।

हे देवी! यह कवच विशेष रूप से भैरव ने महादेव की कृपा प्राप्ति के लिए कहा है। इसका

पाठ करने से दुष्कृत्यों का क्षय होता है तथा शरीर स्वस्थ व सुखी रहता है। पुत्रकामी, धनकामी, विद्याकामी एवं मोक्षकामी को अभीष्ट की प्राप्ति होती है। रोगग्रस्त मनुष्य के सभी तरह के रोग नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, इस कवच का पाठ करने से ब्रह्महत्या दोष का भी निवारण हो जाता है।

नवमः पटलः

आसन व्यवस्था

एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम् । व्याघ्राजिने सर्वसिद्धिः ज्ञानसिद्धिः मृगाजिने । वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं प्रीतिवर्द्धनम् ।। कौशेयं पुष्टिदं प्रोक्तं कंबलं सर्वसिद्धिदम् । शुक्लं वा यदि वा कृष्णं विशेषाद्रक्त कंबलम् । मेषासनं तु वश्यार्थमाकृष्टौ व्याघ्रचर्म च । शांतौ मृगाजिनं शस्तं मोक्षार्थ व्याघ्रचर्म च । गोचर्म स्तंभने देवि वाजिं चोच्चाटने तथा । (विद्वेषे श्वानचर्म च) मारणे माहिषं चर्म कर्मोद्दिष्टं समाचरेत् । सर्वकामार्थदं देवि पट्टवस्त्रासनं तथा । कुशासनं कंबलं वा सर्वकर्मसु पूजितम् । दुःखदारिद्रयनाशं तु काष्ठपाषाणजासनम् ।।

शिव बोले—हे देवी! अब मैं आसन-व्यवस्था का वर्णन करता हूं। पूजाकर्म में सिद्धासन या कमलासन नेष्ट कहा गया है। बाघ की खाल पर आसीन होकर जप करने से सभी प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार हिरण की खाल पर जप करने से ज्ञान की प्राप्ति तथा शुद्ध वस्त्र के आसन पर जप करने से रोग निवृत्ति होती है। बेंत के बने आसन पर जप करने से प्रेमाभिवृद्धि, कुशासन पर जप करने से पुष्टि और कंबलासन पर जप करने से हर प्रकार की सिद्धि हस्तगत होती है।

हे देवी! श्वेत व काले कंबलों के आसनों की अपेक्षा लाल कंबल का आसन सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। अब षट्कर्मों में आसन प्रयोग बताता हूं। वशीकरण में मेष (मेढ़े) की खाल का, आकर्षण कर्म में बाघ की खाल का, स्तंभन कर्म में गाय की खाल का, उच्चाटन कर्म में घोड़े की खाल का, विद्वेषण कर्म में कुत्ते की खाल का तथा मारणादि कर्म में भैंस (महिषी) की खाल का उपयोग करना चाहिए। हे पार्वती! सभी प्रकार की कामनापूर्ति के लिए रेशमी वस्त्र से बना आसन सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। किसी भी प्रकार की पूजा में कुश या कंबल के आसन का उपयोग किया जा सकता है। लकड़ी (काष्ठ), पत्थर का आसन दुःख-दरिद्रता प्रदान करता है। अतः इन आसनों का उपयोग पूजा कर्म में नहीं किया जाना चाहिए।

होमघटादि स्थापन

नित्य नैमित्तिकं कार्य स्थंडिलेवा समाचरेत् । हस्तमंत्रेण तत्कुर्याद् बालुकाभिः सुशोभनम् । तोयपूर्णान्घटान्पंच स्थापयेत्परमेश्वरि । एकेन मंत्रयुग्मेन स्थापिताः स्युः सपल्लवैः । अशक्ती च महादेवि एकैकेन च वाससा । कदाचिदपि चैकेन सर्वान्नाच्छादयेच्छिवे । अनाच्छादित तोयानि स्थापयित्वा व्रजत्यधः ।।

शिवजी बोले—हे प्राणवल्लभे! अब होम-घट आदि की स्थापना का वर्णन कर रहा हूं।

एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे देवी! नित्यकर्म से निवृत्त होकर साधकों को एक हाथ जितनी दूरी में बालू मिट्टी बिछाकर उस पर जलपूरित पांच कलश (घट) प्रतिष्ठापित करने चाहिए। फिर उन कलशों पर पंच पल्लव (पांच विभिन्न वृक्षों के पत्तों) को एक या दो मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित कर रखना चाहिए। तदोपरांत कलशों को अलग-अलग वस्त्रों से आवेष्टित करना चाहिए। पूजा कार्य में जल को ढंकना आवश्यक होता है। क्योंकि ऐसा न करने से यजमान या घट स्थापक नीच योनि में जाता है। यदि घट आच्छादन के लिए अलग-अलग वस्त्र उपलब्ध न हों तो एक ही वस्त्र से भी कलशों को ढका जा सकता है।

ततः स्थां स्थीं इति श्रीमिति मंत्रेण घटं स्थिरीकृत्य । क्लीं इति घटप्रोक्षणम् । क्रामिति घटाभिमंत्रणम् । ह्रीं इत्यारोपणम् । ह्रीं जलेन पूरणम् । ततः कृतांजलिः पठेत् ।।

इतना करने के बाद 'स्थां', 'स्थीं', 'श्रीं' आदि बीजमंत्रों से कलश को स्थिर करके (मिट्टी पर रखकर) 'क्लीं' बीजमंत्र से कलश को शुद्ध करना चाहिए। तदोपरांत 'क्रां' बीजमंत्र से कलश को अभिमंत्रित कर 'ह्रीं' बीजमंत्र से प्रतिष्ठापित करें। फिर 'ह्रीं' मंत्र से कलश को जलपूरित कर करबद्धतापूर्वक प्रार्थना मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए।

गंगाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च । सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः । ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः । सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ।।

ततः श्रीमिति पल्लवम्, हुमिति फलम्, रमिति सिंदूरम्, बमिति पुष्पम्, मूलेन दुर्वाम्, ॐ ॐ ॐ इत्यभ्युक्षणम्, ॐ फट् स्वाहा इति कुशेन ताडनम् । शांत्यर्थं स्नापयेत्कृंभम् ।। पुण्याहं वाचयित्वा कर्म कुर्यात् दिग्बंधनादि गणेशग्रहदिक्पालादीन् प्रतिकुंडे पूजयेत् । स्थंडिले पूजयेल्लिंगं सर्वापत्ति विनाशनम् । कुंभे चापि पूजयेत् । ततः अग्निमानीय संस्कृत्य होमं कुर्यात् ।।

हे गंगादि नदियो, समुद्रो, तालाबो, झरनो, तीनों लोकों में स्थित जलाशयो! आप सभी इस पवित्र कलश में वास कर मुझे कृतार्थ करें। फिर 'श्रीं' बीजमंत्र का उच्चारण कर पंचपल्लव कलश पर रखें और 'हूं' बीजमंत्र का उच्चारण कर कलश के भीतर कोई भी ऋतुफल रख दें। फिर 'रं' बीजमंत्र से कलश पर सिंदूर का तिलक करें और 'वं' बीजमंत्र से पुष्प अर्पित करें।

अब मूलमंत्र बोलकर दूर्वा अर्पित करें। तीन बार प्रणव का उच्चारण कर अभ्युक्षण करें। 'ॐ फट्' बीजमंत्र बोलकर कुश द्वारा कलश को जरा-सा हिलाकर शांति कर्म हेतु उसे स्नान कराएं। फिर शुभ मंत्रों का उच्चारण कर दिशा बंधन करें। इसके पश्चात् गणेश, ग्रह एवं दिक्पालों (दिशा रक्षकों) की कृपाप्राप्ति के निमित्त कुंड या वेदी की पूजा कर स्थंडिल (अनावृत्त भूमि जिस पर मिट्टी बिछी हो) पर लिंग की पूजा करने से सभी प्रकार की बाधाओं से मुक्ति मिलती है। कलश का भी पूजन कर अग्नि को तांबे के पात्र में लाकर शुद्धिपूर्वक होम करना चाहिए।

महाविपत्तौ जुहुयात् जवां कृष्णपराजिताम् । द्रोणं वा करवीरं वा मनोऽभीष्टफलं लभेत् । करवीरैः श्वेतरक्तै रक्तचंदन मिश्रितैः द्रौणेश्च केतकीपुष्पैर्होमो रोगं विमोचयेत् । चंपकैः श्वेतपद्मैश्च कोकनदं च बंधुकम् । बिल्वपत्रं कुरुवकं मुनिपुष्पं च केसरम् । हुत्वा यदि महादेवि अवश्यं पुत्रवान् भवेत् । रक्तोत्पलं बिल्वपत्रं कांचनं रक्तवर्णकम् । शांतिमंत्रत्रिकं चापि शतसंख्याक्रमेण तु जुहुयात्तु महेशानि सर्वसिद्धिर्भवेत्तदा ।।

हे पार्वती! किस पुष्प से, किस विपदा के निवारणार्थ होम करना चाहिए, वह भी सुनो। घोर

विपदा काल में जवाकुसुम एवं विष्णुक्रांता पुष्प से तथा मनोकामना सिद्धि हेतु द्रोण व कनेर पुष्प (जो श्वेत या रक्त चंदन से युक्त हो) से होम करना चाहिए। इसी प्रकार रोग दूर करने हेतु द्रोण और केतकी पुष्पों से, पुत्र-कामना हेतु चंपा, श्वेत कमल, कोकनद, कंदूरी पुष्प तथा बिल्वपत्र, कुरुबक, अगस्त्य वृक्ष के पुष्प या केसर से होम करें। सभी प्रकार की मनोकामना के लिए लाल कमल पुष्प, बिल्वपत्र एवं धतूरे के पुष्पादि से होम करना चाहिए। हे महेशानि! एक ही शांतिमंत्र से एक सौ आठ बार होम करने से सभी सिद्धियां हस्तगत हो जाती हैं।

दशमः पटलः

शाक्ताभिषेक

शाक्ताभिषेको बंध्यामृतवत्सारोगिणीनां शांतिकरः । धनकीर्त्यायुर्वृद्धि सौभाग्यजननः सर्वाशापूर्णो मंत्रदोषनिवारणोऽभिचारहरो ग्रहदोषनाशनः सर्वसिद्धिप्रदोऽभिषेकः ।।

हे पार्वती! अब मैं शाक्ताभिषेक का वर्णन करता हूं—इस शाक्ताभिषेक से बांझ, मृतवत्सा (जिसके गर्भ में ही संतान नष्ट हो जाए) एवं रोगिणी स्त्रियों को लाभ होता है। यह धन, यश, आयुवर्द्धक, आशापूरक तथा मंत्र को दोषरहित करने वाला है। इसके द्वारा अभिचार एवं ग्रह प्रकोप दूर होकर सभी प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

नयन रंजन

दीपं कृत्वा ताम्रपात्रे कज्जलं पातयेदथ । गवां घृतेन चालोड्य चक्षुषी अथ रंजयेत् । पूर्वे च यादृशं दृष्टं तादृशं च प्रपश्यति ।।

तांबे के दीपक में दीप प्रज्वलित कर तांबे के ही पात्र में काजल बनाकर उसे गाय के घी में मिलाकर नेत्रों में लगाने से नेत्र रोगी को पहले की ही भांति सब कुछ स्पष्ट दीखने लगता है।

रक्तचंदनसंयोगान् मधुना सहरौदुके । कियदृष्टमंजनं च तिमिरं हंति सुन्दरि ।।

हे देवी! काजल बनाने की एक अन्य विधि यह है—रक्त चंदन व शहद का मिश्रण तैयार कर धूप में सुखाने के बाद नेत्रों में लगाने से रतौंधी दूर हो जाती है।

पुनर्नवाद्यृतं सद्यश्चक्षुस्तेजः करं भवेत् ।

पुनर्नवा सिद्धित (तपाया हुआ) घी नेत्रों की कांति बढ़ाता है।

ज्वर हरण

अपामार्गस्य मूलं च कन्यकासूबंधने । स्वात्यां च ज्वरं हंति सुदारुणम् ।।

अपामार्ग की जड़ को कुंआरी कन्या के हाथ से काते गए धागे में बांधकर स्वाति नक्षत्र काल में शीश पर धारण करने से ज्वर दूर होता है।

सर्वज्वर निवारण

रक्तबाट्या मूलमर्कवारे कदलीसूत्रैशय्यायां दापयेत् सर्वज्वरं तापज्वरं हरेत् ।।

लाल बाड़ी (एक प्रकार की बूटी) की जड़ को मंगलवार के दिन केले के तंतु (सूत्र) में लपेटकर कर शय्या के पाये में बांधने से सभी प्रकार के ज्वर दूर हो जाते हैं।

उदर रोग प्रशमन

नागेश्वरमूलं मधुना सह पानादुदररोग शांतिः ।

नागेश्वर की जड़ को पीसकर शहद में मिलाकर सेवन करने वाले को उदर संबंधी कोई रोग नहीं होता।

तृष्णानाश

रक्तचंदनं वर्षयित्वा तोलकं जलसंमिश्रं वामहस्ते गृहीत्वा मनुमष्टोत्तरशतं संज्यप्य पिबेत् । सप्ताहात्तस्य तृष्णानाशो भविष्यति ।

रक्त चंदन को जल में घिसकर उसमें एक तोला जल डालकर बाएं हाथ में ग्रहण कर एक सौ आठ बार निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण कर सेवन करने से सात दिन तक तृष्णा (प्यास) नहीं लगती—

शब्दबीजद्वयं भद्रे नाशय द्वितयं वदेत् । तृष्णेति पदमुच्चार्य ततः स्वाहा मनुर्मतः । अनेन मनुना देवि तृष्णा नाशो भविष्यति ।

दो शब्दबीज, दो बार नाशय पद, तृष्णा पद एवं स्वाहा पद को मिलाकर मंत्रोद्धार कर इस मंत्र से जल को अभिमंत्रित कर उसका सेवन करने से तृष्णा का क्षय होता है।

सर्वशांतिकर महास्वस्त्ययन

अथ वक्ष्ये महेशानी महास्वस्त्ययनं शृणु । सर्वसिद्धिकरं पुण्यं सर्वपाप विनाशनम् । सर्वोपद्रवशमनं सर्वारिष्ट विनाशनम् । महाव्याधि प्रशमनमपस्मार विनाशनम् । योगिनीभूतवेतालाः प्रेतकूष्मांडपन्नगाः । तत्र स्थाने न तिष्ठंति डाकिन्याद्या विशेषतः ।।

हे महेशानि (पार्वती)! अब मैं स्वस्त्ययन बताता हूं जो विपदाएं दूर कर शांति प्रदान करता है। इसका पाठ करने से सभी प्रकार की सिद्धियां भी मिलती हैं। यह पाप, आपदा व अनिष्ट दूर करने वाला अति पवित्र है। इसका पाठ करने से भयंकर रोग ठीक होते हैं। इसके उच्चारण मात्र से ही अपस्मार रोग दूर हो जाता है। इसके अलावा जिस स्थान पर इस महास्वस्त्ययन का पाठ किया जाता है, उस स्थान से भूत-प्रेत, वेताल, कूष्मांड, पन्नग (सर्प) आदि सदैव दूर रहते हैं। विशेषकर डाकिनी तो उस स्थान पर स्थिर रह ही नहीं सकती।

कृत्यामभ्यर्च्चयेद्देवि यथाविधि पुरः सरम् । षोडसारं लिखेत्पद्मं योनियुग्मं सबिन्दुकम् । तन्मध्येऽष्टदलं लिख्य यकारादीन्यसेत्क्रमात् । तन्यध्ये चैव षट्कोणं लिखेन् मूलमनुस्मरन् । चन्द्रबिंबं लिखेन्मध्ये असाध्ये पार्थिवं शिवम् । तस्य मध्ये न्यसेत् कुंभं गले स्रग्दाम भूषितम् । तस्य मध्ये न्यसेत् कृत्यां सर्वलक्षण—संयुताम् । पूजयेच्च यथान्यासं पायसंतु निवेदयेत् । परितोष्य घटै न्यस्य असितांगादि भैरवान् । गंधपुष्पादिनाभ्यर्च्च तद्बाह्ये क्षेत्रपालकान् । लोकपालं यजेद्देवि तदग्रे होममाचरेत् । जुहुयादाज्यापामार्गेण

रक्षतांभिदमर्षणौ । दूर्वाग्रखदिराश्वत्थं प्रत्येकं तु शतादिकम् । कुंडे वा स्थंडिले वापि होमकर्म समाचरेत् । तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लक्ष्मीं ध्यायेद्यथाविधि । कुंडमध्ये न्यसेद्देवीं दक्षिणे च श्रियं स्मरेत् । वामपार्श्वे स्मरेद्देवीं हृल्लेखां परमेश्वरीम् । तस्यैव वामपार्श्वे तु पूजयेद्दश नायकम् । अयुतं मूलमंत्रं च जपेन्मृत्युविनाशनम् । अयुतं भ्रूणहत्यायां जपेत् परिमाणं विदुः । महाव्याधि प्रशमनं तावज्जप्त्वाभिषेकतः । एवं यः कुरुते मर्त्यः पुण्यां गतिमवाप्नुयात् । तस्यावश्यं व विद्येत व्याधिभ्योऽपि भयं नहि ।

शिवजी बोले—हे उमा! इस महास्वस्त्ययन का पाठ करने से पहले विधिपूर्वक कृत्या देवी की पूजा करनी चाहिए। पूजा विधि यह है कि सोलह दलयुक्त कमल का निर्माण कर उसके मध्य भाग में बिंदु सहित योनियुग्म त्रिकोण अंकित करें। फिर उसके मध्य में आठ दल का कमल और यकारादि अंकित कर मध्य में षट्कोणाकृति यंत्र बनाकर मंत्र का ध्यान करना चाहिए। मध्य भाग में चंद्र बिंब (चंद्राकृति) बनाएं। फिर अशक्ति में पार्थिव शिवलिंग और मध्य भाग में कलश प्रतिष्ठापित कर कलश के ग्रीवा भाग पर पुष्पमाला आवेष्टित करें। उस कलश पर कृत्या देवी को स्थापित कर उनकी न्यास पूजा करके खीर (पायस) का नैवेद्य अर्पित करना चाहिए। अब कलश के ऊपर न्यासपूर्वक शुक्लवर्ण रूप भैरव का ध्यान करें तथा गंध व पुष्प से बाहरी भाग में क्षेत्रपाल की पूजा करें। अगले भाग में लोकपालों की पूजा कर होम करना चाहिए।

तत्पश्चात् दाएं भाग में लक्ष्मीजी का स्मरण कर कुंड के मध्य भाग में देवी (कृत्या देवी) को प्रतिष्ठापित कर दाएं भाग में श्री (लक्ष्मी) का ध्यान करना चाहिए। इसके विपरीत हृदय गुह्य में आरूढ़ देवी (कृत्या देवी) का बाएं भाग में स्मरण करना चाहिए। फिर बाएं भाग में दस नायकों की भी पूजा करके मृत्युदोष, भ्रूणहत्या दोष, महाव्याधि निवृत्ति आदि प्रत्येक कार्य के निमित्त दस-दस हजार बार मंत्र जप करने के बाद अभिषेक करना चाहिए। ऐसा करने वाले की सद्‌गति होती है। उसे किसी भी प्रकार की व्याधि का भय नहीं रहता।

एकादशः पटलः

कुमार्या वेशन

ईश्वरोवाच—

अथ वक्ष्यामि संक्षेपात् कुमार्या वेशनं शृणु । सुगुप्तेविजने देशे गोमयेनोपलेपिते । आचार्यः प्रयतो भूत्वा सुस्नातो विजितेंद्रियः । नवकुंभान् समादाय शुद्धकुंभेन पूरयेत् । नवं शरावमानीय कपिलाघृत पूरितम् । कुंभोपरि समारोप्ये दीपं प्रज्वालयेत्ततः । शताष्टमंत्र जापेन कुमारा वा कुमारिकाः । अतीता नागतंचैव वर्तमानं च यद् भवेत । शुभाशुभानि सर्वाणि पश्यंति नात्र संशयः । सम्यग्ध्यात्वा गणेशानं गते यामे जपेन्निशि । शुभाशुभानि कर्माणि कथयंति न संशयः । कन्यकार्थी शुचिर्भूत्वा मंत्रराजं गणेशितुः । जप्त्वा दशसहस्राणि भानुरक्ता श्वभावजैः । पुष्पैर्दशांश हवनात् तां कन्यां लभते ध्रुवम् ।।

शिव बोले—हे देवी! अब मैं लघुरूप में तुम्हें कुमारी वेशन (आगमन) विधि बताता हूं। अतिगुप्त स्नानघर (जहां कोई भी न पहुंच सके) को गोबर से लेपकर अनुष्ठानकर्ता या आचार्य स्नानादि करके कोरे कलश को पवित्र जल से भरकर स्थापित करें। फिर उन कलशों पर

सरावियां (सकोरे) रखकर उनमें कपिला गाय के घी के दीप प्रज्वलित कर मंत्र का एक सौ आठ बार जप करें। यदि मंत्र जप करते समय कुमारी-कुमार (लड़का-लड़की) दोनों या दोनों में से कोई एक आ पहुंचे तो आचार्य या यजमान को चाहिए कि वे पहले उनकी (कुमार या कुमारी की) पूजा करें। उस पूजा के फलस्वरूप अनुष्ठानकर्ता में त्रिकालद्रष्टा बनने की क्षमता आ जाती है। वह तीनों कालों के शुभ-अशुभ का अवलोकन कर लेता है। यह सत्य है।

तदोपरांत अनुष्ठानकर्ता गणेश जी स्मरण करते हुए रात्रि एक पहर तक जप करें। ऐसा करने पर देवता स्वयं उसके सम्मुख उपस्थित होकर शुभ-अशुभ जो भी, जैसी भी बात होगी, अनुष्ठानकर्ता को बता देंगे। देवता प्रहार नहीं करते। अतः अनुष्ठानकर्ता को चाहिए कि वे देवता से डरें नहीं। यदि कोई कन्या की कामना से अनुष्ठान करता है तो उसे चाहिए कि वह पवित्रतापूर्वक गणेशमंत्र का जप करे। जपोपरांत सूर्यमुखी पुष्पों द्वारा जप का दशांश होम करने से उसकी मनोकामना निश्चय ही पूरी होती है।

काम्य-कर्माणि

वक्ष्यामि काम्यकर्माणि साधकानां हिताय वै ।
शास्त्रोक्तेनैव मंत्रेण संक्षेपान्न तु विस्तरात् ।।

हे देवी! अब मैं साधकों के हित के लिए काम्य कर्मों को संक्षेप में बता रहा हूं—काम्य कर्मों को शास्त्रोक्त विधि एवं मंत्र से ही सूक्ष्म रूप से करना चाहिए न कि विस्तृत रूप से।

दिव्य ज्ञानादि लाभ

स्वहृत्पद्मे गणेशानं कुंदेंदु धवलप्रभम् ।
शुक्लालंकारसंपन्नं भावयेद्यो निरंतरम् ।।
भारती तस्य वक्त्राब्जे शास्त्रज्ञा बहुसुन्दरी ।
नित्यं प्रकाशते सत्यं दिव्यज्ञान प्रदायिनी ।।

हे देवी! जो मनुष्य अपने हृदय में शुभ्र ज्योति प्रभा वाले तथा श्वेताभूषणों से अलंकृत श्रीगणेश का स्मरण करता है, उसकी जिह्वा पर मनोहारी व दिव्यज्ञान दात्री मां शारदा सदैव विराजमान रहती हैं।

वशीकरण

न विनश्येद् गणेशानं सिंदूर सदृश प्रथम् ।
पाशांकुशधरं ध्यात्वा यो जपेन्मंत्रवित्तमः ।
अनंगवशसंपन्ना तमभ्येति वरांगना ।।

जो मनुष्य सिंदूर वर्णाभा वाले, पाश-अंकुशधारी भगवान् श्रीगणेशजी का ध्यानपूर्वक मंत्र जप करता है, उसकी सेवा के लिए अत्यधिक रमणीय सुंदरियां सदैव उपस्थित रहती हैं।

प्रकारांतम् पाशांकुशवराभीति हिमकुंदेंदुमल्लिभम् ।
दिग्वस्त्रं चन्द्रवर्णाभं स्फुरन्माणिक्यमंडलम् ।
यः स्मरेतस्य वशगा ह्यवश्याऽपि वरांगना ।।

अथवा पाश, अंकुश, वर, अभय आदि धारण करने वाले, कुंद पुष्प के समान शोभा वाले, चंद्रमा के समान ज्योत्स्ना वाले, स्फुरंमणियों के आभरण से मंडित तथा दिगंबर भगवान् शिव का स्मरण करने वाले मनुष्य के मन को प्रिय लगने वाली कामिनियां सहज ही वशीभूत हो जाती हैं।

मुख स्तम्भन

विवादेषु गणेशानं ज्वलदग्निसमप्रभम् ।
प्रतिवादिमुखे ध्यायन्प्रजपेन्मनसा मनुम् ।
तन्मुखं स्तंभयेदाशु वादी दीनोऽपि नान्यथा ।।

यदि अग्निवत कांतिमयी गणेशजी का स्मरण कर विवाद के समय प्रतिवादी के सम्मुख मंत्र का जप किया जाए तो प्रतिपक्षी निरुत्तर होकर दीन जैसा व्यवहार करने लगता है अर्थात् उसका मुख स्तंभित हो जाता है।

सर्वरोग हरण

अंगुष्ठमानं हृत्यपद्मे शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
चिंतयित्वा गणेशानं चिदंबरसुधारसम् ।।
अभिषिच्य सुरश्रेष्ठं सततं धरणीतले ।
सर्वरोग विनिर्मुक्तः चिरकालं स जीवति ।।

जो मनुष्य शुद्ध स्फटिक के समान दीप्तिमान, चेतनरूप, अमृत से परिपूर्ण, अंगूठे जितनी देह वाले गणेश का अपने हृदय में स्मरण करता हुआ पृथ्वीतल (मूलाधार) में अभिषेक करता है, वह रोगमुक्त होकर चिरायु व सुखी होता है।

विष हरण

शुक्लवर्णं गणेशानं दशबाहूं मदोत्कटम् ।
शुक्लांबर धरं सौम्यं चिच्छशांकामृतप्लुतम् ।
भावयेद् धृदयाम्भोजे नित्यं निर्मलमानसः ।
मंत्री गरुडवत् सद्यस्त्रिविधं हरते विषम् ।।

श्वेत वर्ण वाले, दस भुजाधारी, जिनके गंडस्थल से मद बह रहा है, श्वेत वस्त्रधारी, शांत स्वरूप एवं चंद्रामृत प्लुत गणेशजी का जो मनुष्य हृदय कमल में स्मरण करता है, उस पर किसी भी प्रकार का विष प्रभाव नहीं डालता।

नानाविध कामनापूर्ति

धनार्थी मधुना नित्यं वशार्थी पायसैर्हुनेत् ।
घृतेन लक्ष्मीसंप्राप्त्यै हुनेत् शर्करया तथा ।।
आयुषे चार्थसंपत्तौ दध्ना च जुहुयात्तथा ।
अन्नेन चान्नसंपत्त्यै द्रव्याप्त्यै तिलतंडुलैः ।।
लवणैरप्यनावृष्ट्यै वृष्टिकामस्तु बिल्वकैः ।

सौभाग्यार्थी तथा लाजैः कुसुमैश्चापि सोदनैः ।।

हे पार्वती! अब मैं तुम्हें विधान बताता हूं अर्थात् किस द्रव्य से होम करने पर किस वस्तु की सिद्धि होती है। शहद से धन की, खीर से वशीकरण की, शक्कर से लक्ष्मी की, दही से आयु व अर्थ (संपत्ति) की, अन्न से अन्न की, तिल एवं तंडुल (चावल या अक्षत) से द्रव्य की, लवण (नमक) से अनावृष्टि की, बिल्व से वृष्टि (वर्षा) की तथा लाजा या भात (ओदन) मिले पुष्पों की होम में आहुति देने से सौभाग्य की वृद्धि होती है।

विविध वशीकरण

वशिने जुहुयात् पद्मै राजानं वशमानयेत् ।
अश्वत्थोदुंबरप्लाक्षन्यग्रोधसमिधो हुनेत् ।
विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः सद्यो वश्या भवंति वै ।।

वशीकरण कार्य के लिए कमलदल से होम में आहुति देनी चाहिए। राजा को वशीभूत करने के लिए भी ऐसी ही आहुति देनी चाहिए। अश्वत्थ, उदुम्बर (गूलर), प्लक्ष या न्यग्रोध की समिधा बनाकर होमाहुति देने से चारों जातियां (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) वशीभूत होती हैं।

स्त्री वशीकरण

स्त्रीणां प्रतिकृतिं कृत्वा पिष्टेन प्रतिवासरम् ।
साज्याहुति त्रयंतस्य वशमायांति नान्यथा ।।
वा मंत्रराजं जपित्वा तु यथाविधि महोदरम् ।
दशांशे जुहुयान्मंत्री राजिकालवणेन च ।।
तदभस्म वामहस्तेन गृहीत्वा ताडयेत स्त्रियम् ।
समागच्छति सा नारी मदनानलविह्वला ।।

स्त्री का पुतला बनाकर नित्य तीन बार घी की आहुति देने से स्त्री वशीभूत होती है अथवा गणेशजी के महामंत्र का जप कर राई व नमक की दशांश आहुति देकर तैयार भस्म बाएं हाथ में लेकर जिस स्त्री का वशीकरण करना हो, उस पर डाल देने से वह स्त्री साधक के वश में हो जाती है।

रिपु स्तम्भन

तद्वच्च प्रजपेदेनं पीतपुष्पैश्च मंत्रवित् ।
स्तंभयेद्रिपुसैन्यं च सामात्यः बलवाहनम् ।।
प्रतिवादी भवेन्मूको मंत्रस्यास्य प्रभावतः ।
स्तंभयेत् पंचद्रव्याणि नात्र कार्या विचारणा ।।

रिपु (शत्रु) का स्तंभन करने के लिए गणेशजी के महामंत्र का जप करके पीले पुष्पों से होमाहुति दें। ऐसा करने से प्रतिपक्षी (शत्रु) सेना स्तंभित होती है। इससे प्रतिवादी का मुखस्तंभन भी होता है। इतना ही नहीं, पंचद्रव्यों का भी इस रीति से स्तंभन हो जाता है। इसमें संदेह नहीं है।

शत्रु उच्चाटन

बिभीतक समिद्भिस्तु नियतं जुहुयात्तथा ।
सम्यगुच्चाटयेच्छत्रून् स्वस्थानात्तुविशेषतः ।।
मेरुमंडलतुल्यो वा स देवोद्विग्नमानसः ।
ग्रामयुद्धे पुरे वापि इमं स्तुत्वा तु होमयेत् ।
उच्चाटयति वेगेन मानुषेषु च का कथा ।।

बहेड़े-वृक्ष की लकड़ी से समिधा बनाकर होम करने से शत्रु का उच्चाटन होता है। इससे मेरु पर्वत के समान अडिग देव का भी मन चलायमान हो जाता है। ग्राम या पुरयुद्ध के समय महामंत्र का जप कर दशांश होम करने से जब जड़ पदार्थों का भी उच्चाटन हो जाता है तो फिर सामान्य मनुष्य का क्या अस्तित्त्व है।

मारण

मानुषास्थि समानीय सम्यगष्टांगुलीमितम् ।
मृतकेशैस्तु संवेष्ट्य सहस्राष्टाभि मंत्रितम् ।।
कुलिकोदयवेलायां शत्रुद्वारे खनेद् भुवि ।
सप्ताहान्मरणं तस्य भविष्यति न संशयः ।।

आठ अंगुल माप की मानव अस्थि (हड्डी) को पुरुष शव के बालों से बांधकर एक हजार आठ बार मंत्र द्वारा अभिमंत्रित कर कुलिक योग के समय शत्रु के दरवाजे पर गड्ढा खोदकर गाड़ देने से शत्रु पक्ष के किसी भी प्राणी की सात दिनों के भीतर ही मृत्यु हो जाती है। यह अमोघ तंत्र योग है।

गणेश यंत्र

अतः परं यंत्रराजं शृणु देवि गणेशितुः । सुसमे भूतले शुद्धे गजाद्यैः सुपरिष्कृते । कामक्रोधविनिर्मुक्तः पूर्ववन्याससंयुतः । संपूज्य देवदेवशं गणेशं शंकरात्मजम् । भूर्जे क्षौमे तस्योपरि यंत्रराजं समुद्धरेत् । कस्तूरीरोचनायंत्र काश्मीरं चंदनं रसम् । गोशकृद्रससंयुक्तैर्मातंगमदमिश्रितैः । सर्वैश्च सुसमैरेभिः प्राणमापूर्य संलिखेत् । लेखन्या हेमशूच्या वा जातिकाष्ठेन दूर्वया । षट्त्रिंशत्कोणमष्टारं द्वादशारं ततः परम् । कवर्गादीनि गायत्र्या वर्णान्यपि लिखेद् बहिः । महाभूमंडलं कुर्याद्जाष्टक विभूषितम् । तद्बाह्यं वारुणं कूर्ममंडलं च नतं शुभम् । कर्णिकायां लिखेन्मत्री दक्षौ प्रणव वेष्टितौ । अंगानि चाष्टकोणेषु लक्ष्मीमनुदलं लिखेत् । द्वादशारे लिखेच्छक्तिं विना नपुंसक स्वरम् । स्वरपत्रं कलापत्रे ततश्चाष्टदलांबुजे । कादिमंताक्षरंचापि सर्व पूर्वादितो लिखेत् । पुनः पार्श्वककोणेषु वादि सांतं समालिखेत् । एतन्मंत्रं समाख्यातं न देयं यस्य कस्यचित् । अणिमाद्यष्टमंत्रेण चाष्टबाहुं प्रपूजयेत् ।।

शिवजी बोले—हे पार्वती! अब मैं तुम्हें गणेश यंत्र के बारे में बता रहा हूं। ध्यान देकर सुनो। शुभ मुहूर्त में ऐसे भू-भाग को जहां गज (हाथी) रहते हैं, भली प्रकार पवित्र करके काम-क्रोध आदि का परित्याग कर न्यासपूर्वक शिव-पुत्र गणेश की पूजा करनी चाहिए। फिर भोजपत्र या

रेशमी वस्त्र पर कस्तूरी, गोरोचन, केसर, रक्त चंदन, हाथी का मद आदि को मिलाकर गणेश यंत्र बनाएं। फिर उसमें स्वर्ण, रजत अथवा जाती नामक लकड़ी या दूब द्वारा छत्तीस कोण, आठ अंश (चक्र या दल) बाहर की ओर तथा बारह अरा (चक्र दल) भीतर की ओर खींचें। बाहर वाले भाग में गायत्री के 'क' वर्गादि को अंकित करें और आठ दल या चक्र वाले भाग को मंडित करें।

इस मंडित भू-भाग में वरुणदेव का कूर्ममंडल अंकित करें। फिर साधक कमल दल कर्णिका में 'ह' कार एवं 'क्ष' कार वर्ण लिखें। आठ कोणों में अंग मंत्र व दलों में लक्ष्मी मंत्र अंकित करें। बारह अरों (चक्रों या दलों) में नपुंसक स्वर के बिना शक्तिबीज मंत्र अंकित करें। अब अष्टदल युक्त कमल में ककारादि से क्षकार तक वर्णों को क्रम से लिखें। तत्पश्चात् कोणों में वकार से सकार तक वर्ण अंकित करें। इस तरह तैयार यंत्रराज हर किसी को नहीं बताना चाहिए। इसके पश्चात् अणिमादि सिद्धियों के जो आठ मंत्र हैं, उनसे आठ भुजाओं की पूजा करनी चाहिए। अणिमादि आठ सिद्धियों के मंत्र निम्नलिखित हैं।

अणिमादि मंत्र

अं अणिमायै नमः स्वाहा । लं लक्ष्म्यै नमः । व्यं व्यात्प्यै । प्रं प्राकाम्यायै । मं महिमायै । ईं ईशित्वायै । वं वशित्वायै । कं कामावशायित्वायै नमः स्वाहाः ।।

एवं संपूज्य विधिवन्मंत्री मुनिगणान्यजेत् । भोजयित्वा विधानेन नानामिष्टफलादिभिः । दिव्यागंधयुतैः पुष्पैर्दिव्यगंधप्रलेपनैः । मूषिकं पूजयामास नानामिष्टफलादिभिः । ॐ समूषिकाय गणाधिपवाहनाय धर्मराजाय स्वाहा । इत्यनेनैवमंत्रेण मूषिकं पूजयेत्ततः एकदंताय विघ्नहे वक्रतुंडाय धीमहि तन्नो दंतिः प्रचोदयात् ।।

अब अनुष्ठानकर्ता या साधक को चाहिए कि वे मुनि या आचार्यों का पूजन करें। तदोपरांत मिष्टान्न व फलादि का ब्राह्मणों को भोजन कराएं। इतना कार्य संपन्न करने के पश्चात् दिव्य गंध, पुष्प, प्रलेपनादि से गणेशवाहन मूषक की पूजाकर उसे भी मिष्टान्न एवं फलादि से तृप्त करें। मूषकराज की पूजा के समय **ॐ समूषकाय गणाधिपवाहनाय धर्मराजाय स्वाहा** का उच्चारण करना चाहिए। इसके अलावा मूषक गायत्री मंत्र **एकदंताय विद्महे वक्रतुंडाय धीमहि तन्नो दंतिः प्रचोदयात्** का भी जप करना चाहिए।

द्वादशः पटलः

वशीकरण विद्या

पलार्द्धस्वर्णेन रजतेन वा साध्यस्य प्रतिमां कृत्वा सार्धहस्तं गर्तं कृत्वा हरितालहरिद्राचूर्णकं पलार्द्धं तत्र निःक्षिप्य रक्तसाने तत्रोपविश्च चतुर्दिक्षु पताकां निवेश्य तिलपूर्णघटमधः कृत्वा संस्थाप्य प्राणप्रतिष्ठा कृत्वा पूर्वास्यः प्रवालमालया दशसहस्रजपेन प्रयोगार्हो भवेत् ।।

हे पार्वती! अब मैं वशीकरण विद्या का प्रयोग बता रहा हूं। साधक जिसका भी वशीकरण करना चाहते हों, उसका आधा पल माप का स्वर्ण या रजत का पुतला बनाकर एक हाथ गहरे

गड्ढे में दबा दें। फिर उस पर पिसी हल्दी व हरताल का चूर्ण बुरक दें। अब साधक लाल रंग के आसन पर आसीन होकर चहुं ओर झंडियां फहराकर तिल से भरे कलश या कुंभ को जाग्रत कर स्थापित कर दें। फिर कलश पर मूंगे की माला लपेटकर पूर्व दिशा की तरफ मुंह करके दस हजार बार या तब तक जप करें, जब तक कि मंत्र सिद्ध न हो जाए। मंत्र इस प्रकार है—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य मायाबीजं द्वितीयकम् । कात्वं त्वल्लाकिनीयुक्तं वामकर्णेंदुभूषितम् । ततो मत्तुपदं ब्रूयाच्चामुंडे तदनंतरम् । साध्यनाम ततो न्यस्य वशमानय तत्परम् । वह्निजायावधिर्मंत्रं जपेद्दशसहस्रकम् । अथान्यत् चामुंडे मोहय मोहय अमुकं वशमानय स्वाहा । प्रातः स्नात्वा हविष्याशी जितेंद्रियः शुचिर्भूत्वा । प्रातःकालमारभ्य मध्यन्दिनावधि जपसमाप्तेर्दशांशआदिक्रमेण होमादींश्च कारयेत् । जातीपुष्पैर्होमेन वशयेन्नात्र संशयः । कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां शमनोपमः । यावज्जीवनपर्यंतं स्मरणं च प्रजायते ।।

साधक पहले प्रणव (ॐ) का जप करें, फिर माया बीज का और तीसरी बार **कात्वं त्वल्लाकिनीयुक्तं वामकर्णेंदुभूषितम्** का उच्चारण करें। फिर **मत्तुपदं** बोलकर **चामुंडे** का उच्चारण करें। तत्पश्चात् जिसका वशीकरण करना हो, उस व्यक्ति का नाम लेकर **वशमानय स्वाहा** कहें।

इस प्रकार मंत्र का दस हजार बार जप करना चाहिए। दूसरी विधि यह है कि **चामुंडे मोहय मोहय अमुकं वशमानय स्वाहा** मंत्र का जप प्रातः स्नानोपरांत से मध्याह्न तक करें। फिर जप का दशांश होम करें। यदि जातीपुष्पों से होम किया जाए तो जिसका वशीकरण करना हो, वह शीघ्र ही वशीभूत हो जाता है। वशीकृत नारी है तो वशीकरणकर्ता पुरुष उसे कामदेव के समान मनमोहक लगता है। यदि वशीकृत पुरुष है तो उसके लिए वशीकरणकर्ता जीवन भर यम के समान लगता है।

श्वेतापराजितामूलं पेषयेद्रोचनायुतम् । शतेन मंत्रित कृत्वा तिलकं कारयेत्ततः वशयेन्नात्र संदेहः ।।

यदि साधक श्वेत अपराजिता की जड़ को घिसकर या पीसकर, गोरोचन मिलाकर एके सौ बार मंत्र पढ़कर अभिमंत्रित कर ललाट पर तिलक करें तो उसे देखने वाला शीघ्र ही उसका दास हो जाता है।

राज वशीकरण

रक्तपुष्पेण चामुंडापूजांकुरु । ततः ध्यानम्, दंष्ट्राकोटिविशंकटा सुवदना सांद्रा कृकारे स्थिता खट्वांगासिनिगूढदक्षिणकरा वामेन पाशांकुशा । श्यामा पिंगलमूर्द्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृत्ता चामुंडा शववाहिनी जपविधौ ध्येया सदा साधकैः । जप्त्वा किंशुककुसुमैर्हुत्वा फलप्राप्तिः । आद्यंते महती पूजापंच दिनप्रयोगेण राजानं वशमानयेत् ।।

जो साधक राजा का वशीकरण करना चाहते हैं, उन्हें लाल पुष्पों से चामुंडा देवी की पूजा करनी चाहिए। पूजाकाल में देवी का ध्यान कर यह भावना करनी चाहिए कि देवी की करोड़ों विकट दाढ़ें हैं। मुखाकृति मनोहर है। दाएं हाथ में तलवार, बाएं हाथ में पाश और अंकुश

सुशोभित हैं। उनका वर्ण श्यामल है तथा केश पिंमल वर्ण के हैं। वे शत्रुओं को भय प्रदान करने वाली हैं। उनकी देह शार्दूल (व्याघ्र) चर्म से आवरित है। देवी चामुंडा शवरूप वाहन पर आसीन हैं। साधकों को जप कर्म में भी इसी प्रकार चामुंडा देवी का ध्यान करना चाहिए। टेसू के पुष्पों से देवी का आह्वान करने से फलप्राप्ति निश्चित ही होती है। साधना से पूर्व व बाद में देवी की विस्तृत पूजा की जानी चाहिए। यह प्रयोग पांच दिन तक करते रहने के बाद राजा या शासक का वशीकरण हो जाता है।

प्रकारांतरेण वशीकरणम् मृगशीर्षे तु संग्राह्यं सुरक्तकरवीरकम् । नवांगुलं कीलकं तत् सप्तवाराभिमंत्रितम् । यस्य नाम्ना खनेद् भूमौ स वश्यो भवति ध्रुवम् । मंत्रः ॐ हुं हुं स्वाहा । तत्तत्स्थाने यथासंख्यमनुक्ते त्वयुतं जपेत् ।।

वशीकरण की एक अन्य विधि इस प्रकार है—मृगशिरा नक्षत्र काल में लाल करवीर की टहनी से नौ अंगुल माप की एक कील निर्मित कर सात बार मंत्र से अभिमंत्रित कर जिसका वशीकरण करना हो, उसका नाम लेकर भूमि में गाड़ देने से वह मनुष्य साधक के वशीभूत हो जाता है। **ॐ हुं हुं स्वाहा** मंत्र का जितनी बार जप करने का निर्देश दिया गया है, उतना ही इसका जप करना चाहिए। जहां निर्देश नहीं दिया गया है, वहां कम-से-कम दस हजार बार जप अवश्य करना चाहिए।

त्रयोदशः पटलः

विद्वेषण

गृहीत्वा शल्लकीकंटं निखनेद्भू विदारतः । कलहो जायते नित्यं शत्रोर्गेहे न संशयः । मंत्रः ॐ नमो नारायणाय अमुकामुकेन सह विद्वेषणं कुरु कुरु स्वाहा ।

साही (एक जानवर जिसके शरीर में काफी कांटे होते हैं) का एक कांटा लेकर निम्नलिखित मंत्र से अभिमंत्रित कर गड्ढा खोदकर गाड़ देने से दो मित्रों में वैर भाव उत्पन्न हो जाता है। मंत्र है — **ॐ नमो नारायणाय अमुकामुकेन सह विद्वेषणं कुरु कुरु स्वाहा ।** अमुकामुकेन के स्थान पर उन मित्रों के नाम का उच्चारण करना चाहिए जिनमें विद्वेषण कराना हो।

❑ **परस्परं रिपोर्वैरं मित्रेण सह निश्चितम् । महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रेण समालिखेत् । ययोर्नाम तयोः शीघ्रं विद्वेषश्च परस्परम् ।।**

दूसरी विधि यह है कि भैंसे व घोड़े की विष्ठा (पुरीष) को गाय के मूत्र में मिलाकर घनिष्ठ मित्रों का नाम लिखने से उन मित्रों में विद्वेषण हो जाएगा।

❑ **रक्तेन महिषाश्वेन श्मशानवस्त्रके लिखेत् । ययोर्नाम तयोः शीघ्रं विद्वेषश्च परस्परम् । षट्कोणचक्रमध्ये तु रिपोर्नाम समन्वितम् । मंत्रः ततः प्रवक्ष्यामि महाभैरव संज्ञकम् ।।**

एक अन्य उपाय यह है कि रक्तवर्णी भैंसे और घोड़े की विष्ठा को गाय के मूत्र में मिलाकर शव के वस्त्र पर छह कोणीय चक्र बनाकर उसके अंदर दोनों मित्रों का नाम लिख देने से उनमें विद्वेषण हो जाएगा। अब मैं महाभैरव नामक मंत्र के बारे में बताता हूं।

महाभैरव मंत्र

ॐ नमो भगवति श्मशानकालिके अमुंक विद्वेषय विद्वेषय हन हन पच पच मथ मथ ॐ फट् स्वाहा । इति मंत्रः ।

अनेन मंत्रराजेन होमयेद्यत्नतः सुधीः । वह्निकुंडे श्मशानाग्निं दीपयेत्खादिरैंधसा । कटुतैलान्वितैः पत्रैर्निंबस्य परिशोधितैः । होमयेदयुत्तं धीमान् साकं तिलयवाक्षतैः ।।

यह महाभैरव रूप श्री भगवती का मंत्र है। इस मंत्र द्वारा अग्निकुंड में श्मशान की अग्नि को खैर की समिधाओं से प्रज्वलित कर नीम के शोधित पत्तों, कड़वा तेल (सरसों का तेल), तिल, जौ तथा चावल (अक्षत) का मिश्रण कर दस हजार बार होम करना चाहिए।

भावयन् कालिकां देवीं मंत्रशीलसमप्रभाम् । व्योमनीलां महाचंडां सुरासुरविमर्दिनीम् । त्रिलोचनां महारावां सर्वाभरणभूषिताम् । कपालकर्तृकाहस्तां चंद्रसूर्योपरिस्थिताम् । शरजालधरांचंचत्प्रेत भैरववेष्टिताम् । वसंतीं पितृगहने सर्वसिद्धि प्रदायिनीम् । होमयेद्विविधैः पुष्पैर्वलिच्छागोपहारकैः । पूजयित्वा महेशानीं भक्तियुक्तेन चेतसा । एतद भस्म समादाय धारयेदभिमंत्रितम् । भस्मना तेन मनुना विद्वेषो जायते नृणाम् ।।

देवी का ध्यान इस रूप में करें कि देवी का रंग आकाश के समान नील वर्ण का है। वह महाचामुंडा देवी देवताओं एवं राक्षसों का नाश करने वाली हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वह महागर्जना करने वाली, सर्वाभूषणों से भूषित, मुंड तथा कैंची हाथ में धारण किए चंद्र व सूर्य पर आरूढ़ हैं। बाण (शर) समूह को धारण करने वाली वह देवी प्रेतों व भैरवादि से घिरी रहती हैं। पितृगृह में रहकर वह सभी प्रकार की सिद्धियां प्रदान करने वाली हैं। उन देवी की प्रसन्नता के लिए पुष्प, छाग, बलि आदि से होम करना चाहिए। श्रद्धाभाव से महेशानि देवी की पूजा कर, होम का भस्म अभिमंत्रित कर मस्तक पर लगाने से शत्रुओं में विद्वेषण हो जाता है।

उच्चाटन

ओं द्रीं विद्वेषिणि अमुकामुकयोः परस्परयोर्विद्वेषणं कुरु कुरु स्वाहा ।

सौरारयोर्दिने ग्राह्यं नरास्थि चतुरंगुलम् । निशावसाने संलिख प्रधान भवने क्षिपेत् । सप्ताहाऽभ्यंतो शत्रोराशुचोच्चाटनं भवेत् । द्रूं अमुकस्योच्चाटनं कुरु कुरु स्वाहा । द्रूं अमुकं हन हन स्वाहा ।

उपरोक्त उच्चाटन मंत्र को शनिवार या मंगलवार के दिन चार अंगुल माप की मानव अस्थि के ऊपर लिखकर रात्रि के अंतिम पहर में शत्रु आवास में फेंक देने से सात दिनों के भीतर ही उसका उच्चाटन हो जाता है।

स्तम्भन

अमुकस्य मनः स्तंभय स्तंभय द्रूं फट् । इति मंत्रः ।

शांतिप्रयोगः शांतिः सर्वाभिचारस्य पंचगव्येन जायते । काम्यप्रयोगे सर्वत्र नियमोऽयुत संख्यकः ।।

हे देवी! अभिचार कर्मों की शांति पंचगव्यों (दूध, दही, घी, गोबर व मूत्र) से की जाती है।

सभी कृत्यों में मंत्रों का दस हजार बार जप करना चाहिए।

मारण या महाकृत्या प्रयोग

अतः परं महेशानि मारणं शृणु पार्वति । येन विज्ञातमात्रेण सुसाध्यं भुवन त्रये । रुद्रजाया महायोगिन्यतोगौरी पदं वदेत् । भुवन भयंकरीति पदं वर्मास्त्रमुच्चरेन्मनुम् । अथवा प्रथमं न्यासमथातो ब्रह्मणः पदम् । यद्दीर्घयुक्तबीजेन चांगमंत्रेण योजना । हृदयं च ततोअंगेन धर्मास्त्रेण शिरः क्रमात् । शिखा कवचनेत्रास्त्रमेवं न्यासक्रमः स्मृतः । अंगिराश्च ऋषिर्देविगायत्रीच्छंद ईरितम् । सिंहवक्त्रा च भूतानां भयंकरि ततः परम् । महाकृत्या देवता च इत्युक्त्या न्यासमाचरेत् ।

हे देवी! अब मैं मारण प्रयोग बताता हूं। यह महाकृत्या प्रयोग कहलाता है। इस प्रयोग को करने से सत्य ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस प्रयोग से पूर्व न्यास करना चाहिए। न्यास के समय सिंहवक्त्रा, भूता, भयंकरी, महाकृत्या, देवता आदि नामों का उच्चारण करना चाहिए। इस मंत्र के ऋषि अंगिरा व छंद गायत्री है। देवता महाकृत्या देवी हैं। इनका ध्यान निम्न प्रकार करें—

सिंहाननां कृष्णमुखीं लंबगात्रपयोधराम् । दंष्ट्राकरालवदनां त्रिनेत्रां सर्वप्रोज्ज्वलाम् । कृष्णकांचीसमायुक्तां विधूमाग्निसमप्रभाम् । त्रिशूल चक्रमुशलखट्वांगकरपंकजाम् । लेलिहानमहज्जिह्वां विद्युत्पुंजसुभीषणाम् । ध्यात्वा कृत्यां विधानेन पूजयेन्मंत्रवित्तमः । ध्यात्वा कृत्यामर्च्चयैद्वै रक्तैः पुष्पैश्च वश्यके । कृष्णैर्मारणकृत्येषु मांसरक्तासवैः स्तुताम् ।।

महाकृत्या देवी का इस रूप में ध्यान करना चाहिए कि उस देवी का मुख सिंह के समान है। उनका वर्ण काला है। कुच (स्तन) स्थूल हैं। बड़ी-बड़ी दाढ़ें हैं जिससे मुखाकृति भयंकर प्रतीत होती है। उनके तीन नेत्र हैं। वर्ण उज्ज्वल है। कमर में करधनी सुशोभित है। प्रज्वलित अग्नि के समान उनकी कांति है। वह हाथों में त्रिशूल, चक्र, मूसल और कमल धारण किए हैं। वह देवी जीभ से होंठों को चाटती हुई विद्युत समूह-सी प्रतीत हो रही हैं। वह घोर रव करने वाली हैं। वशीकरण कार्य में देवी की रक्त वर्ण के पुष्पों द्वारा ही पूजा की जानी चाहिए। मारण प्रयोग में काले पुष्प, मांस एवं रक्त का प्रयोग कर देवी की पूजा व स्तुति करनी चाहिए।

कृत्यां च मदनां कुमार्यश्वच्छादिनीं तथा । भीषणां श्रीमतीं चैव प्रतिष्ठां च ततः परम् । विद्यामभ्यर्चयेदष्टपत्रेषु हि (क्रमशः) सुलोचनाम् पूर्वे तु शांकरीं नाम शुक्लवर्णां वरान्विताम् । द्विभुजां सौम्यवदनां पाशांकुशधरां शिवम् । दक्षिणे भीषिकां नाम लंबजिह्वां सुधामुखीम् । कृष्णवर्णां रक्तमुखीं रक्तमालानुलेपनाम् । चतुर्भुजां सिंहनादां महाघोषां कपालिनीम् । खंग हस्तां शिरोमालां सर्वाभरण भूषिताम् । पश्चिमे वारुणीं नाम स्वर्णवर्णां हसन्मुखीम् । सुरुद्रमालिकां शुभ्रदंष्ट्राम भयदां सदा । उत्तरे भीमिकां नाम चतुर्हस्तां भयंकरीम् ।।

कृत्या देवी की मदना, कुमार्यश्वछादिनी, भीषणा एवं श्रीमती रूपों में प्रतिष्ठापना करनी चाहिए। आठ दलों के कमल में विद्या रूप, सुलोचना, श्री कृत्या देवी आदि रूपों से पूजा करनी चाहिए। प्राची (पूर्व) दिशा में शांकरी, शुक्लवर्णा, वरान्विता, द्विभुजा, सौम्य वदना, पाशांकुशधरा, शिवा आदि नामों से पूजा की जानी चाहिए। दक्षिण में भीषिका, लंबजिह्वा, सुधामुखी, कृष्णवर्णा, रक्तमुखी, रक्तमालानुलेपना, चतुर्भुजा, सिंहनादा, महाघोषा, कपालिनी,

खड़गहस्ता, शिरोमाला, सर्वाभरण, भूषिता आदि नामों से पूजा करनी चाहिए। पश्चिम में वारुणी, स्वर्णवर्णा, हंसमुखी, सुरुद्रमालिका, शुभ्रदंष्ट्रा, अभयदा आदि नामों से पूजा की जानी चाहिए। उत्तर में भीमिका, चतुर्भुजा, भयंकरी आदि नामों से पूजा करनी चाहिए।

पूजयित्वा जपेन मंत्रं नित्यमष्टोत्तरं शतम् । अवाप्य विनियोगस्तु कर्तव्यो मंत्रिणा सदा । कालं विदित्वा प्रतिमां मधूच्छिष्टेन कारयेत् । द्वादशांगुलकं शत्रोर्नखलोमसमन्वितम् । हृदये नामधेयं च फट्कारं च समर्मके । अस्य प्राणान् प्रतिष्ठाप्य मरिचैर्लेपयेत्ततः । मृतब्राह्मणचांडालकेशाभ्यां पादयोः पृथक् । बद्ध्वा करे करमये तोरणे चाप्यधोमुखम् । तस्याधो मेखलायुक्तं त्रिकोणं तत्र कुंडकम् । तत्र शारं विधायाग्निं परिस्तीर्य शरैस्तृणैः । बिभीतकं परीधाय कल्पयेद्यस्य मारणम् । जुहुयांन्नबतैलाक्तैः काकोलूकस्य पुच्छकैः । दारयैनं शोषयैनं मारयेन्यभिधाय च । अष्टोत्तरशतेनैव मनुना विधिना ततः । होमांते विधिवत् कृत्वा बाह्ये अग्नेश्वर सन्निधै । यो मे द्वेष्टि जनः कश्चिद् दूरस्थो वांतिकेऽपि च । पिब कृत्येऽमुकं तस्य हुमित्युक्त्वा निवेदयेत् । संरक्ष्याग्निं विधानेन नवरात्रं समाचरेत् । हुनेद्यावत्तावदस्य भवेदेव रिपोर्मृतिः । अर्कक्षीरे च मरिचं पिष्ट्वा सिद्धार्थमेव च । जलैः संलोड्य मंत्रेण रिपुं ध्यात्वा निरुद्धदृक् । कृष्णांबरोत्तरीयाग्रपादेनाक्रम्य तद्रिपुम् । वज्रशूलमिति ध्यात्वा तस्योपरि तु निक्षिपेत् । नवरात्रात् परे शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ।।

कृत्या देवी की पूजा करने के बाद नित्य नियमपूर्वक एक सौ आठ बार मंत्र का जप करना आवश्यक है। विनियोग भी जप से ही किया जाना चाहिए। पुरश्चरण के काल-क्रमानुसार मंत्र से देवी की उतने ही आकार की प्रतिमा बनानी चाहिए जबकि शत्रु का पुतला बारह अंगुल माप का बनाना चाहिए। साथ ही उसके नाखून व बाल भी बनाने चाहिए। फिर प्रतिमा के हृदय में शत्रु का 'नाम' और मर्म स्थल पर 'फट्' लिख देना चाहिए। शत्रु का पुतला बनाकर प्राण-प्रतिष्ठित करें। फिर सर्वांग में मिर्च पीसकर लेप कर दें। तदोपरांत ब्राह्मण व मृत चंडाल के बालों से पुतले के हाथ-पैर बांधकर उलटा मुंह करके लटका दें और पुतले के ठीक नीचे गोला बनाकर तीन कोण का कुंड बनाएं। फिर उस कुंड में अग्नि प्रज्वलित कर तिनकों व सरकंडों से अग्नि को तीव्र करें। इसके बाद बहेड़े की माला धारण कर कौए और उल्लू की पूंछ को नीम के पत्ते तथा कड़वा तेल में मिलाकर होम करें।

होम करते समय दारय, मारय, शोषय आदि शब्दों का उच्चारण करना चाहिए। होमकुंड में विधानपूर्वक होम करते समय एक सौ आठ बार मंत्रोच्चारण करना चाहिए। तत्पश्चात् अग्नि के निकट जाकर कहना चाहिए कि हे कृत्ये! दूर या पास जहां भी मेरा शत्रु हो, तुम उसका रक्तपान करो। फिर मंत्रांत में 'हुं' बीजयुक्त आहुति दें। विधिवत अग्निरक्षा कर नवरात्र या जब तक शत्रु की मृत्यु न हो जाए, तब तक नियमबद्ध होम करना चाहिए।

अब साधक को दूध में मिर्च पीसकर मंत्र बोलते हुए जल मिलाकर नेत्र बंद कर शत्रु का ध्यान करना चाहिए। फिर काले वस्त्र में लिपटे शत्रु के पुतले को अपने पैर के अंगूठे से छूकर वज्र शूल का स्मरण करते हुए मिर्च मिले जल को शत्रु के पुतले पर डाल दें। ऐसा करने से नवरात्र के बाद तक निश्चित ही शत्रु मृत्यु का ग्रास बन जाएगा।

बटुक भैरव प्रयोग

अतः परं महेशानि शृणुष्व कर्मसिद्धिदम् । बटुकं विमलांगाख्यं पूजयेत् । षटसु कर्मसु । (आचम्यो स्वस्ति वाचनमसूक्तं पठित्वा) अभ्यर्च्य च शिरः पद्मे श्रीगुरुं करुणामयम् ।।

शिव बोले—हे पार्वती! अब तुम्हारे सम्मुख मैं बटुक भैरव प्रयोग का वर्णन कर रहा हूं। हे महेशानि! किसी भी कर्म की सिद्धि बटुक भैरव ही प्रदान करते हैं। उनका अंग पवित्र है। षट्कर्मों में बटुक भैरव की भी साधना करनी चाहिए। पहले आचमन कर स्वस्तिवाचन करना चाहिए। फिर सहस्रार में गुरु का ध्यान व पूजन कर संकल्प करना चाहिए। संकल्प मंत्र निम्नानुसार है—

अद्येत्याद्यमुकगोत्रांत नामग्रह विशिष्टोपशमनपूर्वकारोग्यायुर्वृद्धि कामो गणेशादिपूजापूर्वकबटुक पार्थिवशिवपूजनमहं करिष्ये । इति संकल्प मंत्रः ।

शांतिकादौ रतिं च पूजयेदादौ क्षेत्रपालं ततः पुनः । रुद्रं च पूजयेद्देवि ध्यानं शृणु महामते ।।

शांति आदि कर्मों में पहले रति की पूजा करके तदोपरांत क्षेत्रपालक की पूजा करनी चाहिए। हे देवी! शांति कर्म में भगवान् रुद्र की भी पूजा की जाती है। इसका विवरण तुम एकाग्र होकर सुनो—

शूलहस्तं महारौद्रं सर्वविघ्ननिषूदनम् । पूर्णचंद्रसमाभासं रुद्रं वृषभ वाहनम् । एवं ध्यात्वा महाकालीं पूजयेद्रुद्रदैवतम् । प्रणवाद्यं रुद्राय नमः इति । भक्तियोगतः शततोलकपरिमितलिंगमानीय कांस्यपात्रे लिंगं संस्थाप्य । सामान्यान्यार्घ्यं ततः कृत्वा भूतशुद्धिं महेश्वरि । प्राणायाममंगन्यासं पीठन्यासं समाचरेत् ।।

जिनके हाथ में त्रिशूल है, जिनका रूप रौद्र है, जो विघ्नों के नाशकर्ता हैं, पूर्ण चंद्रमा के समान जिनकी कांति है, वृषभ (बैल) जिनका वाहन है, ऐसे भगवान् रुद्र (शिव) का ध्यान करना चाहिए। रुद्र की पूजा के बाद श्री महाकाली की पूजा करनी चाहिए। साधकों को चाहिए कि वे प्रणवपूर्वक भगवान् रुद्र को नमस्कार करें। फिर सौ तोले माप का शिवलिंग कांस्य के पात्र में अंगन्यास करते हुए प्रतिष्ठापित करें और दक्षिणा देकर भूतशुद्धि (शारीरिक निर्मलता) कर प्राणायामपूर्वक पीठन्यास करें।

ततः ऋष्यादिन्यासः । ततो देहन्यासः । यथा मूर्ध्नि ॐ भैरवाय नमः । एवं ललाटे भीमदर्शनाय नमः । नेत्रयोः भूताश्रयाय नमः । मुखे तीक्ष्णदर्शनाय नमः । कर्णयोः क्षेत्रपाय नमः । हृदि क्षेत्रपालाय नमः । नाभिदेशे क्षेत्राख्याय नमः । कट्यां सर्वाघनाशनायः नमः । ऊर्वोस्त्रिनेत्राय नमः । जंघयोः रक्तपाणिकाय नमः । पादयोः देवदेवेशाय नमः । सर्वांगे बटुकाय नमः ।।

करांगन्यासः । ॐ ह्रीं वां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि । ॐ ह्रां वां हृदयाय नमः इत्यादि । ततो मूलने व्यापकं कृत्वा ध्यायेत् । ॐ वन्दे बालमित्यादि संपूज्य । द्वाविंशदक्षरंचैव जपेद्रुदसहस्रकम् । अभिषेकं तर्पणंच यथाविधि समाचरेत् । एषा शांतिर्महाशांति कथिताः तव श्रद्धया ।।

उपरोक्त मंत्रों द्वारा ऋषिन्यास, देहन्यास, करन्यास आदि करना चाहिए। तत्पश्चात् पूजन कर बाईस अक्षर के मंत्रों का ग्यारह हजार बार जप कर अभिषेक एवं तर्पण करना चाहिए। हे पार्वती! यह महाशांति तुम्हारे कारण ही मैंने कही है।

यंत्र पूजनक्रम

पुनर्ध्यात्वा यंत्रे पुष्पं निधाय आवाहनादिकं कुर्यात् । यथा तत्र क्रमः । मूलादि सद्योजातमंत्रेणावाहनम् ।। यथा मूलं ॐ सद्योजातं प्रपद्यापि सद्योजाताय वै नमः । भवेऽभवेऽनातिभवेभवस्व मां भवोद्भवाय नमः । पिनाकधृक् इहागच्छ इहागच्छ । पुनर्मूलमुच्चार्य ॐ वामदेवाय नमः एवं ज्येष्ठाय रुद्राय कालाय कलविकरणाय बलाय बलविकरणाय बलप्रमथनाय सर्वभूतदमनाय नमो नमः । उन्मनाय नमः इह तिष्ठ इह तिष्ठ मूलं इह सन्निधेहि ।।

हे देवी! अब मैं यंत्र पूजन क्रम की विधि बता रहा हूं। पहले देवता का ध्यान कर यंत्र में पुष्प रखकर आह्वान करें। यथा— **ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः । भवेऽभवेनाति भवेभवस्य मां भवोद्भवाय नमः । पिनाकधृक्, इहागच्छ ।**

तत्पश्चात् मूलमंत्र बोलकर इन नामों से देवता का आह्वान करें— **ॐ वामदेवाय नमः । ॐ ज्येष्ठाय नमः । ॐ रुद्राय नमः । ॐ कालाय नमः । ॐ कलविकरणाय नमः । ॐ बलाय नमः । ॐ बलविकरणाय नमः । ॐ बलप्रमथनाय नमः । ॐ सर्वभूतदमनाय नमो नमः । ॐ उन्मनाय नमः । इह तिष्ठ इह तिष्ठ मूलं इह सन्निधेहि ।।**

आह्वान के बाद पूजन करें। इसके बाद इस अघोर मंत्र से सन्निरोधन (रोक) करें—

अघोरेण सन्निरोधनम् पुनर्मूलं ।
ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्योऽघोरघोरतरेभ्यः ।

सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमोऽस्तुते रुद्ररूपेभ्यः । इह सन्निरुद्धस्व ।।

अब इस मंत्र से मुद्रा प्रदर्शित करें— **तत्पुरुषेण योनिमुद्रा प्रदर्शनम् । पुनर्मूलम् । ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । इति योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् ।।**

फिर मूलमंत्र का जप करें। यथा— **ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवस्य धीमहि । तन्नो रुद्र प्रचोदयात् ।** इस रुद्र गायत्री मंत्र से योनिमुद्रा का प्रदर्शन करें।

तत्पश्चात् इन ईशान मंत्रों से पूजा करनी चाहिए— **ईशानेन वंदनमिति । पुनर्मूलम् । ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्माशिवोमेऽस्तु सदाशिव । ॐ शिवं वंदयामि नमः । ततः प्राणप्रतिष्ठा । आं द्रीं क्रों हंसः बटुकाय नमः पशुपते शूलपाणेः प्राणा इह प्राणाः जीव इह स्थितः । सर्वेंद्रियाणि । चक्षुः, श्रोत्रघ्राणाप्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठंतु स्वाहा । हुं इत्यवगुंठ्य । वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य छोटिकाभिर्दिग्बंधनं कृत्या षडंगानि संपूज्य देवं पूजयेत् ।।**

पूजन करके शिव की वंदना व प्राणप्रतिष्ठा इन मंत्रों से करनी चाहिए— **आं द्री क्रों हंसः बटुकाय नमः । पशुपतेः शूलपाणेः प्राण हद प्राणाः । जीव हद स्थितः ।**

प्राण प्रतिष्ठा के बाद 'हुं' बीजमंत्र से अवगुंठन कर 'वं' बीजमंत्र से धेनुमुद्रा प्रदर्शित कर

अमृतीकरण करना चाहिए। फिर दिग्बंधन कर शिव की पूजा करनी चाहिए।

मूलमुच्चार्य एतत् पाद्यम् । ॐ महादेवाय सोम मूर्तये बटुकात्मने पशुपतये शिवाय नमः । एवं क्रमेणार्घ्याचमनीयादिकं दद्यात् । स्नाने तु विशेष ।। यथा अद्येत्यादि अमुकस्याऽशेषाशुभ निवृत्तिपूर्वक ग्रहारिष्टोपशमन आरोग्य आयुवृद्धिकामनया शततोलक परिमिदुग्धेन बटुकात्मक पशुपतेलिंगं स्नापयामि । ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि इत्यादिना स्नापयेत् । ततो जलेन स्नापयित्वा । मूलम् । एष गंधः । ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः । पुष्पे तु अद्येत्यादि उक्तवत् कामनया बटुकात्मकपशुपतये शिवायाष्टोत्तर शत द्रोणपुष्पाण्यहं संप्रददे । मूलमुच्चार्य ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः । इति मंत्रेण एकं एकं कृत्वा दद्यात् । एवं बिल्वपत्रम् । मधुपर्कं धूपदीपे तु गंधवत् । नैवेद्यम् । अद्येत्यादिस्नानीयवत् । कामनया एतत् सोपकरणशततोलक परिमितातप तंडुलनैवेद्यं बटुकात्मक पशुपतये शिवाय तुभ्यमहं संप्रददे । ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः । शततोलक परिमितसंविदा चूर्णं पानीयं तांबूलं च पूर्ववत् संकल्प्य दद्यात् इति ।।

सर्वप्रथम मूलमंत्र का उच्चारण करें, फिर **ॐ महादेवाय** मंत्र से भगवान् शिव को पाद्य (पैर प्रक्षालनार्थ जल) अर्पित करना चाहिए। इसी प्रकार आचमन दें। लेकिन स्नान-प्रक्रिया में प्रथम **अद्येत्यादि स्नापयामि । ॐ सद्योजातं** आदि मंत्र का जप करना चाहिए। **महादेवाय** मंत्र से गंधार्पण कर संकल्प मंत्र उच्चारण करते हुए पुष्प अर्पित करने चाहिए। पुष्प एक-एक के क्रम से ही अर्पित करें। इसी विधि से बिल्वपत्र, मधुपर्क (दही, घी, शहद, जल, शर्करा) तथा धूप, दीप, गंध अर्पित कर नैवेद्य (प्रसाद) समर्पण करना चाहिए। फिर पान-सुपारी भी संकल्प करके ही अर्पित करनी चाहिए।

वशीकरणमंत्रे मूलमुच्चार्य ॐ भवाय जलमूर्तये बटुकात्मने शिवाय नमः । एवं क्रमेण पूजयेत् । एवमर्घ्याचमीनयं दद्यात् । स्नाने तु अद्येत्यादि अमुकस्यामुक वशीकरणार्थं शततोलक परिमितघृतेन मधुताना वा बटुकात्मक पाशुपतशिवलिगं स्नापयामि मूलमुच्चार्य । एष गंधः ॐ भवाय जलमूर्तये । पुष्पे तु अद्येत्यादि अमुकस्यामुक वशीकरणार्थम् अष्टोत्तरशत द्रोणपुष्पं बटुकात्मने पशुपतिशिवायाऽहं संप्रददे । मूलमुच्चार्य एतत् द्रोणपुष्पं ॐ भवाय जलमूर्तये नमः इति प्रत्येकम् । एवं बिल्वपत्रम् । धूपदीपे तु ॐ भवाय जलमूर्तये नमः । नैवेद्यं तु अद्येत्यादि अमुकस्यामुकवशीकरणार्थं शततोलक परिमितसोपकरण नैवेद्यं ॐ बटुकात्मकपशुपति शिवायाऽहं संप्रददे । मूलमुच्चार्य एतत् सोपकरणशततोलक परिमितनैवेद्यं संबिदाचूर्णं च ॐ भवाय जलमूर्तये नमः । ततः पानार्थोदकम् आचमनीयं तांबूलं च दद्यात् ।।

वशीकरण मंत्र प्रयोग के समय यह पद्धति अपनाएं—पहले मूलमंत्र का उच्चारण करें। फिर **ॐ भवाय से शिवाय नमः** तक मंत्र उच्चारण करके क्रमबद्ध पूजाकर इसी क्रम से अर्घ्य व आचमन दें। स्नान के लिए **अद्येत्यादि** मंत्र से संकल्प कर पुनः मूलमंत्र का उच्चारण कर **ॐ भवाय** मंत्र द्वारा गंध अर्पित करें। अब पुष्पार्पण भी संकल्प मंत्र **अद्येत्यादि** का उच्चारण करके करें। फिर **ॐ भवाय जलमूर्तये नमः** मूलमंत्र का उच्चारण कर दोने (द्रोण) में पुष्प रखकर देवत को अर्पित करें। इसी पद्धति से बिल्वपत्र भी अर्पित करना चाहिए। तत्पश्चात् **ॐ भवाय** मंत्र से धूप-दीप के बाद नैवेद्य भी संकल्प मंत्र का उच्चारण कर अर्पित करना चाहिए। बाद में मूलमंत्र

द्वारा जल एवं पान-सुपारी अर्पित करें।

ततः अष्टावरणं पूजयेत् । ततोऽष्टमूर्ति पूजयेत् ततो मूलेन पुष्पांजलित्रयं दत्त्वा संकल्प्य शिवसहस्रसंख्याकं तंमन्त्रं जपेत् शांतिकादौ क्रूरकर्मण्यपि । ततो गुह्यादिना जपं समाप्य स्तोत्रादिकं पठेत् ।।

आठ आवरणों की पूजा करने के बाद शिव के आठ वरणों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्र व ऋत्विक) की पूजा करनी चाहिए। फिर मूलमंत्र का उच्चारण कर पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिए। तदोपरांत शिवमंत्र का ग्यारह हजार बार जप करना चाहिए। शांति कर्म में गुप्त विधि से मंत्र जप कर स्तोत्र का वाचन करना चाहिए।

बलिदान

मूलमुच्चार्य बटुक भैरवाय एष बलिर्नमः । भैरवपरिवारगणैः सह मम शत्रून् सरुधिरं पिब पिब इमं बलिं गृहण गृहण स्वाहा । ॐ शत्रुपक्षस्य रुधिरं पिबितं च दिने दिने । भक्षय स्वगणैः सार्द्धं सारमेय समंत्रितम् । ततो विहितद्रव्यैः अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा होमयेत् ।।

मूलमंत्र का उच्चारण कर **बटुक भैरवाय एष बलिर्नमः** मंत्र से बलि देनी चाहिए। जब बलि दी जाए तो **भैरवपरिवारगणैः** आदि मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। बलि देने के बाद **ॐ शत्रुपक्षस्य** मंत्र का उच्चारण कर एक सौ आठ या एक हजार बार द्रव्यों (होम सामग्री) से होमाहुति देनी चाहिए।

वशीकरणे तु घृताक्तराजिकाभिरष्टोत्तरसहस्र होमः । शांत्यर्थं दूर्वादिकम् । क्रूरकर्मणि बिल्वपत्रम् । उच्चाटने तु ॐ ह्रीं हुं शिवाय स्वाहा । इति विशेषः । दक्षिणां बटुकात्मक पशुपतये शिवाय तुभ्यमहं संप्रददे । श्वेतसर्षपं लवणमिति ।।

वशीकरण कर्मानुष्ठान में घी व राई को मिलाकर एक हजार आठ बार शांति कर्मानुष्ठान में दूर्वा से तथा क्रूर कर्मानुष्ठान में बिल्वपत्र से होमाहुति देनी चाहिए। उच्चाटन कर्मानुष्ठान में **ॐ ह्रीं श्रीं हुं शिवाय स्वाहा** मंत्रोच्चारण कर होमाहुति देनी चाहिए। फिर हे बटुक भैरव! हे शिव! मैं आपको दक्षिणा अर्पित करता हूं—ऐसा कहकर साधक को सफेद सरसों या नमक से होम करना चाहिए।

चतुर्दशः पटलः

षट्कर्म कवच

पार्वत्युवाच—

श्रुतं बटुकमाहात्म्यं पूर्णविस्मयकारकम् । इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं वै षट्कर्मणाम् ।।

पार्वती बोलीं—हे प्रभो! विस्मयकारी बटुक माहात्म्य का मैंने श्रवण किया। अब मेरी षट्कर्म कवच सुनने की अभिलाषा है। आप मुझ पर कृपा करके षट्कर्म कवच का वर्णन करें।

ईश्वरोवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि । श्रवणात् पठनाद्वापि शत्रुनाशाय तत्क्षणात् ।।

शिवजी बोले—हे देवी! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए अब मैं षट्कर्मो (छह अभिचारिक कर्मों) का कवच बताता हूं। इसका नित्य पाठ करने मात्र से ही शत्रु का विनाश हो जाता है।

पार्वत्युवाच—

त्रैलोक्यमोहनार्थं तु कवचं मे प्रकाशय । त्रैलोक्यशत्रु सन्हंतुं नाशितुं यत्क्षमं भवेत् । एवमुक्तो महादेवः ऋद्धो भूत्वा जगत्पतिः । देवीं प्रबोधयामास वाक्येनामृतवर्षिणा ।।

फिर पार्वती एकाएक बोलीं—हे प्रभो! आप मुझे तीनों लोकों को मोहित करने वाला कवच बताएं। जिसका पाठ करने से तीनों लोकों में जो शत्रु हैं, वे विनाश को प्राप्त हों।

महादेवोवाच—

परानिष्टे महादेवि कुतस्ते जायते मतिः ।

शिव ने जब पार्वतीजी की ऐसी वाणी सुनी तो वे क्रोधित हो गए। फिर थोड़ा शांत होकर मधुर वाणी में बोले—हे देवी! तुममें दूसरों का बुरा करने का भाव कैसे उत्पन्न हो गया?

पार्वत्युवाच —

जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् । ये यथा मां प्रपद्यंते श्रुतिरस्ति पुरातनी । यदि ते वर्तते देव दया हि कथ्यतां मयि । शत्रूणां प्राण नाशार्थं उच्चाटनवशीकृतो । तेषां हि बलनाशार्थं सर्वदा प्रयत्नता नराः ।।

पार्वतीजी बोलीं—हे प्रभो! श्रुतियों का ऐसा कथन है कि जो दूसरों की हत्या कर दे अथवा जो हत्यारा हो, यदि उसकी हत्या कर दी जाए तो ब्रह्महत्या का दोष नहीं लगता। हे नाथ! यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो दयापूर्वक मुझे उच्चाटन, वशीकरण आदि प्रयोग बताने की कृपा करें। क्योंकि यह तो मानव का स्वभाव ही है कि वह अपने शत्रु के विनाश के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है।

ईश्वरोवाच—

शृणु देवि महाभागे कालाग्निप्राणवल्लभे । यस्य धारणमात्रेण शत्रूणां नाशनं भवेत् । धृत्वा तु पादमूलेन स्पृष्टवा दास इवा करोत् । शरणागतमात्रंतु नाशितुं नैव शक्यते । शृण देवि महाभागे सावधानावधारय । शत्रूणां प्राणनाशार्थं कुपितः काल एव सः ।।

शिव बोले—हे कालाग्नि प्राणवल्लभे! हे देवी! इस कवच को धारण करने से शत्रु का नाश हो जाता है, इसे पादमूल (तलवों) में धारण कर शत्रु को छू देने से वह वशीभूत हो जाता है और दास की तरह आज्ञा पालन करने लगता है। लेकिन जो शरणागत हो गया हो, उसका नाश नहीं किया जाना चाहिए। इससे प्रायश्चित करना पड़ता है। हे महाभागे, सावधान होकर सुनो! यह कवच शत्रु के प्राण हरण के लिए क्रोधित काल (यम) के समान कहा गया है—

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादांजनप्रभा । कोटिसूर्यप्रभा काली मम शत्रून् विनाशय । नाशयित्वा क्षणं देवि अन्य शत्रून् विनाशय । क्रीं क्रीं क्रीं उग्रप्रभे विकटदंष्ट्र परपक्षं मोहय मोहय पच पच मथ मथ दह दह हन हन मारय मारय ये मां हिंसितुमुद्यता योगिनीचक्रैस्तान्

वारय वारय छिंधि छिंधि भिंधि भिंधि करालिनी गृहण गृहण ॐ क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं स्फूर स्फूर पूर पूर पून पून चूल्व चूल्व धक धक धम धम मारय मारय सर्वजगद्वशमानय ॐ नमः स्वाहा ।

भद्रकाली कवच

निम्नलिखित कवच भद्रकाली का है। भद्रकाली के दस मुख, दस पैर और दस भुजाएं हैं। उनका वर्ण काजल जैसा है। उनकी कांति करोड़ों सूर्यों की छटा जैसी है। ऐसी देवी तीनों कालों में मेरे शत्रुओं का क्षणमात्र में विनाश करें। भद्रकाली का कवच यह है—

क्रीं क्रीं क्रीं उग्रप्रभे विकटदंष्ट्रे परपक्षं मोहय मोहय, पच पच, दह दह, हन हन, मारय मारय, ये मां हिंसितुमुद्यता योगिनीचैक्रस्तान, वारय वारय, छिंधि छिंधि, भिंधि भिंधि, करालिनी गृहण गृहण, ॐ क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं, स्फूर स्फूर, पूर पूर, पून पून, चूल्व चूल्व, धक धक, धम धम, मारय मारय सर्वजगत् वशमानय ॐ नमः स्वाहा ।

इति ते कवचं देवि भद्रकाल्याः प्रचोदितम् । भूर्जे विलिखितं चैतत् स्वर्णस्थं धारयेद्यदि । शिखायां दक्षिणे बाहौ कंठे वा धारयेद्यदि । त्रैलोक्यं मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्यं चूर्णयेत् क्षणात् । पुत्रबांधनबांधीमान् नाना विद्यानिधिर्भवेत् । ब्रह्मास्त्रादीननि शस्त्राणि तद्गात्रस्पर्शनात्ततः । शत्रवो नाशमायांति रजतेन प्रधारितम् । मासामात्रेण शत्रूणां महाविपदकारणम् । यं यं शत्रुं स्मरन्मर्त्यः कवचं पठति ध्रुवम् । तं तं नाशयते सद्यस्तथ्यं ते तद्वदाम्यहम् । धारणे भजते शत्रुः कंठशोषं सदा भवेत् । हृत्कंपो जायते तावद्यावत्तस्य कृपा न चेत् ।।

शिव बोले—हे देवी! यह भद्रकाली का कवच मैंने तुमसे कहा। यदि इसको भोजपत्र पर अंकित कर स्वर्ण-संपुट में डालकर चोटी, दाईं भुजा या गले में धारण किया जाए तो धारणकर्ता तीनों लोकों को मोह लेता है तथा क्रोधावेश में तीनों लोकों को क्षणभर में नष्ट कर सकता है। इस कवच को धारण करने से पुत्रकामी को पुत्र, धनकामी को धन और विद्याकामी को विद्या की प्राप्ति होती है। अथवा इसको धारण करने वाला अनेक विद्याओं में पारंगत हो जाता है।

यदि इस कवच को विधिवत चांदी के संपुट में डालकर ऊपर वर्णित शरीरावयवों में धारण किया जाए तो धारणकर्ता के अंग का स्पर्श होने मात्र से ही ब्रह्मास्त्र, शस्त्र, शत्रु आदि का विनाश हो जाता है। इस कवच का अनुष्ठान करने से शत्रु तीस दिनों के भीतर ही विनाश को प्राप्त हो जाता है। अनुष्ठानकर्ता जिस भी मनुष्य का नाम लेकर कवच का पाठ करता है, उसका निश्चित ही विनाश होता है। यदि शत्रु का स्मरण कर कवच को गले में पहना जाए तो शत्रु का कंठ शुष्क होने लगता है और शरीर कांपने लगता है। ऐसा तब तक चलता रहता है, जब तक कि भद्रकाली देवी की कृपा नहीं होती।

मोहन कवच

ईश्वरोवाच —

त्रिकालं गोपितं देवि कलिकाले प्रकाशितम् । न वक्तव्यं न द्रष्टव्यं तव स्नेहात् प्रकाश्यते । काली दिगंबरी देवि जगन्मोहनकारिणी । तच्छृणुष्व महादेवि

त्रैलोक्यमोहनन्त्विदम् ।।

शिवजी बोले—हे देवी! तीनों कालों (सत् युग, त्रेता व द्वापर) में यह कवच गुप्त था अर्थात् किसी को भी ज्ञात नहीं था। लेकिन इस कलियुग में केवल तुम्हारे प्रति स्नेह होने के कारण ही मैंने इस देव दुर्लभ कवच को उजागर कर रहा हूं। लेकिन तुम इसे किसी को भी न देना और न ही दिखाना। हे देवी! सृष्टि को मोह लेने वाली दिगंबरा देवी का यह प्रयोग करने से तीनों लोकों को मोहित किया जा सकता है।

ॐ अस्य श्रीमहाकालभैरव ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्मशानकालिका देवता सर्वमोहने विनियोगः । ऐं क्रीं क्रूं क्रं: स्वाहा विवादे पातु मां सदा । क्लीं दक्षिणकालिकादेवतायै समामध्ये जयप्रदा । क्रीं क्रीं श्यामांगिन्यै शत्रुं मारय मारय । ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्लीं त्रैलोक्यं वशमानय । ह्रीं श्रीं क्रीं मां रक्ष रक्ष विवादे राजगोचरे । द्वाविंशत्यक्षरी ब्रह्मसर्वत्र रक्ष मां सदा । कवचे वर्जितं यत्र तत्र मां पातु कालिका । सर्वत्र रक्ष मां देवि श्यामा उग्रस्वरूपिणी । एतेषां परमं मोहं भवदभाग्ये प्रकाशितम् । सदा यस्तु पठेद्वापि त्रैलोक्यं वशमानयेत् । इदं कवचम् ज्ञात्वा पूजयेद्धोररूपिणीम् । सर्वदा स महाव्याधिपीडितो नात्र संशयः । अल्पायुः स भवेद्रोगी कथितं तव नारद । धारणं कवचस्यास्य भूर्जपत्रे विशेषतः । सयत्रं कवचं धृत्वा इच्छासिद्धिः प्रजायते । शुक्लाष्टम्यां लिखेन्मंत्रं धारयेत् स्वर्णपत्रके । कवचस्यास्य माहात्म्यं नाहं वक्तुं महामुने । शिक्षायां धारयेद्योगी फलार्थी दक्षिणे भुजे । इदं कल्पद्रुमं देवि तव स्नेहात् प्रकाश्यते । गोपनीयं प्रयत्नेन पठनीयं महामुने ।।

इस कवच के ऋषि महाकाल भैरव हैं। छंद अनुष्टुप है। देवता श्मशानकाली हैं। त्रैलोक्य को मोहित करना विनियोग है।

हे प्राणवल्लभे! जो भी मनुष्य इस कवच का सदैव पाठ करता है, उसमें तीनों लोकों को वशीभूत करने की सामर्थ्य आ जाती है। जो मनुष्य कवच को जाने बिना ही काली देवी का पूजन करता है, वह अनेक प्रकार के कष्ट भोगता है। इसमें जरा भी संशय नहीं है। वह अल्पायु व रोगी होता है। इस कवच को भोजपत्र पर अंकित कर संपुट रूप में धारण करने से धारणकर्ता की सभी मनोभिलाषाएं पूर्ण होती हैं। शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को भोजपत्र पर अंकित कर स्वर्ण निर्मित संपुट में यंत्र डालकर पहनने का जो महत्व है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। योगनिष्ठा को यह कवच चोटी (शिखा) में तथा फलाकांक्षी को दाईं बांह में पहनना चाहिए।

हे देवी! मनोभिलाषा पूर्ण करने वाला यह कवच जो मैंने तुमसे कहा है, अति गोपनीय है। इसे गुप्त ही रखना चाहिए। यह कवच भगवान् विष्णु ने एक बार नारद से कहा था।

श्रीविष्णुरुवाच—इत्येवं कवचं नित्यं महालक्ष्मि प्रपठ्यताम् । अवश्यं वशमायाति त्रैलोक्यं सचराचम् । शिवेन कथितं पूर्वं नारदे कलहास्यदे । तत्पाठान्नारदेनापि मोहितं सचराचरम् ।।

हे देवी भगवान् विष्णु ने लक्ष्मीजी से कहा कि इस कवच का पाठ करने से तीनों लोकों को वशीभूत किया जा सकता है। हे लक्ष्मी! एक बार सदाशिव ने यह कवच कहा था, जिसका पाठ करके नारद ने सृष्टि के जीवों को मोहित कर लिया था।

विशेष— मोहन कवच एक बार भगवान् विष्णु ने नारद से कहा था और इसका महत्व लक्ष्मीजी को भी बताया था। क्रियोड्डीश नामक इस तंत्र शास्त्र में भी भगवान् शिव ने उसी का

वर्णन पार्वती से किया है। अतः यहां विष्णु, लक्ष्मी एवं नारद का उल्लेख समीचीन है।

पंचदशः पटलः

प्रासादाख्य कवच

श्रीदेव्युवाच —

भगवन्देवदेवेश सर्वाऽऽम्नायप्रपूजितः । सर्वं मे कथितं देव कवचं न प्रकाशितम् । प्रासादाख्यास्य मंत्रस्त्र कवचं मे प्रकाशय । सर्वरक्षाकरं देवं यदि स्नेहोऽस्ति संप्रति ।।

देवी बोलीं—हे भगवान्! हे देवाधिदेव! आपने वैसे तो सभी कुछ बता दिया है, लेकिन प्रासादाख्य कवच मंत्र का आपने कोई वर्णन नहीं किया, जो सभी प्रकार से रक्षा करने वाला है।

ईश्वरोवाच —

प्रासादाख्यमंत्रकवचस्य वामदेव ऋषिः, पंक्तिश्छन्दां, सदाशिवो देवता, साधकाभीष्टसिद्धये विनियोगः प्रकीर्तितः । शिरो मे सर्वदा पातु प्रासादाख्यः सदाशिवः । षडक्षरस्वरूपो मे वदनं च महेश्वरः । पंचाक्षरात्मा भगवान् भुजौ मे परिरक्षतु ।। मृत्युंजयस्त्रिबीजात्मा आयु रक्षतु मे सदा । वटमूलसमासीनो दक्षिणामूर्तिरव्ययः । सदा मां सर्वतः पातु षट्त्रिंशद्वर्णरूपधृक् । द्वाविंशर्णात्मको रुद्रः कुक्षौ मे परिरक्षतु । त्रिवर्णात्मा नीलकंठः कंठः रक्षतु सर्वदा । चिंतामणिर्बीजरूपे सर्वनारीश्वरो हरः । सदा रक्षतु मे गुह्यं सर्वसंपत्प्रदायकः । एकाक्षरस्वरूपात्मा कूटरूपी महेश्वरः । मार्तंडभैरवो नित्यं पादौ मे परिरक्षतु । ओमित्याख्यो महाबीजस्वरूपस्त्रिपुरांतकः । सदा मां रणभूमौ तु रक्षतु त्रिदशाधिपः । ऊर्ध्वमूर्द्धानमीशानो मम रक्षतु सर्वदा । दक्षिणस्यां तत्पुरुषो अव्यान्मे गिरिनायकः । अघोराख्यो महादेव पूर्वस्यां परिरक्षतु । वामदेव पश्चिमस्यां सदा में परिरक्षतु । उत्तरस्यां सदा पातु सद्योजातः स्वरूपधृक् ।।

शिव बोले—हे देवी! यह कवच जैसा भगवान् विष्णु ने कहा है, वैसा ही मैं तुमको बताता हूं। इस प्रासादाख्य कवच मंत्र के ऋषि वामदेव, छंद पंक्ति और देवता सदाशिव हैं। साधक की मनोकामना पूर्ति ही विनियोग है। कवच इस प्रकार है—प्रासादाख्य (सदाशिव) मेरे शीश की रक्षा करें। षडक्षर स्वरूप महेश्वर मुख की, पंचाक्षरात्मा शिव भुजाओं की और त्रिबीजात्मा स्वरूप मृत्युंजय मेरी आयु की रक्षा करें। इसी तरह वट-वृक्ष की जड़ में रहने वाले दक्षिणामूर्ति, छत्तीस वर्ण रूप वाले सदाशिव सभी स्थलों में सदैव मेरी रक्षा करें। बारह वर्ण वाले रुद्रदेव मेरे कुक्षि भाग की, तीन वर्ण वाले नीलकंठ मेरे कंठ की, चिंतामणि सभी नाड़ियों की तथा बीजरूप ईश्वर गुह्य भाग की रक्षा करें। सभी संपदा देने वाले, एकाक्षर रूप, कूटस्वरूप महेश्वर, मार्तंड, भैरव सदैव मेरे पैरों की रक्षा करें। प्रणव रूप से जिनका नामोच्चारण किया जाता है, वह महाबीजरूप त्रिपुरांतक युद्धस्थल में सदैव मेरी रक्षा करें। ईशान देव ऊर्ध्व दिशा में, गिरिनायक (तत्पुरुष) दक्षिण दिशा में, अघोर नाम वाले महादेव पूर्व दिशा में, वामदेव पश्चिम दिशा में तथा सद्योजातरूप धृकदेव उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें।

इत्थं रक्षाकरं देवि कवचं देवदुर्लभम् । प्रातःकाले पठेद्यस्तु सोऽभीष्टफलमाप्नुयात् । पूजाकाले पठेद्यस्तु साधको दक्षिणे भुजे । देवा मनुष्या गंधर्वा वश्यास्तस्य न संशयः ।

कवचं यस्तु शिरसि धारयेद्यदि मानवः । करस्थास्तस्य देवेशि अणिमाद्यष्टसिद्धयः । स्वर्णपत्रेत्विमां विद्यां शुक्लपट्टेन वेष्टिताम् । राजतोदरसंविष्टां कृत्वा च धारयेत्सुधीः । संप्राप्य महतीं लक्ष्मीमंत्र च शिवरूपधृक् यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन । शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् । अन्यथा सिद्धिहानिः स्यात् सत्यमेतन मनोरमे । तव स्नेहान्महादेवि कथितं कवचं शुभम् । न देयं कस्य चिद्भद्रे यदीच्छेदात्मनो हितम् । योऽर्चयेद्गंधपुष्पाद्यैः कवचं मन्मुखोदितम् । तेनार्चिता महादेवि सर्वे देवा न संशयः ।।

हे देवी! देवदुर्लभ इस कवच का जो मनुष्य प्रातः समय पाठ करता है, उसे अभीष्ट की प्राप्ति होती है। जो साधक पूजन काल में इस कवच को दाएं भुजदंड में धारण कर कवच पाठ करता है, वह देवता, मनुष्य, गंधर्व आदि को वशीभूत करने के योग्य हो जाता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं करना चाहिए। हे देवी! जो प्राणी इस कवच को शिरोधार्य करता है, उसे अणिमादि आठों सिद्धियां सहज ही सुलभ हो जाती हैं। इस कवच को स्वर्ण के संपुट (यंत्र) में डालकर, उस संपुट को श्वेत वस्त्र में लपेटकर या चांदी (रजत) के संपुट में डालकर श्वेत रेशम के धागे में पिरोकर या वस्त्र में ही लपेटकर भुजदंड या गले में पहनने से महालक्ष्मी की कृपा प्राप्त होती है। अंत समय में वह प्राणी शिव रूप से कैलास धाम में निवास करता है। स्त्रियों को यह संपुट बाएं भुजदंड में और पुरुषों को दाएं भुजदंड में पहनना चाहिए। अयोग्य मनुष्य को इस कवच का उपेदश नहीं करना चाहिए। इससे सिद्धि का क्षय होता है।

हे देवी! यह कवच मैंने तुम्हारे प्रति स्नेह होने के कारण ही केवल तुमसे कहा है। शुभत्व की प्राप्ति के आकांक्षी को चाहिए कि वह यह कवच किसी अन्य (साधारण मनुष्य) को न दे। हे देवी! जो मनुष्य इस कवच की यंत्ररूप में पूजा करता है, उसकी वह पूजा देव पूजा के षोडशः पटल के समान कही गई है।

षोडशः पटलः

त्र्यंबक मृत्युंजय मंत्र

देव्युवाच—

इदानीं श्रोतुमिच्छामि पूर्वमुक्तं च त्र्यंबकम् । प्रभेदे कथितं देव शांति मृतसंजीवनीम् ।।

देवी बोलीं—हे प्रभो! अब आप त्र्यंबक मृत्युंजय मंत्र का वर्णन करें। मैं सुनने की अभिलाषा रखती हूं।

ईश्वरोवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि । मातृणां तिसृणामंब गर्भजातो यतो हरः । अतस्त्र्यंबक इत्युक्तं मम नाम महेश्वरि । वशिष्ठोऽस्य ऋषि प्रोक्तश्छंदोऽनुष्टुपदाहृतः । देवताऽस्य समुद्दिस्त्रंबकः पार्वतीपतिः । विभक्तैर्मंत्रवर्णैश्च षडंगानां च कल्पनाम् । ततश्च वह्निबीजेन समंताज्जल धारया । प्राचीरं चिंतनं कुर्यात्ततः संकल्पमाचरेत् । पुनः संकल्पं देवेशि भूतशुद्धयादिकं च यत् । ततः पश्चात् करन्यासं कुर्याच्च मम सुन्दरि ।

शिव बोले—हे पार्वती! तीन मातृकाओं से उत्पत्ति होने के कारण ही मुझे त्र्यंबक कहा जाता है। त्र्यंबक के ऋषि वशिष्ठ, छंद अनुष्टुप और पार्वतीनाथ शिव देवता हैं। मंत्र वर्णानुसार छह अंगों की कल्पना कर अग्नि बीज मंत्र से जल को धारा रूप में शिव पर प्रक्षेपित करना चाहिए। फिर भृकुटि मध्य (प्राचीर) में ध्यान करके संकल्प करना चाहिए। तदोपरांत पवित्रतापूर्वक करन्यास आदि करना चाहिए।

त्र्यंबकं अंगुष्ठाभ्यां नमः । यजामहे तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा । सुगंधिं पुष्टिवर्धनं मध्यामाभ्यां वषट् । उर्वारुकमिव बंधनादनामिकाभ्यां हुम् । मृत्योर्मुक्षीय कनिष्ठाभ्यां वौषट् । मामृतात् करतलपृष्ठाभ्यां फट् एवं हृदादिषु ।।

न्यास विधि इस प्रकार है— **त्र्यंबकं अंगुष्ठाभ्यां नमः** मंत्र बोलकर हाथ के अंगूठों को तर्जनी अंगुलियों से मिलाएं। **यजामहे तर्जनीभ्यां स्वाहा** मंत्र बोलकर तर्जनी अंगुलियों को अंगूठों से मिलाएं तथा अंगूठे सहित अंगुलियों को मिलाकर हाथ के पृष्ठ भाग को छूकर हृदयादिन्यास करना चाहिए।

ततो द्वात्रिंशमंत्रवर्णान्न्यसेत् । पूर्वपश्चिमयाम्योत्तरेषु वक्त्रेषु । उरोगलोद्ध्र्वास्ये । पुनर्नाभित्हृत्पृष्ठकुक्षिषु । लिंगपायूरुमूलांते । जानुयुग्मे । गुल्फयोर्युग्मे । स्तनयोः । पार्श्वयोः । पादयोः । पाण्योः । नासिकायोः । शीर्षे । मंत्रवर्णान्न्यसेत्क्रमात् पुनस्ततः पादाद्येकादशस्थानेषुन्यसेत् । शिरो भ्रूयुगला क्षिषु वक्त्रे गंडयुगे भुजयोः हृदये जठरे पुनः गुह्यो रु जानु पादेषु न्यासमेवं समाचरेत् ।।

इसके बाद बत्तीस अंगों का बत्तीस वर्णों से न्यास करना चाहिए। यथा—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर मुख में। वक्ष, कंठ, ऊर्ध्व मुख में, नाभि, हृदय, पीठ, कुक्षियों में, लिंग (मूत्रमार्ग), गुदा भाग, जंघा के मूल में, घुटनों में, गुल्फ (टखनों) में, स्तनों में, पीठ के नीचे नितंबों में, पैरों में व हाथों में, नासिका छिद्रों में, सिर में न्यासोपरांत पैर आदि ग्यारह स्थानों में न्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् भौंहों, नेत्रों, मुख, कनपटियों, भुजाओं, हृदय और पेट में न्यास कर गुदा मार्ग, ऊरु (जांघ), जानु (घुटनों) एवं पैर में न्यास करना चाहिए।

तत उक्तध्यानेन ध्यात्वा मानसोपचारैः संपूज्य विशेषार्घ्यं संस्थाप्य शैवोक्तपूजावाहनादिकं पंचपुष्पां जलींदत्त्वा वरुणं पूजयेत् । त्र्यंबकं हृदयाय नमः । इत्यादि षडंगानि पूजेयत् । ततोऽष्टपत्रेषु ॐ अर्काय नमः । एवमिदवे वसुधायै, जलाय वह्नये, वायवे व्योम्ने यजमानाय, तद्वाह्ये पूर्वादितः ॐ रामाय नमः । ॐ राकायै नमः । ॐ प्रभायै नमः । ॐ ज्योत्स्नायै नमः । ॐ पूर्णायै नमः । ॐ उषसे नमः । ॐ पूषायै नमः । ॐ स्वधायै नमः । ॐ विश्वायै नमः । ॐ विद्यायै नमः । ॐ सितायै नमः । ॐ कृत्यै नमः । ॐ श्रद्धायै नमः । ॐ सारायै नमः । ॐ संध्यायै नमः । ॐ दिवायै नमः । ॐ निशायै नमः । तद्बाह्ये ॐ आर्यायै नमः । ॐ आर्द्रायै नमः । ॐ प्रज्ञायै नमः । ॐ मेधायै नमः । ॐ कांत्यै नमः । ॐ शांत्ये नमः । ॐ पुष्ट्यै नमैः । ॐ बुद्ध्यै नमः । ॐ धृत्यै नमः । ॐ मत्यै नमः । ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ।।

उपरोक्त विधि से ध्यान के पश्चात् पूजन कर विशेष अर्घ्य दें। फिर शैवोक्त पद्धति से पूजा-आह्वान करके पांच बार पुष्पांजलि देकर आवरण पूजा करें। **त्र्यंबकं हृदयाय नमः** मंत्र से छह अंगों की पूजा करें। फिर अष्टदल युक्त कमल के मध्य भाग में इन नामों से पूजा करें। यथा—

अर्काय नमः, इंदवे नमः, वसुधायै नमः, जलाय नमः, अग्नाये नमः, वायवे नमः, व्योमाये नमः, यजमानाय नमः ।

अब कमल दल के बाहर वाले भाग में पूर्व क्रमानुसार पूजा करें। यथा— **ॐ रामाय नमः । ॐ राकायै नमः । ॐ प्रभायै नमः । ॐ ज्योत्स्नायै नमः । ॐ पूर्णायै नमः । ॐ उषसे नमः । ॐ पूषायै नमः । ॐ स्वधायै नमः । ॐ विश्वायै नमः । ॐ विद्यायै नमः । ॐ सितायै नमः । ॐ कृत्यै नमः । ॐ श्रद्धायै नमः । ॐ सारायै नमः । ॐ संध्यायै नमः । ॐ दिवायै नमः । ॐ निशायै नमः ।** अब सबसे बाहरी भाग में पूजा करें— **ॐ आर्यायै नमः । ॐ आर्द्रायै नमः । ॐ प्रज्ञायै नमः । ॐ मेधायै नमः । ॐ कांत्यै नमः । ॐ शांत्यै नमः । ॐ पुष्ट्यै नमः । ॐ बुधयै नमः । ॐ धृत्यै नमः । ॐ मत्यै नमः ।**

तत्पश्चात् धूप आदि से विसर्जन करना चाहिए।

प्रयोगस्तु शनैश्चरे कुजै वा अश्वत्थमूलं स्पृष्ट्वा सहस्रं जपेत् । पुरश्चरणविधानेन सर्वं कुर्यान्महेश्वरि । साक्षान्मृत्योर्विमुच्येत किमन्याः क्षुद्रिकाः क्रियाः । प्रत्यहं जुहुयान्मंत्री चतुस्थंडिलविधानतः । द्विसहस्रं दूर्वावटजवाभिः करवीरकैः । बिल्वपत्रं पलाशं च कृष्णापराजिता । वटवृक्षस्य समिधं जुहुयादयुतावधि । धनधान्यसमृद्धिः स्यात्सत्यं सत्यं महेश्वरि ।।

शिव बोले—हे वरानने! अब प्रयोग विधि बता रहा हूं। शनिवार या मंगलवार को अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष को छूकर महामृत्युंजय मंत्र का एक हजार बार जप करना चाहिए। फिर पुरश्चरण करते हुए सभी कार्य करने चाहिए। इस प्रकार का प्रयोग करने से मृत्यु से छुटकारा मिलता है। साधक को भूमि पर मिट्टी बिछाकर उस पर अग्नि प्रज्वलित कर विधिपूर्वक होम करना चाहिए। दो हजार दूर्वा, बड़, जवा, कनेर पुष्प, बिल्वपत्र, ढाक की समिधा, कृष्ण वर्ण की अपराजिता तथा बड़ के पेड़ की समिधा से दस हजार बार होमाहुति देने से धन-धान्य की वृद्धि होती है। यह सत्य है।

मृतसंजीवनी विद्या

अतः परं देवि शृणु मृतसंजीविनीं तथा । आदौ प्रासादबीजं तदनु मृतिहरं तारकं व्याहृतिं च प्रोच्चार्य त्र्यंबकं यो जपति च सततं संपुटं चानुलोमम् । त्र्यंबकमिति मृत्युंजयमंत्रस्य जपात् सर्वसिद्धिर्भवति । एतन्मंत्रं जपेदाशु व्याधिमुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।।

शिव बोले—हे उमा! अब मैं मृतसंजीवनी विद्या का वर्णन करता हूं। ध्यानपूर्वक श्रवण करो। पहले प्रासाद बीज मंत्र, फिर क्रमशः मृतिहर बीज, तारक एवं व्याहृति का उच्चारण कर जो साधक संपुट व अनुलोम पद्धति से त्र्यंबक मंत्र का जप करता है, उससे सभी प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इस मंत्र के जप से अनेक प्रकार की व्याधियां भी शीघ्रता से ठीक हो जाती हैं।

ध्यानं शृणु महादेवि । स्वच्छं स्वच्छारविंदं स्थितमुभयकरे संस्थितौ पूर्णकुंभौ पाण्योर्हेलाक्षमाले निजकरकमले द्वौ घटौ नित्यपूर्णौ । द्वाभ्यां तौ च स्रवंतौ शिरसिः शशिकला चामृतैः प्लावयंतीं देहं देवो दधानो विदिशतु विशदा कल्पजालां श्रियं नः । एवं ध्यात्वा त्र्यंबकाय महारुद्राय नमः । महाघोरं यदि तदा पूजयेत्परमेश्वरम् । ततः सुरसुन्दरीत्यादियोगिनीसाधनम् । ततो भूतिनीसाधनम् ।।

हे महादेवी! भगवान् त्र्यंबक व महारुद्र का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए कि उनके हाथों में कमल दल सुशोभित हैं, दो हाथों में अमृतकलश हैं, दो हाथों में रुद्राक्ष की माला है तथा शीश भाग में अमृत वर्षा करता चंद्रमा सुशोभित है। ऐसे स्वरूप वाले देव हमें लक्ष्मी की प्राप्ति कराएं। फिर साधक को भूतिनी साधना करनी चाहिए।

भूतिनी साधना

देव्युवाच —

योगिनीसाधनं ज्ञातं भूतिनीसाधनोत्तमम् । तद्वदस्व महादेव कृपास्ति यदि मां प्रति ।।

देवी बोलीं—हे प्रभो! अब आप मुझे भूतिनी साधना बताएं।

ईश्वरोवाच—

आद्या विभूषिणी देवी परा कुंडलधारिणी । हारिणी सिंहिनी चैव हंसिनी च ततो नटी । कामेश्वरी तथा प्रोक्ता कुमारी ततः सुन्दरी । इत्यष्टौ नायिकाः प्रोक्ताः साधकानां सुखावहाः ।।

शिव बोले—हे प्राणवल्लभे! जो नायिकाएं साधक को सर्वसंपन्न बनाती हैं, वे हैं—आद्या विभूषिणी, पराकुंडलिनी, सिंदूरहारिणी, सिंहिनी, हंसिनी, नटी, चेटी, कामेश्वरी, कुमारी तथा सुन्दरी देवी।

आद्या विभूषिणी साधना

यथा मंत्रं महेशानि आद्या विभूषिणी तथा मंत्रः—हूं फट् फट् ह्रीं भूतिनीं हूं हूं हूं । क्रोधास्त्रद्वयं मायांते भूतिनीं च त्रिकूर्चतः । अथवा शृणु देवेशि ॐ ह्रीं हीं फट् फट् विभूषिणी हूं हूं हूं । तारं लज्जाद्वयास्त्रद्वयं विभूषिणीक्रोधद्वयम् ।

हे पार्वती! आद्या विभूषिणी के दो मंत्र इस प्रकार हैं जिनका साधना काल में जप करना चाहिए। यथा— **हूं फट् फट् ह्रीं भूतिनीं हूं हूं हूं । क्रोधास्त्रद्वयं मायांते भूतिनीं च त्रिकूर्चतः ।** एक अन्य मंत्र है— **ॐ ह्रीं ह्रीं फट् फट् विभूषिणी हूं हूं हूं । तारं लज्जाद्वयास्त्रद्वयं विभूषिणी क्रोधद्वयम् ।**

आद्या विभूषिणी देवी का ध्यान मंत्र निम्नवत है—

दक्षे कर्त्तरिकां परेऽसिलतिकां हस्ताब्जके विभ्रती ह्युत्ततुंगस्तन शोभिवक्षसि चलैर्हारादिभिः शोभिता । दंतान्तर्गतमांस शोणित वसासिक्तास्ति यस्यास्तनूः कालश्यामलवर्णिका रक्षतु ।।

देवी का ध्यान करते समय यह भावना करनी चाहिए कि देवी के एक हाथ में कैंची (कर्तनी) और दूसरे हाथ में तलवार सुशोभित है। देवी के कुच (स्तन) उन्नत हैं और गले में आभूषण सुशोभित हैं। दैत्यों (दुष्टों) के मांस को दांतों के अलगे भाग से चबाने के कारण रक्त की धारा बहने से उनका अंग आर्द्र है। काल (यम) के समान उनका वर्ण काला है। देवी के पृष्ठभाग (कमर) पर बालों की लटें सुशोभित हो रही हैं। ऐसी देवी मेरी रक्षा करें।

स्थानं वृक्षतले तत्र यामिन्यां दिवसत्रयम् । जपेदष्टसहस्रं तु ध्यायेदेकाग्रमानसः ।

जपांत च महापूजा पुनर्धूपं निवेदयेत् । चंदनोदकमिश्रेण दत्त्वार्घ्यं तुष्यति ध्रुवम् । माता वा भगिनी भार्या हृष्टा भवति कामिता । करामलकतां कृत्वा । माता भूत्वा जगत्त्रयम् । शताष्टपरिवारस्य ददात्यंजनभूषणम् । भगिनी चेन्महाभागा सहस्रयोजनादयि । ददाति स्त्रियमानीय दिव्यं रसं रसायनम् । भार्या चेत्पृष्ठमारोप्य स्वर्गं प्रयाति नित्यशः । दीनाराणां सहस्रंतु रसं चैव रसायनम् । सर्वाशां पूरयत्येव सदा देवी विभूषिणी ।।

अश्वत्थ (पीपल) के वृक्ष के नीचे तीन रात तक रहकर आठ हजार मंत्र जप कर एकाग्रता से ध्यान करने के बाद देवी की महापूजा करनी चाहिए। फिर धूप दिखाकर चंदन मिला अर्घ्य देने से देवी साधक पर शीघ्र प्रसन्न होती हैं। देवी का कामनानुसार मां, बहन या पत्नी के रूप में ध्यान कर पूजा करनी चाहिए। फलस्वरूप देवी साधक को मनोवांछित फल प्रदान करती हैं। यदि मां के रूप में देवी दर्शन दें तो दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है। यदि बहन के रूप में दर्शन दें तो हजार योजन दूर दिव्य रस-रसायन भी पलक झपकते ही साधक को सुलभ हो जाता है। इसी तरह पत्नी-रूप से देवी दर्शन दें तो रस, रसायन एवं धन की प्राप्ति कराती हैं। पत्नी के रूप में आद्या विभूषिणी देवी साधक की सभी कामनाएं पूर्ण करती हैं।

पराकुंडलिनी साधना

पराकुंडलिनी ध्यानं शृणु देवि महेश्वरि । कर्णे कुंडलधारिणी शशिमुखी लीलावती सस्मिता शैलश्रोणि विलंबिकांचिवितता व्यामुग्धलोकत्रया । मुक्ताहार मरीचिकांतिविलसत्प्रोत्तुंगकुंभस्तनी पायात्कुंडल धारिणी त्रिजगतामानंद—संदोहभूः ।।

हे उमा! पराकुंडलिनी देवी का ध्यान करते समय भावना करनी चाहिए कि देवी के कानों में कुंडल सुशोभित हैं और मुख चंद्रमा के समान है। लीला करने वाली ऐसी देवी मंद-मंद मुस्कान बिखेर रही हैं। पर्वत रूपी श्रोणि तट पर विवतकंची (करधनी) धारण किए हैं। मोती की कांति के समान कांतिवत, कुंभ के समान उन्नत उरोजों वाली तथा तीनों लोकों को आनंद प्रदान करने वाली पृथ्वीरूपा कुंडलिनी देवी मेरी रक्षा करें।

पराकुंडलिनी देवी का ध्यान मंत्र निम्नलिखित है—

श्मशाने पूजयेदेतामयुतं जपमाचरेत् । आयाति तत्क्षणाद्देवी ततः कुंडलधारिणी । साधकेनापि रक्तार्घ्यं देयं तुष्टा वदत्यपि । किं कर्तव्यं मया वत्स मातरुक्त्वेति साधकः । पंचाशतं च दीनारांदेहि त्रैलोक्यदायिनी ।।

हे देवी! यह साधना श्मशान भूमि में करनी चाहिए। साधना काल में देवी के मंत्र का दस हजार बार जप करना आवश्यक है। साधना से प्रसन्न होकर पराकुंडलिनी देवी जब साक्षात् प्रकट हों तो साधकों को चाहिए कि वे रक्त का अर्घ्य दें। इससे प्रसन्न होकर देवी जब साधक से कहे—वत्स! अब मुझे आज्ञा दे। तब साधक कहे—हे माता! आप तीनों लोकों को सुख प्रदान करने वाली हैं। अतः मुझे भी सर्वसुख प्रदान करें।

सिंदूरहारिणी साधना

अतः परंतु चार्वंगि सिन्दूरहारिणीमनुः । क्रोधद्वयेंदुसंयुक्तः सिंदूरहारिणी—पदम् । कूर्चबीजत्रयं चास्त्रं संप्रोक्तं विविधं तथा ।।

हे देवी! अब मैं सिंदूरहारिणी योगिनी की साधना बताता हूं। पहले मंत्रोद्धार करना चाहिए। इसके लिए इंदु (बिंदु) से युक्त क्रोधद्वय तथा कूर्च बीजत्रय अस्त्र का योग करके मंत्र का उच्चारण करें।

सिंदूर हारिणी देवी का ध्यान मंत्र निम्नलिखित है—

सिंदूराकृतिहारिणी चलदलव्यालोलशाश्वास्वरा सोत्कंठीकृत गात्रयष्टि शुभगा शुभ्रांशुचंद्रस्मिता । अंतः संततदंतकांतिमलिना त्रैलोक्य शोभाकरी पायादुन्नतबाहुयुग्मलतिका सिंदूरहारिण्यसौ ।।

सिंदूर सम वर्ण वाली, कंपित स्वर वाली, प्रसन्नचित्त, स्निग्ध मुस्कान वाली, मलिन दांतों वाली, त्रैलोक्य की शोभा तथा लंबी बांहों वाली सिंदूरहारिणी देवी का ध्यान कर उनसे रक्षा की प्रार्थना करनी चाहिए।

शून्ये देवालये गत्वा निर्जने निशि साधकः । तत्त्वसंश्यादिनं यावज्ज्पस्तत्त्व सहस्रकः । तदंते महतीं पूजां वस्त्रालंकारभूषणैः । कुर्यात्साधकवर्यस्तु भार्या भवति कामिता । वरं वरय शीघ्रं त्वं प्रोक्ता सिंदूरहारिणी । रक्षति द्वादशदिनं देवी सिंदूरहारिणी ।।

साधकों को चाहिए कि वे किसी एकांत देवालय में जाकर रात्रिकाल में पच्चीस दिनों तक पच्चीस हजार बार मंत्र का जप करें। फिर महापूजा कर वस्त्राभूषणों से देवी को अलंकृत करें। साधना काल में जब देवी भार्या (पत्नी) के रूप में उपस्थित हों और साधक से वर मांगने को कहें तब साधक को कहना चाहिए कि हे देवी! आप बारह दिन तक मेरी रक्षा करें।

सिंहिनी साधना

अतः परं देवि शृणु सिंहिन्याश्च महामनुम् । मायाद्वयं क्रोधद्वयं सिंहिनीति पदंततः । पुनः क्रोधं तदंते च सिंहिनी च महामनुः । ह्रीं ह्रीं फट् फट् सिंहिनी हूं हूं फट् । शैलाग्रे निर्जने वापि सिंहिन्याः पूजनं तथा ।।

हे देवी! अब मैं सिंहिनी साधना का वर्णन करता हूं। दो मायाबीज (ह्रीं ह्रीं), दो क्रोधबीज (फट् फट् सिंहनी), फिर क्रोध बीज (हूं हूं फट्) को मिलाने से सिंहिनी मंत्र बनता है। यथा— **ह्रीं ह्रीं फट् फट् सिंहिनी हूं हूं फट् ।** मंत्रोद्धार के बाद सिंहिनी देवी की पर्वत या एकांत स्थल पर पूजा करनी चाहिए।

सिंहिनी देवी का ध्यान इस प्रकार करें—

शैलाग्रक्रमदुर्गमंतु अटवीदुर्गास्तु दैत्याहते केशाग्रस्थ समस्तविष्णुचरणं प्रभ्रष्टसंहिनी । यावंतो बलदंडवारणबलात् प्रक्षु क्वसिद्धांगना शेषं पातु समस्तमंतक कुलव्याकल्पमानाकला ।।

इस मंत्र से सिंहिनी देवी का ध्यान किया जाता है। पूजन काल में भी इसी मंत्र का उच्चारण करना चाहिए।

गत्वैकलिंगं यामिन्यां प्रजपेदयुतं मनुम् । ततो हृष्टातिवरदा सिंहिनी चेति पूजिता । किं करोमि वदत्येव भार्या भवति कामिता । दिनावसाने यामिन्यां सिंहिन्यायाति राति च । वस्त्रयुग्मं रसमयं साधकाय दिने दिने ।।

रात्रिकाल में शिव मंदिर स्थित शिवलिंग के समीप इस मंत्र का दस हजार बार जप करना चाहिए। पूजा व मंत्र जप के प्रभाव से सिंहिनी देवी साधक को दर्शन देकर पूछती हैं कि भार्या के रूप में मैं तुम्हारे लिए क्या करूं। फिर सिंहिनी देवी स्वतः ही सायंकाल साधक को वस्त्र तथा रस नित्य प्रदान करती हैं।

हंसिनी साधना

अतः परं शृणु चार्वंगि हंसिनीसाधनक्रमम् । ॐ हूं हूं हूं फट् हंसिनी प्रणवं च त्रिकूर्चास्त्रहंसिनी कथितो मनुः ।।

हे उमा! हंसिनी देवी का मंत्र **ॐ हूं हूं हूं फट् हंसिनी** है। इसकी साधना विधिपूर्वक सुनो।

हंसिनी देवी का ध्यान निम्न प्रकार करें—

शुभ्रा शुभ्रसरोजतुल्यनयना सायुग्मबाणान्विता शुश्रुषाकुल मुग्धसाध्य वनितासंसेविता सादरम् । किंचित्तिर्यगपांगलोलवलि तव्यामुग्धस्मेरानना दिव्या कांचनरत्नहारललिता श्रीहंसिनी पातु नः ।।

साधक को शुभ्र वर्णा, श्वेत कमल सदृश नेत्रों वाली, दो बाणों को धारण करने वाली, मुग्ध भाव से साधक की पत्नी (भार्या) रूप में सेवा के लिए तत्पर रहने वाली, मंद हास्य करने वाली तथा मनोहर स्वर्णमाला धारिणी हंसिनी देवी का ध्यान करते हुए रक्षा की प्रार्थना करनी चाहिए।

वज्रपाणिर्गृहं गत्वो प्रतिमां शोभनां लिखेत् । अवधानेन संपूज्य जपेदयुत संख्यकम् । यावदर्द्धनिशा देवि । हंसिन्यायाति निश्चितम् । चंदनार्घ्य प्रदानेन दृष्टा भवति हंसिनी । किं मया ते प्रकर्तव्यं शीघ्रं तद्वद साधक वस्त्रालंकार भोज्यानि दिव्यार्थं संप्रयच्छति । अवशेषव्ययाभावान्न ददाति प्रकुप्यति ।।

साधक हाथ में वज्र लेकर घर में प्रविष्ट होकर हंसिनी देवी की चित्राकृति बनाएं। फिर एकाग्रचित्त से देवी के मंत्र का दस हजार बार जप करें। मंत्र जप के प्रभाव से जब हंसिनी देवी आधी रात में साधक को दर्शन दें तब साधक देवी की गंधोपचार से पूजा करें। इससे देवी प्रसन्न होकर साधक से पूछती है कि हे भक्त! मेरे लिए क्या आज्ञा है? ऐसा कहकर देवी स्वेच्छा से ही साधक को वस्त्रालंकार एवं खाद्य पदार्थ देती हैं। साधक का दायित्व है कि वह उस सामग्री में से अपने पास उतना ही भाग रखे, जितना वह खर्च कर सकता है, शेष सामग्री दीन-हीनों में बांट दे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो हंसिनी देवी कुपित हो जाती हैं और कुछ भी अनर्थ कर सकती हैं।

नटी साधना

इतः परं महामाये शृणु मे नटीसाधनम् । ॐ हूं हूं फट् फट् नटी हूं हूं हूं । तारं कूर्चक्रोधास्त्रद्वयतो नटीति पदमुद्धरेत् । कूर्चत्र यंतु मंत्रोऽयं कथितो नर्तकी मनुः ।।

हे महामाये! हे पार्वती! अब मैं नटी देवी की साधना का वर्णन करता हूं। **हूं हूं फट् फट् नटी हूं हूं हूं** —यह नटी देवी का मंत्र है।

नटी देवी का ध्यान निम्न प्रकार करें—

फुल्लेंदीवर सुन्दरोदरमुखी प्रोत्तुंगकुंभस्तनी द्योतंती मृगमीनयुग्मनयना

सानंदमंदस्मिता । क्षीराम्भोनिधिसंभवा विलसिता भक्तारिसंनाशिनी वीणागीत विलाशिनी भगवती व्यवहारवाक्चातुरी ।।

नटी देवी का ध्यान करते समय साधक को यह भावना करनी चाहिए कि देवी खिले हुए नील कमल के समान मुख वाली, कलश सम उन्नत उरोजों (स्तनों) वाली, हिरणी व मछली के समान चंचल नेत्रों वाली, सदा आनंदमग्न, मंद-मंद हास्य से युक्त, क्षीरसागर से प्रादुर्भूत, सुहृदजनों के शत्रुओं का नाश करने वाली, वीणा पर गायन करने वाली तथा नटनी जैसे हाव-भाव वाली हैं। इस रूप में देवी का ध्यान करना चाहिए।

नीचपाशं गमं गत्वा सप्ताहजपपूजने । नटी सुसिद्धा भवति धूपं दद्यान्मुहुर्मुहुः । चंदनेनार्घ्यं देयंतु नैवेद्यंच मनोहरम् । सदा कामभोगदात्री भार्या भवति नर्तकी ।। सुवर्णफलमेकंतु व्ययं त्यक्तवानुगच्छति । दिने दिने नटी देवी स्थायिनी भवति ध्रुवम् ।।

किसी नीचे स्थान पर बैठकर साधक को सात दिन तक देवी का मंत्र जप करते हुए साधना करनी चाहिए। देवी के निमित्त अधिक धूप खेने (जलाने) से वे शीघ्र ही प्रसन्न होकर साधक को सिद्धि प्रदान करती हैं। जब देवी साक्षात् दर्शन दें तो साधकों को चाहिए कि वे चंदन मिले जल का अर्घ्य व मनभावन नैवेद्य देवी को अर्पित करें। इससे देवी प्रसन्न होकर नृत्य करती हैं और साधक को सभी प्रकार के भोग प्रदान करती हैं। इतना ही नहीं, देवी साधक के नित्य होने वाले व्यय को भी स्वयं वहन करती हैं। उसे स्वर्ण आदि प्रदान कर उसके समीप स्थिर भाव से रहती हैं।

चेटी साधना

अतः परं महादेवि चेट्या आकर्षणं शृणु । मंत्रो यथा—तारं कूर्चद्वयांते च अस्त्रयुग्मं ततः परम् । चेटी क्रोधद्वयं चोक्तं चेटी मंत्रोत्तमोत्तमः ।।

हे देवी! अब चेटी देवी की साधना विधि सुनो। चेटी देवी का श्रेष्ठ मंत्र यह है— **ॐ हूं हूं ह्रैं फट् फट् चेटी हूं हूं ।**

चेटी देवी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए—

देव्येषाऽमृतभाषिणी शशिमुखी भ्रष्टोत्तरीयाधरा विभ्राणा कलशं सरोजममलं स्वर्णं च सीमंतके । श्रीखेडादिविलेपनामलवपुः सौरभ्यसंभाविता किंचिद्धर्मसमाहितापिकरवा पायात्प्रभाचेटिका ।। अत्रापि भीषणस्थाने नामोच्चारणमात्रतः । ध्रुवं चेटी समागत्य चेटीकर्म करोत्यपि । अथवा स्वगृहद्वारे त्र्यहं रात्रौ जपं चरेत् । आगत्य नियतं देवी चेटीकर्म करोति च ।।

साधक को चेटी देवी का ध्यान करते समय यह भावना करनी चाहिए कि वे मधुरभाषिणी, चंद्रसम मुख वाली, मलीन वस्त्र धारण करने वाली, सुन्दर होंठों वाली, कमलदल के समान मनोहर कलश धारण करने वाली, स्वर्णधारिणी, चंदन के सुगंधित विलेपन से युक्त तथा कोयल के समान मधुर कंठ वाली हैं। चेटी देवी की साधना के लिए साधक भयानक स्थान में चेटी देवी का नामोच्चारण करें तो चेटी देवी साधक के समक्ष उपस्थित होकर उसका कार्यसाधन करने लगती हैं। यदि ऐसा न कर सकें तो साधकों को चाहिए कि वे अपने ही घर के दरवाजे पर तीन दिन-रात तक चेटी देवी का मंत्र जप करें। मंत्र जप के प्रभाव से चेटी देवी उपस्थित होकर साधक

के सभी कार्य दासी के समान करने लगती हैं।

कामेश्वरी साधना

तारं कूर्चास्त्रयुग्मं कामेश्वरी भूतिनी ततः । परं डेन्तं क्रोधत्रयं कामैश्वर्यामनुः स्मृतः ।।

हे देवी! अब कामेश्वरी साधना विधि का वर्णन करता हूं। कामेश्वरी देवी का मंत्र है—**कामेश्वरी ॐ हूं फट् फट् कामेश्वर्यै भूतिन्यै हूं हूं हूं ।**

कामेश्वरी देवी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए—

ॐ तालस्कंधसमागता मधुरता कामंतु पुष्पान्विता गायत्री मधुराधरा स्मितमुखी वीणायुता गायती । रक्तांभोजविलोचना मधुमदैर्यूक्ता समंतादियं पुष्यत्पुष्प्यधनुर्धरामधुमुखी कामेश्वरी भूतिनी ।।

साधकों को कामेश्वरी देवी का ध्यान करते हुए यह भावना करनी चाहिए कि उनका वासस्थल ताल वृक्ष (ताड़वृक्ष) है। वह मदपान में अनुरक्त रहती हैं। पुष्प समूहों से आवेष्टित वह देवी सुहृदजनों की रक्षक, मनोहर अधरों वाली, सदैव मंद हास्य करने वाली, वीणावादन कर गायन करने वाली, रक्त-कमलवत नेत्रों वाली तथा पुष्परूपी बाण धारण करने वाली हैं। ऐसी देवी मेरी रक्षा करें।

तत्र स्थानं समागत्य कृत्वा मांसस्य भक्षणम् । मांसादिना बलिं दत्त्वा सहस्रं जपमाचरेत् । मनुमर्कं सहस्रंतु जपित्वा सिद्धिमाप्नुयात् । जपन्निशीथ मायाति रक्तेनार्घ्य निवेदयेत् । कामेश्वरी भवेत्तुष्टा भार्या भवति कामिता । सर्वाशां पूरयत्येव राज्यं यच्छति निश्चितम् ।।

साधकों को चाहिए कि वे उस स्थान (ताल या ताड़ वृक्ष) के समीप जाकर मांस का आहार ग्रहण करके मांस की बलि दें। फिर एक हजार बार देवी का मंत्र जप करें। इस तरह बारह हजार बार जप करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। साधकों को चाहिए कि वे जप काल में रात्रि को रक्त का अर्घ्य भी दें। ऐसा करने से देवी संतुष्ट होकर साधक की स्त्रीवत दासी हो जाती हैं तथा उसकी सभी मनोकामनाएं पूरी करती हैं। यहां तक कि राज-पाट भी प्रदान करती हैं।

कुमारी साधना

हूं हूं फट् फट् देव्यै हूं हूं हूं । क्रोधद्वयास्त्रयुग्मं चे देवीति पदमुद्धरेत् । डेन्तं क्रोधत्रयं गुप्तं कुमारी मंत्रमुत्तमम् ।।

हे पार्वती! अब कुमारी देवी की साधना विधि सुनो।

हूं हूं फट् फट् देव्यै हूं हूं हूं कुमारी देवी का मंत्र है। मंत्रोद्धार इस प्रकार करना चाहिए—क्रोधद्वय (हूं हूं), अस्त्रयुग्म (फट् फट्) और पद ‘देव्यै’ है। फिर क्रोधत्रय (हूं हूं हूं) जिसमें हो, वह कुमारी देवी का मंत्र कहलाता है।

कुमारी देवी का ध्यान मंत्र निम्नलिखित है—

दिव्यकार्मुकहेमाभा कुमारी दिव्यरूपिणी । सर्वालंकारसंयुक्ता भार्या भवति साधिता ।।

कुमारी देवी का ध्यान करते समय यह भावना करनी चाहिए कि देवी दिव्य धनुष धारण किए हैं। स्वर्ण के सदृश उसकी कांति है। वह सभी प्रकार से अलंकृत हैं। दिव्य रूपराशि वाली ऐसी देवी मंत्र जप से प्रसन्न होकर भार्या (पत्नी) के रूप में साधक के वशीभूत हो जाने वाली हैं।

रात्रौ देवगृहं गत्वा तत्र शय्यां प्रकल्पयेत् । सितवस्त्रं चंदनं च ज्योतिः पुष्पं प्रदापयेत् । धूपं तु गुग्गुलं दत्त्वाष्टसहस्रं जपेन्मनुम् । जपांते नित्यमायाति चुंबनालिंगनादिभिः । कामिता जायते भार्या सत्यं देवी कुमारिका । ददात्यष्टौ च दीनारांदिव्यवस्त्रयुगं तथा । कामिकां भोजनं दिव्यं परिवारस्य दास्यति । अन्याश्रमगृहाद्व्यामानीयाशु प्रयच्छति । नित्यं सहस्रं जप्त्वा तु सा चायाति कुमारिका । सत्यं सत्यं पुनः सत्यं शृणु मे प्राणवल्लभे ।।

मुहुर्मुहुर्जपेन्मंत्रं क्रोधस्य मंत्रमुत्तमम् ।
क्रोधाधिपं व्योमवक्त्रं वज्रपाणिं सुरांतकम् ।।
एतन्मंत्रमविज्ञाय यो जपेत्सिद्धिकांक्षया ।
तस्यस्यान्निष्फलं कर्म अंते नरकमाप्नुयात् ।
कलिकल्पतरोर्वल्ली भूतिनी सिद्धिरुच्यते ।।

साधकों को चाहिए कि वे रात्रिकाल में किसी देवालय में जाकर शय्या बिछाएं। फिर चंदन, श्वेत वस्त्र व चमेली के पुष्प से शय्या को सुसज्जित करें। तत्पश्चात् गुग्गुल (धूप) से वातावरण सुगंधित कर कुमारी देवी के मंत्र का आठ हजार बार जप करें। ऐसा करने से कुमारी देवी साधक के समक्ष उपस्थित होकर पत्नीवत व्यवहार करती हैं और साधक को धन, दिव्य वस्त्र एवं दिव्य भोजन प्रदान करती हैं।

शिवजी बोले—हे प्राणवल्लभे! जो पुरुष पूर्व में कहे गए मंत्र का एक हजार बार जप करता है, उसके समीप कुमारी देवी निश्चित रूप से आती हैं और उसे दूसरे का धन भी लाकर देती हैं। यदि देवी ऐसा न करें तो साधकों को क्रोध मंत्र का बार-बार जप करना चाहिए। हे देवी! जो साधक साधना विधि जाने बिना ही मंत्र जप करता है, उसे सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। वह मरणोपरांत नरक की यातना भोगता है।

सुन्दरी साधना

ततः शृणु परं देवि सुन्दरीसिद्धिसाधनम् । सुन्दर्यादिप्रभेदेन प्रत्येकं पूजयेच्छिवे । प्रातरुत्थायं सुस्नाते नित्यकर्म समाचरेत् । ततः प्रासादमारुह्य पूजास्थानं सुशोभनम् । बिल्वमूले श्मशाने वा प्रांतरे च चतुष्पथे । तत्रस्थः साधयेद्योगी योगिन्यादि च भूतिनीम् ।।

हे देवी! अब सुन्दरी देवी की साधना विधि बताता हूं। एकाग्र होकर श्रवण करो। हे वरानने! सुन्दरी आदि देवियों की भेद व क्रम के अनुसार पूजा करनी चाहिए। सर्वप्रथम साधक को सवेरे जल्दी शय्या का परित्याग कर स्नानादि से निवृत्त होकर घर के पूजास्थल, बिल्व मूल, श्मशान या चौराहे पर योगिनी (यक्षिणी, रक्षिणी) आदि देवियों की साधना करनी चाहिए।

अजिनासनगः शुद्धस्तिलकं मूर्ध्नि कारयेत् ।
ततो विधिवदाचम्य सूर्यार्घ्य प्रददेत्ततः ।।
स्वस्तिवाचनिकं कृत्वा शांतिपाठं पुनः पुनः ।

गणेशं बटुकं चैव पूजयेघंत्रकोपरि ।।
ततश्चोदंग्मुखो भूत्वा संकल्पं तत्र कारयेत् ।
गणेशं क्रोधभैरवं पूजयेत्परमेश्वरि ।।
मूलमंत्रेण प्राणायामं षडंगन्या समाचरेत् ।
पूर्वच्च पुनर्ध्यात्वा मानसैः पूजयेत्ततः ।।
कृत्वार्घ्यं स्थापनं तत्र पद्मष्टदलं लिखेत् ।
तन्मध्ये च विनिर्माय चंदनेन विलेपनम् ।।
लज्जाबीजं लिखेत्तत्र पुनर्ध्यात्वा प्रपूजयेत् ।
निशायां पूजयेद्वीरं दिवसे पूजयेत्पशुम् ।।
मूलमंत्रं महादेवि मासं व्याप्य जपेत् सुधीः ।
अर्द्धरात्रे ततः पूजां बलिं कृत्वा विधानतः ।
निर्भयः संजपेन् मंत्रं हृद्गतं च निवेदयेत् ।।

साधकों को चाहिए कि वे हिरण की खाल पर आसीन होकर ललाट पर तिलक लगाएं। फिर आचमन करें। इसके बाद स्वस्तिवाचन कर भगवान् सूर्य को अर्घ्य अर्पित करें। तत्पश्चात् यंत्र के ऊपर गणेश व बटुक की पूजा करें। पूजनोपरांत उत्तराभिमुख होकर संकल्प करें।

हे देवी पार्वती! संकल्प के बाद गणेश और भैरवी की पूजा करें। फिर मूलमंत्र से प्राणायामपूर्वक छह अंगों का न्यास कर ध्यान करते हुए मानसोपचार विधि से पूजन-कर्म करें। इसके बाद अर्घ्य देकर अष्टदल कमल उत्कीर्ण कर उसमें चंदन का लेप करें। फिर दलों के मध्य भाग में लज्जा बीज अंकित कर देवी भगवती का ध्यान कर पूजा करें। तदोपरांत रात्रिकाल में वीर एवं दिन के समय पशु की पूजा करें।

हे माहेश्वरी! साधकों को चाहिए कि वे एक मास तक मूलमंत्र का जप कर आधी रात को पूजा कर बलि दें। फिर भयहीन होकर मंत्र जप करते रहें।

यक्ष साधना

अतः परं महादेवी यक्षसाधनमुत्तमम् ।
विंशति नाम यक्षाणां प्रसिद्धः यथाः ।।
भीमवक्त्रः महावक्त्र सिंहवक्त्र हयानन ।
गर्द्धभास्य महावीरः बाहुवक्त्रः गजाननः ।।
विभृक बाहुकः वीरः सुग्रीव रंजकः पिशाचास्य ।
जृम्भक वामक अर्थद जयद मणिभद्रमनोहरः च ।।

शिवजी बोले—हे देवी! अब मैं यक्ष साधना विधि बताता हूं। यक्षों के बीस नाम कहे गए हैं। यथा—भीमवक्त्र, महावक्त्र, सिंहवक्त्र, हयानन, गर्द्धभास्य, महावीर, बहुवक्त्र, गजानन, विभृक, बाहुक, वीर, सुग्रीव, रंजक, पिशाचास्य, जृम्भक, वामक, अर्थद, जयद, मणिभद्र एवं मनोहर। इनका मंत्र निम्नवत है—

गंगनो ग्रहणश्चैव युक्तचंद्रार्द्धशेखरः ।
एकाक्षरमहामंत्रो साधकैर्जप्यते यदि ।

संख्ययाष्टसहस्राश्च सर्वसिद्धि प्रदायकः ।।

उपरोक्त एकाक्षरी महामंत्र का आठ हजार बार जप करने से साधक को सभी प्रकार की सिद्धियां सुलभ होती हैं।

देव्युवाच —

भीमवक्त्रादियक्षाणां महामंत्राः श्रुता मया ।
चंद्रशेखर तद्ध्यानं संक्षेपेण वद प्रभो ।।

देवी बोलीं—शीश पर चंद्र धारण करने वाले हे चंद्रशेखर! भीमवक्त्रादि जो यक्ष हैं, उनके महामंत्रों का कृपा करके वर्णन करें।

ईश्वरोवाच —

शृणु देवी! अथ कथयामि यक्षाणां मंत्र नामः हौं भीमवक्त्राय स्वाहा । हौं हौं महावक्त्राय स्वाहा, वं हौं सिंहवक्त्राय स्वाहा, हौं, लंकर्माणि साधय हयाननाय स्वाहा, हौं कुरु कर्माणि साधय साधय गर्द्धभास्य स्वाहा, हौं महावीराय स्वाहा, हौं कुरु कुरु वहुवक्त्राय स्वाहा, हौं महाबलिने गजाननाय स्वाहा, हौं विभृमाय स्वाहा । हौं हौं बाहुकाय स्वाहा । हौं ऐं वीराय स्वाहा, हौं सुग्रीवाय स्वाहा । हौं रंजकाय स्वाहा । हौं सर्वकर्माणि साधय पिशाचाय स्वाहा । हौं जृंभकाय स्वाहा । हौं लुं वामकाय स्वाहा । हौं अर्थदाय स्वाहा । हौं जयप्रदाय स्वाहा । हौं मणिभद्राय स्वाहा । हौं मनोहराय स्वाहा च । देवी! ततः लाभ सापनाम् विधि कथयामि । शृणु एकांततः ।

शिवजी बोले—हे प्राणवल्लभे! यक्षादि के नाम-मंत्र को सुनो जो इस प्रकार हैं— **हौं भीमावक्त्राय स्वाहा, हौं हौं महावक्त्राय स्वाहा, वं हौं सिंहवक्त्राय स्वाहा, हौं लंकर्माणि साधय हयाननाय स्वाहा, हौं कुरु कर्माणि साधय साधय गर्द्धभास्य स्वाहा, हौं महावीराय स्वाहा, हैं कुरु कुरु बहुवक्त्राय स्वाहा, हौं महाबलिने गजाननाय स्वाहा, हौं विभृकाय स्वाहा, हौं हौं बाहुकाय स्वाहा, हौं ऐं वीराय स्वाहा, हौं सुग्रीवाय स्वाहा, हौं रंजकाय स्वाहा, हौं सर्वकर्माणि साधय पिशाचाय स्वाहा, हौं जृम्भकाय स्वाहा, हौं लुं वामकाय स्वाहा, हौं अर्थदाय स्वाहा, हौं जयप्रदाय स्वाहा, हौं मणिभद्राय स्वाहा, हौं मनोहराय स्वाहा ।** हे देवी! अब यक्षों के ध्यान की विधि बताता हूं, सुनो।

यक्ष ध्यान

उपरोक्त यक्षों में से प्रमुख यक्षों का ध्यान निम्नवत है—

भीमवक्त्र ध्यान

प्रत्यालीढपदं कृष्णं खर्वकर्बुरमूर्धजम् द्विभुजं ।
दक्षिणे कर्त्री वामे खर्परधारिणम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं त्रिनेत्रं भीषणाननम् ।।

साधकों को भीमवक्त्र नामक यक्ष का ध्यान करते समय यह भावना करनी चाहिए कि वह काले रंग, लघुकाय, जटाजूट बालों वाले, दाएं हाथ में कर्तरी और बाएं हाथ में खप्पर लिए हुए हैं।

बाघ की खाल (चर्म) धारण किए भीमवक्त्र का मुख विकराल है। उनके नेत्र तीन हैं।

महावक्त्र ध्यान

ध्यायेद्देवं महावक्रमग्निवर्ण त्रिनेत्रकम् ।
द्विभुजं दक्षिणे खंग खेटकं वामहस्तकम् ।
कृष्णकेशंतु कुटिलं विकृतास्यं भयानकम् ।
साधकाय प्रयच्छंतमभयं वरमेव च ।

महावक्त्र यक्ष अग्नि के समान वर्ण वाले, तीन नेत्र एवं दो हाथों वाले हैं। उनके दाएं हाथ में खंग और बाएं हाथ में खेटक सुशोभित है। बाल काले एवं मुख चौड़ा तथा उग्र है। वह साधक को अभय वर प्रदान करते हैं।

सिंहवक्त्र ध्यान

ध्यायेद्देवं सिंहवक्त्रं जटाभार समन्वितम् ।
विकृतास्यं द्विजिह्वं च चतुर्नेत्रं द्विकर्णकम् ।
द्विभुजं च गदापाणिं वामे चाऽभयसंयुतम् ।।

सिंहवक्त्र का ध्यान करते समय साधकों को यह भावना करनी चाहिए कि सिंहवक्त्र विशाल जटाओं वाले, वक्र (टेढ़े) मुख वाले, दो जीभ वाले और दो हाथों में गदा धारण करने वाले हैं। वह बाएं हाथ से अभय वर प्रदान करते हैं।

हयानन ध्यान

श्वेतो हयाननः सर्वो द्विभुजोऽतिभयानकः ।
दक्षे डमरुकं घृते वामे चैव त्रिशूलकम् ।।

साधक को हयानन यक्ष का ध्यान करते समय यह भावना करनी चाहिए कि हयानन यक्ष शुभ्रवर्णी, लघु देह वाले, भीषण स्वरूप वाले, दाएं हाथ में डमरू तथा बाएं हाथ में त्रिशूल लिए हुए हैं।

महावीर ध्यान

ध्यायेद्देवं महावीरं द्विकर्णन्तु त्रिनेत्रकम् ।
द्विभुजं हास्यवदनं वराऽभ्य विधारकम् ।

हे देवी! साधना करते समय साधक को यह भावना करनी चाहिए कि महावीर यक्ष के दो कान, तीन नेत्र और दो हाथ हैं। उन दोनों हाथों में वर व अभय सुशोभित हैं अर्थात् वह वर एवं अभय प्रदान करने वाले और सदैव हास्य करने वाले हैं।

सप्तदशः पटलः

मृत्युंजय शिव विधान

देव्युवाच —

प्राणनाथ कृपासिंधो ब्रूहि शास्त्रविशारद । मृत्युंजयस्य पूजायाः किं फलं किं विधानक

देवी बोलीं—हे कृपासागर! शास्त्रों के संपूर्ण ज्ञानी! अब आप कृपा करके मृत्युंजय पूजा की विधि और फल भी बताएं।

ईश्वरोवाच —

वक्तुं नाहं क्षमो गौरि त्वयि स्नेहात् प्रकाशितम् । मृत्युं जयविधानं तु न वक्तव्यं बहिर्मुखे । मुखे तु देवि वक्तव्यं यत्नतः प्राणवल्लभे । मृत्युंजयो महादेवः साक्षान्मृत्युहरः परः । विधानं तस्य संक्षेपाद्वक्तव्यं शृणु सुन्दरी ।

देवेशि रोगशांत्यर्थं तस्य पूजाविधिर्यथा । मृत्युंजयं समापूज्य लिंग त्रिभुवनेश्वरम् । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बंधनात् । यस्तु संपूजयेदभयक्त्या लिंग मृत्युंजयाभिधम् यमोऽपि प्रणभेद्भक्त्या किं करिष्यतिपामरः ।

शिव बोले—हे पार्वती! यह विधान मैं कहना तो नहीं चाहता, लेकिन तुम्हारे स्नेह के वशीभूत होने के कारण कह रहा हूं। यह विधान अयोग्य मनुष्य (जिसकी धर्म में वृत्ति नहीं है) को नहीं बताना चाहिए। हे देवी! मृत्युंजय शिवरूप (मेरे ही रूप) मृत्यु को हरण करने वाले हैं। हे पार्वती! हे देवेश्वरि! अब मैं मृत्युंजय देव की पूजन विधि बता रहा हूं। तुम श्रद्धापूर्वक सुनो। शिवलिंग की पूजा करने से रोग व बंधन की निवृत्ति होती है। जो मनुष्य शिवलिंग की पूजा करता है, उसे यमराज भी श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं। फिर नीच वृत्ति वालों का तो ऐसे पुरुष के सम्मुख टिक पाना भी संभव नहीं है।

तस्य पूजाविधिं वक्ष्ये शृणु मत्प्राणवल्लभे । जातिभेदैर्मृत्तिकां तु गृहीत्वाऽशीतितोलकाम् । निर्माय पार्थिवं लिंग कांच्याधारे निवेशयेत् । पौराणिकेन मंत्रेण कुर्याच्च पठनं बुधः । स्नापयेत् पंचगव्येन प्रत्येकस्याष्टतोलकम् । स्वस्व मंत्रैश्च प्रत्येक द्रव्येण स्नापयेत् । सुधीः । रोगक्षयेच्छया विद्वान्नामगोत्रादिपूर्वकम् । उपविश्यासने विप्रो धृत्वा धौतं च वाससम् । रुद्राक्षमालां कंठे वै धृत्वा भस्मत्रिपुंड्रकम् । उपचाराः षोडश तु देया भक्तया प्रयत्नतः । सुवर्णस्यासनं देयं तथैवाभरणानि च । वस्त्रयुग्मं प्रदद्यात्तु परिधेयं यथा भवेत् ।।

हे प्राणप्रिये! अब तुम मृत्युंजय देव की पूजा विधि सुनो। जाति क्रमानुसार अस्सी तोला मिट्टी के शिवलिंग को कांच के पात्र में स्थापित कर पुराणों में उद्धृत मंत्रों द्वारा पूजा की जानी चाहिए। पूजा क्रम में प्रथम पंचगव्य (गाय के दूध, दही, घृत, गोमय, गौमूत्र) द्वारा लिंग को स्नान कराकर अलग-अलग मंत्रों से द्रव्यादि से स्नान कराना चाहिए। रोग नाश की कामना से नाम व गोत्रोच्चारण कर स्नान कराकर ब्राह्मण आसनारूढ़ होकर रुद्राक्ष की माला एवं भस्म का त्रिपुंड धारण करें। फिर षोडशोपचार विधि से पूजन कर स्वर्ण निर्मित आसन पर लिंग को आरूढ़ कर आभूषण व वस्त्रादि अर्पित करना चाहिए।

शिवयंत्र

षट्कोणमंडलं कृत्वा तदंते साध्यनामकम् । प्रासादबीजं हौं संलिख्य यतः षट्कोणेषु

प्रणवसहित पंचाक्षरवर्णान् षडंगमंत्रांश्च विलिख्य तद्बहिः पंचदलानि विरच्य तद्दले ॐ ईशानाय नमः । ॐ तत्पुरुषाय नमः । ॐ अघोराय नमः । ॐ सद्योजाताय नमः । ॐ वामदेवाय नमः । ॐ इति पंच मंत्रान् प्रागादिक्रमेण लिखेत् । तद्बहिरष्टदलनि रचयित्वा तद्दलेषु मातृकावर्णान् लिखेत् । तद्बहिर्वत्तं त्र्यंबकेन वेष्टयेत् । एतद्यंत्रं जपहोमादिना संपूज्य धारयेत् । आयुरारोग्यैश्वर्यादि सिद्धिर्भवति ।।

हे देवी! अब शिव यंत्र की निर्माण विधि का वर्णन करता हूं। सर्वप्रथम छह कोणीय यंत्र बनाकर बीच में साध्य व्यक्ति का नाम अंकित कर प्रासाद बीजमंत्र अंकित करें। फिर छह कोणों में प्रणव युक्त पंचाक्षर मंत्र **ॐ नमः शिवाय** अंकित कर छह अंगमंत्र अंकित करने चाहिए। यंत्र के बाहरी भाग में पांच दल अंकित कर उनमें **ॐ ईशाय नमः, ॐ अघोराय नमः, ॐ सद्योजाताय नमः, ॐ वामदेवाय नमः, ॐ तत्पुरुषाय नमः** को क्रम से अंकित करें। फिर यंत्र के बाहरी भाग के आठ दलों में मातृका वर्णों को अंकित कर उनके बाहर वाले भाग में त्र्यंबक मंत्र अंकित करें। इतना करने के बाद मंत्र जप एवं होम कर्म द्वारा पूजा करके यंत्र को पहनने से आयु की वृद्धि, निरोगता एवं सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है।

मृत्युंजय मंत्र विधान

अथवा शृणु देवेशि यंत्रं सर्वसुसिद्धिदम् । मध्येसाध्याक्षराढ्यं ध्रुवमभिवि लिखेन्मध्यमं दिग्दलेषु कोणेष्वंत मनोस्तत् क्षितिभुवनमयो दिक्षु चंद्रं विदिक्षु । ढांतं यंत्रं तदुक्तं सकलभयहरं क्ष्वेडभूतापमृत्युव्याधि व्यामोहदुःख प्रशमनमुदित । श्रीपदं कीर्तिदायि ।।

मधुपर्कं कांस्यपात्रे दद्याद्भोजनयुग्मकम् । बिल्वपत्रसहस्रंतु ह्यभग्नं विनिवेदयेत् । एवं संपूज्य लिंगैकं द्विसहस्रं मनुं जपेत् । समिभिदस्तु गुडूच्यास्तु तत्र होमं समाचरेत् । दक्षिणां ब्राह्मणे देवि सुवर्णं वस्त्रकं तथा । तदर्धं वा तदर्धं वा यथाविभवमानतः । अंगहीना न कर्तव्या पूजा चाफलदा यतः । एकलिंगं समाराध्य फलं स्यादन्यके युगे । तत्फलं लभते देविकलौ संख्या चतुर्गुणा । आम्रपात्रे तु संस्थाप्य जलं चाशीतितोलकम् । तज्जलेनैव देवेशि कुलैः सम्मार्ज्य रोगिणम् । क्षिपेद्दीपशिखायां च मंत्रमुच्चार्य मानकम् । एवं विधिविधानेन पूजयेम्मम लिंगकम् । यादृग्यादृग् भवेद्रोगो नाशमेति मयोदितम् सांगेन पूजयित्वा तु लभते वांछितं फलम् । अंगव्यतिक्रमेणैव वृथा भवति वासना । रोगी प्रमुच्यते सद्यो भोगीवोज्झितकंचुकः । यदि मद्वचने भक्तिस्तदा मुक्तो भवेद् ध्रुवम् । अन्यथा यदि देवेशि सर्वं भवति निष्फलम् ।

मधुपर्क एवं युग्म भोजन कांस्य पात्र में अर्पित कर छिद्रविहीन एक हजार बिल्व पत्र समर्पण करने चाहिए। इस तरह लिंग पूजा कर ऊपर दिए गए मृत्युंजय मंत्र का दो हजार बार जप करें। मंत्र जप के बाद गिलोय जड़ की समिधा बनाकर होम करना चाहिए। हे पार्वती! जब होम कार्य संपन्न हो जाए तो ब्राह्मण को स्वर्ण, वस्त्र और दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिए। अंगहीन द्वारा किया गया पूजन कृत्य निष्फल माना गया है।

हे देवी! लिंग पूजा करने का अन्य जन्मों में भी फल मिलता है। विशेषकर कलियुग में निर्धारित संख्या से चार गुना मंत्र जप करना चाहिए। आम पात्र (आम वृक्ष के पत्तों से बनाया) में अस्सी तोला जल भरकर गौरी का (तुम्हारा) कुशा द्वारा मार्जन करना चाहिए। इस रीति के

अनुसार शिवलिंग की पूजा करने से रोगों की निवृत्ति होती है। यदि कोई सांगोपांग पूजा करता है तो उसे मनोनुकूल सिद्धियां प्राप्त होती हैं। अंगहीन द्वारा की गई पूजा का फल नहीं प्राप्त होता। जो प्राणी विधिवत लिंग पूजा करता है, वह निश्चय ही रोगमुक्त होता है। जो शिवभक्त होते हैं, उन्हें रोग-रिपु वैसे भी पीड़ित नहीं करते। हे देवी! यह सत्य मानो, जिनकी मेरे प्रति निष्ठा नहीं है, उनके सारे कर्म विफल होते हैं।

यंत्रपूजा विधान

अतः परं देवि शृणु यंत्रपूजा विधानकम् । कृतनित्यक्रियो देवि स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । संकल्पं च ततः कुर्याद्विधिवाक्यानुसारतः । अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीपूर्वकदेवशर्मा यंत्राधिष्ठित देवतायाः पूजार्थममुक मंत्र संस्कार महं करिष्ये । इति संकल्प्य महादेवि गुरोरर्चनमाचरेत् । पंचगव्यं ततः कृत्वा शिवमंत्रेण मंत्रितम् । तत्र चक्रं क्षिपेन्मंत्री प्रणवेन समाकुलम् । तदुद्धृत्य ततश्चक्रं स्थापयेत्स्वर्णपात्रके । पंचामृतेन दुग्धेन कस्तूरीकुंकुमेन च । पयोद्रधिघृतक्षौदशर्कराद्यैनरुक्रमात् । तोयधूपांतरैः कुर्यात् पंचामृतमनुत्तमम् । अष्टाभिः कलशैर्देवीमष्टाभिर्वारिपूरितैः । कषायजलसंपन्नैः कारयेत् स्नानमुत्तमम् । स्नानं समाप्य तां देवीं स्थापयेत् स्वर्णपीठके ।।

हे देवी! अब मैं तुम्हें यंत्र पूजा की विधि बताता हूं। स्वस्तिवाचन (मंगल गान) एवं नित्यकर्म से निवृत्त होकर साधक को गुरु पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् पंचगव्य (दूध, दही, घी, गोबर, गौमूत्र) बनाकर शिवमंत्र से उसे अभिमंत्रित करना चाहिए। फिर प्रणव सहित यंत्र बनाकर उसे स्वर्ण निर्मित पात्र में प्रतिष्ठापित करें। तदोपरांत पंचामृत (दूध, दही, घी, शहद, शक्कर) एवं सुगंधित द्रव्य युक्त जल से यंत्र को स्नान कराना चाहिए। तत्पश्चात् आठ प्रकार के जल से भरे आठ कलशों में सर्वोषधि व सुगंधमय द्रव्य डालकर तैयार किए गए जल से स्नान कराकर लिंग को स्वर्ण-सिंहासन पर प्रतिष्ठापित करना चाहिए।

गायत्री मंत्र

यंत्रराजाय विद्महे महामंत्राय धीमहि तन्नो यंत्रः प्रचोदयात् । स्पृष्टवा यंत्रं कुशाग्रेण गायत्र्या चाभिमंत्रयेत् । अष्टोत्तरशतं देवि देवता भाव सिद्धये । आत्मशुद्धि ततः कृत्वा षडंगैर्देवतां यजेत् । तत्रावाह्य महादेवि जीवन्यासंच कारयेत् ।

अब उपरोक्त गायत्री मंत्र का वाचन कर यंत्र को कुशा के अगले भाग से छुआकर अभिमंत्रित करना चाहिए। फिर यंत्र में देवभाव करते हुए एक सौ आठ बार मंत्र जप कर पवित्रतापूर्वक षडंग विधि से देवपूजा करनी चाहिए। यंत्र में देवता का आह्वान नीचे दिए मंत्र से करके प्राण-प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए।

प्राणप्रतिष्ठा मंत्र

अस्य प्राणप्रतिष्ठामंत्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः । ऋग्यजुः सामानिच्छंदांसि । चैतन्यं देवता । प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः । उपचारेः षोडशभिर्महामुद्रादिभिस्तथा । फलतांबूलनैवेद्यैः शिवं तत्र समर्चयेत् ।। पट्टसूत्रादिकं दद्याद्वस्त्रालंकारमेव च । अगुरुं

चामरं घंटां यथायोग्यं महेश्वरि । सर्वमेतत्प्रयत्नेन दद्यादात्महितेरतः । ततो जपेत्सहस्रं तु सकलेप्सितसिद्धये । जपसमापनं कुर्यादष्टांगेन नमस्कृतम् । अष्टोत्तरशतं हुत्वा संपाताज्यं विनिक्षिपेत् । होमकर्मण्यशक्तश्चेद् द्विगुणं जपमाचरेत् । गुरवे दक्षिणां दद्याततो देवीं विसर्जयेत् ।।

प्राणप्रतिष्ठा इस प्रकार करनी चाहिए—पहले विनियोग करें। फिर षोडशोपचार पूजन कर महामुद्रा सहित विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिए। तत्पश्चात् ऋतुफल, पान और भोग (नैवेद्य) भगवान् शिव को (मुझे) अर्पित करना चाहिए। इसी प्रकार शिव की प्रसन्नतार्थ रेशमी वस्त्र सहित अन्य वस्त्राभूषणादि भी अर्पित करना चाहिए। यथाशक्ति अगुरु, चामर और घंटा अर्पण करने का भी विधान है। तत्पश्चात् मनोकामना पूर्ति के लिए एक हजार बार मूलमंत्र का जप करना चाहिए। जपकर्म पूर्ण होने पर साष्टांग नमस्कार कर अग्नि में एक सौ आठ बार होम करने के बाद घी को धारा रूप में अग्नि को अर्पित करना चाहिए। यदि कोई साधक होम न कर सके तो उसे दोगुना मंत्र जप अवश्य करना चाहिए। सभी कृत्य कर लेने के बाद गुरु या आचार्य को दक्षिणा से संतुष्ट कर देवता का विसर्जन करना चाहिए।

प्रयोग

कृतनित्यक्रियः स्वस्तिवाचनपूर्वकं संकल्पं कुर्यात् । अद्येत्यादि अमुक गोत्रः शर्मा अमुक देवतापूजार्थममुक यंत्रसंस्कार महं करिष्ये । ततः पंचगव्यमानीय हौं इति मंत्रेणाष्टोत्तरशतमभिमंत्र्य प्रणवेन यंत्रं तत्र क्षिपेत् । तत उत्थाप्य स्नापयेच्छीतलजल चंदनगंधकस्तूरीकुं कमैः । स्नापयित्वा पंचगव्यमानीय हौं इति मंत्रेणाष्टोत्तर शतमभिमंत्र्य प्रणवेन शोधयित्वा स्नापयेत् । तत्र क्रमः । प्रथमं क्षीरेणं स्नापयित्वा धूपं दद्यात् । एवं दध्ना घृतेन मधुना शर्करया च । ततोऽष्टाभिः कलशैः स्नापयेत् । कु कु मगोरोचनया चंदनमिश्रितैस्तोयैः स्नापयेत् । सर्वत्र स्नानं मूलमंत्रेण ततो यंत्रमुत्तोल्य कुशाग्रेण तत्स्पृष्ट्वा गायत्र्यष्टोत्तरशताभिमंत्रितं कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । अस्य प्राणप्रतिष्ठा मंत्रस्य ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुः सामानि छंदांसि चैतन्यं देवता प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः । तद्यथा—आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः । अमुकदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः । जीव इह स्थितः । सर्वेंद्रियाणि वांग्मन इत्यादि प्राणान् प्रतिष्ठाप्य तत्र प्रकृतिदेवतामावाह्य षोडशोपचारै पंचोपचारैर्वा पूजयेत् । तत्र पट्टसूत्रादिकं दत्त्वा अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा जपित्वा शक्तश्चेद्बलिदद्यात् । ततोऽष्टोत्तरशतं होमं कुर्यात् । होमाभावे द्विगुणो जपः कार्यः । ततो दक्षिणां दत्त्वा छिद्रावधारणं कुर्यात् ।

हे देवी! अब यंत्र प्रयोग की विधि बताता हूं। सर्वप्रथम नित्यादि कर्म से निवृत्त होकर स्वस्तिगान कर संकल्पपूर्वक पंचगव्य को 'हौं' मंत्र द्वारा एक सौ आठ बार जप कर अभिमंत्रित करना चाहिए। फिर 'ॐ' का उच्चारण कर यंत्र को पंचगव्य में रखकर शीतल जल, चंदन, गंध, कस्तूरी, कुंकुम आदि से स्नान कराना चाहिए। तदोपरांत 'हौं' का उच्चारण कर प्रणव (ॐ) का जप करते हुए स्नान कराना चाहिए। पहले दूध से स्नान कराकर धूप दिखाएं। फिर इसी क्रम से दही, घी, शहद और शर्करा (शक्कर) से स्नान कराकर कलश के जल से स्नान कराना चाहिए। इसके बाद कुंकुम, गोरोचन तथा चंदन मिश्रित जल से स्नान कराना चाहिए। स्नान के समय

मूलमंत्र का उच्चारण अवश्य करना चाहिए। स्नान के बाद यंत्र को उठाकर एक सौ आठ बार मंत्र उच्चारण कर अभिमंत्रित करते हुए प्राणप्रतिष्ठित करने का विधान है। इसके बाद विनियोग करना चाहिए। प्राणप्रतिष्ठा मंत्र के देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश ऋषि हैं, ऋग, यजु, साम छंद हैं। देवता को प्राणप्रतिष्ठित करना ही विनियोग है।

विनियोग के बाद **आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः अमुक देवतायाः प्राणा इह प्राणाः, जीव इह स्थितः** मंत्र का उच्चारण करके देवता का आह्वान कर पंचोपचार एवं षोडशोपचार से पूजा करें। फिर वस्त्र रूप में रेशमी सूत्र देवता को अर्पित कर एक सौ आठ, एक हजार या शक्ति के अनुसार मंत्र जप कर बलि देनी चाहिए। फिर एक सौ आठ बार होम करना चाहिए। यदि कोई साधक होम न कर सके तो होम का दुगुना मंत्र जप करने का विधान है। अंत में दक्षिणा आदि प्रदान कर छिद्र आवरण परिधान करें।

बंध्या यंत्र

अतः परं देवि शृणु यंत्रधारणमुत्तमम् । यंत्रधारणमात्रेण सर्वाभीष्टफलं लभेद । जन्मबंध्या च या नारी शुभपुत्रवती भवेत् । तदा गोरोचनाद्येन लिखेद्यंत्रमनुत्तसम् । वृत्तद्वयं समालिख्य पद्ममष्टदलं लिखेत् । प्रतिपद्म लिखेन्मायाबीजं भूपुरकं ततः । भूर्जपत्रे लिखेद्यंत्रं धारयेतु महेश्वरि । कुक्षौ धृत्वा महायंत्रं शुभपुत्रवती भवेत् । प्रयोगांतरमयंत्रं प्राणसंकटो नहि । दक्षिणां गुरवे दत्तवा गृहणीयाद्यंत्रमुत्तमम् ।।

हे देवी! अब तुम यंत्र धारण की श्रेष्ठता के बारे में सुनो। यंत्र को धारण करने मात्र से सभी प्रकार की कामनाएं पूर्ण होती हैं। यदि कोई स्त्री भोजपत्र पर गोरोचन आदि सुगंधित द्रव्यों से दो वृत्त बनाकर उसमें आठ दलों वाला कमल अंकित करके उसके प्रत्येक दल में मायाबीज एवं भूपुर लिखकर कुक्षिभाग पर धारण करे तो वह निश्चित रूप से पुत्रवती होती है। चाहे वह जन्मबंध्या (बांझ) ही क्यों न हो। ऐसी स्त्रियों के लिए यह यंत्र विशेष लाभकारी है। जब कार्यसिद्धि हो आए तो गुरु को दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिए। गुरु न हों तो ब्राह्मण को दक्षिणा दें।

वृत्तं चतुर्दलं पद्म भूपुरेण समन्वितम् । वृत्तमध्ये लिखद्देवि साधकाख्यां विशेषतः । पुत्रवतीपदं पश्चात् भवत्विति पदं ततः । प्रणवैः पुटिता लज्जा त्रिधा पत्रेषु संलिखेत् । पूर्ववत्पूजयेद्देविधारयेद्दक्षिणे भुजे । सत्यं सत्यं हि देवेशि वंध्या पुत्रवती भवेत् । दुर्भगा चेद्भवेन्नारी सुभगा मासतो भवेत् ।।

एक अन्य प्रयोग यह है कि चार दलयुक्त भूपुर वाला वृत्त बनाकर उसके बीच भाग में उस स्त्री का नाम लिखकर ‘पुत्रवती भवतु’ लिखना चाहिए। यथा—‘उमा पुत्रवती भवतु।’ फिर प्रणव का संपुटन देकर लज्जा बीजमंत्रों को तीन दलों में अंकित कर पूजा करनी चाहिए। फिर दाईं बांह में यंत्र धारण करने से बांझ स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है। दुर्भागा स्त्री सौभाग्यवती होती है।

रक्षा यंत्र

अतः परं प्रवक्ष्यामि महारक्षाकरं परम् । धारणाद्दानवपतिर्महारक्षाकरो भवेत् । पंचदलं लिखेद्देवि ग्लौं बीजेनैव लांछितम् । गं पंचकं सर्वमध्ये लिखित्वा धारयेद्यदि । न तस्य

पुत्रभीतिः स्यात्तत्र रक्षाकरोहरः । गोरोचना कुंकुमाभ्यां भूर्जे संलिख्य धारयेत् । तत्र पूजां महादेवि गणपतस्य समाचरेत् । पूजितं धरितं चैव सर्वोपद्रवनाशनम् । वृत्तमष्टदलं पद्मं पुनः पद्मेषु संलिश्वेत् । गोरोचनाभिः संलिख्य धारयेत्परमेश्वरि । उक्तरूपेण लिंगस्य पूजां कृत्वा महेश्वरि । धारयेद्यो भवेत्तस्य ह्यपमृत्युविनाशनम् ।।

इस रक्षा यंत्र को धारण करने वाले की असुराधिपति भी रक्षा करता है। पांच दलयुक्त कमल बनाकर उनमें **ग्लौं** बीजमंत्र लिखना चाहिए। दलों के मध्य **गं** बीजमंत्र लिखकर पूजा कर धारण करने से पुत्रभय नहीं रहता। ऐसे मनुष्य की स्वयं भगवान् शिव रक्षा करते हैं। इस यंत्र को भोजपत्र पर गोरोचन व कुंकुम से अंकित कर गणेशजी की पूजा करने के बाद धारण करने से सभी आपदाएं दूर होती हैं तथा पुत्रलाभ होता है। आठ दल युक्त कमल बनाकर दलों में गोरोचन व सुगंधित द्रव्यों से **लं** बीजमंत्र अंकित कर धारण करने से पुत्रलाभ होता है। हे पार्वती! यंत्र पूजन तथा यंत्र धारण से अकाल मृत्यु कभी नहीं होती।

पुत्रजनन यंत्र

विंदुवृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः । प्रतिपत्रेषु यं बीजं लिखेदथ पृथक्पृथक् । पूर्ववत्पूजयेद्देवि धारणान्मृत्यु नाशनम् । काकवंध्याजनस्यापि बहुपुत्रकरं परम् । षट्कोणं विलिखेद् वृत्तं ततश्चाष्टदलं लिखेत् । षट्कोणेषु च षट् दीर्घान विलिखेत्परमेश्वरि । ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा लिखेदष्टदले ततः । सर्वमध्ये लिखेद्देवि ततः शृणु महेश्वरि । प्रणवस्तु ततो माया साधकाख्यं तु डेंतकम् । सुपुत्रं च समालिख्य उत्पादय पदं ततः । विधाय चैवं विधिवद्धार येद्यंत्रमुत्तमम् । धारणात्सर्वसंपत्तिर्भवेद्देवि न संशयः । पूजनं पूर्वमुक्तम् । देवीं कालीमंत्रेण पूजयेत् ।।

हे उमा! यदि अष्टदल युक्त कमल बनाकर प्रत्येक दल में **यं** बीजमंत्र लिखकर पूजन करके धारण किया जाए तो पुत्र की प्राप्ति होती है तथा मृत्यु भय नहीं रहता। इस यंत्र को धारण करने से काकबंध्या स्त्री भी पुत्रवती होती है। इसी प्रकार छह कोणीय वृत्त में आठ दल बनाकर सभी छह कोणों में बीजमंत्र तथा दलों में **ऐं ह्रीं ॐ ऐं फट् स्वाहा** लिखें। यंत्र के बीच में **ॐ** (मायाबीज) साधक का नाम तथा **सुपुत्रं उत्पादय** पद लिखकर विधिवत पूजा करके धारण करने से भी पुत्रलाभ होता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिए। इस यंत्र की पूजा काली मंत्र से की जानी चाहिए।

वशीकरण यंत्र

वशीकरणयंत्रंतु शृणु मत्प्राणवल्लभे । यस्य धारणमात्रेण वशी कुर्यात पुनः प्रिये । चतुर्वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः । ॐ शत्रुमुखं बंधयेति प्रतिपद्मदलं लिखेत् । यस्य नामाभिसंलिख्य बाहौ संधारयेच्छिवे । पूर्ववत्पूजयेद्देवीं जपेल्लक्षं विधानतः । चामुंडोक्तविधानेन पूजयेद्देवि साधकः । हुत्वा चैव विधानेन स वशी भवति ध्रुवम् ।।

शिवजी बोले—हे देवी! अब मैं तुम्हें वशीकरण यंत्र बताता हूं। सर्वप्रथम चार वृत्त खींचकर आठ दल अंकित कर उनमें **शत्रुमुखं बंधय** साध्य का नाम लिखकर पूजनोपरांत बांह में धारण करने से वशीकरण होता है। यंत्र पूजन चामुंडा पूजाविधान के अनुसार कर होम भी करना

चाहिए।

बंधमुक्ति यंत्र

प्रथमंतु लिखेद् वृत्तं तद्बहिस्तु स्वरांल्लिखेत् । बहिर्बुभूद्वयं लिख्य चतुर्दिक्षु च ह्रीं लिखेत् । वृत्तयुग्माष्टपत्रं च लिखेद् गोरोचनादिना । ग्रीवायां कंठदेशे वा शिखायां वापि धारणात् । बंधमुक्तिर्भवेत्तस्य नवमे दिवसे तथा । पूर्वोक्तविधिना लक्षं दुर्गा मंत्रं जपेद् बुधः ।।

हे देवी! बंधनमोचन यंत्र बनाने के लिए पहले एक वृत्त बनाना चाहिए। फिर वृत्त के बाहरी भाग में स्वरानुलेखन, दो बुभू तथा चारों दिशाओं में **ह्रीं** लिखना चाहिए। इसके बाद यंत्र में पुनः दो वृत्त खींचकर गोरोचनादि से आठ दल बनाकर उसे गले या शिखा में धारण करने से नौ दिन के भीतर ही बंधन से मुक्ति मिलती है। यंत्र सिद्धि हेतु एक लाख बार दुर्गा मंत्र का जप भी करना चाहिए। पूजन विधि पहले दी जा चुकी है।

डाकिन्यादि भय विनाश यंत्र

वृत्तयुग्मं लिखेत्तत्र महाबीजचतुष्टयम् । चतुष्कोणद्वयं बाह्ये लिखित्वा धारयेद्यदि । नाशयेत्क्षणमात्रेण डाकिन्यादिभवं भयम् । मृतवत्सा यदि भवेन्नारी दुखपरायणा । धारयेत् परमं यंत्रं जीववत्सा ततो भवेत् ।।

दो वृत्त खींचकर चार कोणों में महाबीज मंत्र लिखकर, पूजनोपरांत यंत्र धारण करने से डाकिनी आदि का भय नहीं रहता। इसके अतिरिक्त जिस स्त्री के पुत्र उत्पन्न होकर मर जाते हों या जो संतति के कारण दुःखी हो, वह यंत्र धारण करे तो भरपूर संतति सुख मिलता है तथा पुत्र संतति भी जीवित रहती है।

अकाल मृत्युनाशक यंत्र

दीर्घरेखाद्वयं दत्त्वा तद्गात्रेऽष्टदलं लिखेत् । ॐ ह्रीं देवदत्त ह्रीं रेखामध्ये लिखेच्छिवे । रेखागात्रदले ॐ हूं रेखाद्यंतदले च ॐ लिखेत् । गोरोचनाकुंकुमेन तथैवालक्तकेन वा । यस्य नाम तु संलिख्य स्थापयेत्परमेश्वरि । पंचामृतेषु देवेशि जीववत्सा भवेद्धि सा । तत्सुतस्याकालमृत्युर्नान्यथा जायते प्रिये । उक्तरूपे तथा पूजां लक्षमंत्र जपेच्छिवे ।।

दो लंबी रेखाएं खींचकर उनमें आठ दलों से युक्त कमल बनाएं। फिर रेखाओं के बीच में **ॐ ह्रीं देवदत्त ह्रीं ॐ** अंकित करें। रेखा के मध्य दल में **ॐ हूं** और रेखांत दल में **ॐ बीज** लिखें। फि गोरोचन, कुंकुम एवं लाख (चपड़ा) से साध्य व्यक्ति का नामांकन कर पंचामृत से यंत्र को स्नान कराना चाहिए। तत्पश्चात् यंत्र पूजा कर धारण करने से उस स्त्री की अकाल मृत्यु नहीं होती। मंत्र जप कम से कम एक लाख बार अवश्य करना चाहिए।

एकोनविंशतितमः पटलः

विजया (भांग) अनुपानम्

दुग्धयोगेन विजया महातेजस्करी स्मृता । क्षुदबोधबलकारित्वा चक्षुर्दोषापहारिणी । जलयोगेन सा हंति ह्यजीर्णादिगदान् क्षणात् । घृतेन मेधाजननी वाग्देवी वशकारिणी । कफदोषानशेषांस्तु मधुना सह नाशयेत् । सैंधवेन युता सा हि जठराग्निं विवर्द्धयेत् । सितया लवणेनापि गुडेन सह सेविता । अम्लपित्तं तथा शूलं विनाशयति तत्क्षणात् । फलपुष्टिप्रदा प्रोक्ता मधुरस्वरकारिणी । कैवल्यज्ञानता चेत्थं सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।।

हे पार्वती! अब मैं तुम्हें विजया अनुपान अर्थात् भांग-सेवन के बारे में बताता हूं। यदि भांग को दूध के साथ सेवन किया जाए तो तेजस्विता आती है तथा नेत्र रोग दूर होते हैं। यदि जल में पीसकर पानी में ही छानकर सेवन किया जाए तो अजीर्ण रोग दूर होता है। यदि घी के साथ सेवन किया जाए तो वाक् चातुर्यता की प्राप्ति होती है। इसी तरह शहद के साथ उसका सेवन करने से कफ दोष की निवृत्ति होती है। यदि सेंधा नमक के साथ भांग का सेवन किया जाए तो जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अगर नमक या शक्कर अथवा गुड़ के साथ भांग का सेवन किया जाए तो शूल (पीड़ा) व अम्लपित्त का क्षय होता है। भांग का सेवन करने से बल व पुष्टि होती है तथा ज्ञानवृद्धि भी होती है। निष्कर्षतः विजया (भांग) से अनेक सिद्धियां प्राप्त होने के कारण इसे 'परमसिद्धि' भी कहा जाता है।

।। इति श्रीरावण संहितायाः क्रियोड्डीश तंत्रं संपूर्णम् ।।

देवी-साधना मंत्र

भगवान् भोलेनाथ ने रावण को देवी साधना के विषय में भी विस्तारपूर्वक बताया। वे बोले— हे पुत्र रावण! देवियां अनेक हैं, परन्तु उनमें दशमहाविद्या सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी सिद्धि साधक की समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करती है। इन दशमहाविद्याओं के नाम इस प्रकार हैं —काली, तारा, महाविद्या, भुवनेश्वरी, त्रिपुर भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी तथा कमला।

यथार्थ में ये सभी देवियां एक ही आदिशक्ति जिन्हें दुर्गा, शिवा, पार्वती अथवा लक्ष्मी के नाम से जाना जाता है, की ही प्रतिमूर्तियां हैं। इन सभी के स्वामी भगवान् भोलेनाथ हैं।

काली साधना

काली साधना का मंत्र निम्नवत है—

क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं, दक्षिण कालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा ।

साधना विधि— सर्वप्रथम भोजपत्र पर अष्टगंध द्वारा भगवती काली के यंत्र का निर्माण करें।
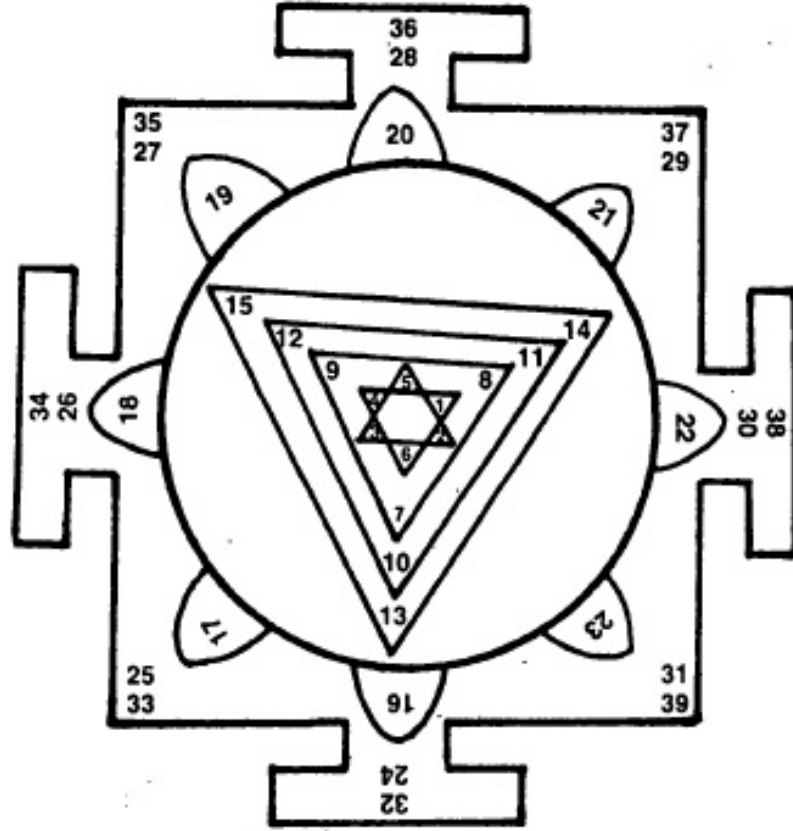
इस यन्त्र का यथाविधि पूजन करने के उपरान्त उक्त मंत्र को एक लाख की संख्या में जप करना चाहिए। इसके बाद दशांश घृत होम करें। तत्पश्चात् भगवती काली का ध्यान करके 'काली स्तव' या 'काली कवच' का पाठ करें।

ध्यान का स्वरूप— भगवती काली के ध्यान का स्वरूप निम्नानुसार है—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् ।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमाला विभूषितम् ।।
सद्याश्छिन्न शिरः खड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम् ।
अभयं वरदञ्चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम् ।।
महामेघ प्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम् ।
कण्ठावसक्त मुंडाली गलद्रुधिश्चर्च्चिताम् ।।
कर्णावतंसतानीतशव युग्म भयानकाम् ।
घोर द्रंष्ट्रा करालास्यां पीनोन्नत पदोधराम ।।
शवानां कर संघातैः कृतकाञ्ची हसन्मुखीम ।
सुक्कच्छतागलदुक्तधारा विस्फुरिताननाम् ।।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालय वासिनीम् ।
बालार्कमण्डलाकार लोचनात्रितयान्विताम् ।।
दन्तुरां दक्षिणव्येपि मुक्तालम्बिक चोच्चयाम् ।
स्वरूप महादेव हृदयोपरि संस्थिताम् ।।

शिवामिर्घोररावामिश्चतुर्दिक्षुसमन्विताम ।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम ।।
मुख प्रसन्नवंदना स्मेरानन सरोरुहम् ।
एवंसंचिन्तयेत् कालीं सर्थ्वकाम समृद्धिदाम ।।

इस प्रकार एक वर्ष में चार बार ध्यान एवं पूजनादि करते रहने से भगवती काली देवी साधक पर प्रसन्न होकर उसे इच्छित वर देती हैं। उसकी समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति कर सभी संकटों का निवारण करती हैं।

तारा साधना

भगवती तारा के तीन साधना मन्त्र निम्न प्रकार हैं। इनमें से किसी एक के द्वारा भगवती का जप किया जा सकता है—

❑ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् । ❑ ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् । ❑ श्री ह्रीं स्त्रीं हूं फट् ।

साधना विधि— सर्वप्रथम स्वर्ण पीणादि पर गोरोचन अथवा कुंकुम का लेप करके उस पर भगवती तारा के यंत्र का निर्माण निम्नानुसार करें। अब इस यंत्र का विधिवत पूजन करके उक्त मंत्र का दो लाख की संख्या में जप करें। फिर जप का दशांश पलाश पुष्प द्वारा होम करें। तत्पश्चात् भगवती तारा का ध्यान करके तारा स्तव या तारा कवच का पाठ करना चाहिए।
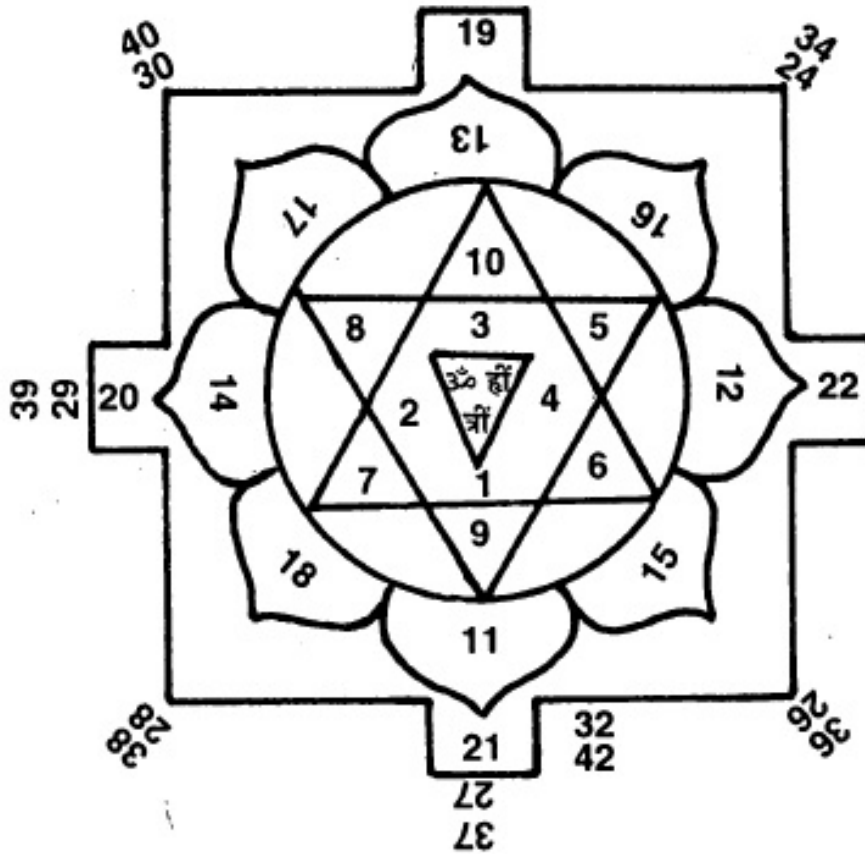
ध्यान का स्वरूप— भगवती तारा के ध्यान का स्वरूप निम्न प्रकार है—

प्रत्यालीदपदां घोरां मुण्डमाला विभूषिताम् ।
सर्व्वां लम्बोदरी भीमा व्याघ्र चर्म्मावृतां कहौ ।।
नवयौवन सम्पन्ना पंचमुद्रा विभूषिताम ।
चतुर्भुजां लोल जिह्वां महाभीमा वरप्रदाम् ।।
खंगकर्तृ समायुक्तसव्येतर भुजद्वियाम ।
कपोलेत्पल संयुक्तसव्यपाणि युगाग्विताम् ।।
पिंगाग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूशिताम् ।
वालार्कमण्डलाकार लोचनत्रयभूषिताम् ।।
ज्वलच्चितामध्यगतां घोरदंष्ट्राकरालिनीम ।
स्वादेशस्मेर वदनां हालंकार विभूषिताम् ।।
विश्वव्यापकतोयान्तः श्वेतपदमोपरिस्थिताम ।।

इस प्रकार हविष्याशी तथा जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष में चार बार ध्यान एवं पूजनादि करते रहने पर भगवती तारा साधक पर प्रसन्न होकर उसे इच्छित फल प्रदान करती हैं। वे समस्त संकटों का निवारण करके व्यक्ति की सभी मनोकामनाएं पूर्ण करती हैं।

महाविद्या साधना

भगवती महाविद्या का साधना मंत्र निम्नलिखित है—

हुं श्रीं ह्रीं वज्रवैराचनीये हुं हुं फट स्वाहा ऐं ।

साधना विधि— सबसे पहले भोजपत्र पर अष्टगंध द्वारा भगवती महाविद्या के यन्त्र का निर्माण करना चाहिए।

यंत्र का विधि अनुसार पूजन करके मंत्र का बत्तीस लाख बार जप करें। फिर जप का दशांश होम करना चाहिए। होम सामग्री में पीपल, गूलर, पिलखन और बरगद की समिधा तथा तिल, सफेद सरसों एवं खीर—इन आठ द्रव्यों में घी, मधु व शर्करा मिली होनी चाहिए। तत्पश्चात् भगवती महाविद्या का ध्यान करके उनके स्तव या कवच का पाठ करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— भगवती महाविद्या का ध्यान मंत्र निम्न प्रकार है—

चतुर्भजां महादेवी नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
महाभीमां करालास्यां सिद्धविद्यां धरैर्युताम ।।
मुण्डमालावली कीर्णां मुक्तकेशी मिस्ताननाम ।
एवं ध्यायेन्मसदेवी सर्वकामर्थ सिद्धये ।।

इस प्रकार शुद्ध तथा जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष में चार बार ध्यान-पूजन करते रहने पर भगवती महाविद्या साधक पर प्रसन्न होकर उसे इच्छित वर देती हैं। ऐसा साधक सभी दुःखों से छुटकारा पाकर सुख-ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

भुवनेश्वरी साधना

भगवती भुवनेश्वरी के तीन साधना मंत्र नीचे दिए जा रहे हैं—

❑ **ह्रीं** ❑ **ऐं ह्रीं** ❑ **ऐं ह्रीं ऐं**

उक्त तीनों मंत्रों में से किसी एक के द्वारा भगवती भुवनेश्वरी की साधना की जा सकती है।

साधना विधि— सबसे पहले भोजपत्र पर अष्टगंध से भगवती भुवनेश्वरी का यंत्र निर्माण करें।
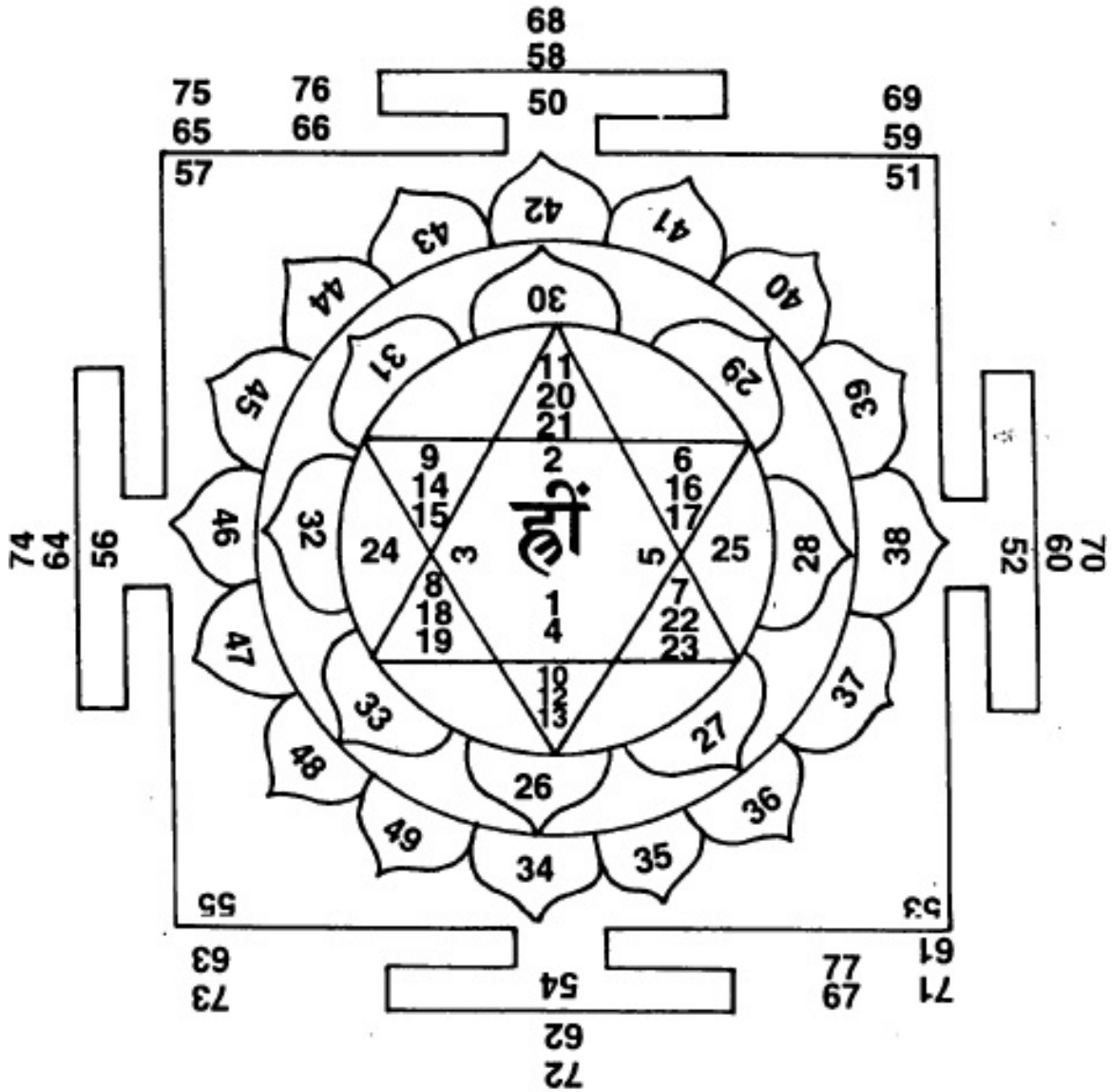
फिर यंत्र का पूजन करके पूर्वोक्त मंत्रों में से किसी एक को बत्तीस लाख बार जप कर उसका दशांश होम करना चाहिए। होम में पीपल, गूलर, पिलखन तथा बरगद की समिधा एवं तिल, सफेद सरसों और खीर—इन आठ द्रव्यों में घी, शहद तथा शर्करा मिलाकर होम करना चाहिए। फिर भुवनेश्वरी देवी का ध्यान करके उनके स्तव एवं कवच का पाठ करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— भगवती भुवनेश्वरी के ध्यान का स्वरूप निम्न है—

उद्यदहर्द्युतिमिन्दु किरीटां, तुंगकुचां नयनत्रययुक्ताम ।
स्मेरमुखीं वरदाकुशपाशा, भीतिकरां प्रभजेद भुवनेशीम् ।।

इस प्रकार शुद्ध-स्वच्छ मन तथा जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष में चार बार ध्यान एवं पूजनादि करते रहने से भगवती भुवनेश्वरी साधक पर प्रसन्न होकर उसे इच्छित वर देती हैं। वे उसकी समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करके सभी संकटों को भी दूर कर देती हैं।

त्रिपुर भैरवी साधना

भगवती त्रिपुर भैरवी का साधना मंत्र निम्नलिखित है—

ह स रै ह स क ल रीं ह्र स रौं ।

साधना विधि— अष्टगंध द्वारा भोजपत्र पर निर्माण करें। फिर यंत्र का पूजन करने के उपरान्त पूर्वोक्त मंत्र को बारह लाख बार जप कर ढाक के फूलों द्वारा दशांश हवन करना चाहिए। तत्पश्चात् भगवती त्रिपुर भैरवी का ध्यान करके उनके कवच का पाठ भी करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— भगवती त्रिपुर भैरवी के ध्यान का स्वरूप नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है —

उद्यदभानुसहस्त्रक्रान्तिमरुण क्षैमां शिरोमलिकां ।
रक्तालिप्त पयोधरां जपवटी विद्याम भीतिं वरग ।।
हस्ताबत्रैर्दधतीं त्रिनेत्र विलसह रक्तारविन्द श्रियं ।
देवीं वद्ध हिगांशुरक्त मुकुटां वन्दे समन्द स्मिताम् ।।

इस प्रकार हविष्याशी तथा जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष में चार बार ध्यान-पूजनादि करते रहने से भगवती त्रिपुर भैरवी साधक पर प्रसन्न होकर उसे इच्छित वर देती हैं। वे उसकी समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति कर सभी संकटों का निवारण भी करती हैं।

छिन्नमस्ता साधना

भगवती छिन्नमस्ता का साधना मंत्र इस प्रकार है—

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वज्रवैचनीये हुं हुं फट् स्वाहा ।

साधना विधि— सबसे पहले अष्टगंध द्वारा भोजपत्र पर भगवती छिन्नमस्ता के यंत्र का निर्माण करें।

इस यंत्र का पूजन करने के उपरांत पूर्वोक्त मंत्र एक लाख बार जप करके ढाक के फूलों द्वारा उसका दशांश हवन करना चाहिए। तत्पश्चात् भगवती छिन्नमस्ता का ध्यान करके उनके स्तव एवं कवच का पाठ करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— भगवती छिन्नमस्ता के ध्यान का स्वरूप नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है —
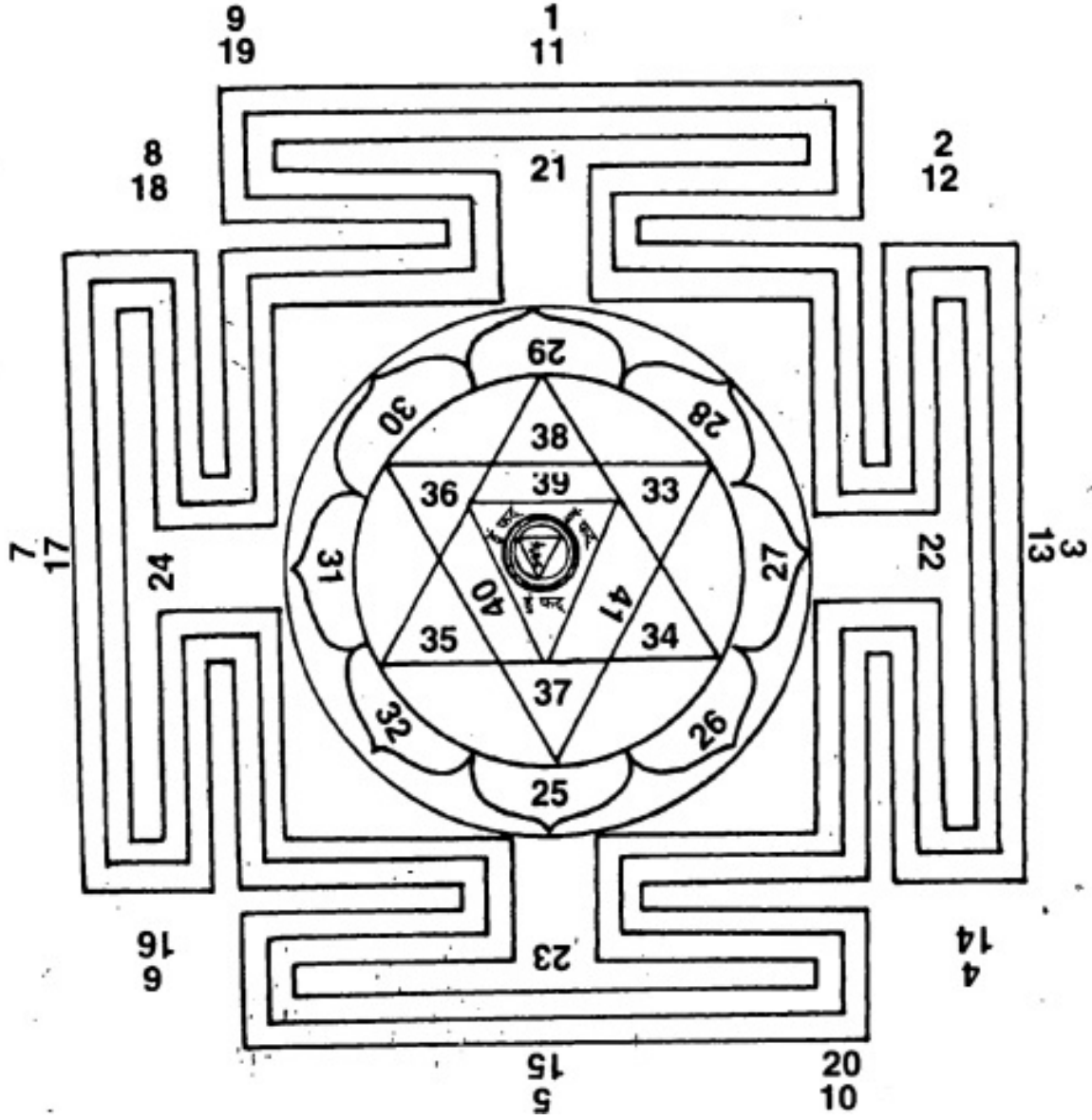
प्रत्यालीढ़पदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरः कर्न्तृका ।
दिव्वस्त्रां स्वकबन्धशेणित सुधाधारां पिवन्ती मुदा ।।
नागाबद्ध शिरोमणिं त्रिनयना हृद्युत्पलालं कृतां ।
रत्यांसक्तमनोभवो परिदृढ़ांध्यायेज्जपासन्निभाम् ।।
दक्षेचातिसिता विमुक्तचिकुरा कर्तृस्तथा खर्णरं ।
हस्ताभ्यांदधती रजोगुणभवानामपिसा वर्णिनी ।।
देव्याश्छिन्न कबन्धत्, पतदसृग्धरां पिवन्ती मुद्रा ।
नागावद्धशिरोमणिर्म्मनुविदा ध्येया सदासासुरैः ।।
वामै कृष्णननूस्तथैव दधति खड्गं तथा खर्परं ।
प्रत्यालीढ़पदां कबन्धं विगद्रक्तं पिवन्ति मुद्रा ।।

सैषा या प्रलये समस्त भुवनं भोक्तु क्षमा तामसी ।
शक्तिः सापि परात्परा भगवती नाम्नापराडाकिनी ।।

उक्त विधि से हविष्याशी तथा जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष में चार बार ध्यान एवं पूजनादि करते रहने पर भगवती छिन्नमस्ता साधक पर प्रसन्न होकर उसे इच्छित वर देती हैं। वे उसकी समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करके सभी संकटों का भी निवारण करती हैं।

धूमावती साधना

भगवती धूमावती का साधना मंत्र निम्न प्रकार है—

धूं धूं धूमावती स्वाहा ।

साधना विधि— सर्वप्रथम अष्टगंध द्वारा भोजपत्र पर भगवती धूमावती का यंत्र निर्माण करें।
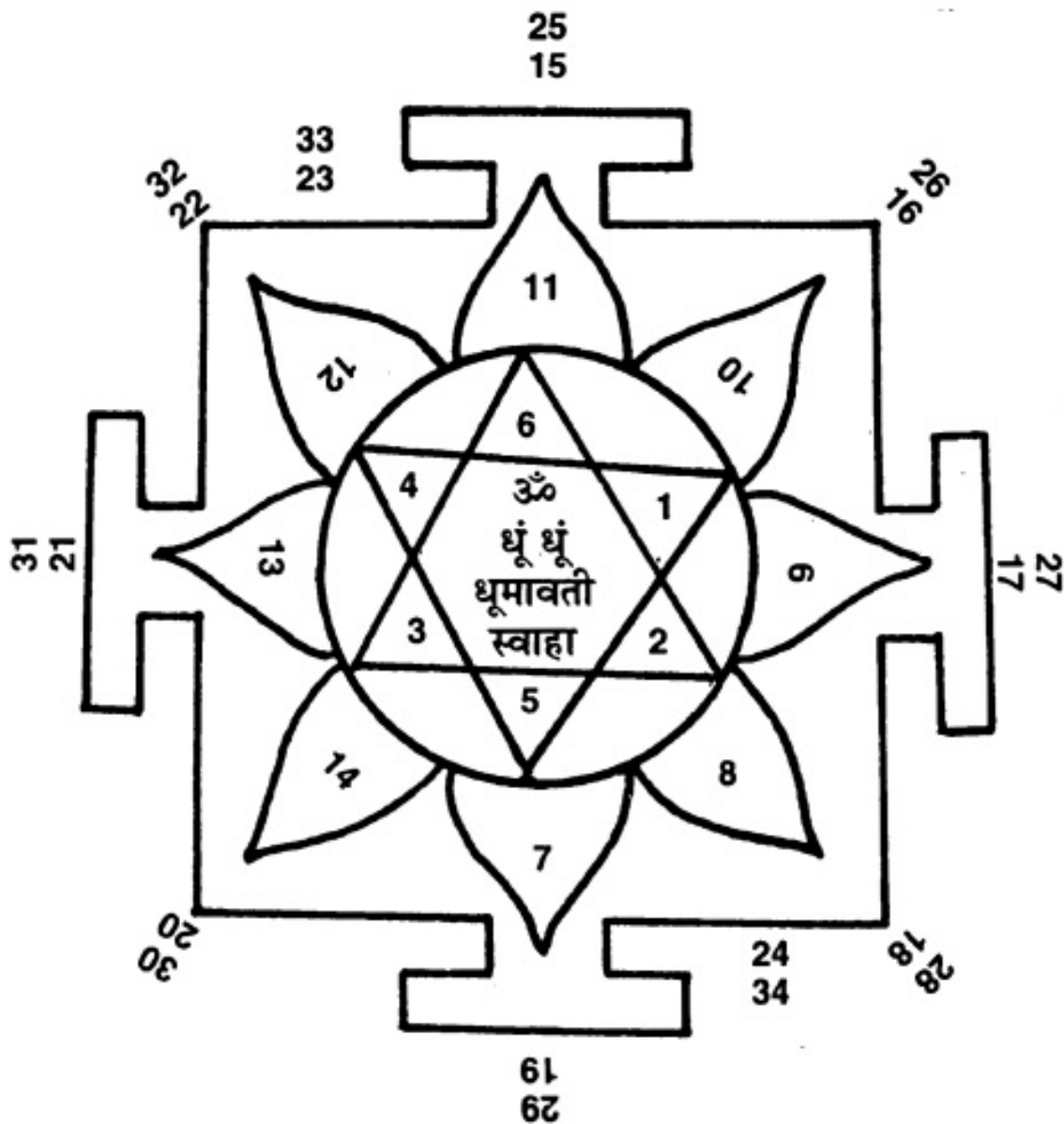
फिर यंत्र का पूजन करने के उपरान्त उपरोक्त मंत्र का एक लाख बार जप करके गिलोय की समिधाओं द्वारा उसका दशांश हवन करना चाहिए। तत्पश्चात् भगवती धूमावती का ध्यान करके उनके कवच तथा स्तव का पाठ भी करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— भगवती धूमावती का ध्यान-स्वरूप इस प्रकार है—

विवर्णा चंचला रुष्ट्रा दीर्घा चमलिनाम्बरा ।
विवर्ण कुन्तलारुक्षा विधवा विरलद्विजा ।।
सूर्यहस्ताति रुक्षाक्षीधृतहस्ता वरान्विका ।
प्रवृद्धघोषा तुभृशंकुटिला कुटिलेक्षणा ।
क्षुत् पिपासा दिर्दता नित्यं भस्या कलहप्रिया ।।

उक्त विधि से हविष्याशी एवं जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष में चार बार ध्यान एवं पूजनादि करते

रहने पर भगवती धूमावती साधक पर प्रसन्न होकर उसकी सभी मनोकामनाएं पूर्ण करके समस्त संकटों का भी निवारण करती हैं।

बगलामुखी साधना
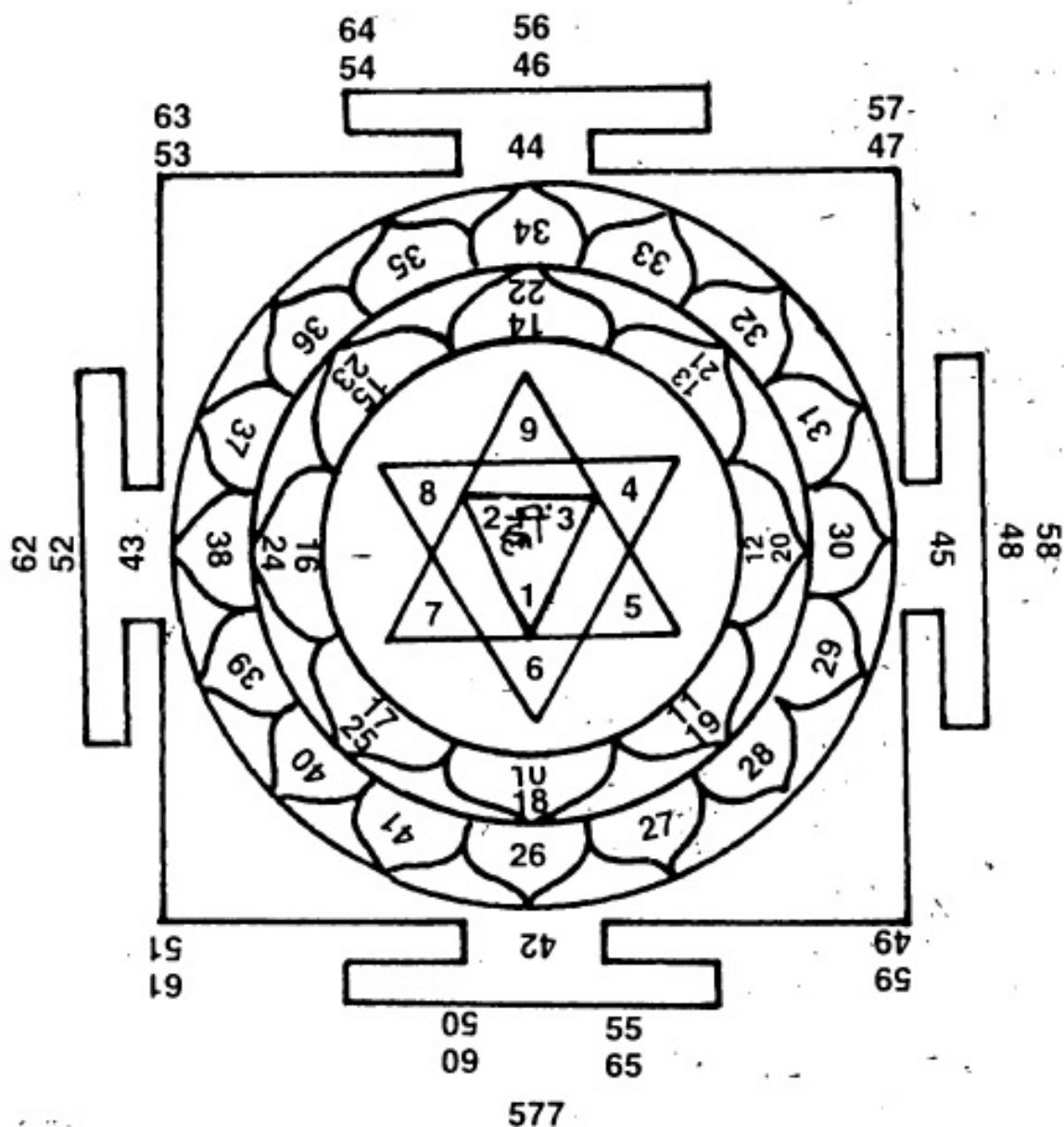
भगवती बगलामुखी का साधना मंत्र निम्नवत है—

ॐ ह्रीं बगलामुखी सर्व्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय वृद्धिं नाशाय हीं ॐ स्वाहा।

साधना विधि— सर्वप्रथम अष्टगंध से भोजपत्र पर भगवती बगलामुखी के यंत्र का निर्माण

करना चाहिए। इस यंत्र का पूजन करके पीतवस्त्र धारण कर पूर्वोक्त मंत्र का जप एक लाख बार करें। फिर उसका दशांश हवन पीले रंग के पुष्पों द्वारा करना चाहिए। तत्पश्चात् भगवती बगलामुखी का ध्यान करके उनके कवच तथा स्तव की पाठ करना चाहिए। इसकी साधना की विशेष बात यह है कि जपने वाली माला हल्दी की होनी चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— भगवती बगलामुखी के ध्यान का स्वरूप नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है —

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्ड परत्नवेदी सिंहासनो परिगतांपरितीतवर्णाय ।
पीताम्बराभारणमाला विभुषितांगी देवी स्मरामि घृतमुद्‍गर वैरिजिह्वाम ।।
जिह्वाग्रमादाय करेण देवी वामेन शत्रून परिपीड़यन्तीम् ।
गदामिधातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ़यां द्विभुजां नमामि ।।

उक्त विधि से हविष्याशी एवं जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष में चार बार ध्यान एवं पूजनादि करते रहने पर भगवती बगलामुखी साधक से प्रसन्न होकर उसे इच्छित वर देती हैं। वे उसकी सभी मनोकामनाओं की पूर्ति करके उसके समस्त संकटों का निवारण करती हैं।

मातंगी साधना

भगवती मातंगी का साधना मंत्र यह है—

ॐ ह्रीं क्लीं हूं मातंग्यै फट् स्वाहा ।

साधना विधि— सर्वप्रथम अष्टगंध द्वारा भोजपत्र पर भगवती मातंगी का मंत्र लिखकर यंत्र निर्माण करें।

यंत्र का पूजन करने के उपरान्त छः हजार की संख्या में पूर्वोक्त मंत्र का जप करें। फिर जप का दशांश हवन घृत, शर्करा एवं शहद मिश्रित आम की लकड़ियों द्वारा करना चाहिए। तत्पश्चात् भगवती मातंगी देवी का ध्यान करके उनके कवच तथा स्तव का पाठ करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— भगवती मातंगी के ध्यान का स्वरूप निम्नानुसार है—

श्यामाङ्गी शशि शेखरां त्रिनयनां रत्नसिंहासन स्थिताम् ।
वेदैबहुदण्डैरसिखेटक पाशाकुंशाधरम् ।।
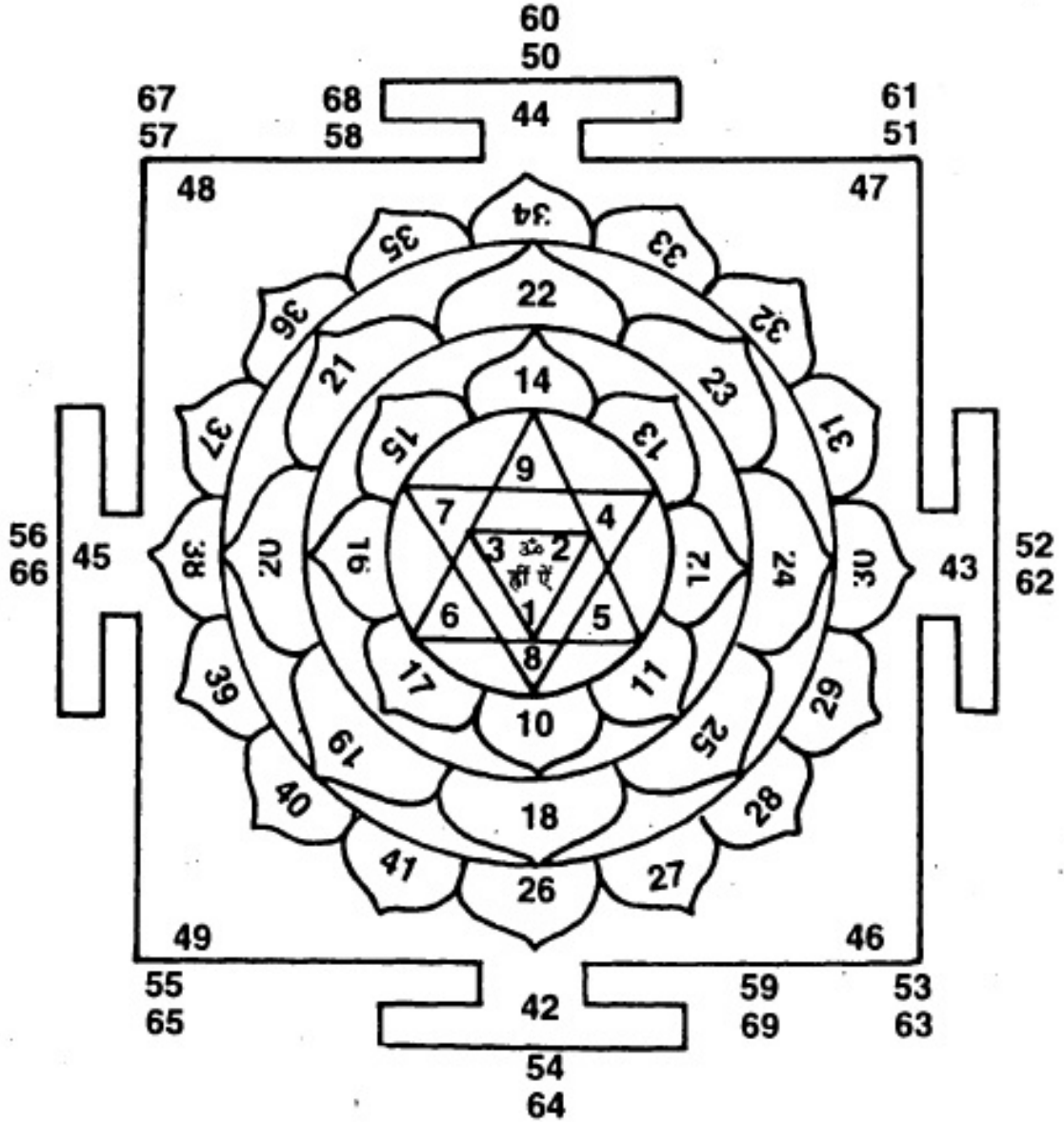
उक्त विधि से हविष्याशी तथा जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष में चार बार ध्यान एवं पूजनादि करते रहने पर भगवती मातंगी साधक पर अति प्रसन्न होती हैं। वे उसके समस्त कष्टों को दूर कर सभी मनोकामनाएं भी पूर्ण करती हैं।

कमला साधना

भगवती कमला का साधना मंत्र निम्नलिखित है—

श्रीं ।

साधना विधि— सर्वप्रथम अष्टगंध से भोजपत्र पर भगवती कमला का यंत्र निर्माण करें।

यंत्र का पूजन करने के उपरान्त बारह लाख की संख्या में मंत्र जप कर उसका दशांश हवन मधु-शर्करा युक्त कमल अथवा तिलों द्वारा करना चाहिए। उसके बाद भगवती कमला का ध्यान करके उनके स्तव और कवच का पाठ भी करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— भगवती कमला के ध्यान का स्वरूप अग्रलिखित है—

कान्च्या कांचन सन्निभां हिमगिरि प्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै ।
ईस्तोत्क्षिप्त हिरण्मयामृत घटै रासिच्यमानांश्रियम् ।।
विभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां ।
क्षीमावद्ध नितम्ब बिम्ब ललितां वन्देऽरविन्द स्थिताम् ।।

इस प्रकार उक्त विधि से हविष्याशी एवं जितेन्द्रिय होकर एक वर्ष में चार बार ध्यान-पूजनादि करते रहने पर भगवती कमला साधक पर प्रसन्न होकर उसे इच्छित वर देती हैं। वे उसकी सभी मनोकामनाओं की पूर्ति कर समस्त संकटों का भी निवारण करती हैं।

विभिन्न साधनाएं

लोकल्याणार्थ पराशक्ति महादेवी ने विभिन्न अवसरों पर विविध रूप धारण किए हैं, उनके अलग-अलग नाम रख दिए गए हैं। पराशक्ति के ये विभिन्न रूप साधकों की मनोभिलाषाओं की पूर्ति करने वाले हैं। यद्यपि इनके जप तथा ध्यान की विधियां अलग-अलग हैं, फिर भी इन्हें एक ही आद्याशक्ति का रूप समझना चाहिए। इनमें से किसी भी एक देवी की साधना में सफलता प्राप्त कर लेने से ही साधक की समस्त इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं।

यक्षिणी-साधना

यक्षिणियां मनुष्येतर जाति की प्राणी हैं। ये यक्ष जाति के पुरुषों की पत्नियां हैं। इन्हें देवी-देवताओं की उपजाति के रूप में भी माना जा सकता है। यक्षिणियों की संख्या असंख्य है। इनमें विविध प्रकार की शक्तियां सन्निहित मानी जाती हैं। विभिन्न कार्यों की सिद्धि एवं मनोभिलाषाओं की पूर्ति के लिए विभिन्न यक्षिणियां मानी गई हैं, अतः यक्षिणियां भी चिरजीविनी होती हैं। वे सृष्टि के आदिकाल से अभी तक विद्यमान हैं तथा भविष्य में भी रहेंगी—ऐसी मान्यता है। तन्त्र-शक्तियों के मतानुसार यक्षिणी जिस साधक पर प्रसन्न हो जाती हैं, उसे अभिलषित वर अथवा इच्छित वस्तु प्रदान करती हैं। अतः मनोभिलाषाओं की पूर्ति के लिए देवी-देवताओं की भांति यक्षिणियों को सिद्ध करने की विधि भी प्रचलित है।

ग्रन्थों में यक्षिणी-साधना की जो विधियां दी गई हैं, उनमें से कुछ का उल्लेख यहां किया जा रहा है। ग्रन्थों के अनुसार यक्षिणी साधक को साधना-काल में मांस, मदिरा एवं ताम्बूल का त्याग कर देना चाहिए तथा अपने शरीर से किसी भी अन्य व्यक्ति के शरीर का स्पर्श नहीं होने देना चाहिए। यक्षिणी-साधना की क्रिया प्रतिदिन प्रातःकाल नित्यकर्म, स्नानादि से निवृत्त होकर, किसी एकान्त स्थान में मृगचर्म पर बैठकर करनी चाहिए। जब तक सिद्धि प्राप्त न हो, तब तक साधना में व्यवधान नहीं पड़ने देना चाहिए।

किसी भी यक्षिणी का ध्यान करते समय उसका चिंतन मां, बहन, बेटी अथवा मित्र के रूप में

करना चाहिए। जो व्यक्ति यक्षिणी का प्रेयसी अथवा पत्नी के रूप में चिन्तन करते हैं, उन्हें घोर कष्ट उठाना पड़ता है। जिस यक्षिणी की साधना के लिए जिस विधि का उल्लेख किया गया है, उसी का अनुसरण करना चाहिए। विभिन्न यक्षिणियों को सिद्ध करने की विधियां निम्नलिखित हैं—

चिञ्चि पिशाची यक्षिणी साधना

'चिञ्चि पिशाची' नामक यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ क्रीं चिञ्चि पिशाचिनी स्वाहा ।

साधना विधि— नीलवर्ण के भोजपत्र पर केसर, गोरोचन तथा दूध के मिश्रण से अष्टदल कमल का निर्माण कर, प्रत्येक दल में मायाबीज लिखें। लेखनोपरान्त उक्त यन्त्र को मस्तक पर धारणकर यथाशक्ति संख्या में पूर्वोक्त मन्त्र का जप करें। उक्त विधि द्वारा सात दिन तक यत्नपूर्वक जप करते रहने से 'चिञ्चि पिशाची' यक्षिणी साधक पर प्रसन्न होकर उसे स्वप्न में भूत, भविष्य तथा वर्तमान के सभी वृत्तान्त बता देती है।

रतिप्रिया यक्षिणी साधना

'रतिप्रिया' यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं रतिप्रिये स्वाहा ।

साधना विधि— भोजपत्र पर कुंकुम द्वारा एक ऐसी देवी का चित्र बनाएं जो गौरवपूर्ण, आभूषणों से सुसज्जित एवं कमलपुष्पों से अलंकृत हों। ऐसे चित्र को श्वेत कागज पर भी बनाया जा सकता है। निर्माणोपरान्त चित्र का चमेली के फूलों से पूजन कर उक्त मन्त्र को 1000 बार जपें। इस क्रिया को सात दिन तक तीनों सन्ध्याकाल में करना चाहिए अर्थात् प्रतिदिन 3000 की संख्या में मन्त्र-जप तथा तीन बार पूजन आदि की क्रिया करना आवश्यक है।

इस विधि द्वारा साधना पूरी होने पर 'रतिप्रिया' यक्षिणी प्रसन्न होकर अर्द्धरात्रि के समय साधक को पच्चीस स्वर्ण मुद्राएं प्रदान करती हैं—ऐसा कहा जाता है।

कनकवती यक्षिणी साधना

'कनकवती' यक्षिणी का साधना-मन्त्र यह है—

ॐ ह्रीं आगच्छ कनकवति स्वाहा ।

साधना विधि— किसी वटवृक्ष के नीचे चन्दन का एक सुन्दर मण्डल बनाकर, उसमें यक्षिणी का पूजन कर नैवेद्य समर्पित करें। तत्पश्चात् शशा के मांस तथा 'आसव' द्वारा पूजन करके उक्त मन्त्र 1000 की संख्या में जप करें।

उक्त विधि से एक महीने तक जप तथा पूजन करते रहने से 'कनकवती' यक्षिणी प्रसन्न होकर रात्रि के समय साधक को दिव्य-अंजन प्रदान करती हैं। इसे अपनी आंखों में लगाकर साधक पृथ्वी में गड़े हुए खजाने को देख सकता है और उसे प्राप्त भी कर सकता है।

स्वर्णरेखा यक्षिणी साधना

'स्वर्णरेखा' यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ चर्क चर्क शाल्मल स्वर्णरेख स्वाहा ।

साधना विधि— एकलिंग का षडंग विधि से पूजन करके कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा पूर्व संध्या से उक्त मन्त्र का जप आरंभ करना चाहिए। एक मास तक नित्य 5000 की संख्या में मन्त्र का जप करें। मास के अन्त में पूजन कर रक्तवर्ण देवता का एकलिंग में ध्यान करते हुए रात के समय पुनः मूलमन्त्र का जप करना चाहिए।

उक्त विधि से जप करते रहने पर 6 महीने में सिद्धि प्राप्त होती है। तब 'स्वर्ण रेखा' यक्षिणी प्रसन्न होकर, अर्द्धरात्रि के समय साधक को दिव्य-अंजन, वस्त्र तथा अलंकार भेंट करती हैं।

चन्द्रिका यक्षिणी साधना

'चन्द्रिका' यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे दिया जा रहा है—

ॐ ह्रीं चन्द्रिके हंस (क्लीं) स्वाहा ।

साधना विधि— शुक्ल पक्ष में जब तक चांदनी दिखाई देती रहे, तब तक इस मन्त्र का जप करना चाहिए। इससे 'चन्द्रिका' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को अमृत प्रदान करती हैं।

पद्मावती यक्षिणी साधना

'पद्मावती' यक्षिणी का साधना-मंत्र इस प्रकार है—

ॐ नमो धरणीन्द्रा 'पद्मावती' आगच्छ आगच्छ कार्य कुरु-कुरु । जहां भेजूं वहां जाओ, जो मंगाऊं सो आन देओ । आन न देवो तो भी पारसनाथ की आज्ञया सत्यमेव कुरु-कुरु स्वाहा ।।

साधना विधि— पूर्व अथवा आग्नेय दिशा की ओर मुंह करके बैठें तथा इस मन्त्र का नित्य 2000 की संख्या में जप करें। ऐसा करने से 'पद्मावती' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को इच्छित-वस्तु लाकर देती हैं। यह साधना कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी से आरंभ करके प्रतिपदा तक करनी चाहिए।

भण्डारपूर्णा यक्षिणी साधना

'भण्डारपूर्णा' यक्षिणी का साधना-मन्त्र निम्नवत है—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं वामे नमः ।

साधना विधि— दीपावली की रात्रि में इस मन्त्र को 2028 की संख्या में जप कर लक्ष्मीजी पर सिन्दूर चढ़ाएं तथा धूप, दीप, पुष्पादि से पूजन करें। ऐसा करने से 'भण्डारपूर्णा यक्षिणी' प्रसन्न होकर साधक के भण्डार को सदैव भरा-पूरा बनाए रखती हैं।

वट यक्षिणी साधना

'वट' यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे दिया गया है—

ॐ ह्रीं श्रीं वटवासिनि यक्षकुल प्रसूते वट यक्षिरिणै ऐ ह्रो हि स्वाहा ।

साधना विधि— किसी तिराहे पर स्थित वटवृक्ष के नीचे रात्रि के समय बैठकर उक्त मन्त्र का तीन लाख बार जप करने से 'वट' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को दिव्य-वस्तु, अलंकार, रस-रसायन तथा अंजन प्रदान करती हैं।

अनुरागिणी यक्षिणी साधना

'अनुरागिणी' यक्षिणी का साधना-मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं अनुरागिणी मैथुनप्रिये स्वाहा ।

साधना विधि— भोजपत्र पर कुंकुम से यक्षिणी का चित्र बनाकर, प्रतिपदा से उसका पूजन आरम्भ करें। तीनों सन्ध्याकाल में उक्त मन्त्र का 3000 की संख्या में जप करके, रात्रि के समय पूजन करते रहें। 30 दिनों तक इस क्रम के नियमित चलते रहने पर 'अनुरागिणी' यक्षिणी प्रसन्न होकर अर्द्धरात्रि के समय साधक को दर्शन देती हैं तथा प्रतिदिन एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएं प्रदान करती हैं।

कर्णपिशाचिनी यक्षिणी साधना

'कर्णपिशाचिनी' यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे दिया जा रहा है—

ॐ ह्रीं चः चः कम्बलके गत्या पिण्डं पिशाचिके स्वाहा ।

साधना विधि— प्रतिदिन सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय इस मन्त्र का 1008 की संख्या में 21 दिनों तक जप करें तथा सन्ध्या के समय अपने आहार में से एक पिण्ड छत के ऊपर फेंक दें। इस कृत्य से 'कर्णपिशाचिनी' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक की शय्या पर आती हैं तथा उसे प्रतिदिन 25 स्वर्ण मुद्राएं देकर, उसके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर कान में बताती रहती हैं।

विभ्रमा यक्षिणी साधना

'विभ्रमा' यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ हीं विभ्रम रूपे कुरु कुरु एह्येहि भगवति स्वाहा ।

साधना विधि— श्मशान भूमि में निर्भय होकर उक्त मन्त्र का दो लाख की संख्या में जप करें। फिर उसका दशांश घी का हवन करने से 'विभ्रमा' यक्षिणी प्रसन्न होकर, साधक को प्रतिदिन 50 मनुष्यों का भोजन प्रदान करती हैं।

महानन्दा यक्षिणी साधना

'महानन्दा' यक्षिणी का साधना-मन्त्र यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—

ॐ ऐ ह्रीं महानन्दे भीषणे ह्रीं हूं स्वाहा ।

साधना विधि— किसी तिराहे पर बैठकर उक्त मन्त्र का एक लाख बार जप करके घी तथा गूगल द्वारा उसका दशांश होम करें। इससे 'महानन्दा' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को विचित्र

सिद्धि प्रदान करती हैं।

पद्मिनी यक्षिणी साधना

'पद्मिनी' यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे प्रस्तुत है—

ॐ ह्रीं पद्मिनी स्वाहा ।

साधना विधि— स्नानोपरान्त पूजा की सामग्री एकत्र कर चन्दन की सुगन्ध से एक हाथ के प्रयाण मण्डल का निर्माण करें। फिर उस मण्डल में पद्मिनी यक्षिणी का पूजन कर धूप दें तथा प्रतिदिन 1000 की संख्या में मन्त्र का जप करते रहें। उक्त विधि द्वारा एक मास तक नित्य साधना करने पर 'पद्मिनी' यक्षिणी प्रसन्न होकर रात्रि के समय साधक को निधि तथा दिव्य भोग प्रदान करती हैं।

सुर-सुन्दरी यक्षिणी साधना

'सुर-सुन्दरी' यक्षिणी का साधना मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं आगच्छ आगच्छ सुर-सुन्दरी स्वाहा ।

साधना विधि— एकलिंग महादेव की मूर्ति के सम्मुख रखकर मिष्टान्न, गुग्गुल तथा घृत द्वारा हवन करके प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में 3000 की संख्या में उक्त मन्त्र का जप करें। इस प्रकार नित्य एक मास तक साधना करते रहने से 'सुर-सुन्दरी' यक्षिणी साधक के समक्ष प्रकट होकर पूछती हैं—तुम्हारी क्या इच्छा है?

उस समय साधक को चाहिए कि वह अर्घ्य देकर प्रणाम करने के उपरान्त यक्षिणी से यह कहे—हे देवी! मैं दारिद्र्य से व्याकुल हूं, अतः आप मेरी दरिद्रता को शीघ्र दूर कर दें। यह सुनकर यक्षिणी प्रसन्न होंगी तथा साधक को निधि एवं चिर-जीवन प्रदान करेंगी।

जलवासिनी यक्षिणी साधना

'जलवासिनी' यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे दिया जा रहा है—

ॐ भगवती समुद्र देहि रत्नानि जलवासिनी ह्रीं नमोस्तुते स्वाहा ।

साधना विधि— समुद्र तट पर बैठकर, उक्त मन्त्र का एक लाख बार जप करने से 'जलवासिनी' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को उत्तम रत्न आदि वस्तुएं प्रदान करती हैं।

विशाला यक्षिणी साधना

'विशाला' यक्षिणी का साधना-मन्त्र निम्नवत है—

ॐ ऐं विशालै क्रीं ह्रीं क्रीं क्लीं क्रीं स्वाहा ।

साधना विधि— पवित्र होकर चिरमिटी के वृक्ष के नीचे बैठकर उक्त मन्त्र का दो लाख की संख्या में जप करने से 'विशाला' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को दिव्य-रसायन भेंट करती हैं।

विद्युज्जिह्वा यक्षिणी साधना

‘विद्युज्जिह्वा’ यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे प्रस्तुत है—

ॐ कारमुखे विद्युज्जिह्वा ॐ हुं चेटके जय जय स्वाहा ।

साधना विधि— वटवृक्ष के नीचे बैठकर उक्त मन्त्र का 108 बार जप करके थोड़े मिष्टान्न एवं भोजन की बलि दें। इस विधि से नित्य एक मास तक निरन्तर साधना करते रहने पर ‘विद्युज्जिह्वा’ यक्षिणी प्रकट होती हैं। वे साधक के हाथ से स्वयं भोजन ग्रहण करके यह वर देती हैं कि मैं सदैव तुम्हारे समीप बनी रहूंगी। साथ ही वे साधक को भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों काल की बातें भी बताती रहती हैं।

चामुण्डा यक्षिणी साधना

‘चामुण्डा’ यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ क्रीं आगच्छ आगच्छ चामुण्डे श्रीं स्वाहा ।

साधना विधि— मिट्टी तथा गोबर से पृथ्वी को लीपकर उस पर कुशा बिछा दें। तत्पश्चात् पंचोपचार एवं नैवेद्य द्वारा देवी का पूजन कर, रुद्राक्ष की माला पर उक्त मन्त्र का एक लाख बार जप करें। इससे ‘चामुण्डा’ यक्षिणी प्रसन्न होकर, अर्द्धरात्रि में सोते समय स्वप्न में साधक को सभी शुभाशुभ फल बता देती हैं।

विचित्रा यक्षिणी साधना

‘विचित्रा’ यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ विचित्र विचित्र हृपे सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ।

साधना विधि— वटवृक्ष के नीचे पवित्र होकर बैठें तथा उक्त मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करें। तत्पश्चात् बन्धूक पुष्प, शहद तथा अन्न—इन सबके मिश्रण द्वारा हवन करने से ‘विचित्रा’ यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को अभीप्सित फल प्रदान करती हैं।

मदना यक्षिणी साधना

‘मदना’ यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे दिया गया है—

ॐ मदने विडम्बिनी अनंगसंग सन्देहि देहि क्लीं क्रीं स्वाहा ।

साधना विधि— पवित्र तथा स्थिरचित्त होकर उक्त मन्त्र का दो लाख बार जप करें तथा दूध एवं चमेली के फूलों की एक लाख आहुतियां दें। ऐसा करने पर ‘मदना’ यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को एक ‘गुटिका’ प्रदान करती हैं। उसे मुंह में रखने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है अर्थात् वह स्वयं तो सबको देख सकता है, परन्तु उसे कोई नहीं देख पाता।

नटी यक्षिणी साधना

‘नटी’ यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं क्रीं नटि महानटि रूपवति स्वाहा ।

साधना विधि— अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर चन्दन का एक मण्डल निर्माण कर देवी का

पूजन करें। फिर 2000 की संख्या में धूप दें तथा 2000 की संख्या में उक्त मन्त्र का जप करें। इस विधि द्वारा एक मास पर्यन्त साधना करें। साधना-काल में रात्रि में केवल एक ही बार भोजन करना चाहिए तथा रात्रि में पुनः मन्त्र जप कर अर्द्धरात्रि में पूजन करना चाहिए। इससे 'नटी' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को रसांजन तथा अन्य दिव्य भोग प्रदान करती हैं।

चण्डवेगा यक्षिणी साधना

'चण्डवेगा' यक्षिणी के दो साधना मंत्र नीचे दिए गए हैं—

ॐ नमश्चन्द्राधावा कर्ण कारण स्वाहा ।

ॐ नमो भगवती रुद्राय चण्डवेगिने स्वाहा ।

साधना विधि— वटवृक्ष के ऊपर बैठकर, मौन धारण कर उक्त दोनों मन्त्रों में से किसी एक को एक लाख की संख्या में जप करें। फिर 7 बार मन्त्र पढ़कर कांजी के पानी से अपना मुंह धोएं। उक्त विधि से रात्रि के समय तीन महीने तक नित्य जप करते रहने से 'चण्डवेगा' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को दिव्य रसायन आदि प्रदान करती हैं।

हंसी यक्षिणी साधना

'हंसी' यक्षिणी का साधना-मंत्र निम्न प्रकार है—

ॐ हंसि हंसि जने ह्रीं क्लीं स्वाहा ।

साधना विधि— पवित्र होकर नगर के भीतर प्रवेश करके उक्त मंत्र का एक लाख की संख्या में जप करें। तत्पश्चात् घी मिले हुए कमल के पत्तों का दशांश हवन करें। इससे 'हंसी' यक्षिणी प्रसन्न होकर, साधक को एक अंजन देती हैं, जिसे आंखों में लगाने वाला पृथ्वी के भीतर गड़े हुए धन को देख लेता है। जब साधक को ऐसा धन दिखाई दे तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए।

लक्ष्मी यक्षिणी साधना

'लक्ष्मी' यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ऐं लक्ष्मी श्री कमल धारिणि कलहंस स्वाहा ।

साधना विधि— उक्त मन्त्र का एक लाख बार जप करके, अपने घर में बैठकर ही लाल कनेर के पुष्पों से दशांश हवन करें। इससे 'लक्ष्मी' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को दिव्य रसायन प्रदान करेंगी।

महाभया यक्षिणी साधना

'महाभया' यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ क्रीं महाभये क्लीं स्वाहा ।

साधना विधि— सर्वप्रथम मनुष्य की हड्डियों की माला बनाकर कण्ठ एवं दोनों कानों में धारण करें। फिर निर्भय तथा पवित्र होकर उक्त मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करें। इससे 'महाभया' यक्षिणी एक ऐसा रसायन देंगी, जिसे खाने से हर प्रकार के रत्न हस्तगत होंगे।

रक्त-कम्बला यक्षिणी साधना

'रक्त-कम्बला' यक्षिणी का साधना-मन्त्र निम्नवत है—

ॐ ह्रीं रक्त कम्बले महादेवि मृतकमुत्थापय प्रतिमां चालय पर्वतान् कम्पय नीलयविलसत हुं हुं स्वाहा ।

साधना विधि— उक्त मन्त्र का तीन मास तक नित्य जप करने से 'रक्त-कम्बला' यक्षिणी प्रसन्न होकर मृतक को जीवित तथा प्रतिमाओं को चलायमान कर देती हैं—ऐसा कहा जाता है।

शोभना यक्षिणी साधना

'शोभना' यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे प्रस्तुत है—

ॐ अशोकपल्लवाकार करतले शोभने क्षः स्वाहाः ।

साधना विधि— चतुर्दशी तिथि को लाल माला एवं लाल वस्त्र धारण करके उक्त मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करने से 'शोभना' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को अनेक प्रकार के भोग प्रदान करती हैं।

धनदा यक्षिणी साधना

'धनदा' यक्षिणी का साधना-मन्त्र निम्नलिखित है—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं धनं कुरु कुरु स्वाहा ।

साधना विधि— पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर एकाग्रचित्त से 10008 की संख्या में उक्त मंत्र का जप करने से 'धनदा' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को धन प्रदान करती हैं।

महालक्ष्मी यक्षिणी साधना

'महालक्ष्मी' यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे दिया जा रहा है—

ॐ ह्रीं क्लीं महालक्ष्मै नमः ।

साधना विधि— बरगद के वृक्ष पर बैठकर उक्त मन्त्र का दस हजार बार जप करने से 'महालक्ष्मी' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को स्थिर धन-सम्पत्ति प्रदान करती हैं।

राज्यप्रदा यक्षिणी साधना

'राज्यप्रदा' यक्षिणी का साधना-मन्त्र निम्नलिखित है—

ॐ ऐं ह्रीं नमः ।

साधना विधि— तुलसी के पौधे की जड़ के समीप बैठकर, उक्त मन्त्र का 10000 की संख्या में जप करने पर 'राज्यप्रदा' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को आकस्मिक रूप से राज्याधिकार प्रदान करती हैं।

पुत्रदा यक्षिणी साधना

'पुत्रदा' यक्षिणी का साधना-मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं ह्रीं पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा ।

साधना विधि— आम के वृक्ष पर बैठकर उक्त मन्त्र का बीस हजार बार जप करने से 'पुत्रदा' यक्षिणी अतिप्रसन्न होकर पुत्रहीन साधक को पुत्र-रत्न प्रदान करती हैं।

जया यक्षिणी साधना

'जया' यक्षिणी का साधना-मन्त्र निम्नवत है—

ॐ जय कुरु कुरु स्वाहा ।

साधना विधि— आक के पौधे की जड़ के पास बैठकर उक्त मन्त्र का दस हजार बार जप करने से 'जया' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को सभी कार्यों में विजय प्रदान करती हैं।

सर्वकार्य सिद्धिदा यक्षिणी साधना

'सर्वकार्य सिद्धिदा' यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ वाङ्भयं नमः ऐं ।

साधना विधि— कुश की जड़ के समीप बैठकर, उक्त मन्त्र का बीस हजार बार जप करने से 'सर्वकार्य सिद्धिदा' यक्षिणी साधक पर प्रसन्न होकर उसके सभी कार्यों में सिद्धि प्रदान करती हैं।

अशुभ क्षयकारिणी यक्षिणी साधना

'अशुभ क्षयकारिणी' यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ क्लीं नमः ।

साधना विधि— आंवले के वृक्ष की जड़ के समीप बैठकर उक्त मन्त्र का 20000 की संख्या में जप करने से 'अशुभ क्षयकारिणी' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक के सभी अशुभों (कष्टों अथवा अमङ्गलों) को दूर कर देती हैं।

सर्वविद्या यक्षिणी साधना

'सर्वविद्या' यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे दिया जा रहा है—

ॐ ह्रीं शारदायै नमः ।

साधना विधि— औदुम्बर के वृक्ष पर बैठकर, उक्त मन्त्र का दस हजार की संख्या में जप करने से 'सर्वविद्या' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को चौदहों विद्याओं में सिद्धि प्रदान करती हैं।

वाचा सिद्धि यक्षिणी साधना

'वाचा सिद्धि' यक्षिणी का साधना-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं श्रीं भारत्यै नमः ।

साधना विधि— ओंगा या अटभागरा के पौधे पर बैठकर उक्त मन्त्र का दस हजार बार जप करने से 'वाचा सिद्धि' यक्षिणी साधक पर प्रसन्न होकर उसको वाच सिद्धि प्रदान करती हैं अर्थात् वह अपने मुंह से जो कुछ कहता है, वह सत्य हो जाता है।

विद्यादात्री यक्षिणी साधना

'विद्यादात्री' यक्षिणी का साधना-मन्त्र आगे प्रस्तुत है—

ॐ नमो जगन्मात्रे नमः ।

साधना विधि— निर्गुण्डी के पौधे पर बैठकर, उक्त मन्त्र का दस हजार की संख्या में जप करने से 'विद्यादात्री' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को इच्छित विद्या प्रदान करती हैं।

भोग यक्षिणी साधना

'भोग' यक्षिणी का साधना-मन्त्र नीचे दिया जा रहा है—

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः ।

साधना विधि— उक्त मन्त्र को बीस हजार बार जप करके नैवेद्य, गरम दूध तथा खीर का भोजन करने से 'भोग' यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को विविध प्रकार के भोग प्रदान करती हैं। ऐसे साधक की भूत-प्रेत, पिशाच आदि सदैव सेवा करते रहते हैं।

इस प्रकार साधक इन यक्षिणी साधना को विधिपूर्वक करके इच्छित फल प्राप्त करता है तथा सब कष्टों व दुःखों से मुक्त हो जाता है।

योगिनी साधना

योगिनियों की उत्पत्ति भगवती महाकाली के स्वेदकणों (पसीने) से मानी गई है। 'घोर' नामक महादैत्य का वध करने के लिए भगवती महादेवी (गौरी) ने महाकाली का स्वरूप धारण किया था। दैत्यराज का वध करते समय भगवती महाकाली के शरीर से जो स्वेद बिन्दु नीचे गिरे, उन्हीं के द्वारा करोड़ों योगिनियों की उत्पत्ति हुई थी। ये सभी योगिनियां भगवती महाकाली के अंश से उत्पन्न होने के कारण उन्हीं के समान शक्तिमान एवं अपने भक्तों की मनोभिलाषाओं की पूर्ति करने वाली हैं। निर्मल योगिनियों में कुछ विशिष्ट गुणों एवं क्षमताओं का समावेश माना गया है।

'भूत डामर तंत्र' में कहा गया है कि योगिनी साधना की महाविद्या परम गोपनीय तथा देवताओं को भी दुर्लभ है। योगिनियों की पूजा-अर्चना करके ही कुबेर ने धनाधिपत्य का पद प्राप्त किया था। यहां मुख्यतः आठ योगिनियों की साधना विधि का विर्णन किया जा रहा है।

सुर-सुन्दरी योगिनी साधना

'सुर-सुन्दरी' योगिनी का साधना-मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं आगच्छ सुरसुन्दरी स्वाहा ।

साधना विधि— प्रातःकाल शय्या से उठकर शौच, स्नान तथा पूजा-अर्चना करने के

उपरान्त 'ह्रौं' मंत्र द्वारा आचमन कर, 'ॐ हुं फट्' मंत्र द्वारा दिग्धबन्धन कर, पूर्वोक्त मूलमंत्र से प्राणायाम करें। तत्पश्चात् 'ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः' इत्यादि क्रम से कराङ्गन्यास एवं 'ह्रीं' मंत्र से षडङ्गन्यास करें। फिर भोजपत्र पर कुंकुम से एक अष्टदल कमल अंकित कर उस पद्म में देवी की प्राण-प्रतिष्ठा करें। इसके बाद पीठ देवता का आह्वान कर, सुर-सुन्दरी योगिनी का ध्यान करें।

ध्यान का स्वरूप— 'सुर-सुन्दरी' योगिनी का ध्यान साधक को निम्नानुसार करना चाहिए —

पीठे देवीः समावाध्य ध्यायेद्देवी जगत्प्रियाम् ।
पूर्णचन्द्रनिभां गौरी विचित्रात्वर धारिणीम् ।
पीनोत्तुंग कुचां वामां सर्वेषामभय प्रदाम् ।

अर्थात् 'सुर-सुन्दरी' योगिनी जगतप्रिया हैं। उनका मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर तथा गौरवर्ण है। विचित्र अवस्था में स्वर्णाभूषणों से अलंकृत तथा उन्नत स्तनों वाली वे देवी सबको अभय प्रदान करती हैं। मैं ऐसी पीठ देवी का आह्वान और ध्यान करता हूं। इस प्रकार ध्यान करके मूलमंत्र द्वारा देवी का पूजन करने के बाद उन्हें धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, चन्दन एवं ताम्बूल निवेदित करें। फिर प्रतिदिन सन्ध्याकाल में ध्यान करके मंत्र का एक-एक सहस्र की संख्या में जप करें।

इस विधि से एक मास तक नित्य जप करके महीने के अन्तिम दिन बलि आदि विविध उपहारों द्वारा देवी का पूजन करें। जप की पूर्णता पर 'सुर-सुन्दरी' योगिनी अर्द्धरात्रि के समय साधक के घर प्रकट होती हैं। उस समय साधक पुनर्वार एवं अर्घ्यादि द्वारा उनका पूजन करके उत्तम चन्दन से सुशोभित पुष्प प्रदान करें तथा उनसे अभिलषित वर देने की मांग करें।

साधक योगिनी को माता, बहन अथवा पत्नी जो भी चाहें कहकर सम्बोधित कर सकते हैं। साधक जिस सम्बोधन से उन्हें सम्बोधित करेगा, उसी सम्बन्ध के आधार पर योगिनी उसकी इच्छाओं को पूर्ण करती हैं। यदि माता के रूप में भजा जाएगा तो वे साधक को विविध प्रकार के मनोहर द्रव्य देंगी तथा पुत्र की भांति लालन-पालन करती रहेंगी। यदि बहन के रूप में भजा जाएगा तो वे अनेक प्रकार के पदार्थ तथा वस्त्र प्रदान करेंगी। साथ ही साधक की इच्छापूर्ति के लिए दिव्य कन्याओं एवं नागकन्याओं को भी लाकर देंगी।

यदि उन्हें पत्नी के रूप में भजा जाएगा तो साधक तीनों लोंकों में विचरण करने में समर्थ होगा। उसे प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति तथा प्रत्येक अभिलाषा की पूर्ति होती रहेगी। परन्तु उस स्थिति में साधक को अपनी पत्नी अथवा अन्य किसी भी स्त्री के साथ सहवास नहीं करना चाहिए। वह केवल योगिनी के साथ शारीरिक सम्पर्क रख सकेगा, अन्यथा देवी क्रुद्ध होकर उसका नाश कर देंगी।

मनोहरा योगिनी साधना

'मनोहरा' योगिनी का साधना-मंत्र नीचे दिया जा रहा है—

ॐ ह्रीं मनोहरे आगच्छत स्वाहा ।

साधना विधि— नदी तट पर जाकर नित्यकर्म एवं स्नानादि से निवृत्त हो न्यास आदि क्रियाओं को समाप्त करें। फिर चन्दन के मण्डल में पूर्वोक्त मंत्र को लिखकर 'मनोहरा' योगिनी

का ध्यान करें। 'ह्रीं' मन्त्र से प्राणायाम तथा 'ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः' आदि से करांगन्यास करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— 'मनोहरा' योगिनी का ध्यान साधक को निम्नानुसार करना चाहिए—

कुरङ्गनेत्रां शरदिन्दुवक्त्रां बिम्बाधरां चन्दन गन्ध लिप्ताम् ।

चीनांशुकां पीनकुचां मनोज्ञां, श्यामा सदा काम दुधां विचित्राम् ।।

अर्थात् 'मनोहरा' योगिनी हिरण के समान नेत्रों वाली, शरद्-चंद्रमा के समान मुख वाली, बिम्बाफल जैसे होंठों वाली, तोते जैसी नाक वाली, पीन स्तनी, मन की बात जानने वाली, श्यामवर्ण, विचित्र एवं साधकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं, मैं उनका ध्यान करता हूं। उक्त प्रकार से योगिनी देवी का ध्यान तथा विधिपूर्वक अगर, धूप, गन्ध, पुष्प, मधु और ताम्बूल आदि से पूजनादि करके प्रतिदिन दस हजार की संख्या में मंत्र जप करें।

इस प्रकार नित्य एक मास तक जप करते रहें। मास के अन्तिम दिन प्रातःकाल जप करना आरम्भ करके दिनभर मंत्र जप करते रहें। अर्धरात्रि तक जप करते रहने पर 'मनोहरा' योगिनी साधक को दृढ़ प्रतिज्ञ जानकर उसके पास आती हैं। तब साधक को अर्घ्यादि द्वारा उनका पूजनोपचार करना चाहिए तथा अपनी मनोभिलाषा को देवी के समक्ष प्रकट करनी चाहिए।

इस प्रकार योगिनी प्रसन्न होकर साधक की सभी इच्छाओं को पूरा करेंगी तथा उसे प्रतिदिन एक सौ स्वर्ण मुद्राएं देंगी। साधक को चाहिए कि वह सभी स्वर्ण मुद्राओं को प्रतिदिन खर्च कर दिया करे, अन्यथा देवी क्रुद्ध होकर कुछ भी नहीं देंगी। इस योगिनी के साधक को स्त्री सहवास त्याग देना चाहिए।

कनकवती योगिनी साधना

'कनकवती' योगिनी का साधना-मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं हूं रक्षकंर्मणि आगच्छ कनकवति स्वाहा ।

साधना विधि— नित्यकर्मादि से निवृत्त होकर, किसी वटवृक्ष के नीचे बैठकर 'कनकबती' योगिनी का यथाविधि पूजन करें। फिर 'ह्रीं' मंत्र से प्राणायाम तथा 'ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' आदि से करांगन्यास करें। अब द्वारा बलि प्रदान करें तथा उच्छिष्ट रक्त से अर्घ्य दें।

ध्यान का स्वरूप— 'कनकवती' योगिनी का ध्यान निम्न प्रकार करें—

प्रचण्डवन्दना देवी पक्व बिंबाधरां प्रिये ।
रक्ताम्बराधरां बालां सर्वकामप्रदां शुभाम् ।।

अर्थात् प्रचण्ड वदना 'कनकवती' देवी के होंठ पके हुए बिम्बाफल के समान लाल हैं। वे लाल वस्त्रों को धारण करने वाली, बालास्वरूपिणी तथा समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाली हैं।

पूर्वोक्त मंत्र का सात दिन तक जप एवं पूजन करते हुए आठवें दिन यथाविधि पूजन कर मनोहर बलि देकर आधी रात तक जप करें। इससे देवी प्रसन्न होकर साधक के समीप आकर उसे अभिलषित वर मांगने को कहेंगी, तब साधक को अर्घ्यादि द्वारा उनका पूजन करके, उन्हें पत्नी के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

'कनकवती' देवी साधक को पत्नी के रूप में पहले दिन विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ देती हैं, फिर अपने वस्त्राभूषणादि छोड़कर चली जाती हैं। तत्पश्चात् वे हर रात साधक के पास आती रहती हैं तथा उसकी प्रत्येक कामना की पूर्ति करते हुए उसे प्रसन्न बनाए रखती हैं। इस प्रकार देवी के सिद्ध हो जाने पर साधक को पत्नी तथा अन्य स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिए अन्यथा देवी क्रुद्ध होकर उसे हानि पहुंचाएंगी। फिर उसके पास कभी नहीं आएंगी।

कामेश्वरी योगिनी साधना

'कामेश्वरी' योगिनी का साधना-मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं आगच्छ कामेश्वरी स्वाहा ।

साधना विधि— भोजपत्र पर गोरोचन और सर्वालंकारों से विभूषित देवी का एक चित्र बनाएं। फिर पूर्वोक्त विधि से पूजनादि कर किसी एकान्त स्थान में शय्या पर बैठकर प्रतिदिन एक हजार की संख्या में मंत्र जप करें। पूजा तथा मंत्र जप के समय घी एवं मधु का दीपक जलना चाहिए। यह नियम नियमित एक मास तक जारी रखना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— 'कामेश्वरी' योगिनी का ध्यान साधक को निम्नानुसार करना चाहिए—

कामेश्वरी शशांकास्यां चलत्खज्जन लोचनाम् ।
सदा लोलगति कान्तां कुसमास्त्र शिलीमुखम् ।।

अर्थात् 'कामेश्वरी' योगिनी चन्द्रमा के समान मुख वाली, खंजन जैसे चंचल नेत्रों वाली, अतिसुन्दर तथा पुष्पबाण को धारण करने वाली हैं।

उक्त प्रकार से ध्यान, पूजन एवं मंत्र जप करने पर कामेश्वरी देवी साधक के समीप प्रकट होकर उसकी समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करती हैं। पत्नी के रूप में वे साधक को विविध वस्तुएं प्रदान करती हैं। वे रात भर साधक के पास रहकर अनेक प्रकार के वस्त्रालंकार देकर प्रातःकाल चली जाती हैं। फिर प्रत्येक रात्रि में आती रहती हैं। योगिनी के सिद्ध हो जाने पर साधक को अपनी पत्नी एवं अन्य स्त्रियों से संसर्ग त्याग देना चाहिए।

रति-सुन्दरी योगिनी साधना

'रति-सुन्दरी' योगिनी का साधना-मंत्र नीचे दिया जा रहा है—

ॐ ह्रीं आगच्छ रति-सुन्दरी स्वाहा ।

साधना विधि— एक रेशमी वस्त्र पर योगिनी का चित्र बनाकर न्यास, पूजन तथा जप आदि क्रियाओं को पूर्वोक्त विधि से करें। यह कार्य एक मास तक करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— 'रति-सुन्दरी' योगिनी का ध्यान निम्नानुसार करें—

सुवर्णवर्णां गौराङ्गी सर्वालङ्कार भूषिताम् ।
नूपूरांगदहाराढ़्यां रम्यां च तूष्करेक्षणाम् ।।

अर्थात् 'रति-सुन्दरी' योगिनी स्वर्ण के समान वर्ण वाली, गौरांगी, समस्त अलंकारों—नूपुर, बाजूबन्द, हार आदि से सुशोभित तथा कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली हैं।

उक्त प्रकार से ध्यान कर पद्म, चन्दन तथा चमेली के पुष्पों से पूजन कर प्रतिदिन आठ

हजार की संख्या में उपरोक्त मंत्र का जप करते रहें। एक मास तक नित्य उक्त विधि से साधना करते रहने पर अन्तिम दिन जब तक देवी न आएं, तब तक घी का दीपक जलाकर तथा गन्ध, पुष्प, ताम्बूल आदि निवेदित कर निरन्तर मंत्र जप करते रहना चाहिए।

अर्द्धरात्रि के समय जब देवी साधक के पास आएं तो चमेली के पुष्पों से निर्मित माला द्वारा उनका पूजन करें। सन्तुष्ट हो जाने पर देवी पत्नी के रूप में साधक को भोज्य-पदार्थ, रति तथा अन्य अभिलषित वस्तुएं प्रदान करती हैं। वे रातभर साधक के पास रहकर प्रातःकाल वस्त्राभूषण वहीं त्याग कर अपने घर चली जाती हैं। फिर साधक की आज्ञानुसार प्रतिदिन आती हैं। देवी के सिद्ध हो जाने पर साधक को अन्य स्त्रियों के साथ सम्पर्क त्याग देना चाहिए।

पद्मिनी योगिनी साधना

'पद्मिनी' योगिनी का साधना-मंत्र निम्न प्रकार है—

ॐ हीं आगच्छ पद्मिनी स्वाहा ।

साधना विधि— नित्यकर्म से निवृत्त हो, अपने घर के किसी एकान्त स्थान अथवा शिवमंदिर में बैठकर पूर्वोक्त विधि से न्यास एवं पूजनादि करके चन्दन का मण्डल बनाकर, उसमें देवी के उक्त मंत्र को लिखें।

ध्यान का स्वरूप— 'पद्मिनी' योगिनी का ध्यान साधकों को निम्न प्रकार करना चाहिए—

पद्माननां श्यामवर्णां पीनोत्तुगं पयोधराम् ।
कोमलांगी स्मेरमुखीं रक्तोत्पतदलेक्षणाम् ।।

अर्थात् 'पद्मिनी' योगिनी कमल के समान मुख वाली, श्याम वर्ण, स्थूल, उन्नत स्तनों वाली, कोमलांगी, स्मितमुखी तथा लाल कमल जैसे नेत्रों वाली हैं।

उक्त विधि से ध्यान करते हुए प्रतिदिन एक हजार की संख्या में देवी का मंत्र एक मास तक जपें। जप पूर्णिमा से आरम्भ करना चाहिए तथा यथाविधि पूजनादि की क्रियाएं करनी चाहिए। दूसरी पूर्णिमा की रात्रि में यथाविधि पूजनादि करके अर्द्धरात्रि तक मंत्र को जप करते रहना चाहिए। तब देवी साधक के समीप आकर उसे भोग, भोज्य पदार्थ एवं आभूषण आदि देकर सन्तुष्ट करती हैं। फिर वे नित्य आती-जाती बनी रहकर पत्नी की भांति उसकी सेवा करती हैं। देवी के सिद्ध हो जाने पर साधक को अन्य स्त्रियों से सम्पर्क त्याग देना चाहिए।

नटिनी योगिनी साधना

'नटिनी' योगिनी का साधना-मंत्र नीचे दिया जा रहा है—

ॐ ह्रीं नटिनि स्वाहा ।

साधना विधि— नित्यकर्म से निवृत्त होकर न्यास एवं पूजनादि के उपरान्त धूप निवेदित कर उक्त मंत्र का प्रतिदिन एक हजार की संख्या में जप करना चाहिए। फिर निम्न रूप में देवी का ध्यान करना चाहिए।

ध्यान का स्वरूप— 'नटिनी' योगिनी का ध्यान साधकों को निम्न प्रकार करना चाहिए—

तैलोक्य मोहिनी गौरी विचित्राम्बर धारिणीम् ।

विचित्रालंकृतां रम्यां नर्तकीवेष धारिणीम् ।।

अर्थात् 'नटिनी' योगिनी देवी तीनों लोकों को मोहित करने वाली, गौरवर्ण, विचित्र वस्त्रों को धारण करने वाली, विचित्र आभूषणों से सुसज्जित तथा सुन्दर नर्तकी का वेश धारण करने वाली हैं।

उक्त विधि से एक मास तक पूजन, ध्यान तथा मंत्र जप करते रहें। महीने के अन्तिम दिन महापूजा करें। इससे नटिनी योगिनी प्रसन्न होकर अर्द्धरात्रि के समय साधक के समक्ष प्रकट होती हैं। पहले वे परीक्षा के लिए साधक को अनेक प्रकार से डराती हैं। यदि साधक भयभीत न होकर निरन्तर मंत्र जप करता रहता है तो वे उससे इच्छित वर मांगने के लिए कहती हैं। उस समय साधक को चाहिए कि वह पाद्य, अर्घ्य, पूजन तथा भक्ति द्वारा देवी को सन्तुष्ट कर उन्हें माता, बहन अथवा पत्नी के रूप में सम्बोधित करे।

यदि देवी को मातृ भाव में स्वीकार किया गया है तो वे साधक का पुत्र की भांति पालन करती रहेंगी तथा प्रतिदिन सौ स्वर्ण मुद्राएं एवं अभिलषित वस्तुएं देती रहेंगी। यदि बहन के रूप में उन्हें भजा गया तो वे उसे प्रतिदिन भोग के लिए एक नागकन्या तथा राजकन्या लाकर देंगी। साथ ही साधक को भूत, भविष्य एवं वर्तमान की सभी घटनाओं की जानकारी देती रहेंगी। यदि उन्हें पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया तो वे विपुल धन, नाना प्रकार के उपहार, अभीष्ट भोजन, प्रतिदिन सौ स्वर्ण मुद्रा तथा रति सुख प्रदान करती रहेंगी। अतः साधक को इन दिनों अपनी पत्नी सहित अन्य स्त्रियों से भी सम्पर्क छोड़ देना चाहिए।

मधुमती योगिनी साधना

'मधुमती' योगिनी का साधना-मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ह्रीं आगच्छ अनुरागिणी मधुमती मैथुनप्रिये स्वाहा ।

साधना विधि— नित्यकर्मादि से निवृत्त होकर सर्वप्रथम भोजपत्र पर कुंकुम द्वारा एक स्त्री का चित्र बनाकर उसके बाह्य भाग में अष्टदल कमल स्थापित करें। फिर न्यास क्रियाएं करके उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर देवी का ध्यान करें।

ध्यान का स्वरूप— 'मधुमती' योगिनी का ध्यान निम्न प्रकार करें-

शुद्ध स्फटिकसंकाणं नानालङ्कार भूषिताम् ।
मंन्जीरहार केयूररत्न कुण्डलमण्डिताम् ।।

अर्थात् 'मधुमती' देवी विशुद्ध स्फटिक के समान शुभ्र वर्ण वाली, अनेक प्रकार के वस्त्रालंकारों से विभूषित, पायजेब, हार, केयूर एवं रत्नजड़ित कुण्डलों से सुशोभित हैं।

उक्त विधि से देवी का ध्यान करते हुए प्रतिपदा तिथि से साधना आरम्भ कर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारों सहित तीनों संध्याकाल में पूजन करें। घी का दीपक जलाकर एवं धूप देकर नित्य तीस दिन तक एक हजार की संख्या में जप करें। तीसवें दिन पूरे दिन-रात घी का दीपक जलाकर मन्त्र जप करते रहें। प्रातःकाल के समय देवी साधक के समीप आकर उसे रति एवं भोग पदार्थों से सन्तुष्ट करेंगी। तत्पश्चात् वे साधक को प्रतिदिन देव, गन्धर्व, नाग, दानव, विद्याधर एवं यक्ष कन्याएं, अनेक प्रकार के रत्न, आभूषण तथा भोज्य पदार्थ आदि देती रहेंगी। वे साधक

की प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करती रहेंगी। योगिनी देवी की कृपा से साधक का शरीर दीर्घकाल तक जीवित बना रहता है। अतः साधक इन देवियों के द्वारा अनेक सिद्धियां प्राप्त कर लेते हैं।

योगिनी साधना भौतिक सुखों को ही प्रदान करती है, परन्तु इनसे परलोक बिगड़ जाता है। अत: जो व्यक्ति ब्रह्मवेत्ता हो, ब्रह्म का चिन्तन करता हो अथवा जिन्हें अपना परलोक सुधारना हो, उन्हें ये साधना नहीं करनी चाहिए।

चतुर्थ खंड

अर्क चिकित्सा
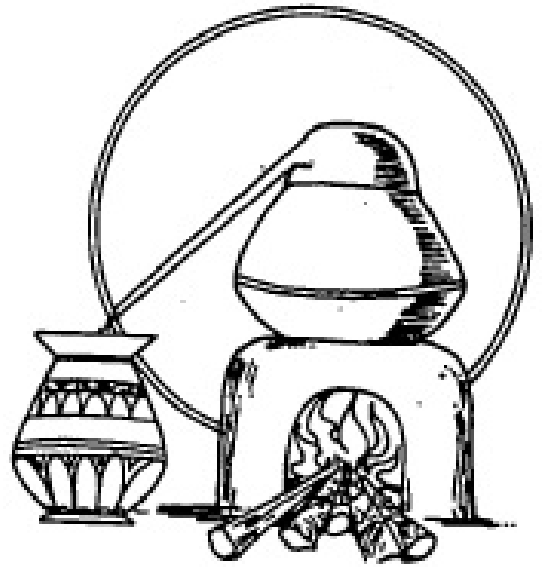
वनस्पतियों का प्रयोग तंत्र में भी होता है। इसलिए एक अच्छे तांत्रिक के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह वनस्पतियों के गुण-दोषों से भलीभांति परिचित हो। साधक प्रकृति की उपयोगिता को समझते हुए उससे तादात्म्य स्थापित कर ले, यह भी इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष है। ऐसा करके वह प्रकृति को सजीव रूप में भी महसूस करता है। औषधियों के रूप में वनस्पतियों का प्रयोग हो या फिर तंत्र रूप में उनसे अपनी कार्यसिद्धि के लिए प्रार्थना करना और फिर उन्हें लेकर आना, ये सभी ऐसी अपूर्व प्रक्रियाएं हैं, जिनकी दिव्यता का आभास उसे ही हो सकता है जिसने ऐसा स्वयं किया हो। चिकित्सा, तंत्र और ज्योतिष के आपसी संबंधों को बिना समझे सुख-शांति, यहां तक कि मुक्ति की भी कल्पना नहीं की जा सकती।

एक अच्छा योद्धा भी वनस्पति के बारे में अच्छी जानकारी रखता है, क्योंकि शत्रु को मारने के लिए और स्वयं को सशक्त बनाने के लिए वनस्पतियों का प्रयोग आसानी से हो सकता है।

यह संभव है कि जिन अर्कों की चर्चा औषधियों के रूप में इस ग्रंथ में की गयी है, वे हमारे संस्कारों के अनुकूल न हों, लेकिन उनके चमत्कारी प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता। चिकित्सक का उद्देश्य रोगी को नीरोगी बनाना होता है, बस।

चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण पहलू होता है नवजात शिशु और उसकी मां को रोगमुक्त रखना। लंकाधिपति रावण ने 'अर्क प्रकाश' के अलावा 'कुमारी तंत्र' में इनसे संबंधित रोगों की उनके लक्षणों सहित चर्चा की है। इस खंड में दी गई औषधियों का प्रयोग करने से पहले जरूरी है कि किसी अनुभवी चिकित्सक से परामर्श लिया जाए। शिशु-संबंधी रोगों की औषधियों के बारे में ऐसी असावधानी कभी नहीं बरतनी चाहिए। कारण? शिशु औषधि के प्रभाव के बारे में स्पष्ट व अपरोक्ष रूप से कोई जानकारी नहीं दे सकता।

अथार्कप्रकाशे

प्रथमं शतकम्

महात्मा रावण राजनीति, चिकित्सा, तंत्र तथा ज्योतिष शास्त्र के प्रकांड विद्वान माने जाते हैं। रावण को जितना ज्ञान धर्म एवं ज्योतिष में था, उससे कहीं ज्यादा वे चिकित्सा विधि में दक्ष थे। प्रस्तुत खण्ड में उनके ग्रंथ 'अर्क प्रकाश' से अनेक उपचारों का समावेश किया गया है, जो क्रमशः दस शतकों में है—

औषधीपतिनेत्राय पद्मिनीपतिमूर्तये ।
कालकालाय नीलाय पार्वतीपतये नमः ।।1।।

जिनके मस्तक पर औषधिपति चंद्र स्वयं विराज रहे हैं, जो पद्मिनी पति चंद्र के सदृश अति निर्मल और परिष्कृत रूप वाले हैं तथा काल के भी काल हैं, ऐसे नीलकंठ पार्वतीपति शिव को मैं सादर प्रणाम करता हूं।

गर्भभारपरिक्रांता कन्या मंदोदरी तथा ।
रावणं परिपप्रच्छ पूजांते तुष्टमानसम् ।।2।।

पांच कन्याओं में से एक मंदोदरी ने गर्भ-भार से पीड़ित और दुःखी होकर एक बार पूजा-पाठ करने के बाद प्रसन्नचित्त अपने पति रावण से पूछा।

मंदोदरी उवाच —

स्वामिन्दैत्यसुराराध्य चतुर्वेदविशारद ।
सदाऽणिमाद्याप्तकाम भुवनत्रयपालक ।।3।।

स्वामी! आप देवों और दैत्यों द्वारा पूजनीय, चारों वेदों में निष्णात, अणिमादि सिद्धियों से परिपूर्ण, कामवान तथा तीनों लोकों के पालनकर्ता हैं।

इदं शुक्रममोघं ते यदारभ्योदरे स्थितम् ।
तदारम्य न शक्रोमि वक्तुं वक्तुमना मनाक् ।।4।।

आपका अमोघ और सार्थक वीर्य जब से मेरे गर्भाशय में अवस्थित हुआ है तभी से मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूं, किंतु इस पीड़ा के कारण कह नहीं पाती।

दुखं रोगश्च कालश्च त्वत्प्रसादान्मनागपि ।
रक्षोगणा न स्पृशन्ति त्वेषा पीडा कथं मम ।।5।।

जिसे आपका साथ उपलब्ध हो, उसे कष्ट, रोग, काल, राक्षस आदि कोई भी स्पर्श नहीं कर सकता, फिर भी मैं पीड़ा भोग रही हूं। क्यों? यह बताइए।

उपायं ब्रूहि मे नाथ गर्भिण्या हि यथोचितम् ।
यथा विवर्धते गर्भो जायते च बलं मम् ।।6।।

हे स्वामी! आप गर्भवती स्त्री की समस्याओं का उचित समाधान बताइए, जिससे मेरे गर्भ

और बल में वृद्धि हो सके।

रावण उवाच—

एकदा हि मया पृष्टा पार्वती प्रीतमानसा ।
उमे ते हि जगन्मातस्तव देहोद्भवाः सुताः ।।7।।
कथं न हि गणेशाद्याः सदृशास्तव बालकाः ।
तिष्ठन्ति नानुरूपास्ते कारणं ब्रूहि मे शिवे ।।8।।

रावण ने कहा—एक बार मैंने प्रसन्नमना मां भगवती पार्वती से पूछा था कि हे जगतमाता पार्वती! आपके तन से ही उत्पन्न गणेश आदि पुत्र आपकी भांति क्यों नहीं हैं? वे तेज और रूप में भी आपके और परमपिता शिव के समकक्ष नहीं हैं। इसका क्या कारण है?

पार्वत्युवाच —

कामिनोऽनंगनाशाय जायते बालकाः सुत ।
भार्यापि वृद्धा भवति तरुण्यपि सुते सति ।।9।।

पार्वती ने उत्तर दिया—पुत्र रावण! कामुक पुरुषों की कामेच्छा की पूर्ति करने और उनकी संतान को जन्म देने वाली स्त्री शीघ्र ही युवावस्था को लांघकर वृद्धावस्था को प्राप्त होती है।

एवं सदाशिवं रन्तुं सदैवाहं कुमारिका ।
गणेशस्कंदनन्द्याद्याः कल्पिता मानसाः सुताः ।।10।।

मैं भगवान शिव के साथ रहती हुई सर्वदा कुमारी अवस्था का पालन करती हूं, इसलिए चिर-युवा ही रहती हूं। मेरे पुत्र गणेश, स्कन्द व नंदी आदि मेरे मन की कल्पना द्वारा उत्पन्न हुए हैं, यानी वे मानस-पुत्र हैं।

रावण उवाच —

नमस्तुभ्यं मया किं हि संसाराकृष्टचेतसा ।
विवाहं न करिष्यामि प्रत्युत स्यां कुमारकः ।।11।।

रावण ने कहा—हे भगवती, मैं आपको सादर प्रणाम करता हूं। मैं तो संसारी जीव हूं, मेरे लिए यह समझ पाना अत्यंत कठिन है। अतः मैं भी सदैव अविवाहित ही रहूंगा और कुमार-धर्म का पालन करूंगा।

इति मद्वचनं श्रुत्वा पार्वती वाक्यमब्रवीत् ।
निर्विण्णो भव मा पुत्र कुरु राज्यं चिरं स्थिरम् ।।12।।

मेरी बात सुनकर पार्वती ने कहा—पुत्र रावण! तुम्हें दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। तुम चिरंजीवी रहकर अनंतकाल तक राज करो।

मया सह कृतेर्ष्येयं विष्णुपत्न्यतिचंचला ।
त्वया गृहे समानेया स्थाप्या वै बन्धनेऽरिवत् ।।13।।

देवी ने यह भी कहा—श्री विष्णु की पत्नी लक्ष्मी बहुत चंचल हैं और मुझसे ईर्ष्या भाव रखती हैं। तुम भविष्य में उनके सीता रूप का हरण करना और अपने यहां शत्रु की भांति बंदी बनाकर रखना।

तयोन्मत्ताः सुराः सर्वे निर्जेतव्या महाबलाः ।

मम प्रकृतिदेहस्थरोमेभ्यः शतशोऽभवन् ।।14।।

लक्ष्मी के उस रूप के कारण सभी महाबली देवों पर तुम विजय प्राप्त करोगे। प्रकृति ने मेरे शरीर के रोम-रोम से अनेक औषधियों को उत्पन्न किया है।

ओषध्यस्तद्बलादेवं त्वं विश्वं जय बालक ।
इत्युक्त्वा मामकथयत्पार्वती महिमानकम् ।।15।।

अतः हे पुत्र! उन औषधियों की अमोघ शक्ति से तुम संपूर्ण विश्व के अपराजेय विजेता बनोगे। उसके बाद मां पार्वती ने उन औषधियों के गुणों का विशद वर्णन किया।

रावण उवाच—

दिव्यौषधीनां कथितः प्रकल्पः प्रीतया तया ।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहिता प्रिये ।।16।।

रावण ने कहा—प्रिय मंदोदरी! मां पार्वती ने जिन औषधियों के कल्प की महिमा के बारे में मुझे बताया है, वह मैं तुम्हें बताता हूं, ध्यानपूर्वक श्रवण करना।

औषधियों के प्रकार

ओषध्यः पंचधा ख्याता लता गुल्माश्च शाखिनः ।
पादपाः प्रसराश्चेति तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ।।17।।

औषधियां पांच रूपों में उपलब्ध हैं—लता, गुल्म, शाखा, पादप तथा प्रसरा। इनके लक्षण इस प्रकार हैं।

गुडूच्याद्या लताः प्रोक्ता गुल्माः पर्प्पटकादयः ।
आम्राद्या शाखिनो ज्ञेया वटाश्वत्थादि पादपाः ।।18।।

गिलोच (गुडूची) लता कहलाती है। पर्पट को गुल्म कहते हैं और आम आदि को शाखा। बरगद-पीपल आदि पादप की श्रेणी में आते हैं।

कण्टकार्यादिकाः सर्वाः प्रसरा इति कीर्तिताः ।
तासां पञ्चैव चांगानि प्रबलानि यथाक्रमम् ।।19।।

कण्टकारी आदि प्रसरा के गुणों से भरपूर हैं। इन औषधियों के पंचांग को शक्तिशाली माना जाता है।

पत्रं पुष्पं वल्कलं च फलं मूलं क्रमेण च ।
अनुक्ते बलमेतेषामुष्णमंगे यथोचितम् ।।20।।

ये पंचांग—पत्ते, फूल, छाल, फल और जड़ के रूप में होते हैं। ये सब एक-दूसरे से बढ़कर अधिक लाभदायक होते हैं। पत्ते से अधिक लाभ फूल में है। फूल से अधिक लाभदायक छाल, छाल से अधिक फल और सबसे अधिक जड़ को लाभदायक माना जाता है। वैद्य इनके शीतोष्ण गुणों के अनुसार ही विभिन्न रोगों में इनका उपयोग करते हैं।

तालिसादेस्तु पत्राणि सुमनो धातकीमुखात् ।
न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः फलं स्यात्त्रिफलादिकः ।।21।।

तालीस के पत्ते तथा धातकी आदि के फूल अधिक लाभदायक होते हैं। बरगद की छाल, त्रिफला के फल तथा पंचांगुल जड़ भी बहुत उपयोगी होती है।

पञ्चागुलादेर्मूलानि ह्यनुक्ते परिकल्पयेत् ।
खदिरासनकादीनां सारोऽपिपरिगृह्यते ।।22।।

जिन औषधियों के बारे में कोई उल्लेख न हो, वहां उनका सार ग्रहण करना चाहिए तथा वैद्य को स्वविवेक के अनुसार उसका अंग निर्धारण करना चाहिए।

रसो गुणस्ततो वीर्य विपाकः शक्तिरेव च ।
पञ्चानां यः समाहारस्तद्द्रव्यमिति कीर्त्यते ।।23।।

जिस पदार्थ में रस, गुण, बल, प्रकृति और शक्ति हो, उसे औषध कहते हैं।

स्वाद्वम्लो लवणस्तिक्तः कटुकश्च कषायकः ।
अमी षट् च रसाःख्याता निर्बलोऽत्र परस्परः ।।24।।

रस छह प्रकार के होते हैं—मधुर (मीठा), अम्ल, लवण, तिक्त, कटु तथा कषाय। प्रकृति में ये रस परस्पर अपने से अगले से अधिक निर्बल होते हैं।

मधुरः पिच्छिलः शीतो धातुस्तन्यबलप्रदः ।
चक्षुष्यो वातपित्तादीन् कुर्यात्त्वंक्स्थो मलकृमीन् ।।25।।

मधुर रस पिच्छिलता और शीतलता प्रदान करने वाला होता है। इससे शरीर में धातुओं की वृद्धि होती है। यह मां के दूध के समान ही लाभदायक होता है। यह नेत्रों के लिए भी लाभदायक है। इससे वात-पित्त का नाश होता है। मल और कृमि को उत्पन्न करने में यह सहायक माना जाता है।

अम्लोष्णान्तर्बहिः शीतो रुच्यः पित्तकफास्रदः ।
विबन्धानाहदृष्टिघ्नो दन्ताक्षिभ्रूनिकोचनः ।।26।।

अम्ल रस की प्रकृति अंदर से उष्ण तथा बाहर से शीतल होती है। यह पित्त, कफ एवं रक्त में वृद्धि करने वाला होता है। यह विबंध नामक मल-मूत्र की रुकावट व अफरा को भी दूर करता है। किंतु नेत्र, दांत व भौहों के लिए यह हानिकारक होता है।

लवणः शोधनो रुच्यः पाचनः कफपित्तहा ।
प्रायो वातहरः कायशैथिल्यमृदुकारकः ।।27।।

लवण (खारे) रस शोधक होते हैं। यह रुचि को बढ़ाते हैं और पाचन में सहायक होते हैं। कफ, पित्त एवं वात का नाश करते हैं और शरीर के लिए शिथिल तथा मृदुकारक हैं।

तिक्तः शीतस्तृषामूर्च्छाज्वरपित्तकफांजयेत् ।
रुच्यः स्वयमरोचिष्णुः कंठस्तन्यास्थिरोधकः ।।28।।

तिक्त रस में शीतलता का गुण होता है। इससे तृषा, मूर्च्छा, ज्वर, पित्त तथा कफ का नाश होता है। यह रुचि बढ़ाता है, किंतु इससे रस में रुचि कम होती है। यह गले व छाती के रोगों को भी दूर करता है और अस्थिरोधक है।

कटु रूक्षस्तन्यमेदः श्लेष्मकण्डूविषापहः ।
वातपित्तकफाग्नेयः सोऽक्षिपाचनरेचकः ।।29।।

कटु रस कुछ रुक्षपन लिए हुए होता है। यह छाती के रोगों के लिए लाभदायक है तथा कफ, कंडू और विष का भी नाश करता है। यह गरमी प्रदान करता है और नेत्रों के लिए लाभदायक होता है। यह पाचक तथा रेचक भी होता है।

कषायः कृमिकण्डूघ्नः कफशैथिल्यनाशनः ।
वातव्याधिहरः सूक्ष्मो सोऽतियुक्तोऽक्षिरोगकृत् ।।30।।

कषाय रस कृमि, कंडू, कफ, वात तथा व्याधि नाशक है। इस रस का अधिक उपयोग करने पर नेत्रों को हानि होती है। इसलिए इसका अल्प उपयोग ही करना चाहिए।

पंचभूत के गुण

गुरुः स्निग्धस्तीक्ष्णरूक्षो लघुरेते गुणाः स्मृताः ।
पंचभूतेषु तिष्ठन्ति आधिक्यादुपलक्षतः ।।31।।

पंचभूत के पांच गुण हैं—गुरु (भारी), स्निग्ध (मृदु, चिकना), तीक्ष्ण, रुक्ष तथा लघु (हल्का)। पृथ्वी में भी यही पांच गुण समाहित हैं।

गुरुर्वातहरः पुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाचकः ।
स्निग्धो वातहरः श्लेष्मा कटिमर्द्धबलापहः ।।32।।

गुरु वातहर एवं कफवर्द्धक होता है तथा पचने में अधिक समय लेता है। स्निग्ध वात को हरता है तथा कफकारक होता है। इससे कमर एवं मस्तक की शक्ति भी कम होती है।

तीक्ष्णं पित्तकरं प्रोक्तं लेखनं कफवातकृत् ।
रूक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम् ।।33।।

तीक्ष्ण पित्तकारक होता है। यह मल-निस्सारक एवं कफ-वात वृद्धिकारक होता है। रुक्ष वातकारक होता है और कफ का नाश करता है।

लघु पथ्यपरं प्रोक्तं कफघ्नं चिरपाकि च ।
पृथिव्यादिगुणाधिक्याद् गुणं द्रव्ये प्रकल्पयेत् ।।34।।

लघु को पथ्य माना गया है। यह कफ का नाश करता है। यह पचने में समय लेता है। अतः पृथ्वी के गुणों के अनुसार ही द्रव्य गुणों के साथ सामंजस्य कर औषधियां ग्रहण करनी चाहिए।

ऊष्णं शीतं द्विधा वीर्यं तत्कालाद्युपलक्षयेत् ।
स्थलादपि तयोर्योगादयोगान्मध्यमं तु तत् ।।35।।

शीतोष्ण औषधियों में बल और काल को भी परखना चाहिए। स्थान से भी औषधियां प्रभावित होती हैं। अच्छा स्थान औषधि को अधिक प्रभावशाली एवं मध्यम स्थान कम प्रभावशाली बनाता है।

सर्वं जांगलसम्भूतं प्रायो भवति पित्तहृत् ।
अनूपसंभवं सर्वं प्रायः कफकरं स्मृतम् ।।36।।

वन-प्रांत से प्राप्त सभी औषधियां पित्त का नाश करती हैं जबकि जलीय देश से प्राप्त औषधियां कफकारक होती हैं।

तत्कालोष्णं दक्षिणजं परिणामे तु शीतलम् ।
धनदाशासमुद्भूतं विपरीततया स्मृतम् ।।37।।

दक्षिण देश से उपलब्ध औषधियां प्राप्ति के समय तो उष्ण होती हैं, किंतु प्रभाव में शीतल होती हैं। उत्तर देशों से प्राप्त औषधियां इसके विपरीत होती हैं। वे प्राप्ति के समय शीतल होती हैं, किंतु उनका प्रभाव उष्ण होता है।

औषधियों की प्रकृति

अंतर्वेदिभवं सर्वं यथोक्तगुणमादिशेत् ।
विपाकस्तु त्रिधा प्रोक्तः स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ।।38।।

मध्यवर्ती देशों से प्राप्त औषधियों में यथोक्त बल होता है। औषधियों की प्रकृति तीन प्रकार की होती हैं—मधुर, अम्ल तथा कटु अर्थात् मीठा, खट्टा और कड़वा।

क्रमाद्धीनबलो ज्ञेयो मधुरोऽमधुरः कटुः ।
पचत्यम्लोऽम्लमितरे रसाः कटुकषायिनः ।।39।।

पकने पर उनका हीन बल परखना चाहिए। मधुर पकने के बाद कड़वा हो जाता है। अम्ल का स्वाद पकने पर भी अम्ल ही रहता है। शेष रस लवण, तिक्त, कटु एवं कषाय पकने के बाद कड़वे हो जाते हैं।

श्लेष्मकृन्मधुरः पाके वातपित्तहरो मतः ।
अम्लस्तु कुरुते पित्तं वातश्लेष्मगदापहः ।।40।।

मधुर पकने पर कफ की उत्पत्ति करता है और वात-पित्त का नाश करता है। अम्ल पकने पर पित्त उत्पन्न करता है तथा वात-पित्त को दूर करता है।

कटुः करोति पवनं कफपित्ते च नाशयेत् ।
विशेष एष रसजो विपाकानां प्रदर्शितः ।।41।।

कटु रस पकने पर वात की वृद्धि करता है तथा कफ-पित्त का नाश करता है। यहां रसों के विपाक प्रभाव को विशेष तौर पर तुम्हें बताया है।

द्रव्यों का प्रभाव

रसादिसाम्ये यत्कर्माविशिष्टं तु प्रभावजम् ।
दंतीरसेन तुल्याऽपि चित्रकस्य विरेचति ।।42।।

रसों की समानता में जो कर्म प्रभाव से बचे रह गए हैं, उनके बारे में भी सुनो। वज्रदंती के रस के तुल्य चित्रक का रस अतिसारकारक (विरेचक) हो जाता है।

मधुना चाथ मृद्वीका घृतं क्षीरेण दीपनम् ।
प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः ।।43।।

मधु के साथ मिलकर दाख या घृत तथा दूध के साथ मिलकर दाख तीव्र एवं दीपन हो जाती है। आंवला और कटहल के रसों की मात्रा समभाग होने पर—

समाऽपि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् ।
क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्स्वभावतः ।।44।।

तीनों दोषों यानी कफ, वात तथा पित्त का नाश होता है। कई द्रव्य स्वभाव से भी अपने प्रभाव व कर्म प्रकट करते हैं।

ज्वरं हन्ति शिरोबद्धा सहदेवी जटा यथा ।
धृता निवारयेल्लोहं पुष्यार्के किल मूलिका ।।45।।

सहदेई की जड़ सिर पर लगाने से ज्वर का नाश होता है। पुष्य नक्षत्र के अवसर पर धारण की गई मूली से शरीर में लौह तत्त्वों की कमी दूर होती है।

द्रव्य-कल्प

द्रव्यकल्पः पञ्चधा स्यात् कल्कश्चूर्णं रसं तथा ।
तैलमर्कं क्रमाज्ज्ञेयं यथोत्तरगुणं प्रिये ।।46।।

प्रिये! द्रव्य कल्प पांच प्रकार के होते हैं—कल्क, चूर्ण, तरल, तेल तथा अर्क। ये सभी एक दूसरे से अधिक गुण वाले होते हैं।

पृथग्व्द्यंशे सन्निपाते संकरेऽसाध्यरोगिणि ।
क्रमादेते प्रयोक्तव्याः कालमग्निं निरीक्ष्य च ।।47।।

इन्हें क्रमशः विभिन्न रोगों के निवारण हेतु यथा—सन्निपात, मिश्रित रोगों तथा असाध्य रोगों में उपयोग में लाया जाता है। इनके काल और अग्नि प्रभाव को देखकर ही उपयोग में लाना चाहिए।

आद्ये गुणे गुणाः सर्वे द्वितीये ह्यल्पतः स्मृताः ।
तृतीये शीघ्रकारित्वं चतुर्थी न हि दोषकृत् ।।48।।

पहले में सभी प्रकार के गुण मौजूद हैं। दूसरे में कुछ कम गुण हैं। तीसरा शीघ्र क्रिया करता है और चौथा सर्वथा दोष रहित है।

पञ्चमं दोषरहितं गुणसंघप्रकाशकम् ।
पञ्चमत्य तु सामर्थ्यं स्वयं पञ्चाननोऽब्रवीत् ।।49।।

पांचवां कल्प यानी अर्क दोष रहित है, इसमें सभी गुणों का समावेश है। यह बहुत ही प्रभावशाली है। ऐसा स्वयं पंचानन महादेवजी का कथन है।

पार्वती उवाच—

वर्षाणां तु सहस्रेण कथितोऽहर्निशं मया ।
सम्पूर्णतां न जायेत कल्पोऽर्कस्य दशानन ।।50।।

पार्वतीजी ने कहा—पुत्र दशानन! मैं सहस्र वर्षों तक रात-दिन अर्ककल्प का वृत्तांत बताती रहूं तो भी वह पूर्ण नहीं होगा।

पुंवारे पुरुषर्क्षे च दिवार्को यस्तु निर्मितः ।
रमणीषु प्रदातव्यो विलोमात्पुंसि योजयेत् ।।51।।

पुलिंग वार अर्थात् रविवार, मंगलवार एवं गुरुवार को पुरुष नक्षत्र में दोपहर के समय बनाया गया अर्क स्त्री को सेवन के लिए देना चाहिए। स्त्री वार अर्थात् सोमवार, बुधवार, शुक्रवार व शनिवार को स्त्री नक्षत्र में बनाया गया अर्क पुरुषों को सेवन करना चाहिए।

लोहचूर्णं सस्फटिका गैरिका भ्रष्टमृत्तिका ।
मृत्तिकास्थिभवं चूर्णं कांचं कीकसजं रजः ।।52।।

लौह चूर्ण, फिटकरी, गेरू, भाड़ की भुनी हुई मिट्टी के साथ अस्थि चूर्ण, कांच चूर्ण तथा कीकस चूर्ण को समभाग लेकर मिला लें।

एतानि समभागानि सर्वतुल्या च मृत्तिका ।
भ्रंशनीया पञ्चमूत्रैर्गवाश्वमहिषोद्भवेः ।।53।।

फिर इनमें इनके समभाग मिट्टी मिलाकर गोमूत्र, अश्व मूत्र, भैंसा मूत्र व बकरा मूत्र से अच्छी

तरह गूंध लें और धूप में सुखा लें।

गजाजसंभवाभ्यां च सटितं तद्विशोषयेत् ।
यावद्गन्धविनाशः स्यात्तावत्सम्मर्दयेच्च ताः ।।54।।

सुखाने से पूर्व उसका तब तक शोधन करना चाहिए, जब तक उसमें गंध का नाश न हो जाए।

लघुहस्तः कुलालोऽस्य कुर्याद्यन्त्रं सुनिर्मलम् ।
यथेष्टां स्थालिकां कुर्यात्त्र्यङ्गुलां प्रांतसारिकाम् ।।55।।

इस मसाले से किसी हल्के हाथ वाले कुम्हार द्वारा एक शुद्ध पात्र (यंत्र) तैयार करवाएं। वह पात्र अर्क बनाने की आवश्यकतानुसार चौड़ा तथा लगभग तीन अंगुल ऊंचा होना चाहिए।

पृथुबध्नोदराकारं द्वयङ्गुलां संधिवेष्टिताम् ।
सारिकांते तु परिधिं त्र्यङ्गुलोत्सैधशोभिताम् ।।56।।

सूर्य जैसे मंडल के आकार वाले जोड़ में दो अंगुल चौड़ी खाम लगाएं। ढक्कन के पात्र के किनारे तीन अंगुल नीचे की ओर होने चाहिए। दोनों पात्रों को उलटा व सीधा मिलाकर उस पर दृढ़ खाम लगा दें।

विनिर्मायार्थ सार्य्यन्ते यथा शिल्पविनिर्मितम् ।
छिद्रं कृत्वा नलं दद्याद्गजशुंडासमं सुधीः ।।57।।

सुधिजनों को चाहिए कि इस प्रकार तैयार किए गए ऊपरी पात्र के मध्य भाग में सक्षम कारीगरों से छिद्र करवाएं। फिर उसमें हाथी की सूंड के आकार का नल लगाएं।

सारिकापरिधेरन्तस्तस्य कृर्यात्पिधानकम् ।
अर्द्धनिंबूफलसमं परिधेस्तस्य चान्ततः ।।58।।

फिर ऊपर के ढक्कन में ऐसा विधान लगाएं कि यह नल उसमें तीन अंगुल तक अंदर चला जाए।

वदांगुलं मस्तकोर्ध्वं कार्यं तोयस्य धारणे ।
समर्थां तस्य नलिकां कुर्यात्तोय विमोचनीम् ।।59।।

उस पात्र का मस्तक जल धारण हेतु चार अंगुल तक ऊंचा होना चाहिए। मध्य भाग में जहां नल लगाया गया है—

तस्यैवान्तरतो लेप्या घनाजीर्णास्थिमृत्तिका ।
अथवा श्वेतकाचं च सर्वदोषापनुत्तये ।।60।।

वहां जीर्ण अस्थि व मिट्टी का लेप लगाएं। संपूर्ण दोषों की दूर करने के लिए श्वेत कांच के लेप का भी उपयोग किया जा सकता है।

भोजन पात्र

अथ वक्ष्ये तु जीर्णास्थिमृत्तिकाकरणं प्रिये ।
शिलाजतुस्थले कुर्याद्दीर्घं गर्तं मनोहरम् ।।61।।
निक्षिपेत्तत्र नानास्थिसञ्चयं द्विचतुष्पदाम् ।
स्वर्जिक्षारं महाक्षारं मृत्क्षारं लवणानि च ।।62।।

प्रिये! अब मैं तुम्हें जीर्णास्थि मृत्तिका बनाने की विधि बता रहा हूं। शिलाजीत पर्वत के स्थल पर एक गहरा व मनोहारी गड्ढा बनाएं। द्विपद तथा चतुष्पद पशु-पक्षियों की अस्थियां डालें। फिर ऊपर से सज्जीखार, महाखार, मृतखार आदि पांचों लवण, गंधक और उष्ण जल भी डालें।

गंधकोष्णजलं क्षेप्यं नानामूत्राणि तत्र च ।
एवं कृत्वा मासषट्कं दद्यात्पाषाणमृत्तिकाम् ।।63।।

अब उसमें ऊपर से कई पशुओं का मूत्र डालें। छह मास तक उसमें विविध प्रकार के पत्थर व मिट्टी भी डालते रहें।

पंकास्थ्यूर्ध्वं तदूर्ध्वं तु कुर्याद्वह्निष्टिकाः शुभाः ।
त्रिवर्षाज्जायते सर्वमेकीभूतं द्रवत्समम् ।।64।।

इसके बाद उस कीच में अस्थियां डालें और ऊपर अच्छी-अच्छी ईंटें लगा दें। तीन वर्ष में उस गड्ढे में पड़ा हुआ पदार्थ आपस में अच्छी तरह मिल जाएगा।

ततो निष्पिष्य तच्चूर्णं कृत्वा पात्राणि निर्मयेत् ।
प्रशस्तं भोजनं तत्र सूचमेद्दूषणं द्रुतम् ।।65।।

तब इस एकीकृत और सूखे पदार्थ को अच्छी तरह पीसकर चूर्ण बना लें और उस चूर्ण से भोजन के पात्र बनाएं। ये भोजन पात्र पवित्र व उत्तम होते हैं। ऐसे पात्र भोजन में सभी दोष की पूर्व सूचना देते हैं।

महाविषस्य संयोगात्तस्य भंगः प्रजायते ।
सूचीविषादिसंयोगात्तस्य स्फोटा भवंति हि ।।66।।

ऐसे पात्रों में जब महाविष का संयोग होता है तो ये तुरंत टूट जाते हैं। यही नहीं, सूची विष आदि के संयोग से उसमें छिद्र हो जाते हैं।

तत्र क्षिप्तं क्षुद्रविषं पात्रं कृष्णं करोति च ।
एवं ज्ञात्वा तत्र दद्यान्न कदाचिद्विषादिकम् ।।67।।

सामान्य विष का संयोग पात्र को काले रंग में परिवर्तित कर देता है। इस ज्ञान से विषैला अन्न खाने से बचा जा सकता है।

विषादीनामर्कसिद्धो कुर्यात्पात्रं तु लोहजम् ।
स्वर्णजं रौप्यकं वापि कुर्यात्पात्रमकल्मषम् ।।68।।

यदि विष आदि के विनाश का अर्क निकालना हो तो लौह पात्र का उपयोग करना चाहिए। स्वर्ण या रजत पात्र (यंत्र) भी उपयोग में लाया जा सकता है।

अथवा ताम्रजं वापि ह्यन्तर्वंगविलेपनम् ।
पात्रं तु बुद्ध्या कुर्वीत कषायो न भवेद्रसः ।।69।।

किंतु यदि तांबे का पात्र व्यवहार में लाना हो तो उसमें कलई कर लेनी चाहिए। अपने बुद्धि चातुर्य से ऐसा पात्र तैयार करना चाहिए जिससे अर्क कड़वा न हो।

अर्क वर्णन

द्रव्यान्तरस्य संयोगादर्कं तैलं च गुर्विणः ।
सर्वेषां निःसरत्येवं पाषाणस्य तु किं पुनः ।।70।।

द्रव्यांतरों के संयोग से सभी से अर्क एवं तेल प्राप्त हो जाता है, यहां तक कि बड़े पत्थर से भी अन्य की तो बात ही क्या है।

अनग्न्यर्कस्तथा तैलं गंधतैलादिसम्भवम् ।
वेधकं सर्वधातूनां देहस्यापि च पुष्टिदम् ।।71।।

अग्नि रहित अर्क, तेल तथा गंधक के तेल—ये तीनों धातुओं के बेधक होते हैं। ये शरीर को पूर्णता एवं पुष्टता प्रदान करते हैं।

यस्तैलकरणे दक्षश्चार्क निःसारणे पटुः ।
तस्य सेवा भवेन्नित्यं रोगैश्च न स बाध्यते ।।72।।

जिस व्यक्ति को तेल अथवा अर्क निर्माण में निपुणता प्राप्त हो, उसकी प्रतिदिन सेवा करनी चाहिए, क्योंकि वही रोगों को दूर भगाने वाला होता है।

कुत्सितार्कस्तु यामे स्याद्द्वियामाभ्यां तु मध्यमः ।
त्रिभिर्यामैर्भवेच्छ्रेष्ठ अर्कोऽमितगुणप्रदः ।।73।।

एक प्रहर में तैयार होकर प्राप्त होने वाला अर्क कम गुण वाला होता है। दो प्रहर में प्राप्त अर्क मध्यम गुण वाला तथा तीन प्रहरों में प्राप्त अर्क सर्वोत्तम होता है।

द्रव्यादधिकसौगन्ध्यं यस्मिन्नर्के प्रदृश्यते ।
जीर्णास्थिपात्रसंक्षिप्तो द्रव्यकर्णः प्रदृश्यते ।।74।।

जो अर्क अपने द्रव्य की सुगंध प्रदान करता हो तथा जिसे जीर्णास्थि पात्र में रखने पर उसके रंग में परिवर्तन न हो, ऐसा अर्क उत्तम व श्रेष्ठ होता है।

शंखकुन्देन्दु धवलोऽन्यथापात्रान्तरस्थितः ।
जिह्वोपरिगतः स्वादं दद्याद्द्रव्यभवं तु यः ।।75।।

जो अर्क शंख, कुंद और चंद्रमा जैसा श्वेत वर्ण लिए हुए हो, दूसरे पात्रों में डालने पर भी वैसा ही रहे तथा जीभ पर रखने से समाहित द्रव्य का स्वाद दे तो ऐसा अर्क सर्वोत्तम माना जाता है।

तमेवार्कं विजानीयादन्यस्तु स्याद्रसादिवत् ।
कृत्वा सुगंधिमेतस्य ह्यर्कपुष्पादिभिः सुधीः ।।76।।

शेष अर्क जल समान ही माने जाते हैं। दुर्गंधित अर्क में किसी सुगंधित अर्क या पुष्प को मिलाकर उपयोग में लाना चाहिए।

गुणाय पश्चात्सेवेत त्वन्यथाऽपगुणो भवेत् ।
दुर्गंधं भक्षयेदर्कं यदि मोहात्कथञ्चन ।।77।।

गुणयुक्त अर्कों का ही सेवन करना चाहिए। मोह या लालचवश दुर्गंधित अर्क का सेवन कई प्रकार के दोष या विकार उत्पन्न कर सकता है।

तदाऽस्य जायते ग्लानिर्वान्तमालस्यकं तथा ।
तद्दोषस्य विनाशाय कुर्याद्वान्तिमतन्द्रितः ।।78।।

इस तरह का अर्क-सेवन ग्लानि और वमन उत्पन्न करता है तथा आलस्य से घेर लेता है। इस दोष के निवारण हेतु चैतन्य भाव से वमन करना चाहिए।

अर्क सेवन विधि

दीपोद्भवप्रसूनानां पिबेदथ पलं जलम् ।
अर्कदुर्गन्धिविभ्रष्टो मालत्या दुस्तृषार्दितः ।।79।।

अर्क-दुर्गंध के निवारण हेतु चमेली के खिले हुए फूल के जल का सेवन करना चाहिए।

अग्नि के लक्षण

अर्कनिष्कासनार्थाय क्रमाद्देयाः षडग्न्यः ।
धूमाग्निश्चैव मंदाग्निर्दीपाग्निर्मध्यमस्तथा ।।80।।

अर्क प्राप्ति हेतु छह प्रकार की अग्नि दी जाती हैं—धूमाग्नि, मंदाग्नि, दीपाग्नि, मध्यमाग्नि, खराग्नि व भटाग्नि।

खराग्निश्च भाटाग्निश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ।
विज्वलो यो धूमशिखो धूमाग्निः स उदाहृतः ।।81।।

इन अग्नियों के लक्षण इस प्रकार होते हैं—बिना ज्योति वाली अग्नि तथा जिसका धुआं ऊंचाई तक जाए, वह 'धूमाग्नि' कहलाती है।

द्वाभ्यां तस्य चतुर्थाभ्यां योऽग्निर्दीपाग्निरुच्यते ।
चतुरंशेन तेनैव मंदाग्निः स प्रकीर्तितः ।।82।।

धूमाग्नि को दोगुनी और चौगुनी करने वाली 'दीपाग्नि' कहलाती है। चौगुनी को समभाव से जलाने वाली को 'मंदाग्नि' कहते हैं।

आर्द्रीकृताभ्यां द्वाभ्यां तु मध्यमाग्निरुदाहृतः ।
अर्धस्तैः पञ्चभिः प्रोक्तः खराग्निः सर्वकर्मसु ।।83।।

मंदाग्नि से दोगुनी अग्नि 'मध्यमाग्नि' कहलाती है। शेष पांचों अग्नियों से जो आधी जलाई जाए, उस अग्नि को 'खराग्नि' कहा जाता है।

मस्तकावधि पात्रस्य चतुर्दिक्षु क्रमेण च ।
प्रसरंति यदा ज्वालाः स भटाग्निरुदीरितः ।।84।।

जो अग्नि अर्क पात्र के ऊपर तक चारों तरफ प्रज्वलित होती है, वह 'भटाग्नि' कहलाती है।

सार्द्धयामं च यामं च यामार्द्धं च मुहूर्तकम् ।
मुहूर्तमात्रमित्येवमर्कार्थं वह्नयः स्मृताः ।।85।।

अर्क प्राप्ति हेतु इन अग्नियों को जलाने की विधि क्रमशः इस प्रकार है—पहली अग्नि डेढ़ पहर तक, दूसरी दो पहर तक, तीसरी आधा पहर तक, चौथी ढाई घड़ी तथा पांचवीं दो घड़ी तक प्रयोग की जानी चाहिए।

लकड़ी के गुण

ससारमतिशुष्कं यं मुष्टिमध्ये समेष्यति ।
तत्काष्ठं ग्राह्यमित्याहुः खदिरादिसमुद्भवम् ।।86।।

लकड़ी सार (गांठ सहित) भारी व सूखी हुई होनी चाहिए। खदिरादि से प्राप्त लकड़ी एक मुट्ठी में आनी चाहिए।

अर्क के पात्र

जीर्णास्थिपात्रे गृह्णीयादर्कं वा काचसंभवे ।

पाषाणकेऽथवा पात्रे अभावे मृन्मये न्यसेत् ।।87।।

जीर्णास्थि पात्र, कांच पात्र व पत्थर के पात्र में अर्क लेना चाहिए। इन पात्रों के अभाव में मिट्टी का पात्र भी प्रयोग किया जा सकता है।

अर्कपान के पश्चात्

पिबेदर्कमनिर्वार्य पीत्वा ताम्बूलभक्षणम् ।
कुर्यादमुक्तताम्बूलो लवंगं भक्षयेत्तु च ।।88।।

अर्क पीने के तुरंत बाद ताम्बूल का सेवन करें। ताम्बूल न हो तो लौंग का सेवन करें।

औषधि और अर्क का मिश्रण

ये ये द्रव्य गुणाः प्रोक्ताः सर्वे तेऽर्कं समाश्रिताः ।
सेवेतार्कं श्रिये तस्माद्राजा परमधार्मिकः ।।89।।

द्रव्य-औषधियों में जो गुण होते हैं, वे सब अर्क में भी होते हैं, इसलिए राजा को परम कल्याण के लिए अर्क का सेवन करते रहना चाहिए।

अर्क एवं तेल में अंतर

मर्दनादिषु सर्वत्र द्रव्यं तैलं प्रयोजयेत् ।
अर्क एवं प्रयोक्तव्यो भक्षणे न तु भोजने ।।90।।

मर्दन हेतु औषध के तेल का ही उपयोग करना चाहिए। खान-पान में केवल अर्क सेवन करना चाहिए, तेल नहीं।

स्वस्थेन रोगिणा वाऽपि याचितोऽर्कस्य येन वा ।
ज्ञात्वा तल्लक्षणं दद्यादन्यथा ब्रह्महा भवेत् ।।91।।

रोगी का विचार करने के बाद उनके लक्षणों को पहचान कर ही अर्क का प्रयोग करना चाहिए अन्यथा यह ब्रह्महत्या के पाप के समान है।

दूत मुखाक्षर पर आधृत रोग विचार

वर्णस्वराणां प्रमितिं दूतोक्तानां हि कारयेत् ।
एकयुक्तां द्विगुणितो त्रिभिर्भागं समाहरेत् ।।92।।

दूत के मुख से निकले वर्ण अक्षरों को सुधिजन पहले गिन लें और उसके दोगुने को तीन से भाग कर दें।

एकशेषे गुणः शीघ्रं द्विशेषे वर्द्धते गदः ।
त्रिशेषे मरणं वाच्यं स्वार्थ याचयतेऽथवा ।।93।।

यदि शेष में एक बचे तो अतिशीघ्र लाभ होगा। दो शेष बचें तो देर से लाभ पहुंचेगा। तीन शेष बचें तो रोगी की मृत्यु होनी अवश्यंभावी है।

अर्कं तदेतद्विज्ञाय दद्याद्योग्यं न चान्यथा ।
गदिना तु यदा दूतः प्रेषितस्तद्विचारयेत् ।।94।।

इन सब पर पूर्ण विचार के बाद ही अर्क सेवन करना चाहिए। दूत के द्वारा

रोगी के विषय में कहे गए वचनों पर अवश्य विचार करना चाहिए।

रोगोद्धार एकादश कोष्ठक

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	कोष्ठ संख्या
						ऐ	ओ	औ	अं	अः	स्वर
क	च	ट	त	प	य	श	क्ष	त्र	ज्ञ	छ	वर्ण
ख	छ	ठ	थ	फ	र	ष	0	0	0	0	वर्ण
ग	ज	ड	द	ब	ल	स	0	0	0	0	वर्ण
घ	झ	ढ	ध	भ	व	ह	0	0			वर्ण
ङ	ञ	ण	न	म	0	0	0	0	0	0	वर्ण
	3	3	4	8	6	4	3	1	0	1	अंक 11

नपुंसकान्त्यैरूनास्तु स्वरा एकादश प्रिये ।
वर्णास्तत्संख्यका लेख्या कचटाद्यास्तु तत्स्थले ।।95।।

नपुंसक वर्ण स्वरों में अन्त के अं, अः छोड़कर शेष 11 स्वरों को कोष्ठकों में लिखा जाना चाहिए। क च ट आदि क्रमशः सभी वर्णों को भी ऊपर से नीचे की ओर लिखें।

एकादशसु कोष्ठेषुक्रमादंकांश्च विन्यसेत् ।
रसास्त्रयो द्वयं वेदाः पर्वता ऋतवः कृताः ।।96।।
वह्नयः पृथिवी शून्यं चन्द्रमाश्च ह्यतिक्रमात् ।
विहाय जीवदूतस्य नामाक्षरसुयोजनम् ।।97।।

कोष्ठों में अंक क्रम से लिखें। रस का अंक 6, भय का 3, हद का 2, वेद का 4, पर्वत का 8, ऋतु का 6, कृता का 4, बुद्धि का 3, पृथ्वी का 1, शून्य का 0 तथा चंद्रमा का अंक 1 है, जिन्हें क्रमशः कोष्ठकों में लिखकर विचार करें। दूत लाभ के अक्षरों को अब ध्यानपूर्वक स्वर के साथ जोड़ें। इनमें वर्जित स्वर अक्षर सम्मिलित नहीं करने चाहिए।

एकमेवाऽऽतुरे युक्त्वा द्वयोरष्टावशेषितम् ।
कृत्वाङ्कयोगं गदिनोऽधिकशेषे शुभं भवेत् ।।98।।

इसमें रोगी के नाम अक्षरों को जोड़कर दोनों को आठ से भाग करें। यहां दोनों का शेष महत्वपूर्ण है। रोगी का शेष अधिक हो तो उसके स्वास्थ्य को लाभ पहुंचेगा।

समशेषे दीर्घारोगो न्यूनशेषे तदा मृतिः ।

एतद्विचार्य दातव्यमन्यदप्यौषधं बुधैः ।।99।।

दोनों का शेष समान होने पर रोग और बढ़ेगा। रोगी का शेष कम होने पर उसकी मृत्यु निश्चित है। विद्वानों को यह समझने के बाद ही रोगी को औषधियां तथा द्रव्यों का अर्क देना चाहिए।

चक्रद्वयं तु यो ज्ञात्या दद्यादर्कं विमोहितः ।
जायते यर्ह्यपयशो तत्र चापि मृते सति ।।100।।

जो वैद्य इस कोष्ठक चक्र से परिचित होता है और इस पर विचार करके रोगी को औषधियां देता है, वह मृत्यु शय्या पर पड़े रोगी को भी जीवनदान देकर सम्मान का भागी बनता है।

।। लंकेश्वर रावणकृत अर्क प्रकाश का 'प्रथमं शतकम्' संपूर्ण हुआ ।।

अथार्कप्रकाशे
द्वितीयं शतकम्

रावण उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ह्यर्कनः सारणं प्रिये ।
पंचप्रकारद्रव्यस्य कुर्यान्निष्कासनं बुधः ।।1।।

रावण बोला—प्रिय मंदोदरी! अब मैं तुम्हें अर्क निकालने की विधि बताता हूं। वैद्य को पांच द्रव्यों एवं औषधियों से अर्क प्राप्त करना चाहिए।

पंच द्रव्य

अत्यंतकठिनं चाद्यं कठिनं च द्वितीयकम् ।
आर्द्रं तृतीयमुद्दिष्टं चतुर्थं पल्वलं भवेत् ।।2।।
पञ्चमं तु द्रवद्रव्यं तेषां विधिरथोच्यते ।
बुसवच्चूर्णयेद् द्रव्यमत्यन्तकठिनं तु वै ।।3।।

पांच औषध द्रव्य इस तरह हैं—पहला बहुत कठिन, दूसरा सामान्य कठिन, तीसरा आर्द्र, चौथा पल्लव और पांचवां औषध तरल है। अब तुम अर्क दोहन की विधि सुनो।

द्रव्य अर्क विधि

द्विगुणे निक्षिपेत्तोये छायायां स्थापयेत्तु तत् ।
यावच्छुष्कं भवेत्तोयं द्रव्यं स्याच्छिथिलं तथा ।।4।।
ततः पुनः क्षिपेत्तोयं पूर्वद्रव्यसमं भिषक् ।

बहुत कठिन औषध द्रव्य को भूसे जैसा महीन पीस करके उसमें दोगुना जल डालें और पात्र को छाया में रखें। जब वह गाढ़ा हो जाए तो उसमें पुनः उतना ही जल डालें।

कृत्वाऽष्टप्रहरैस्तप्तं सूर्यचंद्रकरैरलम् ।
सम्पूज्य गणपं सूर्यं भैरवं कुलदेवताम् ।।5।।
निक्षिपेदर्कयंत्रे तच्छित्वाऽस्यार्कं समाहरेत् ।।6।।

उसके बाद उसे धूप में उष्ण करें और रात्रि को चांद के प्रकाश में रखें। इसी तरह उसे आठ पहर तक गर्म व ठंडा करें। उसके बाद गणेश, भैरव, सूर्य व इष्टदेव की वंदना करके उस द्रव्य को अर्क यंत्र में डालकर अर्क निकाल लें।

अर्क योग्य द्रव्य

वर्षाधिकं तु यद्द्रव्यमत्यन्तकठिनं च यत् ।
चन्दनादीनि सर्वाणि ह्यत्यन्तकठिनानि हि ।।7।।
कीटैर्भुक्तं घुणैर्भुक्तं यच्च गंधविवर्जितम् ।

रहितं च रसेनापि नार्ककर्मणि योजयेत् ।।8।।

एक वर्ष से अधिक पुराने व अत्यन्त कठिन औषध जैसे चंदन आदि और कीड़े लगे, घुन लगे तथा गंधहीन या रसहीन औषधों से अर्क नहीं निकालना चाहिए।

यथार्के संस्थितं द्रव्यं कुर्याद्भोक्तुस्तथा वपुः ।
अर्कं तरुणभैषज्यं तस्मात्संयोजयेत्प्रिये ।।9।।

प्रिये! अर्क प्राप्त करने के लिए जैसा द्रव्य होगा, उसका प्रभाव भी शरीर पर वैसा ही होगा। इसलिए अर्क प्राप्ति के लिए सदैव ताजा औषधियों का ही उपयोग करना चाहिए।

कठिन द्रव्य अर्क विधि

यबान्यजाजीत्रिकुट भूनिम्बादिकमौषधम् ।
ज्ञेयं तत्कठिनं द्रव्यं तदर्कस्य विधिं शृणु ।।10।।

अजवायन, जीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल तथा भूनिम्ब आदि कठिन औषधियों में आते हैं। इनका अर्क निकालने की विधि सुनो।

द्विगुणं निक्षिपेत्तोयं द्रव्ये हि कठिने प्रिये ।
अष्टप्रहरकं तं च कुर्यात्पर्यायमेककम् ।।11।।
रक्षेद्द्रव्यं द्विगुणितं दृष्टा देशं तु कालकम् ।
पश्चाद्दत्त्वाऽर्कयंत्रे तदर्कं निष्कासयेच्छनैः ।।12।।

कठिन औषधियों का अर्क निकालने के लिए इनको दोगुने जल में डालें। पहले की भांति ही इन्हें भी आठ पहर सूर्य और चंद्रमा के प्रकाश में रखें, किंतु देश व स्थिति के अनुसार यह समय सोलह पहर तक भी हो सकता है। उसके बाद उसमें से अर्क प्राप्त कर लें।

आर्द्र औषध के भेद

आर्द्रं द्रव्यं द्विधा प्रोक्तं सरसं नीरसं तथा ।
सदुग्धं गुप्तरसकं द्विधा नीरसमुच्यते ।।13।।

आर्द्र औषध दो तरह के होते हैं—रसयुक्त व रसहीन। ये दुग्धयुक्त हैं या नीरस (गुप्तरस)।

वास्तुकं सार्षपं शाकं निर्गुण्ड्यैरण्डमार्कवम् ।
धत्तूराद्यमिदं सर्वमार्द्रं सरसमुच्यते ।।14।।

बथुआ, सरसों, निर्गुण्डी, अरंडी, भांगरा व धतूरा रसयुक्त यानी आर्द्र (गीले) औषध (द्रव्य) हैं।

एषां नालांश्चूर्णयित्वा विंशांशं निक्षिपेज्जलम् ।
मुहूर्तमुष्णे संस्थाप्य ग्राह्योऽर्को विबुधोत्तमैः ।।15।।

इनकी नालों को पीसकर इसमें चूर्ण का बीस भाग जल मिलाएं और दो मुहूर्त धूप में सुखाकर अर्क निकाल लें।

पत्राणि च शतांशेन तुल्यतोयेन सेचयेत् ।
दद्याद्घटीमककरे ततोऽर्कं कलयेच्छनैः ।।16।।

अगर केवल इनके पत्तों का अर्क लेना हो तो उन्हें उनके सौ भाग जल में डालकर एक घंटे तक धूप में रखें, तत्पश्चात् उसका अर्क प्राप्त कर लें।

नीरस द्रव्य अर्क विधि

वटाश्वत्थकरीराद्यमार्द्रद्रव्यं तु नीरसम् ।17।।
विंशांशं निक्षिपेत्तोयं यामं धर्मे च धारयेत् ।
ततो निष्कासयेदर्कं क्रमवृद्धयग्निनोक्तवत् ।।18।।

वट, पीपल और बांस रसहीन द्रव्य हैं। इन्हें इनके बीस भाग जल में डालकर तथा एक पहर तक धूप में रखने के पश्चात् अर्क प्राप्त करें। अग्नि को क्रम से वैसे ही जलाएं, जैसे पूर्व में बताई गई है।

दुग्धयुक्त द्रव्य अर्क विधि

सदुग्धं तु द्विधा प्रोक्तं मृदुतीक्ष्णमिति क्रमात् ।
शातलावज्रसेहुंडशौरिण्याद्यास्तु तीक्ष्णकाः ।।19।।

दूधयुक्त द्रव्य मृदु तथा तीक्ष्ण होते हैं। वज्र, शातल, सेंहुड़ व शौरिणी तीक्ष्ण द्रव्य कहलाते हैं।

खंडानि तेषां कृत्वाऽथ निक्षिपेदुष्णके जले ।
दिनत्रये तु निष्कास्य तोयं दद्याच्च कुट्टयेत् ।।20।।

इनका अर्क बनाने के लिए इनके छोटे-छोटे टुकड़े करके उष्ण जल में डाल दें। तीन दिन बाद इसमें जल डालकर इसे पीसें।

यावन्न दृश्यते दुग्धं दद्यात्तोयं दशांशकम् ।
शनैर्निष्कासयेदर्कं स तु तीक्ष्णार्कसंज्ञकः ।।21।।

पीसने के बाद जब उसमें दुग्ध अंश समाप्त हो जाए तब उसमें दसवां भाग जल डालकर उसका अर्क प्राप्त कर लें। यही तीक्ष्ण अर्क कहलाता है।

दुग्धिकार्कक्षीरिण्याद्या मृदुदुग्धाः प्रकीर्तिताः ।
जले चतुर्गुणे दद्यात्तान् घर्मे विनिवेशयेत् ।।22।।

दुग्धिक, आक व खीर आदि मृदु दुग्ध द्रव्य कहलाते हैं। इनमें चार गुना जल मिलाकर धूप में रखें।

यावज्जलस्योष्णता स्यात्ततो यंत्रे विनिक्षिपेत् ।
शनैर्निष्कासयेदर्कं ततोऽर्को मृदुसंज्ञकः ।।23।।

जब जल उष्ण हो जाए तो यंत्र में डालकर इनका अर्क निकालें। यह अर्क मृदु होता है।

खण्डीकृत्वैव चाम्राणां फलानां मृदुपाकिनाम् ।
सरसानां च गृह्णीयादर्क तोयेन वर्जितः ।।24।।

यदि मृदु पाकी फलों या आम का अर्क निकालना हो तो उन फलों को बिना खंडित किए और उनमें बिना जल मिलाए ही अर्क प्राप्त कर लें। ये फल रसयुक्त होते हैं।

काष्ठौदुम्बरिकादीनामाम्राणां दारुभागिनाम् ।
कृत्वा स्वल्पानि खण्डानि अशीत्यंशं प्रदापयेत् ।।25।।

गूलर, आम व देवदार काष्ठों से अर्क निकालने के लिए उनके टुकड़े करके उसमें अस्सी भाग जल मिलाएं।

पृथक् पृथक् चतुर्वारं स्वर्जिक्षारं च सैन्धवम् ।

दत्त्वा विमर्दयेत्सर्वं चत्वारिंशांशकं जलम् ।।26।।

अब उसमें पृथक-पृथक चार बार सज्जीखार तथा सेंधा नमक मिलाएं। उसे भली-भांति मसलकर उसमें चालीसवां भाग जल डालें।

क्षिप्त्वा तत्कलशे घर्मे यामार्द्धेनोष्णता भवेत् ।
ततो यन्त्रे हि तद्दत्वा गृह्णीयादर्कमुत्तमम् ।।27।।

तत्पश्चात् उसे मटके (कलश) में डालकर चार पहर तक धूप में रख दें। उष्ण होने पर यंत्र द्वारा उसका अर्क प्राप्त कर लें।

अतिपक्वफलानां तु वितोयं चार्कमाहरेत् ।
पुष्पार्कार्थं षोडशांशजलं पुष्पेषु चार्पयेत् ।।28।।

पके हुए फलों का अर्क जल मिलाए बिना ही प्राप्त कर लेना वाहिए। फूलों से अर्क निकालने के लिए उसमें सोलहवां भाग जल मिलाकर अर्क प्राप्त कर लें।

अथवा कटुफलादीनि चिल्हिकादीनि यानि च ।
प्रक्षेप्यान्युदके तानि बहुधा दोषशांतये ।।29।।
ततश्चत्वारिंशदंशं जलं दत्त्वा समाहरेत् ।
तदर्कमथ च द्रावद्रव्यार्कोपाय उच्यते ।।30।।

कायफल व चीड़काष्ठ का अर्क निकालने से पूर्व उनकी दुर्गन्ध समाप्त करने के लिए उनको पानी में भिगो लें और फिर सुखा लें। तत्पश्चात् उनमें चालीसवां भाग जल डालकर उनका अर्क प्राप्त कर लें। अब आर्द्र पदार्थों से अर्क निकालने का तरीका सुनो।

द्रवद्रव्यक्षेपणे च प्रोच्यते बाधकल्पना ।
पिधानानि विचित्राणि तेषामंतो न विद्यते ।।31।।

आर्द्र (गीले) द्रव्य के बारे में अनेक उपद्रव बताए गए हैं, जिनके पिधान (आच्छादन) की अनेक युक्तियां हैं और जिनका योग बहुत विस्तृत है।

आच्छादन विधि

शतपत्रप्रसूनैर्वा जात्युत्थैर्मालती भवैः ।
पारिजातैः केतकिजैर्वा पिधानं समाचरेत् ।।32।।

कमल, चमेली, नीम अथवा केतकी के फूलों से पिधान (आच्छादन) करना उत्तम माना जाता है।

दुग्धे दध्न्यथवा तक्रे क्षौद्रे तैले च सर्पिषि ।
मूत्रादौ देवतोये च चम्बेल्यादि पिधानकम् ।।33।।

दूध, दही, छाछ, शहद, तेल, घी, गौमूत्र अथवा निर्मल जल में चमेली के फूल का पिधान करना चाहिए।

द्रव्य हेतु पात्र

कान्तयायससत्वस्य कृतं पात्रमनुत्तमम् ।
निष्कासयेदेवमर्कं द्रवद्रव्यस्य नान्यथा ।।34।।

कान्तिसार, लौह तथा पाषाण सत्व को मिलाकर बनाए गए पात्र में ही आर्द्र (गीले) द्रव्यों का

अर्क निकालें। अन्य पात्रों में ऐसा करना सर्वथा वर्जित है।

द्रव्यों के स्तंभक

अथ च स्तम्भकं द्रव्यं दध्नो हि नवनीतकम् ।
दृढबिल्वो जलस्योक्तो मधूच्छिष्टं तु सर्पिषः ।।35।।

आर्द्र द्रव्यों के स्तंभक इस प्रकार हैं—दही का स्तंभक मक्खन है तथा जल का स्तंभक बेल गिरी है।

गोकण्टकस्तु दूग्धस्य तथा मद्यस्य कीचकम् ।
तैलस्य तस्य पिण्याकं सर्वं घृतसमन्वितम् ।।36।।

घृत का स्तंभक शहद है, दुग्ध का स्तंभक कंटक, मद्य का स्तंभक बांस तथा तेल का स्तंभक खल है। औषधि में स्तंभक से पिधान करना उचित है। अन्य से पिधान अपने विवेक द्वारा करना चाहिए।

द्रव अर्क विधि

यंत्रे दत्वा द्रवद्रव्यं यथा स्थालीनिवेशनम् ।
तथा स्थलं स्थापयित्वा द्रव्यैर्यंत्रं प्रपूरयेत् ।।37।।

द्रव (गीले) द्रव्यों को पात्र में रखें, पात्र (थाल) ऊंचे किनारे (सारिका) वाला होना चाहिए। इनसे अर्क प्राप्त करने के लिए द्रव (औषध) से भरे थाल को यंत्र में रख दें।

आच्छाद्यं सारिकैः पूर्णं स्थालीं कुर्यादधोमुखीम् ।
तथा चाकर्षितः सर्वो द्रवः फेनं परित्यजेत् ।।38।।

यंत्र के किनारों को भली-भांति आच्छादित कर लें। अब अर्क निकालने पर यदि झाग फूटे तो यह सर्वाधिक लाभदायक व श्रेष्ठ अर्क होता है।

अर्क दुर्गंधनाश

दुर्गन्धिर्यो भवेदर्कस्तं कुर्याच्चारुगंधकम् ।
सर्वेषामेव मांसानां दुर्गंधानां च सर्वशः ।।39।।
घृताभ्यक्ता हिंगुजीरमेथिका राजिकाकृताः ।
नवीनायां हंडिकायां दद्याद्धूपं पुनः पुनः ।।40।।
तत्र दद्यात्तदर्कं तु यथा दुर्गंधता व्रजेत् ।
तथा पुनः पुनः कार्यं जायते गंध वारणम् ।।41।।
आयाति रोचको गंधो स भवेद्वह्निदीपनः ।

अर्क की दुर्गन्ध को दूर करने के लिए उसमें हींग, जीरा, मेथी व राई को घी में भूनकर उसे नए पात्र में डालने के पश्चात् बार-बार धूनी दें। यह विधि अर्क की दुर्गन्ध को दूर कर सुगंधित बना देती है तथा निरंतर प्रयोग करने योग्य होती है। यह अर्क जठराग्नि को उद्दीप्त करता है।

सर्वेष्वर्कप्रयोगेषु गंधपाषाणवासना ।।42।।
अर्काणां तु प्रदातव्या ते भवंत्यर्कसंभवाः ।

गंधपाषाण (गंधक) की वासना देने (सुवासित करने) के प्रयोग से अर्क रोचक और श्रेष्ठ हो जाता है।

सर्वत्र वातरोगेषु महिषाक्षादिवासना ।।43।।
महिषाक्षस्तथा रालं निर्यासः सरलस्य च ।
कृष्णागुरुलवंगं च महिषाक्षाहिपञ्चकम् ।।44।।

वात रोग हेतु महिषाक्षादि (भैंसा गूगल) की वासना देना उचित होता है। रोगी को इसकी वासना प्रदान करनी चाहिए। महिषाक्षादि, राल, निर्यास, सरल, कृष्णागुरु तथा लौंग मिल जाने पर यह 'महिषाक्षाहि पंचक' कहलाता है।

जटामांसी वासना

सर्वेषु पित्तरोगेषु चंदनादि च वासनम् ।
सर्वेषु कफरोगेषु जटामांस्यादिवासनम् ।।45।।

पित्त रोगों के लिए चंदन तथा कफ के नाश के लिए जटामांसी की वासना प्रदान करनी चाहिए।

चंदनं च तथोशीरं कर्पूरो गंधबाकुची ।
एला कचूरिणी धूली जटामांस्यादिवासनम् ।।46।।

चंदन, खस, कपूर, गंधक, बकुची, इलायची तथा धूली आदि इन सात यदार्थों को जटामांसी वासना कहा जाता है।

जटामांसी नखं पत्री लवंग तगरं रसः ।
शिलाया गंधपाषाणः सप्त मांस्यादिका अमी ।।47।।

जटामांसी, नख, पत्री, लौंग, तगर, कपूर व गंधक आदि जटामांस्यादिवासना के सात गण कहलाते हैं।

त्रिदोष नाशक धूप

वासयेद्वादशांगेन त्रिदोषघ्नेन चार्ककम् ।
नश्यन्ति यस्य धूपेन उपग्रह पिशाचकाः ।।48।।

त्रिदोष दूर करने वाली यानी वात, पित्त, कफ नाशक द्वादशांग धूप से अर्क में सुगंध उत्पन्न करनी चाहिए। इस धूप की धूनी ग्रह पिशाच दूर करने में सहायक होती है।

दशांग धूप

पंचांशो गंधपाषाणस्तावन्महिषगुग्गुलुः ।
चतुरांशं चंदनं च जटामांसी च तावती ।।49।।

दशांग धूप तैयार करने के लिए पंचांश गंधक व महिषाक्षदि (भैंसा गूगल) चार अंश चंदन एवं जटामांसी—

त्रिभागः सर्जकः क्षारस्तावदेव हि रालकम् ।
उशीरं च द्विभागं स्याद्घृतमष्टनखं समम् ।।50।।
कर्पूरो मृगनाभिस्तु ह्येकभागौ प्रकीर्तितौ ।
एषो दशांगधूपस्तु रुद्रस्यापि मनो हरेत् ।।51।।

तीन अंश सज्जीखार तथा राल, दो अंश खस, 28 अंश घृत व कपूर और एक अंश कस्तूरी मिलाया जाता है। इससे दशांग धूप बनता है। यह शिव का भी मन हर लेता है।

प्याज व लहसुन का अर्क

पलाण्डुलशुनादीनां निर्गंधीकरणं शृणु ।
उत्पाद्यान्तर्विषं सम्यक् तक्रमध्ये विनिःक्षिपेत् ।।52।।

हे मंदोदरी! अब मैं तुम्हें लहसुन की दुर्गन्ध दूर करने का उपाय बताता हूं। ध्यानपूर्वक सुनो। उन्हें अच्छी तरह छीलें। फिर गूदे को छाछ में डाल दें।

पर्यायमेकमत्यम्ले मध्येऽस्मिन्विरसे सति ।
दद्यान्निस्कास्यान्यतक्रं कुर्यात्तच्चाष्टयामकम् ।।53।।

उसे उस खट्टी छाछ में डालकर आठ पहर तक उसी में पड़ा रहने दें।

द्रोणीपुष्परसेष्वेव मूर्वापत्ररसेऽपि वा ।
त्रिपर्यायोत्तरं तत्तु रसोनं क्षालयेत्सुधीः ।।54।।

इसके बाद उसे छाछ से निकालकर द्रोणी फूल या मूर्वापत्र के रस से तीन बार धोएं।

हरिद्राराजिकातोये स्थाप्यं पर्यायमेककम् ।
उष्णोदकेन संक्षाल्यं पर्यायं वासयेत्ततः ।।55।।

तत्पश्चात् उसे क्रमशः हल्दी व राई के जल में रखें। इसके बाद उसे उष्ण जल से धोएं।

सहस्रपत्रैः पुष्पैर्वा अभावे पल्लवैरपि ।
आलोऽयेद्दशांशेन पंचांशेन च वासना ।।56।।

फिर प्याज व लहसुन को कमल पुष्प या कमल पत्र की धूनी दें। इसके बाद दशांश धूप की धूनी देकर पंचांश से वासना दी जानी चाहिए।

युक्तं कृत्वा याममात्रं स्थापयेत्प्रकटातपे ।
ततो निष्कासयेदर्कं जात्यादिकपिधानकम् ।।57।।

दशांग धूप की धूनी व पंचांश वासना देकर उसे एक पहर तक धूप में रख दें। तत्पश्चात् चमेली के फूल का पिधान देकर अर्क प्राप्त करें।

तस्यार्कस्य सुगंधेन एकदा मोहितो हरः ।
को जानाति रसोनस्य ह्यर्कोऽयमिति भूतले ।।58।।

उस अर्क ने एक बार शिव को भी मोह लिया था। इस तरह से निकाला गया अर्क इतना सुगन्धित हो जाता है कि उसमें प्याज या लहसुन की गंध तनिक भी नहीं रहती। किसी को यह विश्वास ही नहीं हो सकेगा कि यह प्याज या लहसुन का अर्क है।

मांस का अर्क

एकतः सर्व एवार्का मांसार्कस्तु तथैकतः ।
मया स्वर्गो गृहीतस्तु प्राप्तं तत्र मयाऽमृतम् ।।59।।

हे प्रिये! अब मैं तुम्हें मांस के अर्क के विषय में बताता हूं। समस्त अर्कों पर मांस का अर्क भारी पड़ता है। जब मैंने स्वर्ग-विजय के उपरान्त अमृत प्राप्त किया तो सुरों ने उसे चुरा लिया।

तदा प्रोक्तं शिवस्याग्रे मम धिग्जीवनं प्रभो ।
नीता वाथ प्रयुक्ता वा सुधा देवैर्मया तु सा ।।60।।

तब मैंने शिव से कहा—हे देव! मैंने जिस अमृत को प्राप्त किया था, उसे सुरों ने प्रयोग कर

लिया, अतः अब मेरा जीवन व्यर्थ है।

न दृष्ट्वा तत्र देवेश शिरश्छेदं करोम्यहम् ।
ततः प्रसन्नो गिरिशो वाक्यं मां प्रति सोऽब्रवीत् ।।61।।

मुझे अमृत उस स्थान पर नहीं मिला, जहां मैंने उसे रखा था, अतः आप मेरा शीश स्वीकार करें। तब भगवान शिव प्रसन्न हो गए।

दत्तं मया समस्तं ते देवावध्यत्वमेव च ।
किं ते कार्यं तु सुधया सुधातोऽधिक रोचनम् ।।62।।
सम्प्रवक्ष्यामि मांसार्कं मद्यस्यार्कं तथैव च ।
द्रव्याणां विजयादीनां लभ्यते यैः सुखं महत् ।।63।।

उन्होंने मुझे वर दिया कि देवता मेरा वध नहीं कर सकेंगे, अतः वह अमृत तेरे लिए निर्रथक है। उन्होंने मुझे अमृत से भी बढ़कर रोचक मांस के मद्य और अर्क के बारे में बताया। हे प्रिये! उसी को बनाने की विधि मैं तुम्हें बताता हूं।

मांस भेद

मांसं तु त्रिविधं ज्ञेयं मृदुलं कठिनं घनम् ।
तेषामर्कं यथा प्रोक्तं यंत्रान्निष्कासयेच्छनैः ।।64।।

कोमल, कठिन (कठोर) तथा घना—तीन प्रकार के मांस होते हैं। इनका अर्क इस प्रकार प्राप्त करना चाहिए।

मांस-अर्क विधि

मृदुलं यद्भवेन्मांसं चत्वारिंशांशकं पटुः ।
स्थूलखंडीकृते तस्मिन्दत्त्वा तत्क्षालयेज्जलैः ।।65।।

कोमल मांस का चालीस अंश लेकर उसके बड़े टुकड़े कर दें। उसे अच्छी तरह जल से धो लें।

षष्ट्यंशेनाष्टगंधेन तद्विलोड्य च निक्षिपेत् ।
रसमिक्षोरष्टमांशं तदभावे पयः क्षिपेत् ।।66।।

उसमें 60 अंश ईख का रस डालें। ईख न मिले तो दूध का उपयोग भी किया जा सकता है।

जातीपत्रं लवंगं च त्वगेलानागकेशरम् ।
मरीचं मृगनाभिश्च विदुर्गंधाष्टकं त्विदम् ।।67।।

तत्पश्चात् उसमें लौंग, तेजपात, इलाइची, जायफल, नागकेसर, कालीमिर्च, कस्तूरी तथा कपूर की गंध मिलाएं।

कार्यं पुष्पापिधानाद्यमर्कं निष्कासयेत्ततः ।
जायतेऽसौ महास्वादुः सुधारससमः प्रिये ।।68।।

उसके बाद उसमें पुष्पों का पिधान करके अर्क प्राप्त कर लें। प्रिय! यह अर्क बहुत ही रसदार, गुणकारी व लाभदायक होता है।

दृढमांसस्य खंडानि लघून्येव प्रकल्पयेत् ।
दद्याच्च तुवरं तत्र लवणं प्रोक्तया दिशा ।।69।।

कठिन (कठोर) मांस के छोटे-छोटे टुकड़े करके उसमें खारा नमक मिलाएं। फिर कांजी के जल से तीन बार धो लें।

क्षालयेदारनालेन त्रिवारं कोष्णवारिणा ।
क्षालयेत्सप्तवाराणि हरे दर्कं तु पूर्ववत् ।।70।।

कांजी के जल में तीन बार धोने के बाद उसे गरम पानी से सात बार धोएं और उपरोक्त विधि द्वारा यंत्र से अर्क प्राप्त कर लें।

घनमांसस्य खंडानि कुर्यादतिलघूनि च ।
आलोड्य शंखद्रावेण क्षालयेत्पयसा पुनः ।।71।।

घने मांस के महीन टुकड़े करके उसमें शंख द्रव्य मिलाएं, तत्पश्चात् जल से धो लें। इसको धोने के लिए दुग्ध का प्रयोग भी किया जा सकता है।

सप्तवाराणि लवणं क्षालयेद्वासयेत्पुनः ।
तद्दत्वा यंत्रमध्येस्तु हरेत्पूर्ववदर्ककम् ।।72।।

अब उसमें सात बार नमक डालकर भली भांति जल से धो लें। इसके बाद उसका पूर्व विधि द्वारा ही यंत्र से अर्क प्राप्त कर लें।

शंख द्रव्य विधि

स्वर्जिक्षारं यवक्षारं श्वेतक्षारं च टंकणम् ।
सौभाग्यक्षारकं सौरं क्षारं शंखभवं तथा ।।73।।

शंख द्रव्य बनाने की विधि सुनो। सज्जीखार, जवाखार, श्वेतखार एवं सुहागा सोरा को सौभाग्यखार कहते हैं। इनके अलावा शंखखार—

अर्कसेहुंडपालाशक्षारश्च तुवरी तथा ।
अपामार्गभवं क्षारं तथाऽष्टौ लवणानि च ।।74।।

आर्कखार, सेंहुडखार, पलाशखार, तुवरखार तथा अपामार्गखार आदि आठ तरह के लवण एकत्र कर लें।

लवणाष्टकमेतच्च सैन्धवं च सुवर्चलम् ।
विटं समुद्र संजातमुद्भिदं रोमकं गडम् ।।75।।
कृत्वा सर्वाणि चैकत्र निम्बुनीरेण भावयेत् ।
एकविंशतिवाराणि काचकूप्यां निवेशयेत् ।।76।।

इन आठ प्रकार के नमकों के नाम हैं—सेंधा, सोंचर, विड, समंद, उद्भिद, रोमक, गड तथा खारी नमक। इन सबको मिलाकर उसमें इक्कीस बार नीबू रस की भावना दें फिर कांच के पात्र में डालकर रख दें।

नखांशनिम्बुकरसैः सर्वमार्द्रीकृतं तु तत् ।
अधः सच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत् ।।77।।
मृत्कर्पटसमायुक्तं सहेदग्निं यथावधि ।
तस्याग्रे कूपिका योज्या दीर्घकंठा मनोहरा ।।78।।

लगभग बीस अंश नीबू रस में भिगोकर निचले छेद वाले चूल्हे में वह कांच पात्र (कुप्पी) रख

दें। उस पात्र को मिट्टी का लेप लगाएं ताकि वह अग्नि में टूटे नहीं। कांच पात्र के ऊपर कूपनुमा एक और पात्र रखें।

सा कूपिका जले स्थाप्या मेलयेच्च द्वयोर्मुखम् ।
जलमुष्णं यथा न स्याद्यथा वोपरि कूपिका ।।79।।

उस कूप में जल डालें। ध्यान दें कि कांच पात्र की उष्मा जल तक न पहुंचे।

अग्नयः क्रमतो देयास्तथा यामं च पंचमम् ।
अनेनैव प्रकारेण क्षारार्काणां समुद्भवः ।।80।।

फिर पांच पहर तक बारी-बारी उसे गरम करें। इस तरह से क्षार अर्क प्राप्त हो जाएगा।

दद्यादस्थीनि मांसानि शंखशुक्त्यादिकान्यपि ।
सर्वाण्यपि विलीयन्ते शंखद्रावे न संशयः ।।81।।

यदि शंखद्रव्य में अस्थि, मांस या शंख के कुछ अंश पड़ भी जाएं तो वह गलकर निःसंदेह जल हो जाते हैं।

पारावताश्च चटकाः शशसूकरटिट्टिभाः ।
क्षुद्रमत्स्यादिकाः सर्वे मांसेषु मृदुलाः स्मृताः ।।

मांस विभिन्न प्रकार के होते हैं—कबूतर, बटेर, गौरेया, खरगोश, सूअर, टिटहरी तथा छोटी मछलियों का मांस कोमल होता है।

मृगरोहितकाद्याश्च मत्स्याः शल्लकिशम्बराः ।
एते कठिनमांसाः स्युर्जीवास्तु जलचारिणः ।।83।।

मृग, हिरण, रोहित, बड़ी मछलियों के शल्लक और झींगे का मांस कठिन (कड़ा) कहलाता है।

गजकुंभीरघण्टाद्याः सगन्धाः कर्करादयः ।
गोधागोश्वलुलायाद्या घनमांसाः प्रकीर्तिताः ।।84।।

हाथी, मगर, घड़ियाल, गंधयुक्त कर्कर, गाय, घोड़ा तथा भैंस आदि घने मांस की श्रेणी में आते हैं।

मद्य वर्णन

अन्नादिसम्भवो योऽर्कस्तन्मद्यं परिकीर्तितम् ।
तस्य भेदान्प्रवक्ष्यामि सटितात्तत्समुद्धरेत् ।।85।।

अब मैं मद्य का विस्तार से वर्णन कर रहा हूं। कई प्रकार के अन्न से प्राप्त किए गए अर्क को ‘मद्य’ कहा जाता है। इनके भेद ध्यानपूर्वक सुनना। अन्न को पतला करने के बाद ही उसमें से अर्क प्राप्त करना चाहिए।

तद्वासनानिवृत्यर्थमष्टगंधं प्रयोजयेत् ।
पूर्वोक्तैर्धूपयेद्धूपैर्जायते गंधवर्जितम् ।।86।।

उसकी गंध-वासना खत्म करने के लिए अष्ट गन्धों का प्रयोग किया जाता है। उसकी दुर्गंध को पूर्वोक्त धूनी से सुगमतापूर्वक समाप्त किया जा सकता है।

अर्द्धं तत्र जलं देयं सिद्धे देयोऽष्टगंधकः ।

तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः ।।87।।

उसमें आधा जल मिलाकर ही अष्ट गंध डालने चाहिए। कच्चे जौ को भूसे सहित पीसकर अर्क निकालने से 'तषोदक मद्य' प्राप्त हो जाता है।

सौवीरं तु यवैश्चैवं निस्तुषैः शकलीकृतैः ।
गोधूमैरपि सौवीरं जायते स्वल्पमादकम् ।।88।।

छिलके रहित जौ से निकाला गया अर्क 'सौवीर' कहलाता है। गेहूं से प्राप्त अर्क भी सौवीर कहलाता है। गेहूं से निकला मद्य जौ के मद्य से हल्का होता है।

आरनालं तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ।
धान्याम्लं शालिचूर्णादि कोद्रवादिकृतं भवेत् ।।89।।

छाल रहित गेहूं के अर्क को 'आरनाल' कहा जाता है। चावल तथा कोदों का अर्क 'धान्याम्ल' कहलाता है।

शण्डाकी राजिकायुक्तैः स्यान्मूलकदलद्रवैः ।
सर्षपस्वरसैर्वापि शालिपिष्टिक संयुतैः ।।90।।

मूली (पत्तों सहित) को सरसों या राई के साथ मिलाकर उसमें चावल की पिट्ठी डालकर प्राप्त अर्क से शण्डाकी मद्य तैयार होता है।

कंदमूलफलादींश्च सस्नेहलवणानि च ।
एकीकृतस्तु योऽर्कः स्यात्ससूक्तमभिधीयते ।।91।।

कन्द, मूल, फल में चिकनाई एवं नमक आदि मिलाकर तैयार किया गया अर्क 'सूक्त मद्य' कहलाता है।

पक्वौषधाम्बुसंसिद्धो योऽर्कः स स्यादरिष्टकम् ।
अरिष्टं लघुपाकेन सर्वतो हि गुणाधिकम् ।।92।।

औषधियों को जल में मिलाकर पकाने के बाद जो अर्क प्राप्त होता है, उसे 'अरिष्ट मद्य' कहा जाता है। यह लघु पाक से तैयार किया जाता है तथा सबसे अधिक भारी होता है।

शालिपेठ कपिष्ट्यादिकृतो योऽर्कः सुरा तु सा ।
पुनर्नवाशिवापिष्टैर्विहिता वारुणी स्मृता ।।93।।

चावल और पेठा से प्राप्त अर्क से 'सुरा मद्य' तैयार होता है। पुनर्नवा हरड़ व साठी चावल की पिट्ठी से प्राप्त अर्क 'वारुणी सुरा' कहलाता है।

इक्षोः पक्वै रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्च सः ।
आमैस्तैरेव यः सिद्धः स च शीतरसः स्मृत ।।94।।

पके हुए ईख के रस से प्राप्त अर्क 'सीधु मद्य' कहा जाता है। ईख के कच्चे रस का अर्क 'शीतरस' कहलाता है।

मद्य भेद और गुण

पर्यायाद्यो भवेन्मद्यस्तामसो राक्षसप्रियः ।
मण्डादी राजसो ज्ञेयस्ततो वै सात्विको भवेत् ।।95।।

प्रिये! अब मद्य भेद एवं उनके गुण के बारे में सुनो। जो मद्य अनेक बार निकाला जाता है,

वह असुरप्रिय 'तामसी मद्य' होता है। माण्ड का मद्य 'राजसी मद्य' कहलाता है। बल और बुद्धि के लिए लाभकारी व कम मादक मद्य को 'सात्विकी मद्य' कहते हैं।

सात्विकं गीतहास्यादौ राजसं साहसादिके ।
तामसे निन्द्यकर्माणि निद्रां च बहुधा चरेत् ।।96।।

आनन्ददायक वातावरण में सात्विक, साहसिक वातावरण में राजस तथा निद्रा एवं निन्द्य कर्म के लिए तामस मद्य का सेवन करना चाहिए।

पुनर्नवाशिलापिष्टैर्विहिता वारुणी च सा ।
संहितैस्ताल खर्जूररसैर्या सा च वारुणी ।।97।।

पुनर्नवा को पत्थर पर पीसकर तैयार किया गया मद्य 'वारुणी मद्य' कहलाता है। ताड़ व खजूर से तैयार मद्य भी वारुणी होता है।

सुरावद्वारुणी लघ्वी पीनसाध्मानशूलनुत् ।
ग्राहिणी शोथगुल्मार्शोग्रहणीमूत्रकृच्छ्रजित् ।।98।।

वारुणी मद्य सुरा की तरह लघु, अफरा-शूल को खत्म करने वाला, पीनस, शोथ, गुल्म, भगंदर और मूत्र रोग को दूर करता है।

भंगादिमत्त द्रव्याणां यवानीपादयोगतः ।
अर्कं निष्काशयेद्धीमान् बोधकः स्यान्मदस्य सः ।।99।।

भांग आदि उन्मत्तकारी द्रव्य में चार अंश अजवायन डालकर प्राप्त अर्क बहुत मादक होता है।

धतूरादिकबीजानि क्षिप्त्वा पयसि धापयेत् ।
कण्ठशोषविबंधादिरहितोऽर्को भवेत्स हि ।।100।।

धतूरे के बीज को जल में डालकर धोएं और अर्क प्राप्त करें। यह अर्क गले के रोगों को दूर करता है।

।। लंकेश्वर रावणकृतार्कप्रकाशे द्वितीयं शतकं संपूर्णम् ।।

❑❑

अथार्कप्रकाशे

तृतीयं शतकम्

हरड़ अर्क

अथातः संप्रवक्ष्यामि केवलार्कगुणान् प्रिये ।
हरीतक्याः शूलकृच्छ्रकामलानाहनाशनः ।।1।।

प्रिये! अब मैं तुम्हें अर्कों की गुणवत्ता के बारे में बताऊंगा। सबसे पहले हरड़ के अर्क के गुणों के बारे में सुनो। इसका अर्क शूल-कष्ट, मूत्रकृच्छ्र, कामला तथा पाण्डु रोग का निदान करता है।

बहेड़ा एवं आंवला अर्क

बिभीतकस्य तृट्छर्दिकफकासविनाशनः ।
आमलस्य त्रिदोषास्रपित्तमेहान्विनाशयेत् ।।2।।

बहेड़े के अर्क से तृषा, कफ और खांसी के विकार का नाश होता है। वमन भी रोकता है। आंवले के अर्क से कफ, वात और पित्त तीनों दोष दमित होते हैं।

सोंठ और अदरक अर्क

शुण्ठ्या विबन्धाऽऽमवातशूलश्वासबलासहृत् ।
आर्द्रकस्य ज्वरं दाहं हरेद्रुच्योऽग्निदीप्तिकृत ।।3।।

सोंठ के अर्क से अजीर्ण, कोष्ठबद्धता और आंव के रोगों का निदान होता है। यह शूल-पीड़ा का नाश करता है। अदरक के अर्क से ज्वर और दाह भी दूर होता है। यह जठराग्नि को उद्दीप्त करता है।

पीपल तथा कालीमिर्च अर्क

पिप्पल्याः श्वासकासामवातार्शोज्वरशूलहृत् ।
मरीचस्य श्वासकृमीन् हरेत्सर्वान् गदानपि ।।4।।

पीपल के अर्क से श्वास विकार, खांसी, नेत्र, बवासीर, ज्वर और शूल आदि का निदान होता है। कालीमिर्च के अर्क से श्वास विकार ठीक होते हैं तथा कृमि रोग नष्ट हौता है।

पीपलामूल एवं चव्य अर्क

ग्रंथिकस्य प्लीहगुल्मकफवातोदरापहः ।
चव्यार्कोत्थं तु रुचिकृत् विशेषाद्गुदजापहः ।।5।।

ग्रंथिकर (पीपलामूल) के अर्क से प्लीहा, गांठ, कफ एवं वात के विकारों का निदान होता है। चव्य (चविका) का अर्क क्षुधा बढ़ाता है और गुदा के रोगों का निराकरण करता है।

बड़ी पीपल और चित्रक अर्क

अर्कस्तु गजपिप्पल्या वातश्लेष्माग्निमांद्यहृत् ।

चित्रकस्याग्नि कृत्कासग्रहणीकृमिनाशनः ।।6।।

गजपीपल का अर्क वात, कफ और मंदाग्नि का नाश करता है। चित्रक का अर्क अग्नि का संवर्द्धन करता है। खांसी, संग्रहणी और कृमिरोग में यह विशेष उपयोगी है।

अजवायन तथा अजमोद अर्क

यवान्याः पाचनो रुच्यो दीपनस्त्रिकशूलहृत् ।
अजमोदोद्भवो वातकफहा बस्तिशोधनः ।।7।।

अजवायन का अर्क क्षुधा बढ़ाता है और पाचन में सहायक है। यह अग्नि को उद्दीप्त करता है। कमर व जोड़ों की पीड़ा ठीक करता है। अजमोद के अर्क से वात और खांसी में लाभ पहुंचता है। यह वस्ति-स्थल को भी स्वच्छ रखता है।

खुरासानी अजवायन और जीरा अर्क

पारसिक यवान्यास्तु ग्राही पाचनमादनः ।
जीरकस्य तु संग्राही गर्भाशयविशुद्धिकृत् ।।8।।

खुरासानी अजवायन का अर्क क्षुधा बढ़ाता है और पाचन क्रिया को तीव्र करता है। यह मादकता का अहसास कराता है। जीरे का अर्क भोजन पचाता है और पेट को स्वच्छ रखता है।

काला जीरा एवं कलौंजी का अर्क

कृष्णजीरस्य चक्षुष्यो गुल्मछर्द्यतिसारजित् ।
कारव्या बलकृद्दोष्यो ज्वरघ्नः पाचनो रसः ।।9।।

काले जीरे के अर्क से नेत्रों को लाभ होता है। यह गांठ, वमन और अतिसार को ठीक करता है। कलौंजी के अर्क से बलवृद्धि होती है। यह ज्वर का नाश करता है तथा पाचन क्रिया सुचारु रखता है।

धनिया और सौंफ अर्क

धान्यार्कस्य तृषादाहवमिश्वासत्रिदोषहृत् ।
मिश्या ज्वरानिलश्लेष्मव्रणशूलाक्षिरोगहृत् ।।10।।

धनिये का अर्क तृषा, दाह, वमि (उबकाई), श्वास, वात, कफ और पित्त के विकारों को ठीक करता है। सौंफ के अर्क से ज्वर, वात, कफ, व्रण, शूल एवं नेत्र विकार नष्ट होते हैं।

सौंफ तथा लाल मिर्च अर्क

मिश्रेयाया वह्निमान्द्ययोनिशूलकृमीन् हरेत् ।
ज्वालाकस्य ह्यपस्मार भूतप्रेतत्रिदोषहृत् ।।11।।

मिश्रेया (सौंफ) का अर्क मंदाग्नि, योनि रोग तथा कृमि रोग का हरण करता है। ज्वालाक (लाल मिर्च जैसा) का अर्क मिरगी भगाता है एवं भूत-प्रेत के उत्पात से बचाता है। इसके अलावा वात, कफ, पित्त और ज्वर में भी लाभदायक है।

मेथी एवं वनमेथी अर्क

मेथिकायाः श्लेष्मवातज्वरामकफनाशनः ।
वनमेथ्याः सर्वरोगान् हरेत्कुंजरवाजिनाम् ।।12।।

मेथी का अर्क कफ, वात और ज्वर का शमन करता है। वनमेथी के अर्क से गज तथा अश्व के समस्त रोगों को दूर किया जा सकता है।

हाल्यूं और हींग अर्क

चन्द्रसूरस्य हिक्कासृग्वातहृत् पुष्टिवर्द्धनः ।
हिंगुनः पाचनो रुच्यः कृमिशूलोदरापहः ।।13।।

चंद्रसूर का अर्क हिचकी, रक्त दोष एवं वात विकार को ठीक करता है। यह पुष्टिवर्द्धक भी है। हींग का अर्क क्षुधा बढ़ाता है। पाचन क्रिया को सुचारु करता है और पेट पीड़ा को भगाता है।

वच तथा खुरासानी अर्क

वचाया वह्निवमिकृद्विबंधाध्मानशूलहृत् ।
पारसीकवचायास्तु भूतोन्मादबलं हरेत् ।।14।।

वच का अर्क अग्निवर्द्धक, वमनकारी व बंधेजकारी है। यह अफरा तथा शूल के विकार को भी ठीक करता है। खुरासानी वच के अर्क से भूतोन्माद के बल को ठीक किया जाता है।

कुलिंजन एवं स्थूलग्रंथि अर्क

कुलिंजनस्य स्वरकृद्धृत्कण्ठमुखशोधनः ।
स्थूलग्रंथि भवश्चाकों विशेषात्कफसानुसत् ।।15।।

कुलिंजन का अर्क स्वर विकार को ठीक करता है। हृदय, कंठ और मुख का शोधन करता है। स्थूलग्रंथि का अर्क कफ और खांसी में लाभजनक है।

द्वीपांतर वच और हाऊबेर अर्क

द्वीपांतर वचायास्तु हरेच्छूलं फिरंगिकम् ।
हबुषाया हरेत्प्लीहं विषं मेहं च दारुणम् ।।16।।

द्वीपांतर की वच का अर्क शूल एवं यौन रोग को दूर भगाता है। हबुषा (हाऊबेर) का अर्क बाईं पसली की गांठ (प्लीहा), विष के प्रभाव और गंभीर प्रमेह का नाश करता है।

बड़ा हाऊबेर तथा बायबिड़ंग अर्क

हबुषायाः समीरार्शोग्रहणी गुल्मशूलहृत् ।
वैडंगाश्चोदरश्लेष्म कृमिवात विबंधनुत् ।।17।।

बड़े हबुषा (हाऊबेर) का अर्क बादी बवासीर के लिए गुणकारी है। इससे संग्रहणी, उदर पीड़ा तथा शूल को भी ठीक किया जा सकता है। बायबिडंग का अर्क पेट, कफ और कृमि रोगों का नाश करता है। बादी और अफराबंध को भी ठीक करता है।

तुंबर एवं बंसलोचन अर्क

तुंबरो गुरुताश्वासप्लीहोदरकृमीन् हरेत् ।
वंशलोचनजस्तृष्णाक्षयकासज्वरान्हरेत् ।।18।।

तुंबर का अर्क शरीर के भारीपन को ठीक करता है। श्वास विकार का नाश करता है। उदर की गांठ और कृमियों को दूर भगाता है। बंसलोचन के अर्क से तृष्णा, क्षय, खांसी और ज्वर को ठीक किया जा सकता है।

समुद्रफेन और विजयसार अर्क

समुद्रफेनजः शीतो लेखनः कफहृत्सर ।
जीवकोत्थः शुक्रकफबलकृच्छीतलः समः ।।19।।

समुद्रफेन का अर्क शीतलता प्रदान करता है। यह पुराने मल को निकालता है और कफ का नाश करता है। जीवक (विजयसार) का अर्क शुक्राणु, कफ और बल की वृद्धि करता है तथा शीतलता प्रदान करता है।

काकड़ासींगी तथा महामेदा अर्क

ऋषभः पित्तदाहासृक्कासवातंक्षयापहः ।
महामेदोद्भवार्कस्तु वृषस्तन्यकफापहः ।।20।।

ऋषभ (काकड़ासींगी) का अर्क पित्त, अग्नि, रक्त, खांसी, वायु और क्षय के विकारों को ठीक करता है। महामेदा का अर्क स्तनों को पुष्ट व दुग्धवान बनाता है। यह कफ को भी ठीक करता है।

महामेदा एवं काकोली अर्क

महामेदोद्भवः शीतो रक्तवातज्वरप्रणुत् ।
काकोल्याः प्रायशः शीतः पित्तशोथज्वरापहः ।।21।।

महामेदा का अर्क शीतल होता है। यह रक्त व वात के विकारों का नाश करता है और ज्वर को भगाता है। काकोली का अर्क शीतल होता है। यह पित्त, शोथ और ज्वर में गुणकारी है।

क्षीरकाकोली और ऋद्धि अर्क

क्षीरकाकोलिकाजातो बृंहणो दाहवातहा ।
ऋद्धया बलस्त्रिदोषघ्नो रक्तपित्तविनाशनः ।।22।।

क्षीरकाकोली का अर्क बृंहण होता है। यह दाह व वात विकार का नाश करता है। ऋद्धि का अर्क बलदायक है। यह वात, कफ व पित्त के विकारों को ठीक करता है।

वृद्धि तथा मुलहठी अर्क

वृद्धया गर्भप्रदः शीतः क्षतकासक्षयापहः ।
मधुपर्ण्याः केशकरः स्वर्यः पित्तानिलास्रजित् ।।23।।

वृद्धि का अर्क गर्भ प्रदान करता है। यह शीतल है। इससे खांसी, घाव और क्षय का विनाश होता है। मधुपर्णी (मुलहठी) का अर्क केश व स्वर का संवर्द्धक है। यह पित्त, वात और रक्त के विकारों का नाश करता है।

जलैठी एवं कबीला अर्क

जलयष्टया विषच्छर्दितृष्णाग्लानिक्षयापहः ।
कम्पिलस्य विरेकी स्यात्प्रमेहस्य विकारनुत् ।।24।।

जलयष्टी (जलैठी) का अर्क विष, वमन, तृष्णा, अवसाद व क्षय का नाश करता है। कंपिल (कबीला) के अर्क से लिंग के विकार नष्ट किए जा सकते हैं।

अमलतास अर्क

आरग्वधस्य पित्तास्रवातोदावर्तशूलनुत् ।
कण्डूमेहश्वासकास कृमिकुष्ठज्वरापहः ।।25।।

आरग्वध (अमलतास) के अर्क से पित्त, रक्त, वायु और शूल विकारों का नाश होता है। यह खुजली, प्रमेह, श्वास, खांसी, कृमि, कुष्ठ तथा ज्वर को भी नष्ट करता है।

चिरायता एवं खंभारी अर्क

भूनिम्बस्य तृषाकुष्ठ ज्वरव्रणकृमि प्रणुत् ।
भद्रायार्कस्तु पित्तासृक्कृमिवीसर्पिकुष्ठनुत् ।।26।।

भूनिम्ब (चिरायता) का अर्क तृषा, कुष्ठ, ज्वर, व्रण तथा कृमि रोगों को दूर करता है। भद्रा (खंभारी) का अर्क पित्त, रक्तविकार, कृमि रोग तथा फैलने वाले कुष्ठ का नाश करता है।

मैनफल और रास्ना अर्क

मदनोत्यः छर्दिनेत्रचातुर्थिक ज्वरादिहृत् ।
रास्नोद्भवः समीराद्यवातशूलोदरापहः ।।27।।

मदन (मैनफल) के अर्क से वमन का दमन होता है। नेत्र-दोष और चौथैया ज्वर ठीक होता है। राई (रास्ना) का अर्क वायु विकार एवं उदर रोग ठीक करता है।

नागदमन तथा माचि का अर्क

नागभिन्नोद्भवो भोगिलूताद्याखु विकारनुत् ।
माचिकाजस्तु पित्तास्रपक्वातीसारहा लघुः ।।28।।

नागभिन्न (नागदमन) के अर्क से सांप, कीड़े-मकोड़े तथा चूहे के दंश का विष नष्ट होता है। माचिका का अर्क पित्त, रक्त विकार, परिपक्व अतिसार और खूनी अतिसार दूर करता है। यह हल्का होता है।

तेजबल एवं मालकांगनी अर्क

तेजस्विन्याः श्वासकासकफहृद्वह्निदीपनः ।
ज्योतिष्मत्या वान्तिकारो वह्निबुद्धि स्मृति प्रदः ।।29।।

तेजबल के अर्क से खांसी और कफ में लाभ पहुंचता है। यह क्षुधा बढ़ाता है और जठराग्नि को तीव्र करता है। ज्योतिष्मती (मालकांगनी) का अर्क वमनकारी है। यह अग्नि की वृद्धि करता है, बुद्धि तथा स्मृति को पुष्ट करता है।

कूठ और पोहकरमूल अर्क

कुष्ठस्य हन्ति वातास्रकासकुष्ठमरुत्कफान् ।
पौष्करस्यारुचिश्वासान् विशेषात्पार्श्वशूलनुत् ।।30।।

कूठ का अर्क वायु, रक्त, खांसी, कुष्ठ, वात और कफ के विकारों को दूर करता है। पोहकरमूल का अर्क अरुचि, श्वास दोषों व गर्भ पीड़ा से मुक्त करता है।

चोक तथा काकड़ासींगी अर्क

हेमाह्वाया एष वान्तिकरकण्डूविनाशनः ।
शृंग्या हरेदूर्ध्ववात हिक्कातृष्णास्वरक्षयान् ।।31।।

हेमाह्वा (चोक) का अर्क वमनकारी है और खुजली को ठीक करता है। शृंगा (काकड़ासींगी) का अर्क डकार, हिचकी और स्वर दोष को ठीक करता है। यह तृषा बढ़ाता है।

कायफल एवं भारंगी अर्क

कट्फलोत्थः श्वासकासप्रमेहार्शोरुचीहरेत् ।
भांर्ग्या हरेत्कफ श्वासपीनसज्वरमारुतान् ।।32।।

कायफल का अर्क खांसी तथा श्वास दोषों को ठीक करता है। प्रमेह और बवासीर में भी गुणकारी है। अरुचि का नाश करता है। भारंगी का अर्क कफ, वायु और श्वास विकारों को दूर करता है। पीनस व ज्वर का भी नाश करता है।

पाषाण भेद और कुसुंभ अर्क

पाषाणभेदजो योनिरोगकृच्छ्राश्मगुल्महा ।
कौसुंभजो वर्णकरो रक्तपित्तकफापहः ।।33।।

पाषाणभेद का अर्क योनि रोग दूर करता है और गांठों का नाश करता है। कुसुंभ का अर्क वर्णकारक है। यह कफ, पित्त व रक्त के विकारों को दूर करने में सक्षम है।

धातकी और मजीठ अर्क

धातकीजस्तृषा शीतविषकृमिविसर्पजित् ।
मांजिष्ठजो विषश्लेष्मरक्तातिसारकुष्ठहा ।।34।।

धातकी (आंवला) का अर्क तृषा बढ़ाता है, शीतलता प्रदान करता है, विष के प्रभाव तथा कृमि व विसर्प रोगों का नाश करता है। मजीठ का अर्क विष, कफ, रक्त, अतिसार और कुष्ठ रोगों का नाश करता है।

लाख तथा हल्दी अर्क

लाक्षाजः कृमिवीसर्पव्रणोरः क्षतकुष्ठहा ।
हरिद्राया मेहशोथत्वग्दोषव्रणपाण्डुनुत् ।।35।।

लाख का अर्क कृमि व विसर्प रोगों में गुणकारी है। यह व्रण और कुष्ठ को ठीक करता है। हल्दी का अर्क प्रमेह, शोथ, त्वचा-दोष, व्रण तथा पांडु रोग में लाभ पहुंचाता है।

वन हल्दी एवं कपूर हल्दी अर्क

आरण्यकहरिद्रायाः कुष्ठवातास्रनाशनः ।
कर्पूरकहरिद्रायाः सर्वकण्डू विनाशनः ।।36।।

जंगली हल्दी का अर्क कुष्ठ, वात और रक्तविकार को ठीक करता है। कपूर हल्दी के अर्क से हर प्रकार की खुजली से मुक्ति पाई जा सकती है।

दारु हल्दी और रसौत अर्क

दार्व्या विशेषतो लेपान्नेत्रकर्णस्य रोगनुत् ।
रसांजनोद्भवो नेत्रविकार व्रणदोषहृत् ।।37।।

दारु हल्दी के अर्क के लेप से कर्ण तथा नेत्रों के रोगों को ठीक किया जा सकता है। रसांजन (रसौत) के अर्क से नेत्र-दोष ठीक होता है। इससे व्रण को भी ठीक किया जा सकता है।

बाकुची तथा पंवार अर्क

बाकुच्याः कृमिविष्टम्भपाण्डुशोथकफापहः ।
प्रपुन्नाटस्य हन्त्येव कण्डूदद्रुविषानिलान् ।।38।।

बाकुची के अर्क से कृमि रोग का नाश होता है। इससे पांडु, शोथ और कफ के विकार भी ठीक होते हैं। प्रपुन्नाट (पंवार) का अर्क दाद-खाज का नाश करता है तथा विष और वायुदोष का शमन करता है।

अतीस एवं लोध अर्क

विषादोदीप्ति कृच्चार्को कफपित्तातिसारहा ।
लोध्रजः शीतलो ग्राही चक्षुष्यः कफपित्तनुत् ।।39।।

अतीस का अर्क जठराग्नि बढ़ाता है। कफ, पित्त तथा अतिसार का विकार ठीक करता है। लोध का अर्क ठंडक पहुंचाता है, पेट साफ करता है और दृष्टि तीव्र करता है। यह कफ एवं पित्त के विकार भी ठीक करता है।

चिरपोटा और भिलावां अर्क

बृहत्पत्रोद्भवो नेत्रोदरातीसारशोथहृत् ।
भल्लातकोद्भवो हन्याज्वरोदर कृमिव्रणान् ।।40।।

बृहत्पत्रा (चिरपोटा) का अर्क नेत्र रोगों के लिए गुणकारी है। इससे उदर रोग, अतिसार तथा शोथ में भी लाभ होता है। भिलावे का अर्क ज्वर, कृमि रोग और घाव को ठीक करता है।

गिलोय तथा बेल अर्क

गुडूच्या दीपनो ग्राही कासपाण्डुज्वरापहः ।
बैल्वः श्लेष्महरो बल्यो लघू रूक्षश्च पाचनः ।।41।।

गुडूची (गिलोय) का अर्क जठराग्नि प्रदीप्त करता है। यह अतिसार, खांसी, पांडु और ज्वर का नाश करता है। बेल का अर्क कफ को नियंत्रित करता है और बल को बढ़ाता है। यह पाचक भी है।

कुंभेर एवं नागबेल अर्क

कुम्भारीजो भ्रमतृष्णाशूलार्शो विषदाहनुत् ।
ताम्बूल्या मुखदौर्गन्ध्य मलवात श्रमापहः ।।42।।

कुंभेर का अर्क भ्रम की स्थिति खत्म करता है, तृषा बढ़ाता है। विष का प्रभाव नष्ट करता है। यह शूल, बवासीर और दाह का नाश करता है। तांबूली (नागबेल) का अर्क मुंह की दुर्गंध, मलविकार, वमन और स्वेद से बचाता है।

पाटल और अरणी अर्क

पाटल्याश्छर्दिशोथास्र त्रिदोषारुचिदाहहा ।
अग्निमन्थोद्भवः शोथकृमिपाण्डुबलासनुत् ।।43।।

पाटल का अर्क वमन, शोथ, रक्त, पित्त, वात, कफ, अरुचि तथा दाह के विकारों का नाश करता है। अरणी का अर्क शोथ, कृमि, पांडु तथा कफ के लिए गुणकारी है।

अरलूं तथा शालपर्णी अर्क

स्योनकाजस्तु गुल्मार्शकृमिहृद्ग्रु चिदीनिकृत् ।
शालिपर्ण्याः क्षतकृमिज्वर छर्द्यतिसारहा ।।44।।

स्योनाक (अरलू) का अर्क बवासीर में गुदा के मस्सों का नाश करता है, क्षुधा बढ़ाता है तथा जठराग्नि तीव्र करता है। शालपर्णी का अर्क घाव, कृमि, ज्वर, वमन और अतिसार के रोगों में गुणकारी है।

प्रश्निपर्णी एवं छोटी कटैली अर्क

प्रश्निपर्ण्या ज्वरश्वासरक्तातीसारदाहजित् ।
वार्ताक्यर्को ज्वरालस्यमलारोचकशूलहा ।।45।।

प्रश्निपर्णी का अर्क श्वास दोषों को ठीक करता है, ज्वर दूर करता है, खूनी अतिसार और दाह रोकता है। वार्ता (कटैली) का अर्क ज्वर, आलस्य, मल दोष, अरुचि और शूल को ठीक करता है।

कटेली और गोखरू अर्क

कण्टकार्य्या गर्भकरः पाचनः कफकासहा ।
गौक्षुरस्याश्मरी मेहकृच्छ्रहृद्रोगवातहा ।।46।।

कटेली का अर्क गर्भ कारक तथा पाचक है। इससे कफ और खांसी भी ठीक होती है। गोखरू का अर्क वीर्य, गांठ, प्रमेह, हृदयरोग, मूत्रकृच्छ्र तथा वात विकारों से मुक्ति दिलाता है।

जीवंती तथा मुद्गपर्णी अर्क

जीवन्त्याः श्वासहृन्नेत्रदोष त्रितयनाशनः ।
मुद्गपर्ण्याः शोथदाहग्रहण्यर्शातिसारजित् ।।47।।

जीवंती का अर्क श्वास, हृदय, कफ, वात और पित्त के विकारों का नाश करता है। मुद्गपर्णी के अर्क से शोथ, दाह, संग्रहणी, बवासीर व अतिसार में लाभ पहुंचता है।

माषपर्णी एवं एरण्ड अर्क

माषपर्ण्याः शुक्रकरो वातपित्तज्वरास्रजित् ।
पंचांगुलोद्भवः शूलशिरः पीडोदरापहः ।।48।।

माषपर्णी का अर्क वीर्य बढ़ाता है तथा वात, पित्त, ज्वर और रक्त के विकारों का नाश करता है। पंचांगुल (एरंड) का अर्क शूल, शिरोरोग व उदर रोगों का हरण करता है।

एरण्डभेद और मंदार अर्क

हबुषोत्थो वृद्धकासश्वासकुष्ठाममारुतान् ।
मंदारजो वातकुष्ठकण्डूव्रणविषापहः ।।49।।

हबुषा (एरण्डभेद) का अर्क पुरानी खांसी, श्वास दोष, कुष्ठ और वात के लिए गुणकारी है। मंदार का अर्क वायु, कुष्ठ, खुजली, घाव और विष का नाश करता है।

आक तथा वज्री अर्क

अर्कार्कः प्लीहगुल्मार्श श्लेष्मोदरकृमीन् हरेत् ।
वज्रीजो लेपतो हन्याद् व्रण शोथोदरज्वरान् ।।50।।

आक का अर्क गांठ, प्लीहा, बवासीर, कफ और उदर के कृमियों का नाश करता है। वज्री के अर्क का लेप घाव, शोथ, उदर रोग और ज्वर का नाश करता है।

सातला एवं कलिहारी अर्क

सातलोत्थः कफानाहपित्तोदावर्तशोथहा ।
लांगल्या लेपतो हन्याच्छोफार्शो व्रणरोगजान् ।।51।।

सातला (थूहर का एक भेद) का अर्क कफ, पित्त, वायु और शोथ का नाश करता है। यह उदावर्त को भी ठीक करता है। लांगली (कलिहारी) के अर्क के लेप से शोथ, बवासीर एवं व्रणों को ठीक किया जा सकता है।

कनेर और चचेड़ा अर्क

करवीरोद्भवो नेत्रकोपकुष्ठव्रणापहः ।
चाण्डालोत्थस्तु विषवद्भक्षणे लेपने महत् ।।52।।

करवीर (कनेर) का अर्क नेत्रों के लिए गुणकारी है। यह कुष्ठ और व्रण को भी ठीक करता है। चचेड़े का अर्क विष है, अतः अखाद्य है। इसके लेप से अनेक प्रकार के विकारों का नाश होता है।

धतूरा तथा वासा अर्क

धत्तूरजो हरेल्लेख्यायूकाकृमिविषादिकम् ।
वासोद्भवो ज्वरच्छर्दिमेहकुष्ठक्षयापहः ।।53।।

धतूरे का अर्क जुओं और लीखों का नाश करता है। यह कृमियों के विष भी दूर करता है। वासा (अडूसा) का अर्क ज्वर, वमन, प्रमेह, कुष्ठ और क्षय को ठीक करता है।

पित्तपापड़ा एवं नीम अर्क

पर्पटो हन्ति पित्तास्र भ्रमतृष्णाकफज्वरान् ।
निम्बजः श्रमतृट्कासज्वरारुचि कृमिप्रणुत् ।।54।।

पर्पट (पित्तपापड़ा) का अर्क रक्तपित्त, भ्रम, तृषा, कफ और ज्वर को ठीक करता है। नीम का अर्क स्वेद, तृषा, खांसी, अरुचि तथा कृमि रोगों से छुटकारा दिलाता है।

बकायन और पारिभद्र अर्क

महानिम्बोद्भवो गुल्ममूषिका विषनाशनः ।
पारिभद्रोऽनिल श्लेष्मशोथ मेदकृमिप्रणुत् ।।55।।

बकायन (महानीम) का अर्क गांठ तथा चूहे के काटे के विष का नाश करता है। पारिभद्र नीम का अर्क वात, कफ और व्रण को ठीक करता है।

कचनार तथा कोविदार अर्क

कंचनारो गण्डमालागुदभ्रंश व्रणापहः ।
कोविदारस्तु पित्तास्रप्रदर क्षयकासहा ।।56।।

कचनार के अर्क से गंडमाल, गुदभ्रंश और व्रण ठीक किया जा सकता है। मिर्च (कोविदार) का अर्क पित्त एवं रक्तविकार को हरता है। यह प्रदर, क्षय और खांसी में भी लाभकारी है।

सहिजन और मीठा सहिजन अर्क

सौभांजनार्को रुचिकृच्छुक्रलो ग्राहिदीपनः ।
मधुशिग्रूद्भवो हन्याद्वि द्रधिश्वयथु कृमीन् ।।57।।

सौभांजन (सहिजन) का अर्क रुचिकर और वीर्यवर्द्धक है। यह मन को स्थिर रखता है तथा जठराग्नि तीव्र करता है। मधुशिग्रू (मीठा सहिजन) का अर्क दाद-खाज, आलस्य और कृमिरोग से बचाता है।

श्वेत सहिजन एवं ग्वारपाठा अर्क

शिग्रुजो विषहृन्नेत्र्यो नस्येनाक्षिशिरोर्तिहा ।
गिरिकन्या कुष्ठशूलशोथव्रणविषापहः ।।58।।

शिग्रुज (श्वेत सहिजन) का अर्क विष नाशक है। यह नेत्रों को आराम पहुंचाता है। इसका सूखा अर्क शिरो व नेत्र रोग दूर करता है। गिरिकन्या (ग्वारपाठा) का अर्क कुष्ठ, शूल, शोथ और विषों को नष्ट करता है।

सिंदूरिया और निर्गुण्डी अर्क

सिंदुवारोद्भवो हन्ति शूलशोथाममारुतान् ।
निर्गुण्डयर्को हरेज्जन्तुव्रणकुष्ठारुचिं लघुः ।।59।।

सिंदुवार (सिंदूरिया) का अर्क शूल, शोथ और आमवात का नाशक है। निर्गुंडी का अर्क जीव-जंतुओं के काटने से हुए घाव को ठीक करता है। यह अरुचि नाशक भी है।

कुटज तथा करंजा अर्क

कोटजोदीपनःशीतःकफतृष्णामकुष्ठ जित् ।
करंजः कफगुल्मार्शो व्रणकृमिव्रणापहः ।।60।।

कुटज (कुड़ा) का अर्क अग्नि को उद्दीप्त करता है तथा शीतलता प्रदान करता है। यह कफ, तृष्णा और अपरिपक्व कुष्ठ का निवारण करता है। करंज का अर्क कफ, गांठ, बवासीर, व्रण, घाव और कृमि रोगों को ठीक करता है।

घृत करंज एवं सामान्य करंज

घृतकारंजको भेदी वातार्शः कृमिकुष्ठजित् ।
करंज्यो वमिवातार्श कृमिकुष्ठप्रमेहजित् ।।61।।

घृत करंज का अर्क बादी बवासीर, कृमि रोग व व्रण का नाश करता है। सामान्य करंजे का अर्क वमन, बादी बवासीर, कृमि रोग, कुष्ठ और प्रमेह का निवारण करता है।

श्वेत घुंघची और लाल घुंघची अर्क

उच्चटार्कः केशकरो वातपित्तज्वरापहः ।
गुंजायाश्च हरेच्छ्वासमुखशोषभ्रमिज्वरान् ।।62।।

श्वेत घुंघची का अर्क केश-वर्द्धक है। यह वात, पित्त और ज्वर को ठीक करता है। लाल घुंघची का अर्क श्वास, शुष्क मुख, विभ्रम एवं ज्वर का नाशक है।

कौंच तथा मांस रोहिणी अर्क

कपिकच्छूद्भवो वृष्यो बृंहणो वाजिकर्मकृत् ।
मांसरोहिण्युद्भवस्तु वृष्यो दोषत्रयापहः ।।63।।

कौंच का अर्क बल-वीर्यवर्द्धक है। यौवन को पुष्ट करता है। मांस रोहिणी का अर्क पौष्टिकता बढ़ाता है और कफ, पित्त, वात के विकारों का नाश करता है।

चीढ़ा एवं कांटेदार कटैली अर्क

चिल्हजः कुरुते पुष्टिं तत्फलं मारयेज्जनान् ।
कंटकार्या दीपनश्च श्लेष्मशोथहरोऽरुचिः ।।64।।

चिल्ह यानी चीढ़ा का अर्क पौष्टिकता बढ़ाता है। इसका फल विषैला होता है जो प्राण हर लेता है। कंटका यानी कटैली के अर्क से कफ और शोथ का नाश होता है। यह अरुचि का हरण करता है।

वेत-जलवेत अर्क

वेतसो हरते दाहं शोथार्शोयोनिरुग्व्रणान् ।
जलवेतसजो ग्राही शीतो वातप्रकोपनः ।।65।।

वेत के अर्क से दाह, शोथ, मस्से, योनि रोग और व्रण का नाश होता है। जलवेत का अर्क मल को बांधता है, शीतलता प्रदान करता है और वात के प्रकोप से मुक्ति दिलाता है।

समुद्रफल एवं अंकोट अर्क

हिज्जलार्कस्तु हरते चराचरविषं स्फुटम् ।
अंकोटकस्तु शूलामशोथग्रहविषापहः ।।66।।

हिज्जल (समुद्रफल) के अर्क से चराचर विष का नाश होता है। अंकोट (चिलगोजा) के अर्क से शूल, अजीर्ण, शोथ और विष का नाश होता है।

बला और अतिबला अर्क

बलार्को ग्राहिवातास्रपित्तास्रक्षतनाशनः ।
अतिपूर्वबलार्कस्तु मूत्रातीसारनाशनः ।।67।।

बला (खिरैटी) का अर्क पेट साफ रखता है। वात रक्त, पित्त रक्त और घाव का नाश करता है। अतिबला (बरियारा) का अर्क मूत्र विकार एवं अतिसार को ठीक करता है।

महाबला एवं नागबला अर्क

महाबलार्को हरते कृच्छ्रघातानुलोमनः ।
नागपूर्वबलार्कश्च मूर्च्छामोहहरः परः ।।68।।

महाबला अर्थात् सहदेई का अर्क मूत्र विकार और घाव को ठीक करता है। नागबला का अर्क बेहोशी, मूर्च्छा एवं तंद्रा को भंग करता है।

लक्ष्मणा और काकवल्लरी अर्क

लक्ष्मणार्कस्य सेवेद्वै बन्ध्याऽपि लभते सुतम् ।
स्वर्णवल्याः शिरः पीडां त्रिदोषान् हन्ति दुग्धदः ।।69।।

लक्ष्मणा के अर्क से बांझ स्त्री भी संतानोत्पत्ति कर सकती है। काकवल्लरी (स्वर्णवली) अर्क

द्वारा शिरोवेदना, कफ, पित्त और वात के विकार ठीक किए जा सकते हैं। इससे स्तन में दूध भी आता है।

कपास तथा बांस अर्क

कार्पासार्कः शिरः शंखकर्णरोगान्विनाशयेत् ।
वंशजः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्रव्रणशोथजित् ।।70।।

कपास का अर्क सिर, कनपटी व कान के रोगों का नाश करता है। बांस के अर्क से कफ और पित्त का शमन होता है। यह कुष्ठ, व्रण और शोथ के बिकारों को भी ठीक करता है।

नाल और मुलहठी अर्क

नालार्को बस्तियोन्यार्ति दाहपित्तविसर्पहृत् ।
यष्ट्या जयेज्ज्वरच्छर्दि कुष्ठातीसारहृद्रुजः ।।71।।

नाल अर्थात् कमल ककड़ी का अर्क पेडू (वस्ति) एवं योनि के विकारों का नाश करता है। यह दाह, पित्त तथा व्रणों को भी ठीक करता है। मुलहठी का अर्क ज्वर, वमन, कुष्ठ और अतिसार का निवारण करता है।

श्वेत निशोथ तथा शरपुंखा अर्क

श्वेतत्रिवृद्भवोऽप्यर्को पित्तशोथोदरापहः ।
शरपुंखोद्भवः प्लीहान् गुल्मव्रणविषापहः ।।72।।

श्वेत, निशोथ के अर्क से पित्त, शोथ और उदर रोगों का नाश होता है। शरपुंखा (सरफोंका) अर्क से प्लीहा, गांठ, व्रण तथा विष दूर होता है।

जवास एवं गोरखमुंडी अर्क

जवासजो मदभ्रान्तिपित्तासृक्कुष्ठकासजित् ।
मुण्डजोऽत्यन्त बलकृत्प्लीह मेहानिलार्तिजित् ।।73।।

जवास के अर्क से मद, भ्रांति, पित्त, रक्तदोष, कुष्ठ तथा खांसी का नाश होता है। गोरखमुंडी के अर्क से बल वृद्धि होती है। प्लीहा, प्रमेह और वात के विकार ठीक होते हैं।

अपामार्ग तथा लाल अपामार्ग अर्क

अपामार्गोद्भवश्छर्दि कफमेदोनिलापहः ।
आरक्तापामार्गभवो धातुस्तम्भनकारकः ।।74।।

अपामार्ग (ओंगा) के अर्क से वमन, कफ, मेदा और वात के विकार ठीक होते हैं। लाल अपामार्ग के अर्क से धातुस्तंभन होता है।

तालमखाना और अस्थिसंहार अर्क

कोकिलाक्षिभवः शीघ्रं सेकाच्छोथान्निवारयेत् ।
अस्थिसंहारकायास्तु भग्नसन्धान कृच्छिवे ।।75।।

तालमखाने के अर्क से व्रण तथा शोथ का यथाशीघ्र नाश होता है। अस्थि संहार के अर्क से काया के घावों को ठीक किया जा सकता है।

पुनर्नवा तथा राजबला अर्क

पुनर्नवाया रक्ताया ग्राही पित्तास्रनाशनः ।
प्रसारिण्या वातहरो वृष्यः सन्धानकृत्सरः ।।76।।

पुनर्नवा के अर्क से रक्तविकार ठीक होते हैं तथा पेट साफ रहता है। राजबला (प्रसारिणी) के अर्क से वात विकार नष्ट होता है, पौष्टिकता बढ़ती है और घाव ठीक हो जाता है।

ग्वारपाठा एवं श्वेत पुनर्नवा अर्क

कुमारिकाया ग्रन्थ्यग्निदग्धविस्फोटकांजयेत् ।
पुनर्नवायाः श्वेतायाः सर्वनेत्रामयापहः ।।77।।

ग्वारपाठा के अर्क से गांठ ठीक होती है, पेट की अग्नि और शीतला रोग का निवारण होता है। व्रण ठीक होते हैं। श्वेत पुनर्नवा के अर्क से सभी नेत्र रोगों में लाभ पहुंचता है।

सारिवा और भांगरा अर्क

सारिवाया वह्निमान्द्यकासामविषनाशनः ।
भृंगिराजस्य जातोऽर्कःकेश्यो रुच्यः शिरोऽर्तिहृत् ।।78।।

सारिवा के अर्क से मंदाग्नि, खांसी और विष का विकार नष्ट होता है। भांगरे के अर्क से केश वृद्धि होती है, त्वचा रोग दूर होते हैं और शिरशूल ठीक होता है।

शंखपुष्पी तथा चिरायता अर्क

शणपुष्पीलतायास्तु अर्कः पित्तकफापहः ।
त्रायन्त्यर्कः शूलविषविलेपी ज्वरनाशनः ।।79।।

शंखपुष्पी की लता के अर्क से पित्त तथा कफ का नाश होता है। चिरायते का अर्क शूल और कफ के विकार के साथ ही विष के प्रभाव को दूर कर देता है।

मूर्वा एवं मकोय अर्क

मूर्वाया मेहरोगघ्नः कण्डूकुष्ठज्वरापहः ।
काकमाच्या नेत्रहितः छर्दिहृद्रोगनाशनः ।।80।।

मूर्वा के अर्क से प्रमेह की बाधा दूर होती है, कंडू, कुष्ठ तथा ज्वर का नाश होता है। मकोय के अर्क से नेत्र ज्योति बढ़ाई जा सकती है। यह वमन तथा हृदय रोगों में भी लाभकारी है।

काकनासा और काकजंघा अर्क

काकनासाभवो वामी शोथार्शः श्वित्रकुष्ठनुत् ।
काकजंघोद्भवो हन्याज्ज्वरकंडूविषकृमीन् ।।81।।

काकनासा के अर्क से वमन को रोका जा सकता है। यह शोथ, बवासीर तथा श्वेत कुष्ठ में लाभकारी है। काकजंघा के अर्क से ज्वर, खुजली तथा कृमि रोग का नाश होता है। यह विष के प्रभाव को भी नष्ट करता है।

नागपुष्पी तथा मेढ़ासींगी अर्क

नागिन्यस्तु हरेच्छूलयोनिदोषर्वाम कृमीन् ।
मेषशृंग्याः श्वासकासव्रण श्लेष्माक्षिशूलहा ।।82।।

नागपुष्पी के अर्क से शूल, योनिरोग, वमन और कृमियों के दोष का नाश होता है। मेढ़ासींगी

के अर्क से श्वास, कास, व्रण, कफ तथ नेत्र-दोष का निवारण होता है।

हंसपदी एवं सोमवल्ली अर्क

हंसपद्या हन्ति लूतां भूतरक्तविषव्रणान् ।
सोमवल्यास्त्रिदोषघ्नः क्षीरकृच्च रसायनः ।।83।।

हंसपदी का अर्क मकड़ी के काटे, पुराने रक्त-दोष, विष और व्रण का निवारण करता है। सोमवल्ली के अर्क से वात, पित्त एवं कफ के विकारों का शमन होता है। इस अर्क से स्त्रियों के दूध में भी वृद्धि होती है।

आकाशवल्लरी और पातालगरुड़ी अर्क

आकाशवल्याः शीतोऽर्कः पित्तश्लेष्मामनाशनः ।
पातालगरुडीजार्को वृष्यः पवननाशनः ।।84।।

आकाशवल्लरी का अर्क शीतलकारी है। यह पित्त, कफ और आंव के दोषों को दूर करता है। पातालगरुड़ी के अर्क से बलवृद्धि होती है तथा वायु-विकारों का नाश होता है।

तुलसी तथा वटपत्री अर्क

वृन्दावृक्षोद्भवोऽर्कस्तु विषरक्षो व्रणापहः ।
वटपत्री भवश्चोष्णो योनिमूत्रगदापहः ।।85।।

तुलसी के अर्क द्वारा विष से रक्षा होती है। इससे व्रण को भी ठीक किया जा सकता है। वटपत्री के अर्क से योनिरोगों व मूत्ररोगों का निवारण होता है। यह उष्ण प्रभाव का होता है।

हिंगुपत्र एवं वंशपत्र अर्क

हिंगुपत्र्या विबंधार्शः श्लेष्मगुल्मानिलापहः ।
वंशपत्र्या पाचनोष्णो हृद्बस्तिगदसंघहृत् ।।86।।

हिंगुपत्र का अर्क बवासीर, कब्ज, गांठ, कफ तथा वायु विकार का निवारण करता है। वंशपत्र का अर्क पाचनकारी है। यह गर्भ, हृदय तथा वस्ति के रोगों का नाश करता है।

मत्याक्षी और सरहटी अर्क

मत्स्याक्ष्यर्को ग्राहिशीतकुष्ठपित्तकफास्रजित् ।
सर्पाक्ष्या रोपणः सर्पवृश्चिकोद्भवदंशहृत् ।।87।।

मत्याक्षी यानी मछली के नेत्र का अर्क मल बांधता है तथा शीतलता प्रदान करता है। इससे कुष्ठ, पित्त, कफ और रक्त के विकार भी ठीक होते हैं। सरहटी सर्पाक्षी के अर्क से सांप और बिच्छू के दंश का विष प्रभावहीन हो जाता है।

शंखपुष्पी तथा अर्कपुष्पी अर्क

शंखपुष्प्या विषहरः स्मृतिकान्तिबलाग्निदः ।
अर्कपुष्प्याः कृमिश्लेष्ममेहपित्तविकारनुत् ।।88।।

शंखपुष्पी का अर्क विषों को हटाता है। यह स्मरणशक्ति, कांति, बल और जठराग्नि में वृद्धि भी करता है। अर्कपुष्पी के अर्क से कफ, प्रमेह और पित्तविकारों का शमन होता है।

लाजवंती एवं तुम्बी अर्क

लज्जालुकाया भगरुग्रक्तपित्तातिसारहृत् ।
अलम्बुषासम्भवाऽकः कृमिपित्तकफापहः ।।89।।

लाजवंती का अर्क योनि रोगों के लिए गुणकारी है। इससे पित्त व अतिसार के विकार भी नष्ट होते हैं। तुंबी के अर्क से कृमिरोग, कफ और पित्त के विकारों का निवारण होता है।

दुद्धी और भूमिवल्लरी अर्क

दुग्धिकायाः कफकरो वृष्यस्तम्भी कृमिप्रणुत् ।
भूमिवल्ल्याः कासतृष्णाकफपाण्डुहृत्तापहः ।।90।।

दुद्धी के अर्क से बलवृद्धि होती है, वीर्य स्तंभन होता है और कृमिरोग का निवारण भी होता है। यह कफकारक भी होता है। भूमिवल्लरी के अर्क से खांसी, तृषा, कफ, पांडु और हृदय के विकार ठीक होते हैं।

ब्राह्मी तथा ब्रह्ममुण्डूकी अर्क

ब्राह्म्या बुद्धिप्रदश्चार्कः षण्मासाभ्यासतः कविः ।
ब्रह्ममण्डुकिजः पाण्डुविषशोथज्वरान्हरेत् ।।91।।

ब्राह्मी का अर्क बुद्धिवर्द्धक है। छह माह निरंतर इसका सेवन करने से कवि बना जा सकता है। ब्रह्ममंडूकी के अर्क से पांडु, विष, शोथ तथा ज्वर का निवारण होता है।

द्रोणपुष्पा एवं सूर्यमुखी अर्क

द्रोणपुष्प्या ज्वरश्वासकामलाशोथजंतुजित् ।
सूर्यमुख्या हरेत्स्फोटयोनिरुधकृमिपाण्डुताम् ।।92।।

द्रोणपुष्प के अर्क से ज्वर, श्वास, पांडु और शोथ के विकारों का निवारण होता है। सूर्यमुखी के अर्क से व्रण, योनिरोग, कृमि तथा पांडु रोग दूर होता है।

बांझककोड़ी और मार्कण्डिका अर्क

वन्ध्याकर्कोटकीजातः सर्पदर्पव्रणापहः ।
मार्कंडिकाया दुर्गंधिविषगुल्मोदरापहः ।।93।।

बांझककोड़ी के अर्क से सर्पदंश के घाव का नाश होता है। मार्कण्डिका के अर्क से दुर्गंध तथा विष-प्रभाव का नाश होता है। इससे गांठ व उदर रोगों का भी निवारण होता है।

दारुहल्दी तथा काला धतूरा अर्क

देवदाल्याः शूलगुल्मश्लेष्मार्शोवातजित्परम् ।
धत्तूरजो ग्राहिकौजोवह्निकृद्व्रणदाहहृत् ।।94।।

दारुहल्दी के अर्क से शूल, गांठ, कफ, बवासीर और वातरोग का नाश होता है। काले धतूरे का अर्क कब्जकारक है। यह बलवृद्धि करता है, जठराग्नि बढ़ाता है तथा व्रण और दाह को हरता है।

गोभी एवं नागपुष्पी अर्क

गोजिह्वाया मेहकासव्रण सारज्वरापहः ।
नागपुष्प्या सर्वविषसर्वग्रह विनाशनः ।।95।।

गोभी के अर्क से प्रमेह, खांसी, व्रण और ज्वर का निवारण होता है। नागपुष्पी के अर्क से समस्त विषों तथा ग्रहों का नाश होता है।

वरवेल और नकछिंकनी अर्क

वेल्लन्तरोर्मूत्राघाताश्मरी योन्यनिलार्तिजित् ।
छिक्कन्या वह्निरुचिकृदर्शः कुष्ठकृमिप्रणुत् ।।96।।

वरवेल के अर्क से मूत्र, धातु एवं पथरी का नाश होता है। इससे योनि रोग तथा वात के विकार का भी निवारण होता है। नकछिंकनी के अर्क से बवासीर, कुष्ठ और कृमिरोग दूर होते हैं। यह रुचिवर्द्धक भी है।

कुंहुंदरा तथा सुदर्शन अर्क

कौहुन्दरो ज्वरं रक्तमुख शोषकफं हरेत् ।
सुदर्शनार्कश्चात्युष्णः कफास्रं वातरोगजित् ।।97।।

कुंहुंदरे के अर्क से ज्वर का निवारण होता है। यह रक्त विकार, चेहरे की क्लांतता तथा कफ का नाश करता है। सुदर्शन के अर्क से कफ, रक्त एवं वात के विकारों का नाश होता है। यह बहुत उष्ण होता है।

।। लंकेश्वर रावणकृतार्कप्रकाशे तृतीयं शतकं संपूर्णम् ।।

❑❑

अथार्कप्रकाशे

चतुर्थं शतकम्

षड्रस पदार्थ

रावण उवाच—

सिताचिंचोषणपटुबिभीतककटीलकाः ।
एतत्षड्रसमित्युक्तं विपरीतबलाधिकम् ।।1।।

मिश्री, इमली, मिर्च, परवल, बेहेड़ा तथा करेले को 'षड्रस' कहा जाता है। ये सब एक-दूसरे के विपरीत अत्यंत बली माने जाते हैं।

षड्रस गुण

एषामर्कः प्रत्यहं च पिबेत्पलयुगं प्रिये ।
अरुचिं चैव मन्दाग्निं स्वप्नेऽपि स न पश्यति ।।2।।

प्रिय मंदोदरी! इनके अर्क का नित्य चार पलों तक सेवन करने वाला व्यक्ति कभी स्वप्न में भी मंदाग्नि तथा अरुचि का शिकार नहीं होता।

उन्मत्तपंचक अर्क

उन्मत्तो सोमविजया जातीपत्री च खाखसम् ।
उन्मत्तपंचकं चैतद्यवानी पंचभिः समाः ।।3।।

धतूरा, सोमलता, भांग, जावित्री और खसखस—इन पांचों वस्तुओं का पंचक 'उन्मत्त पंचक' कहलाता है।

दुग्धनिर्वापितादस्मादर्को लेह्यो यथोक्तितः ।
खादेत्पिशाचवन्मत्तो रमेच्च रमणीशतम् ।।4।।

इस उन्मत्त पंचक को दूध में मिलाकर यथाविधि से अर्क निकालें। इसको सेवन करने वाला सौ बार स्त्रियों से रमण करने में सक्षम होता है।

त्रिसुगंध अर्क

त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगंधमिति स्मृतम् ।
तदर्को मुखदौर्गंधिच्छेदनो मलभेदनः ।।5।।

तज, इलायची और पत्रज को एक समान मात्रा में लें, इनको 'त्रिसुगंध' कहा जाता है। इसका अर्क मुंह की दुर्गंध का नाश करता है और कब्ज दूर करता है।

चातुर्जात अर्क

नागकेशरमेला च पत्रकं दारुचीर्णकम् ।
चातुर्जातमिदं ज्ञेयं वह्निकृच्च विषापहम् ।।6।।

नागकेशर, इलायची, पत्रज और दालचीनी के मिश्रण को 'चातुर्जात' कहा जाता है। इसके अर्क से जठराग्नि में वृद्धि होती है और विष का प्रभाव नष्ट होता है।

त्रिफला अर्क

पथ्या बिभीतको धात्री त्रिफलैषा प्रकीर्तिता ।
एतदर्को मेहकुष्ठ विषमज्वरपित्तनुत् ।।7।।

हरड़, बहेड़ा और आंवला को 'त्रिफला' की संज्ञा दी गई है। त्रिफला के अर्क से प्रमेह, कुष्ठ, विषम ज्वर और पित्त-विकार का निवारण होता है।

त्रिकुटा अर्क

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटुरुच्यते ।
हरेद्गुल्मकफस्थौल्य मेदश्लीपदपीनसान् ।।8।।

सोंठ, पीपल और काली मिर्च के मिश्रण को 'त्रिकुटा' की संज्ञा दी गई है। इसके अर्क से मोटापा घटाया जा सकता है। इस अर्क से गांठ, कफ, आमाशय रोग, फीलपांव और प्रतिश्याय के विकार का नाश होता है।

चतुरुषण अर्क

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।
चतुरुष्णमित्युक्त मेतदर्कोऽग्नि तत्परः ।।9।।

पीपल, पीपलामूल, कालीमिर्च और सोंठ को 'चतुरुषण' कहा जाता है। इनके मिश्रित अर्क से जठराग्नि में वृद्धि होती है।

पंचकोल अर्क

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः ।
पंचकोलमिदं गुल्मप्लीहानाहोदरापहम् ।।10।।

पीपल, पीपलामूल की जड़, चव्य, चित्रक तथा सोंठ को 'पंचकोल' की संज्ञा दी गई है। इनके मिश्रित अर्क से गांठ, प्लीहा, उदर शूल व उदर रोग का निदान होता है।

षडूषण अर्क

कणामूलोषणकणा चव्य चित्रकनगरैः ।
एतत्षडूषणं चोष्णं दीप्तिकारि विषापहम् ।।11।।

पीपलामूल, पीपल, कालीमिर्च, चव्य, चित्रक तथा सोंठ को 'षडूषण' कहा जाता है। इसका अर्क जठराग्नि में वृद्धि करता है एवं विष के प्रभाव का नाश करता है। इसकी प्रकृति उष्ण है।

चतुर्बीज अर्क

मेथिका चंद्रसूरश्च कालाजाजी यवानिका ।
चतुर्बीजमिदं प्रोक्तं शूलाध्मानसमीरजित् ।।12।।

मेथी, चंद्रसूर, कालाजीरा और अजवायन को 'चतुर्बीज' की संज्ञा दी गई है। इसके अर्क से शूल, अफरा एवं वायु का निराकरण होता है।

अष्टवर्ग अर्क

जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ।
अष्टवर्गोऽयमर्कस्तु भग्नसंधानकृत्परः ।।13।।

विजयसार, काकड़ासींगी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि और वृद्धि को 'अष्टवर्ग' की संज्ञा दी गई है। इसका अर्क कटे घावों को भरकर ठीक करता और जोड़ता है।

बृहत्पंचमूल अर्क

बिल्वोऽग्निमंथः स्योनाकः पाटला गणकारिका ।
पंचमूलं बृहत्प्रोक्तं सदर्कोऽत्यग्निदीपनः ।।14।।

बेल, अरणी, सोनापाठा, पाटला और गंगेगरन को 'बृहत्पंचमूल' की संज्ञा दी गई है। इसके अर्क से जठराग्नि में वृद्धि होती है।

सामान्य पंचमूल अर्क

शालिपर्णी प्रश्निपर्णी वार्ताकी कण्टकारिका ।
गोक्षुरः पंचमूलं स्यात्तदर्कश्चाश्मरीप्रणुत् ।।15।।

शालिपर्णी, प्रश्निपर्णी, वार्ताकी, कंटकारिक (कटेरी) और गोखरू को 'सामान्य पंचमेल' कहा जाता है। इसके अर्क से पथरी का निवारण होता है।

दशमूल अर्क

उभाभ्यां पंचमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम् ।
तदर्कः सूतिकारोग त्रिदोषज्वरशोथहा ।।16।।

बृहत्पंचमूल और सामान्य पंचमूल मिलकर 'दशमूल' कहलाता है। इसके अर्क से त्रिदोष (कफ, वात व पित्त), सूतिकारोग, ज्वर और शोथ का नाश होता है।

जीवनीयगण अर्क

जीवंती मधुकं मुद्गा शालिपर्ण्यष्टवर्गकः ।
जीवनीयगणस्यार्कः सर्वरोगविनाशनः ।।17।।

जीवंती, महुआ, मूंगफली, माषपर्णी तथा शालिपर्णी में पहले बताए गए अष्टवर्ग का मिश्रण किया जाए तो यह 'जीवनीयगण' कहलाता है। इसके अर्क से संपूर्ण रोगों का निदान किया जा सकता है।

सुगंध के पदार्थ

कर्पूरोमृगनाभिश्च कस्तूरी लतिका तथा ।
गंधमार्जारचौर्यं च श्रीखंडं पीतचन्दनम् ।।18।।
कालीपकं च रक्तांग पतंगमगुरुद्वयम् ।
वेददारुश्च सरलस्तगरं पद्मकं पुरः ।।19।।
सरनिर्यासकी रालः कुन्दरश्च शिलारसः ।
सिह्लकश्च, लवंगं च जातीपत्रीफलं तथा ।।20।।
एलाद्वयं दारुचीनी त्वक्पत्रं नागकेसरम् ।
बालकं वीरणं मांसी कुंकुमं रोचना नखः ।।21।।
सुगन्धवीरणं वाला जटामांसी मुरा घनः ।

सटीकर्चूर एकांगी सुगंधोऽयं गणोत्तमः ।।22।।

कपूर, मृगनाभि, कस्तूरी, लतिका, सुगंधित मार्जारचौर्य, श्वेत व पीत चंदन, कालीपक (काला अगरू), रक्तचंदन, पतंग, अगर, द्वय देवदार, सरल (चीड़), तगर, महुआ, गूगल, सरनियसि, राल, कुन्दर, लोहबान, यावन, लौंग, जावित्री, जायफल, द्वय इलायची, दालचीनी, तज, पत्रज, नागकेसर, मांस रोहिणी, मांसी केसर, कुंकुम, गोरोचन, नखी, सुगन्धित खस, नेत्रबाला, जटामांसी, मुलठी और कचूर आदि औषधियों का मिश्रण 'उत्तम सुगंधगण' कहलाता है।

सुगंधगण अर्क

विधिनिष्कासितो योऽर्को रुच्यः पाचनदीपनः ।
मुखदौर्गन्ध्यहृन्नेत्र्यो लेपान्मेदश्रमायहः ।।23।।

सुगंधगण औषधियों का अर्क बहुत रुचिकर होता है। यह पाचचक्रिया को उद्दीप्त कर जठराग्नि की वृद्धि करता है और मुंह की दुर्गंध का नाश करता है। नेत्रों के लिए भी यह गुणकारी है। इनका लेप मेदरोग को नष्ट करता है तथा थकान मिटाता है।

वीरण पदार्थ

कुशः काशश्च दर्भश्च कत्तृणं भूतृणं तथा ।
श्वेतदूर्वा नीलदूर्वा गंडदूर्वेति वीरणम् ।।24।।

कुश, काश, दाभ, तृण, घास, श्वेत दूब, नील दूब और गंडदूब को 'वीरण' संज्ञक माना गया है।

वीरण अर्क

वीरणार्को हरेच्छूलं संधुक्षयति चानलम् ।
क्षतसन्धायकृद्वृष्यो बलं कुर्यादनेकधा ।।25।।

वीरण संज्ञक औषधियों का अर्क शूल का नाश करता है, जठराग्नि को बढ़ाता है, घावों को ठीक करता है और बलवृद्धि करता है।

दुग्धकंद

अश्वगंधा च मुसली विदारी च शतावरी ।
क्षीरवाराहिका चेति दुग्धकन्दगणस्त्वयम् ।।26।।

अश्वगंधा, मूसली, विदारीकंद, शतावरी और क्षीरवाराही को 'दुग्ध कंदगण' की संज्ञा दी गई है।

दुग्धकंदगण अर्क

बालको लभते वीर्यं रिरंसुर्बालया सह ।
अस्यार्कस्य च पानेन कुर्यात्षोडशवार्षिकम् ।।27।।

दुग्ध कंदगण की औषधियों का अर्क शिशु को पुष्ट करता है, वीर्य की वृद्धि करता है और स्त्री से मैथुन करने की शक्ति देता है। इसे पीकर वृद्ध प्राणी भी युवा बन जाता है।

लघुदंती अर्क

लघुदन्ती बृहद्दंती इन्द्रवारुणिनीलिके ।

वासयेच्च सुगंधेन राजयोग्यं विरेचनम् ।।28।।

लघुदंती, बृहद्दंती, इंद्रवारुणी और नील के अर्क को सुगंधित करें। यह सुगंधित अर्क राजाओं के योग्य महापराक्रम देने में सक्षम है।

बड़-फल अर्क

दुग्धमिश्रैर्वटफलैः कमलाच्छादनोद्भवः ।
वरोऽर्कः शीतलो ग्राही वर्ण्यो भगसुगंधकृत् ।।29।।

दूध मिश्रित बड़फलों को कमल से ढंक कर अर्क निकालें। इस अर्क की प्रकृति शीतल होती है। यह उदर विकार दूर करता है। इसके सेवन से त्वचा स्निग्ध और योनि सुगंधित होती है।

पीपल-फल अर्क

मूलनालदलोत्फुल्लफलैर्युक्ता हि पद्मिनी ।
तत्पिधानं पिप्पलस्य फलानां योनिदोषनुत् ।।30।।

कमल की जड़, नाल, पत्ते, फल व फूल का आच्छादन कर पीपल के फल का अर्क निकालें। यह अर्क योनि-दोषों का नाश करता है।

कमल बीज अर्क

नूतनकं मृदुबीजं स्थलपद्मिनिपत्रकं ।
उद्धृत्य सम्यगर्कं चमण्डलमेकं समाश्नीयात् ।।31।।

स्थल पद्मिनी के नए व कोमल बीजों को एकत्र कर उनका अर्क निकालें। इस अर्क का निरंतर एक मंडल (15 दिन) तक सेवन करें।

ऋतुदिनतो या ललना पिबति कुचस्तम्भनं कुर्यात् ।
गर्भर्तुभीतिरहिता रमयति पुनः कलप्रसूनाऽपि ।।32।।

यदि यह अर्क रजस्वला होने के दिन से पिया जाए तो वक्षस्थल पुष्ट होता है। अर्क के प्रभाव से रमण करने पर भी नारी गर्भधारण से बची रहेगी।

पीड़ारहित प्रसव अर्क

वल्यश्वक्षोभवे तिंदो पिहितः कुमुदैः स च ।
उपोदकी तदर्कस्य पानात्सूते विवेदनम् ।।33।।

तिंदुकी वृक्ष के अर्क से शारीरिक बल और नेत्र-ज्योति का विकास होता है। कमल के फूलों का पिधान देकर इसका अर्क निकालें। इसके सेवन से प्रसूता को पीड़ा नहीं होती।

दूधिया वृक्ष अर्क

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ पारिशप्लक्षपादपाः ।
पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषामर्को व्रणप्रणुत् ।।34।।

बड़, गूलर, पीपल, कदंब और प्लक्ष के वृक्ष दुग्धवान होते हैं। इनके अर्क से व्रणों और घावों को ठीक किया जाता है।

मन्दोष्णः स्नानतो लेपाद्विसर्गामयनाशनः ।
शोथघ्नस्तस्य सेकेन भग्नसन्धानको भवेत् ।।35।।

यदि इस अर्क से स्नान किया जाए तो मंदाग्नि उद्दीप्त होती है। इसके लेप से व्रणों, घावों और विषाणुजन्य रोगों का नाश होता है। कटे अंग व घाव भर जाते हैं।

पुष्प अर्क

सेवंती शतपत्रं च वासन्तीं गुलदावदीम् ।
चंबेलीं यूथिकां चम्पां बकुलं च कदम्बकम् ।।36।।
छादयेल्केतकीपत्रर्ग्राऽर्को गुरुमार्गतः ।
पुष्पार्क इति विख्यातो मरिचैः सहितं पिबेत् ।।37।।

सेवंती, कमलिनी, माधवी, गुलदाऊदी, चमेली, जूही, चंपा, अशोक और कदंब आदि के फूलों को एकत्र करें। फिर केतकी के पत्तों से ढंककर विधिपूर्वक अर्क निकालें। यह पुष्पार्क कहलाता है। इसका सेवन कालीमिर्च के साथ करें।

पुष्पार्क गुण

मण्डलेऽर्कप्रयोगेन क्लीबोऽपि पुरुषायते ।
वर्षाधिकं तु यक्ष्माणं हन्याच्छ्रेष्ठो मृगांकतः ।।38।।

पुष्पार्क का सेवन 15 दिन तक करने से नपुंसक भी पुरुषार्थ प्राप्त कर लेता है। पुष्पार्क का सेवन एक वर्ष तक करने से क्षय रोग से भी बचा जा सकता है। यह मृगांक रस के गुण से भी अधिक श्रेष्ठ है।

विष अर्क

वत्सनाभश्च हारिद्रः सौतिकश्च प्रदीपनः ।
सौराष्ट्रिकः शंखकश्च कालकूट हलाहलाः ।।39।।
ब्रह्मपुत्रस्त्वमी ख्याता विषभेदास्तदैकतः ।
लेपेनगण्डमालाद्या वातरोगाः प्रयान्ति हि ।।40।।

वत्सनाभ, हारिद्र, सौतिक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, शंखक, कालकूट, हलाहल तथा ब्रह्मपुत्र आदि कुल नौ विषों के प्रसिद्ध भेद माने गए हैं। इनके अर्क के लेपन से गंडमाला व वात रोगों से मुक्ति पाई जा सकती है।

चावलों के प्रकार

रक्तशालिः सकलमः पाण्डुकः शकुनाहतः ।
सुगंधकः कर्दमको महाशालिरदूषकः ।।41।।
पुष्पाण्डकः पुण्डरीकस्तथा माहिषमस्तकः ।
दीर्घशूकः कांचनको हायनो लोध्रपुष्पकः ।।42।।
इत्याद्याः शालयः सन्तिबहवोः बहुदेशजाः ।
तासापिष्टं यथालाभं क्षिपेदष्टगुणे जले ।।43।।

रक्तशालि, सकलम, पांडुक, शकुनाहत, सुगंधक, कर्दमक, महाशालि, अदूषक, पुष्पांडक, पुंडरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, कांचनक, हायन तथा लोधपुष्पक इत्यादि अनेक प्रकार के चावल विभिन्न देशों में उपजाए जाते हैं। इनकी पीठियों में इनकी मात्रा से आठ गुना अधिक जल डाल दें।

चावल अर्क

यावज्जीवमुत्पत्तिं जीवानां विलयस्तथा ।
ततो दत्वार्कऽयंत्रे तन्मद्यं निष्कासयेत्सुधीः ।।44।।

जब इनमें जीवों की सृष्टि होकर वे मरने लगें तो सुधिजन यंत्र द्वारा विधिपूर्वक इसकी मदिरा निकालें।

मदिरा गुण

स्वाद्वी मृद्वी ग्राहिणी च बलदा स्वरहारिणी ।
नानादुःखहरा स्निग्धा चात्युन्मादत्रिदोषजित् ।।45।।

चावलों की यह मदिरा सुस्वादु और मीठी होती है और अन्न को शरीर से लगाती है। इससे बल विकास होता है, ज्वर का नाश होता है। बाधाएं दूर होती हैं। अति उन्मादकारी है। कफ, वात और पित्त का नाश करती है।

दालों की मदिरा

मुद्गो माषो राजमाषो निष्पावश्च मकुष्टकः ।
चणकाढकिमांगल्या तृणकण्डः कलायकः ।।46।।
द्विदलीकृत्य विदुषा ततश्चूर्णीकृतः पुनः ।
पूर्ववत्साधयेन्मद्यं तुषधान्य समुद्भवम् ।।47।।

मूंग, उड़द, काली उड़द, मटर, मोठ, चना, अरहर, मसूर, खेसारी और केराव को मिलाकर सुधिजन दाल तैयार करें। फिर दाल का चूर्ण बनाएं और चूर्ण से विधिपूर्वक मदिरा निकालें। दालों से मदिरा को छिलकों सहित निकालें।

मद्य गुण

मासार्द्धात्कुरुते दोषं नियमात्सगुणं च तत् ।
भूमिस्थमयनादूर्ध्वं तनुने गुणसंततिम् ।।48।।

यह मदिरा पंद्रह दिन तक उग्र प्रतिक्रिया करती है और बाद के पंद्रह दिन तक इसका सेवन गुणकारी होता है। छह महीने तक पृथ्वी में गड़ी रहने वाली मदिरा अधिक गुणकारी होती है।

विण्मूत्ररोधमाध्मानं त्रिदोषोन्मत्ततां रुजम् ।
शिरोजठरजंघासु व्रणानपि विनाशयेत् ।।49।।

यह मदिरा मलमूत्र रोधक है, अफरा व त्रिदोष के उन्माद का नाश करती है। उदर और जांघ के घावों-व्रणों का निवारण करती है।

ईषन्मदकरं स्निग्धं हरेत्पूर्वोदितान् गदान् ।
संवासयेत्पंचबाणमुद्दीपयति चानलम् ।।50।।

इस मदिरा की प्रकृति स्निग्ध है, यह मादक होती है व उपरोक्त रोगों का निदान होता है। यह कामेच्छा जाग्रत करती है व जठराग्नि में वृद्धि करती है।

तेल एवं धान्यों के रस

तिलासती च तोरी च त्रिविधश्चापि सर्वपः ।
द्विधः राजीखसं चैव बीज कौसुंभसंभवम् ।।51।।

एतानि तैलधान्यानि शटितानि च पूर्ववत् ।
ततो निष्कासयेदर्कं गंधपाषाणवासितम् ।।52।।
मुहुर्विलेपतो रोगान्नरकुञ्जरवाजिनाम् ।
हरत्येव न सन्देहः स्वर्जिक्षारसमन्वितम् ।।53।।
सर्वेषु कर्णरोगेषु बाधिर्ये कर्णपूरणम् ।
अनेन वर्षयेच्छंखनयनाञ्जनमाचरेत् ।।54।।
कण्डूपुष्पं जलस्रावं पक्षरोगं व्यपोहति ।
अभ्यङ्गाद्दद्रुनाशः स्याद्वल्यं त्वच्यं च केशकृत् ।।55।।

अब तेल धान्यादि के रस के विषय में बताते हैं। अलसी, तिल, तोरी—इन तीनों प्रकार की सरसों, दोनों प्रकार की राई, खसखस एवं कुसुम के बीज सभी तेलयुक्त हैं। इन्हें पहले कहे अनुसार मिलाकर इमाम-दस्ता (खल-मूसल) में कूटकर निकाल लें।

इस रस को लगाने से मनुष्य, हाथी एवं घोड़ों के रोग दूर होते हैं। इस रस में सज्जीखार मिलाने से बहरापन, कान बन्द हो जाना आदि कान सम्बंधी विकार दूर होते हैं। इस रस में शंख को घिसकर आंखों में सुरमे के रूप में लगाने से आंखों में पानी बहना, फूला आदि आंखों के रोग, पलकों के रोग एवं भौंहों के विकार दूर होते हैं। शरीर में उबटन के रूप में लगाने से दाद नष्ट होता है। यह अर्क त्वचा को कान्तिमय, शरीर को बलदायक तथा बालों को बढ़ाने वाला है।

शहद और गन्ना

माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौतिकं छात्रमित्यपि ।
दाढ्र्य मौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः ।।56।।
पौंड्रको भीरुकश्चापि वंशकः शतपोरकः ।
कान्तारस्तापसेक्षुश्च कांडेक्षुः सूचिपत्रकः ।।57।।
नेपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकृत् ।
एता द्वादश संख्याता इक्षुणां जातयः स्मृताः ।।58।।
फाणितं चैव मत्स्यण्डी गुडखण्डकमेव च ।
सिता सितोपला च ते षड्भेदा इक्षुजा मताः ।।59।।

अब शहद और गन्ना का वर्णन करते हैं। शहद (मधु) की आठ जातियां—माक्षिक, भ्रामर, क्षौद्र, पौतिक, छात्र, औद्दालक, दाढर्य तथा दाल हैं। गन्ने की बारह जातियां—पौण्ड्रक, भीरूक, वंशक, शतपोरक, कान्तार, तापसेक्ष, कांडेक्षु, सूचिपत्रक, दीर्घपत्र, नेपाल, नीलपोर एवं कोशकृत हैं। गन्ने से उत्पन्न होने वाले पदार्थ छह प्रकार के हैं—फाणित, मत्यंडी, गुड़, खण्डक, सिता तथा सितोपला।

अम्लवर्ग

आम्र आम्रातको धात्री लकुचं च कपित्थकम् ।
नारङ्गं द्विविधा जम्बू करमर्दं पियारकम् ।।60।।
बीजपूरं च जम्बीरं निम्ब्वम्लीकाम्लवेतसम् ।
दाडिमं पर्वतद्राक्षा द्विधा बदरतूदकम् ।।61।।
वृक्षाम्लं हरमंथं च चांगेरी त्वम्लवर्गकः ।

शुण्ठी कणा कणामूलं यवानी मरिचानि च ।।62।।
तुल्यान्येतानि सर्वाणिं एभ्यो द्विघ्नोऽम्लजो रसः ।
प्रोक्तान्तर्गत दिक्कान्नं स्वादुसंख्या नखोन्मिता ।।63।।
सर्वेभ्यो द्विगुणं स्वादं स्थापयेन्मासमात्रकम् ।
कुर्यादष्टप्रहरकं प्रत्यहं च ततः पुनः ।।64।।
ततो निष्कासयैदेष सुरेयं राजवारुणी ।
मासं भूमौ निखातव्या तत ऊर्ध्वं च भक्षयेत् ।।65।।
मया महेश्वरमुखाच्छ्रुत्वा तस्यै समर्पिताम् ।
तेनदत्ता भैरवैभ्यो लोलजिह्वाः पिबन्ति ते ।।66।।
इयं शीता लघु स्वाद्वी स्निग्धा ग्राही विलेखनी ।
चक्षुष्या दीपनी स्वर्या व्रणशोधनरोपणी ।।67।।
सौकुमार्यकरा सूक्ष्मा परं स्रोतोविशोधनी ।
कषाया च रसाह्लादा प्रसादजनका परा ।।68।।
वर्ण्या मेधाकरी वृष्या तथाऽरोचकतां हरेत् ।
कुष्ठार्शः कासपित्तास्रकफमेहक्लमकृमीन् ।।69।।
मेद तृष्णा वमिश्वासहिक्कातीसारविड्ग्रहान् ।
दाहक्षतक्षयायैवं योगवाह्याऽम्लवातला ।।70।।

अब अम्लों का वर्णन करते हैं—अम्लर्का की वस्तुओं के अन्तर्गत आम, आम्रातक, आंवला, बड़हल (लक्रुच), नारंगी, कैथ, दोनों जामुन, करौंदा, पियारा, बिजौर, जंबीरी नीबू, अम्लबेत, इमली, अनार, मुनक्का, दोनों प्रकार के बेर, शहतूत, चूक, हरमंथ एवं चांगेरी आते हैं।

राजवारुणी का अम्लवर्ग द्वारा निर्माण विधि इस प्रकार है—सबसे पहले सोंठ, पीपल, पीपलामूल, अजवायन एवं कालीमिर्च को बराबर-बराबर मात्रा में लें तथा इनके कुल भाग से दुगुना अम्लर्का के वस्तुओं का रस लें। फिर उसमें शहद, बारहों इक्षुरस एवं इन सबसे दुगुना स्वादु पदार्थ मिलाकर मिश्रण को एक महीने तक रखा रहने दें। एक महीने बाद उसका अर्क निकाल लें। इसी रस को 'राजवारुणी' कहते हैं। एक महीने तक राजवारुणी रस को जमीन के अंदर गड्ढे में गाड़ने के बाद बाहर निकालकर उसका सेवन करें। यह विधि मैंने भगवान श्रीशंकर के मुखारविन्द से सुनी है। मैंने यह रस भैरव को भी प्रदान किया था जिसे वे जीभ से पीते रहते हैं।

राजवारुणी रस शीतल, सुस्वादु, स्निग्ध, विलेखनी, ग्राही, आंखों के लिए हितकारी, दीपन, स्वर्या, व्रणों को शुद्ध करके भरने वाला, सुकुमारता प्रदान करने वाला, सूक्ष्मा, रोमछिद्रों को साफ करने वाला, रसदायक, कसैला, प्रसन्नतादायक, रंग निखारने वाला, बुद्धिवर्द्धक, शरीर का पोषक, अरुचि हटाने वाला, कुष्ठ, अर्श, कास, पित्त, रक्त, कफ, प्रमेह, थकान, कृमिरोग, मेदरोग, तृष्णा, उल्टी, श्वास, हिचकी, अजीर्ण, दाह, क्षय (टी. बी.) आदि का नाशक एवं योगवाही, खट्टा तथा वातकारी है।

विभिन्न प्रकार के क्षुद्र वारुणी

कंगुश्चीणा कोद्रवश्च श्यामाको वनकोद्रवः ।
शण बीजं वंशबीज गवेधुश्च प्रसाधिकाः ।।71।।

यवन्त्येतानि चोक्तानि तुषधान्यानि वेधशः ।
सर्वे संकुट्य यत्नेन् वितुषीकृत्य यत्नतः ।।72।।
तक्रे वा क्वाचिदम्ले वा आकीटं तद्विनिःक्षिपेत् ।
ततो निष्कासयेन्मद्यं भवेत्सा क्षुद्रवारुणी ।।73।।
मण्डलार्धं तु भोक्तव्या बहुक्लेशकरैर्नरैः ।
क्षुधातृषा च चिन्ता च पर्वतारोहणादिकम् ।।74।।
एतत्संसेवितो नास्ति महाभारवहोऽपि वा ।
सूता समुपवेष्टा चेज्जयेत् प्रसववेदनाम् ।।75।।
हरिणैणकुरंगाश्च वृषतत्यः कुशंबरः ।
राजीवोऽपि च मुंडी चेत्याद्या जांगल संज्ञिका ।।76।।
एषां मांसं तु कणशः कृत्वा पूर्वद्रवे क्षिपेत् ।
संस्थाप्य मंडलं पश्चादर्कं निष्कासयेत्ततः ।।77।।
एवं सर्वत्र मांसस्य वारुणीकरणक्रिया ।
पित्तश्लेष्महरी कश्चिद्वातला बलवर्द्धिनी ।।78।।
गोधाशश भुजङ्गाश्च वृश्चिकाघा बिलेशयाः ।
एतत्सुरा वातहरा बृंहणा बद्धमूत्रविट् ।।79।।
सिंह व्याघ्र वृका ऋक्षतरक्षुद्वीपिनस्तथा ।
बभ्रुजम्बूकमार्जारा इत्याद्याः स्यूर्गुहाशयाः ।।80।।
स्निग्धो बल्योहितो नित्यं नेत्रगुह्यविकारिणाम् ।
वानरा वृक्षमार्जारा वृक्षमर्कटकादयः ।।81।।
एते पर्णमृगाश्चार्को वृष्यो नेत्र्यश्य शोषिणाम् ।
श्वासार्शः कासशमनोत्सृष्टमत्रपुरीषकः ।।82।।

अब 'क्षुद्रवारुणी' के सम्बंध में जानकारी देते हैं। तुषधान्य के अन्तर्गत कांगुनी, चीना, कोदों, समा, वन कोदों, सन के बीज, गडहेडुआं तथा प्रसाधिका आते हैं। तुषधान्य को भूसी-रहित करके कूट कर मट्ठा अथवा किसी अम्ल में डालकर तब तक के लिए रख लें, जब तक उसमें कीड़े न पड़ जाएं। उसके बाद जो मद्य बनेगा, वही 'क्षुद्रवारुणी' कहा जाता है।

इस मद्य का सेवन करने से पर्वतारोहण करने वाले तथा भूख, प्यास एवं चिंता की स्थिति में कठोर श्रम करने वाले लोगों को किसी दुःख का अनुभव नहीं होता। उन्हें अधिक बोझ उठाकर चलने में भी परेशानी नहीं होती। इसके सेवन से प्रसूता नारी को प्रसव वेदना में कमी महसूस होती है।

अब जंगली पशुओं के मांस के रस (मदिरा) का वर्णन सुनें। हरिण, तामड़ा, कुरंग, काली चित्तियों वाला मृग, बारहसिंगा, लाल रंग वाला एवं सींग रहित मृग 'जांगल मंध्यक' है। इनके मांस को महीन पीसकर मट्ठा या किसी अम्ल में आठ दिनों के लिए छोड़ दें। इसके पश्चात् इसका रस निकाल लें। यह क्रिया मांस का वारुणीकरण कहलाती है। यह रस पित्त-कफ नाशक, सामान्य वात वर्द्धक एवं बलदायक होता है।

बिलों में रहने वाले जीव यथा—गोह, खरगोश, सर्प, बिच्छू आदि के मांस की मदिरा

वातनाशक, बलवर्द्धक एवं मल-मूत्र रोकने वाली होती है। गुफावासी जानवरों जैसे—सिंह, बाघ, रीछ, भेड़िया, उल्लू, चीता, नेवला, सियार, बिल्ली आदि पशुओं के मांस बलकारक, हितकारक एवं आंखों तथा गुप्त रोगों में लाभदायक होते हैं अर्थात् इन पशुओं के मांस से निर्मित रस और मदिरा से उपरोक्त विकारों में लाभ होता है।

पर्णमृगों—बन्दर, बनविलाव तथा लंगूर के अर्क बलवर्द्धक, आंखों के लिए लाभदायक, अंगशोथ के लिए हितकारक, श्वास, अर्श एवं कास आदि का शमन करने वाला और मल-मूत्र निकालने वाला होता है।

वर्तिका लावागिरिका कपिञ्जलकतित्तिराः ।
कुलिङ्गकुलटाद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ।।83।।
बल्योवृष्यो त्रिदोषघ्न एतदर्कस्तु पश्यलः ।
हारीतो धवलः पांडुश्चित्रपुच्छो बृहच्छुकः ।।84।।
पारावतः खञ्जरीटः पिकाघाः प्रतुदाः स्मृताः ।
कफपित्तहरो ग्राही बद्धविट्मूत्रको भवेत् ।।85।।
काकोगृद्ध्र उलूकश्च चित्तलः शशघातकाः ।
चाषो भाषश्च कुकुर इत्याद्याः प्रसराः स्मृता ।।86।।
एतत्सुरा भस्मकरी तस्मान्मेदस्विनो हिता ।
कालीयच्छागगोमेषा हयाद्या ग्राम्यसंज्ञाकाः ।।87।।
दीपनोवातहृत्पैत्तो बृंहणो बलवर्द्धनः ।
लुलायगंडवाराह चमरीवारणादयः ।।88।।
कूलेचरा एतदर्कोवृष्यः श्लेष्म विवर्धनः ।
हंस सारसकाचाक्षचक्र क्रौञ्चशरारिकाः ।।89।।
नंदी मुख एकादंबा बलकाद्याः प्लवाः स्मृताः ।
एतन्मद्यं शुक्रकरं बल्यं स्निग्धं त्रिदोषनुत् ।।90।।

'विष्किर संध्यक' पक्षी के अर्न्तगत बटेर, बत्तख, सफेद तथा पीला तीतर, कुलिङ्ग एवं कुलटा आते हैं। इनके मांस का रस बलदायक, पोषक, त्रिदोष-नाशक तथा पथ्य होता है। 'प्रतुद संध्यक' पक्षी के अन्तर्गत हरा, सफेद, पीला, चितकबरी पूंछ वाला काकातुआ तोता, कबूतर, खंजन एवं कोयल आते हैं। इनके मांस का रस (मदिरा) कफ-पित्त नाशक, ग्राह्यी एवं मल-मूत्र रोकने वाला होता है।

'प्रसर संध्यक' पक्षियों के अन्तर्गत कौआ, गिद्ध, उल्लू, चील, बाज, बड़ा गिद्ध तथा कुकुर आते हैं। इनका अर्क भोजन को जल्द पचाने वाला तथा मोटापा रोग के लिए लाभदायक है। 'ग्राम्य संध्यक' पशु में कालीय, बकरा, बैल, मेढ़ा एवं घोड़ा आते हैं। इनके मांस का रस अग्निदीपक, वातनाशक, पित्तवर्द्धक, बृंहण एवं बलकारक होता है। जल के समीप रहने वाले पशुओं यथा—भैंसा, सुअर, गाय, हाथी आदि के मांस का रस बलदायक एवं कफवर्द्धक होता है। 'प्लव संध्यक' पक्षियों में हंस, सारस, काचाक्ष, चकवा, ढ़ेंक, वन तीतर, नन्दीमुख, बत्तख एवं बगुला आते हैं। इनके मांस की मदिरा वीर्यवर्द्धक, बलकारक, स्निग्ध एवं त्रिदोष (कफ, पित्त, वायु) नाशक है।

शंखशंखनखश्चापि शुक्तिशम्मूककर्कटाः ।
एते कोशस्थिताश्चार्को बृंहणो बलवर्द्धनः ।।91।।
कुम्भीरकूर्मनक्राश्च गोधामकरशंकवः ।
कटिकः शिशुमारश्च इत्याद्याः पादिनः स्मृताः ।।92।।
एभ्यो जाता सुरा वातहंत्री स्निग्धा विशेषतः ।
मत्स्योमीनो विसारश्च झषो वैसारिणोण्डजाः ।।93।।
सकटी पृथुरोमा च रोहितश्च सुदर्शनः ।
एतेमत्स्या एतदर्को रोचको बलवर्द्धनः ।।94।।
नृमत्स्यार्क तु निष्कास्य नानापुष्पैः सुवासितैः ।
यः सेवयेन्मासषटकं बली पलितवर्जितः ।।95।।
मनुष्यमांसजार्कस्तु मासषट्कं तु सेवयेत् ।
न क्रामते शरीरस्य सर्पादीनां विषं क्वचित् ।।96।।

कोषवासियों जीव—शंख, छोटाशंख, सीप, घोंघा तथा कर्कटः का रस बलवर्द्धक तथा बृंहण होता है। 'पादिन जीव' जैसे—कछुआ, घड़ियाल, गोह, मगरमच्छ, सूंस, कटिक तथा शिशुमार आदि के मांस का अर्क वातनाशक एवं स्निग्ध होता है। मछली में मीनू, विसार, झष, वैसारण, अंडज, सकटी, पृथुरोमा, रोहित एवं सुदर्शन आदि के मांस का रस रोचक तथा बलवर्द्धक होता है। सुगंधित पुष्पों के साथ मिलाकर नरमच्छ के मांस के रस का छह महीने तक सेवन से मनुष्य बलवान तथा वृद्धावस्था रहित हो जाता है। मनुष्य के मांस का रस छः महीने तक लेने पर शरीर में सर्प के विष का कोई प्रभाव नहीं होता।

अण्डार्क के गुण

त्वगेला मरिचं चन्द्रो लवंगं जातिपत्रक ।
दत्वाऽण्डानामुपरितो घृतं विंशतिभागिकम ।।97।।
अण्डार्कोऽयं स्वगुणकृद वृष्यो वातघ्न शुक्रलः ।
निम्ब्वाभ्रांकुरसम्भूतो वसंते ग्रीष्मके पुनः ।।98।।
सेवंतीशतपत्रीजो वर्षायां त्रिफलाभवः ।
पारिजातक काश्मीरीजातोऽर्कः शरदि स्मृतः ।।99।।
यवानी गुलदावघोर्हेमंते शिशिरे पुनः ।
यवानीनम्बुजः सेवेत्तस्य रोगभयं कुतः ।।100।।

तज, इलायची, कालीमिर्च, कपूर, लौंग, और जावित्री को महीन पीसकर अण्डों पर लेप करें। उसमें बीसवां भाग घी मिलाकर रस निकाल लें। इस रस के सेवन से शरीर अत्यंत बलकारक हो जाता है। यह रस वातनाशक तथा वीर्यवर्द्धक है। वसंत ऋतु में आम के पत्तों के साथ नीबू का रस, गर्मी के मौसम में सेवती तथा पद्मिनी का रस, वर्षा ऋतु में त्रिफला का रस, शरद ऋतु में पारिजातक (मन्दार) एवं कुम्हेरण का रस, हेमन्त में अजवायन एवं गुलदाउदी का रस तथा शिशिर ऋतु में नीबू और अजवायन का रस पीने से किसी भी रोग का डर नहीं रहता।

।। लंकेश्वर रावण कृतार्कप्रकाशे चतुर्थं शतकं संपूर्णम् ।।

❑❑

अथार्कप्रकाशे
अथ पंचमं शतकं

बुखार का निवारण

ज्वरागमनकाले तु घृतार्कं मरिचैः सह ।
एतद्द्वयं पिवेद्यस्तु ज्वरः संस्तंभितो भवेत् ।।1।।
एकविंशति वाराणि कदल्यर्केण भावितम् ।
चूर्णं तालं मुद्गमितं दिनाच्छीतं ज्वरं हरेत् ।।2।।
मेथी वनाढ्या तुलसी कालामल लवङ्गकैः ।
भूनिम्बेनार्कं उत्पन्नो निर्वायो मौक्तिकाक्षयोः ।।3।।
मारितस्य प्रवालस्य भस्मनो ज्वरनाशनः ।
सुराजीर्ण गुणाजाज्या निहन्ति विषम ज्वरान् ।।4।।
अर्कस्तु दशमूलानां लवङ्गमरिचान्वितः ।
सन्निपातं हरेत्तुर्णमुपलाभः सुशायिनाम् ।।5।।
शृंगवेरं नागवेरं मग्नमैरण्डजेद्रवे ।
पर्पटान्निर्गतार्कस्तु हरेदामातिसारकम् ।।6।।
धातक्याम्रास्थि बिल्वानि लोध्रेन्द्रयवतोयदा ।
पर्यायं महिषं तक्रे तदर्कः पक्वसारहा ।।7।।
वत्सकं त्वग्दाडिमत्वक्क्षाधितो मधुनान्वितः ।
दधिभक्ताशिनोऽर्कोऽयं रक्तातीसारनाशनः ।।8।।
धातकीबदरीपत्र कपित्थरसमाक्षिकम् ।
लोध्रं दधिप्लुतं चार्क प्रवाहीनाशनः परः ।।9।।
तक्रनिर्वापिता मुदगास्तदका धान्यजीरकैः ।
सैन्धवेन समायुक्तो हन्यात्संग्रहणीगदम् ।।10।।

रावण ने कहा—बुखार आने पर घी के अर्क को कालीमिर्च के साथ मिलाकर दिन में दो बार पीने से बुखार रुक जाता है। हरताल के चूर्ण को केले में मिलाकर एक मूंग की मात्रा के बराबर इक्कीस बार देने पर एक दिन में ही शीतज्वर समाप्त हो जाता है। चिरायते के साथ मेथी, वनमेथी, तुलसी, आंवला और लौंग को मिलाकर उनका रस निकाल लें। उस रस में मोती एवं कौड़ी को बुझाएं। उसके बाद उसमें प्रवाल भस्म मिलाकर देने से बुखार दूर हो जाता है। जीरे को पुराने गुड़ के साथ मिलाकर निकाला हुआ रस पुराने बुखार को दूर करता है। सन्निपात को नष्ट करने में दशमूल, लौंग तथा कालीमिर्च का रस लाभदायक है। इस रस के प्रयोग से गहरी नींद आती है।

सोंठ तथा नागवेर एवं एरण्ड के दोनों प्रकार को पानी में पित्तपापड़ा के साथ भिगोकर रस

निकालें। यह रस आमातिसार नाशक है। भैंस के मट्ठे में तथा पानी के साथ धातकी, आमड़ा, बेल, लोध, इन्द्रजौ एवं नागरमोथा को बारी-बारी से भिगोकर रस निकाल लें। यह रस पुराने अतिसार को दूर करता है। कुड़े एवं अनार दोनों के छाल के रस को मधु (शहद) के साथ लेने से तथा दही-भात का पथ्य देने से खूनी अतिसार नष्ट होता है। पतले दस्त में बेर के पत्ते, कैथ का रस, शहद तथा लोध का अर्क दही के साथ मिलाकर देने से लाभ होता है। छाछ (मट्ठा) में भिगोई गई मूंग के रस को धनिया, जीरा एवं सेंधा नमक के साथ मिलाकर देने से संग्रहणी रोग दूर हो जाता है।

बालकों के रोग

एकविंशतिवाराणि गैरिकं चूर्णभावितम् ।
छिक्कन्याकण तद्धूमाद्बालरोगक्षयो भवेत् ।।11।।
पूतीदशाङ्गसिद्धार्थवचाभल्लातदीपकैः ।
सकुष्टेः सघृतैधूपो बालग्रहविनाशनः ।।12।।
ग्रहभूतपिशाचाद्याः पूतना मातृकादयः ।
धूपेनानेन सर्वेऽपि न स्पृशन्ती बालकम् ।।13।।
कंकरः शोण-कश्चैव सकोणकठिनस्तथा ।
एतेषां वो भयं भूयाद्यादि धूपः प्रधूपितः ।।14।।
वेणीवेण्या च संयुक्ताकुकुरा रक्त सारिका ।
प्रभूता स्वरिता रात्रिर्न स्पृशन्ति इमाः शिशुम् ।।15।।
जीवन्ति ते वर्षशतं धूपस्यास्य प्रभावतः ।
इमां विद्यां न पच्छन्ति ते नरा ब्रलघातिनः ।।16।।
शुण्ठी पथ्या दाडिमत्वक सगुडा वारुणी कृता ।
शोषणी सा द्विपलिका प्रोक्तामन्दाग्नि नाशिनी ।।17।।
पञ्चकोलं शिवाजाजी भरिचं चाम्लभावितम् ।
तदर्कोहरति क्षिप्रं दुर्निवारविषूचिकाम् ।।18।।
यवान्यर्को मुस्तयुक्तः कट्वम्लाभ्यांविलोडितः ।
गन्धपाषाणधूपेन वासितोऽजीर्णनाशनः ।।19।।
शुण्ठी कुलिञ्जनं चाम्लभावितं तस्य चार्कतः ।
पटुयुक्तं हरेच्छीघ्रं विषमाग्निं न संशयः ।।20।।

शुद्ध गेरू के चूर्ण को नकछिकनी के रस में इक्कीस बार भिगोकर, सुखाकर उसकी धूनी देने से बालकों के रोग दूर होते हैं। घी के साथ पूती, सफेद सरसों, वच, भिलावां, अजमोद और कूठ को मिलाकर धूप बनाएं। यह धूप बच्चों का ग्रह-विनाशक है। इसको देने से ग्रह, भूत, पिशाच, पूतना तथा मातृका आदि कोई भी बालक को नहीं छू सकता। बच्चों के रोगों के चार भेद—कंकर, शोणक, सकोण तथा कठिन हैं। इस धूप के द्वारा बालकों को इन चारों प्रकार के रोगों से भय नहीं रहता। वेणी, येणी, कुकुरा, रक्तसारिका, प्रभूता, स्वरता और रजनी—ये सभी बच्चों से दूर रहते हैं। यह धूप बच्चों को शतायु बनाता है। जो इस विद्या को गुप्त रखते हैं, उन्हें 'ब्रह्मघाती' कहा जाता है।

गुड़ में सोंठ, हरड़ एवं अनार की छाल मिलाकर अर्क निकालकर उसको दो पल की मात्रा में लेने से मन्दाग्नि दूर हो जाती है। कठिन से कठिन हैजा पंचकोल, हरड़, स्याह जीरा, कालीमिर्च तथा खटाई का अर्क पिलाने से दूर हो जाता है। अजवायन के रस में नागरमोथा मिलाकर खटाई में रस निकाल लें। फिर उसमें गन्धक की धूप देकर पिलाने से अजीर्ण रोग नष्ट हो जाता है। खटाई में सोंठ और कुलंजन मिलाकर रस निकाल लें। इसे सेंधा नमक मिलाकर लेने से विषमाग्नि में निश्चित आराम होता है।

कोष्ठ, पाण्डु एवं कामला

दुग्धं दधि घृतं मूत्रं पलत्नं महिषोद्भवम् ।
भुङ्क्तै तदर्को भुञ्जीत गुर्वन्न भस्मकाग्निहृत् ।।21।।
खुरासानी यवानी च कुबेराक्षो विडङ्गकम् ।
व्योषश्चैषां कृतो ह्यर्कोऽग्निमन्दस्य च जन्तुहृत् ।।22।।
रसेन्द्रेण समायुक्तश्चार्को धत्तूरपत्रज ।
नागवल्ली भवो वाऽपि लिक्षायूका विनाशनः ।।23।।
खट्वायां वा गृहे वापि हरितालार्कलेपनात् ।
मत्कुणाः मक्षिकाः सर्पामशका यांति तत्क्षणात् ।।24।।
तक्रे दत्त्वा पलाशस्य बीजान्यर्कं समादिशेत् ।
तदर्कपानात् कफहृत, कृमीनां नाशनं भवेत् ।।25।।
रुधिरस्थेषु कृमिषु गन्धकार्क पिवेत्तु यः ।
रात्रौ जागरणं क्रुर्याद्रक्तकृमिनिवर्तनम् ।।26।।
लोहचूर्ण वाऽपि लोहं किट्टचूर्ण पृथक् पृथक् ।
फलात्रिकाथ व्योषार्कभाषितं पाण्डुनाशनम् ।।27।।
त्रिफलार्को गुडूच्यर्को समं देयं तुमाक्षिकम् ।
दद्यात्प्रातः कामलाहृद् द्रोणपुष्परसाञ्जनात् ।।28।।
हरीतकीगुडूची च पर्यायं तक्रभाविता ।
तदर्को नाशयत्येव पाण्डुं मृद्भक्षणोद्भवम् ।।29।।
गोमूत्रे भावयेद्धीमान्पर्यायं च शिलाजतुम् ।
निष्कासितस्तदर्कस्तु कुम्भकामालिकापहः ।।30।।

भैंस का दूध, दही, घी, मूत्र तथा मांस के रस (अर्क) का सेवन करने से दाहादि रोग एवं अन्नयुक्त कोष्ठ रोग दूर हो जाते हैं। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, खुरासानी अजवायन तथा बायबिडंग का रस मंदाग्नि सम्बंधी रोगों का नाश करता है। पारे का धतूरे के पत्ते के साथ निकाला गया रस या पारे का नागवेलि के साथ निकाला गया अर्क बालों में लगाने से ढील (जुएं) तथा लीख नष्ट हो जाती हैं। खटमल, मच्छर, मक्खी, सर्प एवं डांस आदि को भगाने के लिए घरों में एवं खटिये (चारपाई) में हरताल के रस का लेपन करना चाहिए। मट्ठे में डालकर पलाश के बीज से निकाला गया रस पीने से कफ तथा पेट के कीड़े (कृमि) का नाश होता है।

त्रिफला एवं त्रिकुटा के साथ लौह चूर्ण, लौह तथा लौहकिट्ट मिलाकर निकाले गए रस के सेवन से पाण्डुरोग दूर होता है। त्रिफला तथा गिलोय के रस में बराबर मात्रा में सोनामाखी

मिलाकर, द्रोणपुष्पी एवं रसांजन के रस के साथ सुबह के समय लेने से कामला रोग दूर होता है। हरड़ एवं गिलोय का समभाग लेकर छाछ में भिगोकर निकाले गए रस से, मिट्टी खाने के कारण उत्पन्न पाण्डु रोग का विनाश होता है। गोमूत्र में शिलाजीत को भिगोकर निकाले गए रस से कुम्भ कामला रोग दूर होता है।

रक्तपित, शोथ और बांझपन

लोहचूर्ण घनार्केण भावयेच्छतवारकम् ।
पिबेत्तु खादिरार्केण हलीमकनिकृन्तनम् ।।31।।
अहरूपकमद्वीका पथ्यार्कश्च सशर्करः ।
वृषार्कोऽयं समधुको रक्तपित्तनिवारणः ।।32।।
लोध्रप्रियंगुमृद्वीकाचन्दनार्को रसान्वितः ।
वासायाः क्षौद्रसंयुक्तो वन्ध्याया रक्तपित्तहृत् ।।33।।
अर्को दाडिमपुष्पोत्थो मृद्वीका सम्भवोऽपि वा ।
पानान्नस्थाद्धरेन्नासरक्तमामास्थिजोऽपि वा ।।34।।
द्राक्षाभयापिप्पलीनामर्कश्च सितया युतः ।
मधुना कण्ठदाहघ्नः पित्तश्लेष्महरः परः ।।35।।
छिन्नोद्भानिम्बपत्र पटोलदल सम्भवः ।
अर्कः क्षौद्रानिवतो हन्यादम्लपित्तं सुदारुणम् ।।36।।
उर्ध्वमूर्ध्वं द्विगुणिता त्वगेला पिप्पली मता ।
सितोपलार्कः सक्षौद्रः सघृतो राजयक्ष्मनुत् ।।37।।
अजस्य हृदयार्कस्तु तन्मातादुग्धसाधितः ।
जीवनीयकषायं तु पिबेच्छोष क्षयप्रणुत् ।।38।।
चन्दनोशीरसेवन्ती शतपत्राब्दसम्भवः ।
अर्को हरेदध्वशोषं दिवासुप्तस्य वेगतः ।।39।।
दुग्धसंस्थापितकटुत्रयादर्कं समाहरेत् ।
ससितं व्रणशोथघ्नं यूषमांसरसाशिनः ।।40।।

लोहे के चूर्ण को नागरमोथा के रस में सौ बार भिंगोकर सुखा लें। इसके बाद उसे खैर के रस के साथ पीने से 'हलीमक' रोग दूर होता है। रक्त पित्त को दूर करने के लिए अड़ूसा, दाख और हरड़ के रस को महुए के साथ पीना चाहिए। शुद्ध पारा के साथ लोध, मालकांगनी और श्वेतचन्दन का रस पीने से या अड़ूसे का रस शहद के साथ लेने से वन्ध्या-स्त्री का रक्तपित्त तथा उसका बांझपन दूर हो जाता है। अनार का फूल, दाख तथा आम की गुठली का रस पीने से नाक का रक्तस्राव बंद हो जाता है। मिश्री एवं शहद के साथ दाख, हरड़ तथा पीपल का रस मिलाकर पीने से कण्ठ में जलन एवं पित्त-श्लेष्मा का रोग दूर हो जाता है।

गिलोय, नीम के पत्ते एवं परवल के पत्ते का रस मधु (शहद) के साथ लेने से कष्टकारक अम्लपित्त दूर हो जाता है। तज, इलायची तथा पीपल को एक : दो : तीन के अनुपात में लेकर रस निकाल लें। इसे शहद के साथ पीने से राजयक्ष्मा (टी. बी.) रोग दूर हो जाता है। बकरे की कलेजी का रस उसी की माता बकरी के दूध में मिलाकर सेवन करने से तथा पूर्वोक्त जीवनीयगण

का काढ़ा पीने से सूखा रोग एवं क्षय (टी. बी.) दूर होता है। रास्ते की थकान तथा दिन में सोने की हरारत को चन्दन, खस, गुलाब और सेवती का अर्क दूर करता है। दूध में त्रिकुटा को भिगो कर निकाले गए रस को गुड़ (शक्कर) के साथ पीने से व्रण तथा शोथ रोग दूर होता है। इस रस को लेने के समय मांस-रस के साथ खिचड़ी खानी चाहिए।

कफ, खांसी तथा क्षय रोग

बलाऽश्वगन्धा कंभारी वटपत्री पुनर्नवा ।
दुग्धनिर्वापितो वाऽर्क उरःक्षतनिवारणः ।।41।।
धूर्तबीजत्रिकुटकयवान्यर्कविभावितम् ।
लवणं शतवारं च कफं हन्यात्सुदारुणम् ।।42।।
कण्टकारीजटार्कस्तु सकृष्णा सर्वकासहा ।
ककुभस्य त्वचाचूर्णं वासार्केण विभावितम् ।।43।।
सितोपलाघृतमधुसंयुक्तः क्षयकासहृत् ।
कण्टकारीयुग द्राक्षावासाकर्चूरनागरै ।।44।।
पिपली खाखसैरर्कः शर्करामधुसंयुतः ।
शुष्ककासहरश्चैषो महादेवेन भाषितः ।।45।।
कूष्माण्डकशिफाकंस्तु कोष्णः श्वासं क्षणाद्धरेत् ।
आर्द्रकार्को माक्षिकेन युक्तः श्वासनिवारणः ।।46।।
स्विन्ना दुग्धे तु या शुण्ठी तदर्कस्तत्क्षणाद्धरेत् ।
गुडद्रवेण वा सिद्धो हन्याद्धिक्कां न संशयः ।।47।।
अर्को वा पञ्चकोलानां शृङ्गवेररसान्वितः ।
गोघृतक्षैद्रसंयुक्तः स्वरभेदविनाशनः ।।48।।
निम्बूरसेन मधुना मरिचैरवधूलितम् ।
कुलिञ्जनार्कं पिवति राक्षसः किन्नरायते ।।49।।
मूलपत्रं यवानी च तिन्तिडीरससंयुतः ।
सटिनो हन्ति गण्डूषादर्कः सर्वमरोचकम् ।।50।।

खिरैटी, असगन्ध, खंभारी, वटपत्री एवं सांठी को दूध में मिलाकर इसका रस निकालें। इस रस को पीने से उराक्षत का दर्द दूर हो जाता है। धतूरे के बीज, त्रिकुटा, सोंठ एवं अजवायन के अर्क में सौ बार तक डुबा-डुबा कर सुखाया हुआ सेंधा नमक का सेवन करने से पुराने कफ की बीमारी दूर हो जाती है। पीपल को कटेली के जड़ के रस के साथ लेने से सभी प्रकार की खांसी में लाभ होता है। अर्जुन के पेड़ की छाल का चूर्ण करके अड़ूसे के रस में भिगोकर उसमें मिश्री, घी तथा मधु मिलाकर पीने से क्षय एवं कास दूर होता है।

शिवजी के कथनानुसार दोनों प्रकार की कटेरी, दाख, अड़ूसा, कचूर, सोंठ, पीपल, खस और खसखस के रस को चीनी तथा शहद मिलाकर पीने से सूखी खांसी दूर होती है। कूष्मांड की जड़ का रस थोड़ा गर्म करके पीने से श्वास रोग क्षणभर में दूर होता है। श्वास रोग में अदरक के रस को शहद के साथ लेने से भी लाभ होता है। सोंठ को दूध में भिगोकर निकाला गया रस या गुड़ के द्रव से तैयार अर्क हिचकी को तत्काल समाप्त कर देता है। पंचकोल के अर्क को अदरक

के अर्क के साथ या गाय के घी के साथ पीने से आवाज का बिगड़ जाना दूर हो जाता है। नीबू, शहद तथा कालीमिर्च को कुलंजन के अर्क के साथ लेने से कर्कश कण्ठ स्वर भी किन्नर के समान मधुर हो जाता है। अजवायन को इमली के रस में मिलाकर कुल्ला करने से अरुचि रोग दूर हो जाता है।

तृषा, वमन एवं मूर्च्छा

अश्वत्थत्वग्भवो वाऽपि कमलाक्षोद्भवस्तथा ।
माक्षिकाषिट्समुत्थो वा दूर्वाजो वा हरेद्वमीन् ।।51।।
मुस्तपर्पटको दीच्यधान्यचन्दनवालकैः ।
एतदर्को हरेदाशु सर्वतृष्णां न संशयः ।।52।।
अमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्पवटरोहकम् ।
अर्कीकृतं मधुयुतं मुखशोषनिवारणम् ।।53।।
मध्वर्को वाथ दुग्धार्को हिसेत्कोपं क्षयोद्भवम् ।
तृष्णां हरेच्च रक्तार्को हतक्षतसमुद्भवाम् ।।54।।
षड्डूषणवचाबिल्व जातोऽर्कस्त्रवाम संभवाम् ।
मदनार्कः समाहन्यातृष्णां गुर्वन्नजां वमेः ।।55।।
दुग्धस्यार्कः सितायुक्तः शतपत्रीसुवासितः ।
अति रुग्णं दुर्बलं च देयं तृष्णानिवृत्तपे ।।56।।
कोलमज्जोषणोशीरकेशरैः पुष्पवासितैः ।
निष्कासितार्कः ससितो मूर्च्छां जयति दुस्तराम् ।।57।।
मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणैः समाः ।
आसामर्कस्य नस्यं स्याच्छीघ्रं संज्ञाप्रबोधकृत् ।।58।।

पीपल की छाल, कमलगट्टा, सोनामाखी या दूर्वा के रस का सेवन करने से सभी तरह के वमन का नाश हो जाता है। सभी प्रकार के तृष्णा रोग को दूर करने में नोगरमोथा, पित्तपापड़ा, हाऊबेर, धनिया, चन्दन तथा नेत्रबाला का रस लाभदायक होता है। शहद के साथ आंवला, कमलगट्टा, कूठ, धान और बरगद की जटा के रस को चाटने से गले का सूखना दूर हो जाता है। शहद का अर्क या दूध का अर्क 'क्षय' के कारण होने वाले विकार को दूर करता है। प्यास बुझाने तथा चोट के कारण घावों का दर्द दूर करने में रक्त का अर्क काम आता है।

आंव के कारण होने वाले प्यास को षड्डूषण वच तथा बेल का रस दूर करता है। मैनफल का रस गरिष्ठ भोजन के कारण होने वाले तृषा तथा वमन को ठीक करता है। कमल के रस से सुवासित मिश्री युक्त दूध पीने से कमजोर व्यक्ति सबल हो जाते हैं। बेर की मींगी, कालीमिर्च, खस की जड़ तथा केसर का रस निकालकर पुष्प से सुवासित करके देने से कठिन से कठिन मूर्च्छा भी टूट जाती है। महुए का सार, सेंधा नमक, वच, कालीमिर्च तथा पीपल—सभी को समान अनुपात में लेकर निकाले गए रस से भी मूर्च्छा दूर होती है।

विष, निद्रा और नशा

निर्विष्यार्को मत्स्यपित्तायुक्तो विषभवं जयेत् ।
मद्यजं यत्पिबेन्मद्यं सुगन्धद्रव्यवासितम् ।।59।।

पिबेद्दुरालभाजार्कं सघृतं चाम्लशान्तये ।
ऊषणार्कोऽगस्तिरसैः कृतो नश्येच्च तन्द्रिकाम् ।।60।।
सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्ठमेव च ।
वत्समूत्रेण जातर्कः स स्यान्निद्रानिवारकः ।।61।।
मद्यं खर्जूरमृद्वीकापरूषकर सैर्युतम् ।
सदाडिमरसैः शीतं सर्वमाद्यात्ययं जयेत् ।।62।।
कूष्माण्डार्को गुडयुतः कोद्रवोत्थमदात्यये ।
दुग्धार्कः सितयायुक्तो धूर्तजे तु मदात्यये ।।63।।
जलार्कः शीतलो हन्ति छर्दिमूर्च्छातिसारजम् ।
ताम्बूलोत्थं च चूर्णार्कः शर्करार्कस्तु पूगजम् ।।64।।
जातीफलोत्थं पश्यार्कोऽम्लजो भंगासमुद्भवम् ।
शीततोयावगाहोत्थं शर्करादधिचार्ककः ।।65।।
अयमेव विभीतोत्थं खाखसोत्थं तदुद्भवः ।
निम्बार्कश्चाहिफेनोत्थं हरेत्यानात्ययं प्रिये ।।66।।
कोलामलकसंयुक्तं धान्याम्लं सर्वदाहनुत् ।
छादयेत्तस्य सर्वाङ्ग तदर्केणैव वाससा ।।67।।
सर्वाङ्गार्धांगकः स्वेदो वृन्ताक्यर्कप्रलेपनात् ।
हस्तपादभवः स्वेदो मर्दनाद्गच्छतोभृशम् ।।68।।
शंखपुष्पीभवो वाऽपि कूष्माण्डफलसंभवः ।
मधुकुष्ठान्वितश्चार्कः सर्वोन्मादविनाशकः ।।69।।
ज्वालामरिचजार्कस्य पानान्नस्याद्विलेपनात् ।
अञ्जनात्प्रशमं यांति भूतोन्मादक्षयाः क्षणात् ।।70।।

निर्विषी के रस में केदार-कुटकी मिलाकर पिलाने से विष का असर समाप्त हो जाता है। सुगन्धित मदिरार्क के सेवन से भी विष का प्रभाव जाता रहता है। धमासे के रस को घी के साथ लेने से आंव दूर होता है। तन्द्रा दूर करने के लिए अगस्तिया के रस में कालीमिर्च मिलाकर पीने से लाभ होता है। गाय के बछड़े के मूत्र में सेंधा नमक, श्वेतमिर्च, सरसों तथा कूठ को मिलाकर निकाले गए रस को पीने से निद्रा रोग दूर हो जाता है। शराब को खजूर, दाख, फालसा तथा अनार के रस में मिलाकर पिलाने से अत्यधिक शराब पीने के कारण होने वाला नशा दूर हो जाता है। कोदों के सेवन के कारण होने वाले नशे को दूर करने के लिए गुड़ के साथ कुम्हड़े का रस पीना चाहिए।

मिश्री मिलाकर दूध पीने से धतूरे का नशा दूर हो जाता है। नेत्रवाला का शीतल रस वमन, मूर्च्छा तथा अतिसार को नष्ट करता है। चूने का रस पान के कारण उत्पन्न होने वाले नशे को तथा शक्कर का अर्क सुपारी के नशे को कम करता है। जायफल के नशे को हरड़ का रस कम करता है। भांग के नशे को खटाई दूर करती है। ठंडे जल में तैरने के कारण उत्पन्न नशे को शक्कर एवं दही का अर्क दूर कर देता है। बहेड़े का नशा शक्कर एवं दही का रस दूर करता है। खसखस के नशे को खसखस का अर्क ही दूर करता है।

हे प्रिये! अफीम का नशा नीबू के रस से दूर होता है। धनिये के रस को बेर एवं आंवला के साथ लेने से सभी तरह के दाह दूर हो जाते हैं। वात रोग के मरीज को सभी अङ्गों में भली-भांति यह रस लगाना चाहिए। छोटी कटेली के रस को शरीर में लगाने से सम्पूर्ण या आधे अंग का पसीना दूर होता है। इसके रस की मालिश से हाथ-पांव का पसीना भी दूर हो जाता है। सभी प्रकार के उन्माद शंखपुष्पी या कूष्माण्डफल के रस को मधु एवं कूठ के साथ पीने से दूर हो जाते हैं। चीता एवं कालीमिर्च का रस पीने, सूंघने, लेप करने तथा आंखों में लगाने से 'भूतोन्माद' तुरन्त दूर हो जाता है।

मिरगी, बहरापन तथा गृध्रसी

केतकस्य फलार्कस्य नस्यात्कर्णवपूरणात् ।
पानादञ्जनतो हन्यादपस्मारं न संशयः ।।71।।
वचात्वक्पिप्पली शुण्ठी हरिद्रायष्टिसैन्धवम् ।
अजमोदाजाजिजोऽर्कः कुमाच्छ्रुति धरं नरम् ।।72।।
बाहुशोषे बलामूलकृतार्कः सैन्धवान्वितः ।
आध्माने क्षौद्रखण्डाघस्त्रिवृतापिप्पलीभवः ।।73।।
अतिस्विन्मं तु गोमूत्रे बीजमेरण्डजं ततः ।
कृतार्कः फलमात्रस्तु पेयो गृध्रसिनाशनः ।।74।।
गुडूचीत्रिफलाम्भोमिर्भावितं गुग्गुलं बहु ।
क्षीरणैरण्डतैलेन तदर्कः क्रोष्टुशीर्षहा ।।75।।
शेफाल्येरण्डसेहुण्डधत्तूरार्काश्वमारकैः ।
वक्रीकृत शिवामांसविषैरर्क समीरहा ।।76।।
गुडूच्यर्कः शुण्ठियुक्तोवातरक्तहरः परः ।
वत्सादन्युद्भवोऽर्को वा पीतो गुग्गुलसंयुतः ।।77।।
त्रिफलाग्रन्थिकव्योणभवमर्कं समाक्षिकम् ।
उरूस्तम्भविनाशाय समूत्रं वां पुरार्ककम् ।।78।।
शटी शुण्ठी शिवा सोग्रा देवाह्वाऽतिविषास्मृता ।
एषामर्कं पिबेदामवाते रूक्षे च भक्षयेत् ।।79।।
अर्कस्तु शतपत्र्या च सेवन्त्या द्राक्षजोऽपि वा ।
चन्दनोशीरजो वापि हन्यात्पित्त भवान् गदान् ।।80।।

केतकी के फल का रस सूंघने, कान में डालने, पीने तथा सुरमे के समान आंखों में लगाने से मिरगी रोग दूर होता है। बहरापन को दूर करने में वच, तज, पीपल, सोंठ, हल्दी, मुलहठी, सेंधा नमक, अजमोद तथा कालाजीरा का रस लाभदायक है। खिरैटी की जड़ के रस को सेंधा नमक मिलाकर लेने से बाहुशोष रोग दूर होता है। अफरा रोग में शहद एवं शक्कर के साथ निशोथ एवं पीपल का रस लेने से लाभ होता है। गाय के मूत्र में अंडी (एरण्ड) के बीज भिगोकर निकाले गए रस का सेवन प्रतिदिन एक पल की मात्रा में करने से गृध्रसी रोग दूर हो जाता है। गिलोय, त्रिफला तथा मोथा को दूध एवं अंडी के तेल में भिगोकर निकाले गए रस से वात के कारण होने वाले रक्त के गांठ की सूजन दूर हो जाती है।

शेफाली, अंडी, थूहर एवं धतूरे के रस में कटी हरड़ की मींगी को विषों के साथ लेने से वात रोग समाप्त हो जाता है। गिलोय के रस को गुग्गुल के साथ लेने से वातरक्त नष्ट होता है। ऊरूस्तम्भ नामक रोग दूर करने के लिए त्रिफला, पिप्पलामूल तथा त्रिकुटा के रस को मधु में मिलाकर पीने से या गुग्गुल के रस को गाय के मूत्र के साथ लेने से लाभ होता है। आमवात तथा खुश्की में कचूर, सोंठ, हरड़, वच, देवदारु तथा अतीस के रस से लाभ होता है। कमलिनी, गुलाब, दाख अथवा चन्दन या खस का अर्क पीने से पित्त रोग दूर होता है।

खुजली, मधुमेह एवं उदर रोग

वचार्को वमनं हंति त्रिवृदर्को विरेचनम् ।
तुम्बुरार्कः पाचनेन कफरोगान्न संशयः ।।81।।
अश्वविष्ठाभवश्चार्को भृष्टहिंगुसमन्वितः ।
तत्कालं तु हरेच्छूलं साध्यासाध्यं न संशयः ।।82।।
त्रिवृदेरण्ड दंतीनामकणव विरेचनम् ।
निम्बार्कः कटुतुम्बपर्क पंक्तिशूलंहरास्त्रयः ।।83।।
सव्योषं पिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम् ।
एतदर्कं गुप्तगुडमुदावर्त विनाशनम् ।।84।।
त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुः पञ्चभागिकाः ।
गुडयुक्तश्चैतदर्को हन्त्याध्मानं न संशयः ।।85।।
हरीतकी वचाशस्त्रा पिप्पलीनागरोद्भवः ।
शटीपुष्करमूलोत्थश्चार्को हृद्रोगनाशनः ।।86।।
कुमारिकार्कः सरसः सर्वगुल्मविनाशनः ।
दुग्धशुक्ति भवार्कं वा भक्षयेद्वा गुडान्वितम् ।।87।।
पलाशवज्र शिखरीचिञ्चार्कतिलनालजाः ।
यवजः सर्जिकाचेति क्षारार्को रक्तगुल्मनुत् ।।88।।
समुद्रशुक्तिजार्को वा पिप्पल्यर्कः सदुग्धकः ।
अर्कार्को वा सलवणः प्लीहरोगविनाशनः ।।89।।
कृष्णाविन्द समुद्भूतोह्यर्कः क्षारान्वितोऽपि वा ।
पूतीकरञ्जजोऽर्को वा यकृच्छूल विनाशनः ।।90।।

वच का रस उल्टी दूर करता है, निशोथ का रस दस्तों में आराम देता है तथा तुम्बरू का रस पाचक एवं कफ रोगों को समाप्त करने वाला है—इसमें कोई संशय नहीं है। भुनी हुई हींग के साथ घोड़े की लीद का अर्क लेने से तुरंत ही कठिन से कठिन शूल भी नष्ट हो जाता है। निशोथ, अंडी तथा वज्रदन्ती का रस दस्तावर होता है। नीबू और कड़वी तुम्बी का अर्क तीनों प्रकार के पंक्तिशूलों को समाप्त करता है। गुड़ के साथ त्रिकुटा, पिप्पलामूल, निशोथ, वज्रदन्तीं एवं चित्रक का रस पीने से उदावर्त दूर होता है।

दो भाग निशोथ, चार भाग पीपल तथा पांच भाग हरड़ के अर्क को गुड़ के साथ पीने से अफरा दूर होता है। हरड़, वच, पीपल एवं सोंठ—सभी को रस तथा सांठी एवं पोहकरमूल का रस हृदय की बीमारी को दूर भगाता है। सभी तरह का गुल्मरोग ग्वारपाठे के पतले अर्क के सेवन

से दूर होता है। गुड़ के साथ दुधिया एवं सीप का रस लेने से वायुगोला रोग दूर हो जाता है। ढाक, थूहर, ओंगा, इमली, तिलनाल, जवाखार एवं सज्जी—सभी का नमकीन अर्क रक्तगुल्म रोग का विनाश करता है। समुद्री सीप तथा पीपल के रस को दूध के साथ अथवा आक के रस को नमक के साथ लेने से प्लीहा के रोग समाप्त होते हैं। पीपल तथा नागरमोथा के रस या आक के क्षार के साथ पूती करंज का रस लेने से यकृत (लीवर) रोग दूर हो जाता है।

पुनर्नवा सातला च हरिद्रा च कुमारिका ।
कृष्णाविन्द समुद्भूतो ह्यर्कः क्षारान्वितोऽपि वा ।।91।।
आरग्वधो दर्भकासपथ्याधात्री त्रिकण्टकाः ।
यवासगिरि भेदार्कः सक्षौद्रौ मूत्रकृच्छ्रहा ।।92।।
कुशकाश बलामूलनलेक्ष्वर्कः सितायुतः ।
धान्यागोक्षुरजोऽर्को वा ससितो मूत्रघातहा ।।93।।
कूष्माण्डार्को यवक्षारो हिंगुयुक् चाश्मरी प्रणुत् ।
शरपुंखाक्षार मूत्रभवोऽर्कः शर्करां हरेत् ।।94।।
गुडूच्यर्कः सितायुक्तो गोक्षुरार्कोऽथवा हरेत ।
स्तम्भिन्यर्कोऽथवा मेहं मण्डलाद् दुग्धसेविनः ।।95।।
पिप्पल्यका मधुयुतो महामेदविनाशनः ।
बिल्वपत्र भषोऽर्कश्च देहदौर्गन्ध्यनाशनः ।।96।।
हृयगंधा सगोक्षूरा सत्वचा वटकाण्डकैः ।
निष्कासितो वा तन्मांसैरर्कः स्थौल्यकरः परः ।।97।।
मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारुनिशाऽमृता ।
निंब आभिः कतार्कस्तु पानात्कुष्ठं विनाशयेत् ।।98।।
सर्षपा रजनी कुष्ठं मूलबीजं प्रियंगवः ।
काश्मीरी चैतदर्कस्तु सिध्मकुष्ठं विनाशयेत् ।।99।।
मञ्जिष्ठा त्रिफला लाक्षालांगली रात्रि गंधकः ।
समैस्तिलैश्च गोधूमैर्हरेत्पामां महद्रुजम् ।।100।।
कुष्ठं कृमिजदद्रघ्न निशा सैन्धवसर्षयाः ।
आम्रास्थिश्चैतदर्को वा लेपाद्दद्रुं विनाशयेत ।।101।।

पुनर्नवा, सातला, हल्दी, ग्वारपाठा, पीपल तथा नागरमोथा के अर्क को आक के क्षार के साथ पीने से शूल रोग दूर होता है। अमलतास, दाभ, कास, बरगद, आंवला, ज्वासा, गोखरू और पाषाण भेद का अर्क शहद के साथ पीने से मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है। कुश, कांस, खिरैटी की जड़, सोंठ तथा ईख—इन सबके अर्क को मिश्री के साथ अथवा धनिया एवं गोखरू के अर्क को मिश्री डालका पीने से मूत्राघात रोग ठीक हो जाता है। कुम्हड़े का अर्क, यवक्षार तथा हींग मिलाकर पीने से पथरी रोग दूर होता है। शरफोंका का क्षार और गोमूत्र में शक्कर मिलाकर पीने से भी पथरी रोग दूर हो जाता है। मिश्री मिलाकर गिलोय का रस या गोखरू अथवा स्तंभिनी का रस पीने से मधुमेह रोग दूर होता है। इस दवा के सेवन के साथ-साथ पन्द्रह दिनों तक दूध लेना चाहिए। पीपल के रस को शहद के साथ लेने से मोटापा दूर होता है। बेल के पत्ते का रस शरीर की दुर्गन्ध को दूर करता है।

असगन्ध, गोखरू, तज तथा बरगद की जटा—सबका रस निकालकर पीने से शरीर अत्यधिक मोटा हो जाता है। कुष्ठ रोग के निवारण के लिए मंजीठ, कुटकी, वच, देवदारू, हल्दी, गिलोय एवं नीम का रस पीना चाहिए। सिध्म नामक कुष्ठ रोग को सरसों, दोनों तरह की हल्दी, कूठ, मूली के बीज, कांगनी तथा कुम्हेरन का अर्क दूर करता है। मंजीठ, त्रिफला, लाख, कटियारी, हल्दी व इनके बराबर भाग तिल और गेहूं मिलाकर निकाले गए रस के सेवन से खुजली (पामा रोग) दूर होती है। कूठ, लाख, पवांर, हल्दी, सेंधा नमक, सरसों तथा आम की गुठली के रस को लगाने से दाद की बीमारी खत्म हो जाती है।

।। लंकेश्वर रावणकृतार्कप्रकाशे पंचमं शतकं संपूर्णम् ।।

❑❑

अथार्कप्रकाशे

षष्ठमं शतकम्

फोड़े, गांठ एवं सूजन

रावण उवाच—

श्वेतापराजितामूलजातोऽर्कः सर्पिषा सह ।
गलगण्डं हरेदेव मंडलात्पथ्य भोजने ।।1।।
काञ्चनारत्वचार्कस्तु शुण्ठीचूर्णेन संयुतः ।
माक्षिकाढ्यो गंडमालां बहुकालोद्भवामपि ।।2।।
स्वर्जिकामूलकक्षारजातः शंखस्य चूर्णयुक् ।
कृतस्तेन् प्रलेपश्चेद् ग्रन्थिं हन्ति न संशयः ।।3।।
हरिद्रालोध्रपतगगृहधूममनः शिलाः ।
मधु प्रगाढश्चार्कस्तु मेदोर्बुदहरः परः ।।4।।
वटदुग्ध प्रगाढे च सप्ताहं कुष्ठरोमके ।
तदर्कस्य प्रलेपेन हरेदस्यार्बुदं क्षणात् ।।5।।
धत्तुरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुमूलजैः ।
अकैः पिष्टा सर्षपास्तु प्रलेपाच्छलीपदापहाः ।।6।।
यवगोधूममुद्गानां पिष्टं सम्यग्विलोडितम् ।
विषमुष्टि भवार्केण विलेपाद्विद्रधिप्रणुत ।।7।।
क्षौद्रजातेन मद्येन क्षालयेत्पक्वविद्रधिम् ।
अहिफेनाक्षफेनाभ्यां पूरणाद्विद्रधिं हरेत् ।।8।।
वातघ्नौषधिजातार्क स्तन्मांसार्कस्तथा घृतैः ।
उष्णै संसेचयेच्छोथं काञ्जिकार्केण वातजम् ।।9।।
पित्तरक्तामिधातोत्थं शोथं सिंचेच्च शीतलैः ।
क्षीराज्यमधुखण्डेक्षुजातार्को मालतीभवैः ।।10।।

रावण ने कहा—सफेद अपराजिता की जड़ का रस घी के साथ पन्द्रह दिनों तक सेवन करने एवं सुपाच्य भोजन लेने से गलगण्ड रोग दूर हो जाता है। सोंठ के चूर्ण एवं सोनामाखी के साथ कचनार की छाल का रस पीने से पुराना गण्डमाल रोग दूर होता है। सज्जी तथा मूली के क्षार के रस में शंख का चूर्ण मिलाकर लेप करने से गांठ बैठ जाती है। हल्दी, लोध, पतंग, धमासा एवं मैनसिल को मधु (शहद) में मिलाकर निकाले गए अर्क से मेद तथा अर्बुद रोग दूर होता है। बरगद की जड़ के दूध में कूठ तथा सांभर को सानकर रस निकालें। उस रस में पिसी हुई सरसों मिलाकर लगाने से अर्बुद नामक जटिल बीमारी दूर होती है।

धतूरा, अंडी, संभालू, सफेद सांठी एवं सहिजन के जड़ से निकाले रस को पिसी हुई सरसों मिलाकर लेप करने से हाथी पांव की बीमारी जल्दी ठीक हो जाती है। जौ, गेहूं तथा मूंग की दाल की पीठी को कुचले के रस के साथ मिलाकर लगाने से फोड़ा-फुन्सी खत्म हो जाती है। शहद के अर्क से फोड़े को धोकर उसमें अफीम तथा आखुफेन लगाने से फोड़ा-फुन्सी का नाश होता है। वातनाशक दवा का रस मांस के रस के साथ मिलाकर गुनगुना करके फूले (सूजन) स्थान पर सिंकाई के बाद लगाने से लाभ होता है। कांजी के रस से वात की सूजन पर सिंकाई करने से भी लाभ होता है। पित्त, रक्त तथा चोट वाली सूजन पर ठंडे दूध, घी, मधु, शक्कर, ईख तथा चमेली के रस से सिंकाई करने पर लाभ मिलता है।

घाव तथा दर्द

कफघ्नौषध सञ्जातैरर्केर्रूष्णैश्च सेचयेत् ।
तैलदुग्धांबुमूत्रैर्वा शोथं श्लेष्मसमुद्भवत् ।।11।।
विषोपविषसञ्जातैरर्कः कोष्णैस्तु सेचयेत् ।
वारूण्या वा खाखसार्कैर्व्रणशोथः क्षयं व्रजेत् ।।12।।
न प्रशाम्यति यः शोथः प्रलेपादिविधानतः ।
द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहके ।।13।।
शणमूलकशिग्रूणां मूलानि तिलसर्षपाः ।
अतसीसक्तवः किञ्चिद्दुष्णं देयं च पाचनम् ।।14।।
अन्तःपूयेषु वक्रेषु तपैवोत्संगवत्स्वति ।
गतिमत्स्वपि रोगेषु भेदनं सम्प्रयुज्यते ।।15।।
बद्धमूलातिपंकेन तुवरीछिद्रकानलैः ।
व्रणसंयोगिनी शंखद्रावैः पूर्यात्तु यामकम् ।।16।।
तुवरीसदृशच्छिद्रं यामेनैकेन जायते ।
विना शस्यं शस्त्रकर्मकरमेतदपीडनम् ।।17।।
अविशुद्धव्रणस्तु स्यादर्कः शुचिकरः परः ।
पटोलनिम्बपत्रोत्थसर्वत्रैव प्रयुज्यते ।।18।।
अश्वगन्धा जहालोध्रकटफलं मधुयष्टिका ।
समङ्गाधातकी पुष्पजातोऽर्को व्रणरोपणः ।।19।।
खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य मद्येनापूरितो व्रणः ।
तथा नागबलार्केण तीव्रां वा वेदनां हरेत् ।।20।।

कफनाशक दवाओं के गर्म अर्क से या तेल, दूध, जल और गाय के मूत्र से कफ से होने वाली विकारी सूजन में लाभ होता है। घाव या फोड़े की सूजन, विष एवं उपविषों के गर्म रस से या वारुणी तथा खस के अर्क से दूर हो जाती है। लेप आदि से दूर न होने वाली सूजन पर पाचन औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। सन, मूली, सहिजन की जड़ तथा तिल, सरसों और अलसी (तीसी) के रस को गर्म करके लगाने से घाव जल्दी पक जाता है।

जो घाव टेढ़े हों, ऊंचे उठे हों अथवा जो बालों (रोमों) के बीच में हों तथा जिनके अन्दर मवाद (पस) हो, उनको चीरना चाहिए। ऐसे घाव जिसकी जड़ में मिट्टी सी लिपटी हो, जिसमें

अरहर के समान छिद्र हो, को एक प्रहर तक शंखद्राव भरकर रखना चाहिए। इससे अरहर की तरह छेद होकर बिना औजार के ही घाव चीरा लगकर फट जाता है और इससे दर्द भी नहीं होता। अशुद्ध घावों को शुद्ध करने के लिए परवल तथा नीम की पत्तियों के रस को सभी जगह लगाना चाहिए। घाव को जल्दी भरने के लिए असगन्ध, कौंच, लोध, कायफल, मुलहठी, मांई तथा धाय के फूलों का रस प्रयोग करना चाहिए। तलवार से कटा घाव शराब के प्रयोग से भर जाता है। नागबेल का रस सभी प्रकार के दर्द दूर करता है।

रक्तशुद्धि एवं नासूर

जातीपटोलनिम्बानां नक्तमालस्य पल्लवाः ।
सिक्थं च मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटु रोहिणी ।।21।।
मञ्जिष्ठा पद्यकं पथ्या लोध्रकं नीलमुत्पलम् ।
नक्तमाल फलं तुल्यमहिफेनं च सारिषा ।।22।।
एतानि समभागानि कल्कीकृत्य प्रयत्नतः ।
गोमूत्रेणतदर्कं तु दशांशादिक वासितम् ।।23।।
विलेपनाद् भक्षणाच्च हरेत्सर्वव्रणामयम् ।
विषव्रणं च विस्फोटं विसर्पं कीटदंशितम् ।।24।।
दत्तशस्त्रप्रहारं च दग्धं विद्धं व्रणं तथा ।
नखदन्तक्षतं हन्ति दुष्टमांसं च कर्षयेत् ।।25।।
कटुवल्ल्या कुमार्या वा कोष्णेनार्केण सेचयेत् ।
अग्निदग्धव्रणं तस्मात्सर्वचर्मप्ररोहणम् ।।26।।
अस्थिसंहारकं लाक्षागोधूमार्जुनसाधितम् ।
पिबेदर्कं सन्धिभग्ने सघृतं वा यथोचितम् ।।27।।
हरिद्राक्षौद्रतुवरीरक्तचंदन दार्विकाः ।
गुडेन साधितं मद्यंमृतरक्तं व्यपोहति ।।28।।
कुक्कुटं कृष्णवर्णं तु जलेऽष्टगुणिते पचेत् ।
सरसन्तं विपक्षं च दद्यात्कोष्ठप्रशान्तये ।।29।।
स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्मद्यं क्षौद्रेण साधयेत् ।
वारंवारं भावितं च वर्तिनाडीव्रणांतकृत् ।।30।।

जायफल, परवल, नीम तथा कंजावृक्ष के पत्ते, शहद, कूठ, दोनों प्रकार की हल्दी, तीखी रोहिणी, मंजीठ, पभाख, हरड़, लोध, नीलकमल, करंज के फल, नीलाथोथा, अफीम तथा सारिवा—सबको बराबर मात्रा में लेकर कल्क तैयार कर इन्हें गाय के मूत्र में मिलाकर रस निकाल लें। उसे दशांश की धूप देकर लगाने तथा खाने से सभी प्रकार के घाव, शस्त्रों की चोट, जला हुआ, बिंधा हुआ घाव, नाखूना तथा दांत के जख्म ठीक होकर सड़ा-गला मांस बाहर निकल आता है।

गजपीपल तथा ग्वारपाठे के रस को आग से जले घाव पर लगाने से उधड़ी खाल जल्दी भर जाती है। हरसिंगार, लाख, गेहूं एवं अर्जुन के पत्ते से निकाले रस को घी में मिलाकर पीने से हड्डियों के टूटने में लाभ होता है। हल्दी, मधु, शहद, अरहर, चन्दन तथा दारुहल्दी—सबको गुड़

के साथ मिलाकर निकाले गए मद्य को पीने से मरा हुआ खून ठीक होता है। काले रंग के मुर्गे को आठ गुने जल में पकाकर निकाला गया रस पीने से कोष्ठ शुद्ध होता है। थूहर व आक के रस में दारुहल्दी तथा शहद मिलाकर रस निकाल लें। इस रस में भिगोई गई बत्ती को नासूर में प्रयोग करने से वह भर जाता है।

उपदंश, विसर्प और फिरंग

शुण्ठी च वटपत्राणि जातीपत्रामृते तथा ।
सैन्धवं तक्रनिक्षिप्तं तदर्कस्तु भगन्दरे ।।31।।
लोध्रजम्बूवटशिवार्जुनरात्रिसमुद्भवः ।
अर्कः पानादितो हन्यादुपदंशं नरस्त्रियो ।।32।।
अश्वगन्धावरी कुष्ठमिसिसिंहीबलान्वितम् ।
संशोध्य दुग्धेन तदाह्यर्कः शूकगदापहः ।।33।।
यष्टीशिरीषतगरमांस्येलाश्चन्दनं शिला ।
आज्यं च वा लकं कुष्ठमर्कः सेकाद्विसर्पजित् ।।34।।
निर्गुण्डयर्को गव्यहव्ययुक्तो वा सुषवीभवः ।
शीतलार्को हरेच्छीघ्रं स्नायुरोगं न संशयः ।।35।।
सप्तवस्रं तंडुलाम्बुक्लिन्नार्देन्द्रयवा प्लुतः ।
विस्फोटकान्निहन्त्येव तदर्को लेप सेवितः ।।36।।
उत्पलं चन्दनं लोध्रमुशीरं सारिवाद्वयम् ।
एतदर्को धावनेन स्फोटदाहार्तिनाशनः ।।37।।
शंख द्रावार्क के क्षिप्तपारदो भस्मतां व्रजेत ।
वल्लं गुडयुतम खादेत्फिरङ्गविनिवृत्तये ।।38।।
अपक्वं पारदं भुक्त्वा द्रोणपुष्यार्कसेवनात् ।
लेपनात्स प्रयात्येव फिरङ्गो नात्र संशयः ।।39।।
पलाशपत्रवृन्तानां सप्ताहं तस्य सेवनात् ।
फिरङ्गो याति त्वरितं साध्यासाध्यो न संशयः ।।40।।

सोंठ, बरगद का पत्ता, जावित्री, गिलोय तथा सेंधा नमक को मट्ठे में भिगोकर, निकाले गए रस से भगन्दर रोग दूर होता है। लोध, जामुन, बरगद की जड़, हरड़, अर्जुन की छाल और हल्दी के रस (अर्क) को लगाने तथा पीने से स्त्री-पुरुष का उपदंश रोग समाप्त हो जाता है। असगंध, बरियारी, कूठ, सौंफ, करेली तथा खिरैटी—सबको दूध में शुद्ध करके रस निकाल लें। यह रस वीर्य सम्बंधी रोगों को दूर करता है। मुलहठी, सिरस, तगर, जटामांसी, इलायची, चन्दन, मैनसिल, घी, नेत्रबाला तथा कूठ—सभी को मिलाकर निकाले गए रस को लेने से 'विसर्प' रोग ठीक हो जाता है। संभालू (निर्गुण्डी) के रस में गाय का घी तथा शहद मिलाकर लेने से स्नायु रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है।

निशोथ या थूहर के सेवन से भी स्नायु रोग दूर होता है। चावल के धोवन में सात दिन तक इन्द्रजौ को भिगोकर निकाले गए रस को लगाने तथा पीने से शीतला (विस्फोट) रोग दूर हो जाता है। कमल, चन्दन, लोध, खस और दोनों सारिवा के रस से धोने पर विस्फोट के कारण होने वाली

जलन तथा पीड़ा का नाश होता है। शंखद्राव में पारा डालने से भस्म बन जाता है। इस भस्म को तीन रत्ती के बराबर गुड़ के साथ लेने से फिरंग रोग दूर हो जाता है। अशुद्ध पारा खाकर द्रोणपुष्प के रस का सेवन तथा लेप करने से भी फिरंग रोग दूर हो जाता है। ढाक के पत्तों के डंठल का रस सात दिनों तक सेवन करने से साध्य-असाध्य सभी प्रकार का फिरंग रोग दूर हो जाता है।

स्नुहिमोहिलमोचीकार्कः समसूरिकः कौतुकेन संपीतः ।
सकलं मसूरिकोयं गाढं जातं विनाशयेत्क्षिप्रम् । ।।41।।
निम्बः पर्पटकः पाठा पटोलः कटुरोहिणी ।
चन्दने द्वे ह्यशीरं च धात्री वासा दुरालभा । ।।42।।
एतदर्कः सितायुक्तो मसूरीमात्रनाशनः ।
मुखेकण्ठे व्रणे जाते गंडूषार्थ प्रयुज्यते । ।।43।।
गोमयार्कस्य लेपेन पानेन विलयं व्रजेत् ।
गोक्षुरं वाथ तत्पूर्वं ज्वरेऽघाद्दधिसर्पिषा । ।।44।।

थूहर तथा हुलहुल का रस मसूर की दाल के साथ निकाल कर उसे ठंडा करके पीने से पुराने से पुराना मसूरिका रोग जल्द ही ठीक हो जाता है। नीम, पित्तपापड़ा, पाठा, परवल, कड़वी रोहिणी, दोनों प्रकार के चन्दन, खस, आंवला, अडूसा एवं जवासा—सबको मिलाकर निकाले गए रस का सेवन मिश्री के साथ करने पर शरीर में होने वाली फुंसियां (मसूरी) ठीक हो जाती हैं। मुंह या कण्ठ में छाले होने पर इसी रस से कुल्ला करना चाहिए। गाय के गोबर के रस को लगाने तथा पीने से गले का छाला दूर होता है। गोखरू का रस दही तथा घी के साथ बुखार आने से पहले देना लाभकारी होता है।

जनसंख्या का उपाय

रावण उवाच—

आदौ कृतयुगे ब्रह्मा महेशं वाक्यमब्रवीत् ।
तवाज्ञया मयादेव सृष्टा नानाविधाः प्रजाः ।।45।।
समस्ताभूस्तु तैर्व्याप्ता भवन्त्यन्येऽपि तद्विधाः ।
कामेन यान्ति भार्यासु पुनः सृष्टि प्रवर्तते ।।46।।
गजाश्वैर्मनुष्याद्यैव्याप्तेयं तु धराऽखिला ।
शीघ्रं यास्यंति पाताले तत्र यत्नो विधीयताम् ।।47।।
एव ब्रह्मवचः श्रुत्वा शूलमैक्षन्महेश्वरः ।
ततो जज्ञे पुमानेको भीमो घोर पराक्रमः ।।48।।
रक्तान्तलोचनः क्रोधी वडवाग्नियुतो नरः ।
ऊर्ध्वकेशो ललज्जिह्वः कृताक्रोशोऽजितेन्द्रियः ।।49।।
तद्दृष्ट्वा तु महादेवः पार्वतीं वाक्यमब्रवीत् ।
जात एव महाक्रूरः सर्वसंहारकारकः ।।50।।

रावण ने बताया कि सत्युग में ब्रह्माजी ने शंकर भगवान से कहा—हे देव! आपकी आज्ञा से मैंने विभिन्न प्रकार के लोगों की रचना की है। परन्तु काम और विवाह का निश्चित नियम न होने के कारण इनकी आबादी बढ़ रही है। हाथी, घोड़ा, मनुष्य आदि से पृथ्वी भर गई है। उनके भार

से पृथ्वी पाताल में धंस जाएगी। अतः इसके लिए कोई उपाय कीजिए। ब्रह्माजी की इन बातों को सुनकर शंकरजी ने अपने त्रिशूल की तरफ देखा। उसी वक्त उसमें से एक भयानक घोर पराक्रमी पुरुष निकला। लाल आंखों वाला वह पुरुष क्रोधी, बडवाग्नि के समान, ऊर्ध्वकेशी, लपलपाती जीभ वाला, क्रुद्ध स्वभाव का तथा अजितेन्द्रिय था। उसे देखकर शिवजी ने माता पार्वती से कहा —हे देवी! यह पुरुष महाक्रुर तथा सबका विनाश करने वाला है।

एतस्य मोहनार्थाय देहि भार्यां यथोचिताम् ।
एवं शिववचः श्रुत्वा स्वकं पृष्ठ ददर्श ह ।।51।।
ततो देवी समुत्पन्ना योच्यते भवितव्यता ।
रूपलावण्य सम्पन्ना पीनोन्नत पयोधरा ।।52।।
मारणास्त्र मोहनास्त्रं कराभ्यां दधती शुभा ।
श्वेतवस्त्रपरीधाना लज्जाप्रावृतलोचना ।।53।।
सा प्रणम्य तदा देवीं शिवायोरग्रतः स्थिता ।
शस्त्रभारभराक्रान्तकालचित्त विमोहिनी ।।54।।
दृष्ट्वा तां पार्वती प्राह ममाज्ञां क्रियतामिति ।
कालस्य भव पत्नी त्वं तस्य चित्तं विमोहय ।।55।।
याचयस्व वरं श्रेष्ठं कुरु कार्य प्रजापतेः ।
ततः प्रीता तु सा प्राह देव्यग्रे प्रणता स्थिता ।।56।।
ममाधीनमिदं सर्वं ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मकम् ।
कालश्चायं ममाधीनः कोऽपि मां न च वेत्स्यति ।।57।।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं विष्णौ देव्यां च शूलिनि ।
दृष्टिर्मम समैवास्ति मत्स्वरूपाविदस्त्विमे ।।58।।
एवमुक्त्वा भवानीं सा पाणिग्रहमचीकरत् ।
कृतकृत्योऽभवत्काल उद्वाह्य भवितव्यताम् ।।59।।
कृतोछाहं तु तं ज्ञात्वा विधाता वाक्यमब्रवीत् ।
शीघ्रमागम्यतां स्वामिन् सृष्टिं संहार्यतामिति ।।60।।
ततस्तु भृत्याः कालेन रचिताः स्वस्य तेजसा ।
भवितव्यतया सार्द्धं ततः स्वस्वामि तेजसा ।।61।।
शोषो ज्वरः पांडुसारश्वासपानात्ययादिकाः ।
अभ्यन्तरा गिरिचराः शतशस्ते न निर्मिताः ।।62।।
सर्पा व्याघ्रवृकाः सिंहवृश्चिका रक्षसा गजाः ।
भूत प्रेत पिशाचाश्च बाह्यस्थाः परिचारकाः ।।63।।
तस्याभ्यान्तरशक्त्या च कामिनी मोहिनी तृषा ।
लिप्साऽहंकृति वृद्धिःनिद्राः सेर्ष्याभयादिकाः ।।64।।
ग्रहणीकामलासूचीछर्दिमूर्च्छाऽश्मरी तृषाः ।
डाकिनी शाकिनी घोरा इत्येता बाह्यहेतुकाः ।।65।।

इसे वश में करने के लिए इसके योग्य पत्नी दो। शंकरजी की बात सुनकर पार्वती ने अपनी पीठ की तरफ देखा। उसी समय वहां से एक देवी उत्पन्न हुई जिसे 'होनी' कहा जाता है। वह

रूप-लावण्य से पूर्ण उन्नत उरोजों (स्तन) वाली थी। वह श्वेत वस्त्र धारण किए हुए 'मारणास्त्र' एवं 'मोहनास्त्र' से युक्त थी। उसकी आंखें लज्जावश झुकी हुई थीं। वह देवी प्रणाम करने के बाद पार्वती के सामने आ खड़ी हुई। वह अस्त्रों के वजन से बोझिल एवं काल के मन को मोहने वाली थी। उसे सामने देखकर पार्वतीजी ने कहा—मेरी आज्ञानुसार इस काल की भार्या (पत्नी) बनो तथा इसके मन को मोहित करके यह वर मांगो कि तुम मेरे पति हो जाओ। इस तरह तुम प्रजापति ब्रह्मा का काम करो।

यह सुनकर वह देवी पार्वतीजी के सामने नम्रता से बोली—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के रूप में सारा संसार मेरे ही अधीन है। काल भी मेरे वश में है। मुझे ठीक से जानने वाला कोई नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा देवी से लेकर तिनकों तक सभी को मैं समान रूप से देखती हूं। मेरे स्वरूप को ये सब नहीं जानते हैं। यह कहकर उस देवी ने 'काल' से विवाह कर लिया।

देवी होनी (भवितव्यता) से पाणिग्रहण कर काल भी कृतार्थ हो गया। उन दोनों के विवाह के बारे में जानकर ब्रह्माजी ने कहा—हे मालिक काल! अब तुम जल्द से जल्द सृष्टि का विनाश करो। तब काल ने अपने तेज से अनेक अनुचरों की रचना की, जिसे 'होनी' के साथ अपने स्वामी शिवजी के तेज से उसने उत्पन्न किया था। शोथ, बुखार, पाण्डु, अतिसार, श्वास, पानात्यय आदि शरीर के बाहर तथा भीतर होने वाले सैकड़ों रोगों का निर्माण किया। सांप, बाघ, भेड़िया, सिंह, बिच्छू, राक्षस, हाथी, भूत, प्रेत, पिशाच आदि बाहर रहने वाले सेवकों एवं उनके भीतर रहने वाली कामिनी, मोहिनी, तृषा, लिप्सा, घमण्ड, निद्रा, ईर्ष्या, भय आदि भावनाओं को जन्म दिया। इसके साथ संग्रहणी, कामला, विशूचिका, मूर्च्छा, पथरी, डाकिनी, शाकिनी, घोरा इत्यादि बाह्य शक्तियों को भी पैदा किया।

एवं परिवृतं दृष्ट्वा स्वसैन्यमविचारयत् ।
मत्तः कस्त्वधिको लोके न जाने भवितव्यताम् ।।66।।
ब्रह्माविष्णुमहेशाद्या हननीया मयाऽऽदितः ।
एवं विचार्यं मनसि महेशं हन्तुमुद्यतः ।।67।।
तं दृष्ट्वा तु महेशेन शक्तिरेका प्रदर्शिता ।
अतिघोरा विरूपाक्षी संकीर्णजघनोदरा ।।68।।
दन्दत्द्यमाना कोपेन ज्वलयन्ती दिशो दश ।
तस्यास्तु दृष्टिपातेन कालः सर्वाङ्गापीडितः ।।69।।
तामेव विविशुः सर्वे कः प्रभुः कश्च सेवकः ।
बलिनः सर्व एव स्युः सेवका निर्बलस्य न ।।70।।

अपने परिवार को देखकर काल ने मन में सोचा कि मुझसे बड़ा कौन है? मैं तो भवितव्यता (होनी) को भी कुछ नहीं समझता हूं। अतः मुझे ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों को मार डालना चाहिए। इस तरह अपने मन में विचार करके वह भगवान शंकर की हत्या करने के लिए तैयार हुआ। उसे देखकर शंकरजी ने एक अत्यंत शक्तिशाली शक्ति को अवतरित किया। वह शक्ति अत्यन्त घोर, भयानक आंखों वाली, छोटी जांघों तथा बड़े पेट वाली थी। वह अपनी क्रोधाग्नि से दसों दिशाओं को जला देने वाली लग रही थी। उसको देखने मात्र से ही काल के सभी अंग पीड़ित हो गए। काल के साथी सभी रोग भी उसके अन्दर समा गए। कौन मालिक है और कौन

नौकर—इसमें अंतर ही नहीं हो पाता था। शक्तिशाली की सभी सेवा करते हैं, कमजोर की सेवा कौन करता है?

नानास्फोटैः परिवृतो दह्यमानो रूषाग्निना ।
तस्येद्दशीमवस्थां तु दृष्ट्वा दाहादयो गदाः ।।71।।
भग्नाहंकारकं दृष्ट्वा तं कालं भवितव्यता ।
ईषद्विहस्य तं प्राह नते साधुरहंकृतिः ।।72।।
मयाधीनं जगत्सर्वं मदाज्ञा क्रियतां त्वया ।
त्वया स्वतंत्रतारम्भः कृतस्तेनेदृशी गतिः ।।73।।
एषा मदंशसम्भूता शीतला तां प्रसादय ।
अवश्यं तव साहाय्यं करिष्यति त्वयावृता ।।74।।

अनेक प्रकार के चेचक के दानों से भरा वह काल क्रोध की आग में जलने लगा। ऐसी अवस्था को देखकर उसे दाह रोग भी लग गए। तब उसके अहंकार का नाश हुआ समझकर, भवितव्यता (होनी) ने हंसते हुए कहा—तुम्हारा घमण्ड करना अच्छा नहीं है। यह संसार तो मेरे अधीन है, अतः तुम्हें मेरी आज्ञा माननी चाहिए। तुमने मुझसे अलग होकर जो कुछ किया, उसी के कारण तुम्हारी यह दशा हुई है। यह चेचक माता मुझसे ही उत्पन्न हुई हैं। इसलिए तुम इन्हें खुश करो। खुश होने पर यह जरूर तुम्हारे सब कामों में मदद करेंगी।

शीतला देवी की प्रार्थना

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्था दिगम्बराम् ।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम् ।।75।।
वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगभयापहाम् ।
निवर्तते यमासाद्य विस्फोटकभयं महत् ।।76।।
शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः ।
विस्फोटभयं घोरं गृहे तस्य न जायते ।।77।।
शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च ।
प्रणष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम् ।।78।।
शीतले तनुजान् रोगान् नृणां हरसि दुस्तरान् ।
विस्फोटक विशीर्णानां त्वमेकाऽमृतवर्षिणी ।।79।।
गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणानृणाम् ।
त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यांति संक्षयम् ।।80।।
न मन्त्रं नौषधं तत्र पापरोगस्य विद्यते ।
त्वमेका शीतले धात्रि नान्यां पश्यामि देवताम् ।।81।।
मृणालतंतु सदृशीं नाभिहृन्मध्य संस्थिताम् ।
यस्त्वां सञ्चिन्तयेद्देवि तस्य मृत्युर्न जायते ।।82।।
एवं स्तुता तदा देवी शीतला प्रीतमानसा ।
उवाच वाक्यं कालाग्र वरं वरय सत्वरम् ।।83।।
अहो चाद्भुत्माहात्म्यं तव दृष्टं मयाऽधुना ।

पीडामपनय क्षिप्रं प्रहर्ष कुरु मे सदा ।।84।।

काल ने कहा—मैं उन शीतला देवी की प्रार्थना करता हूं, जो गधे पर सवार तथा वस्त्रहीना हैं। मैं उन देवी शीतला की प्रार्थना करता हूं, जो सभी रोगों का भय दूर करने वाली हैं। इनकी कृपा से चेचक के भय से छुटकारा मिल जाता है। दर्द से पीड़ित जो मनुष्य 'शीतला-शीतला' पुकारता है, उसके घर में चेचक का कोई भय नहीं रहता। हे माता शीतला! बुखार से पीड़ित, गन्धयुक्त शरीर वाले तथा नष्ट नेत्रों वाले व्यक्ति को तुम्हीं जीवन देने वाली औषधि हो।

हे शीतले! तुम मनुष्यों की देह में होने वाले कठिन रोगों का नाश करने वाली हो। चेचक के दानों से ग्रसित मनुष्य पर सुधा (अमृत) की वर्षा करने वाली तुम ही हो। हे शीतले! तुम्हारा ध्यान करने भर से ही गलगण्ड तथा ग्रह आदि जटिल रोग दूर हो जाते हैं। हे शीतले! न कोई मन्त्र, न कोई दवा—इस चेचक रूपी पाप से रक्षा करने वाली है। इससे रक्षा करने वाली मात्र तुम हो। किसी अन्य देवता में इतनी शक्ति नहीं है। तुम कमल के डंठल के समान हृदय के बीच में स्थित हो। हे देवी! जो मनुष्य तुम्हारा ध्यान करता है, उसकी मृत्यु नहीं होती।

काल द्वारा इस तरह प्रार्थना करने पर देवी शीतला ने खुश होकर कहा—अब तुम जो चाहो, वह वरदान जल्दी मांग लो। काल ने कहा—मैंने आपकी अद्भुत महिमा को इस समय देख लिया है। अब आप मेरा कष्ट दूर कर दें तथा हमेशा मुझे प्रसन्न करती रहें।

शीतलोवाच—

एवा तव जगत्कर्त्री भार्येयं भवितव्यता ।
अस्याज्ञां संप्रवर्तन्ते ब्रह्माविष्णु महेश्वराः ।।85।।
अहं त्वं च महेशाघास्ततो धन्यास्तुते मताः ।
बुद्धया धीर्जायते सा या यादृशी भवितव्यता ।।86।।
साहाय्यं ते करिष्यामि हरिष्यामि इमाः प्रजाः ।
उपोदकी तु या खादेदादाबुष्णं ततः परम् ।।87।।
तं गर्भ भक्षयिष्यामि सापि चेद्दुष्टभुग्भवेत् ।
सन्तुष्टा शीतलेनाहं सदा तत्सेवकस्य च ।।88।।
प्रत्यहं या समश्नाति मालत्यकमुपोदकी ।
तस्यागर्भं न स्पृश्यामि यावज्जीवं न संशयः ।।89।।
ममकोपेन सञ्जातदाहो यस्तु नरोत्तमः ।
दधिभक्तं ब्राह्मणेभ्यो जलमेभ्यः प्रदाय च ।।90।।
स्वयमश्नाति सप्ताहं तस्य पीडां हराम्यहम् ।
अष्टकं च ममैतद्धियः पठेन्मानवः सदा ।।91।।
विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ।
अष्टकं च ममैतद्धि पठितं भक्तितः सदा ।।92।।
सर्वरोग विनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ।
शीतलाष्टकमेतद्धि न देयं यस्य कस्यचित् ।।93।।
दातव्यं सर्वदा तस्मै भक्तिश्रद्धान्वितो हि यः ।
एव मुक्ता ययुः सर्वे तथैव भवितव्यता ।।94।।

तथा लोकान जिघांसंती कालस्यवशमागता ।
अथवक्ष्ये शीतलादि चिकित्सार्कं प्रभावतः ।।95।।
जात्यर्कं वा कदल्यर्कं शतपत्रार्क मेव च ।
योभुञ्ज्याद्दधिभक्ताभ्यां शीतलां तं न मारयेत् ।।96।।
चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह ।
एषामर्कः शीतलस्तु शीतलाज्वर नाशनः ।।97।।
तारो मायाशीतलेति चतुर्थन्तं हृदन्तकम् ।
मन्त्रमुच्चार्य यो दद्याहधीनि शतसंख्यया ।।98।।
सचन्दनेन शीतेन शतपत्रार्ककेण च ।
अवश्यमेव सप्ताह प्रयोगाद् व्रणनाशनः ।।99।।

देवी शीतला ने कहा—यह तुम्हारी पत्नी होनी संसार को उत्पन्न करने वाली है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश सभी इसकी आज्ञा-मानते हैं। मैं, तुम तथा शंकर—सभी इसी का स्मरण करके धन्य हुए हैं। यह देवी (भवितव्यता) जैसा चाहती है, वैसी ही सबकी बुद्धि हो जाती है। मैं तुम्हारी मदद करूंगी तथा प्रजा का विनाश भी करूंगी। यदि कोई रजस्वला नारी अपने घर में सबसे पहले स्वयं भोजन करेगी तो मैं उसका गर्भपात करा दूंगी। मैं ठंडक से बहुत खुश रहती हूं तथा ठंडी-वस्तुओं का सेवन करने वाली की रक्षा करती हूं। जो नारी मालती के अर्क (रस) का सेवन करती है, उसके गर्भ को मैं निश्चित ही जीवन भर नहीं छूती। जिस मनुष्य पर मेरा कोप होता है, उसे दाह का दर्द होता है। ऐसी स्थिति में ब्राह्मणों को दही-भात खिलाने एवं स्वयं दही खाने से उसके कष्ट सात दिनों में दूर कर देती हूं। जो मनुष्य मेरे 'अष्टक' का रोज पाठ करेगा, उसके वंश में चेचक का भय कभी नहीं होगा। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक मेरे इस अष्टक को पढ़ेगा, उसके सभी रोग दूर होंगे तथा महाकल्याण प्राप्त होगा। जो व्यक्ति भक्ति एवं श्रद्धा से युक्त हों, उन्हें ही इस शीतलाष्टक को देना चाहिए।

रावण ने कहा—यह कहकर सब चले गए। तभी से संसार के सभी प्राणियों के रोग काल के वशीभूत हो गए। अब मैं शीतला आदि रोगों के चिकित्सा में प्रयोग होने वाले रसों का वर्णन करता हूं। जो लोग चमेली, केला एवं कमल के रस को दही तथा चावल के साथ खाते हैं, उन्हें शीतला रोग नहीं सताता। सफेद चन्दन, अडूसा, मोथा और गिलोय का दाख (छुहारा) के साथ निकाले गए रस का सेवन करने से शीतला-बुखार समाप्त हो जाता है। **तारोमायाशीतलायै नमः** मंत्र का जप सौ बार करके चन्दन तथा ठंडे कमल के रस के साथ दही का प्रयोग करने पर शीतला का घाव सात दिनों के अन्दर अवश्य ठीक हो जाता है।

।। लंकेश्वर रावण कृतार्कप्रकाशे षष्ठं शतकम् संपूर्णम् ।।

❑❑

अथार्कप्रकाशे

सप्तमं शतकम्

गंजापन, झांई और मुंहासे

रावण उवाच—

त्रिफली नीलिकापत्रं भृङ्गराज अयोमलः ।
अधिमूत्रार्कमंपिष्टं लेपात्कृष्णीकरं परम् ।।1।।
मसी तु गजदन्तं च द्दागीक्षीरं रसाञ्जनम् ।
वटप्ररोहकं विष्टमिन्द्रलुप्तघ्नमौषधम् ।।2।।
आम्रबीजंचपथ्या च दुग्धनिर्वापितं त्र्यहम् ।
तदर्को हंति लेपेन त्र्यहाद्वारुण दारुणम् ।।3।।
नीलोत्पलस्य किञ्जल्कमामलं मधुयष्टिकां ।
क्लिन्नं गोमूत्रके चैव तदर्कोऽरूंषि नाशयेत् ।।4।।
केवलं पयसा लिह्यात्तीक्ष्णाः शाल्मलिकंटकाः ।
तदर्कस्ये त्र्यहं लेपान्मुखदूषीर्विनश्यति ।।5।।
वरांकुरं मसूराश्च मञ्जिष्ठा क्षौद्रमेव च ।
जलक्लिन्नं तदर्कस्तु मुखव्यंगविनाशनम् ।।6।।
काश्मर्यर्केण कोष्णेन सिंचेदंगुलवेष्टकम् ।
कोमलैः सप्तभिस्तस्य पत्रैर्बद्धं हरेद्गदम् ।।7।।
सर्वसैन्धवसिद्धार्थ सिता कुष्ठार्कधावनात् ।
कपिकच्छूः शमं गच्छेल्लिङ्गोत्थो नात्र संशयः ।।8।।
शंख सौवीरयष्टयर्के प्रत्यहं क्षालयेद्गुदम् ।
गुदकण्डूर्बालकस्य योगो हन्ति न संशयः ।।9।।
पद्मिनीमृदुपत्राणामर्कं यः सितया सह ।
गुदनिःसारणं तस्य नश्येन्मासान्न संशयः ।।10।।

रावण ने कहा—त्रिफला, नीलिकापत्र, भृङ्गराज एवं लौहकिह—इन सबका रस निकालकर बालों में लगाने से बाल काले हो जाते हैं। मसी, हाथी दांत, बकरी का दूध, रसौत तथा बरगद की जटा को पीस कर रस लगाने से गंजापन तथा बालों के गिरने में लाभ होता है। आम की गुठली तथा हरड़ को तीन दिन तक दूध में भिगोकर उसका रस निकाल लें। इस रस को तीन दिनों तक लगाने से कठिन गंजापन रोग दूर हो जाता है। कमल, केसर, आंवला और मुलहठी को गाय के मूत्र में भिगोकर रस निकाल लें। यह रस खुश्की को दूर करता है। सेमल के वृक्ष के कांटों को पानी में पीसकर तीन दिनों तक मुंह पर लगाने से मुंहासे नष्ट हो जाते हैं।

बरगद की जटा, मसूर, मजीठ और शहद को मिलाकर पानी में भिगोकर रस निकाल लें। इस रस को शहद मिलाकर लगाने से चेहरे की झांई दूर होती हैं। कुम्हेरन के गर्म रस को उसी के सात कोमल पत्तों से लपेटकर तीन अंगुल का बंध देने से बंध रोग समाप्त हो जाता है। राल, सेंधा नमक, सरसों, मिश्री तथा कूठ के रस से लिङ्ग धोने पर लिङ्गोत्थान नामक बीमारी दूर होती है। शंख, सौवीर तथा मुलहठी के रस से बालकों की गुदा को रोज धोने से बालक की गुदा की खुजली दूर होती है। पद्मिनी के मुलायम पत्तों का रस मिश्री के साथ लेने से एक मास के अन्दर कांच निकलना बंद हो जाता है।

सिरदर्द एवं नेत्र रोग

भृङ्गराज रसार्को यः क्षीरतुल्योऽर्कतापितः ।
सूर्यावर्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट् ।।11।।
विडङ्गतिलकृष्णानि सम पिष्टवा प्रलेपयेत् ।
एतदर्कस्य नस्येन चार्द्धभेदं व्यपोहति ।।12।।
पथ्याक्षधात्री रजनी गुडभूनिम्बनिम्बकैः ।
गुडूच्यर्को हरेत्पीडां सर्वामपि शिरोद्भवाम् ।।13।।
दार्वी हरिद्रा मञ्जिष्ठा सनिम्बशीरपद्मकम् ।
मर्दनं चैतदर्कस्य शंखपीडाप्रशान्तिकृत् ।।14।।
आरनालार्केण पादौ लिप्त्वा लेपोऽलसे हितः ।
पटोलकुनरीनिम्बरोचनामलकस्तिलैः ।।15।।
केवलं भृङ्गराजार्क उष्णो दार्वी सपेविता ।
पादे बद्ध्वानयोः कल्कं दिनैकेन क्षयो भवेत् ।।16।।
चर्मकीलं जन्तुमणिर्मशकस्तिलकालकः ।
उत्कृत्य शंखद्रावेण दग्धो नोत्पद्यते पुनः ।।17।।
अहिफेनार्कमध्ये हि त्रिफलाचूर्ण पोटली ।
प्रतिसायं हिता नेत्रे सर्वाभिष्यन्दशान्तये ।।18।।
वातातपरजोहीन वेश्म न्युत्तानशायिनः ।
आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ।।19।।
समं दृढौ समं बद्धौ कर्तव्यौ नेत्र कोशयोः ।
चूरयेन्नयने तेन तत उन्मीलयेच्छनैः ।।20।।

भांगरे के रस को दूध के साथ गर्म करके नाक से खींचकर पीने से आधासीसी का दर्द समाप्त हो जाता है। यह प्रयोग सबसे अच्छा है। बायबिडंग तथा काले तिल को बराबर अनुपात में पीसकर अर्क निकाल लें। इस अर्क को सूंघने से भी आधासीसी का दर्द समाप्त हो जाता है। सभी प्रकार के सिरदर्द को दूर करने के लिए हरड़, भिलावां, आंवला, हल्दी, गुड़, चिरायता, नीम एवं गिलोय का रस उपयोगी है। दारुहल्दी, मजीठ, नीम, खस तथा पद्माख—इन सबके रस की मालिश करने से कनपटी का दर्द दूर होता है।

कांजी के रस से पांवों को खूब धोने के बाद उन पर परवल, मैनसिल, नीम, गोरोचन, आंवला तथा तिल को पीसकर लगाने से पांवों के खारूवे ठीक हो जाते हैं। केवल भांगरे का रस पिसी

हुई दारुहल्दी के साथ गर्म करके पांव में बांधने से खारूवा एक ही दिन में ठीक हो जाता है। चर्मकील, लहसन, मस्सा तथा तिल आदि में से जिसे भी ठीक करना हो, उसे उखाड़कर उस स्थान को शंखद्राव से जला देने पर वह दुबारा नहीं उभरता। त्रिफला के चूर्ण को अफीम के रस में गूंथकर, कपड़े की पोटली बनाकर उस पोटली को आंखों पर रखने से आंखों से पानी गिरने में लाभ होता है।

अब आंखों के रोग दूर करने वाले रस के बारे में चर्चा करते हैं—हवा, धूप तथा धूल रहित स्थान में चित्त लेटकर, गीले उड़द की दो टिकिया बनाकर आंखों पर रख मजबूती से बांध दें। फिर उन्हें पलकों पर लगाकर धीरे-धीरे आंखें खोलें। इससे सभी प्रकार के नेत्र सम्बंधी रोगों में लाभ होता है।

नेत्र तर्पण विधि

भिषग्वरैः सुकथितः पुराणैस्तर्पणो विधिः ।
यद्रूक्षं परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम् ।।21।।
शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छोन्मीलन संयुतम् ।
तिमिरार्जन शुक्लाधैरभि स्यान्दादिमन्धकैः ।।22।।
शुष्काक्षिपाक शोधाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः ।
तन्नेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः ।।23।।
धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङमात्राणां शतं बुधः ।
स्वस्थे कफे संधिरोगे वाचां पञ्चशतानि च ।।24।।
कफे षट्कशतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् ।
दृष्टिरोगे शतान्यष्टावधिमंथे सहस्त्रकम् ।।25।।
सहस्त्रे वातरोगेषु धार्ममेवं हि तर्पणम् ।
पुनर्नवा च तुवरी कुमारी त्रिफला निशा ।।26।।
यष्टिगैरिकसिन्धूत्थ दार्व्यञ्जनयुगैः कृतः ।
अर्कस्तत्पूरणेनाशु नेत्ररोगाः शमं ययुः ।।27।।
रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मालतीनवपल्लवाः ।
गोमलार्कस्तु रात्र्यन्ध पूरितो हन्त्यसंशयम् ।।28।।
शंखानाभिर्बिभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ।
पिप्पली मरिचं कुष्ठमजादुग्धेन पेषितम् ।।29।।
तदर्कः पूरणद्धन्यात्काचं पटलमर्बुदम् ।
तिमिरं मांसवृद्धिं च वार्षिकं पुष्पमेव च ।।30।।

अब वैद्यश्रेष्ठों के अनुसार, नेत्रों के लिए लाभदायक नेत्र-तर्पण विधि के बारे में बताते हैं—यदि आंखें रुक्ष, खुश्की युक्त, टूटी भौंहें, ऊपरी पलकें रोगयुक्त एवं कठिनाई से खुलें, तिमिर, फूली, माड़ा, अन्धत्व तुल्य एवं वात रोगों से ग्रस्त हो तो नेत्र रोग विशेषज्ञ नेत्र-तर्पण की सलाह देते हैं। वर्त्मपूलक रोग में सौ मात्रा, कफ-कृत नेत्र रोग में पांच सौ मात्रा, कफ रोग में छः सौ मात्रा, कृष्ण रोग में सात सौ मात्रा, पुतली रोग में आठ सौ मात्रा तथा वात सम्बंधी नेत्र-रोगों में एक हजार मात्रा तक दवा आंखों में भरी रखनी चाहिए। पुनर्नवा, अरहर, ग्वारपाठा, त्रिफला,

हल्दी, मुलहठी, गेरू, सेंधा नमक, दारुहल्दी तथा रसौत का रस आंखों में डालने से आंखों के रोग दूर हो जाते हैं।

रसांजन, दोनों प्रकार की हल्दी, चमेली के कोमल पत्ते तथा गाय के गोबर का रस आंखों में डालने से रतौंधी रोग दूर हो जाता है। शंखाहुली, बहेड़े की छाल, मैनसिल, पीपल, कालीमिर्च एवं कूठ को बकरी के दूध में भिगो-पीसकर निकाला गया रस आंखों में डालने से काचफूली, माड़ा, तिमिर, मांस बढ़ना जैसे वर्षों पुराने आंखों के रोग ठीक हो जाते हैं।

कान के रोग

शृङ्गवेरं क्षौद्रसिन्धुस्तैलार्केणं च पूरणम् ।
कर्णशूले कर्णनादे, बाधिर्ये क्ष्वेड एव च ।।31।।
तीव्रशूलतुदे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि ।
देयश्छागमूत्रार्कः कोष्णसैंधवसंयुतः ।।32।।
आम्रंजम्बूप्रत्रालानि मधुकस्य वटस्य च ।
एतदर्कपूरणेन पूर्तिकर्णे मदं हरेत् ।।33।।
गोमूत्रं हरितालं च तथामहिषगुग्गुलम् ।
सप्ताहं वा दशाहं वा शतशः परिभावितम् ।।34।।
करंजबीजं तद्वर्तिदृष्टे पुष्पं विनाशयेतः ।
रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला ।।35।।
समुद्रफेनलवणं गैरिकं मरिचं तथा ।
मधुक्लिन्नैस्तदर्कस्तु पूरणात्क्लिन्नवर्त्मनि ।।36।।
पक्ष्माणि रोहयेत्कण्डू हन्यादर्कस्य पूरणात् ।
बब्बूलार्कः क्षौद्रयुक्तो नेत्रस्रावं हरेत्क्षणात् ।।37।।
पुनर्नवायाः श्वेताया अर्को हन्यादृगामयान् ।
दुग्धेन कण्डूं क्षीद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा ।।38।।
पुष्पंतैलेन तिमिरं काञ्जिकेन निशान्धताम् ।
कटफल पौष्करं शृङ्गैर्व्योषं यासश्च कारवी ।।39।।
एतदर्कः शृङ्गवेररसयुक्तो गदान् हरेत् ।
पीनसं स्वरभेदं च तमकं सहलीमकम् ।।40।।
सन्निपातं कफं वातं श्वासं कासं विनाशयेत् ।
व्याघ्री दंती वचा सिन्धुः सुरसा व्योष सैन्धवैः ।
सिद्धोऽर्कस्तु नसि क्षिप्तः पूतिनासागदापहः ।।41।।

अदरक, शहद एवं सेंधा नमक के रस को तेल के साथ कान में डालने से कान में दर्द, आवाज होना, बहरापन तथा कान की फुंसी आदि कान के सब रोग दूर हो जाते हैं। कान में तीखा दर्द हो, शब्द होता हो तथा पीब बहता हो तो बकरी के मूत्र को गर्म करके उसमें सेंधा नमक मिलाकर कान में डालने से उक्त रोग ठीक हो जाता है। आम, जामुन, महुआ तथा बरगद के पत्तों का रस कान में डालने से भी कान बहना बन्द हो जाता है। गाय के मूत्र में हरताल एवं भैंसा गुग्गुल को सात या दस दिनों तक भिगोकर भावना दें। उसके बाद करंज के बीज की बत्ती

बनाकर उसे आंखों में लगाने से फूली दूर हो जाती है।

रसांजन, रसौत, चमेली के फूल, मैनसिल, समुद्रफेन, गेरू तथा कालीमिर्च को शहद में भिगोकर रस निकाल लें। इस रस को नेत्रों में लगाने से पलकों के बाल जम जाते हैं तथा आंखों की खुजली दूर होती है।

बबूल के पत्तों का रस निकालकर उसे शहद के साथ आंखों में लगाने से आंखों से पानी गिरना बंद हो जाता है। दूध के साथ सफेद पुनर्नवा का निकाला गया रस आंख की सभी बीमारियों को दूर करता है। सफेद पुनर्नवा का शहद के साथ निकाला गया रस नेत्रों की खुजली दूर करता है। सफेद पुनर्नवा का घी के साथ निकाला गया रस आंखों से पानी का बहना बंद करता है।

श्वेत पुनर्नवा का सरसों के तेल के साथ निकाला अर्क फूली को दूर करता है तथा कांजी के साथ निकाला अर्क अंधकार (तिमिर) को दूर करता है। कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, त्रिकुटा, जवाखार, करेला एवं सौंफ—इन सबका रस अदरक के रस के साथ सेवन करने से पीनस रोग, स्वर-भेद, तमक, हलीमक, सन्निपात, कफ, वात, श्वास एवं कास रोगों का नाश होता है। भटकटैया, वज्रदन्ती, वच, रास्ना, त्रिकुटा एवं सेंधा नमक—इन सबका सिद्ध किया रस नाक में डालने से नाक की दुर्गन्ध दूर होती है।

दंत एवं नासा रोग

शुण्ठीकुण्ठकणाबिल्वः द्राक्षार्कः क्षवथुं हरेत् ।
मर्दयेत् कट्फलार्कस्तु श्लेष्मनाशाय मस्तके ।।42।।
गृहधूमकणादारुनक्ताह्वासैन्धवैः समैः ।
अपामार्गेण जातोऽर्को नासार्शोघ्नो दिनत्रयात् ।।43।।
क्षौद्राश्वलाल संयुक्तमारिचार्कस्य चाञ्जनात् ।
अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदये यथा ।।44।।
शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगास्राव्य वारिणा ।
गह्णीयात्तज्जलं सर्व त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ।।45।।
शुष्कं च तज्जलं सर्वं पर्पटी सन्निभं भवेत् ।
विचूर्णं भावयेत्सम्यक् त्रिफलार्कैः पुनः पुनः ।।46।।
कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत् ।
अञ्जयेन्नयने तेन नेत्राखिलगदच्छिदा ।।47।।
नील्यर्को वाततुंव्यर्कः काकजङ्घाभवोऽथवा ।
गण्डूष करणैर्हन्याद्दन्तानां कृमिजालकम् ।।48।।
त्रिफलास्वर्णमाक्षीकं तारामाक्षिक सैन्धवम् ।
खदिरो दग्धपूगं च लोहचूर्णं समांशकम् ।।49।।
वज्रदन्तीभवे चार्के भावयेद्दिवसत्रयम् ।
लेप्याः सायं तेन दन्ताः सप्ताहादृढ़वत्तरा ।।50।।

सोंठ, कूठ, पीपल, बेलगिरी एवं दाख—इन सबका रस निकाल कर सेवन करने से छींक की बीमारी दूर होती है। जायफल का रस सिर पर लगाने से कफ की बीमारी दूर होती है। गृहधूम,

धमासा, पीपल, देवदारु, हल्दी एवं सेंधा नमक को समान मात्रा में लेकर अर्क निकालकर उस अर्क को नाक के छिद्रों से खींचें। यह रस नाक के रोगों तथा नाक के अर्श रोग को तीन दिनों में ही दूर कर देता है। असगंध, कालीमिर्च तथा शहद का रस निकालकर आंखों में लगाने से अत्यधिक नींद आने की बीमारी ऐसे दूर होती है, जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार दूर हो जाता है।

मैनसिल को पारे के साथ पीसकर तथा पानी से रगड़कर सवा दो सेर घोल बना दें। जमने पर इसके गाद को छोड़ दें। गाद सूख कर पर्पटी के समान हो जाएगा। इसे पीसकर त्रिफला के रस में पुनः पीसकर बार-बार धोएं तथा उसमें दशमांश कपूर डालकर खल (इमाम दस्ते) में कूटें। इस प्रकार बने अंजन को आंखों में लगाने से आंखों की सभी बीमारी दूर हो जाती है। नील एवं तुंबी का रस या काकजंघा के रस से कुल्ला करने पर दांत के कीड़े मर जाते हैं। त्रिफला, सोनामाखी, रूपामाखी, सेंधा नमक, कत्था, जली सुपारी एवं लोहे का चूर्ण—सबको बराबर अनुपात में लेकर वज्रदन्ती के रस में तीन दिनों तक भिगोएं। फिर गर्म करके उससे दांतों को सात दिनों तक साफ करने से दांत मजबूत हो जाते हैं।

व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमुर्वार्क भावितम् ।
उपजिह्वा प्रशान्त्यर्थं पीडयेदुपजिह्वकाम् ।।51।।
कटुत्रयं शिवा धात्री यवानी जीरकद्वयम् ।
चव्यमौषधवत्तुल्या भाग युग्मं च सैन्धवम् ।।52।।
सप्तवारानम्लवर्गे द्विगुणैश्चित्र कार्ककैः ।
भावयित्वा वटी कार्या जिह्वादन्तरुजापहम् ।।53।।
वचा चातिविषा पाठा रास्ना कटुक रोहिणी ।
पिचुमन्दार्ककवला तालुरोग विनाशनम् ।।54।।
गोमूत्राऽतिविषादारुपाठा विषकलिङ्गका ।
कटुकार्कस्य पानेन कण्ठरोग विनाशनम् ।।55।।
जातीपत्रामृताद्राक्षावासदार्वीफलत्रिकम् ।
अर्कः शीतः क्षौद्रयुक्तो गण्डूषान्मुखपाकनुत् ।।56।।
कृष्णजीरक कुष्ठेन्द्रजवजार्कस्य सेवनात् ।
त्रिदिनेन वणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ।।57।।
नीलोत्पल दले क्लिन्नं त्रिदिनं मधुकं ततः ।
अर्को गण्डूषतो हन्ति लालास्रावं न संशयः ।।58।।

त्रिकुटा, क्षार, हरड़ एवं चित्रक को मूर्वा के रस में भिगोएं। टांसिल रोग की शान्ति के लिए इस रस को जीभ पर रगड़ना चाहिए। त्रिकुटा, हरड़, आंवला, अजवायन, सफेद तथा स्याह जीरा और चव्य—सबको बराबर मात्रा में लेकर सात बार खटाई (नीबू आदि) में भिगोएं। इसमें दो भाग सेंधा नमक मिलाकर, दोगुने चित्रक के रस में मिलाकर गोली बना लें। इस गोली से जीभ तथा दांतों के रोग दूर होते हैं। वच, अतीस, पाठा, रास्ना तथा कड़वी रोहिणी में पिचुमन्द (नीम की एक प्रजाति) मिलाकर गोली बना लें। इस गोली के चूर्ण का नस्य लेने से तालु रोग खत्म हो जाता है।

गाय का मूत्र, अतीस, देवदारु, पाठा, मीठा तेलिया, इन्द्रजौ तथा कुटकी सबका रस मिलाकर सेवन करने से कण्ठ के रोग दूर होते हैं। जावित्री, गिलोय, दाख, जवासा, दारुहल्दी एवं त्रिफला —इन सबके ठंडे रस में शहद मिलाकर कुल्ला करने से छाले अथवा मुंह का पक जाना दूर हो जाता है। कालाजीरा, कूठ तथा इन्द्रजौ के अर्क के सेवन से घाव (व्रण), मुंह के छाले तथा मुंह की दुर्गन्ध सब दूर हो जाते हैं। नीलकमल के पत्तों को शहद में तीन दिन तक डालकर मसलकर रस निकाल लें। इस रस से कुल्ला करने से मुंह पर लार बहनी बंद हो जाती है।

स्थावर विष चिकित्सा

स्थावरेण विषेणार्तं मदनार्केण वा जयेत् ।
शतपत्र्यादिकार्कैस्तु रेचकं तु समाचरेत् ।।59।।
दद्याच्च मधुसर्पिभ्यां मरिचार्कं तु साम्लकम् ।
हेमार्कसाधितैरर्कैर्मर्दयेच्च विरेचयेत् ।।60।।
आदौ संस्नेहनं कृत्वा ततो लेपं समाचरेत् ।
गोमूत्रपिष्टैः पञ्चाङ्गैः शिरीषस्य पुनः पुनः ।।61।।
सूचीविषवमेश्चार्थमर्कं दद्याद्द्वयोरपि ।।62।।

स्थावर-विष से पीड़ित मनुष्य को मैनफल के रस से छेदन करें, फिर कमलिनी के अर्क से रेचन कराएं। उसके बाद शहद, घी तथा नीबू के साथ काली मिर्च का सेवन कराएं। फिर पीली कटेली तथा आक के रस से मालिश एवं दस्त कराएं। पहले तेल मालिश करें, बाद में लेप लगाएं। गाय के मूत्र में भली-भांति पीसे गए सिरस के पञ्चाङ्ग का लेप करके दोनों (छोटी-बड़ी) पीपल का रस पीने के लिए दें।

स्त्रियों के रोग

पिप्पल्यो धान्यकं मांसी लोध्रमेला सुवर्चिता ।
स्थूलैला मरिचं वालं निर्विषी स्वर्ण गैरिकम ।।63।।
मालत्यर्केण गुटिकां कर्षमात्रं तु भक्षयेत् ।
गुरुऽयर्कस्य पानं तु सर्पाणां विषनाशनम् ।।64।।
सूर्यावर्तार्कगन्धस्तु वृश्चिकस्य विषं हरेत् ।
अपामार्गजरार्को वा धत्तूरार्कः सदुग्धकः ।।65।।
अङ्कोलार्कोऽथ वंशार्कः श्वविषघ्नः पृथक्-पृथक् ।
रजनीयुग्म पातङ्गं मञ्जिष्ठानागकेशरम् ।।66।।
गैरिकार्केण शीतेन लेपो लूताविनाशनः ।
बिडालमांस्यर्क लेपो मूषकानां विषापहः ।।67।।
तिक्ता जाजीनागरयेरर्केण सहपेषितम् ।
शतपद्या हरेत्सद्योद्विषमुष्टिभवं विषम् ।।68।।
पिप्पल्यादिविषं हन्याच्छुण्ठ्यर्कस्तत्रमर्दितः ।
सिता दुग्धेन संयुक्तं माषार्कस्य पलद्वयम् ।।69।।
घृतदुग्धाशिनी नारी प्रदरात्परिमुच्यते ।
अशोक वल्कलार्कश्च घृतं दुग्ध च शीतलम् ।।70।।

यथावत्प्रपिबेत्प्राता रक्तप्रदर नाशनम् ।
दार्वीरसाञ्जनं वासा किरातश्चार्कपुष्पकम् ।
रक्तचन्दन बिल्वार्कः सक्षौद्रोऽसृग्दरं हरेत् ।।71।।

पीपल, धनिया, जटामांसी, लोध, इलायची, हुरहुर, बड़ी इलायची, कालीमिर्च, नेत्रबाला, निर्विषी एवं सोनागेरू—सबको चमेली के रस में पीसकर गोली बना लें। इस गोली को चार माशा के बराबर मात्रा में सेवन करने से सांप के विष का प्रभाव दूर हो जाता है। पाताल गहड़ी का रस भी सभी प्रकार के सांप के विष को समाप्त करता है। सूर्यावर्त के रस में गन्धक मिलाकर सेवन करने से बिच्छू का विष समाप्त हो जाता है। ओंगा की जड़ को धतूरे के अर्क के साथ दूध में पीने से बिच्छू का विष दूर होता है। अंकोल के फल रस तथा बांस के रस को अलग-अलग पिलाने से कुत्ते का विष समाप्त हो जाता है।

दोनों प्रकार की हल्दी, पतंग, मजीठ, नागकेशर तथा गेरू—सबके रस को ठंडा करके लगाने से मकड़ी का विष दूर हो जाता है। बिल्ली के मांस के अर्क को लगाने से चूहे का विष उतर जाता है। कुटकी, काला जीरा एवं सोंठ के रस में पिसा हुआ शतावरी तथा कुचले को मिलाकर लगाने से कनगोजर (कनखजूरा) का विष दूर होता है। चींटी के विष में सोंठ के रस को मलना चाहिए। उड़द के अर्क को दो पल के बराबर दूध तथा मिश्री के साथ लेने से स्त्रियों का प्रदर रोग दूर हो जाता है। अशोक की छाल के ठंडे रस को घी एवं दूध के साथ प्रतिदिन सुबह के समय नियमपूर्वक लेने से रक्त प्रदर तथा योनि रोग दूर होता है। दारुहल्दी, रसौत, अड़ूसा, चिरायता, आक के पुष्प, लाल चन्दन तथा बेल—सभी का रस निकालकर शहद के साथ लेने से रक्त प्रदर नष्ट हो जाता है।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु ।
शर्कराभिः कृतं मद्यं सोमरोग विनाशनम् ।।72।।
चक्रमर्दकमूलं तु सम्पिष्टं ताण्डुलाम्बुना ।
प्रभातसमये पीतस्तदर्को बहुमूत्रजित् ।।73।।
ज्योतिष्मतीघनाराजीव चाशनभवोऽर्ककः ।
शीतल पयसा पीतो नारीणां पुष्पकारकः ।।74।।
अश्वगन्धाभवार्केण सिद्धं दुग्धं घृतान्वितम ।
ऋतुस्नातांगना प्रातः पीत्वा गर्भ दधाति हि ।।75।।
आरनालपरिपेषिता त्र्यहं माजया कुसुमती च पुष्पिणी ।
या पुराणगुडमिष्टसेविनी सा दधादि नहि गर्भमङ्गना ।।76।।
नववार्ताकिनी कुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ।
साधितोऽर्कः पिचुं योनौ विलुप्तायां तु धारयेत् ।।77।।
वातलां कर्कशां तप्तां मत्तस्पर्शां तथैव च ।
कुम्भैरुष्णैरूपचरेदन्तर्वेश्मनि संवृते ।।78।।
बिल्वं शिरीषस्तुलसीयुग्मपाठा च राजिका ।
श्वेत दूर्वा मरूबको भार्ङ्गी कह्लारभूस्तृणम् ।।79।।
श्वेत वर्वरिका कृष्णवर्वरीकासमर्दकः ।।80।।
महानिम्बः कट्फलं च निर्गुण्डयश्चारिशल्लकी ।

उदुम्बरी भारवाहो विडङ्ग काकमाचिका ।।81।।
बला एलाममांसान्स्तु दद्यान्मूत्राष्टकं त्र्यहम् ।
गोजा विमहिपोष्ट्राणां खराश्वकरिणां तथा ।।82।।
निष्कासयेत्ततश्चार्कं शाम्भवं कवचं जपन् ।
परिवेषप्रयोक्तव्यं स्कन्दापस्मारशान्तये ।।83।।

पका केला, आंवले का रस, शहद तथा शक्कर से निकाला गया मद्य नारियों के सोमरोग को दूर करता है। मालकांगनी, नागरमोथा, राई, वच एवं नीम के रस को ठण्डे पानी के साथ सेवन करने से स्त्रियों का मासिक धर्म ठीक होता है। जो नारी ऋतुस्नान करने के बाद असगंध के रस से सिद्ध किए दूध में घी मिलाकर प्रातःकाल सेवन करती है, वह अवश्य गर्भवती हो जाती है। कांजी में भिगोए गए अगेषू के फूलों के रस को तीन दिनों तक लेने वाली स्त्री पुष्पिनी होती है। पुराने गुड़ का सेवन करने वाली स्त्री को गर्भ नहीं ठहरता।

नई कटेली, कूठ, सेंधा नमक एवं देवदारु के रस में भिगोए हुए बकायन के फल को जो स्त्री अपनी योनि में रखती है तथा वातला, कर्कशा, तप्ता एवं मत्तस्पर्शा चारों श्रेणियों की नारी ऊपर से सेंक करती हैं, उनका योनि-संकोचन होता है। बेल, सिरस, तुलसी, दोनों प्रकार की पाठा, राई, सफेद दूर्वा, मूर्वा, भारंगी, कमल, भूतृण, सफेद बबूल, स्याह बबूल, कसौंदी, बकायन, कायफल, संभालू, शल्लकी, गूलर, मोथा, बायबिडंग, काकमाची, खिरैटी, इलायची तथा जटामांसी—सबको तीन दिनों तक आठ पशुओं—गाय, बकरी, भेंड़, भैंस, ऊंटनी, गदही, कुतिया एवं हथिनी के मूत्र में भिगोएं। फिर मन में शिवजी के कवच का पाठ करते हुए रस निकाल लें। यह रस बच्चों को होने वाले भूत-प्रेतजन्य मूर्च्छा आदि को दूर करता है।

कामशक्ति में वृद्धि

जातमात्रस्य वालस्य वल्लमर्कं प्रदापयेत् ।
तज्जनन्या पलं देयम—जादेर्द्विगुणादिकम् ।।84।।
घनकृष्णारुणाशृंगीजातोऽर्कः क्षौद्रसंयुतः ।
शिशोर्वरातिसारघ्नः कासश्वासवमीन् हरेता ।।85।।
विडंगान्यजमोदा च पिप्पली तंडुलानि च ।
एषामर्कः सुखोष्यस्तु कालस्यामातिसारजित् ।।86।।
रजनी सरलो दारू बृहती गजपिप्पली ।
पृष्ठपर्णी शताह्वा च जातोऽर्को मधुसर्पिषा ।।87।।
दीपनी ग्राहिणी हन्ति महार्तिं च सकामलान् ।
ज्वरातीसारपाण्डुघ्नी बालानं सर्वरोगनुत् ।।88।।
कणोषणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैला सैन्धवैः कृतः ।
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनामर्कमुत्तमम् ।।89।।
स्वर्णमाक्षिक लोहे च पारदश्च शिलाजतु ।
पथ्या विडङ्गधत्तूरैर्विजया जातिपत्रिका ।।90।।
अश्वगन्धा गोक्षुराणामर्कैर्भाव्यं पृथक् पृथक् ।
सप्तवस्रं तु वल्लैकं मध्वाज्याभ्यां लिहेत्ततः ।।91।।

शिशु के जन्म लेते ही तीन रत्ती की मात्रा में यह रस उसे तथा एक पल की मात्रा में उसकी माता को दें। बकरी आदि पशुओं को दुगुनी मात्रा में देना चाहिए। नागरमोथा, पीपल, मंजीठ तथा काकड़ासींगी—सबके रस को शहद के साथ देने से बालक के अतिसार, खांसी, श्वास तथा उल्टी रोग समाप्त हो जाते हैं। बायबिडंग, अजमोद, पीपल और चावल—सबके रस को थोड़ा गर्म करके देने से बच्चों का दस्त ठीक हो जाता है।

हल्दी, सरल, देवदारु, भटकटैया, गजपीपल, पृष्ठपर्णी और शतावर—सब का रस निकालकर घी एवं मधु के साथ लेने से अग्नि प्रदीप्त होती है, मल बंधता है तथा कामला, ज्वर, अतिसार, पाण्डु रोग एवं शिशुओं के सब प्रकार के कष्ट दूर होते हैं। पीपल, कालीमिर्च, मिश्री, शहद, छोटी इलायची तथा सेंधा नमक—सबका रस पिलाने से बालकों का पेशाब रुक जाना दूर होता है। सोनामाखी, लोहा, पारा—सबको अलग-अलग तथा शिलाजीत, हरड़, बायबिडंग, धतूरा, भांग एवं जावित्री—सबको अलग-अलग असगंध और गोखरू के रस में सात दिन भिगोएं। उसके बाद घी के साथ चाटने से कामशक्ति में वृद्धि होती है।

गवां विरूढ़वत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् ।
गोधूमचूर्णं च सिता शीतं मधुघृतान्वितम् ।।92।।
भुक्त्वा हष्यति जीर्णोऽपि दशदारान् व्रजत्यपि ।
ब्रह्मचर्यं प्रकर्तव्यमेकविंशदिनावधि ।।93।।
अपर्णाबीजसंयुक्तमुग्रबीजं प्रकल्पयेत् ।
तुल्यमुन्मत्तबींज च तदर्केणैव भावितम् ।।94।।
सतैलं भावितं पश्चादस्य वल्लयुगं नरः ।
संमितं भक्षयन् कामाद्रमणीं रमयते ध्रुवम ।।95।।
स्वच्छवल्लं बबूलस्य शिम्बीरसविभावितम् ।
सायं वेदागुलं दुग्धे क्षाल्यं दुग्धे पिबेत्तत् ।।96।।
वीर्यस्तम्भो भवेल्लेपाद्योनिर्गाढा प्रजापते ।
बबूल्यर्कं सलवणं पीत्वा तद्वेगरोधनात् ।।97।।
केतक्यर्केण बहुशो गन्धपाषाणधूपितो दशधा ।
तद्युक्तलिङ्गभोगाघोनौ लिङ्गे सुगन्धि स्यात् ।।98।।

अधिक समय की बछड़ा वाली गाय के दूध में पकाई गई गेहूं की खीर को मिश्री मिलाकर ठंडा करके उसमें शहद तथा घी डालकर खाने से व्यक्ति बूढ़ा हो जाने पर भी दस नारियों का भोग कर सकता है। परन्तु इस खीर का सेवन आरंभ करने के बाद इक्कीस दिनों तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। शुद्ध बबूल की छाल को नीबू के रस में भिगोकर उसमें चार अंगुली का सफेद कपड़ा रंग लें, फिर उस वस्त्र को पीने योग्य मात्रा के दूध में धोकर पी लें। इस प्रकार का दूध रोज पीने से पुरुष का वीर्यस्तंभन होता है। इसका लेप करने से लिङ्ग मोटा होता है।

यदि स्त्री उस कपड़े को अपनी योनि में रखे तो योनि संकुचित हो जाती है। बबूल का रस नमक के साथ पीकर काम वेग को रोकने से भी वीर्यस्तंभन होता है। केतकी के रस में बुझाया तथा दशाङ्गधूप में सुवासित गन्धक को लिङ्ग में लगाकर स्त्री के साथ संभोग करने से योनि एवं लिङ्ग दोनों सुगन्धित हो जाते हैं।

।। लंकेश्वर रावणकृतार्कप्रकाशे सप्तं शतकं संपूर्णम् ।।

❑❑

अथार्कप्रकाशे

अष्टम शतकम्

वशीकरण विधि

हंसहेली जटारंगोरोचनां टंकणं तथा ।
स्वार्कक्लिन्नैस्तदर्कैस्तु नार्या वै सारिवा तथा ।।1।।
भोज्ये पाने प्रदातव्यं जन्माद्यो भूतगंधया ।
भोज्ये पाने येन नीतः प्रेष्ठजीवितवश्यकृत् ।।2।।
खवल्लिफलदलजार्क सप्ताहं वासितः स्त्रियै देयः ।
एवं विधिना हि रतया पुंसो दत्तो जगद्वशकृत ।।3।।
सार्द्धमरण्यरजन्या त्रिखादितः स्वान्तसाधितस्नेहम् ।
सकलमही भुग्ललना वृशीकरं नागतुल्ये मे ।।4।।
प्रस्थापित पितृस्थाने एवमर्कं पिबेत्तु या ।
स सेवितो नखाहेन वशीकरण सिद्धिदः ।।5।।
वामिनो मिथुनं ग्राह्यं वियोगं तस्य कारयेत् ।
स्मरनेत्राग्निदाह्यत्वमापीडादृढबन्धनम् ।।6।।
एवं स्वनिकटे स्थाप्य ततो नार्यै समर्पयेत् ।
ब्रह्मासनं गतो वापि तत्त्यक्त्वा स्वप्रियो भवेत् ।।7।।
आधेवोऽर्कस्तु साध्योऽसावाधारार्कश्च साधकः ।
पीत्वाकर्षयते शीघ्रं चतुर्धा चतुरां स्त्रियम् ।।8।।
ॐ ताराय कृष्णाय त्रिनेत्राय ईक्षिताय ।
'आर्याय नमष्टः ठः स्वाहा'—इति मन्त्रः ।।9।।
मन्त्रो ह्ययं पुरश्चार्यो जप संख्याक्रमेण वै ।
पंचसंख्याप्रजापेन समाकर्षयते ध्रुवम् ।।10।।

अब वशीकरण विधि के बारे में बताते हैं—शंखाहुली की जड़, लाल चंदन तथा गोरोचन—सबको एक-एक टंक के बराबर लेकर उनके ही रस में भिगोकर अर्क निकाल लें। उस अर्क को सारिवा के साथ खाने-पीने की वस्तुओं में मिलाकर स्त्री को खिला देने से वह नशे में हो जाती है। इस उन्मत्त करने वाले अर्क को सुवासित करके जिसको भी दिया जाएगा, वह वश में हो जाएगा।

उसी अर्क को यदि आकाशबेल के पत्तों और पुष्पों के रस में भिगोकर स्त्री को पिलाया जाए या स्त्री द्वारा पुरुष को पिलाया जाए तो संसार के सभी नर-नारियों का वशीकरण हो जाता है। इसी उन्माद्य-रस को वनहल्दी के साथ एकान्त में तीन दिनों तक सेवन करने से राजा और रानी सभी वश में हो जाते हैं। अपने पीहर (मायके) गई स्त्री इस उन्माद्य रस को बीस दिनों तक पिए

तो वश में हो जाती है। मदिरा (शराब) पीने वाले स्त्री-पुरुष के जोड़े को एक-दूसरे से अलग कर, फिर उन्हें एक दूसरे के सामने इस प्रकार रखें कि उनकी काम के वशीभूत दृष्टि एक-दूसरे को वियोग की अग्नि में जलाती रहे। फिर पुरुष को स्त्री की गोद में लिटा दें तो ब्रह्मा के सिंहासन पर स्थित पुरुष भी उसे छोड़कर स्वयं का प्रिय बन जाता है।

अर्क का साध्य 'आधेय' एवं 'साधक' आधार होता है। इस अर्क का चार दिनों तक सेवन करने से चालाक नारी जल्दी ही आकर्षित हो जाती है। **ॐ ताराय कृष्णायत्रिनेत्राय ईक्षिताय आर्याय नमष्टः ठः स्वाहा** मन्त्र को एक लाख बार जप करके पुरश्चरण करें—इससे मंत्र सिद्ध हो जाता है। इसके बाद आवश्यकता के समय केवल पांच बार मंत्रोच्चारण करने से ही साध्य नर-नारी का साधक के प्रति आकर्षण हो जाता है।

विद्वेषण विधि

अहोरात्र्यन्धयगूनां केशास्तद्वाहनस्य वा ।
निखनेन्निर्गमद्वारिं तदर्कं दिक्षु विन्यसेत ।।11।।
वक्ष्यमाणं महामंत्रं जपेत्पूर्व विधानतः ।
विद्वेषस्तु प्रजायेत त्रिदिनान्नात्र संशयः ।।12।।
हयारिहययो रक्तघृतेनाभ्यज्य कज्जलम् ।
कृत्वा दत्त्वा नयनयोर्यं पश्येद्द्वेषणं भवेत् ।।13।।
'तारोह ॐ डामरेति ईश्वरायमुकेन च ।
सह द्वेषं कुरु-कुरु स्वाहा ठष्ठः' अयं मनुः ।।14।।
आभ्यन्तरं बहिः शुद्धिर्ब्रह्मचर्यं यथोदितम् ।
अल्पाहारञ्चाल्पनिद्रा नियमः सर्वसिद्धिषु ।।15।।
महादेवाभरणकं तत्सुतांश्च लघीयसः ।
क्षिप्त्वा चाहिवरच्छिद्रे मासमांत्रं समुद्धरेत् ।।16।।
साध्यस्य निरवनेद्द्वारि किंचिच्चैवं तथा पुनः ।
आग्निकोणाद्वायुकोणे क्षिपेदेतत्समुच्चरेत् ।।17।।
बलि गृह्णिन्त्विमे भूताः स्थानस्थाः सर्व एव हि ।
उच्चाटयन्तु सर्वेऽपि रिपुमेनमहत्रिकात् ।।18।।
'तारो नमो भगवते डामरेश्वरमूर्तये ।
'उच्चाटय' इति मन्त्रेण कार्यसिद्धिरुदाहृता ।।19।।
ब्रह्मचर्यादिनियमान् धारयेद्विधिपूर्वकम् ।
जपेत गुरुमार्गेण दीक्षितो मंत्रसिद्धिदम् ।।20।।

अब विद्वेषण प्रयोग के बारे में बताते हैं—उल्लू, रतौंधी से ग्रसित मनुष्य एवं लंगड़े आदमी के बाल तथा घोड़े जैसे वाहन पशु के बाल—इन सबको उन व्यक्तियों के दरवाजे पर गाड़ दें, जिनमें आपस में झगड़ा कराना हो। फिर पहले वर्णित उन्माद्य रस को इनके चारों ओर छिड़क दें। अब अग्र कथनानुसार मन्त्र को पहले के विधान से तीन दिनों तक लगातार जप करें। इससे दोनों व्यक्तियों में शत्रुता हो जाएगी। भैंसा तथा घोड़े के खून में घी मिलाकर काजल बनाएं। उस काजल को आंखों में लगाकर जिसे देखेंगे, उसी का विद्वेषण हो जाता है। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ताराय ॐ डामराय ईश्वराय अमुकेन सह विद्वेषं कुरू कुरू ठः ठः स्वाहा (इस मंत्र में जह 'अमुकेन' शब्द आया है, वहां जिसके प्रति प्रयोग करना हो, उसके नाम का उच्चारण करना चाहिए)।

योग के बताए तरीके से भीतरी तथा बाहरी शुद्धि करते हुए, धर्मशास्त्र की रीति से ब्रह्मचर्य का पालन करें। अल्पाहार तथा अल्पनिद्रा का सेवन करते हुए नियमपूर्वक रहें। इससे समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं। सांप तथा उसके बच्चों को मारकर उसी के बिल में गाड़ दें। फिर एक महीने बाद निकाल कर, उसके एक भाग को अमुक व्यक्ति के दरवाजे पर तथा शेष भाग को आग्नेय कोण से वायव्य कोण की ओर छोड़ दें। ऐसा करते समय 'हे इस स्थान के वासी सम्पूर्ण भूतो! तुम इस बलि को स्वीकार करो', का उच्चारण करें। साथ ही तीन दिनों तक इस मंत्र का जप करें— **ॐ नमोः भगवते डामरेश्वरमूर्तये अमुकं उच्चारयोच्चाटयः ।** ब्रह्मचर्य आदि नियमों को विधिपूर्वक धारण करते हुए तथा गुरु द्वारा बताई विधि से मन्त्र का जप करने से मन्त्र सिद्धि देता है।

स्तम्भन विधि

अन्तिम पाण्डववल्ली शिखरी सिद्धार्थमार्कवं चैव ।
श्वेतांवचैषामर्कमादौ पीत्वा तद्धर्ष येल्लोहम् ।।21।।
पात्रे तच्चन्दनसमं द्विदिनान्ते समुद्धरेत् ।
तिलकं सर्वशत्रूणां बुद्धिस्तम्भकरं परम् ।।22।।
'तारो नमो भगवते विश्वमित्राय वै नमः' ।
चतुर्दशाक्षरो मन्त्रः सिद्धेऽस्मिन्कर्मणि स्मृतः ।।23।।
यवनार्कस्तु सांघ्रिश्च हरितालेन वेष्टयेत् ।
ताम्रपात्रे पुनर्वेष्ट्य मुखस्थं सर्वशत्रुहृत् ।।24।।
पीत्वादौ कृकलासार्कं 'ॐ चामुण्डे भवेति च ।'
मन्त्रो भवेद्दारुणोऽसौ मनुरेकादशाक्षरः ।।25।।
लिखेच्चित्रं तदर्केण रक्ताश्वारिप्रसूनकम् ।
सम्माार्ज्य दर्पणं पश्येत्खराश्वाघं स्वरूपकम् ।।26।।
ज्वाला मुख्यम्लवेतं च रक्ताश्वारि प्रसूनकम् ।
सम्मार्ज्यं दर्पणं पश्येन्नृखराश्वोष्ट्र रूपकम् ।।27।।
गोदुग्ध्यर्केऽञ्जनं पुष्पे सेन्द्रजालिककज्जलैः ।
दर्पणे दृश्यते रूपं पूर्वजन्मसमुद्भवम् ।।28।।
नार्याजरायुधूपेन चित्रं वह्नौ प्ररोहति ।
पुनर्माहिषधूपेन योगात्स्वस्थं भवेद्ध्रुवम् ।।29।।
नस्येऽञ्जनं तदातेन कृतभ्रान्ति निवारणम् ।
तत्तुल्यागर्भशय्याया धूपाद्भिन्ना न दृश्यते ।
प्रकटत्वं समायाति स्वर्ण माहिष धूपतः ।।30।।

अब स्तम्भन विधि के बारे में सुनो—पुराने अर्जुन के पेड़ का तना, अपामार्ग, सरसों, भांगरा तथा श्वेत वच—सबका रस निकालकर, इनके अर्क से एक लोहे को खूब घिसें। घिसते हुए जब

वह चन्दन के समान हो जाए तो उसे बर्तन में दो-दिन तक रखा रहने दें। उसके बाद चतुर्दशाक्षर मंत्र **ॐ नमो भगवते विश्वामित्राय वै नमः** को जप कर सिद्ध करें तथा इसी मन्त्र का उच्चारण करते हुए बर्तन में रखे लौह-चन्दन से अपने मस्तक पर तिलक करें। ऐसा करने से देखने वाले दुश्मनों की बुद्धि स्तम्भित हो जाएगी। हरताल को प्याज तथा लहसुन के रस के साथ तांबे के बर्तन में घिसें, फिर उसे मुख में रखें। सारे शत्रु पराजित हो जाएंगे। परन्तु इससे पहले कृकलास का रस पीकर **ॐ नमश्चामुण्डायै नमो नमः** या **ॐ चामुण्डायै भवाय च नमः** —इन ग्यारह अक्षरों के मंत्र का जप कर लेना चाहिए। यह शत्रु को हराने वाले कठिन मंत्र हैं।

भैंसे के खून से फूल के आकार का चित्र बनाएं, फिर उसी खून से दर्पण को मांजकर उसमें अपनी शक्ल देखने पर वह भैंसा जैसी दिखाई पड़ेगी। लाल घोड़ा तथा भैंसे का खून एवं ज्वालामुखी और अम्लवेत के रस से आईने को मांजकर उसमें अपनी शक्ल देखने से वह गदहा, घोड़ा तथा ऊंट जैसा दिखाई देगा। फूल को दुद्दी के रस में रंगकर उसमें ऐन्द्रजालिक काजल तैयार करें, फिर उससे आईने को मांजकर अपनी शक्ल देखें। उसमें पहले जन्म का स्वरूप दिखाई देगा। स्त्री को जेर की धूप देने से पूर्वोक्त फूल आदि का चित्र हंसने-खिलने लगता है, फिर भैंसे की धूप देने से वह स्वस्थ हो जाती है। उसे नाक से सूंघने पर किए-कराए की दुविधा दूर होती है। गर्भवती स्त्री के बिछावन के नजदीक धूप देने से दोनों मिली हुई दिखाई देती हैं। इसके बाद माहिष-धूप देने से वे नजदीक मिली हुई दिखाई देंगी।

मारण विधि

हालाहलं वत्सनाभं लाङ्गली चित्रमूलकम् ।
स्वादजां चौर्णनाभिं च श्वेता च गृहगोधिका ।।31।।
एतदर्केण वस्त्राणि लिप्त्वा यः परिधारयेत् ।
विमुक्तर्णतयेवैवं जायतेऽसौ यमेऽतिथिः ।।32।।
गोपालादस्योरसस्तु यत्नादर्कं समुद्धरेत् ।
पुनर्हालाहलार्केण भावितं तच्च मेलयेत् ।।33।।
महारसेन देयोऽसौ चम्वेल्यर्कानुपानतः ।
वारमेकं स रमते रमणीभिर्भुनक्ति च ।।34।।
स्तुतिं कुर्वन्ति वैद्यस्य को वा धन्वन्तरिस्त्वयम् ।
सोऽथ कुर्वीत वमनं रेचनं च म्रियेत च ।
रुधिरच्छार्दि रित्यादिदुष्टदुःखैर्विदूषितः ।।35।।

अब मारने के प्रयोग के बारे में बताते हैं—हलाहल, वत्सनाम, जलपीपल, चित्रकमूल, खारीमूल, मकड़ी तथा सफेद छिपकली—इन सबका रस जिस व्यक्ति के कपड़े में लगा दें, वह उस कपड़े को पहनते ही ऋण-मुक्ति के समान यमराज के आतिथ्य में चला जाता है। बाघ के खून का अर्क निकाल लें तथा उसे हलाहल के विष के अर्क में मिला दें। चमेली के रस के साथ यह महारस जिस मनुष्य को दिया जाता है, वह मात्र एक बार ही स्त्री के साथ रमण तथा भोजन कर पाता है। इस तरह के रस को तैयार करने वाले वैद्य को सब लोग धन्वन्तरि समझ कर प्रार्थना करते हैं तथा उसका प्रयोग अवश्य सफल हो जाता है। जिसे मारना हो, वह व्यक्ति वमन, विरेचन, रक्तस्राव आदि कष्टों से दुःखी होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

अदृश्य विधि

बिडालकंटक क्षौद्रो हलमी नव केशरैः ।
योगिन्यर्कोऽञ्जनं चैतदन्धकारे तु मेलयेत् ।।36।।
तदीयां गुटिकां कृत्वा क्षिणेत्त्रेधा तु सम्पुटे ।
मुखमध्ये स्थिता यस्य सोऽस्य दृश्यः प्रजायते ।।37।।
शिवालये तु कन्यार्कः शिलायां शिलया सह ।
ललाटे तिलकं कृत्वाऽदृश्यो भवति तत्क्षणात् ।।38।।
स्रोतोञ्जनं सप्तवारं तेन कार्याऽर्क भावना ।
शरावं तत्तु तत्कुक्षौ दत्वा पाकगृहे पचेत् ।।39।।
पुटपाकविधानेन पचेदेवं महानसे ।
तदञ्जनाददृश्यः स्यात्पुनस्तत्स्रंसनात्स्फुटम् ।
'तारानमोडामराया दृश्य सिद्धिं करोतु चेत् ।।40।।

अब अदृश्य करने की विधि बताते हैं—गोखरू, मधु (शहद), कलिहारी तथा अच्छा-नया केशर—इन सबको जटामांसी के रस में मिलाकर अंधेरी जगह में खूब घोटें। गाढ़ा हो जाने पर छोटी-छोटी गोलियां बना लें। इन गोलियों को तीन पर्तों में लपेटकर मुख में रखने वाला मनुष्य किसी को नहीं दिखाई देता। ग्वारपाठा के रस में मैनसिल को शंकरजी के मन्दिर में घिसकर मस्तक पर तिलक लगाने से उसी क्षण टीका लगाने वाला अदृश्य हो जाता है।

ग्वारपाठे के रस में स्रोतोंजन को सात बार भिगोकर मिट्टी के बर्तन में रख दें, फिर उसे रसोईघर में पकाकर पुटपाक की विधि से काजल बना लें। इस काजल (अंजन) को आंखों में लगाने वाले को कोई नहीं देख पाता तथा उसे हटा देने पर दुबारा दिखाई देने लगता है। अदृश्य करने का मंत्र इस प्रकार है— **ॐ तारो नमो डामरामादृश्यसिद्धि कुरु कुरु स्वाहा** (इस मंत्र को एक लाख बार सिद्ध करना आवश्यक है। मंत्र सिद्धि के बाद पहले बताई वस्तुओं को इस मंत्र से पांच बार अभिमन्त्रित करने के बाद प्रयोग में लाना चाहिए)।

सम्मोहन विधि

कालोन्मत्तस्य पञ्चाङ्गं कृष्णसर्पे विनिःसृतम् ।
शम्भोरस्त्राद्भावितस्य धूपो यस्मै प्रदीपते ।
सम्मोहनमवाप्रोति नरो वा नरवाहनः ।।41।।
रूद्रप्रियस्य बीजानामर्केणैव विभावितम् ।
दशधा तालकं भाव्यं भक्षणात्सर्व मोहकृत् ।।42।।
गुरुहेली कामफली काकोदुम्बरिभूफली ।
कन्यापुरुषमूत्राभ्यां सप्तवारेण भावयेत् ।।43।।
शोषयित्वा ततः पेष्यं धत्तुरार्केण गोलिका ।
विधानतिलकेनैव मोहयेद्भुवनत्रयम् ।।44।।

अब सम्मोहन की विधि बताते हैं—काले धतूरे का पञ्चाङ्ग एवं काला सांप को मिलाकर रस निकाल लें तथा शिवजी के अस्त्र का धुआं दें। जिस मनुष्य या मनुष्य के वाहन पशु को यह धुआं दिया जाता है, वह सम्मोहित हो जाता है। धतूरे के बीज के रस में हरताल को दस बार डुबोकर

सुखा लें। इसे जिस स्त्री-पुरुष को खिलाया जाता है, वह सम्मोहित हो जाता है। गुरूहेली, कामफली, काकोदुम्बरी तथा आंवला—सबको बालक एवं बालिका के मूत्र में सात बार भिगोकर सुखा लें। इसके बाद उसे पीसकर धतूरे के अर्क में गोली बनाकर रख लें। इस गोली का तिलक लगाने से लोग सम्मोहित हो जाते हैं।

अग्नि स्तम्भन विधि

रक्तयाभेकशशिज-पाटलार्को जलस्थले ।
कृत्वाऽथ पाचयेत्तैलं यथोक्तविधिना ततः ।।45।।
एतेषामेव यो लेपं कारयेत्करपादयोः ।
अङ्गराणामुपरितो नरो भ्रमति भूमिवत् ।।46।।
सहव्येक्षुभवं पीत्वा चर्वयेत्तगरं वचाम् ।
तप्तलोहं लिहेत्पश्चात्कृतदोषो विशुद्ध्यति ।।47।।
उच्चटाया रसेनैव सर्वांगे लेपमाचरेत् ।
अङ्गराद्यग्नि कामध्ये भ्राम्यमाणोः न दृश्यते ।।48।।
तारश्च वज्रकिरणे अमृतं कुरु युग्मकम् ।
स्वाहान्तस्तिथि वर्णोऽयमग्निस्तम्भो नियोजयेत् ।।49।।

अब अग्नि स्तम्भन के प्रयोग बताते हैं—जोंक, मेढक, पाटल (कमल) और कुमुदिनी के रस के नीचे जल पात्र रखकर यंत्र-विधि से तेल निकाल लें। इस तेल को हाथ-पांव में लगाकर मनुष्य आग पर उसी प्रकार चल सकता है, जैसे पृथ्वी पर चल रहा हो। घी के साथ गन्ने के रस को पीकर, तगर तथा वच को चबा लें। उसके बाद यदि आग में तपे हुए लोहे को जीभ पर रख लें तो भी कोई तकलीफ नहीं होगी। यदि उटंगन के रस को सारे बदन पर लगाकर अंगारों पर चलें या आग में घुस जाएं तो भी शरीर नहीं जलता। इस काम के पहले पन्द्रह अक्षरों वाले मंत्र को सिद्ध कर लेना चाहिए। मंत्र इस प्रकार है— **ॐ तारकेश्वर वज्रस्यामृतं कुरु कुरु स्वाहाः ।** मंत्र के अंत में 'स्वाहा' शब्द भी लगाएं।

जल स्तम्भन विधि

सर्पाक्ष्यास्यस्य रक्तं तु कृत्वा चन्द्रार्कवह्निषु ।
सुखेन जलमध्येऽसौ पर्यटेन्निजगेहवत् ।।50।।
श्वेताजटारक्तिकायाः कुसुम्भपरिपोषितः ।
तेनैव रञ्जयेद्वस्त्रं तद्वस्त्रेणाङ्गवेष्टितम् ।।51।।
गम्भीरजलमध्येऽपि यावदिच्छेत्स तिष्ठतु ।
जलस्तम्भस्य सिद्धिस्तु भवेत्त्वस्यार्कभक्षणात् ।।52।।
भैरवीयकपालस्य चूर्णं श्लेष्मान्तकं फलम् ।
पिष्ट्वा तेनाजिनं लिप्त्वा घनं ह्यङ्गुलमानतः ।।53।।
तच्छुष्कं निक्षिपेत्तोये तडागे वा नदीतटे ।
तस्योपरिस्थितो योऽसौ न कदाचिन्निमज्जति ।।54।।

अब जल में चलने की विधि के बारे में बताते हैं—सांप के मुख और आंखों का खून लेकर धूप तथा चांदनी में रखें। फिर उसे अपने पास रखकर पानी में इस तरह घूमे जैसे कोई अपने घर

में घूमता है। कुसुम्भ के रस में सफेद चिरमिटी की जड़ को खूब पीसकर उसमें कपड़े को रंगें। अब उस कपड़े को लपेटकर खूब गहरे पानी में भी चलने से डूबने का डर नहीं रहता। मछली के रस का सेवन करने से जल में विचरण की सिद्धि प्राप्त होती है। मरे हुए मनुष्य की खोपड़ी का चूर्ण एवं लिसोड़े के फल को पीसकर आसन (बैठने का गद्दा) पर अंगुलियों द्वारा लेप करें। अब उसे सुखाकर नदी अथवा तालाब के जल पर छोड़ दें। फिर खुद उस आसन पर बैठें तो वह आसन नहीं डूबेगा।

उन्मत्त विधि

ऊर्णनाभिश्च षड्बिन्दुः समांसा कृष्ण कण्टकी ।
भावयेदेतदर्केण ततो गात्रे विनिक्षिपेत् ।।55।।
स्फोटा भवंति सप्ताहान्म्रियते च तया रुजा ।
इन्दीवरशिखण्डीनां पिच्छलेपात्सुखी भवेत् ।।56।।
याम्यभौमे मृतो यस्तु तद्भस्मादापरक्षयेत् ।
वैरिवर्चे समायुक्तं शराबे संपुटो भवेत् ।।57।।
मृतकेशैस्तदावेष्टय शून्यागारे परित्यजेत् ।
यावच्छुष्यति सा विष्ठा तावच्छत्रुर्मृतो भवेत् ।।58।।
'तारो नमो भगवते ॐ डामरेश्वराय च ।
अमुकं मारय ठः ठः' एवं मन्त्रमुदीरयेत् ।।59।।

अब उन्मत्त करने के प्रयोग के बारे में बताते हैं—ऊर्णनाभि एवं षड्बिन्दु के मांस को काली कटेली के रस में पकाकर दुश्मन के शरीर पर छिड़कने से सात दिनों के अन्दर उसके फोड़े निकल आते हैं जिससे वह पागल होकर मर जाता है। लेकिन यदि उन फोड़ों पर नीलकमल एवं मोरपंख का लेप कर दें तो फोड़े ठीक भी हो जाते हैं। मंगलवार के दिन भरणी नक्षत्र में मरने वाले की चिता-भस्म लें। उसमें शत्रु की विष्ठा मिलाकर शराब-सम्पुट में बंद करके मुर्दे के बाल से बांधकर किसी सूने मकान में रख दें। इस प्रयोग से जितनी देर में विष्ठा सूखेगी, उतनी देर में ही शत्रु पागल होकर मर जाएगा। इस प्रयोग को करने से पहले **ॐ नमो भगवते ॐ डामरेश्वराय अमुकं मारय ठः ठः** मंत्र को नियमपूर्वक जप कर सिद्ध कर लेना चाहिए (यहां 'अमुकं' शब्द के स्थान पर दुश्मन के नाम का उच्चारण करना चाहिए)।

भावयेद्धूर्तजार्केण भक्ष्ये पाने प्रदीयते ।
उन्मत्तो जायते स्वस्थः सितांगोदुग्धपानतः ।।60।।
नवमुखी रुद्रहारः कण्टकी कण्टकं समम् ।
लांगूलवद् द्विषो विष्ठा गृहीत्वा दक्षिणाशजाम् ।।61।।
विसृजेच्छयने यस्यः सद्यः शत्रुर्यम स्मरेत् ।
पयसा मुंडितं मंडं शय्या त्याग उपक्रमः ।।62।।

पहले बताए गए भस्म को धतूरे के रस में भिगोकर भोजन की वस्तुओं के साथ देने से शत्रु पागल (उन्मत्त) हो जाता है एवं दूध-मिश्री पीने से ठीक हो जाता है। नौमुखी, नागदमनी तथा कांटों सहित कटेली—सभी को जमालगोटे के रस में पकाएं (भावना दें), फिर उसमें हरताल मिलाकर सुखा लें। इस धूप को देने से शत्रु पागल हो जाता है। लेकिन वह कालीजीरी के धुएं से

ठीक हो जाता है। भेड़िए की विष्ठा जिस व्यक्ति के सोने के स्थान पर डाल दी जाती है, वह व्यक्ति मर जाता है। मरे हुए मनुष्य की खोपड़ी को दूध से रगड़कर जिसके बिछावन पर रख दिया जाता है, उसकी भी यही हालत होती है।

परदेश गमन साधन

शरपुंख्या कोकिलाक्षः काकजङ्घा च भृङ्गकः ।
एते श्वेताश्च ह्रीं बीजं पुष्यार्के ज्येष्ठयोद्धरेत् ।।63।।
पीत्वा तदर्कमेतेषां मूलस्तु कटिबन्धनम् ।
वायुवद्भ्रमते पृथ्वीं प्रयासायासवर्जितः ।।64।।
श्वेत काकस्य जंघा च तथा काम फलानि च ।
कृष्णाया सुरभेर्दुग्धं पत्रवृक्षस्य वल्कलम् ।।65।।
एतेषां पादलेपेन योजनानां शतं व्रजेत् ।
श्वेतार्कस्य हि मूलाङ्ग शुक्तवंशस्य रोचना ।।66।।
अजायानवनीतेन पुष्यनक्षत्र पाचितैः ।
लेपेन पादतलयोर्व्रजेत्कामिकमार्गकम् ।।67।।

अब परदेश गमन साधन का वर्णन करते हैं—सरफोंका कोकिलाक्ष, काकजंघा और भांगरा —सबके रस को चित्रक के साथ जब सूर्य पुष्य या ज्येष्ठा नक्षत्र में हो, तब निकालें। इस रस को पीकर या इन सबकी जड़ों को कमर में बांध कर चलने से पृथ्वी पर हवा की तरह तैर सकते हैं अर्थात् तेज चलने पर भी थकान नहीं होती। सफेद कौए की जांघ, मैनफल, काली गाय का दूध तथा पत्रज की छाल को पांवों में लपेट कर चलने से मनुष्य सौ कोस चलने पर भी नहीं थकता। गोरोचन तथा श्वेतार्क की जड़ को बकरी के मक्खन में पुष्य नक्षत्र में पकाएं। फिर तलवों पर लगाकर चाहें जितना चलें, थकान नहीं आएगी।

बुद्धि भ्रंश विधि

भ्रामयर्कं तु पीत्वादौ पश्चात्तद्घ्राणमाचरेत् ।
प्रेतास्यगं पुरं कृष्ण धूपितं च चिताग्निना ।।68।।
प्रेताहितस्य धूपेन जगद्यवेशितं भवेत् ।
कृष्णागुरुं तालकं च कनकस्य फलानि च ।।69।।
उग्रगन्धाकुक्कुटाण्डः सकलानां प्रधूपनात् ।
धूपेन वेशयेत्सर्वं यावद्देहं न संशयः ।।70।।
मृडप्रियप्रसूनस्य पञ्चङ्गानि च भावयेत् ।
यमवाहन रक्तेन यावत्प्रकृति संख्यकम् ।।71।।
तदव्यष्टिलवं देयं वत्सनाभं च धूपनम् ।
चेष्टा हरति सर्वेषां पुरुषो निशिताकृतिः ।।72।।

अब बुद्धिभ्रंश विधि के बारे में बताते हैं—भौंरे के रस को पिएं, फिर सूंघें। उसके बाद मादक कर्म का नाम लेकर मुर्दे के मुंह में रखा हुआ गूगल, चिता की आग तथा राल की धूनी देने से व्यक्ति बावला हो जाता है। काला अगर, हरताल, धतूरे का फल, वच, अजवायन तथा मुर्गी के अण्डे—इन सबकी धूप देने से कोई भी मनुष्य बावला हो सकता है। धतूरे के सम्पूर्ण पौधे (पांचों

अंग) को ठीक से कूट-पीसकर छान लें, फिर उसमें भैंसे के खून की इक्कीस बार भावना दें। उसके बाद उसमें आठवां भाग बच्छनाभ मिलाकर धूनी दें। यह धुआं सबकी चेष्टा हर लेता है तथा मनुष्य लोहे की मूर्ति जैसा बन जाता है।

सहवास संधिकरण विधि

सद्योमृतस्य ग्रीवार्कक्लिन्नवस्त्रंकरीर के ।
दृढीकृतं तु कीलेन सुपो नरि निधारयेत् ।।73।।
सकृद्युक्तो प्रजायेतां तदा नारी नरै भृशम् ।
मोक्षोवस्त्रस्य वंशाच्चेन्मुक्तिर्भूयात्तदा तयोः ।।74।।
समुद्रगाया नद्यास्तु सुतीरगत मृत्तिकाम् ।
सुभैरवस्य वाहस्य रतौ रेतो तयोस्तु यत् ।।75।।
इमां तु वटिकां योऽसौ कोलयुक्तां करोति च ।
सर्वासनानां बन्धं तु मोक्षोऽस्यार्कस्य पानतः ।।76।।

अब सहवास के समय स्त्री-पुरुष के संधिकरण (जुड़ने) के सम्बंध में बताते हैं—तत्काल मरे हुए मनुष्य के ग्रीवा का ताजा रक्त लेकर उसमें वस्त्र को भिगोकर बांस की कील में ठोंक दें तथा सहवास करने वाले मनुष्य के बिछावन के पास उसे रख दें तो सहवास करने वाले स्त्री-पुरुष दोनों ही उससे जुड़े रह जाते हैं। जब उस कपड़े में से बांस की कील निकाल ली जाती है तब उन्हें छुटकारा मिलता है। समुद्र में मिलने वाली नदी के किनारे की मिट्टी तथा कुत्ते का बाल लें। फिर जिस कुत्ते के बाल हों, उसी का मैथुन क्रिया के समय टपके हुए वीर्य तथा कुतिया के रज में उन बालों को रंग कर नदी की मिट्टी में मिलाकर, बेर के समान छोटी गोली बना लें। यह गोली जिसे दी जाएगी, उस मनुष्य का सहवास-आसन नहीं खुलेगा। बाद में इसी का रस पीने से छुटकारा मिलेगा।

क्षुधावृद्धिकारक योग

अग्न्यर्कं तु समाकृष्य पिवेत्पश्चाद्भूजिं चरेत् ।
वन्दार्केणार्क वृक्षस्य पीठे कृत्वा निषेचनम् ।।77।।
योऽसौ भुंक्ते घृतैः सार्द्धवह्नीमं भीमसेनवत् ।
ग्रहीत्वा मंत्रितान्मंत्री विभीततरुपल्लवान् ।।78।।
आक्रम्य दक्षजङ्घायां विंशत्याहारभुग्भवेत् ।
अक्षमां मंत्र्य सन्ध्यायां शतपुष्पस्य मालिका ।
शिरोबद्धा कृपणतां त्यक्त्वा पाण्डुवदत्यसौ ।।79।।

अब भूख में बढ़ोत्तरी का प्रयोग बताते हैं—चित्रक का रस पीने के बाद भोजन करें या आक के फूलों के बन्दे का रस थोड़ा पीकर थोड़ा सा आसन के नीचे छिड़क दें। उसके बाद घी मिला भोजन करें तो पेट की भूख इतनी तीव्र हो जाती है कि वह व्यक्ति महाबली भीम के समान अत्यधिक भोजन करता है। शाम के वक्त बहेड़े के पेड़ को नियमानुसार न्यौता दे आएं। फिर सुबह के समय उसके पत्ते लाकर उसका रस निकाल लें। अब उस रस को भोजन के पहले अपनी दाईं जांघ में लगाकर भोजन करने बैठें। इससे मनुष्य बीस आदमियों का भोजन अकेले ही खा लेता है। शाम के समय आक के पेड़ को न्यौता दे आएं, फिर सुबह जाकर उसके सौ फूलों

की माला बनाकर अपनी चोटी में बांध लें। अब कंजूसी छोड़कर भोजन करें तो खूब खा लेंगे। इस सम्बंध में **ॐ नमस्ताराय सर्वभूताधिपतये मम ग्रासं शोषय शोषय स्वाहा** मंत्र का जप भी करना चाहिए।

क्षुधा निवारण प्रयोग

गणेशप्रियमूलानि रथांगारस्य मूलकम् ।
नीलोत्पलस्य मूलानि कसेरू चापि पाचयेत् ।।80।।
तत्पायसं च सघृतं भुक्तं मांस क्षुधापहम् ।।81।।
उदुम्बर शमीजम्बूबीजं मूलशिरीषजम् ।
बीजं युक्तं तु तच्चूर्णं मासार्द्धं क्षुत्तृषापहम् ।।82।।
कोकिलाक्षस्य बीजानि महिषीदुग्ध क्षौद्रयुक् ।
द्वादशाहं क्षुधा हन्यात्सर्वमार्कः समुद्भवः ।।83।।

मूषापर्णी, असगंध तथा नीलकमल—सभी की जड़ एवं कसेरू को खूब पकाकर खीर तैयार करें। अब उसे घी के साथ खाएं तो एक महीने तक भूख नहीं लगती। घी के साथ गूलर, शमी, जामुन, मूली तथा सिरस के बीज—सबका चूर्ण खाने से पन्द्रह दिनों तक भूख-प्यास नहीं लगती। कोकिलाक्ष के बीज, भैंस का दूध और शहद सबका रस पीने से बारह दिन तक भूख नहीं लगती।

चोरादि का भय निवारण

टंकलोहात्परं भेदजातार्केण निषेधयेत् ।
सहस्रधा तु तत्पृष्ठमनुमेकं लिखेन्नरः ।।84।।
पिशाचिनीगणो शांति चोरिणीति पदं तथा नखाक्षरो ।
मनुरयमिति कुष्ठयाम्र भेदकम् ।।85।।
एतत्प्रभावतः कोऽपि मेघशब्दं शृणोति न ।
योगनिद्रे विष्णुमाये सर्वान्निद्रय निद्रय ।।86।।
इमं मंत्रं तु जपता विंशद्वर्णमनुत्तमम् ।
गुडपिप्पलिकामध्ये बलेर्निदर्यते जगत् ।।87।।
आदौपीत्वा द्विधाऽर्कं तु धत्तूरजलभावितम् ।
मांसस्रोतोंजनं तेन जिताक्षो निशि पश्यति ।।88।।
तारो नमो ब्रह्मवेषरिरक्ष द्विठठं मनुः ।
मन्वक्षरोपंसंसिद्धिः पञ्चांगविधिना ततः ।।89।।
मुष्टौ गृहीत्वा सप्तपाषाणान् कटयां बद्धा परौ ततः ।
गृहीत्वा गृहणीं पादयोर्लिप्य साधकः ततः ।।90।।
धत्तूरार्क पिबेच्छीघ्रं विक्षेपो जायते क्षणात् ।
कुर्वंतु स्वेषु कलहं चौराणां स्तंभने गतिः ।।91।।
आदि चौरे कठिल्लस्य ब्रह्मलब्धवरस्य च ।
तेषां चौरं भयं नास्ति येस्मरंति कठिल्लकम् ।।92।।

अब चोरादि के भय निवारण का प्रयोग बताते हैं—1 टंक लौहचूर्ण तथा 1 टंक पाषाण भेद

लेकर इनका रस निकाल लें। फिर शुद्ध आसन पर बैठकर इनके रस से एक हजार बार सिंचन करें। फिर इसके रस द्वारा रंगे हुए बर्तन पर इस मंत्र **ॐ तारकाय नमः चोरिणी पिशाचिनी तारां शमय शमय स्वाहा** को सौ बार लिखें। यह सिद्धिदायक मंत्र है। इसके प्रभाव से कोई मनुष्य बादलों के शब्द को भी नहीं सुन पाता। **ॐ नमो योगनिद्रे विष्णुमाये सर्वान्निद्रय निद्रय स्वाहा —** मंत्र को जप कर सिद्ध कर लें। इस मंत्र का जप करने एवं गुड़-पीपल की बलि देने से साध्य मनुष्य की नींद नहीं टूटती। यह चोरों के लिए लाभकारी प्रयोग है।

वृद्धदारू नामक दवा का रस पीकर, धतूरे के रस में भावना देकर स्रोतोंजन को आंख में लगाने से, एक महीने के अंदर ही, रात्रि के अंधेरे में दिखाई देने लगता है। **ॐ तारो नमो ब्रह्मवेषरि रक्ष ठः ठः स्वाहा** मंत्र का जप करें। ब्रह्मचर्य पूर्वक पञ्चांग विधि से पूजन करते हुए मंत्र का जप करने से सिद्धि जरूर प्राप्त होती है। मन्त्र सिद्धि पर पत्थर के सात टुकड़े लेकर अभिमंत्रित करके कमर में बांध लें। फिर भटकटैया के रस को तलवों में लगाकर तथा भटकटैया के पौधे को हाथ में लेकर चलने से चोरी में अवश्य सफलता मिलती है। धतूरे के रस को पीकर जाने से चोरों के चित्त में विक्षेप उत्पन्न होगा और वे आपस में ही लड़ने लगेंगे। यह प्रयोग चोरों को आश्चर्यचकित कर देता है। जो मनुष्य ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर बेल का रस घर में रखते हैं या छिड़कते हैं, उन्हें चोरों का भय नहीं होता।

।। लंकेश्वर रावण कृतार्कप्रकाशे अष्टं शतकं संपूर्णम् ।।

❑❑

अथार्कप्रकाशे

नवम शतकम्

गण वर्णन

रावण उवाच—

तिलपर्णी समुद्रोत्थफलं नवधा तथा ।
समुद्रस्थितिरेवास्य शिराकर्णगणोऽप्ययम् ।।1।।
ज्योतिष्मती च हेमाह्वा ललिता नागनी फलम् ।
माक्षिका देवदाली च गणोऽयं वामनः स्मृतः ।।2।।
चतुर्विधा हरिद्रा स्यात्पतंगो रक्तचन्दनम् ।
नीली कुसुम्भमञ्जिष्ठा लाक्षा मेहंदिकिंशुकः ।।3।।
जलं पुष्पं चांजनं च विमला पारिजातकः ।
पांडोः फलं बीजसारो गणोऽयं रंजनो स्मृतः ।।4।।
रसाञ्जनं द्विधा प्रोक्तं त्रिफला लोध्रकद्वयम् ।
कुमारिका च पिवला गणोऽयं नेत्र्य संज्ञिकः ।।5।।
तैलं तु नवधा प्रोक्तं बाकुची चक्रमर्दकम् ।
स्थौणेयं पर्पटी सृक्का त्वच्योऽयं गण उच्यते ।।6।।
भल्लातकं चातिविषं चतुर्भङ्गा च खाखसम ।
करवीरं द्विधा प्रोक्तमहिफेनं विधामतम् ।।7।।
धत्तूरस्तु चतुर्धा स्याद्द्विधा गुञ्जा विनिर्विषी ।
विष्टमुष्टिर्लांगली च गणश्चोप विषाह्वयः ।।8।।
अष्टधा कमलानि स्युर्जलसी च चतुर्विधा ।
जलजीवी च कुम्भीका जलपुष्पगणस्त्वयम् ।।9।।

रावण ने कहा—अब गणों के बारे में बताते हैं—रक्तचन्दन, समुद्रफल तथा जलवेत शिराओं एवं कानों का पोषण करने वाला गण है। मालकांगनी, चूक, धतूरा, नागपुष्पी, नागदमनी का फल, सोनामाखी तथा देवदारु उल्टी कराने वाला गण है। दारुहल्दी, वनदारु, आमाहल्दी, हल्दी, पतंग, लाल चंदन, नीली कुसुम्भ, मंजीठ, लाख, मेहंदी, ढाक के फूल, जलपुष्प अंजन, विमला, पारिजातक, पाण्डु का फल तथा विजयसार—ये सभी रञ्जनगण में गिने जाते हैं।

दोनों प्रकार के रसौत, त्रिफला, दोनों लोध, ग्वारपाठा एवं थूहर—ये सभी नेत्रगण हैं तथा आंखों के कष्ट में हितकर हैं। नौ तरह के तेल, बाकुची, पंवार, थूनेर, पपड़ी तथा सिरका—ये सब त्वचा के लिए लाभकारी हैं। भिलावां, अतीस, चार प्रकार के खसखस के दाने, कनेर की दोनों प्रजाति, चिरमिटी, अफीम, चार प्रकार का धतूरा, निर्विषी, गुंजा की दो किस्म, कुचला एवं जल पीपल—ये सभी उपविष गण हैं। आठ तरह के कमल, चार तरह की जलेबी, जलजीवी तथा

कुंभीक—ये सभी जलपुष्प गण हैं।

कंद, अम्ल, क्षार एवं लवण समूह

आलूकमष्टधा प्रोक्तं मूलकं त्वष्टधा तथा ।
अष्टधा कदलीकन्दो गृञ्जनं द्विविधं मतम् ।।10।।
हस्तकन्दश्च लशुनं पलाण्डुर्द्विविधो मतः ।
अष्टधा पद्मिनीकन्दो वाराहीकन्द लक्षणः ।।11।।
क्रमुकं मुशलीकन्दो विदारी च कसेरूकः ।
शतावरी चाश्वगन्धा बृहत्पाण्डुः सुदर्शनः ।।12।।
आर्द्रकं शक्रकन्दश्च कोलकन्दो नगोद्भवः ।
मौलिकंदो सूरणं च ज्ञेयः कंदगणस्त्वयम् ।।13।।
शाकम्भरी च सामुद्रं चोद्भिदं विट्सुवर्चलम् ।
सैंधवं नीलकंठं च पंगुं लवणमष्टधा ।।14।।
सर्जिक्षारो यवक्षारष्टंकणं च सुवर्चि का ।
पलाशगोर्या शिखरी क्षारसप्तकमीरितम् ।।15।।
जम्बीरद्वितयं बीजपूरं मधुककर्कटी ।
निम्बूकमरिकं चिञ्चावृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ।।16।।
नैपालं चणकाम्लं च चमीरं तगरं तथा ।
धान्याम्लमम्लपत्री च चुक्रमम्लगणस्त्वयम् ।।17।।

आलू की आठ किस्म, मूली की आठ किस्म, कदलीकन्द की आठ किस्म, दो प्रकार की गाजर, शलजम, लहसुन, दो तरह का प्याज, आठ प्रकार की पद्मिनीकंद, वाराहीकन्द, वनकोंहड़ा, मूसली कंद, विदारीकन्द, कसेरुक, शतावरी, अश्वगन्धा, बृहत्पाण्डु, सुदर्शन, अदरक, शकरकन्द, कोलकन्द, नगोद्भव, मौलिकन्द तथा सूरण—इन सबकी गिनती कन्द समूह में की जाती है। सांभर नमक, समुद्र नमक, उद्भिद नमक, विट् नमक तथा पंगु नमक—ये आठ प्रकार के लवण समूह हैं। सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, शोरा, ढाक का क्षार, अपामार्ग क्षार तथा शिखरी—ये सब सात प्रकार के क्षार समूह हैं। दोनों प्रकार की जंभीरी, बिजौरा नीबू, मीठी ककड़ी, कागजी नीबू, कमरख, इमली, अम्लवेत, नैपाली, चणकाम्ल, चमीर, तगर, धान्याम्ल, अम्लपत्री तथा चूक—ये सभी अम्ल समूह हैं।

फलों के समूह

आम्रं तु त्रिविधं प्रोक्तं द्विधाऽम्रातकमुच्यते ।
राजाम्रं चैव कोशाम्रं पन सस्त्रिविधो मतः ।।18।।
कदलं त्वष्टधा प्रोक्तं लकुचं चिर्मिटं द्विधा ।
त्रिधातु नारिकेलं स्यान्कलिन्दं द्विविधंमतम् ।।19।।
द्विविधं खर्जूरकं तु स्यास्पपंचधा कर्कटी भवेत् ।
पूगीफलं चतुर्धा स्याद् द्विधा तालफलं भवेत् ।।20।।
बिल्वं कपित्थनारंगे तिंदुकं स्याच्चतुर्विधम् ।
राजामलं च जंबू च बदरं चक्रमर्दकः ।।21।।

द्विधा चैतानि चत्वारि विंशकं तु प्रियालकम् ।
क्षीरणी पद्मबीजं च मक्षाशृंगारकावरा ।।22।।
परूषकं मधूकश्च दाडिमं स्याच्चतुर्विधम् ।
द्विधा गौरीफलं कोलं शृङ्गारीमिष्ट बीजकम् ।।23।।
बहुवारश्च कतकं सुलेमानी बदामकम् ।
द्राक्षा खर्जूरिका द्वेधा बादामक्षोद्पीलुकम् ।।24।।
मिष्ट निम्बूफलं सेवं शिलीन्ध्रं कट्फलानि च ।
आंत कोलामृत फलं प्रोक्तः फलगणस्त्वयम् ।।25।।

तीन किस्म के आम, दो किस्म के आम्रातक, राजाम्र, कोशाम्र, तीन किस्म का कटहल, केले की आठ किस्म, लकुच, दो तरह के चिरमिट, तीन तरह के नारियल, दो तरह के तरबूज, दो तरह के खजूर, पांच तरह की ककड़ी, चार प्रकार की सुपारी, दो प्रकार के तालफूल, बेल, कैथ, नारंगी, चार प्रकार के तिंदुक, राजामल, जामुन, बेर, दो प्रकार के चक्रमर्दक, बीसों प्रकार की चिरौंजी, खिरनी, कमलगट्टा, मखाने, अच्छे किस्म के सिंघाड़े, फालसे, महुआ, चारों प्रकार के अनार, दो प्रकार के गौरीफल, बेर, सिंघाड़ी, मिष्टबीजक, बहुवार, कतक, सुलेमानी बादाम, दाख, दो तरह की खजूरी, अखरोट, पीलू, मीठा नीबू, फल सेब, शिलीन्ध्र, कट्फल, आंतकोल और अमृतफल—ये सब फलों के समूह के अन्तर्गत आते हैं।

चावल, धान्य तथा क्षुद्र धान्य

रक्तशालिः सकलिमं पांडुकं शकनाहृतः ।
सुगन्धकः कर्दम को महाशालिश्च दूषकः ।।26।।
पुष्पाण्डकः पुण्डरीकस्तथा माहिषमस्तकः ।
दीर्घशूकं काञ्चनको हायनो लोध्रपुष्पकः ।।27।।
षष्टिकोऽनङ्गमालश्च पार्वतीयश्च झिंझणा ।
हाकुवा राजभोगश्च प्रोक्तः शालिगणस्त्वयम् ।।28।।
त्रिधा यवश्च गोधूमो मुद्गः षड्विध ईरितः ।
त्रिविधः प्रोच्यते माषो राजमाषस्त्रिधा मतः ।।29।।
मकुष्ठस्तुवरी त्रेधा निष्पावश्च मसूरकः ।
त्रिधा चणकमुद्दिष्टं कलापश्च त्रिपुण्ड्रकः ।।30।।
सर्वपस्त्रिविधः प्रोक्तस्तिलः प्रोक्तः चतुर्विधः ।
अतसी तुवरी राजी शिम्बीधान्यगणस्त्वयम् ।।31।।
कंगुश्चतुर्विधः प्रोक्तः श्यामाकश्चणकः कुदः ।
कोद्रवो द्विविधः प्रोक्तः वंशबीजं शरोद्भवम् ।।32।।
कुसुम्भबीजंतीनीलं योनरी च गवेधुकः ।
दिर्जोंधला बाजरी च क्षुद्रधान्यगणस्त्वयम् ।।33।।

लाल चावल, सकलिम, पांडुक, शंकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशलि, दूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, माहिषमस्तक, दीर्घशूक, काञ्चनल, हायन, लोध, पुष्पक, षष्टिक, अनङ्गमाल, पार्वतीय, झिंझणा, हाकुवा तथा राजभोग—ये सभी चावलों के समूह हैं। तीन प्रकार के जौ, छः

छः प्रकार के गेहूं, उड़द-माष तीन तरह के तथा राजमाष तीन तरह के, मोंठ-अरहर की तीनों किस्में, लोबिया, मसूर, तीन तरह के चना, मटर, तीन तरह के सरसों, चार तरह के तिल, अलसी एवं राई—ये सभी धान्य गण हैं। चारों तरह की मालकांगनी, सावां, महुआ, कोदों, वंशबीज, शरबीज, कुसुमबीज, तीनील, योनरी, गवेधुक, दिजोंधला और बाजरा—ये सब क्षुद्र धान्य गण (छोटे अन्नों का समूह) हैं।

साग एवं सब्जियां

द्विर्वास्तुकं पोतकी द्विस्त्रिर्माषस्तण्डुलीयकम् ।
द्विधापालक्यपित्रेधा द्विधा चाकालशाककम् ।।34।।
करवीलोणि काद्याणीचिंचुचाङ्गे रिचुक्रिकाः ।
सुनिष्णकश्च गोजिह्वा द्रोणपुष्पी पटोलकम् ।।35।।
शतपुष्पा मेथिका च कुञ्जरस्तीक्ष्णकण्टका ।
धान्यकं चक्रवर्ती च जीवंती काकमाचिका ।।36।।
पर्पटः कासमर्दश्च द्विधा राजगिरीकितः ।
लिङ्गदण्डो द्विधा कोष्ठो पत्रशाकगणस्त्वयम् ।।37।।
काचनारिर्द्विधा रास्ना खदिरः शाल्मलिर्द्विधा ।
चतुः सौभांजनोऽगस्तिः पुष्पशाक गणस्त्वयम् ।।38।।
द्विः कूष्माण्डं त्रिधालाबुः करसी द्विश्च डिंडिशम् ।
द्विः कारवेल्लं वृत्ताकं चतुः कर्कोटकी द्विधा ।।39।।
त्रिधा कोशातकी बिंवी द्विधा शिंबी त्रिधाभवेत् ।
दक्षिणं पञ्चधा दोडी कण्टकारिफलं द्विधा ।।40।।
पिण्डारकं च गोविन्दं द्विधा चैलं तथैव च ।
श्लेष्मान्तकंकाकतिन्दुफलं शाककगणस्त्वयम् ।।41।।

दोनों किस्म का बथुआ, दोनों किस्म का पोई का साग, तीन तरह की चौलाई, दोनों तरह की पालक, तीन प्रकार की नारी का साग, दोनों तरह की करवी, लोनी का साग, धाणी, चिंचु, चांगेरी, चूका का साग, सुनिष्णक, गोजिह्वा, द्रोणपुष्पी, परवल, सौंफ, मेथी, करौंदा, तीक्ष्ण कंटक, धनिया, चकवड़, अजवायन, कसौंदी, पर्पट, दोनों तरह की राई, लिङ्गदण्डी व दोनों तरह के कोठशाक—ये सब पत्तों वाले साग के समूह हैं। दोनों तरह का कचनार, दोनों तरह का रास्ना, खैर, दोनों तरह का सेमल, चार तरह का सहिजन तथा अगस्ति—ये सभी फूल वाले शाक के समूह हैं। दोनों तरह का कुम्हड़ा, तीनों तरह का आलू, दोनों तरह का करसी, ढ़ेढस, दोनों तरह का करेला, चारों तरह के बैंगन, ककड़ी के दो प्रकार, तीन तरह की तोरई, दो प्रकार की कसेरू, तीन तरह की सेवती, पांच तरह की दक्षिणी डोडी, दो तरह की कंटकारीफल, पिंडारक, गोविन्द, दो प्रकार के चैल, श्लेष्मान्तक तथा तिन्दुफल—ये सभी फल वाली सब्जियां (शाक) हैं।

पशु-पक्षियों के समूह

हरिणैणकुरङ्गाश्च वृषश्चन्द्रश्च बिंदुकः ।
राजीवः कुक्कुटो मुण्डीशंबरो जांङ्गलाः स्मृताः ।।42।।
गोधाशशभुजङ्गाफूत्कारः शल्लकी शिवा ।

चुच्छुंदरी स्थूलमुषघूंसाद्यस्तु बिलेशयाः ।।43।।
सिंह व्याघ्रवृका ऋक्षहरिहाद्विपखङ्गिनः ।
बभ्रुजम्बुकमार्जारा इत्याद्याः स्युर्गुहाशयाः ।।44।।
लाङ्गली वानरी खारी वृक्षमार्जारलम्पटः ।
कुम्भेरीझिङ्गुनीलण्टश्चैते पर्णमृगा मताः ।।45।।
वर्तकालावगिरिकाकपिञ्जलकतित्तिराः ।
पादायुधः कलिंगश्च चकोराद्यास्तु विष्किराः ।।46।।
हारितो धवलः पाण्डुश्चित्रपुच्छो बृहच्छुकः ।
पारावतः खञ्जरीटः पिकाद्याः प्रतुदाः स्मृताः ।।47।।
काककाकारिककुहीशशहा गृध्रचिल्लकः ।
चाषो भासश्च कुरर इत्याद्याः प्रसहाः स्मृताः ।।48।।
सर्पश्च शृंगी खङ्गश्च बलमाहिष शूकराः ।।49।।
चमरी गवयो लोझ इत्याद्यास्तीरसंस्थिताः ।।50।।

हिरन, कुरङ्ग, काला मृग, बूंदों के चिह्न वाला हरिण, राजीव, कुक्कुट मुण्डी तथा शंबर—ये सभी जंगली जीवों के समूह हैं। गोह, खरगोश, सांप, बिच्छू, चूहा, दोमुंही, गीदड़, छछूंदरी, बड़ा मूषक तथा घूंस—ये सभी बिल में निवास करने वाले जीवगण हैं। सिंह, बाघ, भेड़िया, रीछ, तेंदुआ, चीता, नेवला, सियार और बिलाव—ये सब गुफा में रहने वाले जीवों के समूह हैं। लंगूरी, वानरी, खारी, वृक्षबिलाव, लम्पटी, कुंभेरी और झिंगुनी—ये सब पत्तों में रहने वाले पशु हैं। बटेर, बत्तख, तीतर, गोरा तीतर, गौरैया, मुर्गा तथा चकोर—ये सभी विष्किर पक्षियों के समूह हैं। हरा, धवल, पीला, चित्रपुच्छ, बड़ा तोता, कबूतर, खंजन तथा कोयल—ये सभी प्रतुद पक्षियों के समूह हैं। कौआ, शिकरा, उल्लू, बाज, गिद्ध, चील, नीलकंठ, मोर तथा कुरर—ये सभी प्रसह पक्षी के वर्ग हैं। सांप, बारहसिंगा, खङ्ग, भैंसा, शूकर, चमरी, गाय तथा लोझ—ये सभी जल के नजदीक रहने वाले जीवों के समूह हैं।

हंस सारसकाचाक्षावचक्रकौञ्चराविकाः ।
नन्दीमुखीसकादम्बा बलाकाद्याः प्लवाः स्मृताः ।।51।।
शंखः शंखनखः कोशी शुक्तिशम्बूककर्कटाः ।
भेकमेढकभूनाग डिण्डिमाद्याश्च कोशगाः ।।52।।
कुम्भीरकूर्मनक्राह्वा गोधामकरशंकवः ।
घण्टिका शिशुमारश्च ग्राहाद्याः पादिनः स्मृताः ।।53।।
रोहीतकश्च झंगूरः प्रोष्टीविलिचमोरलः ।
शृंङ्गी मुण्डीरोमशोलिखल्याद्या मत्स्य जातयः ।।54।।

हंस, सारस, चाख, चकवा, ढेंक, शराविका, नन्दीमुखी, करवा, बगुला और प्लवा—ये सभी उछलकर उड़ने वाले जीवगण हैं। शंख, शंखनख, कोशी, शुक्ति, शम्बूक, कर्कट, भेक, मेढक, भूनाग तथा झींगुर आदि—ये अण्डे से उत्पन्न होने वाले जीव हैं। कुम्भीर, कूर्म, नक्र, गोह, मकर, घड़ियाल तथा सूंस—ये जल में रहने वाले जीव हैं। रोहेड़ा (राहू), झींगुर, प्रोष्टी, विलिच, मोरल, शृंगी, मुण्डी, रोमशोलि एवं खल्या—ये मछलियों के समूह हैं।

पाचक, दस्तावर एवं अग्निवर्द्धक समूह

आरग्वधश्च कम्पिल्लः कटुक्यं कोष्ठवारुणी ।
शिवलिङ्गी नागपुष्पी द्विधा दन्ती त्रिधात्रिवृत् ।।55।।
सन्नाहमाक्षिका द्वेधा रेवाचीनीन्द्र वारुणी ।
अर्जेपालं गन्धरेकी विरेचनगणस्त्वयम् ।।56।।
पाषाणभेदी मरिचं जवानीं जलशीर्षके ।
शुण्ठी चव्यं गजगणः शृंग्यादि पाचको गणः ।।57।।
त्रिविधा पिप्पली तस्या मूलं तुंबरकस्त्रिधा ।
तेजोह्वाकफलं भांडी पौष्करादिकमुष्णकम् ।।58।।
द्विविधश्चित्रगोधान्यमजमोदा च जीरकम् ।
चतुर्धा हबुषा द्वेधा गणोऽयं दीपनः स्मृतः ।।59।।
चतुर्धातु तुगाक्षीरी चन्द्रसूरोऽष्टवर्गकः ।
द्वीपान्तर वचा चिह्लं त्वक्पत्रं नागकेशरम् ।।60।।
तालीशपत्रत्वक् क्षीरी त्वचा गोगुरुरोहिणी ।
कपिकच्छूतोय बद्धभूफलं पौष्टिको गणः ।।61।।

अमलतास, कम्पिला, कुटकी, कोष्ठवारुणी, शिवलिङ्गी, नागपुष्पी, दोनों प्रकार की दन्ती, तीनों प्रकार की निशोथ, सनाय, सोनामाखी, रूपामाखी, रेवाचीनी, इन्द्रवारुणी, जमालगोटा तथा गन्धनाकुली—ये सब दस्तावर वस्तुएं हैं। पाषाणभेद, कालीमिर्च, अजवायन, जलशीर्षक, सोंठ, चव्य, गजपीपल तथा काकड़ासींगी—ये सभी पचाने वाले पदार्थ हैं। तीनों प्रकार का पीपल, पीपलामूल, तुंबरू तीनों तरह के, तेजबल का फल, भारंगी तथा पोहकरमूल आदि—ये सभी गर्म समूह हैं। चित्रक, दोनों प्रकार का धनिया, अजवायन, अजमोद, चार प्रकार का जीरा तथा दो प्रकार का हाऊबेर—ये सभी अग्निवर्द्धक एवं पाचक हैं। चार प्रकार का बंसलोचन, चन्द्रसूर, अष्टवर्ग, द्वीपान्तर की वच, पत्रप्र, नागकेशर, तालीसपत्र, क्षीरी, त्वचा, गोरखमुण्डी, गुरूरोहिणी, कौंच, तोयबद्धा व बहुफली—ये सब पौष्टिक समूह हैं।

तृण तथा वृक्षादि समूह

महानिम्बश्च कार्पासी द्विधैरंडो वचा द्विधा ।
निर्गुण्डी द्विविधा हिङ्गु गणोऽयं वातहारकः ।।62।।
विडङ्गनागभिन्ना च खुरासानी जवानिका ।
द्विधा करञ्जष्टेकारी कौटजः कृमिहा गणः ।।63।।
त्रिधावंशः कुशा काशास्त्रिधा दूर्वा नलोचगाः ।
गुन्दो मुञ्जो दर्भमेथी चटकादि गणस्तृणम् ।।64।।
प्रसारिणीद्वयं मुण्डी लज्जालुर्दे पुनर्नवाः ।
द्विः सारिवाभृङ्गराज पञ्चधाछिक्कणी द्विधा ।।65।।
ब्राह्मीद्वयमलम्बूषा शंखपुष्पीसुशातलाः ।
पातालगहड़ी घोटा गणः प्रसरसंज्ञिकः ।।66।।
कम्भारी तिन्दुकं शाला सणबीजकशाल्मली ।

शिंशुपा क कुभो नन्दीरोहितः खदिरत्रयम् ।।67।।
बन्धूलः पुत्रजीवश्च अरिष्टोङ्गगुदजिङ्गिनी ।
तमालभूर्जभूल्पश्च धवो धन्वंगमोक्षकः ।।68।।
भूमिसहः सप्तपर्णः शाखोटो वरुणः शमी ।
कटभीस्तिनिशो मालुर्जैत्रो वृक्षगणस्त्वयम् ।।69।।

बकायन, कपास, दोनों तरह के एरण्ड, दोनों वच, निर्गुंडी तथा हींग—ये वात को दूर करने वाले (वातहारक) समूह हैं। बायबिडंग, नागभेदी, खुरासानी अजवायन, दोनों प्रकार के करंज, टेकारी तथा कुटज—ये सभी कृमि का नाश करने वाले समूह हैं। तीनों तरह की बांस, कुश, तीनों तरह की दूब, कास, गांडर, जलभांगरा, भांग, गांजा, बालछड़, मूंज, डाभ तथा मोथिया—ये सभी तृण के समूह हैं। प्रसारिणी की दोनों किस्म, गोरखमुण्डी की दोनों किस्म, लज्जालु, जलावंती, सारिवा की दोनों किस्म, पांचों तरह का भांगरा, दोनों तरह की नकछिकनी, दोनों तरह की ब्राह्मी, तुंबी, शंखाहुली, शातला तथा पातालगरूड़ी की छः किस्म—ये सभी प्रसरगण हैं। कुम्हेरन, सोनापाठा, शाला, सन के बीज, शाल्मली, शिंशुपा, अर्जुन, नन्दी, रोहित, तीनों प्रकार का कत्था, बन्धूल, जियापोता, नीम, गोंदी, जिंगिनी, तमाल, भोजपत्र, भूल्प, घाव, धन्वंगमोक्षक, भूमिसह, सप्तपर्ण, शाखोट, वरुण, शमी, कटभी, तिनिस, मालु और जैत्र—ये सभी वृक्षों के समूह हैं।

फूलों तथा लताओं के समूह

बलाचतुष्टयं पर्णीपञ्चकं चाग्निमन्थकः ।
पाठा जवासा वार्ताकी कोकिलाक्षाशतोद्विधा ।।70।।
अपामार्गद्वयं मूर्वा त्राहिमांद्दरपुंखिका ।
काकनासा काकजंघा मेष शृंङ्गी च वन्दकम् ।।71।।
वन्ध्या कर्कोटकी त्रेधा वर्वरी तुलसी द्विधा ।
वज्रदन्ती द्विधाऽजाजी त्रीमा गुल्मगणस्त्वयम् ।।72।।
गुडूचिका नागवल्ली सोमवल्ल्यपराजिता ।
स्वर्णवल्ल्यस्थि संहारी श्वदंत्याकाशवल्लिका ।।73।।
वटपत्री हिङ्गुपत्री वंशपत्री बृहन्नला ।
अर्कपुष्पी च सर्पाक्षी द्रोणमूढककर्णिका ।।74।।
द्विपोटरा मयूरस्य शिखा बन्धनवल्लिका ।
कनकाह्वा च वासन्ती मनोज्ञेति लतागणः ।।75।।
चतुर्धा स्थलपद्मानि सेवन्ती गुलदावती ।
नेपाली च गुलाबश्च गुलावासश्च दण्डिनी ।।76।।
जाती पूथी राजवल्ली खुद्रयूथी त्रिधा मता ।
चम्पको नागचम्पश्च बकुलश्च कदम्बकः ।।77।।
कुब्जश्च शिववल्ली च द्विकुन्दः केतकीद्विधा ।
किङ्किरातः कर्णिकारो ह्यशोको बाणपुष्पकम् ।।78।।
कुरंण्टकश्चतुर्धा स्यात्तिलको मुचुकुन्दकः ।

बन्धूकश्च चतुर्धा स्याज्जपा द्वेधा च सुन्दरी ।।79।।
अगस्तिर्दमनी मारुः पेटारी बहुवर्णिकः ।
द्विपाटला सूर्यमुखी दासः पुष्पगणस्त्वयम् ।।80।।
द्विधार्कः पञ्चधा वज्री शातला दुग्धिकः द्विधा ।
वटस्त्रिः पिप्पलप्लक्षोदुम्बराश्च पयोगणः ।।81।।

चारों प्रकार की बला, पांचों प्रकार की पर्णी, पाठा, जवासा, छोटी कटेली, कोकिलाक्ष, दोनों प्रकार के सार, दोनों प्रकार के अपामार्ग, मूर्वा, त्रायमाण, सरफोंका, काकनासा, काकजंघा, मेढ़ासिंगी, बंदलाडोडा, तीनों तरह की ककोड़ी, बर्वरी, दोनों प्रकार की तुलसी, दोनों प्रकार की वज्रदन्ती, रूरू के दोनों प्रकार, जीरा, दोनों तरह की कलौंजी—ये सभी गुल्मगण हैं। गिलोय, नागवेल, सोमवल्ली, अपराजिता, स्वर्ण बेलि, अस्थिसंहारी, श्वानदन्ती, आकाश बेल, वटपत्री, हिंगुपत्री, वंशपत्री, वृहन्नला, अर्कपुष्पी, सर्पाक्षी, द्रोणी, मूढक, कर्णिका, द्विपोटरा, मयूरशिखा, बन्धनवल्लिका, कनकवेल, वासन्ती तथा मनोज्ञा—ये सभी लताओं के समूह हैं।

कमल के चार प्रकार, सेवंती, गुलदाउदी, नैपाली, गुलाब, गुलावास, दण्डिनी, जाती, जुही, राजवल्ली, क्षुद्रजुही, स्वर्णजुही, राजवेल, चम्पा, नागचम्पा, बकुल, कदम्ब, कुब्ज, शिववल्ली, दोनों प्रकार के कुन्द, दोनों तरह की केतकी, दोनों प्रकार के चिरायते, टेसू, अशोक, बाणपुष्प, गुलाबांसा के चार प्रकार, तिलक, मुचकुन्द, बंधूक के चार प्रकार, जवाकुसुम, सुन्दरी के दो प्रकार अगस्ति, दमनी, मरूवा, पेटारी, बहुवर्णिक दोनों प्रकार के पाटल, सूर्यमुखी तथा प्रियंक पुष्प—ये सभी फूल के समूह हैं। दोनों तरह के आक, वज्री के पांच प्रकार, शातला, दो प्रकार की दुद्धी, तीन तरह के बरगद, पीपल, प्लक्ष एवं गूलर—ये सभी दूध वाले वृक्षों के समूह हैं।

धूप एवं सुगंध समूह

द्विधाऽगुरुर्देवदारुर्गन्धपाषाणकस्त्रिधा ।
गुग्गुलः पञ्चधा सर्जो निर्यासः सरलस्य च ।।82।।
पद्मकाष्ठं मोचरसो नियांसः शल्लकीभवः ।
राल्ये नैपालकं चैति गणोऽयं धूपसंज्ञिकः ।।83।।
द्विकर्पूरस्त्रिकस्तूरी लता कस्तूरिकाण्डजः ।
शिलारसो जातिफलं जातिपत्री लवङ्गकम् ।।84।।
द्विधला रोचनं द्वेधा पञ्चधा कुंकुमं प्रिये ।
गौऽपत्री सुधासश्च सुगन्धाह्वगणस्त्वयम् ।।85।।
वालकं वीरणं मांसी द्विनखं चन्दनं त्रिधा ।
शैलेयं त्रिविधं मुस्तं गंधपालशिकामुरा ।।86।।
द्विकर्चुरप्रियंगुश्च रेणुका गंधमालती ।
ग्रंथिपर्णी त्रिधा सृक्का कङ्कोलाख्यं च तालिसम् ।।87।।
लामज्जकं नलीका च पद्मं बल्वेलबालकम् ।
द्विरोहिषं पौण्डरीकं चान्यद् धूपगणंस्त्वयम् ।।88।।

अगरू के दोनों प्रकार, देवदारु, गन्धपाषाण के तीनों प्रकार, पांच प्रकार की गूगल, सरल, पद्माख, मोचरस, निर्यास, शल्लकी, राल तथा नैपालक—ये सभी धूपसंध्यक गण हैं। दोनों किस्म

के कपूर, लता, कस्तूरी, शिलारस, कांडज, जायफल, जावित्री, लौंग, दोनों किस्म की इलायची, दोनों किस्म के रोचन, कुंकुम के पांच प्रकार, गौडपत्री तथा सुधास—ये सभी सुगन्ध वाले समूह हैं। सुगंधबाला, वीरण, जटामांसी, दोनों तरह के नख, चन्दन के तीनों प्रकार, शिलाजीत, मुस्ता के तीनों प्रकार, गंधपलासी, मुरा, दोनों प्रकार के कचूर, प्रियंगु दोनों तरह की, रेणुका, गंधमालती, तीन तरह की ग्रंथि पर्णी, सिरका, कंकोल, तालीसपत्र, जामज्जक, नलिका, पद्म, बल्ववेल, एलवालुक, दोनों तरह की रोहिष एवं पौण्डरीक—ये दूसरे धूपगण हैं।

दुग्ध पशुगण

गावस्तु दशधा काली त्रिधाऽजाऽविस्त्रिधा मता ।
मृगी ह्येका त्रिधा मेषी त्रिधोष्ट्री दशधा हयी ।।89।।
पञ्चधा करिणी नारी दशधा शूकरी द्विधा ।
व्याघ्री शुनी श्दंष्ट्री च रासभी पञ्चधापृथक् ।।90।।
त्रिधावृक्यष्टधा मत्स्यी गवयी खङ्गिणी रुणी ।
दुग्धं घृतं च तक्रं च दधि ताम्यः प्रजायते ।।91।।

गायों के दस प्रकार, तीन प्रकार की भैंसें, बकरी की तीन किस्म, एक प्रकार की मृगी, भेड़ की तीन किस्म, ऊंटनी की तीन किस्में, घोड़े के दस प्रकार, पांच प्रकार की हथिनी, दस प्रकार की नारी, दो प्रकार की शूकरी, बाघिन, कुतिया, पांच प्रकार की गधी, तीन प्रकार की भेड़ियानी, आठ तरह की मछली, रोझड़ी, रांभड़ तथा रोड़ी—इन सबसे दूध, घी, मट्ठा एवं दही प्राप्त होते हैं, अतः ये दुग्धपशुगण हैं।

धातु और रत्नों के समूह

तिथिधा तु सुवर्णं स्यादष्टधा रजतं भवेत् ।
पञ्चप्रकारकं ताम्रं वङ्गं तु द्विविधं स्मृतम् ।।92।।
जसदं त्रिविधं प्रोक्तं भवेन्नागस्तु षड्विधः ।
अष्टधा लोहमुद्दिष्ट मेते सप्तैव धातवः ।।93।।
स्वर्णजं स्वर्णमाक्षीकं तारजं तारमाक्षिकम् ।
तुत्थं ताम्रभवं होयं कंकुष्ठं वङ्गसंभवम् ।।94।।
रसको जगदाज्जातो नागात्सिन्दूर सम्भवः ।
लोहजातं लोहकिहमेते सप्तोपधातवः ।।95।।
रसश्चतुर्गन्धकश्च तालकश्च द्विधा मतः ।
दिधाऽञ्जनं च कासीसं गैरिकं च रसा इमे ।।96।।
पारदाद्दरदो जातो टंकणं गन्धकात्तथा ।
स्फटिकाभ्रकतो जाता हरितालान्मनः शिला ।।97।।
अज्जनाच्छुक्तिशंखाद्याः कासीसाच्छंखमूर्वकः ।
गैरिकान्मृत्तिका जाता तस्मादुपरसा इमे ।।98।।
वज्रं मुक्ता प्रवालानि गोमेदो नीलशिल्वकम् ।
पुष्पकं पिचु माणिक्यं रत्नान्येतान्यनुक्रमात् ।।99।।
वैक्रान्तो मौक्तिको शुक्ती रक्षो मरकतं लशुः ।

लाजा गारुडजन्मा च स्फटिका रत्नजातयः ।।100।।

सोना पन्द्रह प्रकार का होता है। चांदी आठ प्रकार की होती है। तांबे की पाच किस्में होती हैं। रांगा दो तरह का होता है। जस्ता तीन तरह का, नाग छः तरह का तथा लोहा आठ प्रकार का होता है। इन सातों तत्त्वों की गणना धातु के समूह में की जाती है। सोने से सोनामाखी, चांदी से रूपामाखी, तांबे से तारमाखी या तूतिया, रांगा से कंकुष्ठ, जस्ता से पारा, नाग से सिन्दूर तथा लोहे से मण्डूर उत्पन्न होता है। ये सभी सातों उपधातुएं हैं।

चार तरह का पारा, चार तरह के गंधक, दो तरह के हरताल, दो-तरह का सूरमा, कसीस और गेरू—ये सभी छः तरह के रस हैं। पारे से सिंगरफ, गंधक से सोहागा, अभ्रक से खड़िया, हरताल से मैनसिल, सूरमा से शंख-सीपी, कसीस से मूर्वाशंख तथा गेरू से सादा गेरू की मिट्टी उत्पन्न होती है, अतः इन्हें 'उपरस' कहा जाता है। हीरा, मोती, मूंगा, गोमेद, नीलम, पन्ना, पुखराज, इन्द्रनील तथा माणिक्य—ये सभी क्रमशः नवरत्न हैं। वैक्रान्त, मुक्ताशुक्ति, सीप, रक्षत, मरकत, लहसुनिया, लाजवर्त, गारूडक तथा स्फटिक—ये सभी क्षुद्र रत्न कहे जाते हैं।

।। लंकेश्वर रावण कृतार्कप्रकाशे नवं शतकं संपूर्णम् ।।

अथार्कप्रकाशे

दशमं शतकम्

भस्म बनाने की विधि

रावण उवाच—

दाहे रक्तं सितं छेदे निषेके कुंकुमप्रभम् ।
तारसुल्वोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेमवत् ।।1।।

धातु मारण-शोधन विधि

पत्राणि सप्तधा कृत्वा ब्रह्मौ तानि प्रतापयेत् ।
वेष्टनैस्तैः समावेष्टय तैलवर्गे विनिक्षिपेत् ।।2।।
पृथक्-पृथक् च दशधा तक्रवर्गे तथैव च ।
धान्यक्वाथे मूत्रवर्गे मद्यवर्गे कटूद्भवे ।।3।।
अम्लवर्गे पुष्पवर्गे रक्तवर्गे फलोद्भवे ।
क्षीरवर्गे ह्यर्कवर्गे निर्वाप्यास्ते समंततः ।।4।।
कृत्रिमा धातु सम्मिश्राये च नो कार्यसाधकाः ।
जायन्ते दग्धदोषास्तु धातवो गङ्गवारिवत् ।।5।।
गैरिकं स्वर्जिक क्षारो बिडलोणं च भास्वरम् ।
नावसादरकः कन्यागुञ्जास्वर्णादिवेष्टितम् ।।6।।
दद्यात्पत्राणि धान्याम्बून्यथ तानि समुद्धरेत् ।
गोमूत्रकेऽथवा तानि दत्वा वारि त्रिकं त्रिकम् ।।7।।
पात्रेषु सर्वधातूनां दत्वा तत्तुल्यकज्जलीम् ।
दत्वानलान्तरे तानि वालुका यन्त्रके पचेत् ।।8।।
पृथक् पृथक् सूर्य दण्डैर्वह्निभिर्दीप्ति कादिभिः ।
शुद्धीकृत्य पुनस्ताश्च यथेच्छं पुटतः पचेत् ।।9।।

रावण ने कहा—अब सोने (सुवर्ण) का लक्षण बताते हैं—जो गर्म करने पर लाल, छेदन तथा कूटने पर श्वेत आभायुक्त, बुझाने पर केसरिया रंग का, खोटेपन रहित, चिकना, मुलायम एवं भारी हो, उसे सबसे अच्छा स्वर्ण समझना चाहिए। अब धातुओं के शुद्धीकरण के सम्बंध में बताते हैं—धातु के सात पत्र करके आग में गर्म करें। फिर अपने-अपने वेष्टनों में लपेटकर तेल से भरे बर्तन में बुझाएं। अब अलग-अलग बारी-बारी से छाछ, अन्न की कांजी, गाय के मूत्र, मदिरा, कटुक रस, अम्ल रस, फूलों के रस, दूध, शुद्ध जल तथा अर्क वर्ग में दस-दस बार बुझाएं। कृत्रिम मिश्र धातु कार्यसाधक नहीं होती। यदि रस आदि में बुझाई गई धातु पहले दोषयुक्त हो तो वह भी गंगाजल के समान निर्मल हो जाती है। गेरू, सज्जीखार, बिडनमक, कांचनमक, नौसादर, ग्वारपाठा एवं गुंजा—ये सभी धातुओं के लपेटने वाले पदार्थ हैं। इनकी कज्जली लगाकर कांजी

या गाय के मूत्र में तीन-तीन बार बुझाएं और निकाल लें। फिर सातों धातुओं के पत्रों में उन-उनके समान कज्जली लगाकर उन्हें आग में लगाकर 'बालुका यंत्र' में छोड़ दें। कज्जली से लिपटी धातु को बीच में रखें और नीचे के छेद से आग दें। इससे धातु शुद्ध हो जाएगी। सभी सातों धातुओं को अलग-अलग बारह घड़ी तक पहले बताई गई विधि द्वारा पकाएं। इस प्रकार सोना आदि धातुएं शुद्ध हो जाती हैं। फिर अपनी इच्छा अनुसार पुट लगाकर भस्म तैयार कर लें।

सुवर्ण गुण

योगेन मत्स्यपीतायाः स्वर्णं तत्कालदाहहृत् ।
भङ्गयोगाच्च तद्वृष्यं दुग्धयोगाद्बलप्रदम् ।।10।।
पुनर्नवायुगे नेत्र्यं घृतयोगाद्रसायनम् ।
स्मृत्यादिकृद्वचापोगात्कान्ति कृत्कुंकुमेन च ।।11।।
पयसा राजयक्ष्माणं निर्विष्या च विषं हरेत् ।
शुण्ठी लण्ङ्ग मरिचैस्त्रि दोषोन्माद-हृत्पर ।।12।।
असम्यङ्मारितं स्वर्णं बलवीर्यं च नाशयेत् ।
करोति रोगान् मृत्युं च तस्मात्कुर्यात्प्रयत्नतः ।।13।।

सोना भस्म को मत्स्यपीता या केदारकुटकी के साथ आधी रत्ती या एक रत्ती की मात्रा में सेवन करने से दाह तुरंत दूर हो जाता है। भांग के साथ सेवन करने पर शरीर पुष्ट होता है। दूध के साथ बल देता है। पुनर्नवा के साथ नेत्र रोगों को दूर करता है। घी के साथ सेवन करने से रसायन का काम करता है। वच के साथ लेने से स्मरण शक्ति बढ़ाता है। केसर के साथ लेने से शरीर की कान्ति में वृद्धि करता है। दूध के साथ लेने से तपेदिक (टी. बी.) को दूर करता है। निर्विषी के साथ खाने से विष दूर होता है। सोंठ, कालीमिर्च तथा लौंग के साथ सेवन करने से कफ-पित्त-वात—तीनों दोषों तथा उन्माद रोग को दूर करता है। गलत ढंग से तैयार किया गया स्वर्ण भस्म बल तथा वीर्य का नाश करता है एवं अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न कर मृत्यु देता है।

रजत गुण

गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहच्छेदे घनक्षमम् ।
वर्णाढ्यं चन्द्रवत्स्वच्छं तारं नवगुणं शुभम् ।।14।।
सितया हन्ति दाहाद्यं वातपित्तं फलत्रिकात् ।
त्रिसुगन्धैः प्रमेहादि रजतं हन्त्यसंशयम् ।।15।।
विट्बंधनं च वीर्यं च वृष्यं सक्षयजित्परम् ।
कृशत्वं रोगसङ्घातं कुरुते तद्शोधितम् ।।16।।

अब चांदी के गुणों के बारे में बताते हैं—गुरु, स्निग्ध, मृदु, सफेद, तपाने तथा छेदन में घन के योग्य, वर्णयुक्त, चांद की तरह स्वच्छ और सुन्दर—ये नौ गुण चांदी के हैं। चांदी के भस्म को मिश्री के साथ लेने से दाह दूर होता है। त्रिफला के साथ लेने से वात-पित्त का शमन होता है। त्रिसुगन्ध के साथ लेने से प्रमेह ठीक होता है। यह मल एवं वीर्य को बांधने वाला, पुष्टिकारक, राजयक्ष्मा तथा कमजोरी को दूर करने वाला है। अशुद्ध चांदी भस्म का सेवन करने से कमजोरी तथा अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

ताम्र गुण

जपा कुसुमसंकाशं स्निग्धं मृदुघनक्षमम् ।
लोहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ।।17।।
दुग्धसन्नाह खण्डैर्यस्ताम्रं रक्तिद्वयोन्मितम् ।
पिबेत्तस्य विरेकेन प्राप्तान्ते निर्ययुर्गदाः ।।18।।
कुष्ठकास श्वासपित्त हर श्लेष्मो दरामयान् ।
ज्वराम्लपित्तरपाड्वर्शः शूल शोथकृमीनपि ।।19।।
एवं दोषा स्मृतास्ताम्रे त्वसम्यङ्भारिते सति ।
दाहः स्वेदो रुचिर्मूर्च्छोत्क्लेदो रेको वमिभ्रमः ।।20।।

अब तांबे के गुणों के सम्बंध में कहते हैं—गुड़हल के फूल के समान लाल रंग वाला, चिकना, कोमल, घन के लायक, लोहा तथा सीसा के मिश्रण से रहित तांबा भस्म ग्रहण करने योग्य होता है। इस ताम्र भस्म को दो रत्ती के बराबर दूध, सनाय, तथा खांड़ के साथ लेने से दस्तों के साथ सभी रोग शरीर से बाहर निकल जाते हैं। तांबे का भस्म कुष्ठ, कास, श्वास, पित्त, कफ रोग, उदर रोग, ज्वर, अम्लपित्त, पाण्डुरोग, बवासीर, शूल, शोथ तथा कृमि रोग को दूर करता है। अशुद्ध ताम्र भस्म दाह, स्वेद, अरुचि, मूर्च्छा, उत्क्लेद, वमन एवं भ्रम आदि रोग उत्पन्न करता है।

रांगे के गुण

शीघ्रद्रावि सशब्दं वा स्फुटनं चन्द्रसन्निभम् ।
चन्द्रिकामलहीनं यदगालितं वङ्गमुत्तमम् ।।21।।
सर्वमेहान् सितादुग्धैः सतालं यच्च मारितम् ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि रजनीक्वाथसंयुतम् ।।22।।
अशुद्धवङ्गं कुरुते शूलं गुल्मत्वचांघ्रिजम् ।
वात शोथ प्रमेहं च पाण्डुरोगं भगन्दरम् ।।23।।

अब रांगे (वंग) के गुण बताते हैं—जो जल्दी पतला हो जाने वाला, आवाज के साथ टूट जाने वाला, चन्द्रमा जैसा कांतिमय, गलाने पर चांदनी जैसा दिखने वाला तथा अशुद्धि रहित हो, वह उत्तम रांगा होता है। यदि हरताल के साथ बनाई गई रांगे की भस्म को मिश्री या दूध के साथ लिया जाए तो सभी प्रकार का प्रमेह दूर होता है। हल्दी के काढ़े के साथ लेने से अठारह तरह का प्रमेह दूर होता है। अशुद्ध रांगे का सेवन करने से शूल, गुल्म, त्वचा, पांवों में वात रोग, शोथ, प्रमेह, पाण्डु तथा भगन्दर आदि रोग हो जाता है।

जस्ते के गुण

यशदं दर्पणाभासं घनच्छायं सितप्रभम् ।
निषेके यद्रजतवद्दाहे छेदे च तालवत् । ।।24।।
पुराणगोघृतैर्नेत्र्यं ताम्बूलेन प्रमेहजित् ।
अग्निमन्येनाग्निकारी त्रिसुगन्धैस्त्रिदोषजित् ।।25।।
अशुद्ध जसदं कुर्याद्रक्तपित्तं च शीतलाम् ।
मन्दानलत्वमाधिक्यं धातुनाशं ज्वरादि च ।।26।।

अब जस्ता (यशद) के गुणों को बताते हैं—यदि जस्ता दर्पण के समान स्वच्छ, गहरी परछाईं वाला, सफेद आभायुक्त, बुझाने में चांदी के समान तथा तपाने एवं काटने में हरताल जैसा हो तो

वह शुद्ध होता है। शुद्ध जस्ते की भस्म को गाय के पुराने घी के साथ लेने से आंखों में लाभ पहुंचता है। पान के साथ सेवन करने से प्रमेह रोग दूर होता है। अरणी के साथ लेने से अग्नि को प्रदीप्त करता है। त्रिसुगन्ध के साथ लेने से तीनों दोषों को दूर करता है। अशुद्ध जस्ता रक्तपित्त एवं शीतला (चेचक) रोग उत्पन्न करता है। साथ ही मंदाग्नि, धातुक्षीणता तथा बुखार भी लाता है।

सीसे के गुण

विकीर्णं दृश्यते श्वेतं गालितं गगनोपमम् ।
दृश्यते नागवत्तत्र सन्नागं शमिवत्कुषे ।।27।।
नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति ।
व्याधिं च नाशयति जीवनमातनोति ।।28।।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति ।
मृत्युं च नाशयति सन्तत सेवितः सः ।।29।।
मंदाग्निमामशूलं च पिंगमेहादिरुग्व्रजम् ।
अशुद्धनागः कुरुते प्राणानपि निहंति च ।।30।।

अब सीसा (नाग) के गुण बताते हैं—जो विकीर्ण करते समय सफेद रंग का दिखाई दे, गलाने पर आसमान जैसा नीला हो जाए, देखने में जस्ता जैसा हो एवं हटाने में शमी वृक्ष जैसा हो, वह सीसा सबसे अच्छा होता है। ऐसे सीसे की भस्म लेने से सौ हाथियों का बल प्राप्त होता है। इससे सभी रोग दूर हो जाते हैं तथा दीघार्यु होती है। सीसा-भस्म अग्नि को प्रदीप्त करती है, काम-शक्ति बढ़ाती है एवं लगातार लेते रहने पर मृत्यु को भी दूर भगाती है। अशुद्ध सीसे का सेवन करने से मन्दाग्नि, आंव, शूल, फिरंग तथा प्रमेह आदि रोग पैदा होते हैं जिससे मौत भी हो सकती है।

लौह के गुण

दुग्धेऽग्नौ शिखराकाराव्यंगाराम्लेन लेपिते ।
लोहे स्युः पत्रसूक्ष्माणि तत्सारमभिधीयते ।।31।।
शुद्ध लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः ।
त्रिपुटे च कुमार्याऽपि त्रिषट् वै माचिकारसैः ।।32।।
सद्वादशांशं दरदं यंत्रेक्षिप्तवा पुनः पुटेत् ।
त्रिपुटं त्रिफलाभिश्च दाडिमस्य त्वचैककम् ।।33।।
उरूबुक्राग्निपत्रेण निर्गुण्डीतोयमुत्तरैः ।
एवं सप्त पुटैर्लोहं मृतं वारितरं भवेत् ।।३4।।
शुण्ठी वाते सिता पित्ते कफे कृष्णा त्रिजातकम् ।
सन्धि रोगे वरापाण्डौ प्रोक्तं लोहानुपानकम् ।।35।।
त्वक्षु कण्ठे च हृद्रोगशूलहृल्लासमश्मरीन् ।
नानारोगान्प्रकुरु ते चूर्णलोहमशोधितम् ।।36।।

अब लोहा तत्त्व के विषय में बताते हैं—दूध में डालने, आग में तपाने या सामान्यतः देखने में जो शिखर के आकार का हो, जिस पर बिच्छू के समान छोटे-छोटे चिह्न हों या जिस पर खटाई

लगाने से छोटे-छोटे पत्र के समान चिह्न दिखाई दें, उसे 'लोहसार' या लौह तत्त्व कहा जाता है। शुद्ध लौह तत्त्व के चूर्ण को पातालगरूड़ी के रस में घोटने के बाद तीन पुट अण दें, फिर उसे ग्वारपाठा के रस में घोटकर आग के तीन पुट दें। पुनः गिलोय के रस में घोटकर पुट दें। इस प्रकार इन तीनों के रस में घोट-घोटकर तीन-तीन पुट आंच दें। कुल अठारह पुट आग देने से भस्म तैयार हो जाएगा अथवा जितना लौह तत्त्व हो, उसका बारहवां भाग शिंगरफ मिलाकर यन्त्र में रखकर पुट दें।

इसके बाद फिर त्रिफला के रस में तीन बार घोटें। तत्पश्चात् अनार की छाल के रस में एक बार, अण्डा एवं चित्रक के पत्तों के रस में दो बार तथा निर्गुण्डी के रस में एक बार—इस तरह कुल सात पुट देने से लौह तत्त्व जलकर जल के समान हो जाता है। लौह तत्त्व की भस्म या अर्क को शुद्ध सोंठ के साथ लेने से वातरोग में, मिश्री के साथ सेवन करने से पित्त में, पीपल के साथ सेवन करने से कफ में, त्रिजात के साथ सेवन करने से संधिरोग में एवं त्रिफला के साथ लेने से पाण्डु रोग में लाभ होता है। त्वचा रोग, कण्ठ रोग, हृदय रोग, शूल रोग, छाती के रोग, उत्क्लेद एवं पथरी आदि अनेक बीमारियां अशुद्ध लौह तत्त्व का सेवन करने से होती हैं।

उपधातुओं का शोधन

पादांशसैन्धवं दत्वा चोपधातून् विमर्दयेत् ।
दशधा चाम्लवर्गेण कटाहे लोहसम्भवे ।।37।।
घर्षयेल्लोहदण्डेन प्रत्येकं च मुहूर्तकम् ।
यथासिन्दुरवर्णत्वं धातूनां सम्प्रजायेत ।।38।।
अथवा दोषाशान्त्यर्थं त्रिकुटार्कवरार्कजे ।
विभावयेद्द्वादशा ततस्तान पुटतः पचेत् ।।39।।
कपोतौ त्वोर्विष्ठया वा लिप्त्वा तानि विनिःक्षिपेत् ।
अजामूत्रेऽथ तत्पांस्तान्क्वाथे कौलत्थिजे तथा ।।40।।
मधुनाऽभ्यज्य तैलेन मर्दयित्वा पृथक्-पृथक् ।
टङ्कणं दशमांशेन दत्वा कुक्कुटजे पुटे । ।।41।।
दत्वा वह्निं दृढतरं उपधातून्सुधीः पचेत् ।
अभावे मुख्यधातूनां प्रयोज्या उपधातवः ।
न कुर्वन्ति गुणांस्तेऽपि प्रायः कुत्सितशोधिताः । ।।42।।

अब उपधातुओं के परिष्करण एवं शोधन के सम्बंध में बताते हैं—उपधातु को चौथाई मात्रा में सेंधा नमक मिलाकर उसे नीबू आदि के रस के साथ खूब घोटें। इस तरह सात बार करें। फिर उसे लोहे के बर्तन में रखकर आग पर रखें। इसके बाद लोहे के डंडे से दो घड़ी तक खूब रगड़ें। इसी प्रकार सातों उपधातुओं को अलग-अलग रगड़ना चाहिए। जब प्रत्येक उपधातु सिंदूर के समान हो जाए, तो उस भस्म को उतारकर रख लें या दोष दूर करने के लिए त्रिकुटा तथा त्रिफला के रस में बारह-बारह भावना दें।

उसके बाद पुट में रखकर पचाने पर उत्तम भस्म तैयार हो जाएगी। फिर बिल्ली का मल तथा कबूतर के मल में लपेट कर बकरी के मूत्र एवं कुलथी के काढ़े में मधु (शहद) लगाकर, तेल से सातों को अलग-अलग रगड़ें। इसके बाद इन्हें कुक्कुट पुट में अलग-अलग दसवां भाग सुहागा

देकर रखें। इस प्रकार सातों उपधातु की भस्म तैयार हो जाती है। मुख्य धातुओं के अभाव में उपधातुओं का प्रयोग करना चाहिए। अशुद्ध तरीके से शोधित की गई धातुएं गुणदायक नहीं होतीं।

सिन्दूर विधान

कुर्वंति दोषान्भोक्तारं सिन्दूरं यदि भक्षयेत् ।
अशुद्धं वाऽथ शुद्धं वा विना मंत्रगुरुक्तितः ।।43।।
विना तस्य भवेच्छीघ्रं स्वरभंगो मृतिस्तथा ।
राक्षसी मस्तके लग्नं दृष्ट्वा शप्तो हनूमता ।।44।।
आदिवाराहकल्पे तु कृता तस्य च निष्कृतिः ।
तेनैव वानरेन्द्रेण शृणु मन्त्रं यथोदितम् ।।45।।
तारा सिन्दूरपाचेति सिस्थाने सम्प्रयोजयेत् ।
सिन्दूरं हलकादेव चालयेति पदं वदेत् ।।46।।
री तु प्रोक्ता खलभली जीत्या कलवलीति च ।
मन्त्रः शाबरमन्त्राणां शिखामणिरयं स्मृतः ।।47।।
गुरुतो वा महेशाढ्यात् गृहीत्वा मन्त्रमुत्तमम् ।
पुरश्चर्या सहस्त्रं तु तद्दशांशं तु होमयेत् ।।48।।
सिन्दूरं तैलवटकैः पूजयेत्करवीरकैः ।
दूर्वाभिर्मार्जनं कार्य सक्षीरं ब्रह्मभोजनम् ।।49।।
ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रं शबरासुरभाषितः ।
अनेनामंत्र्य सिन्दूरं षण्मासं यस्तु भक्षयेत् ।।50।।
विमुक्तः क्रोधलोभाभ्यां तथा तृष्णाजयान्वितः ।
यत्तो यो नियमैः शाम्यादिभिश्चापि जितेन्द्रियः ।।51।।

अब सिन्दूर के विधान के बारे में बताते हैं—शुद्ध या अशुद्ध कैसा भी सिन्दूर हो, यदि उसे गुरु के निर्देश या मंत्र के बिना खाया जाता है तो अनेक तरह के दोष उत्पन्न करता है। इस हालत में स्वर बंद होकर मृत्यु तक हो सकती है। राक्षसी के माथे पर लगा हुआ देखकर हनुमानजी ने सिन्दूर को शाप दिया है तथा 'आदि वाराहकल्प' में इनकी दोषमुक्ति का उपाय भी बताया गया है। अतः वानर राज हनुमान द्वारा जो मंत्र बताया गया है, उसे सुनो— **ॐ तार सिन्दूरया खलभलित्वकल चलिन् कालवली सिन्दूर हलकादेव चालय।** यह शाबर मंत्रों का शिखामणि मंत्र है।

अपने गुरु या किसी शिवभक्त से इस श्रेष्ठ मंत्र की दीक्षा लेकर, इसको एक हजार की संख्या में विधिपूर्वक जपें। इसके बाद जप का दशांश होम करें। फिर सिन्दूर को तेल में सिंके बड़ों तथा कनेर के फूलों से अच्छी तरह पूजा करें। तत्पश्चात् दूब से दशांश हवन एवं मार्जन करके खीर वाला भोजन ब्राह्मणों को कराएं। इस प्रकार शबरासुर द्वारा बताया गया यह मंत्र सिद्ध हो जाएगा। इस मंत्र से अभिमंत्रित सिन्दूर को जो व्यक्ति छह महीने तक लेता है; वह क्रोध, लोभ तथा इच्छा (तृष्णा) पर विजय पाकर जितेन्द्रिय हो जाता है।

ब्रह्मचर्यरतस्तस्य बिंदुरूर्ध्वं प्रजायते ।

महारात्रौ तु यो नग्नो जपन्गृह्णाति मन्त्रकम् ।।52।।
क्रियते येन सुधिया जपता मन्त्रमुत्तमम् ।
वानराणां च सप्तानां प्रसरं तिलकाह्वयम् ।।53।।
मोहयेत्सकलं विश्वं रणे जयति निश्चितम् ।
ललाटे तिलको यावत्तावदीशः स एवहि ।।54।।

इस प्रकार के सिन्दूर को खाने वाला व्यक्ति ब्रह्मचारी हो जाता है। दीपावली की रात में जो मनुष्य नंगे होकर इस मंत्र का जप करते हुए सात बन्दरों के माथे पर सिन्दूर का तिलक लगा देता है, वह पूरे संसार को मोहित कर लेता है तथा युद्ध में विजय प्राप्त करता है। इस सिन्दूर के तिलक को जो व्यक्ति अपने ललाट पर लगाता है तो जब तक वह तिलक लगा रहता है, तब तक भगवान के समान सुखी बना रहता है।

पारद विधान

उन्मत्तविजयार्कं वा काञ्जिके सूतधावने ।
हालाहलेन तुल्येन दर दोत्थं विमर्दयेत् ।।55।।
नष्टपिष्टं तु तद्गत्वा भावयेत्पद्मिनीदलैः ।
गोधूमराशौ संस्थाप्य मासमेकं ततः पुनः ।।56।।
निष्कास्य क्षालयित्वा तु अहिफेनेन मर्दयेत् ।
कुर्याच्च पूर्ववत्पश्चान्नवसारेण मर्दयेत् ।।57।।
कमलस्य रसेनादि कृष्णोन्मत्त रसेन च ।
हिङ्गुना गन्धपाषाणसत्वेनाथ विमर्द्य च ।।58।।
षण्मासे तरतः स्थाप्यः सूरणस्थोदरे रसः ।
एवं वर्षेण सिद्धः स्याद्रसराट् च स्वयं मतम् ।।59।।
दृश्यते चूर्णसंकाशो जीवनाख्यो रसोत्तमः ।
एव गुञ्जा द्विगुञ्जा वा दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।।60।।
दृष्ट्वौषधगुणं देयस्तेन सोऽर्क रसोत्तमः ।
देयो गुणो न चेच्चेतो तं ब्रह्माऽपि न जीवयेत ।।61।।

अब पारे के बारे में बताते हैं—सिंगरफ से निकले हुए पारे को धतूरे और भांग के रस या कांजी के पानी अथवा बराबर मात्रा में हलाहल के विष के साथ खूब घोटें। कड़ा हो जाने पर पद्मिनी के पत्तों के रस की भावना देकर, उसे गेहूं के ढेर में एक महीने तक दबाकर रखा रहने दें। फिर उसे निकालकर शुद्ध पानी से धोएं तथा अफीम के साथ खूब घोटें। इसके बाद पहले की तरह ही गेहूं के ढेर में एक मास के लिए रख दें। अब नौसादर के साथ, उसके बाद कमल के रस के साथ घोटें ।

फिर बारी-बारी से काले धतूरे के रस, हींग तथा गन्धपाषाण के सत के साथ घोटें। तत्पश्चात् छह महीने तक उसे जिमीकन्द के उदर में रख दें। इस प्रक्रिया से रसराज पारा एक साल में शुद्ध हो जाता है। जीवनदायक वह श्रेष्ठ रस चूर्ण के समान दिखाई देता है। फिर उसे एक या दो रत्ती के बराबर सेवन कराएं। उत्तम योग के साथ देने से यह अत्यधिक गुण प्रकट करता है। यदि इसको देने से रोगी न ठीक हो तो उसे ब्रह्मा भी जीवित नहीं रख सकते, ऐसा समझना चाहिए।

सिंगरफ शोधन

चणकाभानि खण्डानि दरदस्य तु कारयेत् ।
ताम्र जे वायसे पात्रे स्थाप्यस्तानि धमेद्‌ढम ।।62।।
जातापामुष्णतायां तु तद्‌द्रव्येण च सेचयेत् ।
द्रव्यतुल्यं द्रवद्रव्यमेषा स्याद्वह्निभावना ।।63।।
मेषीक्षीरेण दशधा दशधा क्षीरजार्ककैः ।
दीप्तिवर्गेण दशधा विरेक्यर्के च पञ्चधा ।।64।।
पञ्चधा दुग्धवर्गेण अन्तराम्लस्य भावना ।
अयं शतार्कदरदो नानारोगविनाशकः ।
क्षुधोद्बोधकरी नित्यं योगवाही निगद्यते ।।65।।

अब सिंगरफ के शुद्धीकरण की विधि बताते हैं—सिंगरफ को चने के बराबर टुकड़े करके उन्हें तांबे या लोहे के बर्तन में भरकर खूब तपाएं। गर्म हो जाने पर उसमें पानी जैसे पतले द्रव्यों को छोड़ें। इसे 'बह्नि भावना' कहते हैं। द्रव, द्रव्य सिंगरफ के बराबर मात्रा में होना चाहिए। इस मिश्रण को भेड़ के दूध में दस बार, दूध वाले पेड़ों के रस में दस बार, दीपन-वर्ग वाली वस्तुओं के रस में दस बार, रेचन वर्ग की वस्तुओं में पांच बार, दुग्ध वर्ग में पांच बार तथा अम्ल वर्ग की वस्तुओं के रस में दस बार—इस प्रकार कुल 50 बार भावनाएं दें। इस विधि से तैयार किया हुआ सिंगरफ अनेक प्रकार के रोगों को समाप्त करता है। यह भूख बढ़ाने वाला, बुद्धि बढ़ाने वाला तथा योगवाही होता है।

गन्धक शोधन

गंधकं भूमिलवणं सममेकत्र चूर्णयेत् ।
अप्रकाशम सूर्यास्ततोयं खल्वे विनिक्षिपेत् ।।66।।
निष्कास्य तज्जलं प्रातः सममम्लेन मर्दयेत् ।
पुनर्दत्वा जलं क्षिप्त्वा शतवारं समाचरेत् ।।67।।
जायन्ते गन्धको दिव्यश्वेतो गन्धविवर्जितः ।
शतधो भावयेत्तं तु कदलीदण्डजैर्जलैः ।।68।।
दीप्तो न जायते वह्निस्तत्संयोगात्कदाचन ।
सुगन्धार्केण भाव्योऽसौ नखबारं प्रयत्नतः ।।69।।
को वा तस्य गुणान्वक्तुं भुवि शक्तो हि मानव ।
हंति कुष्ठादिकान्रोगान् पामादीनां तु का कथा ।।70।।

अब गंधक के शुद्धीकरण की विधि बताते हैं—गंधक तथा खारी नमक दोनों को बराबर मात्रा में लेकर एक साथ पीसें। इस पर सूर्य का प्रकाश न लगने दें। इसके बाद मसूर की दाल के पानी के साथ उसे किसी बर्तन में भर दें। सुबह होने पर उस पानी को निकाल दें। फिर बराबर मात्रा में अम्ल के साथ उसे घोंटे और पहले बताए पानी में रख दें। इस प्रक्रिया को सौ बार करने से गन्धक श्वेत, दिव्य, गंधहीन, उत्तम-शुद्ध तथा सब कार्यों में लाने योग्य हो जाता है। यदि इस शुद्ध गंधक को केले के रस की सौ बार भावना दें तो उसके मिलन से आग नहीं जल पाती। फिर उसे माधवीलता के रस में बीस बार भावना दें तो पृथ्वी पर उसके गुणों का वर्णन कर पाने में

कोई समर्थ नहीं रहता। यह कुष्ठ रोगों को भी ठीक कर देता है। फिर खुजली आदि रोगों की क्या बात है?

अभ्रक मारण

यदभ्रकं गजपुटे गणैः सहपुटीकृतम् ।
सहस्राभ्रं तदाख्यातं वयसंस्थापनं परम् ।
परं गुणावहं ह्येतद्वयो वृद्धि करं मतम् ।।71।।

अब अभ्रक-मारण के बारे में बताते हैं—यदि सभी दीपनादि गुणों एवं पुट संस्कार युक्त अभ्रक को गजपुट में पकाया जाए तो वह 'सहस्राभ्रक' हो जाता है। ऐसा अभ्रक आयुवर्द्धक सिद्ध होता है तथा अन्य सभी रोगों में लाभदायक रहता है।

हरताल शोधन

हरिताले द्विधा प्रोक्ते गोदन्तः सर्वतोऽधिकः ।
तदभावे तु पत्राख्यस्तस्य पत्राणि कारयेत् ।।72।।
यामं यामं तु तत्स्वेद्यं द्रव्येसु नवसु क्रमात् ।
तिलतैले वराक्वाथे चूर्णतोये कुलत्थजे ।।73।।
काञ्जिके कदली तोये दुग्धे कूष्माण्डजद्रवे ।
अजादुग्धेन तत्तालं संशुद्धं दोषवर्जितम् ।।74।।
अशीतिकर्षं चिञ्चाया ग्राह्यंभस्म सुशोधितम् ।
त्रिंशत्कर्षं हण्डिकायां दृढायां तन्निवेशयेत् ।।75।।
आस्तीर्य तालपत्राणि कर्षद्वयमितानि च ।
त्रिंशत्कर्ष पुनर्भस्म स्थापयेत्तालकोपरि ।।76।।
संपूज्य भैरवादींश्च हंडी चुल्लयां निवेशयेत् ।
यामं यामं क्रमादग्निं: संकुर्यात्पञ्चयामकम् ।।77।।
पश्येत्तदैकचित्तस्तु कुत्र धूमोऽस्य गच्छति ।
गच्छंतं धूममालोक्य भस्मना चावरोधयेत् ।।78।।
एवं तु पञ्चभिर्यामैस्तत्तालं तु मृतं भवेत् ।
भस्मोपरिस्थं युक्त्या च गृह्णीयाद्रविसन्निधौ ।।79।।
तस्मिंस्ताले विचूर्णानि पत्राण्यन्यानि निक्षिपेत् ।
पुटं दद्यात्पूर्ववच्च एवं वाऽर्कदिनावधि ।।80।।
तत्तालं जायते दिव्यं सर्वरोगनिकृन्तनम् ।
रक्तिकायाः सप्तमात्रा तालकस्य सुसम्मितिः ।।81।।

अब हरताल के बारे में बताते हैं—हरताल दो तरह का होता है। पहला, गोदन्ती हरताल को सबसे उत्तम माना जाता है। उसके अभाव में दूसरा पत्र वाला हरताल लेना चाहिए। पत्र वाले हरताल के पत्र कर दें। उसके बाद उसे द्रव-द्रव्यों में बारी-बारी से एक-एक प्रहर तक मसलें। द्रव्य ये हैं—तिल का तेल, बरियारे का क्वाथ, चूने का पानी, कुलथी का पानी, कांजी, केले का रस, दूध, कुम्हड़े का द्रव तथा बकरी का दूध। इस तरह नौ जलों में धोने से हरताल शुद्ध हो जाता है। अब 20 पल के बराबर शुद्ध इमली की पिसी हुई पत्ती लेकर उसमें से पांच पल चूर्ण पक्की हांडी

में बिछाएं। फिर उस पर आधा पल हरताल के पत्र रखें। अब उसके ऊपर साढ़े सात पल चूर्ण बिछाएं तथा पांच पल हांडी ढकने की जगह के खाम में लगा दें।

इसके बाद भैरव आदि देवताओं की पूजा करके हांडी को चूल्हे पर चढ़ा दें। फिर एक-एक प्रहर के क्रम से पांच प्रहर तक स्थिरचित्त होकर आग जलाते रहें एवं एकाग्रचित्त होकर देखते रहें कि धुआं किस तरफ जाता है। निकलते हुए धुएं को शेष बचे पांच पल भस्म से रोकते जाएं। इस तरह पांच प्रहर में हरताल का सबसे अच्छा भस्म तैयार हो जाता है। भस्म के ऊपर लगे पदार्थ को सावधानी से सूर्य के प्रकाश में ले लें। उस हरताल में पिसी हुई इमली के पत्तों का चूर्ण डालकर पहले बताई गई विधि से पुट लगाएं। इस तरह बारह दिनों तक लगातार करने से सभी रोगों को दूर करने वाला दिव्य हरताल तैयार हो जाता है। इसकी एक रत्ती की मात्रा से सात खुराक बनानी चाहिए।

उपोदक्यथ वक्ष्येऽहं तालकस्यानुपानकम् ।
हरताले तु संसिद्धे हरिणा किं प्रयोजनम् ।।82।।
सर्वरक्त विकारेषु देयमाम्रहरिद्रया ।
सुहालाहलजीराभ्यामपस्मार विनाशनम् ।।83।।
समुद्रफलयोगेन जलोदर विनाशनम् ।
देवदालीरसैर्युक्तो भगन्दरहरः स्मृतः ।।84।।

रावण ने आगे कहा—हे गर्भवती मन्दोदरी! अब मैं हरताल के उपचार के बारे में बताता हूं। जब हरताल सिद्ध हो जाए तो फिर हरि (भगवान) की क्या जरूरत है? खून की खराबी में इसे आमा हल्दी के साथ देना चाहिए। सामान्य विष तथा जीरे को मिलाकर देने से यह मिरगी रोग को नष्ट करती है। समुद्रफल के साथ मिलकर यह जलोदर को दूर करती है। देवदारु के रस के साथ देने से भगन्दर ठीक कर देती है।

मैनसिल वर्णन

पचेत्त्र्यहमजामूत्रे दोलायन्त्रे मनः शिलाम् ।
भावयेत्सप्तधा पित्तैरजायाः स विशुद्ध्यति ।।85।।
घृतानुपानतो व्रणं वरानुपानतो मलम् ।
वसानुपानतः कफं हरेन्मनःशिलाह्यलम् ।।86।।

अब मैनसिल के बारे में बताते हैं—बकरी के मूत्र में मैनसिल को डालकर तीन दिनों तक दोलायंत्र में पकाएं तथा आठ प्रहर तक आंच दें। फिर मूत्र को निकालकर फेंक दें। इस तरह सात बार करने से मैनसिल शुद्ध हो जाता है। इसे घी के साथ देने से घाव (व्रण) ठीक हो जाता है। शुद्ध मैनसिल त्रिफला के साथ सेवन करने से कफ दूर करता है।

खपरिया वर्णन

दोलायंत्रेण सप्ताहं मूत्रवर्गे रसं पचेत् ।
तच्छुद्धं नेत्ररोगाणां नाशकं वरया सह ।।87।।

अब खपरिया के बारे में बताते हैं—मूत्रों के साथ सात दिनों तक खपरिया को दोलायंत्र में पकाने से वह शुद्ध हो जाता है। शुद्ध खपरिया को त्रिफला के साथ लेने से सभी प्रकार की आंखों की बीमारी दूर हो जाती है।

उपरस शोधनम्

त्रिक्षारे लवणे देयमम्लवर्गे त्रिधापचेत् ।
एवं तूपरसाः शुद्धा जायन्ते दोषवर्जितः ।।88।।
रसाभावे प्रदातव्यास्तस्यैवोपरसा रसे ।
सेवते बहुकालं स सर्वतः कुरूते गुणम् ।।89।।

प्रिय मन्दोदरी! अब उपरस शोधन के बारे में बताते हैं—सभी प्रकार के उपरस को तीन बार खारी नमक में तथा तीन बार अम्लों में भावना देने से वे सभी दोष-रहित एवं शुद्ध हो जाते हैं। अधिक समय तक सेवन करते रहने पर उपरस रसों के सभी लाभ देते हैं।

रत्न शोधन

हिङ्गु सैन्धवसंयुक्ते क्षिपेत्क्वाथे कुलित्थजे ।
रत्नानां सप्तसप्तानां भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ।।90।।
श्रेष्ठ वज्रं ततो हीनगुणमन्योन्यमीरितम् ।
सेवितं सर्वरोगघ्नं बलपुष्टिविवर्द्धनम् ।।91।।

अब रत्न शोधन के विषय में बताते हैं—सेंधा नमक के साथ कुलथी के क्वाथ में रत्नों को लेकर, मर्दन करके पुट दें। इस तरह लगातार 21 बार करने से रत्न शुद्ध हो जाते हैं। सभी रत्नों में हीरे की भस्म सर्वाधिक गुण वाली होती है। इसका सेवन करने से सभी रोग समाप्त होते हैं तथा शारीरिक बल एवं शक्ति में बढ़ोत्तरी होती है।

विष शोधन

गोमूत्रे त्रिदिनं स्थाप्य विषं तेन विशुद्ध्यति ।
रक्तसर्वपतैलाक्ते तथा धार्यं च वाससि ।।92।।
पञ्चगव्येषु शुद्धानि देयान्युपविषाणि च ।
विषाभावे प्रयोगेषु योज्यास्तत्कार्य कारिणः ।।93।।
पञ्चगव्येषु शुद्धानि देयान्युपविषाणि च ।
विषाभावे प्रयोगेषु योज्योपविषकार्यकृत ।।94।।
न विषं विष मित्याहुर्जैपालो विषमुच्यते ।
शोधितोऽयं विरेकेषु चमत्कृतिकरः परः ।।95।।
पञ्चगव्येषु संशोद्ध्य दूरी कुर्य्याच्च जिह्विकाम् ।
ततोऽम्लवर्गे दशधा क्षारवर्गे त्रिधापुनः ।।96।।
कुमारिकाद्रवे भस्म जले चैवं विशोधयेत् ।
स्वं शुद्धस्तु जैपालो वातिदाहविवर्जितः ।।97।।
मन्दोदरि तवाख्यातं यन्मया शिवतः श्रुतम् ।
एतज्ज्ञात्वा तु गर्भिण्या त्वया यत्नं विधीयताम् ।।98।।
एवमुक्त्वा तु भैषज्य रहस्यं च दशाननः ।
सायं सन्ध्याविधिं कर्तुमुत्थितो मंदिरं ययौ ।।99।।
सुयोग्यं निजगेहस्य सुखकार्यं कुरुप्रिये ।
अहं सन्ध्याविधानार्थं त्वथ यामि नदी तटम् ।।100।।

अब विष-शोधन के बारे में बताते हैं—विष को गाय के मूत्र में तीन दिनों तक रखने से शुद्ध हो जाता है। इसी तरह लाल सरसों के तेल तथा कपड़े में भी रखना चाहिए। पंचगव्यों से शुद्ध किए गए उपविषों को सेवन कराएं। विष के न होने पर उपविष उनका काम करते हैं।

अब उपविष शोधन के बारे में सुनो—पञ्चगव्य में शुद्ध किए गए उपविष विष के अभाव में सभी प्रकार के काम करते हैं।

अब जमालगोटा के बारे में बताते हैं—विष को विष नहीं कहते, परन्तु जमालगोटा को विष कहा जाता है। शुद्ध जमालगोटा दस्तों का चमत्कार दिखाता है। जमालगोटे को जीभ निकालकर पञ्चगव्य में शुद्ध कर लेना चाहिए। फिर दस बार अम्लवर्ग में, तीन बार क्षार-समूह में, तीन बार ग्वारपाठे के रस में तथा एक बार इमली की भस्म के पानी में शुद्ध कर लेना चाहिए। इस तरह परिष्कृत किया गया जमालगोटा उल्टी तथा दाह नहीं करता।

रावण ने कहा—हे मन्दोदरी! शिवजी से मैंने जो सुना, वह औषध-कल्प तुम्हें बता दिया। हे गर्भवती! इसे समझकर तुम प्रयत्न करो। इस तरह दवाओं के रहस्य को बताकर दशानन रावण संध्या करने के लिए अपने मन्दिर में जाने लगा। जाते समय उसने कहा—हे प्रिये! अब तुम अपने महल में जाकर उचित सुख का काम करो। अब मैं संध्या-पूजन हेतु नदी किनारे जाता हूं।

।। लंकेश्वर रावण कृतार्कप्रकाशे दशमं शतकं संपूर्णम् ।।

कुमार तंत्र

लंकेश्वर रावण कृत 'कुमार तंत्र' में मातृका-गृहीत चिकित्सा का वर्णन है। इस अध्याय में रावण मातृकाओं द्वारा समय-समय पर बालकों को होने वाले रोगों तथा उनके निदान के विषय में उल्लेख किया है। इसके अलावा बच्चों के अन्य रोगों के साथ-साथ वयस्कों के भी रोगोपचार का समावेश है।

नन्दना मातृका

प्रथम दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति 'नन्दना' नाममातृका
तया गृहीत मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः ।
अशुभं शब्दं मुञ्चति आत्कारं च करोति
स्तन्यं न गृह्णाति ।
बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा ।
शुक्लौदनं शुक्लपुष्पं शुक्लाः सप्तध्वजाः
सप्त प्रदीपाः सप्त स्वस्तिकाः सप्त वटकाः
सप्त शष्कुलिकाः सप्तजम्बूफलानि सप्त
मुष्टिकाः गन्धाः पुष्पं ताम्बूलं मत्स्यमासं
सुरा अग्रय भक्तश्च पूर्वस्यां दिशि
चतुष्पथे मध्याह्ने बलिर्देयः ।
ततोऽश्वत्थपत्रं कुम्भे प्रक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नापयेत् ।
रसोन सिद्धार्थ कमेष शृंगनिबं पत्रशिव निर्माल्यै बालकं धूपयेत् ।
'ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं
हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा ।'
एवं दिनत्रयं बलिं दत्त्वा चतुर्थ दिवसे ।
ब्राह्मणं भोजयेत् । ततः संपद्यते शुभम् ।।1।।

अब 'कुमारतन्त्र' के बारे में बताते हैं—सबसे पहले माता द्वारा शिशु को दिए जाने वाले उपचार का वर्णन करते हैं। जन्म के पहले दिन, पहले महीने या पहले साल में 'नन्दना' नामक मातृका शिशु को गृहीत करती है। इस मातृका से ग्रसित शिशु को सर्वप्रथम बुखार होता है। वह शिशु अशुभ-शब्द कहता है, चीत्कार करता है तथा माता के स्तन का दूध नहीं पीता। ऐसे मातृकाग्रस्त शिशु के कल्याण का उपाय बताते हैं—नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर एक पुतली बनाएं। फिर सफेद चावल, सफेद फूल, सफेद रंग की सात ध्वजा, सात दीया (दीपक), सात स्वस्तिक, सात वड़े, सात पूरी, सात जामुन, सात मुठिए, चंदन, फूल, नागरपान, मछली का मांस, शराब तथा सुन्दर चावल—सबको लेकर पूर्व दिशा में, चौराहे पर, दोपहर के समय बलि

दें।

इसके बाद पीपल के पत्तों को कलश में डालकर, शान्ति-जल से स्नान कराएं। फिर लहसुन, सरसों, बकरे की सींग, नीम के पत्ते एवं गंगाजल—इन सबसे बच्चे को धूपित करें। इसके पश्चात् **ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा** (अमुक के स्थान पर बालक के नाम का उच्चारण करना चाहिए) मंत्र से तीन दिन बलि देकर, चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराने से शुभ फल प्राप्त होता है।

सुनन्दा मातृका

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णातिः सुनन्दा नाम मातृका ।
तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः ।
चक्षुरुन्मीलयति गांत्रमुद्वेजयर्ति न शेते क्रन्दति ।
स्तन्यं न गृह्णाति आत्कारश्च भवति ।
बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
तन्दुलं हलपृष्ठैकं दधिगुडघृतैश्च मिश्रितं
शरावैके गन्धताम्बूलं पीतपुष्पे सप्तपीतध्वजाः ।
सप्त प्रदीपाः दश स्वस्तिका मत्स्यमांस सुरा-
तिलचूर्णानि पश्चिमायांदिशि चुतष्पथे बलिर्देयः
दिनानि त्रीणि संध्यायाम् ।
ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत् ।
शिवनिर्माल्य सिद्धार्थमार्जारलोम उशीर बाल
घृतैर्धूपं दद्यात् 'ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य
व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा ।'
चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ।।2।।

अब 'सुनन्दा' मातृका ग्रस्त बालक के लिए उपाय बताते हैं—जन्म के दूसरे दिन, दूसरे महीने या दूसरे वर्ष में सुनन्दा नामक मातृका से ग्रस्त बालक को पहले बुखार होता है, फिर वह आंखों को खोलता है। शरीर को कंपाते हुए नहीं सोता, दूध नहीं पीता और केवल रोता है। ऐसे बालक की रक्षा के लिए बलि का विधान बताते हैं—चावल, हल के पीछे का हिस्सा, दही, गुड़ तथा घी—इन सबको एक सकोरे में लेकर गंध, ताम्बूल, पीले फूल, पीले रंग के सात ध्वज, सात दीपक, दस स्वस्तिक, मछली का मांस, शराब तथा तिल के चूर्ण—सबको पश्चिम की ओर चौराहे पर तीन दिनों तक शाम के समय बलि दें।

इसके बाद शान्ति जल से स्नान कराएं। फिर गंगाजल, सरसों, नर बिल्ली के बाल, खस, नेत्रबाला तथा घी से धूप देकर **ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा** मंत्र का उच्चारण करें। तीन दिन तक ऐसा करके चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराएं इससे अच्छा फल प्राप्त होता है।

पूतना मातृका

तृतीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति पूतना नाम मातृका,
तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः ।

गात्रमुद्वेजयति स्तन्यं न गृह्णाति मुष्टिं
बध्नाति क्रन्दति ऊर्ध्वं निरीक्षते ।
बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम् ।
नद्युभयतट मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा
गन्ध पुष्पताम्बूल रक्तचन्दन रक्त पुष्पाणि
सप्तरक्त ध्वजाः सप्तदीपाः सप्त स्वस्तिकाः
पक्षिमांसं सुरा अग्रय भक्तश्च दक्षिणास्यां
दिशि अपराह्ने चतुष्पथे बलिर्दातव्यः
शिव निर्माल्य शुण्गुंलुसर्षप निम्ब पत्रमेष
शृंगेर्दिनत्रयं धूपयेत् । 'ॐ नमो नारायणाय
अमुक बालस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च
ह्रासय ह्रासय स्वाहा ।'
चतुर्थं दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ।।3।।

अब 'पूतना' मातृका से ग्रस्त बालक का उपाय बताते हैं—जन्म के तीसरे दिन, तीसरे महीने या तीसरे साल में पूतना मातृका बालक को अपने प्रभाव में लेती है। इसमें बच्चे को पहले बुखार होता है एवं शरीर कांपने लगता है। बालक माता का दूध नहीं पीता, मुट्ठी बांधता है, चिल्लाता है तथा ऊपर की ओर देखता है। उसके शुभ के लिए बलि-विधान बताते हैं—नदी के दोनों तटों (किनारे) की मिट्टी से पुतली बनाएं।

इसके बाद चंदन, फूल, नागरपान, लाल चंदन, लाल फूल, लाल रंग के सात पताके, सात दीपक, सात स्वस्तिक, पक्षियों का मांस, शराब तथा अछूता भात—सबके साथ दक्षिण की ओर अपराह्न (18 घड़ी दिन चढ़े) चौराहे पर बलि दें। गंगाजल, गूगल, सरसों, नीम के पत्ते तथा बकरे की सींग—सबसे तीन दिनों तक धूप दें एवं **ॐ नमो नारायणाय अमुक बालकस्य व्याधिं हन-हन मुञ्च मुञ्च ह्रासय ह्रासय स्वाहा** मंत्र को पढ़ें। इस प्रयोग को तीन दिनों तक करने के बाद चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराएं। इससे रोगी बालक स्वस्थ हो जाता है।

मुखमुण्डिका मातृका

चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति मुख
मुण्डिका नाम मातृकाः तया गृहीत
मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः ।
ग्रीवां नामयति, अक्षिणी उन्मीलयति स्तन्यं
न गृह्णाति रोदिति स्वपिति मुष्टिं बध्नाति ।
बलिंतस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा
उत्पलपुष्पं गन्धताम्बूलं दश ध्वजाः चत्त्वारः
प्रदीपाः त्रयोदश स्वस्तिकाः मत्स्यमांसं सुरा
अग्रयभक्तश्च उत्तरस्यां दिशि अपराह्ने
चतुष्पथे बलिं दद्यात् । आद्यमासिको धूपः

'ॐ नमो नारायणाय हन-हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।'
चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् ततः सम्पद्यते शुभम् ।।4।।

अब 'मुखमुण्डिका' मातृका रोग वाले बालकों के लिए उपाय बताते हैं—चौथे दिन, चौथे महीने या चौथे वर्ष में मुखमुण्डिका मातृका बालक को ग्रसित करती है। इसमें सबसे पहले बच्चे को बुखार होता है। वह गरदन झुका लेता है, आंखों को खोले रहता है तथा माता का स्तनपान नहीं करता। कभी रोता है, कभी सोता है और मुट्ठी बांधता है।

इस तरह के बालक के स्वस्थ होने का बलि-विधान इस प्रकार है—नदी के दोनों तटों की माटी लेकर पुतली बनाकर सफेद कमल का फूल, चन्दन, नागरपान, दस पताकाएं, चार दीपक, तेरह स्वस्तिक, मछली का मांस, शराब तथा अछूता भोजन—इन सभी की अपराह्न के समय उत्तर दिशा में बलि दें। प्रथम महीने के उपचार में जिस धूप के बारे में बताया जा चुका है, उनसे धूप दें एवं **ॐ नमो नारायणाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा** मंत्र का पाठ करें। तीन दिनों तक इस क्रिया को करने के पश्चात् चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराएं। इससे शुभ फल प्राप्त होता है।

कंटपूतना मातृका

पञ्चमे दिवसे मासे वर्षे वा गृहह्णाति कटपूतना
नाम मातृकाः, तया गृहीत मात्रेण प्रथमं भवतिज्वरः ।
गात्रमुद्वेजयति स्तन्यं न गृह्णाति मुष्टिं च
बध्नाति बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
कुम्भकार चक्रस्य मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां निर्माय
गन्ध ताम्बूलं शुक्लौदनः शुक्लपुष्पं पञ्चध्वजाः
पञ्च प्रदीपाः पञ्च वटकाः ऐशान्यां दिशि बलिर्दातव्यः
शान्त्युदकेन स्नापयेत् ।
शिवनिर्माल्यंसर्प निर्मोक गुग्गुल निम्बपत्रबालक
घृतैर्धूपं दद्यात् ।
'ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय
चूर्णय हन हन स्वाहा ।'
चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् । ततः सम्पद्यते शुभम् ।।5।।

अब 'कटपूतना' नामक मातृका रोग से मुक्ति का उपाय बताते हैं—बच्चे के जन्म के पांचवें दिन, पांचवें महीने या पांचवें वर्ष में यह रोग बालक को होता है। इसके कारण सबसे पहले बालक को बुखार होता है, शरीर कांपता है एवं मुट्ठी बांधता है। इस रोग को दूर करने के लिए बलि का विधान इस तरह है—सर्वप्रथम कुम्हार के चाक की मिट्टी से पुतली बना लें।

इसके बाद चन्दन, नागरपान, सफेद चावल, सफेद पुष्प, पांच ध्वज, पांच दीपक तथा पांच वड़े—इन सबको ईशान कोण में बलि देकर, शान्ति जल से स्नान कराएं। गंगाजल, सांप की केंचुल, गुग्गुल, नीम के पत्ते, नेत्रबाला एवं घी की धूप दें तथा इस मंत्र का पाठ करें— **ॐ नमो नारायणाय चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा।** तीन दिनों तक इसका पाठ करने के बाद चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराएं। इससे बालक स्वस्थ हो जाता है।

शकुनिका मातृका

षष्ठे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति शुकनिका
नाम मातृकाः तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवतिः ज्वरः ।
गात्रभेदं च दर्शयति दिवा रात्रावुत्थानं भवति
ऊर्ध्वं निरीक्षते ।
बलिं तस्यं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लपुष्पं रक्तपुष्पं
पीतपुष्पं गन्धताम्बूलं दशप्रदीपाः दशध्वजाः
दशस्वस्तिकाः दश मुष्टिकाः दश मटकाः
क्षीरजम्बुडिकामत्स्यमांसं सुरा आग्नेय्यां दिशि
निष्क्रान्ते मध्याह्ने बलिं दाययेत् ।
शान्त्युकेन स्नापयेत् ।
शिवनिर्माल्यरसोन गुग्गुल सर्प निर्मोकनिम्बपत्र
घृतैर्धूपं दद्यात् ।
'ॐ नमो नारायणाय चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा ।'
चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् ।
ततः सम्पद्यते शुभम् ।।6।।

अब 'शकुनिका मातृका' से ग्रस्त बालक के लिए उपाय बताते हैं—जन्म के छठे दिन, छठे महीने या छठे वर्ष में शकुनिका नामक मातृका बालक को लग जाती है। इसमें सबसे पहले बालक को बुखार होता है, शरीर कटता हुआ मालूम पड़ता है, दिन-रात जागता रहता है एवं ऊपर देखता है।

इस रोग को दूर करने का बलि विधान इस प्रकार है—पीठी की पुतली बनाकर सफेद फूल, लाल फूल, पीले फूल, चंदन, नागरपान, दस दीपक, दस ध्वजा, दस स्वस्तिक, दस मुठिये, दस वड़े, क्षीरजम्बूडिका नामक मछली का मांस तथा शराब—इन वस्तुओं से आग्नेय कोण में मध्याह्न के बाद बलि दें और शान्ति जल से स्नान करवाएं। अब गंगाजल, लहसुन, गूगल, सांप की केंचुल, नीम के पत्ते, तथा घी से धूप दें। फिर **ॐ नमो नारायणाय चूर्णय चूर्णय हन-हन स्वाहा** मंत्र का पाठ करें। ऐसा तीन दिनों तक करके चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराने पर बालक ठीक हो जाता है।

शुष्करेवती मातृता

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्णाति
शुष्करेवती नाम मातृकाः, तया गृहीतमात्रेण
प्रथमं भवति ज्वरः ।
गात्रमुद्वेजयति मुष्टिं बाध्नाति रोदिति ।
बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्येत शुभम् ।
रक्तपुष्पं शुक्लपुष्पं गन्धताम्बूलं रक्तौदनः
कृशरास्त्रयोदशस्वस्तिकाः मत्स्य मांसं सुरा

त्रयोदशध्वजाः पञ्चप्रदीपाः पश्चिम दिग्भागे
ग्रामसकाशे अपराह्ने वृक्षमाश्रित्य बलिं
दद्यात् शान्त्युदकेन स्नानम् ।
गुग्गुलु मेष शृङ्गीसर्षपो शीर बालकघृतैर्धूपयेत् ।
'ॐ नमो नारायणाय दीप्ततेजसे हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।'
चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् । ततः सम्पद्यते शुभम् ।।7।।

अब 'शुष्करेवती' मातृका से ग्रसित बालक के शुभ (कल्याण) के बारे में बताते हैं—जन्म के सातवें दिन, सातवें महीने या सातवें साल में शुष्करेवती नामक मातृका बच्चों को पकड़ती है। इसके कारण बालक को सर्वप्रथम बुखार होता है, शरीर कांपता है, मुट्ठी बांधता है एवं रोता है। इससे बचाव के लिए बलि का नियम इस प्रकार है जिससे शुभ फल की प्राप्ति होती है।

लाल रंग के फूल, सफेद फूल, चन्दन, नागरपान, लाल चावल, कसार या खिचड़ी, तेरह स्वस्तिक, मछली का मांस, शराब, तेरह पताके (झंडा) तथा पांच दीये—इन सबको गांव से बाहर निकलकर पश्चिम की ओर दोपहर के बाद, पेड़ के नीचे बलि दें एवं शान्ति जल से स्नान कराएं। फिर गुग्गुल, मेढ़ा की सींग, सरसों, खस, नेत्रबाला एवं घी से हवन करें तथा **ॐ नमो नारायणाय दीप्ततेजसे हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा** मंत्र का पाठ करें। इन क्रियाओं को तीन दिनों तक करने के बाद चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराएं। इससे बच्चे को स्वास्थ्य लाभ होता है।

अर्य्यका मातृका

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति
अर्य्यका नाम मातृका, तया गृहीत मात्रेण
प्रथमं भवति ज्वरः ।
गृध्रगन्धः पूतिगन्धश्च जायते आहारं ।
च न गृह्णाति उद्वेजयति गात्राणि ।
बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
रक्तपीतध्वजाः चन्दनं पुष्पं शष्कुल्यः
पर्प्पटिकाः मत्स्यमासं सुरा जम्बूडिकाः
प्रत्यूषे बलिर्देय ग्रामान्तरे ।
मन्त्रः—'ॐ नमो नरायणाय चतुर्दिशमोक्षणाय
व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च दह दह ॐ ह्रीं फट् स्वाहा ।'
चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् । ततः सम्पद्येत शुभम् । ।।8।।

अब 'अर्य्यका' मातृका से ग्रस्त बालक के स्वस्थ होने का उपाय बताते हैं—बालक के जन्म के आठवें दिन, आठवें महीने या आठवें साल में अर्य्यका मातृका बालक को पकड़ती है। इसमें सर्वप्रथम बुखार होता है। गिद्ध के समान गंध तथा पूतिगंध होता है। बच्चा खाना नहीं खाता तथा अंगों को कंपाता है।

इसके बलि का नियम इस प्रकार है—लाल एवं पीला झंडा, चन्दन, फूल, पूड़ी, पापड़ी, मछली का मांस, शराब तथा जम्बूडिका को लेकर सुबह के समय गांव के अन्दर बलि देनी चाहिए। फिर **ॐ नमो नारायणाय चतुर्दिशमोक्षणाय व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च दह दह ॐ**

ह्रीं फट् स्वाहा मंत्र का पाठ करें। इस क्रिया को तीन दिन करने के बाद चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराएं। इससे बालक अवश्य ठीक हो जाता है।

भूसूतिका मातृका

नवमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति ।
भूसूतिका नाम मातृका, तया गृहीत मात्रेण
प्रथमं भवति ज्वरः नित्यं छर्दिर्भवति गात्रभेदं
दर्शयति मुष्टिं बध्नाति बलिं तस्य
प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
नद्युभयतट मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां निर्माय
शुक्लवस्त्रेण वेष्टयेत् ।
शुक्लपुष्पं गन्धं ताम्बूलं शुक्लत्रयोदशध्वजाः
त्रयोदश-दीपाः त्रयोदशस्वस्तिकाः त्रयोदशपुत्तलिकाः
त्रयोदश मत्स्यपुत्तलिकाः मत्स्यमांससुराः उत्तर-
दिग्भागे ग्रामान्निष्क्रम्य बलिं दद्यात् शांत्युदकेन
स्नानं गुग्गुलु निम्बपत्रगोशृंग श्वेत् सर्षप-
घृतैर्धूपं दद्यात । मंत्रः—
'ॐ नमो नारायणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।'
चतुर्थं दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् । ततः सम्पद्यते शुभम् ।।9।।

अब 'भूसूतिका' नामक मातृका से ग्रसित बालक के स्वास्थ्य लाभ का उपाय बताते हैं—जन्म के नौवें दिन, नौवें महीने या नौवें साल में भूसूतिका मातृका बच्चों को पकड़ लेती है। इसमें सबसे पहले बुखार होता है, बराबर छींकें आती हैं, बालक अंगविदारण करता है तथा मुट्ठियां बांधता है।

इसके निवारण के लिए बलि का नियम बताते हैं—नदी के दोनों तटों की मिट्टी से पुतली बनाएं। फिर उसको श्वेत पुष्प, चन्दन, नागरपान, तेरह सफेद झंडा, तेरह दीये, तेरह स्वस्तिक, तेरह पुतली, तेरह मछली की पुतली, मछली का मांस तथा शराब—इन सबको गांव के बाहर उत्तर की ओर बलि दें एवं शान्ति जल से स्नान कराएं। गूगल, नीम के पत्ते, गाय की सींग, सफेद सरसों तथा घी का हवन देते हुए **ॐ नमो नारायणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा** मंत्र का उच्चारण करें। तीन दिनों तक इस क्रिया को करने के बाद चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराएं इससे बालक ठीक हो जाता है।

निर्ऋता मातृका

दशमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति निर्ऋता
नाम मातृका तया गृहीत मात्रेण प्रथमं
भवति ज्वरः ।
गात्रमुद्वेजयति आत्कारं करोति रोदिति मूत्रं
पुरीषं च भवति ।
बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

पारावारमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां निर्माय
गन्धं ताम्बूलं रक्तपुष्पं रक्तचंदनं पञ्चवर्ण
ध्वजाः पञ्चप्रदीपाः पञ्चस्वस्तिकाः पञ्चपुत्तलिकाः
मत्स्य मांसं सुरा वायव्यां दिशि बलिं दद्यात् ।
काकविष्ठागोमांसगो शृङ्गरसोन मार्जारलोम निम्बपत्रघृतैधूपयेत् ।
'ॐ नमो नारायणाय चूर्णितहस्ताय मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।'
चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् ततः सुस्थो भवति बालकः ।।10।।

अब 'निर्ऋता' नामक मातृका से ग्रसित बालक के स्वस्थ होने का उपाय बताते हैं—बालक के जन्म के दसवें दिन, दसवें महीने या दसवें वर्ष में निर्ऋता मातृका उत्पन्न होती है। इसमें सर्वप्रथम बुखार होता है, शरीर में थरथराहट होती है, आत्कार करता है, रोता है तथा मल-मूत्र में दोष हो जाता है।

इसके निवारण हेतु बलि का नियम बताते हैं—समुद्र की मिट्टी से पुतली बनाकर चंदन, नागरपान, लाल फूल, लाल चंदन, पांच रंगों की पताकाएं, पांच दीपक, पांच स्वस्तिक, पांच पुतली, मछली का मांस एवं शराब की वायव्य दिशा में बलि दें। फिर कौए की विष्ठा (पैखाना), गौ मांस, लहसुन, गाय का सींग, बिलाव के रोएं, नीम के पत्ते तथा घी—इन सबसे हवन करते हुए **ॐ नमो नारायणाय चूर्णितहस्ताय मुञ्च मुञ्च स्वाहा** मंत्र का पाठ करें। तीन दिनों तक इस क्रिया को करने के बाद चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराएं। इससे बालक ठीक हो जाता है।

पिलिपिच्छिका मातृका

एकादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति
पिलिपिच्छिका नाम मातृका, तया गृहीतमात्रेण
प्रथमं भवति ज्वरः । आहारं न गृह्णाति ।
ऊर्ध्वदृष्टिर्भवति गात्रभंगो भवति ।
बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम् ।
पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्या रक्तचंदनं रक्तं
च तस्या मुखं दुग्धेन सिञ्चेत् ।
पीतपुष्पं गन्ध तांबूलं सप्तपीतध्वजाः
सप्त प्रदीपाः अष्टौ वटका अष्टौ शष्कुलिकाः
अष्टौ पूरिकाः मत्स्यमांसं सुरा पूर्वस्यां दिशि
बलिर्दातव्यः शान्त्युदकेन स्थानम् ।
शिव निर्माल्यगुग्गुलुगोशृङ्ग सर्पनिर्मोकघृतैर्धूपयेत् ।
'ॐ नमो नारायणाय मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।'
इति मन्त्रः । चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्
ततः सुस्थो भवति बालकः ।।11।।

अब 'पिलिपिच्छिका' नामक मातृका से ग्रसित बालक के स्वस्थ होने के बारे में बताते हैं—बालक के पैदा होने के ग्यारहवें दिन, ग्यारहवें महीने या ग्यारहवें साल में बालक को पिलिपिच्छिका मातृका होती है। इसमें सबसे पहले बुखार होता है। बालक खाना नहीं खाता,

नजरें ऊपर की तरफ करता है एवं अङ्ग-भङ्ग होता है।

इससे बचने के बलि के नियम बताते हैं। पीठी से पुतली बनाकर, उसके मुंह को लाल चंदन से लाल करके दूध में उसका मुंह डुबोएं। इसके बाद पीला फूल, चंदन, नागरपान, सात पीले रंग के पताके, सात दीपक, आठ बड़े, आठ पूड़ी, आठ कचौड़ी, मछली का मांस एवं शराब—इन सबकी पूर्व की तरफ बलि दें तथा शान्ति जल से स्नान कराएं। फिर गंगाजल, गुगल, गाय का सींग, सांप की केंचुली तथा घी—इन वस्तुओं से हवन करें। तत्पश्चात् **ॐ नमो नारायणाय मुञ्च मुञ्च स्वाहा** मंत्र का जप करें। तीन दिनों तक ऐसा करके चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराएं। इससे बालक ठीक होकर स्वास्थ्य लाभ करता है।

कामुका मातृका

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति
कामुका नाम मातृकाः, तया गृहीत मात्रेण
प्रथमं भवति ज्वरः ।
विहस्य वादेयति करेण तर्जयति गृह्णाति क्रामति
निःश्वसिति मुहुर्मुहुराहारं न करोति ।
बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
क्षीरेण पुत्तलिकां कृत्वा गन्धताम्बूलं शुक्ल
पुष्पं शुक्लसप्तध्वजाः ।
सप्तप्रदीपाः सप्त आपूपिकाः करस्थेन दधिभक्तेन
सर्वं कर्म बलिं दद्यात् शांत्युदकेन स्नापयेत् ।
शिव निर्माल्प गुग्गुलु सर्वपघृतैर्धूपयेत् ।
'ॐ नमो नारायणाय मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा ।'
इति मन्त्रः । चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् ।
ततः सुस्थो भवति बालकः ।।12।।

अब 'कामुका' नामक मातृका से ग्रसित बालक के स्वस्थ होने का उपाय बताते हैं—बालक के जन्म के बारहवें दिन, बारहवें महीने या बारहवें साल बालक को कामुका नामक मातृका होती है। इसमें सबसे पहले बुखार होता है, बालक बहुत हंसने के बाद रोता-चिल्लाता है, हाथ पटकता है, पुकारता है, बार-बार सुबकता है तथा खाना नहीं खाता।

इसको ठीक करने के लिए बलि का नियम सुनो—दूध के खोवा से पुतली बनाकर चन्दन, नागरपान, श्वेत पुष्प, सफेद रंग की सात पताका, सात दीये, सात पूड़ी तथा दही-भात से बलि देकर शान्ति जल से स्नान कराएं। फिर गंगाजल, गुग्गुल, सरसों एवं घी से हवन करें तथा **ॐ नमो नारायणाय मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा** मंत्र का पाठ करें। तीन दिनों तक इस क्रिया को करके चौथे दिन ब्राह्मण को खाना खिलाएं। इससे बालक ठीक हो जाता है।

शिशु रोगों के कारक

धात्र्यास्तु गुरभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैरपि ।
दोषा देहे प्रकुष्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ।।13।।
मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः ।

दूषयन्ति प्रयत्नेन जायन्ते व्याधयः शिशोः ।।14।।
दन्तोद्भवश्च रोगाणां सर्वेषामेव कारणम् ।
विशेषाज्ज्वरविड्भेद कार्श्यच्छर्दिशिरोरुजाम् ।
अभिष्यन्दश्च शोथश्च विसर्पश्च प्रजायते ।।15।।

अब शिशुओं में बीमारी उत्पन्न होने वाले कारकों के सम्बंध में बताते हैं—अधिक गरिष्ठ (भारी) भोजन, कुसमय तथा दोषयुक्त भोजन करने के कारण माता या धाय के शरीर में वातादि दोष उत्पन्न हो आ जाते हैं, जिसके फलस्वरूप उनके स्तनों का दूध दूषित हो जाता है। बेकार के आहार-विहार से भी नारी में वातादिक दोष होता है। इसी कारण ऐसी नारी का स्तनपान करने वाले बच्चों में भी अनेक तरह के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। दांत का निकलना भी बालकों के सब रोगों का कारण है जिससे विशेषकर बुखार, फटे हुए मल के दस्त, कमजोरी, शिरः शूल, चक्कर आना, अभिष्यन्द, शोथ तथा विसर्प—ये सभी रोग हो जाते हैं।

रोग के लक्षण

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः ।
क्षामस्वरः कृशाङ्गश्च बद्धविण्मूत्रमारुतः ।।16।।
स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामला पित्तरोगवान् ।
तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्ग पित्तदुष्टं पयः पिबन् ।।17।।
कफदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् ।
निद्रार्दितो जडः शूनः शुक्लाक्षश्छर्दनः शिशुः ।।18।।

अब रोग के लक्षण के सम्बंध में बताते हैं—वात से प्रदूषित दूध पीने वाला बालक कमजोर आवाज वाला, कमजोर शरीर वाला, मल-मूत्र एवं अधोवायु के बंधाव वाला होता है। पित्त से दूषित दूध लेने वाला बालक पसीने वाला, फटे हुए मल के दस्तों वाला, कामला, पित्त रोगों से ग्रसित, तृषार्त्त एवं सभी अंगों में गर्मी वाला होता है। कफ से दूषित दूध पीने वाला शिशु कफ-रोगों से पीड़ित रहता है। उसके मुंह से लार निकलती रहती है। आंखों में नींद भरी रहती है। जड़ता, शरीर पर शोथ, सफेद आंखों वाला एवं छीकों से ग्रसित रहता है।

औषधि की मात्रा

प्रथमे मासि बालस्य देया भेषजरक्तिका ।
अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीररसिताघृतैः ।।19।।
एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत् संवत्सरो भवेत् ।
तदूर्ध्वं माषवृदिः स्याद्यावत् षोडश वत्सराः ।।20।।
ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावत् वर्षाणि सप्ततिः ।
ततो बालक वन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ।।21।।
चूर्ण कल्कावलेहानामियं मात्रा प्रकीर्तिता ।
कषायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा ।।22।।

अब दवा की मात्रा के बारे में बताते हैं—सभी वस्तुएं बन्द (वर्जित) की जा सकती हैं, लेकिन बालक के लिए मां का दूध बन्द नहीं करना चाहिए। शिशु को स्तनपान कराने वाली मां के भोजन की मात्रा में कमी करना ही बालक के लिए 'लंघन' माना गया है। जन्म के समय से पहले महीने

तक के शिशु को दवा की मात्रा बायबिडंग के एक दाने के बराबर देना चाहिए। इसके बाद प्रत्येक अगले महीने की आयु के लिए दवा की मात्रा को एक-एक दाने के बराबर बढ़ाते जाना चाहिए। प्रथम महीने में शिशु को एक रत्ती के बराबर दवा को शहद, दूध तथा मिश्री की चटनी के साथ देना चाहिए। फिर प्रत्येक अगले महीने की आयु के लिए एक-एक रत्ती की मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए।

एक साल की उम्र के बालक को एक माशे के बराबर दवा दें तथा सोलह साल की उम्र तक, प्रत्येक साल के लिए एक-एक माशे की मात्रा बढ़ाते जाएं—यह दूसरा विचार है। सत्रहवें साल से सत्तर साल के उम्र तक एक समान वजन की मात्रा में दवा देनी चाहिए। इसके बाद इकहत्तरवें साल में दवा की मात्रा धीरे-धीरे घटाते जाना चाहिए अर्थात् 72वें साल से 82 साल की उम्र तक एक-एक रत्ती की मात्रा में दवा को घटाते हुए देना चाहिए। इसके बाद 83 से 98 साल की उम्र तक प्रतिवर्ष के लिए एक-एक माशे की मात्रा घटाते हुए दवा देनी चाहिए। यह मात्रा चूर्ण, कल्क तथा चटनी के लिए कही गई है। काढ़े की मात्रा इससे चौगुनी लेनी चाहिए।

कुकूणक रोग

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि ।
जायते तेन नेत्रं च कंडूरं च स्रवेन्मुहुः ।।23।।
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासाविघर्षणम् ।
शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न नेत्रोन्मीलनक्षमः ।।24।।
फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च सशृंगवेरं बृहतीद्वयं च ।
आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं कुकूणके कार्य मुदाहरन्ति ।।25।।

अब 'कुकूणक' बीमारी के सम्बंध में बताते हैं—मां के दूध के विकार से बालकों के वर्त्म में 'कुकूणक' नामक रोग होता है। इसके कारण आंखों में काफी खुजली होती है। बालक अपने मस्तक, आंख के डेलों एवं नाक को खरोंचता है तथा सूर्य की रोशनी देखने में असमर्थ हो जाता है। वह अपने नयनों को खोल नहीं पाता। इसके लिए हरड़, बहेड़ा, आंवला, लोध, पुनर्नवा, अदरक एवं दोनों तरह की कंटेली को पानी में पीसकर, थोड़ा गर्म करके रोगी बालक की आंखों पर लेप करना चाहिए। इससे यह रोग दूर हो जाता है।

परिभवाख्य रोग

मातुः कुमारो गर्भिण्यास्तनं प्रायः पिबन्नपि ।
कासाग्नि सादवमथुतंद्रा कार्श्यारुचिभ्रमैः ।।26।।
युज्यते कोष्ठवृद्धया च तमाहुः पारगर्भिकम् ।
रोगं परिभवाख्यं च दद्यात्तत्राग्नि दीपनम् ।।27।।

अब 'परिभवाख्य' रोग के बारे में सुनो—गर्भवती माता का दूध पीने वाले शिशु को 'पारिगर्भिक' या परिभवाख्य नामक बीमारी होती है। इस रोग में बालक को खांसी, मंदाग्नि, छर्दि, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम एवं कोष्ठवृद्धि आदि के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इस रोग के निराकरण के लिए जठराग्नि को बढ़ाने वाली दवा का प्रयोग करना चाहिए।

तालुकण्टक रोग

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुने तालुकण्टकम् ।

तेन तालु प्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ।।28।।
तालुपाते स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् ।
तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ।।29।।
हरीतकी वचा कुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ।।30।।

अब 'तालुकण्टक' रोग के बारे में बताते हैं—बिगड़े हुए कफ से तालु के मांस में तालुकण्टक रोग हो जाता है। इसमें तालु नीचे की ओर धंस जाता है। इसके कारण बालक मां का दूध नहीं पी पाता। यदि वह पीता भी है तो कष्ट से। इसमें पतला दस्त, प्यास, आंखों का रोग, कण्ठ का रोग, मुख रोग, गरदन में कष्ट तथा छर्दि आदि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इस बीमारी के निदान के लिए हरड़, वच तथा कूठ का चूर्ण बनाकर शहद के साथ देना चाहिए।

महापद्म रोग

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः ।
पद्मवर्णो महापद्मो रोगो दोषत्रयोद्भवः ।
शंखद्वात्हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत् ।।31।।
मृतसूताभ्रवंगं च रौप्यं योज्यं च तत्समम् ।
मृतताम्रस्य तीक्ष्णस्य प्रत्येकं च द्विभागिकम् ।।32।।
व्योषं विभीतकं चैव कासीसं मृतमेव च ।
नागवल्ली दलरसैर्भावयोच्च पुनः पुनः ।।33।।
वल्ली प्रमाणं दातव्यः सर्वरोग हरः परः ।
गर्भिणीबालकानां च सर्वज्वर विनाशनः ।।34।।

अब 'महापद्म' रोग के बारे में बताते हैं—इस रोग में शिशु के वस्ति-स्थान पर ढेर सारी फुंसियां होकर फैलती हैं। कमल के रंग का यह रोग त्रिदोष के कारण होता है। यह कनपटियों से हृदय पर आता है या हृदय से गुदा की तरफ जाता है। यह बीमारी प्राणघातक होती है। इस रोग के निदान के लिए बराबर-बराबर मात्रा में पारे की भस्म, अभ्रक भस्म, रांगे की भस्म तथा चांदी की भस्म लेते हैं। इसमें सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बहेड़ा एवं हीरा कसीस की भस्म मिलाकर नागरपान के रस में बार-बार भावना दें। आधी रत्ती के बराबर मात्रा में इस औषधि को देने से महापद्म रोग दूर होता है। यह दवा गर्भवती नारी तथा बालकों के सभी तरह के बुखार एवं अन्य रोगों को दूर करती है।

अष्टमङ्गल घृत

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथोपि च ।
सारिवा सैंधवं चैव पिप्पली घृतमष्टमम् ।।35।।
सिद्धं घृतमिदं मेध्यं पिबेत्प्रातर्दिने दिने ।
दृढा स्मृतिः क्षिप्र मेधा कुमारो बुद्धिमान भवेत् ।।36।।
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः ।
प्रभवंति कुमाराणां पिबतामष्टमंगलम् । ।।37।।

अब 'अष्टमङ्गल' घी की चर्चा करते हैं—वच, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, सारिवा, अनंतमूल, सेंधा

नमक, पीपल तथा घी—सबको मिलाकर घी को सिद्ध करें। इस घी को रोज सुबह के समय लेने से याददाश्त (स्मरणशक्ति) तेज होती है एवं बालक बड़ा बुद्धिमान हो जाता है। इस अष्टमंगल घी का सेवन करने वाले बच्चों को भूत-पिशाच, राक्षस एवं मातृकाएं कोई कष्ट नहीं पहुंचातीं।

वातज्वर का निदान

यष्टीमधुगाक्षीरीलाजांजनसिता कृतः ।
लेहः प्रदत्तो बालानामशेष ज्वर नाशनः ।।38।।
क्वाथः स्थिरागोक्षुरविश्ववाल क्षुद्रादयश्छिन्न रुहाकिरातैः ।
वातज्वरं वा शमयेत्प्रपीतो बालेन धात्र्या च कृशानुकारी ।।39।।
पञ्चमूलीकृतः क्वाथः पीतो वातज्वरा पहः ।
तद्वच्छिन्नरुहाद्राक्षागोपकन्याबलाभवः ।।40।।
सारिवोत्पल काश्मर्य्या छिन्नापद्मकपर्पटैः ।
क्वाथः पीतो निहंत्याशु शिशूनां पैत्तिकं ज्वरम् ।।41।।
मुस्तापर्पटकोशीखारिपद्मकसाधितम् ।
शीतं वारि निहंत्याशु त्रिधादाहवमिज्वरान् ।।42।।
निम्बपत्रामृतानन्तापटोलेन्द्रयवैः कृतः ।
क्वाथो हन्त्याशु सततं प्रभवो व्यसन यथा ।।43।।
गुडूची चंदनोशीर धान्य नागरतः कृत ।
क्वाथस्तृतीयकं हन्याच्छर्करामधु मिश्रितः ।।44।।
पलंकषा वचा कुष्ठं गजचर्माविचर्म च ।
निम्बस्य पत्रं माक्षीकं सर्पियुक्तं च धूपकम् ।
ज्वर वेगं निहंत्याशु बाल्मनां तु विशेषतः ।।45।।
भद्रमुस्ताभयानिंबपटोलमधुकैः कृतः ।
क्वाथः कोष्णः शिशोरेषः निःशेषज्वरनाशनः ।।46।।

अब 'वातज्वर' को दूर करने का उपाय बताते हैं—मुलहठी, बंसलोचन, धान की खील, रसौत तथा मिश्री—इनकी चटनी खिलाने से बालकों के सभी तरह के बुखार दूर होते हैं। शालपर्णी, गोखरू, सोंठ, नेत्रबाला, सभी तरह की कटेली, गिलोय एवं चिरायता—इन सबका क्वाथ शिशु या उसकी माता को पिलाने से बालक का वातज्वर ठीक हो जाता है एवं अग्नि की बढ़ोत्तरी होती है। पञ्चमूल का क्वाथ देने से भी वातज्वर समाप्त होता है। गिलोय, दाख, सफेद अनन्तमूल एवं खिरैटी का क्वाथ देने (पिलाने) से भी वातज्वर खत्म हो जाता है। सारिवा, अनन्तमूल, सफेद कमल, खंभारी, गिलोय, पद्माख तथा पित्तपापड़ा—सबका क्वाथ पिलाने से बालकों का पित्तज्वर जल्द ही ठीक हो जाता है।

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, नेत्रबाला तथा पद्माख—इनसे साधित ठंडे जल से तीन तरह के दाह, छर्दि एवं बुखार का नाश होता है। नीम के पत्ते, गिलोय, जवासा, परवल एवं इन्द्रजौ—इनका क्वाथ (काढ़ा) पिलाने से बच्चों में लम्बे समय से लगातार बना रहने वाला बुखार जल्द ही दूर हो जाता है। गिलोय, चन्दन, खस, धनिया एवं सोंठ—इनके काढ़े में खांड तथा मधु डालकर पिलाने से तृतीयक ज्वर दूर होता है। गुग्गुल, वच, कूठ, हाथी का चमड़ा, भेड़ का चमड़ा, नीम के

पत्ते, मधु (शहद) एवं घी—इनका धूप बनाकर जलाने से बालकों के बुखार का वेग कम होता है। भद्रमोथा, हरड़, नीम की छाल, परवल एवं मुलहठी—इन सबका काढ़ा बनाकर थोड़ा गुनगुना करके पिलाने से बच्चों के सभी तरह के बुखार समाप्त हो जाते हैं।

इकतरा ज्वर

बालो यो चिरजातः स्तन्यं गृह्णातिनो तदा तस्य ।
सैन्धवधात्रीमधुघृतपथ्याकल्केन घर्षयेज्जिह्वाम् ।।47।।
कन्याकर्तित सूत्रेण बद्धापामार्गमूलिकाम् ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति शिखायामपि वेगतः ।।48।।
मुस्तापर्पटकं छिन्ना किरातो विश्वभेषजम् ।
एषां कषायो दातव्यो वातपित्तज्वरापहः ।।49।।
उशीरं मधुकं द्राक्षा काश्मरी नीलमुत्पलम् ।
पुरूषकं पद्मकश्च मधूकं मधुकं बला ।।50।।
एभिः शृतः कषायोऽयं वातपित्तज्वरं जयेत् ।
प्रलापमूर्च्छासंमोह तृष्णापित्तज्वरापहः ।।51।।
मूर्वानिशासर्वपरामसेन श्वेतासमंगांबुदकारवीणाम् ।
छागीपयोभिः सहपेषितानामुद्वर्त्तनं स्याज्ज्वरजिच्छिशूनाम् ।।52।।
त्रिफला पिचुमन्दश्च पटोलं मधुकं बला ।
एभिः क्वाथः कृतः पीतः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ।।53।।

अब 'इकतरा' आदि बुखार को दूर करने वाले उपायों के बारे में बताते हैं—जन्म के काफी समय के पश्चात् भी जो बालक स्तनपान नहीं कर पाता, उसकी जीभ को सेंधा नमक, आंवला, मधु, घी तथा हरड़ के कल्क से धोना चाहिए। अविवाहित कन्या द्वारा काते हुए सूत से अपामार्ग की जड़ को बालक की शिखा के ऊपर बांध देने से भी 'इकतरा' बुखार समाप्त हो जाता है। नागरमोथा, पित्तपापड़ा, गिलोय, चिरायता एवं सोंठ—इनका काढ़ा पित्तज्वर को दूर करता है।

खस, मुलहठी, दाख, खंभारी, नील-कमल, फालसा, पद्माख, महुआ, मुलहठी एवं खिरैटी—इन सबका काढ़ा पीने से वात ज्वर, प्रलाप, मूर्च्छा, मोह, तृषा एवं पित्तज्वर का नाश होता है। इस योग में मुलहठी का उल्लेख दो बार हुआ है, अतः दोगुनी मुलहठी लें। बकरी के दूध के साथ मरोड़फली, हल्दी, सरसों, चिरायता, सफेद अनंतमूल, नागरमोथा तथा अजमोद को पीसकर, बालक के शरीर पर लगाने से बुखार दूर होता है। त्रिफला, नीम की छाल, परवल, मुलहठी तथा खिरैटी का काढ़ा पीने से पित्त, कफ एवं बुखार नष्ट होता है।

विविध रोग

अमृतेन्द्र यवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी ।
नागरं चंदनं मुस्ता पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ।।54।।
अमृताष्टकमित्येतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।
हल्लासारोचकच्छर्दि तृष्णादाह निवारणम् ।।55।।
धान्यकचन्दनपद्मकमुस्ता शक्रयवामलकैः सपटोलैः ।
शीतकषायमिदं खलुदद्याद्बालक पित्तकफज्वरहृतं ।।56।।

सारग्वधः सातिविषः समुस्तस्तिक्ताकषायो ज्वरमाशुहन्यात् ।
सामं सशूलं सर्वामं सदाहं सकामलं हंति सरक्तपित्तम् ।।57।।
वासाव्याधिकणालेहः शीतज्वरविनाशनः ।
तद्वत् क्षुद्रामृताऽनंतातिक्ताभूनिम्बसाधितः ।।58।।
कटुकी विहितः क्वाथः कणाचूर्ण समन्वितः ।
ऐकाहिकज्वरं हन्ति कासश्वासादिदूषितम् ।।59।।
द्राक्षापटोलत्रिफलापिचुमन्दवृषैः कृतः ।
क्वाथ ऐकाहिकं हन्ति परार्थमिव दुर्जनाः ।।60।।
किराततिक्तकं मुस्ता गुडूची विश्वभेषजम् ।
चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्म ज्वरापहम् ।।61।।
मुग्दतण्डुलंसंसिद्धं केवलैर्वा मकुष्टकैः ।
पथ्यमत्र इदं दद्याद्दुःखं वातकफज्वरम् ।।62।।
दशमूली युतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
संमोहतंद्रासमये सन्निपातज्वरं हरेत् ।।63।।

अब अनेक प्रकार के रोगों को दूर करने का उपाय बताते हैं—गिलोय, इन्द्रजौ, नीम की छाल, परवल, कुटकी, सोंठ, चंदन तथा नागरमोथा के काढ़े में पीपल का चूर्ण मिलाने से यह 'अमृताष्टक' बन जाता है। इसका सेवन पित्त, कफ, बुखार, मुंह में थुक भर आना, अरुचि, छर्दि, तृषा एवं दाह को दूर करता है। धनिया, लाल चन्दन, पद्माख, नागरमोथा, इन्द्रजौ, आंवला एवं परवल की काढ़ा बनाकर, ठंडा करके बालक को पिलाने से पित्त, कफ एवं बुखार दूर होता है। अमलतास, अतीस, नागरमोथा एवं कुटकी का काढ़ा बनाकर पिलाने से बुखार, आम, शूल, छर्दि, दाह, कामला एवं रक्तपित्त दूर होता है। अडूसा, कटेली एवं पीपल या कटेली, गिलोय, जवासा, कुटकी और चिरायता—इनकी चटनी शीत ज्वर को समाप्त करती है।

कुटकी के काढ़े में पीपल का चूर्ण डालकर पीने से खांसी तथा श्वास आदि से प्रदूषित 'ऐकाहिक ज्वर' समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार दुष्ट मनुष्य दूसरे के धन को समाप्त करता है, उसी प्रकार दाख, परवल, हरड़, बहेड़ा, आंवला एवं नीम की छाल का काढ़ा इकतरा (मियादी) बुखार को दूर करता है। चिरायता, नागरमोथा, गिलोय एवं सोंठ का काढ़ा 'चातुर्भद्रक' कहलाता है। यह काढ़ा वात, कफ एवं ज्वर को दूर करता है। मूंग तथा चावलों से बना या केवल मोंठ से बना रस (जूस) पथ्य के रूप में देने से दुखदायी वात, कफ एवं बुखार नष्ट होता है। दशमूल काढ़े में पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से वह मोह और तन्द्रा के समय वात, कफ एवं ज्वर को दूर करता है।

ज्वरों की चिकित्सा

मुस्तकं चन्दनं वासा ह्रीबेरं यष्टिकामृता ।
एषां क्वाथस्तु पित्तघ्नस्तृषादाहज्वरापहः ।।64।।
वासापर्पट कोशीरनिबंभूनिंबसाधितः ।
क्वाथो हंति वमिश्वास कासपित्तज्वराञ्छिशोः ।।65।।
अभयामलकी कृष्णा चित्रकोऽयं गणोमतः ।

दीपनः पाचनो भेदी सर्वश्लेष्मज्वरापहः ।।66।।
कट्फलं पुष्करं शृंगी पिप्पली मधुना सह ।
एषां लेहो ज्वरं श्वासं कासं मन्दानलं जयेत् ।।67।।
मधुकं सारिवा द्राक्षा मधूकं चंदनोत्पलम् ।
काश्मरी पद्मकं लोध्रं त्रिफला पद्मकेसरं ।।68।।
परूषकं मृणालं च सेव्यं तु तप्तवारिणा ।
मधुजातमितायुक्तं तत्पीतं पुष्टिदं निशि ।।69।।
वातंपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छरुचिभ्रमान् ।
शमयेद्रक्तपित्तं च जीमूतमिव मारुतः ।।70।।

अब अनेक प्रकार के बुखार के उपायों का वर्णन करते हैं—नागरमोथा, लाल चन्दन, वसा, नेत्रबाला, मुलहठी तथा गिलोय—इनका काढ़ा पित्त, तृषा, दाह एवं बुखार को दूर करता है। अड़ूसा, पित्तपापड़ा, खस, नीम की छाल एवं चिरायता से बनाया गया काढ़ा बालक के छर्दि, श्वास, खांसी एवं पित्तज्वर को दूर करता है। हरड़, आंवला, पीपल एवं चीता—ये समस्त गण दीपन, पाचन, भेदन एवं सभी तरह के कफ-बुखार को दूर करने वाले हैं।

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासींगी एवं पीपल—इन सबको मधु में मिलाकर चटनी बनाएं। यह चटनी बुखार, श्वास, खांसी एवं मंदाग्नि को दूर करती है। मुलहठी, अनंतमूल, दाख, महुआ, चन्दन, सफेद कमल, खंभारी, पद्माख, लोध, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कमलकेशर, फालसा एवं कमल की डंडी—इनके क्वाथ (काढ़ा) में शहद और खांड़ मिलाकर रात में पीने से तंदुरुस्ती बढ़ती है। साथ ही जैसे हवा बादल को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार यह काढ़ा वात, पित्त ज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम एवं रक्तपित्त को नष्ट कर देता है।

अतिसार

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च ।
क्वाथोऽवलेहो मधुना विमिश्रो बालेषु योज्यः कटिधारितेषु ।।71।।
काकोली गजकृष्णा च लोध्रमेषां समांशतः ।
क्वाथो मध्वन्वितः पीतो बालातीसारहृन्मतः ।।72।।
लाजा सैंधवमाम्रास्थिचूर्ण मेषां समांशतः ।
हंति छर्दिमतीसारं मधुना सह भक्षितम् ।।73।।
आम्रबीजं तथा लोध्रं धात्रीफलरसं तथा ।
पीत्वा माहिषतक्रेण बालातीसारनाशनम् ।।74।।
फलिन्यंजनमुस्तानां चूर्णं पीतं समाक्षिकम् ।
तृष्णा छर्दिमतीसारं बालानां तत्त्वतो हरेत् ।।75।।
श्यामारसांजनं चूतफलास्थि समचूर्णितम् ।
हंति छर्दिमतीसारं बालानां मधुनाशितम् ।।76।।
धातकी बिल्वधान्याकलोध्रेन्द्रयव बालकैः ।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारकं जयेत् ।।77।।
लोध्रेण पिप्पलीबालो बालकातिसृतौ हितः ।

श्रीरसो माक्षिकयुतो धातकी कुसुमै समः ।।78।।
विडंगान्यजमोदा च पिप्पली चूर्णिकानि च ।
एषामालिह्य चूर्णानि सुखं तप्ते न वारिणा ।।79।।
आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्भिषक् ।।80।।

अब दस्त को रोकने का उपचार बताते हैं—बेलगिरी, धाय के फूल, नेत्रबाला, लोध एवं गजपीपल—इन सबका काढ़ा बनाकर उसमें मधु (शहद) मिलाकर पिलाने से दस्त में लाभ होता है। काकोली, गजपीपल एवं लोध—इन सबको बराबर मात्रा में लेकर काढ़ा बनाएं। फिर उसमें शहद मिलाकर पीने से शिशु का दस्त (अतिसार) समाप्त हो जाता है। धान की खील, सेंधा नमक एवं आम की गुठली—सबको बराबर-बराबर मात्रा में लेकर चूर्ण बनाकर, शहद के साथ देने से बालक का छर्दि और अतिसार रोग दूर होता है।

बराबर-बराबर मात्रा में आम की गुठली, लोध एवं आंवला के चूर्ण को भैंस के छाछ (मट्ठा) में मिलाकर पिलाने से बच्चों के अतिसार ठीक हो जाते हैं। त्रायमाण, रसौत एवं नागरमोथा के चूर्ण में मद्य मिलाकर चटाने से बच्चों के तृषा, छर्दि तथा दस्त जरूर दूर हो जाते हैं। धाय के फूल, बेलगिरी, धनिया, लोध, इन्द्रजौ एवं नेत्रबाला के चूर्ण में शहद मिलाकर खिलाने से बालक का बुखार और अतिसार दूर होता है। लोध, पीपल एवं नेत्रबाला का चूर्ण या श्रीरस और धाय के फूलों का चूर्ण शहद के साथ बच्चे को देने से दस्त में फायदा होता है। बायबिडंग, अजमोद एवं पीपल के चूर्ण को गुनगुने गर्म जल के साथ पिलाने से आमातिसार में लाभ होता है।

संग्रहणी

यवानी जीरकं व्योषं कुटजं विश्वभेषजम् ।
एतन्मधुयुतं पीतं बालानां ग्रहणीं जयेत् ।।81।।
पिप्पली विजयाशुंठी चूर्णं मधुयुतं भिषक् ।
दत्त्वा निहत्य ग्रहणीरुजांनियतमाप्नुयात् ।।82।।
कृष्णा महौषधं बिल्वं नागरः स यवानिकः ।
मधुसर्पिर्युतं: लीढं बालानां ग्रहणीं हरेत ।।83।।
नागरं मुस्तकं बिल्वं चित्रकं ग्रंथिकं शिवाम् ।
चूर्णमेतन्मधुयुतं कफजां ग्रहणीं जयेत् ।।84।।
सगुडं नागरं बिल्वं यः खादति हिताशनः ।
त्रिदोषग्रहणीरोगान्मुच्यते नात्र संशयः ।।85।।
मुस्तकातिविषा बिल्वं चूर्णितं कौटजं तथा ।
क्षौद्रेण लीढं ग्रहणीं सर्वदोषाद्भवां जयेत् ।।86।।
मोचरसं समंगा च धातकी पद्मकेसरम् ।
पिष्टैरेतैर्यवगूः स्याद्रक्तातीसार नाशिनी ।।87।।
नागराति विषामुस्तावालकेन्द्रयवेः कृतम् ।
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ।।88।।
लोध्रेन्द्रयवधान्याकधात्री ह्रीबेरमुस्तकम् ।
मधुनालेहयेद्बालं ज्वरातीसारनाशनम् ।।89।।

रनजी सरलो दारुर्बृहती गजपिप्पली ।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढा माक्षिकसर्पिषा ।।90।।
दीपनं ग्रहणीं हंति मारुतार्तिं सकामलाम् ।
ज्वरातिसारं पांडुत्वं बालानां सर्वरोगनुत् ।।91।।
ह्रीबेर शर्कराक्षौद्रंपीतं तंडुलवारिणा ।
शिशोरक्तातिसारघ्नं कासश्वासवमिं हरेत् ।।92।।

अब संग्रहणी रोग के उपचार के सम्बंध में बताते हैं—अजवायन, जीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, इन्द्रजौ एवं सोंठ—इन सबका चूर्ण करके मधु के साथ बालक को देने से उसका ग्रहणी रोग दूर हो जाता है (सोंठ का उल्लेख दो बार हुआ है, इसलिए सोंठ को अन्य वस्तुओं से दोगुनी मात्रा में लेनी चाहिए)। वैद्य द्वारा दिए गए पीपल, भांग एवं सोंठ का चूर्ण ग्रहणी से ग्रस्त बालक को स्वस्थ कर देता है। पीपल, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा एवं अजवायन के चूर्ण को मधु तथा घी मिलाकर चटाने से बालक का संग्रहणी रोग दूर होता है। सोंठ, नागरमोथा, बेलगिरी, चीता की जड़, पीपलामूल तथा हरड़ का चूर्ण बनाकर मधु मिलाकर चाटने से कफ सम्बंधी ग्रहणी रोग दूर होता है।

जो मनुष्य पौष्टिक तथा संतुलित भोजन लेता है तथा सोंठ एवं बेलगिरी के चूर्ण को गुड़ के साथ सेवन करता है, वह त्रिदोष-ग्रहणी से मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। शहद के साथ नागरमोथा, अतीस, बेलगिरी एवं इन्द्रजौ के चूर्ण को चाटने से त्रिदोषज अतिसार समाप्त हो जाता है। मोचरस, मंजीठ, धाय के फूल एवं कमल केशर—सबको पीसकर काढ़ा बनाकर पीने से रक्तातिसार दूर होता है। सोंठ, अतीस, नागरमोथा, नेत्रबाला एवं इन्द्रजौ का काढ़ा बनाकर सुबह के समय बालक को पिलाने से सभी प्रकार का अतिसार खत्म हो जाता है। लोध, इन्द्रजौ, धनिया, आंवला, नेत्रबाला तथा नागरमोथा के चूर्ण को मधु में मिलाकर बच्चे को देने से ज्वरातिसार समाप्त होता है।

हल्दी, सरल, देवदारु, कटेली, गजपीपल, पिठवन तथा शतावरी के चूर्ण को मधु एवं घी में मिलाकर चाटें। यह भूख को जगाता है तथा बालकों के ग्रहणी दोष, वातरोग, कामला, ज्वरातिसार एवं पाण्डु आदि सभी रोगों को दूर करता है। हाऊबेर या नेत्रबाला के चूर्ण को खांड़ तथा मधु में मिलाकर चावल के पानी के साथ देने से बालक का रक्तातिसार, खांसी, छर्दि आदि रोग दूर होता है।

बवासीर

यवानी नागरं पाठा दाडिमं कुटजं तथा ।
चूर्णोऽयं गुडतक्राभ्यां पीतोर्शस्तंभनः परः ।।93।।
अजाजी पौष्करं पाठा त्र्यूषणं दहनं शिवा ।
गुडेन गुटिका ग्राह्या सर्वार्शश्शोधनी यतः ।।94।।
नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीत शर्कराभ्यासात् ।
दधिसारमथिताभ्यासाद्गुदजाः शाम्यंति रक्तवहाः ।।95।।
एवं वा कौटजं बीजं रक्तार्शो मधुना हरेत् ।
तद्वन्मुस्तामोचरसः कपिकच्छुभवो रजः ।।96।।

धान्यनागरजः क्वाथः शूलामाजीर्णनाशनः ।
चूर्ण स्तत्र शुभः पीतंस्तद्वद् व्योषाग्निजीरकैः ।।97।।
पिप्पली रुचकं पथ्याचूर्णं मस्तुजलं पिबेत् ।
सर्वाजीर्णहरः शूल गुल्मानाहाग्निमांद्यजित् ।।98।।
त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रपिष्टैः सबलासिताह्वैः ।
अजीर्णकघ्नं च विशूषिचकाघ्नं तैलं विपक्वं च तदर्थकारि ।।99।।

अब अर्श (बवासीर) के उपचार के बारे में सुनो—अजवायन, सोंठ, नागरपाठा, अनार की छाल एवं इन्द्रजौ के चूर्ण को गुड़ और मट्ठा के साथ पीने से बवासीर के मस्से में बढ़ोत्तरी नहीं होती। जीरा, पोहकरमूल, पाठा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रक एवं हरड़—सबको पीसकर गुड़ में गोली बनाकर खाने से सभी तरह के बवासीर के मस्से दूर हो जाते हैं। मक्खन तथा तिलों को प्रतिदिन खाने या नागकेशर, मक्खन एवं तिलों का रोज सेवन करने या मट्ठे को प्रतिदिन पीने से खूनी बवासीर के मस्से से खून गिरना बन्द हो जाता है। इन्द्रजौ को मधु में मिलाकर चाटने या नागरमोथा, मोचरस एवं बीज के चूर्ण को शहद के साथ चाटने से रक्तस्रावी बवासीर समाप्त हो जाता है।

धनिया और सोंठ के काढ़े में कालीमिर्च, पीपल, चीता और जीरा का चूर्ण मिलाकर पीने से आम्रशूल एवं अजीर्ण दूर होता है। पीपल, काला नमक एवं हरड़ का चूर्ण खाकर ऊपर से दही का पानी पीने से सभी तरह के शूल, गुल्म, अफरा एवं मन्दाग्नि दूर होती है। दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगर, सहिजन की छाल, कूठ, खिरैटी एवं मिश्री—सबको अर्क में पीसकर देने से या इन दवाओं से तेल को सिद्ध करके सेवन कराने से अजीर्ण तथा हैजा का विनाश होता है।

भस्मक रोग

अन्नपानैर्गुरुस्निग्धैर्मंद्रसांद्र हिमस्थि रैः ।
पित्तघ्ने रेचनैर्धीमान् भस्मकं प्रशमं नयेत ।।100।।
औदुंबरत्वचं पिष्ट्वा नारीक्षीर युतं पिबेत् ।
ताभ्यां च पयसा सिद्धं भुक्तं जयति भस्मकम् ।।101।।
मयूरैस्तंडुले सिद्धं पायसं भस्मकं जयेत् ।
विदारीस्वरसे क्षीरे सिद्धं वा महिषीघृतम् ।।102।।
धान्याकं शर्करायुक्तं तण्डुलोदकसंयुतम् ।
पानमेतत्प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः ।।103।।
दुरालभा कणा द्राक्षा पथ्या क्षौद्रेण लेहयेत् ।
त्रिरात्रं पंचरात्रं वा कासश्वासहराः शिशोः ।।104।।
हिंगुकर्कटशृंगी च गैरिकं मधुयष्टिका ।
त्रुटि क्षौद्रं नागरं च हिक्काश्वासनिवारणम् ।।105।।
कृष्णा दुरालभा द्राक्षा कर्कटाख्या गजाह्वया ।
चूर्णिता मधुसर्पिभ्यौ लीढ्वा हंति शिशोर्गनदान् ।
कासः श्वासश्चं तमकं ज्वरो वापी विनश्यति ।।106।।
शृंगी समुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ।

कासज्वरच्छर्दिसमन्वितानां समाक्षिकं वातिविषासमेतम् ।।107।।
गुडोदकं वा क्वथिकं व्योषसैंधवसंयुतम् ।
सुखोष्णं पाययेद्वालं कासरोगोपशांतये ।।108।।
विहितो मधुना लेहो व्याघ्री कुसुम केसरैः ।
लीढो हि नाशयत्याशु कासं पंचविधं शिशोः ।।109।।

अब भस्मक आदि व्याधियों के उपचार के बारे में बताते हैं—भारी, चिकना, मंद, गीला, ठंडा एवं स्थिर अन्न-पान तथा पित्त नाशक जुलाबों का सेवन कराके भस्मक रोग को शान्त करें। गूलर की पिसी हुई छाल को स्त्री के दूध में मिलाकर पिएं। बाद में गाय के दूध में पकाकर पिएं तो भस्मक रोग दूर हो जाता है। श्वेत अपामार्ग की जड़ एवं चावल की खीर या बिदारीकन्द को स्त्री के दूध में डालकर, उसमें भैंस के घी को सिद्ध करके खाने से भस्मक रोग समाप्त हो जाता है। बालक की खांसी एवं नया श्वास रोग में पिसे धनिये में खांड मिलाकर पानी के साथ पिलाने से लाभ होता है। जवासा, पीपल, दाख तथा हरड़—सबका चूर्ण बनाकर, मधु में मिलाकर तीन या पांच रात तक लगातार सेवन करने से बालकों के खांसी एवं श्वास रोग नष्ट होते हैं।

हींग, काकड़ासींगी, गेरू, मुलहठी, छोटी इलायची तथा सोंठ—इनके चूर्ण में मधु मिलाकर चाटने से हिचकी एवं श्वास रोग दूर होता है। पीपल, जवासा, दाख, काकड़ासींगी एवं पंवाड़ के बीज के चूर्ण को मधु तथा घी में मिलाकर देने से बालकों की खांसी, श्वास, तमकश्वास और ज्वर की बीमारी दूर होती है। काकड़सींगी, नागरमोथा एवं अतीस का चूर्ण शहद के साथ मिलाकर चटाने से बालकों की खांसी, ज्वर एवं छर्दि रोग दूर हो जाते हैं। गुड़ के काढ़े में सोंठ, कालीमिर्च, पीपल तथा सेंधा नमक मिलाकर गुनगुने (सुखोष्ण) पानी के साथ बच्चों को पिलाने से खांसी समाप्त हो जाती है। कटेली, लौंग तथा नागकेशर के चूर्ण में मधु मिलाकर बालक को देने से उसकी पांचों किस्म की खांसी दूर हो जाती है।

एकाशृङ्गी निहंत्याशु मूलकस्य फलान्विता ।
घृतेन मधुना लीढा कासं बालस्य दुस्तरम् ।।110।।
तुंगा च क्षौद्रेः संलिह्यांच्छवासकासौ शिशोर्जयेत् ।।111।।
विडंगं मधुना लीढं पुष्करं बालशिग्रुकम् ।
आखुपर्णी तथैका वा कृमिभ्यो मुच्येतः शिशुः ।।112।।
पौषकरातिविषा शृंगीमागधीधन्वयासकैः ।
कृत्तं चूर्णं तु सक्षौद्रं शिशूनां श्वासकासजित् ।।113।।
मुस्तकातिविषावासाकणाभृंगीरसं लिहन् ।
मधुना मुच्यते बालः कासैः पंचभिरुच्छ्रितैः ।।114।।
व्याघ्रीकुसुम संजात केशरैखलेहिका ।
मधुना चिर संजाताञ्शिशोः कासान् व्यपोहति ।।115।।

काकड़ासींगी तथा मूली के बीजों को पीसकर चूर्ण बनाकर उसमें घी एवं मधु मिलाकर बालक को खिलाने (चटाने) से भयंकर खांसी दूर हो जाती है। बालकों के खांसी एवं श्वास रोग में बंसलोचन चूर्ण को शहद के साथ चटाने से भी लाभ होता है। बायबिडंग के चूर्ण या पोहकरमूल तथा छोटे सहिजन के फल के चूर्ण या मूषापर्णी के चूर्ण को मधु के साथ चटाने से बालक

कृमिरोग से मुक्त हो जाता है। पोहकरमूल, अतीस, काकड़ासींगी, पीपल तथा जवासा के चूर्ण को मधु में मिलाकर देने से बालकों की पांचों तरह की खांसी दूर हो जाती है। नागरमोथा, अतीस, अडूसा, पीपल एवं काकड़ासींगी के रस को मधु में मिलाकर देने से बालकों की तीव्र हुई पांचों तरह की खांसी दूर हो जाती है। कटेली, लौंग तथा नागकेशर—सभी के चूर्ण बनाकर मधु में मिलाकर, चटनी बनाकर खिलाने से बालकों की पुरानी से पुरानी खांसी दूर हो जाती है।

हिचकी का उपचार

सुवर्णगैरिकं पिष्ट्वा मधुना सहलेहयेत् ।
शीघ्रं सुखमवाजोति तेन हिक्कार्द्दितः शिशुः ।।116।।
पिप्पलीरेणुका क्वाथः स हिंगुः समधुः कृतः ।
हिक्कां बहुविधां हन्यादिदं धन्वन्तरेर्वचः ।।117।।
चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत् ।।118।।
हिक्का प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दि चापि चिरोत्थित्ग्रम ।।119।।

अब हिचकी (हिक्का) दूर करने का उपाय बताते हैं—पिसी हुई सोनागेरू में मधु मिलाकर बालक को चटाने से हिचकी की बीमारी दूर हो जाती है। वैद्य धन्वन्तरि के अनुसार—पीपल और रेणुका के काढ़े में हींग का चूर्ण तथा मधु मिलाकर पीने से हिचकी दूर होती है। कुटकी के चूर्ण में शहद मिलाकर बच्चे को देने से उसकी हिचकी तथा पुराना छर्दि रोग जल्द ही समाप्त हो जाता है।

उल्टी एवं प्यास

यवानी कुटजारिष्टसप्तपर्णपटोलकैः ।
लेहश्छर्दिमतीमारं ज्वरं बालस्य नाशयेत् ।।120।।
हरीतक्याः कृतं चूर्णं मधुना सह लेहयेत ।
अधस्ताद्विहिते दोषे शीघ्रं छर्दिः प्रशाम्यति ।।121।।
अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्धं निर्वापितं जले ।
तज्जलं पानमात्रेण छर्दि जयति दुर्जयाम् ।।122।।
तालानां जलमुस्तानां चूर्णं पीतं समाक्षिकम् ।
तृष्णांछर्दिमतीसारं शिशूनामुद्धतं हरेत् ।।123।।
आम्रास्थिलाजसिंधूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत् ।।124।।
घनशृंगीविषाणां च चूर्णं हंति समाक्षिकम् ।
वांतिज्वरं तथा योगो मधुनातिविषारजः ।।125।।
पीतं पीतं वमेघस्तु स्तन्यं तं मधुसर्पिषा ।
द्विवार्ताकीफलरसं पंचकोलं च लेहयेत् ।।126।।
पिप्पलीमधुकानां च चूर्णं समधुशर्करम् ।
मातुलुंगरसे नैव हिक्काछर्दि निवारणम् ।।127।।
पिप्पलीं मधुकं जंबूरसालतरूपल्लवाः ।
चूर्णोऽयं मधुना चेति तृष्णाप्रशमनः शिशोः ।।128।।
हिंगुसैंधवपालाशचूर्णं माक्षिक संयुतम् ।

लीढं निवारयत्याशु शिशूनामुद्धतां तृषाम् ।।129।।

अब छर्दि (उल्टी) एवं तृषा (प्यास) नाश का वर्णन करते हैं—अजवायन, इन्द्रजौ, नीम की छाल, सप्तपर्णी एवं परवल—इनका लेप बनाकर चटाने से बालक के छर्दि, अतिसार एवं बुखार रोग दूर होते हैं। हरड़ का चूर्ण शहद में मिलाकर बालक को देने से विकार शांत होता है एवं छर्दि जल्द ही खत्म हो जाती है। पीपल की छाल को सुखाकर आग में जलाएं। फिर उसकी राख को जल में मिलाकर पिलाने से भयंकर छर्दि दूर हो जाती है। मधु में ताड़ तथा जलमोथा के चूर्ण को मिलाकर बालक को चटाने से तृषा, छर्दि एवं अतिसार रोग समाप्त होते हैं। आम की गुठली, धान की खील तथा सेंधा नमक के चूर्ण में मधु मिलाकर बच्चे को देने से छर्दि रोग दूर हो जाता है।

शहद में अतीस, काकड़ासींगी तथा नागरमोथा के चूर्ण को मिलाकर या अतीस के चूर्ण में शहद मिलाकर चटाने से बालक के छर्दि एवं बुखार नष्ट होते हैं। जो बालक दूध पीने के बाद वमन (उल्टी) कर देता है, उसे दोनों कटेली के फलों का रस, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता एवं सोंठ—इनके चूर्ण को मधु तथा घी मिलाकर चटाने से दूध की उल्टी बन्द हो जाती है। मधु एवं खांड में पीपल तथा महुए का चूर्ण मिलाकर बिजौरा नीबू के रस के साथ पीने से हिचकी एवं छर्दि दूर होती है। शहद (मधु) में पीपल, मुलहठी, जामुन के पत्ते तथा आम के पत्ते के चूर्ण को मिलाकर चटाने से बच्चे की प्यास (तृषा) दूर होती है। शहद में हींग, सेंधा नमक एवं ढाक के पत्ते के चूर्ण को मिलाकर बालक को देने से बढ़ी हुई प्यास दूर हो जाती है।

वायुशूल

घृतेन सिंधुविश्वैलाहिंगुभाङ्गीरजो लिहन् ।
आनाहवातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशोः ।।130।।
पिप्पली त्रिफला चूर्णं घृत क्षौद्र परिप्लुतम् ।
बालोरोदिति यस्तस्मै लेढुं दद्यात्सुखावहम् ।।131।।
पिष्ट्वागन्धर्वबीजानि त्वाखुविड्निम्बुवारिणा ।
नाभौ गुदे वा लेपेन शिशूनां रेचनं परम् ।।132।।
इंदुलोचन नेत्राणि शिखिभागं हि योजयेत् ।
त्रुटिगंधक मुर्दाऽशतपुष्प विचूर्णिताः ।।133।।
माषद्वयं गवां दुग्धैः सेवयेद्दिनपंचकम् ।
रेचयेन्मृत्तिकां शुद्धां शिशूनां हितमौषधम् ।।134।।
यथातुदुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान् ।
विदारी कंदगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम् ।।135।।
खादयेत्तदनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम् ।
सौवर्ण सुकृतं चूर्ण कुष्ठं मधु घृतं वचा ।।136।।
मत्स्याक्षकः शंखपुष्पी मधुसर्पिस्सकांचनम् ।
अर्कपुष्पी घृतं क्षौद्रं चूर्णित कनकं वचा ।
सहेमचूर्ण कैटर्यं श्वेतदूर्वा घृतं मधु ।।137।।
चत्वारोऽभिहिताः प्राश्या अर्धश्लोकसमापनाः ।

कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः ।।138।।
लाक्षारसे समं तैलं मस्तुन्यथ चतुर्गुणे ।
रास्नाचंदनकुष्ठाब्दवाजिगंधानिशायुतैः ।।139।।
शताह्वदारु यष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताह्वरेणुभिः ।
संसिद्धं ज्वररक्षोघ्न बलवर्णकरं शिशोः ।।140।।
पादकल्केऽश्वगंधायाः क्षीरेऽष्टगुणिते पचेत् ।
घृतं देयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्द्धनम् ।।141।।

अब वायुशूल के निवारण का तरीका बताते हैं—सेंधा नमक, सोंठ, इलायची, हींग एवं भारंगी की जड़—सबका चूर्ण बनाकर घी तथा पानी के साथ देने से बच्चों का अफरा और वायुशूल समाप्त होता है। बराबर रोते रहने वाले बालक को पीपल, हरड़, बहेड़ा तथा आंवला के चूर्ण को घी एवं मधु में मिलाकर चटाने से वह रोना बंद कर देता है। अण्डी (एरण्ड) के बीज एवं चूहे की मींगनी को नीबू के रस में पीसकर बालक की नाभि या गुदा पर लेप करने से उसे दस्त होने लगता है। एक भाग छोटी इलायची, दो भाग गंधक, तीन भाग मुर्दासंग एवं चार भाग सौंफ—सबका चूर्ण बनाकर, दो माशे के बराबर चूर्ण को गाय के दूध के साथ पांच दिन तक सेवन कराने से शिशु के पेट में एकत्र मिट्टी गुदा द्वारा बाहर आ जाती है। यह बालकों के लिए अत्यंत लाभकारी है।

यदि बालक अत्यधिक भोजन करता हो, उसकी भूख प्रबल हो और वह लगातार कमजोर होता चला जाए तो उसे बिदारीकंद, गेहूं एवं जौ के चूर्ण को घी में मिलाकर खिलाएं। बाद में खांड तथा मधु मिलाकर गर्म दूध पिलाएं या गूलर के फल, कूठ और वच के चूर्ण को घी तथा मधु के साथ या कावली, शंखपुष्पी, गूलर का फल, मधु और घी या अर्कपुष्पी, घी, शहद, गूलर का फल और वच या गूलर का फल, कायफल, सफेद दूब, घी और शहद—इन चारों अवलेहों में से किसी एक का सेवन कराने से बालकों के शरीर, बुद्धि एवं बल में वृद्धि होती है। ये सभी पौष्टिक पदार्थ हैं।

लाख का काढ़ा एवं तेल को बराबर मात्रा में लेकर उसमें चौगुना दही का पानी, रास्ना, चन्दन, कूठ, नागरमोथा, असगंध, हल्दी, दारुहल्दी, सौंफ, देवदारु, मुलहठी, मरोड़फली, कुटकी और रेणुका—इनका कल्क मिलाकर तेल को पकाएं। यह तेल बालक के बुखार एवं राक्षस दोषों को दूर करके बल-वर्ण बढ़ाता है। बालक के शरीर पर इस तेल की मालिश करनी चाहिए। एक भाग असगंध में आठ भाग दूध मिलाकर घी सिद्ध करें। इस घी को बालकों को देने से उनके बल में बढ़ोत्तरी होती है एवं शरीर तन्दुरुस्त होता है।

शरीर की सूजन

मुस्ताकूष्माण्डबीजानि भद्रदारुकलिंगकान् ।
पिष्ट्वा तोयेन संलिप्येल्लेपोऽयं शोथहृच्छिशोः ।।142।।
मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेत सोष्मणा ।
स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोध स्तेनोपशाम्यति ।।143।।
नाभिपाके निशालोध्रप्रियंगुमधुकैःशृतम् ।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिश्चात्रावधूलनम् ।।144।।

दुग्धेन छागशकृता नाभिपाकेऽव चूर्णनम् ।
त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वापि कुर्य्याच्चन्दनरेणुना ।।145।।
गुदयाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ।
रसांजनं विशेषेण पानलेपनयोर्हितम् ।।146।।
शंखयष्टयंजनैश्चूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत् ।
पारिगर्भिक रोगे तु युज्यते वह्निदीपनम् ।।147।।
पटोल त्रिफलारिष्ट हरिद्राक्वथितं पिबेत् ।
क्षतविस्फोट ज्वराणां शांतये बालकस्य च ।।148।।
गृहधूमनिशाकुष्टराजिकेन्द्रयवैः शिशोः ।
लेपस्तक्रेण हंत्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ।।149।।
तालुपाके यवक्षारमधुभ्यां प्रतिसारणम् ।।150।।
दंतपालीं तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् ।
धातकी पुष्पपिप्पलीधात्रीफलरसेन वा ।।151।।
दंतोत्थान भवा रोगाः पीडयंति न बालकम् ।
जाते दंते हि शाम्यन्ति यतस्तद्धेतुका गदाः ।।152।।
प्राचीगतं पाण्डुर सिन्धुवारमूलं शिशूनां गलके निबद्धम् ।
हंत्याशु दंतोद्भववेदनां च निःशेषमे कांडकुरंडमेव ।।153।।

नागरमोथा, कुम्हड़े के बीज, देवदारु, इन्द्रजौ—सबको पानी में पीसकर बच्चे के शरीर पर लगाने से सूजन दूर होती है। मिट्टी के गोले को आग में तपाकर, दूध में बुझाएं। उस दूध की भाप से बालक की उठी हुई नाभि को सेंकने से उसकी सूजन दूर हो जाती है। यदि बालक की नाभि पक गई हो तो हल्दी, लोध, मेहंदी एवं मुलहठी के काढ़े में तेल को सिद्ध करके नाभि पर लगाएं या इन्हीं दवाओं के चूर्ण को सूजी हुई टुंडी (नाभि) पर मलने से लाभ होता है। बकरी की मींगनियों को दूध में पीसकर नाभि के पके हिस्से पर लगाने या दालचीनी, चन्दन तथा दूध वाले पेड़ के चूर्ण को टुंडी पर मलने से लाभ होता है।

शिशु की गुदा पक जाने पर सबसे पहले पित्त-नाशक क्रिया करें। इसमें विशेष रूप से रसौत पीने तथा लेप करने से लाभ होता है। शंख, मुलहठी एवं रसौत के चूर्ण से बालकों की पकी गुदा ठीक हो जाती है। बालक को पारगर्भिक रोग होने पर अग्नि-दीपक दवा का उपयोग करें। परवल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम की छाल तथा हल्दी—इनका काढ़ा पिलाने से बच्चों के घाव, फोड़ा तथा बुखार ठीक होते हैं। घर का धुआं, हल्दी, कूठ, राई एवं इन्द्रजौ को मट्ठे में पीसकर बालक के शरीर पर लगाने से खुजली, सीप तथा विचर्चिका जल्दी समाप्त हो जाता है।

तालु पक जाने पर जवाखार तथा मधु की मालिश करें। बच्चे के दांत के रोग में धाय के फूल, पीपल एवं आंवला के रस में मधु मिलाकर मालिश कराएं। दांत निकलते समय बच्चों को जो बीमारी होती है, वे दांतों के निकल आने पर अपने आप ठीक हो जाती है, क्योंकि दांतों का निकलना बीमारी की तरह होता है। सफेद संभालू जो पूर्व दिशा में उत्पन्न हुई हो, की जड़ को बालक के गले में बांध देने से दांत निकलने के वक्त का दर्द, फोतों का छिटकना एवं कुरंड रोग—ये सभी दूर हो जाते हैं।

मुंह के छाले

जातीपत्रामृताद्राक्षापाठा द्रव्यैः फल त्रिकैः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गंडूषो मुखपाकजित् ।।154।।
सारिवा तिक्त लोध्राणां कषायो मधुकस्य च ।
संस्रावी विमुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ।।155।।
मुखपाके तु बालानामाम्रसारमयोरजः ।
गैरिकं क्षौद्र संयुक्तं भेषजं सरसांजनम् ।।156।।
दार्वीयष्टयभयाजातीपत्र क्षौद्रैस्तु धावनम् ।
अश्वत्थत्वग्दल क्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनं ।।157।।
हरीतकीवचाकुष्टकल्कं माक्षिकसंयुतम् ।
पीत्वाकुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकंटकात् ।।158।।
मेधामृतानागरवाजिगंधाधात्री त्रिकंटैर्विहितः कषायः ।
क्षौद्रेण पीतः शमयत्यवश्यं मूत्रस्य कृच्छ्रं पवन प्रभूतम् ।।159।।
यवक्षार युतः क्वाथः स्वादुकंटकसंभवः ।
पीतः प्रणाशयत्याशु मूत्रकृच्छ्रं कफोद्भवम् ।।160।।
एरंडतैलं सपयः पिबेद्यो गव्येन मूत्रेण तदेव पीत्वा ।
सगुग्गुलः प्रौढरुजं प्रवृद्धं सव्यत व्याधिं सहसा निहन्ति ।।161।।
कर्पूरवर्तिं मृदुना लिंगच्छिद्रे निधारयेत् ।
शीघ्रं तया महाघोरान्मूत्रबंधात्प्रमुच्यते् ।।162।।
कणोषण सिताक्षौद्र सूक्ष्मैलासैंधवैः कृतः ।
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेहउत्तमः ।।163।।

जावित्री, दूध, दाख, पाठा, हरड़, बहेड़ा एवं आंवले के काढ़े को ठंडा करके उसमें मधु मिलाकर कुल्ला कराने से बालकों के मुंह के छाले ठीक हो जाते हैं। शहद में सारिवा, अनंतमूल, चिरायता, लोध और मुलहठी के काढ़े को मिलाकर पीड़ित बालक के स्रावयुक्त मुख को धोने से लाभ होता है। बालकों के मुंह पक जाने पर आम का क्षार, लोहे की भस्म, गेरू एवं रसौत के चूर्ण को मधु में मिलाकर लगाने से शीघ्र लाभ पहुंचता है। पके मुख में दारुहल्दी, मुलहठी, हरड़ एवं चमेली के पत्ते को पीसकर मधु के साथ लगाने से फायदा होता है। बालक के टांसिल वृद्धि को दूर करने के लिए हरड़, वच और कूठ के कल्क में मधु मिलाकर दूध के साथ पिलाना चाहिए।

नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, असगंध, आंवला एवं गोखरू—इनके काढ़े में मधु मिलाकर पिलाने से बालक का पेशाब कम या रुक-रुककर आना अथवा थोड़ा-थोड़ा करके कष्ट से आना ठीक हो जाता है। गोखरू के काढ़े में जवाखार मिलाकर सेवन करने से कफजन्य मूत्रकृच्छ्र ठीक हो जाते हैं। दूध, अंडी (एरण्ड) का तेल या गाय का मूत्र, गूगल मिला दूध और एरण्ड का तेल पीने से पेशाब की बीमारियां तथा भयंकर वातवृद्धि दूर होती हैं। मुलायम वस्त्र से कपूर की बत्ती बनाकर लिंग के छेद में रखने से भयानक मूत्र का एकदम रुक जाना रोग ठीक हो जाता है। पीपल, कालीमिर्च, मिश्री, मधु, छोटी इलायची एवं सेंधा नमक द्वारा तैयार किया गया लेह बच्चों के पेशाब रुक जाने में फायदा करता है।

वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम् ।
पक्त्वा तु पोलिकां खादेदपचीनाशकारिणीम् ।।164।।
शिरीष नक्तमालानां बीजैरंजित लोचनः ।
चित्तोन्मादं निहंत्याशु सापस्मारापतंत्रिकम् ।।165।।
वासायाः स्वरसः पीतः सितामधुसमन्वितः ।
चूर्णैश्च वटरोहाणां रक्तपित्तं विनाशयेत् ।।166।।
पलाशपुष्पक्वाथेन वासायाः स्वरसेन वा ।
चतुर्गुणेन संसिद्धं रक्तपित्तहरं घृतम् ।।167।।
रसोदाडिम पुष्पाणां दूर्वायाः स्वरसेन वा ।
नस्येन नाशयेत्तूर्णं नासिकारक्तमुद्धतम् ।।168।।
त्रिकटुकमजमोदा सैंधवं जीरके द्वे समचरणं ।
घृताना मष्टमो हिंगुभागः ।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतज्जनयति ।
जठराग्निं वातगुल्मं निहंति ।।169।।
पुनर्नवैरंडन वातसीभिः कार्पासजैरस्थिभिरारनालैः ।
स्विन्नेरमीभीरिति सद्भिरेव स्वेदः समीरार्त्तिहरो नराणाम् ।।170।।
कूष्माण्डकरसं कृत्वा मधुकं परिपेषयेत् ।
अपस्मारविनाशाय तत्पिबेत्सप्तवासरान ।।171।।
गोसर्पिः साधितं पूतं दधिक्षीरशकृद्रसैः ।
चातुर्थिक ज्वरोन्मादं सर्वापस्मार नाशनम् ।।172।।
हिंगुमाक्षिकसिंधूत्थैः कृत्वा वर्तिं सवर्तिताम् ।
घृताभ्यक्तां गुदे दद्यादुदावर्तविनाशिनीम् ।।173।।
शुंठीकणापुष्करकेतकीनां विधाय चूर्णं ककुभत्वचो वा ।
रास्नान्वितं वा मधुनावलीढं हृद्रोगमेतच्छमयत्युदग्रम् ।।174।।
कोलास्थिपद्मकोशीरचंदनं नागकेशरम् ।
लीढं क्षौद्रेण बालानां मूर्च्छानाशनमुत्तमम् ।।175।।

अब विभिन्न रोगों के उपचार के सम्बंध में बताते हैं—जंगली कपास की जड़ को चावलों के साथ पीसकर उसकी रोटी पकाएं, फिर वह रोटी बालक को खिलाएं। इससे बालक का अपच रोग दूर हो जाता है। सिरस तथा करंज के बीजों को महीन पीसकर बालक की आंखों में लगाने से चित्त का बिगड़ना, उन्माद, मिरगी एवं अपतंत्र का रोग जल्द ही समाप्त हो जाता है। वासा के रस में मिश्री एवं मधु मिलाकर पिलाने या बरगद की कोंपलों के कल्क में मिश्री-मधु मिलाकर खाने से रक्तपित्त का नाश होता है। पलाश के फूलों का काढ़ा या अड़ूसा का स्वरस चार भाग लेकर उसमें एक भाग घी को सिद्ध करें। यह घी बालकों के रक्तपित्त को दूर करता है।

अनार के फूलों का रस या दूब के रस का नस्य लेने से नाक से खून का गिरना जल्द ही बन्द हो जाता है। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हींग, अजमोद, सेंधा नमक, कालाजीरा तथा सफेद जीरा —इन सबके एक-एक भाग लेकर चूर्ण बनाकर, घी में मिलाकर भोजन के प्रथम ग्रास (कौर) के

साथ लेने पर जठराग्नि (पेट की भूख) जगती है एवं वातगुल्म समाप्त होता है। पुनर्नवा, अंडी की जड़, नई अलसी व कपास के बीज को कांजी से पीसकर गर्म करें तथा बीमार बालक को उसकी भाप देकर पसीना निकालने से वात-रोग दूर होता है। कच्चे कुम्हड़े के रस में मुलहठी पीसकर सात दिनों तक पीने से बच्चों की मिरगी दूर हो जाती है।

गाय के घी को गाय के दूध, दही तथा गोबर से सिद्ध करें। यह घी बालकों के चौथिया बुखार, पागलपन एवं सभी तरह के मिरगी रोगों को दूर करता है। हींग, शहद तथा सेंधा नमक की बत्ती बनाकर उसमें घी लगाकर, बालक के गुदा में लगाने से उदावर्त की बीमारी दूर होती है। सोंठ, पीपल, पोहकरमूल, केतकी, ककुभवृक्ष की छाल तथा रास्ना—सबके चूर्ण को मधु में मिलाकर चटाने से बालकों के हृदयरोग ठीक होते हैं। बेर की गुठली, पभाख, खस, चन्दन एवं नागकेशर के चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से बालकों की मूर्च्छा दूर हो जाती है।

द्राक्षामामलके स्विन्न पिष्ट्वा क्षौद्रेणसंयुतम् ।
सर्वदोष भवां मूर्च्छां सज्वरां नाशयेद्ध्रुवम् ।।176।।
शीताः प्रदेहा मणयः सहाराः सेकावगाहा व्यंजनस्य वाताः ।
लेह्यान्नपानादि सुगंधशीतं मूर्च्छासु सर्वासु परं प्रशस्तम् ।।177।।
जीरकद्वयमम्लीकावृक्षाम्लं दाडिमान्वितम् ।
शैलार्द्रकं रसं शीघ्रं तिमिरं हंति दुस्तरम् ।।178।।
पद्मकं चन्दनं तोयमुशीरं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
क्षीरेण पीतं बालानां दाहं शमयति ध्रुवम् ।।179।।
कर्पूरचन्दनोशीर लिप्तांग कट्फलैरपि ।
पल्लव प्रस्तरे धीमान्स्थापयेद्दाहपीडितम् ।।180।।
परिसेकावगाहेषु व्यजनानां च सेवने ।
शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोप शान्तये ।।181।।
मुस्ता विडंगं मगधखुपर्णी कंपिल्लको दाडिमबैल्वकेन ।
कृमीन्हरेत्सत्वरमुग्रवेगा द्रोगेषु लीढं शमयत्यवश्यम् ।।182।।
यवचूर्णं कृमिरिपुं मगधा मधुना संह ।
भक्षयेत्पाण्डुरोघ्नं पंक्तिशूलहरं परम् ।।183।।
मागधीं मगधामूलं नागरं मरिचान्वितम् ।
क्षौद्रेण लीढं कफजं स्वरभेद व्यपोहति ।।184।।
यष्टयाह्वजीवनीमूर्वा कोलीवट सुसाधितम् ।
पेयं पित्तोद्भवं हंति स्वरभेदं सुदारुणम् ।।185।।
अपोरजैस्त्रैफलचूर्णयुक्तैर्गोमूत्रसिद्धैर्मधुना वलीढैः ।
पाण्डुं सकासं च सतक्रपथ्यं शूलं समूलं शमयेदवश्यम् ।।186।।
शिलाजतुव्योमविडंग लोहताप्याभयाभिर्विहितोऽवलेहः ।
सर्पिर्मधुभ्यां विधिना प्रयुक्तः क्षयं विधत्ते सहसा क्षयस्य ।।187।।

दाख तथा आंवलों को आग पर पकाकर मधु के साथ पीस लें। इसे बालकों को देने से बुखार सहित सभी विकारों से उत्पन्न मूर्च्छा जल्द ही दूर हो जाती है। ठंडा लेप, रत्नों की माला पहनने, सेंक, स्नान, पंखे की हवा, सुन्दर अवलेह, सुगंध, ठंडक एवं स्वादिष्ट अन्न का सेवन इत्यादि

वस्तुएं सभी प्रकार की मूर्च्छा में लाभकारी हैं। सफेद जीरा, काला जीरा, इमली, वृक्षाम्ल, अनार, शैला तथा अदरक—इन सबका रस आंखों के भयानक रोग तिमिर को दूर करता है। दूध के साथ पभाख, चन्दन, नेत्रबाला एवं खस का महीन चूर्ण बालकों को देने से उनके शरीर का दाह जल्द ही शान्त हो जाता है।

यदि कपूर, खस, चन्दन एवं कायफल के चूर्ण को दाह-पीड़ित बालक के शरीर पर लगाकर, उसे कोमल पत्तों के बिछावन पर बुद्धिमान वैद्य द्वारा लिटा दिया जाए तो उसे जल्द ही आराम पहुंचता है। परिसेक, स्नान व पंखे की हवा लेने से प्यास दूर होती है तथा दाह-शान्ति के लिए ठंडा जल श्रेष्ठ होता है। नागरमोथा, बायबिडंग, मूषाकर्णी, कपिला एवं अनार की छाल के चूर्ण के सेवन से तीव्र वेग वाला कृमि भी मर जाता है। शहद के साथ जवाखार, बायबिडंग एवं पीपल के चूर्ण को खाने से पाण्डुरोग एवं पक्तिशूल समाप्त होता है।

पीपल, पीपलामूल, सोंठ एवं कालीमिर्च के चूर्ण को मधु में मिलाकर चटाने से बालकों के कफ, ज्वर, स्वर-भेद दूर हो जाते हैं। लौहभस्म, हरड़, बहेड़ा एवं आंवला—इनको गाय के मूत्र में भावना दें। इसके बाद मधु में मिलाकर सेवन कराएं तथा पथ्य के रूप में मट्ठा एवं चावल दें। इससे पीलिया, खांसी एवं शूल जड़ से समाप्त हो जाते हैं। शहद एवं घी में शिलाजीत, अभ्रक, लौह, सोनामाखी एवं छोटी हरड़ का चूर्ण मिलाकर चटाने से बालकों के तपेदिक रोग समाप्त होते हैं।

नवनीत सिता क्षौद्रे लीढ्वा क्षीरभुजः परम् ।
करोति पुष्टिं कायस्य क्षत क्षयमपोहति ।।188।।
वासामहौषधाव्याघ्रीगुडूचीभिः शृतं जलम् ।
प्रपीतं शमयत्युग्रं श्वास कासमपोहति ।।189।।
गर्दभी दुग्धपानेन तुलसीपत्रभक्षणात् ।
शीतलास्तोत्रपाठेनाभिषेकश्च प्रशस्यते ।।190।।
भस्मना केचिदिच्छंति केचिद्गोमयरेणुना ।
कृमिपात भयाच्चापि धूपयेत्सुरसादिभिः ।।191।।
चन्दनं वासकं मुस्तां गुडूचीं द्राक्षयासह ।
एतच्छीतकषायस्तु शीतलाज्वरः नाशनः ।।192।।
ससैन्धवं लोध्रमध्वाज्यघुष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् ।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्कंडूं च दाहं च रुजं च हन्यात् ।।193।।

मक्खन, मिश्री तथा मधु को चाटकर ऊपर से दूध पीने से बालक का शरीर तंदुरुस्त होता है एवं क्षय रोग समाप्त हो जाता है। अड़ूसा, सोंठ, कटेली तथा गिलोय के काढ़े के सेवन से बालकों का भयानक श्वास रोग एवं खांसी दूर हो जाती है। गधी का दूध पीने, तुलसी के पत्ते खाने, ठंडा जल पीने तथा शीतला श्लोक का पाठ करने से बच्चों का चेचक या माता रोग ठीक हो जाता है।

बालक के चेचक में निकली हुई फुंसियों में कीड़े पड़ जाने के भय से कुछ वैद्य राख या आरनेकण्डो का चूर्ण बच्चे के बिछावन पर बिछा देते हैं तथा सम्भालू एवं वन तुलसी की धूप देते हैं। चन्दन, अड़ूसा, नागरमोथा, गिलोय तथा दाख का काढ़ा बनाकर शीतल कर बालक को पिलाने से चेचक का बुखार दूर होता है। शहद तथा घी में सेंधा नमक एवं लोध को पीसकर पिसे

हुए सुरमे में मिलाएं, फिर उसे सफेद कपड़े में पोटली बांधकर बालक के आंखों पर बार-बार फिराएं। इससे बालक के आंखों की खुजली, जलन एवं आंखों के अन्य रोग खत्म हो जाते हैं।

चन्दनं मरुकं लोध्रं जाती पुष्पाणि गैरिकम् ।
प्रलेपो दाहरोगघ्नस्तोया भिष्यंद नाशनः ।।194।।
शंखस्यभागाश्चत्वारस्तदर्द्धेन च पिप्पली ।
वारिणा तिमिरं हंति अर्बुदं हन्ति मस्तुना ।।195।।
चिपिटंमधुनाहन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुन्नतम् ।।196।।
व्योषं च शृंगुं च मनःशिलां च करंकबीजं च सुविष्टमेतत् ।
कंड्वर्दितानामथ वर्त्मनां तु श्रेष्ठं शिशूनां नयने विदध्यात् ।।197।।
कपिला मातुलुंगाथ शृंगवेररसः शुभः ।
अर्कस्य पत्रं परिणाम पीतं तैलेन लिप्तं सशिखाग्नितप्तम् । ।।198।।
आपीडय तोपे श्रवणे निषिक्तं विनिर्हरेद्वैबहुवेदनां च ।।199।।
घृष्टं रसांजनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् ।
प्रशस्यते शिरोरोगे स्रावे वा पूतिकार्णिके ।।200।।

चन्दन, मुलहठी, लोध, चमेली के पुष्प एवं गेरू के रस को बालक के नेत्रों में लगाने से दाह, पानी गिरना एवं अभिष्यन्द आदि रोग समाप्त हो जाते हैं। शंख चार भाग एवं पीपल दो भाग को पानी में पीसकर बालक की आंखों में लगाने से 'तिमिर रोग' ठीक होता है। यदि दही के पानी में इन्हें पीसकर आंखों में लगाया जाए तो आंखों की गांठ समाप्त होती है। यदि इन्हें मधु में पीसकर आंखों में लगाया (आंजा) जाए तो 'चिपिट रोग' समाप्त होता है।

यदि नारी के दूध में पीसकर आंखों में लगाया जाए तो आंखों का दर्द समाप्त हो जाता है। सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सांभर, हरिण की सींग, मैनसिल एवं करंज के बीजों को अच्छी तरह पीसकर आंखों में लगाने से आंखों की खुजली तथा आंखों के डेलों के रोग दूर होते हैं। यदि कपिला नामक वनौषधि, बिजौरे की केसर एवं अदरक का रस निकाल कर, थोड़ा सा गर्म करके धीरे-धीरे बालक के कान में डालें तो उसके कान का दर्द ठीक हो जाता है (यहां 'कपिला' का अर्थ कपिला गाय का दूध तथा बिजौरे की केसर का अर्थ बिजौरा नीबू का रस भी लगाया जाता है)।

प्राकृतिक रूप से पीले हुए आक के पत्ते पर तेल लगाकर, आग पर गर्म करें, फिर उसे कूटकर रस निचोड़ लें। इस रस को बालक के कान में डालने से उसके कान का दर्द एवं अनेक प्रकार के अन्य कष्ट समाप्त होते हैं। स्त्री के दूध में रसौत घिसकर, उसमें थोड़ा सा मधु मिलाकर बालक के कानों में डालने से कानों से पीब बहना, मवाद के कारण दुर्गन्ध आना तथा कर्णरोग से सम्बद्ध शिरोरोग में लाभ होता है।

।। श्रीलङ्काधिपति रावणकृत कुमार तन्त्र समाप्तम् ।।

❑❑

पंचम खंड

ज्योतिष योग
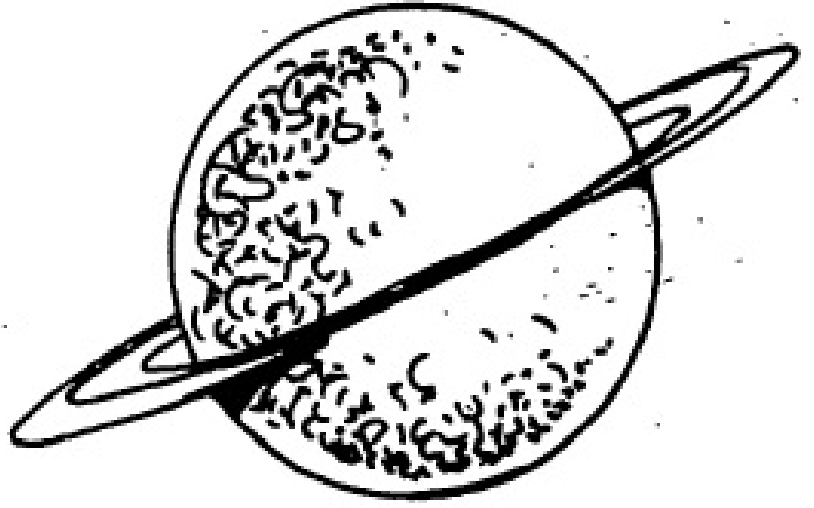
नेत्र है ज्योतिष। इस विद्या द्वारा काल के निरंतर घटनाचक्र की सटीक विवेचना हो सकती है
इसके द्वारा अतीत के बारे में भी जाना जा सकता है और भविष्य के बारे में भी। लंकापति
रावण ज्योतिष का भी मर्मज्ञ था। ग्रहों के स्वामी हैं सूर्य। सूर्य के सारथी अरुण ने रावण को
ज्योतिष, हस्तरेखा और सामुद्रिक शास्त्र का उपदेश दिया था जो 'लाल किताब' के रूप में
उपलब्ध है। इसके सरल प्रयोग चमत्कारी हैं।

राम-रावण युद्ध को कुछ विद्वानों ने शस्त्र-शास्त्र दोनों के युद्ध के रूप में माना है। दोनों
शास्त्र-ज्ञाता थे, इसलिए दोनों ने समय की निश्चित गणना करके ही प्रत्येक कदम उठाया था
रावण की पराजय का कारण था उसका अहंकारी होना। अभिमान उपेक्षा ही कराता है। उपेक्षा
के फलस्वरूप रावण ने गणना में त्रुटि जरूर की होगी। दैवज्ञ यदि धर्म का आचरण न करे तो
विद्या प्रतिफलित नहीं होती।

शकुन-अपशकुन का विचार भी ज्योतिष का ही अंग है। सीता हरण के पश्चात् लंका में
अपशकुन हुए। मंदोदरी ने उनकी चर्चा रावण से की भी, लेकिन रावण ने उन्हें नारी मन की
कमजोरी कहकर टाल दिया। यह शास्त्र की उपेक्षा थी। इसी तरह स्वप्न शकुन की चर्चा भी
रामायण में मिलती है, जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि राक्षसों के लिए वह समय अनुकूल नहीं था
जब रावण ने सीता का हरण किया। राम ने इसका लाभ उठाया। विष्णु ने देवताओं को आश्वासन
दिया था कि समय आने पर वे रावण का वध करेंगे। और वैसा ही हुआ भी।

रावणवृत्त से इस बात का भी संकेत मिलता है कि ग्रहों की स्थितियां ज्ञानावान् की भी बुद्धि
हरके कैसे उसे मूर्खता भरे कर्म करने को विवश कर देती हैं। ऐसी स्थितियों से बचने का भी
प्रतिपादन ज्योतिषशास्त्र में किया गया है। लेकिन कहते हैं न कि 'दु:ख में सिमरण सब करें।
काश लोग पूरी आस्था रखें।

नक्षत्र एवं राशियां

भारतीय ज्योतिष बेहद सूक्ष्म विषयों और गणनाओं पर आधारित है। प्राकृतिक परिवर्तनों द्वारा जन्मकुण्डली पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों से मानव शुभ तथा अशुभ फल का भागी होता है। इन जन्मकुण्डलियों के ग्रहों का सही फलादेश जानने के लिए इससे सम्बंधित विषयों की जानकारी होना अति आवश्यक है।

जन्मकुण्डलियों में ग्रहों के शुभ तथा अशुभ फलों का विश्लेषण करने में नक्षत्र, तिथि, वार,

राशि, लग्न तथा ग्रहों की प्रकृति आदि का ज्ञान विशेष भूमिका निभाते हैं।

नक्षत्र

आकाशमण्डल में एक स्थान से दूसरे स्थान तक ग्रहों की दूरी मापने को ज्योतिष विद्या में 'नक्षत्र' कहते हैं। इन नक्षत्रों को 28 भागों में बांटा गया है—

1.	अश्विनी	8.	पुष्य	15.	मघा	22.	उत्तराषाढ़ा
2.	भरणी	9.	पूर्वाफाल्गुनी	16.	स्वाति	23.	श्रवण
3.	कृत्तिका	10.	उत्तराफाल्गुनी	17.	अनुराधा	24.	शतभिषा
4.	रोहिणी	11.	हस्त	18.	ज्येष्ठा	25.	पूर्वाभाद्रपद
5.	मृगशिरा	12.	चित्रा	19.	धनिष्ठा	26.	उत्तराभाद्रपद
6.	आर्द्रा	13.	आश्लेषा	20.	मूल	27.	रेवती
7.	पुनर्वसु	14.	विशाखा	21.	पूर्वाषाढ़ा	28.	अभिजित

नक्षत्रों के स्वामी

सभी 28 नक्षत्रों के विभिन्न देवता माने गए हैं। जातक जब किसी नक्षत्र में जन्म लेता है, तो उस नक्षत्र के स्वभाव से ही उसके स्वभाव का विश्लेषण किया जाता है। नक्षत्रों के स्वामी इस प्रकार हैं—

1. अश्विनी—अश्विनी कुमार, 2. भरणी—काल, 3. कृत्तिका—अग्नि, 4. रोहिणी—ब्रह्मा, 5. मृगशिरा—चन्द्रमा, 6. आर्द्रा—रुद्र, 7. पुनर्वसु—अदिति, 8. पुष्य—बृहस्पति, 9. पूर्वाफाल्गुनी—भग, 10. उत्तराफाल्गुनी—अर्यमा, 11. हस्त—सूर्य, 12. चित्रा—विश्वकर्मा, 13. आश्लेषा—सर्प, 14. विशाखा—शुक्राग्नि, 15. मघा—पितर, 16. स्वाति—पवन, 17. अनुराधा—मित्र, 18. ज्येष्ठा—इन्द्र, 19. धनिष्ठा—वसु, 20. मूल—निर्ऋति, 21. पूर्वाषाढ़ा—जल, 22. उत्तराषाढ़ा—विश्वेदेवा, 23. श्रवण—विष्णु, 24. शतभिषा—वरुण, 25. पूर्वाभाद्रपद—अजैकपाद, 26. उत्तराभाद्रपद—अहिबुर्ध्य, 27. रेवती—पूषा, 28. अभिजित—ब्रह्मा।

नक्षत्रों द्वारा नामकरण

ज्योतिषियों ने नक्षत्रों द्वारा नामकरण करने में भी अक्षरों को निश्चित किया है। जो जातक जिस नक्षत्र में जन्म लेता है, उसका नामकरण उस नक्षत्र से सम्बंधित अक्षरों के आधार पर किया जाता है। नीचे हर नक्षत्र के लिए निर्धारित अक्षर दिए जा रहे हैं—

नक्षत्र	अक्षर			
❑ अश्विनी	चू	चे	चो	ला
❑ भरणी	ली	लू	ले	लो
❑ कृत्तिका	आ	ई	ऊ	ए
❑ रोहिणी	ओ	बा	बी	बू
❑ मृगशिरा	बे	बो	का	की
❑ आर्द्रा	कू	प	ङ	छ
❑ पुनर्वसु	के	को	हा	ही
❑ पुष्य	हू	हे	हो	डा
❑ पूर्वाफाल्गुनी	डी	डू	डे	डो
❑ उत्तराफाल्गुनी	मा	मी	मू	मे
❑ हस्त	मो	टा	टी	टू
❑ चित्रा	टे	टो	पा	पी
❑ आश्लेषा	पू	ष	ण	ठ
❑ विशाखा	पे	पो	रा	री
❑ मघा	रू	रे	रो	ता
❑ स्वाति	ती	तू	ते	तो
❑ अनुराधा	ना	नी	नू	ने
❑ ज्येष्ठा	नो	या	यी	यू
❑ धनिष्ठा	गा	गी	गू	गे
❑ मूल	ये	यो	भा	भी
❑ पूर्वाषाढ़ा	भू	धा	फा	ढ़ा
❑ उत्तराषाढ़ा	भे	भो	जा	जी
❑ श्रवण	खी	खू	खे	खो
❑ शतभिषा	गो	सा	सी	सू
❑ पूर्वाभाद्रपद	से	सो	दा	दी
❑ उत्तराभाद्रपद	इ	थ	झ	ञ
❑ रेवती	दे	दो	चा	ची
❑ अभिजित	जू	जे	जो	खा

तिथि (कलाएं)

जन्मकुण्डली में जातक का फलादेश जानने के लिए तिथियों की जानकारी भी आवश्यक है। चन्द्रमा की कलाओं अर्थात् चन्द्रमा के दिखने को ही 'तिथि' कहते हैं। जब चन्द्रमा दिखाई देता है तो उसको 'शुक्ल पक्ष' तथा न दिखाई देने वाले समय को 'कृष्ण पक्ष' कहा जाता है। इस प्रकार एक महीने में पंद्रह दिन का शुक्ल पक्ष तथा पन्द्रह दिनों का कृष्ण पक्ष होता है।

नए साल का प्रारंभ चैत्र मास से होता है। महीने में शुक्ल पक्ष के पहले दिन से तिथि 1. प्रतिपदा, 2. द्वितीया, 3. तृतीया, 4. चतुर्थी, 5. पंचमी, 6. षष्ठी, 7. सप्तमी, 8. अष्टमी, 9. नवमी, 10. दशमी, 11. एकादशी, 12. द्वादशी, 13. त्रयोदशी, 14. चतुर्दशी और 15. पूर्णिमा कहलाती है। फिर उसी प्रकार ये तिथियां कृष्ण पक्ष में चलती हैं। इसमें पंद्रहवीं तिथि को अमावस्या तथा 30 अंक के रूप में लिखा जाता है। लेकिन अब सामान्यतः लोग जनवरी को ही नए महीने के रूप में जानते हैं।

तिथियों के स्वामी

ज्योतिषशास्त्र में तिथियों के शुभ भावों को जानने के लिए उसके स्वामियों के बारे में भी जानना आवश्यक हो जाता है। तिथियों के स्वामी इस प्रकार हैं—

तिथि	*स्वामी*	*तिथि*	*स्वामी*
❑ प्रतिपदा	अग्नि	❑ चतुर्थी	गणेश
❑ द्वितीया	ब्रह्मा	❑ पंचमी	शेषनाग
❑ तृतीया	गौरी	❑ षष्ठी	कार्तिकेय
❑ सप्तमी	सूर्य	❑ द्वादशी	विष्णु
❑ अष्टमी	शिव	❑ त्रयोदशी	कामदेव
❑ नवमी	दुर्गा	❑ चतुर्दशी	शिव
❑ दशमी	काल	❑ पूर्णिमा	चन्द्रमा
❑ एकादशी	विश्वेदेवा	❑ अमावस्या	पितर

वार

जन्मकुण्डलियों के प्रभावों को जानने के लिए वार अथवा दिन के बारे में भी जानना जरूरी है। वार सात मुख्य ग्रहों—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि के नाम तथा उनकी अवधि के आधार पर सात होते हैं, जैसे—रविवार,

सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार एवं शनिवार। इस प्रकार इन सात वारों का नियम चक्र 24 घंटे समय के हिसाब से चलता है। इन्हीं सात वारों के समूह को 'सप्ताह' कहते हैं।

राशि एवं उनकी विशेषताएं

ज्योतिषशास्त्र में 12 राशियां मानी गई हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ एवं मीन।

राशियों और नक्षत्रों का आपस में गहरा सम्बंध होता है। जिस प्रकार नक्षत्रों के चरणाक्षर होते हैं, ठीक उसी प्रकार राशियों के भी अक्षर माने जाते हैं। किस राशि में कौन-सा अक्षर होता है, यह नीचे दिया जा रहा है। राशियों के क्षेत्र में सौरमण्डल में स्थित ग्रहों का भ्रमण अपने-अपने परिपथ के अनुसार ही होता है। प्रत्येक राशि का अपना एक आधिपत्य ग्रह होता है। उसी के हिसाब से उसके राशिफल तथा चरणाक्षरों को समझा जाता है—

राशियां	*राशियों के अक्षर*								
❑ मेष	चू	चे	चो	ला	ली	लू	ले	लो	आ
❑ वृष	इ	उ	ए	ओ	वा	वी	वू	वे	वो
❑ मिथुन	का	की	कू	घ	ङ	छ	के	को	हा
❑ कर्क	ही	हू	हे	हो	ड़ा	डी	डू	डे	डो
❑ सिंह	मा	मी	मू	मे	मो	टा	टी	टू	टे
❑ कन्या	टो	पा	पी	पू	ष	ण	ठ	पे	पो
❑ तुला	रा	री	रू	रे	रो	ता	ती	तू	ते
❑ वृश्चिक	तो	ना	नी	नू	ने	नो	या	यी	यू
❑ धनु	ये	यो	भा	भी	भू	धा	फा	ढ़ा	भे
❑ मकर	भो	जा	जी	खी	खू	खे	खो	गा	गी
❑ कुम्भ	गू	गे	गो	सा	सी	सू	से	सो	दा
❑ मीन	दी	दू	थ	झ	ञ	दे	दो	चा	ची

उपरोक्त बारह राशियों की विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

मेष

मेष राशि अश्विनी, कृत्तिका एवं भरणी नक्षत्रों के योग से बनी है। यह राशि अप्रैल तथा मई के बीच स्थित, पुरुष प्रकृति, पूर्व दिशा की स्वामिनी तथा लाल-पीले वर्ण वाली होती है। यह राशि धातु संज्ञक है। इस राशि के जातक लम्बे कद, बलिष्ठ शरीर, चेहरे का रंग लाल, घुंघराले बाल वाले, चालाक, बुद्धिमान, चंचल एवं क्रूर स्वभाव के होते हैं।

इसके जातक अपने कार्यों के प्रति समर्पित तथा उदार भाव वाले होते हैं। इनका शुभ रत्न मूंगा एवं माणिक्य होता है। मंगलवार, बृहस्पतिवार और रविवार शुभ दिन तथा शुभांक 9 है।

वृष

यह राशि रोहिणी, मृगशिरा और कृत्तिका नक्षत्रों से मिलकर बनी है। यह राशि स्त्री प्रधान, दक्षिण दिशा की स्वामिनी, बैल के समान आकार वाली, श्वेत रंग, स्थिर संज्ञक, स्थूल शरीर तथा भूमि तत्व वाली होती है। यह अर्द्धजल राशि, कोमल, स्थिर, शान्त स्वभाव, कृषि कर्म एवं रात्रिबली होती है।

इसके जातक माता-पिता तथा गुरु के भक्त, तेजस्वी, कष्ट सहने वाले, स्वाभिमानी एवं श्रेष्ठ मित्रों से युक्त होते हैं। ये बड़े विचारक भी होते हैं। भावुकता तथा महत्वाकांक्षा इस राशि वालों का विशेष गुण होता है। ये कर्म पर अधिक विश्वास करते हैं। इस राशि वालों का शुभ रत्न हीरा है। शुक्रवार, बुधवार एवं शनिवार इनके लिए शुभ दिन माने गए हैं।

मिथुन

मिथुन राशि का स्वामी बुध है। यह मृगशिरा, आर्द्रा और पुनर्वसु नक्षत्रों के मेल से बनती है। इसका स्थायित्व 15 जून से लेकर 14 जुलाई के मध्य होता है। यह पुरुष जाति, पश्चिम दिशा की स्वामिनी, रंग हरा, चमकीला, शूद्र वर्ण की तथा रात्रिबली राशि होती है।

इसके जातक लम्बे कद, लम्बे बाल एवं भूरे वर्ण वाले होते हैं। ये ज्यादातर तकनीशियन और प्रत्येक कार्य करने में समर्थ होते हैं। ये हमेशा विवादों में घिरे, भोग-विलासी एवं संगीत-प्रेमी होते हैं। इनका दु:ख-सुख में हमेशा एक जैसा भाव रहता है। इन जातकों के लिए बुधवार, सोमवार एवं शुक्रवार शुभ दिन तथा पन्ना शुभ रत्न माना गया है। इसका भाग्यांक 5 है।

कर्क

यह राशि उत्तर दिशा की स्वामिनी, स्त्री जाति, मिश्रित रंग वाली, जलचारी, कफ प्रकृति, केकड़े के समान चलने वाली तथा रात्रिबली होती है। इसका स्वामी चन्द्रमा है। यह राशि पुष्य, आश्लेषा तथा पुनर्वसु नक्षत्र के सहयोग से बनी है। यह राशि दयावान, नम्र, सुहृद एवं मिलनसार होती है। इस राशि का क्षेत्र शरीर में वक्षस्थल और गुर्दे का स्थान है।

इसके अधिकतर जातके बुद्धिमान, शिक्षित, राजनेता, प्रोफेसर या नाविक होते हैं। इनकी पहली प्राथमिकता कार्य को पूरा करना, समानता का भाव तथा दूसरों की सहायता करना होता है। ये जातक माता से अधिक आदर भाव रखते हैं। इनका शुभ दिन सोमवार और मोती-माणिक्य शुभ रत्न है। कर्क राशि के लिए सफेद रंग शुभ तथा शुभांक 7 है।

सिंह

सिंह राशि का स्वामी सूर्य है। यह राशि पुरुष प्रधान, पूर्व दिशा वाली, पीले रंग, क्षत्रिय वर्ण की, गरम स्वभाव, मजबूत शरीर, असहनशील तथा रात्रिबली होती है। यह मघा, उत्तराफाल्गुनी तथा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों के मेल से बनी है। इसका समय 15 अगस्त से 14 सितम्बर तक होता है। इसके द्वारा शरीर में हृदय क्षेत्र का विचार किया जाता है।

इसके जातक पुष्ट शरीर, मजबूत-लम्बी भुजाओं वाले, निर्भय तथा पराक्रमी होते हैं। ये वन से सम्बंधित नौकरी या व्यवसाय अथवा सैनिक, कलाकार, बढ़ई आदि के कार्य करते हैं। इनका शुभ रत्न माणिक्य तथा शुभ दिन रविवार एवं बृहस्पतिवार है। शुभांक 1 और 4 होता है।

कन्या

यह राशि हस्त, चित्रा तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के सहयोग से बनी है। इसका स्वामी बुध है। यह स्त्री जाति, दक्षिण दिशा वाली, पीले वर्ण की, द्विस्वभाव, अल्प संततिवान, पृथ्वी तत्व, वायु तथा शीत प्रकृति वाली होती है।

इसके जातक मध्यम कद-काठी तथा कोमल हृदय वाले होते हैं। ये बड़े शर्मीले होते हैं। इनमें आत्मविश्वास की कमी होती है। ये एकान्त में रहना अधिक पसन्द करते हैं। ऐसे लोग प्रेम भावना वाले होते हैं। इनका शुभ रत्न पन्ना-पुखराज और शुभ दिन बुधवार-शनिवार होता है। इनका भाग्यांक 5 माना जाता है।

तुला

तुला राशि का स्वामी शुक्र है। यह राशि चित्रा, स्वाति तथा विशाखा नक्षत्र के सहयोग से बनती है। यह पुरुष जाति, पश्चिम दिशा वाली, नीले रंग की, क्रूर स्वभाव, असहनशील, नीच कार्य वाली तथा दिन बली होती है। इसका शरीर कमजोर तथा कद सामान्य होता है।

इसके जातक बड़े ही मेहनती, रजोगुणी, बीच-बचाव करने वाले, ज्ञानप्रिय, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक तथा बच्चों के प्रेमी होते हैं। ऐसे लोग जिद्दी भी होते हैं। इनका शुभ रत्न हीरा-मोती, शुभ दिन शनिवार-बुधवार तथा शुभांक 6 होता है।

वृश्चिक

यह राशि उत्तर दिशा की स्वामिनी एवं स्त्री जाति वाली होती है। यह बिच्छू के आकार की, रात्रिबली, कफ प्रकृति तथा अचानक मार करने वाली होती है। यह राशि विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र से सम्बंधित है। इसका स्वामी मंगल है। इस राशि का स्वभाव स्वच्छ, स्पष्टवादी, जिद्दी तथा दृढ़ प्रतिज्ञ होता है। इस राशि से जननेन्द्रिय (लिंग तथा योनि) का विचार किया जाता

है।

इसके जातक मितव्ययी तथा अपने धन को दुगुना करने में ही लगे रहते हैं। ये कभी-कभी अत्यंत गम्भीर दुष्कर्म करने में भी नहीं चूकते। ये अधिकतर माता-पिता के भक्त, परस्त्री तथा परपुरुष में आसक्त रहने वाले, विघ्नकर्ता एवं लोभी होते हैं। इनके साथ दोस्ती व दुश्मनी दोनों बुरी होती है। इनका शुभ दिन सोमवार, बृहस्पतिवार एवं रविवार है। शुभ रत्न मूंगा और माणिक्य तथा भाग्यांक 9 है।

धनु

धनु राशि का स्वामी बृहस्पति है। यह पुरुष जाति, पीले या सुनहरे रंग वाली, पूर्व दिशा की स्वामिनी, क्षत्रिय वर्ण की, अग्नि तत्व, समदेह वाली, द्विस्वभाव, पित्त प्रकृति, मजबूत शरीर, अल्प संततिवान और अर्द्धजल वाली राशि है। यह मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रों के सहयोग से बनती है। यह राशि सौम्य, क्रूरधर्मा, चंचल, दिन बली और शांत लक्षणों वाली होती है।

इसके जातक ईश्वरभक्त और कर्मयोगी होते हैं। यह सुन्दर चेहरे, बड़े कान, मोटे होंठ, मजबूत शरीर वाले, मेधावी तथा धनवान होते हैं। ये अध्यापक, दार्शनिक, अच्छे कलाकार और लेखक होते हैं। इनका समय 15 दिसम्बर से 14 जनवरी के मध्य होता है। इनका शुभ रत्न पुखराज (पीला), शुभ दिन रविवार व बृहस्पतिवार तथा शुभांक 3 होता है।

मकर

मकर राशि का स्वामी शनि है। यह उत्तराषाढ़ा, श्रवण तथा धनिष्ठा नक्षत्र के समूह से निर्मित है। यह स्त्री प्रकृति की, समदेह वाली, पीले वर्ण, वात प्रकृति, पृथ्वी तत्व वाली, शिथिल शरीर एवं रात्रिबली होती है। इसका स्वभाव सौम्य, चंचल तथा चर होता है। यह रजोगुणी और जलचर होती है। इसका वास घुटनों पर होता है।

इसके जातक लम्बे कद, सुन्दर नेत्र वाले, मननशील, आध्यात्मिक प्रवृत्ति के, त्यागी, धैर्यवान, सेवा भाव करने वाले, चालाक, कर्मण तथा अपने दाम्पत्य से खुश न रहने वाले होते हैं।

इनका शुभ रत्न हीरा, नीलम तथा सफेद मोती है। शुभ दिन बुधवार, शुक्रवार एवं शनिवार तथा भाग्यांक 8 है।

कुम्भ

कुम्भ राशि का स्वामी शनि है। इसकी दिशा पश्चिम में है। यह पुरुष जाति, मिश्रित एवं विचित्र रंग वाली, वायु तत्व तथा उष्ण स्वभाव की होती है। यह धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रों के सहयोग से बनी है। यह शरीर में पेट के पास रहती है। इसका स्वभाव नई खोजों को करना होता है।

इसके जातक सामान्य कद के, काले केश तथा पतली कमर वाले होते हैं। ये तीव्र बुद्धि वाले, कार्य में व्यस्त, मिलनसार, दयालु, परोपकारी, मित्र बनाने में निपुण तथा गृहस्थ जीवन से दुःखी एवं अस्वस्थ होते हैं। इन जातकों में स्त्रियां बड़ी भावुक तथा समझदार मानी जाती हैं। इनके लिए नीलम बहुत ही शुभ रत्न है। रविवार एवं शनिवार शुभ दिन तथा शुभांक 8 होता है।

मीन

मीन राशि का स्वामी बृहस्पति है। यह पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद तथा रेवती नक्षत्रों के योग से बनी है। यह राशि स्त्री जाति, उत्तर दिशा की स्वामिनी, पीले रंग वाली, कफ प्रकृति, जल तत्व वाली, ब्राह्मण वर्ण की तथा रात्रिबली होती है। मीन का अर्थ मछली होता है, इसलिए यह पूर्णतः जलराशि है। इसका प्रभाव समुद्र, जलाशय एवं प्रमुख नदियों में होता है।

इसके जातक बड़े रूपवान, सुदृढ़ कद-काठी के, सुन्दर स्वभाव, चंचल, श्रेष्ठ, दयालु तथा दानशील होते हैं। ये अत्यंत भावुक, तुरंत वश में होने वाले, उच्च कोटि के कवि, गीत या संगीतकार होते हैं। ऐसे लोग जल निगम, नगरपालिका या कृषि कार्यों में रत रहते हैं। इनके लिए शुभ रत्न पुखराज होता है। इनका शुभ दिन बृहस्पतिवार व शनिवार तथा शुभ अंक 3 माना गया है।

ग्रह एवं उनकी प्रकृति

प्रमुख ज्योतिषियों ने ग्रहों की संख्या नौ बताई है। इन ग्रहों का क्या प्रभाव एवं स्वभाव होता है, इसे भी समझना अति आवश्यक है। अतः इसे भी नीचे दिया जा रहा है—

सूर्य

सूर्य समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाशवान स्थिर ग्रह है। यह पृथ्वी से 92,956,524 मील दूर स्थित है। यह ग्रह पाप संज्ञक, पूर्व दिशा का स्वामी, पुरुष जाति का तथा पीत वर्ण वाला है। इसके प्रभाव से पिता का अल्प सुख, हृदय रोग, अपच, जेल जाना तथा शुभ कार्यों में ख्याति प्राप्त होती है।

चन्द्रमा

चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है। इसलिए यह पृथ्वी की परिक्रमा करता है। यह पृथ्वी के बहुत निकट है, अर्थात् पृथ्वी से इसकी दूरी मात्र 2,38,000 मील है। चन्द्रमा ज्योतिषियों की दृष्टि में शुभ ग्रह माना गया है। यह पश्चिम दिशा का स्वामी तथा स्त्री जाति का होता है। इसके प्रभाव से जातक भाग्यशाली, धन-सम्पत्ति वाला, माता-पिता का पूर्ण सुख पाने वाला, सुन्दर, विनम्र एवं सुहृद होता है। इसकी स्त्रियां बड़ी रूपवान होती हैं।

मंगल

मंगल भी सूर्य की परिक्रमा करता है। इसकी पृथ्वी से दूरी 6,25,00,000 मील है। ज्योतिष की दृष्टि में यह भी पाप संज्ञक ग्रह है। इसकी स्थिति दक्षिण दिशा में है। यह पुरुष जाति एवं अग्नि तत्व वाला है। इसका प्रभाव उत्तेजक, दरिद्र तथा कष्टकारी होता है। इसके शुभ प्रभाव से जमीन-जायदाद और भाई-बहनों का सुख मिलता है। यह शारीरिक शक्ति बढ़ाता है। अशुभ प्रभाव से मंगल विवाह तथा गृहस्थ जीवन में कष्टकारी होता है।

बुध

बुध को नपुंसक ग्रह माना गया है। पृथ्वी से इसकी दूरी 3,70,00,000 मील के करीब है। यह सूर्य के अधिक निकट है। इसके अशुभ प्रभावों से जातक पागल, रोगी, गूंगा, स्वार्थी तथा कुष्ठ रोगों से पीड़ित रहता है। इसका शुभ प्रभाव होने से व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त, मनचाही संतान वाला तथा ज्योतिषी बनता है। यह व्यवसाय आदि में फोयदा भी करता है।

बृहस्पति

बृहस्पति शुभ ग्रह है। यह सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रहों में सबसे अधिक भारी और विशाल माना गया है। यह ग्रह सूर्य से लगभग 9,87,12,000 मील की दूरी पर स्थित है। यह पूर्व दिशा का स्वामी है। इसके शुभ प्रभाव से जातक बड़ा दानी, सुखी, धैर्यवान तथा संतानयुक्त होता है। इसके अशुभ प्रभाव के कारण व्यक्ति नीच प्रवृत्ति का, चिन्तायुक्त, संतान रहित और परिवार से दुःखी रहता है।

शुक्र

ज्योतिषियों की दृष्टि में शुक्र शुभ ग्रह माना गया है। यह श्याम-गौर वर्ण का, दक्षिण-पूर्व दिशा का स्वामी तथा जलीय तत्व वाला होता है। पृथ्वी से इसकी दूरी 3,43,00,000 मील के करीब है। यह अधिक चमकने वाला ग्रह है। इसे कफ, वीर्य, काव्य-संगीत, वाहन, कामेच्छा, स्त्री, आंख आदि का कारक माना गया है। इसके शुभ प्रभाव से जातक को स्त्री सुख एवं धन का पूर्ण लाभ मिलता है। ऐसा व्यक्ति स्त्री के बिना नहीं रह पाता। अशुभ प्रभाव के कारण जातक का विवाह विच्छेद होता है या पत्नी वियोग से दुःखी रहता है।

शनि

शनि भी पाप संज्ञक ग्रह है। इसकी प्रकृति क्रूर तथा नपुंसक होती है। यह पश्चिम दिशा का स्वामी एवं वायु तत्व वाला है। शुभ प्रभावों द्वारा यह जातक को धन-धान्य से पूर्ण तथा कष्टों से मुक्त रखता है। लेकिन जब यह अशुभ भाव में होता है तो व्यक्ति को शारीरिक रोग, दरिद्रता, कुकृत्य, सम्बंध विच्छेद, तनाव, निर्धनता, नौकरी का छूटना या न लगना तथा मृत्यु जैसी भयंकर स्थिति का सामना करना पड़ता है। इसकी पृथ्वी से दूरी 79,10,00,000 मील के करीब है।

राहु

राहु एक क्रूर तथा पाप संज्ञक ग्रह है। यह दक्षिण दिशा का स्वामी तथा काले रंग का होता है। इसकी अवधि किसी भी राशि में सात वर्ष की होती है। पृथ्वी से इसकी दूरी 1,69,00,000 मील के करीब है। इसकी प्रकृति धीमी गति की होती है। यह दुर्भाग्य का सूचक है, लेकिन कभी-कभी चमत्कारिक सौभाग्य भी प्रदान करता है। इससे शरीर सम्बंधी बीमारियां होती हैं। यह प्रत्येक शुभ कार्य अथवा उन्नति को रोक देता है। इसका जातक हमेशा दुःखी एवं दरिद्र बना रहता है। शरीर में विकलांगता आ जाती है। व्यक्ति दर-दर की ठोकरें खाता है।

केतु

राहु की तरह केतु भी क्रूर तथा पाप संज्ञक ग्रह है। यह उत्तर दिशा का स्वामी एवं नीले-काले रंग का होता है। कुछ ज्योतिषी इसे अत्यंत संयमी, विनम्र और उदार प्रकृति का ग्रह बताते हैं। लेकिन यह अपने प्रवेश से विनाशी, उपद्रवी, व्यवसाय को रोकने वाला, कठिन परिश्रम कराने वाला, शारीरिक कष्टों में हाथ-पांव टूटना, पक्षाघात, मामा पर बुरा प्रभाव तथा चर्म रोग पैदा करने वाला होता है। इसकी भी गति बहुत धीमी होती है। यह प्रत्येक राशि पर 14 वर्ष तक उपस्थित रहता है।

लग्न

जन्मकुण्डली में लग्न अथवा समय का बहुत महत्व होता है। जब भी कोई व्यक्ति जन्म लेता है तो उस समय जो राशि दृष्टिगत होती है, वही उस जातक का लग्न होता है। कुण्डली में ग्रह स्थिति जानने के लिए जातक के जन्म समय तथा उसके भचक्र में विभिन्न ग्रहों की स्थिति के

अनुसार पंचांग देखना चाहिए। इससे स्थिति बिस्कुल स्पष्ट हो जाती है।

जन्मकुण्डलियों के द्वादश भाव

जन्मकुण्डलियों में जातक के जीवन पर ग्रहों का प्रभाव जानने के लिए इसके भावों अर्थात् स्थान को जानना भी आवश्यक होता है। जन्मकुण्डली के बारह भाव होते हैं, जिन्हें निम्न प्रकार (कुण्डली संख्या-1) से देखकर समझा जा सकता है—

कुण्डली संख्या-1

कुण्डली में ग्रहों की स्थिति होने से लग्नकुण्डली में जातक पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने में आसानी होती हैं। इसका विस्तृत भावार्थ इस प्रकार समझा जा सकता है—

पहला भाव

यह लग्नकुण्डली का पहला स्थान अथवा घर होता है। इसे तनु नाम से पुकारा जाता है। इससे जातक के स्वभाव, आचार-विचार, शारीरिक बनावट, सुख-दुःख तथा कार्य कुशलता के बारे में पता चलता है।

दूसरा भाव

इसे धन, वित्त एवं पणफर के नाम से भी जाना जाता है। इस भाव से जातक के सौंदर्य, बोलचाल, पारिवारिक स्थिति, मित्रता एवं क्रियाकलापों का पता चलता है। साथ ही उसके आर्थिक पक्ष का भी विश्लेषण किया जाता है।

तीसरा भाव

तीसरे भाव से जातक के कर्म तथा व्यावहारिक गुणों, जैसे—पराक्रम, साहस, धैर्य, काम और स्वास्थ्य सम्बंधी विषयों का विचार किया जाता है। इसे सहज एवं मातृ के नाम से जाना जाता है।

चौथा भाव

इसे सुहृदय एवं सुख-केन्द्र के नाम से भी जाना जाता है। इससे जातक के धन-सम्पत्ति, वाहन, माता-पिता, उदारता तथा उदर रोग सम्बन्धी विषयों का विचार किया जाता है।

पांचवां भाव

पांचवां भाव सुत एवं विद्या का स्थान होता है। इससे धन प्राप्ति के उपाय, यश, काम, व्यवसाय, नौकरो तथा स्त्रियों में गर्भाशय सम्बंधी रोग आदि का पता चलता है।

छठा भाव

इसे रिपु, त्रिक या उपचय नामों से भी जाना जाता है। इसके द्वारा जातक के जमीन, जागीर, मामा की स्थिति तथा उदर रोग आदि के विषय में विचार अथवा अध्ययन किया जाता है।

सातवां भाव

सातवें भाव को जाया अथवा केतु के नाम से भी पुकारा जाता है। इससे जातक के विवाह सूत्र, गृहस्थ सुख, स्त्री, दैनिक जीवन, स्वास्थ्य, मित्रों का स्वभाव तथा झगड़े आदि के बारे में विचार किया जाता है।

आठवां भाव

आठवें भाव को जीवन, मृत्यु एवं संकट के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत मानसिक चिन्ताओं, जननेन्द्रियों तथा आयु का अध्ययन किया जाता है।

नौवां भाव

नौवां भाव भाग्य एवं त्रिकोण धर्म आदि नामों से भी जाना जाता है। इस भाव से जातक के धर्म, तप, दान, कर्म, विद्या, प्रवास, भाग्योदय, पितृ सुख एवं मानसिक स्थिति का पता चलता है।

दसवां भाव

इसे कर्म एवं राज्य आदि नामों से जाना जाता है। इस भाव से जातक की कामकला, नेतृत्व, प्रभुत्व, सम्मान, राजकीय नौकरी तथा अधिकार क्षेत्र का विचार किया जाता है।

ग्यारहवां भाव

ग्यारहवें भाव को लाभ और आय आदि नामों से भी जाना जाता है। इस भाव से जातक के आय के स्रोतों, लाभ की स्थितियों तथा सम्पत्ति का अध्ययन किया जाता है।

बारहवां भाव

इस भाव को व्यय एवं मृत्यु के नाम से जाना जाता है। इससे जातक की व्यय की स्थिति, व्यसन, दान, बाहरी सम्बंध, रोग, यात्रा का फल एवं हानि का विचार किया जाता है।

विभिन्न लग्नों का फल

मनुष्य जिस समय पृथ्वी पर जन्म लेता है, उस समय आकाशमण्डल में विभिन्न ग्रहों की जो स्थिति होती है, उसका प्रभाव उसके जीवन को निरन्तर प्रभावित करता रहता है। यही जन्मकुण्डली जातक के जन्म समय में ग्रहों की स्थिति की परिचायक होती है। जन्मकुण्डली में स्थित ग्रहों द्वारा जातक के जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ता है, परन्तु जन्म के समय गोचर कुण्डली के ग्रह भी उसके जीवन पर यथासमय अस्थायी प्रभाव डालते हैं। अतः जिस समय जो ग्रह जिस राशि पर चल रहा हो, उसके बारे में पंचांग, जन्मकुण्डली या किसी ज्योतिषी द्वारा जानकारी प्राप्त करके उसका फलादेश जान लेना चाहिए, ताकि भविष्य में होने वाले अनिष्टों से बचा जा सके।
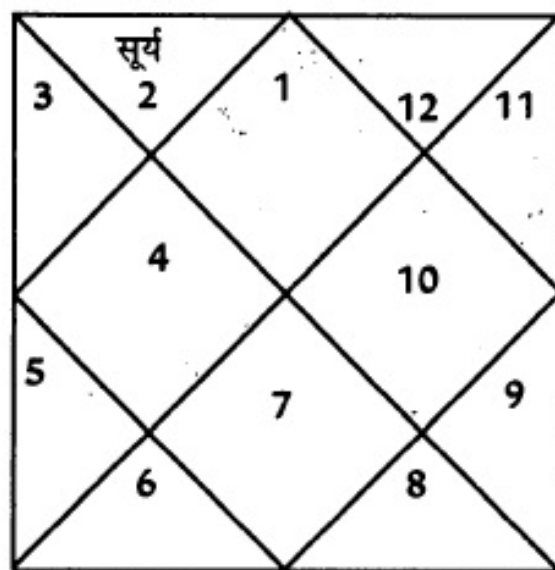
कुण्डली संख्या-2

माना—सूर्य किसी जातक की मेष लग्न वाली जन्मकुण्डली के दूसरे भाव में स्थित है तो वह कुण्डली संख्या-2 होगी। इसी के अनुसार सूर्य जातक के जीवन पर अपना स्थायी प्रभाव डालता रहेगा। जब वह तात्कालिक गोचर में मिथुन राशि पर चल रहा होगा (कुण्डली संख्या-3), फलादेश रूपी प्रभाव तब तक डालता रहेगा, जब तक वह गोचर में उस राशि से हटकर आगे कर्क राशि में नहीं चला जाता। कर्क राशि में पहुंचकर कुण्डली संख्या-4 के अनुसार सूर्य का प्रभाव पड़ेगा। इसी प्रकार गोचर की सभी राशियों तथा उनके ग्रहों के अस्थायी फलादेश के बारे में समझ लेना आवश्यक है।
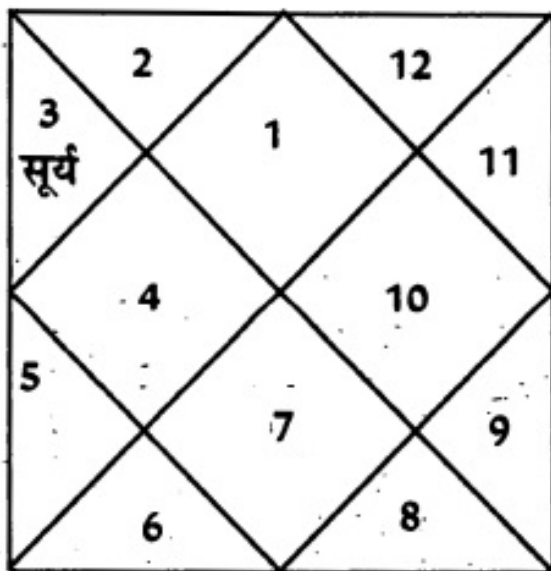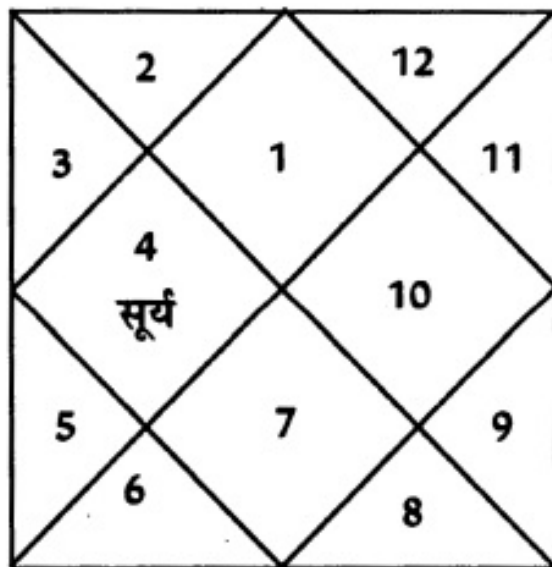
कुण्डली संख्या-3 कुण्डली संख्या-4

यह बात स्पष्ट है कि जो ग्रह जिस प्रकार का है, उसी के अनुसार वह कम या अधिक फल देता है। इसलिए ग्रहों की स्थिति की जानकारी रखना भी आवश्यक है, जो किसी पंचांग या ज्योतिषी से ज्ञात हो सकता है। इस प्रकार उपरोक्त विधि द्वारा संसार के किसी भी स्त्री-पुरुष के जन्मकुण्डली के प्रभाव की जानकारी हासिल की जा सकती है।

फल-विचार, समयावधि और महादशा

किसी भी जन्मकुंडली के फलादेश का विचार करते समय सर्वप्रथम जन्मकुंडली की शुद्धता पर ध्यान देना चाहिए। अधकचरे ज्योतिषी अक्सर जातक के जन्म स्थान के रेखांश-अक्षांश का विचार किए बिना तथा स्थानीय समय निश्चित किए बिना ही जन्मकुंडली तैयार करके यजमान को दे देते हैं। इष्टकाल की शुद्धि न होने से ऐसी जन्मकुंडलियों द्वारा ज्ञात किया गया फलादेश ठीक नहीं बैठता, इसलिए इसमें सावधानी बरतनी चाहिए। जिस जन्मकुंडली का फलादेश ज्ञात करना हो, उसका लग्न तथा लग्न स्थित ग्रह के आधार पर उदाहरण जन्मकुंडलियों में से अपनी कुंडली छांट लेनी चाहिए। तत्पश्चात् उदाहरणजन्य कुंडली के नीचे जो संख्या दी गई है, उसी संख्या के अनुसार आगे फलादेश खंड द्वारा उस कुंडली का फलादेश ज्ञात कर लेना चाहिए।

जन्मकुंडली के भावों की संख्या 12 होती है। इसी प्रकार राशियों की संख्या भी 12 ही है, परंतु ग्रहों की संख्या 9 है। ये ग्रह जन्मकुंडली के विभिन्न भावों एवं विभिन्न राशियों में स्थित होते हैं। किसी-किसी भाव तथा राशि में जातक की जन्मकालीन ग्रह-स्थिति के अनुसार एक से अधिक ग्रह भी स्थित होते हैं, इसलिए सर्वप्रथम लग्न राशि के आधार पर ग्रहों की विभिन्न भाव राशि के प्रभाव का विचार करना चाहिए। तत्पश्चात् जिन भावों में एक से अधिक ग्रहों की युति हो, उनके प्रभाव का विचार, 'ग्रह युति योग' संबंधी फलादेश से प्राप्त कर लेना चाहिए। इस ग्रंथ द्वारा जन्मकुंडली के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए एक-एक बात को किसी कागज पर

नोट करते जाने तथा अन्त में उन सबके निष्कर्ष रूप में फलादेश समझने की विधि सर्वोत्तम रहती है। इस विधि से किसी भी स्त्री-पुरुष की जन्मकुंडली का यथार्थ फलादेश ज्ञात किया जा सकता है।

महादशाओं के प्रकार

'कौन सी घटना जीवन में कब घटित होगी' अर्थात् जन्मकुंडली का कौन सा ग्रह किस कालावधि में अपना प्रभाव प्रकट करेगा? इसे जानने का सर्वमान्य तरीका ग्रहों की महादशा, उसकी अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्म दशा एवं प्राणदशा आदि पर विचार करना चाहिए। महादशाएं कई प्रकार की होती हैं—विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि। कुल मिलाकर महादशाओं के 42 भेद कहे गए हैं, परंतु इन सबमें विंशोत्तरी तथा अष्टोत्तरी का ही अधिक प्रचलन है। विंशोत्तरी महादशा में मनुष्य की आयु 120 वर्ष तथा अष्टोत्तरी में 108 वर्ष मानकर ग्रहों की दशावधि का विभिन्न वर्षों में वर्गीकरण किया गया है। 'विंशोत्तरी' तथा 'अष्टोत्तरी' महादशा में क्रमशः 9 तथा 8 ग्रहों की दशाएं गिनी जाती हैं। 'विंशोत्तरी' महादशा का प्रारंभ 'सूर्य' की महादशा से माना जाता है, तत्पश्चात् क्रमशः चन्द्रमा, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध तथा केतु की दशाएं आती हैं जबकि अष्टोत्तरी महादशा में ग्रहों की दशा का क्रम सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शनि, गुरु, राहु तथा शुक्र होता है। इसमें केतु की दशा नहीं मानी जाती। विंशोत्तरी दशा का प्रचलन उत्तर भारत में तथा अष्टोत्तरी दशा का प्रचलन दक्षिण भारत में अधिक है। स्वरशास्त्र के मतानुसार जिस व्यक्ति का जन्म शुक्लपक्ष में हुआ हो, उसके संबंध में 'अष्टोत्तरी दशा' द्वारा तथा जिसका जन्म कृष्णपक्ष में हुआ हो, उसके सम्बंध में 'विंशोत्तरी' दशा द्वारा विचार करना उपयुक्त रहता है।

विंशोत्तरी दशा में सूर्य की दशा के 6 वर्ष, चन्द्रमा के 10 वर्ष, मंगल के 6 वर्ष, राहु के 10 वर्ष, गुरु के 16 वर्ष, शनि के 19 वर्ष, बुध के 17 वर्ष, केतु के 6 वर्ष तथा शुक्र के 20 वर्ष माने जाते हैं। इन सब ग्रहों की सम्मिलित अवधि को 'विंशोत्तरी महादशा काल' कहा जाता है। इस महादशा के दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्मदशा तथा प्राणदशा आदि भेद हैं। इन भेदों के अन्तर्गत सभी ग्रहों की दशाएं पूर्वोक्त क्रम से संचरण करती रहती हैं। यथा—सूर्य की दशा में पहली अन्तर्दशा सूर्य की, दूसरी चन्द्र की, तीसरी मंगल की, चौथी राहु की, पांचवीं गुरु की, छठी शनि की, सातवीं बुध की, आठवीं केतु की तथा नौवीं शुक्र की होगी।

इसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की दशा में पहली अन्तर्दशा उसी ग्रह की होती है, तदुपरांत पूर्वोक्त क्रम से अन्य ग्रहों की दशाएं आती हैं। प्रत्यन्तर्दशा में पहली अन्तर्दशा के अन्तर्गत उसी ग्रह की प्रत्यन्तर्दशा होती है। यथा—सूर्य की दशा में सूर्य का अन्तर तथा सूर्य के अंतर में पहला प्रत्यन्तर सूर्य का ही होगा, तदुपरान्त अन्य ग्रहों के प्रत्यन्तर चलेंगे। यही नियम सूक्ष्मदशा तथा प्राणदशा पर भी लागू होता है। विंशोत्तरी महादशा में किस ग्रह की महादशा जातक के जन्म-समय से आरंभ हुई, इसका स्रोत जन्मकालीन नक्षत्र के आधार पर प्राप्त होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में प्रत्येक ग्रह की दशा आए ही—यह आवश्यक नहीं है। ऐसे सौभाग्यशाली लोग कम ही होते हैं जो लगभग 120 वर्ष तक जीवित रहकर सभी ग्रहों की दशाओं का भोग कर पाते हों। महादशा, अन्तर्दशा आदि के साधन का ज्ञान इस विषय की ज्योतिष पुस्तकों से प्राप्त करना चाहिए।

अष्टोत्तरी दशा में क्रमशः सूर्य 6 वर्ष, चन्द्रमा 15 वर्ष, मंगल 8 वर्ष, बुध 17 वर्ष, शनि 10 वर्ष, गुरु 19 वर्ष, राहु 12 वर्ष तथा शुक्र 21 वर्ष तक रहता है। इसमें भी अन्तर्दशाएं क्रमशः विचरण करती हैं। 'योगिनी दशा' में मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा और संकटा—ये आठ दशाएं क्रमशः 1,2,3,4,5,6,7 तथा 8 वर्ष की मानी गई हैं। इन योगिनियों के स्वामी ग्रह इस प्रकार हैं— 'मंगला' का चन्द्र, 'पिंगला' का सूर्य, 'धान्या' का गुरु, 'भ्रामरी' का मंगल, 'भद्रिका' का बुध, 'उल्का' का शनि, 'सिद्धा' का शुक्र तथा 'संकटा' के पूर्वार्द्ध (1 से 4 वर्ष तक) का राहु एवं उत्तरार्द्ध (5 से 8 वर्ष तक) का 'केतु' माना गया है। योगिनी दशा की वर्ष संख्या को दशा-दशा के वर्ष से परस्पर गुणा कर, 36 का भाग देने पर अन्तर्दशा के वर्षादि प्राप्त होते हैं। योगिनी दशा के अन्तर्गत आने वाली आठों दशाएं 36 वर्षों में ही पूरी हो जाती हैं। अतः कुछ ज्योतिषी जातक के जीवन का इस दशा का प्रभाव केवल 36 वर्ष की आयु तक ही मानते हैं, परन्तु दूसरे लोगों के मत में 36 वर्ष का भोग काल पूरा हो जाने के बाद इस दशा की पुनरावृत्ति होती रहती है। इन सभी दशाओं के साधन का ज्ञान ज्योतिष विषयक विभिन्न ग्रंथों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

ग्रह दशाफल के सिद्धांत

प्रायः विंशोत्तरी महादशा को ही अधिकांश ज्योतिर्विद् मान्यता देते हैं तथा उसी के आधार पर फलादेश करते हैं। अतः यहां विंशोत्तरी महादशा से सम्बंधित कुछ अन्य जानकारियां प्रस्तुत की जा रही हैं। ग्रहों का पूर्ण फल उनकी महादशा तथा अन्तर्दशा काल में ही प्राप्त होता है, अतः शुभाशुभ समय की यथार्थ जानकारी के लिए ग्रहों की दशाओं, अन्तर्दशाओं तथा प्रत्यन्तर्दशाओं आदि पर विचार करना चाहिए। विंशोत्तरी महादशा के अन्तर्गत ग्रह-दशाफल का विवेचन करने के सामान्य सिद्धांत निम्नानुसार हैं—

❑ जो ग्रह उच्च राशिस्थ, स्वक्षेत्री, मूल त्रिकोणस्थ अथवा अपने षड्वर्ग में हो; सूर्य से अस्त अथवा पापी ग्रह से युक्त या दृष्ट न हो, वह अपने दशा-अन्तर्दशा काल में शुभ फल देता है। जो ग्रह उच्चस्थ, स्वक्षेत्री अथवा भिन्नक्षेत्री होते हुए भी नीच ग्रह के साथ नीच नवांश में, नीच शत्रु राशि में अथवा मित्र के नवांश में होते हैं, वे शुभाशुभ अर्थात् मिश्रित फल देते हैं।

❑ तीसरे, छठे तथा ग्यारहवें भाव में स्थित शुभ ग्रह जातक को बाल्यावस्था में ही शुभ फल देते हैं तथा इन्हीं भावों में स्थित पापी ग्रह जातक को अंतिम अवस्था में धन, पुत्र, स्त्री आदि का सुख देते हैं।

❑ यदि गुरु लग्न में, उच्च राशि में अथवा लग्न से तृतीय, दशम या एकादश भाव में हो तो जातक को उसके कुल के अनुसार राज्य अथवा अनेक प्रकार के सुख तथा उत्कर्ष (उच्चपद, ऐश्वर्य आदि) प्रदान करता है।

❑ अपनी नीच राशि से आगे 6 राशियों तक रहने वाले सभी ग्रहों की दशा 'आरोहिणी' तथा उच्च राशि से आगे 6 राशियों तक 'अवरोहिणी' कही जाती है। 'आरोहिणी' दशा शुभ तथा 'अवरोहिणी' दशा अशुभ फल देती है।

❑ किसी भी ग्रह की दशा के आरंभ में दशापति (दशा के स्वामी ग्रह) से चन्द्रमा तीसरे, पांचवें, छठे, सातवें, नौवें, दसवें अथवा ग्यारहवें स्थान में हो या दशापति उसके भिन्न क्षेत्र में हो

तो उस ग्रह की दशा में शुभफल प्राप्त होता है।

❑ यदि लग्नेश की दशा पहली हो तो दशा के आरंभ में विशेष कष्ट मिलता है। परंतु यदि चंद्रमा की दशा पहली हो तो बाद में सभी दशाएं शुभ फल देती हैं।

❑ यदि पहली महादशा 'सूर्य' की हो तो जातक के माता-पिता को कष्ट होता है।

❑ यदि मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि (मतान्तर से—मंगल, राहु, गुरु, शनि और बुध) उच्चस्थ अथवा स्वक्षेत्री होकर वक्री या अस्त हों तो वे अपनी दशा में शुभाशुभ मिश्रित फल देते हैं।

❑ यदि लग्न में चर-राशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो उस दशा का शुभ फल होता है। यदि द्वितीय द्रेष्काण हो तो मध्यम फल तथा तृतीय द्रेष्काण हो तो अशुभ फल मिलता है। यदि द्विस्वभाव राशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो अशुभ, द्वितीय हो तो मध्यम और तृतीय हो तो शुभ फल प्राप्त होता है। यदि स्थिर राशि का प्रथम द्रेष्काण हो तो अशुभ, द्वितीय हो तो शुभ एवं तृतीय हो तो मध्यम फल प्राप्त होता है।

❑ पूर्ण दिग्बली ग्रह अपनी दशा में अनेक प्रकार के धन-धान्य तथा सम्मान का लाभ देता है। वक्री ग्रह की दशा में सुख, स्थान परिवर्तन से प्रतिष्ठा की हानि तथा परदेश वास आदि फल प्राप्त होते हैं। नीचस्थ, शत्रुक्षेत्री तथा वक्री ग्रह की दशा में बंधु वियोग, विदेश वास, दुराग्रह तथा कुकर्म में प्रवृत्ति आदि अशुभ फल मिलते हैं। पापी ग्रह की दशाएं यदि पापी ग्रह की ही अन्तर्दशा हो तो शत्रुओं का उदय, धन की हानि तथा आयु की हानि होती है।

❑ लग्नेश की दशा से उसके शुभाशुभ फल का विचार उसके बल के आधार पर करना चाहिए। यदि अष्टम भाव में लग्नेश हो तो उस दशा में पीड़ा तथा दशा के अंतिम भाग में मृत्यु होने की संभावना रहती है। जन्म राशि तथा लग्नेश—इन दोनों के शत्रुग्रह की दशा में बुद्धि भ्रम, शत्रुभय, पराक्रम की हानि तथा स्थानच्युति आदि अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

❑ छठे, आठवें तथा 12वें भावों के अतिरिक्त अन्य भावों में स्थित मार्गी ग्रहों की दशा में जातक को सुख, सम्मान, सुयश तथा अभीष्ट का लाभ होता है। राहु से युक्त शुभ ग्रह की दशा में धन-हानि, विदेश गमन, कष्ट तथा अरिष्ट आदि अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

❑ केन्द्राधिपति ग्रह अपनी दशा में स्व सम्बन्धी त्रिकोणेश की अन्तर्दशा आने पर शुभ फल देता है। इसके विपरीत सम्बन्ध न होने पर केन्द्रेश अपनी दशा में तथा त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में भी सामान्यतः अशुभ फल ही देता है।

❑ नीचस्थ अथवा शत्रुक्षेत्री ग्रह की दशा में जातक को रोग, विवाद, दुराग्रह शत्रुओं द्वारा हानि, परदेश वास, हानि, वियोग आदि अशुभ फल प्राप्त होते हैं। यदि नीचस्थ अथवा शत्रुक्षेत्री ग्रह शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो अशुभ फल में कुछ कमी आ जाती है।

❑ मार्गी ग्रह की दशा में जातक को धन, सम्मान, यश, नेतृत्व, उद्योग तथा स्थान का लाभ होता है अथवा इनमें वृद्धि होती है। यदि मार्गी ग्रह षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश भाव में हो तो अभीष्ट सिद्धि में बाधाएं आती हैं। वक्री ग्रह की दशा में धन, सम्मान, सुख आदि का नाश होता है तथा जातक को परदेश में जाकर रहना पड़ता है।

❑ ग्रहों की दशा का फल संपूर्ण दशा काल में एक जैसा नहीं होता। यदि ग्रह प्रथम द्रेष्काण

में हो तो दशा के प्रारंभ में ही, यदि द्वितीय में हो तो मध्य में तथा तृतीय में हो तो अंत में फल की प्राप्ति होती है। यदि वक्री ग्रह हो तो विपरीत प्रकार से फल मिलता है अर्थात् तृतीय द्रेष्काण में हो तो प्रारंभ में, द्वितीय में हो तो मध्य में एवं प्रथम में हो तो अंत में फल मिलता है।

❑ लग्नेश की दशा में शारीरिक सुख तथा धन लाभ के साथ ही स्त्री को कष्ट भी हो सकता है। द्वितीयेश की दशा में धन लाभ के साथ ही जातक को शारीरिक कष्ट भी होता है। यदि वह पापी ग्रह के साथ हो तो मृत्यु होना भी संभव रहता है। तृतीयेश की दशा में कष्ट, चिन्ता तथा सामान्य धन लाभ होता है। चतुर्थेश की दशा में विद्या, उपाधि, भूमि, भवन, वाहन तथा भाई, मित्र एवं शारीरिक मुख की प्राप्ति होती है परंतु पिता को कष्ट रहता है। यदि लाभेश तथा चतुर्थेश दोनों ही दशम अथवा चतुर्थ भाव में हों तो जातक किसी बड़े व्यावसायिक संस्थान की शुरुआत करता है। पंचमेश की दशा में विद्या, बुद्धि तथा सम्मान का लाभ होता है। परंतु माता को पीड़ा होती है अथवा माता की मृत्यु हो जाती है। यदि पंचमेश पुरुष ग्रह हो तो जातक को पुत्र एवं स्त्री ग्रह हो तो कन्या संतान की प्राप्ति भी संभव है। षष्ठेश की दशा में रोग, शत्रुभय तथा संतान कष्ट होता है। सप्तमेश की दशा में शारीरिक कष्ट, शोक तथा अवनति आदि अशुभ फल मिलते हैं। यदि सप्तमेश पापी ग्रह हो तो स्त्री क्ये अधिक और शुभ ग्रह हो तो कम कष्ट होता है। अष्टमेश की दशा में विवाह, स्त्री की मृत्यु अथवा स्वयं की मृत्यु आदि कार्य होते हैं। यदि अष्टमेश द्वितीय भाव में हो तो जातक की मृत्यु अवश्य होती है। नवमेश की दशा में विद्या द्वारा उन्नति, राज्य द्वारा लाभ, सम्मान वृद्धि, दान-पुण्य, भाग्योदय एवं लोकप्रियता में वृद्धि होती है तथा किसी महान कार्य में सफलता मिलती है। दशमेश की दशा में माता को कष्ट, धन लाभ, सुख-वृद्धि तथा राज्याश्रय की प्राप्ति होती है। एकादश की दशा में जातक के पिता की मृत्यु होती है तथा जातक को स्वयं व्यवसाय द्वारा प्रचुर लाभ, धन-लाभ तथा प्रसिद्धि लाभ आदि शुभ फल प्राप्त होते हैं। यदि लाभेश पर किसी क्रूर ग्रह की दृष्टि हो तो रोग-कष्ट भी होता है। द्वादशेश की दशा में शारीरिक कष्ट, चिन्ता, व्याधि, धन हानि तथा कुटुम्बियों को कष्ट आदि अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

ग्रहों की महादशाओं के सामान्य फल

विभिन्न ग्रहों की महादशाओं, अन्तर्दशाओं, प्रत्यन्तर्दशाओं आदि के सामान्य अथवा विशिष्ट फल उनकी शुभाशुभ स्थिति आदि पर निर्भर करते हैं। इस विषय की विशेष जानकारी हेतु एतद्विषयक ज्योतिष ग्रंथों का अध्ययन करें। यहां पर महादशाओं के संक्षिप्त फलादेश प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

सूर्य महादशा फल

यदि सूर्य पूर्णबली हो तो भूमि, अग्नि, औषध, शस्त्र, राजा तथा ब्राह्मण द्वारा धन लाभ व परदेश वास की संभावना होती है। मध्यम बली हो तो अभिचार कर्म में रुचि, राजा से प्रेम, युद्ध, चिन्ता, वाक्पटुता एवं प्रसिद्धि लाभ होता है। यदि सूर्य हीन बली हो तो बंधु वर्ग से भय, स्त्री-पुत्र वियोग, राजा तथा अग्नि से भय, चिन्ता, ऋण ग्रस्तता, दंत एवं उदर पीड़ा आदि अशुभ फल प्राप्त होते हैं।
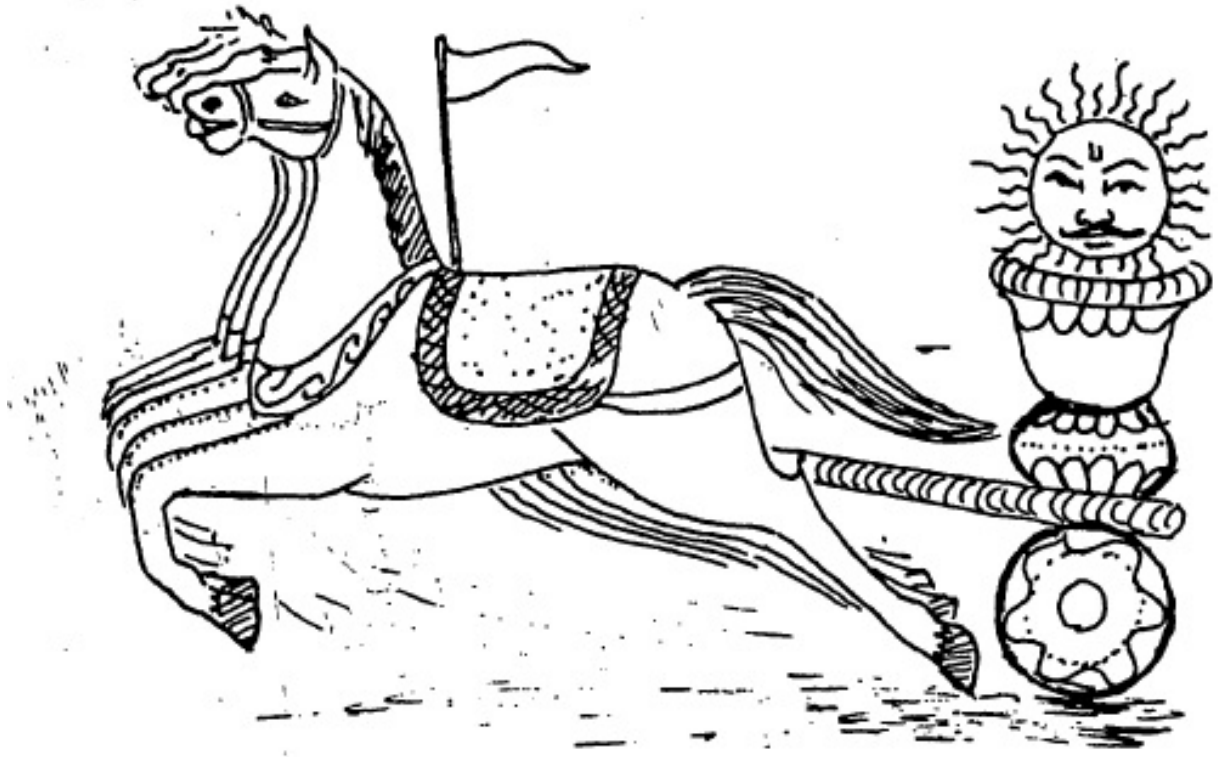
यदि मेष राशि में सूर्य उच्च का हो तो धर्म-कर्म में रुचि, परदेशगमन, स्त्री-पुत्रादि का सुख तथ धन लाभ। मेष राशिस्थ सूर्य अष्टम में हो तो अशुभ फल, षष्ठभाव में हो तो पितृविरोध एवं पीड़ा। वृष में हो तो धन नाश, स्त्री-पुत्रादि का कष्ट, स्थावर संपत्ति की चिन्ता। मिथुन में हो तो धन-धान्य सुख आदि की वृद्धि। कर्क में हो तो माता-पिता व भाइयों से अलगाव, राज मैत्री से लाभ, ख्याति वृद्धि। सिंह में हो तो यश, धन व सुख की वृद्धि। कन्या में हो तो भूमि, वाहन, स्त्री आदि का सुख। तुला में हो तो चिन्ता, अग्नि-भय तथा अन्य हानियां। अष्टम भावस्थ हो तो चित्त में उद्विग्नता एवं षष्ठ भाव में हो तो शत्रु कष्ट एवं व्रण पीड़ा। वृश्चिक में हो तो शस्त्र, अग्नि, कीट आदि से भय तथा प्रतिष्ठा में वृद्धि। धनु में हो तो ऐश्वर्यादि सुखों का लाभ। मकर में हो तो सुख तथा धन में कमी, पराधीनता। कुंभ में हो तो दरिद्रता, सुख हीनता। मीन में हो तो सुख, यश, लाभ।

यदि प्रथम भाव में हो तो प्रवास, रोग। द्वितीय में हो तो धन-नाश, राज-भय। तृतीय में हो तो उच्चाधिकार, सुख, राजसम्मान, पराक्रम वृद्धि। चतुर्थ में हो तो धन हानि तथा भय। पंचम में हो त स्वयं तथा संतान को कष्ट, बुद्धि-भ्रम, धन संचय। षष्ठ में हो तो शत्रु नाश, पितृविरोध, ज्वरादि कष्ट। सप्तम में हो तो स्त्री को कष्ट। अष्टम में हो तो शारीरिक कष्ट। नवम में हो तो स्वजन विरोध, वृद्धि। दशम में हो तो राजसम्मान, धन-लाभ, सुख-वृद्धि। एकादश में हो तो ऐश्वर्य, यश, लाभ। द्वादश में हो तो धन नाश, ऋण, अपयश।

चन्द्र महादशा फल

चन्द्रमा पूर्णबली हो तो धन, यश, लाभ। मध्यम बली हो तो सद्‌गुण, बुद्धि, यश में वृद्धि। हीन बली हो तो चित्त की चंचलता, आलस्य। क्षीण चन्द्र षष्ठ भाव में हो तो अनुचित धन लाभ।

मेष राशिस्थ हो तो विदेश प्रवास, स्त्री-पुत्र सुख। वृष में हो तो धन, पद, यश लाभ। मिथुन में तो धन, ऐश्वर्य, धर्म में वृद्धि। कर्क में हो तो धन-धान्य, कृषि, स्थावर संपत्ति तथा यश में वृद्धि। सिं में हो तो पद, सम्मान एवं धन लाभ। कन्या में हो तो धन, अधिकार, कला में लाभ, अल्प सिद्धि तथा पाप बुद्धि। तुला में हो तो धन-लाभ सामान्य एवं धर्म-हानि, स्त्री से कष्ट। वृश्चिक में हो तो क्लेश, दुःख, हानि। धनु में हो तो वाहन, धन सुख, सौभाग्य वृद्धि। मकर में हो तो धन-लाभ, स्त्री-सुख। कुंभ में हो तो ऋणग्रस्तता, चंचलता, शारीरिक अस्वस्थता। मीन में हो तो शत्रु नाश, स्त्री-पुत्रादि का सुख, सुयश एवं धन लाभ।

प्रथम भाव में हो तो शारीरिक व गृहस्थ कष्ट। द्वितीय में हो तो ऐश्वर्य सुख, पुत्र-सुख। तृतीय हो तो उत्कर्ष, सुख, सम्मान। चतुर्थ में हो तो सुख, यश, वाहन, संपत्ति लाभ। पंचम में हो तो पद, प्रतिष्ठा, उन्नति। षष्ठ में हो तो शत्रु-भय, रोग, धन-हानि। सप्तम में हो तो स्त्री सुख, व्यवसाय से लाभ। अष्टम में हो तो कष्ट, भय, हानि, संकट। नवम में हो तो धन, भाग्योदय। दशम में हो तो यश उत्कर्ष, धन लाभ। एकादश में हो तो सभी प्रकार के लाभ। द्वादश में हो तो धन-हानि अथवा अनीतिपूर्वक धन लाभ, संकट, भ्रमण, अपयश।

मंगल महादशा फल

यदि मंगल पूर्णबली हो अनेक प्रकार के लाभ, यश-धनादि प्राप्त होते हैं। मध्यम बली होने पर युद्ध में विजय, राज्य की ओर से लाभ तथा साहस प्राप्ति की संभावना रहती है। हीन बली होने प गृह-क्लेश, राज्य की ओर से भय तथा रक्त सम्बन्धी दोष पैदा होते हैं।

मेष राशि में होने पर सुख, सम्मान, विजय व धन प्राप्ति होती है। वृष में होने पर स्त्री को कष्ट अन्य व्यक्ति द्वारा धन-लाभ होता है। मिथुन में हो तो व्यवहार पटु, वाचाल, अधिकारी वर्ग पर प्रभाव होता है। कर्क में होने पर स्त्री पुत्र से अलगाव, मकान तथा सेवक का सुख प्राप्त होता है। सिंह राशिस्थ होने पर पत्नी-पुत्रादि का वियोग रहता है, दृढ़ता व सौभाग्य प्राप्त होते हैं। कन्या राशि में होने पर स्त्री-पुत्र व धन का अपूर्व सुख प्राप्त होता है। तुला राशि में होने पर पत्नी, धन, पशु आदि का नुकसान होता है, घर में क्लेश-पीड़ा रहती है। वृश्चिक राशिस्थ होने पर धन-धान्य वृद्धि, शत्रु पर विजय तथा कृषि में लाभ होता है। धनु में होने पर मनोवांछित वस्तुओं की प्राप्ति, धन लाभ तथा विजय प्राप्त होती है। मकर में धन लाभ, विजय, सुख व अधिकार रूपी रत्न प्राप्त होते हैं। कुंभ राशिस्थ हो तो उद्वेग, धर्म, आचारहीनता, रोग, दरिद्रता तथा चिन्ता होती है। मीन रा में होने पर व्ययाधिक्य, परदेशगमन, ऋणग्रस्तता तथा हानि जैसे विकार पैदा होते हैं।

प्रथम भाव में होने से धन का नाश, पराजय, उद्वेग, चिन्ता, स्त्री कष्ट व व्यवसाय-व्यापार में संकट आ सकता है। द्वितीय भाव में होने से अस्थिरता, अपव्यय, धन की कमी और सन्तान को कष्ट होता है। तृतीय भाव में होने से धन, प्रतिष्ठा, अधिकार तथा पद लाभ होता है। चतुर्थ भाव में होने से संपत्ति और संतान संबंधी चिन्ता, रोग होने का भय, स्थावर सम्पत्ति की चिन्ता होती है। पंचम भाव में होने से संतान संबंधी चिन्ता तथा धन का व्यय होता है। षष्ठ भाव होने से आर्थिक

क्षेत्र में अत्यधिक उतार-चढ़ाव और शत्रु पर विजय होती है। सप्तम भाव में होने से व्यवसाय क्षेत्र में हानि और स्त्री को कष्ट होता है। अष्टम भाव में होने से रोग-भय, धन नाश, मृत्यु-तुल्य कष्ट और अपमान होता है। नवम भाव में होने से पापवृत्ति, धर्म की हानि तथा दंभ में वृद्धि होती है। दशम भाव में होने से सर्वोच्च पद, व्यवसाय में लाभ, अधिकार एवं शत्रु नाश होता है। एकादश भाव में होने से स्त्री कष्ट, धन हानि, संपत्ति-लाभ तथा संतान कष्ट होता है। द्वादश भाव में होने से गृह संकट राज-भय, अपमान एवं शत्रु-पीड़ा होती है।

बुध महादशा फल

यदि बुध पूर्ण बली हो तो उत्कर्ष का लाभ, विवेक, वस्त्राभूषणों की उपलब्धि, नए भवनों का निर्माण एवं स्त्री तथा पुत्र आदि का सुख प्राप्त होता है। मध्यम बली होने से स्त्री और पुत्र सुख के बजाय कष्ट तथा कई अन्य अशुभ फलों को भोगना पड़ता है।

मेष राशि में होने से चोरी, हानि, दरिद्रता, संकट आदि प्राप्त होते हैं। वृष राशि में होने से स्त्री-पुत्र आदि के बारे में चिन्ता तथा धन की हानि होती है। मिथुन में होने से स्त्री-पुत्र आदि से सुख एवं बुद्धि का विकास होता है। कर्क में होने से विदेश वास, मित्र का विरोध, दुख, कवित्व आदि प्राप्त होता है। सिंह में हो तो पुत्र-स्त्री का सुख, यश, धन एवं धैर्य का नाश होता है। कन्या राशि में होने शत्रुओं पर विजय, लाभ, ऐश्वर्य, ग्रंथ लेखन, भोग आदि लाभ प्राप्त होते हैं। तुला में होने पर स्त्री सुख, बुद्धि, धन एवं विवेक आदि लाभ प्राप्त होता है। वृश्चिक में होने से शारीरिक कष्ट, धन का नाश तथा विपत्ति आदि को सहना पड़ता है। धनु में होने से यश, धन, पद, लाभ तथा अधिकारों में वृद्धि होती है। मकर में होने से अग्नि, विष आदि से पीड़ा तथा अनेक प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है। कुंभ में होने से विदेश-यात्रा, अत्यधिक व्यय तथा अन्य लाभ प्राप्त होते हैं। मीन होने से विष, अग्नि आदि से पीड़ा तथा अनेक प्रकार के संकट का सामना करना पड़ता है।

प्रथम भाव में होने से सम्मान, संतोष, यश, सुख तथा लाभ प्राप्त होते हैं। द्वितीय भाव में होने से विद्या एवं मान-सम्मान प्राप्त होता है। तृतीय भाव में होने से मित्रों से लाभ तथा शारीरिक कष्ट प्राप्त होते हैं। चतुर्थ भाव में होने से व्यावसायिक संकट, अपयश तथा अनेक प्रकार के कष्ट प्रकट होते हैं। पंचम भाव में होने से मानसिक एवं शारीरिक कष्ट प्राप्त होता है। षष्ठ भाव में होने से रोग वृद्धि होती है तथा स्वभाव में दुर्बलता आती है। सप्तम भाव में होने से संतान और स्त्री का सुख प्राप्त होता है। अष्टम भाव में होने से मृत्यु तुल्य कष्ट और अनेक प्रकार के कष्ट प्राप्त होते हैं। नवम भाव में होने पर, भाग्योदय, सुख और धर्माचरण आदि का भय रहता है। दशम भाव में होने पर धन, पद, यश आदि कई प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। एकादश भाव में होने पर वाहन की प्राप्ति, धन आदि का सुख प्राप्त होता है। द्वादश भाव में होने पर संकट, शत्रु-भय और अधिक व्यय की संभावना बनी रहती है।

गुरु महादशा फल

गुरु के पूर्णबली होने पर राजा से भूमि, वाहन, अभीष्ट वस्तुओं का लाभ तथा सम्मान व आदर

आदि का लाभ होता है। मध्यम बली हो तो धैर्य एवं बल की वृद्धि, भूमि, वाहन तथा सम्मान का फल मिलता है। हीनबली होने पर कई प्रकार के रोग और बुखार आदि से कष्ट प्राप्त होते हैं।

मेष राशि में होने से धन, विद्या, पत्नी तथा पुत्र आदि का लाभ प्राप्त होता है। वृष में होने पर धन की हानि, सुखों की हानि तथा अनेक कष्ट होते हैं। मिथुन में होने से क्लेश, दुख और धन की हानि होती है। कर्क में होने से सर्वोच्च पद, ऐश्वर्य, यश आदि का लाभ प्राप्त होता है। सिंह में होने धन-संपत्ति, शौर्य-पराक्रम एवं सुख का लाभ होता है। कन्या में हो तो विवाद, अपमान, भ्रमण, ध का व्यय आदि होता है। तुला में होने से शौर्य-पराक्रम की हानि, अपमान और गलत कार्यों में बुद्धि का प्रयोग होता है। वृश्चिक में होने से पुत्र, ज्ञान, विद्या, धन आदि का लाभ प्राप्त होता है। धनु में होने से सर्वोच्च पद, सुख, धर्म-कर्म में रुचि का विकास होता है। मकर में होने पर पत्नी तथा पुत्र को कष्ट, लोगों से विरोध आदि का भय रहता है। कुंभ में होने से सर्वोच्च पद, धन, विद्या, सुख आदि का लाभ प्राप्त होता है। मीन में होने से आदर-सम्मान, ऐश्वर्य एवं सभी सुखों का लाभ प्राप्त

होता है।

प्रथम भाव में होने पर संतान का सुख एवं विद्या-बुद्धि प्राप्त होती है। द्वितीय भाव में होने से यश, सुख, धन वृद्धि, पराक्रम आदि लाभ प्राप्त होते हैं। तृतीय भाव में होने पर यश, सुख तथा ध आदि का लाभ होता है। चतुर्थ भाव में होने से स्वास्थ्य लाभ तथा अनेक प्रकार के आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं। पंचम भाव में होने से सम्मान, आदर एवं यश, धन आदि अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। षष्ठ भाव में होने से व्यापार-व्यवसाय में लाभ, आदर एवं संतान सुख प्राप्त होते हैं। सप्तम भाव म होने से व्यापार-व्यवसाय में लाभ, धन तथा स्त्री-पुत्र आदि अनेक लाभ होते हैं। अष्टम भाव में हो से स्वयं तथा पत्नी को कष्ट और अनेक सम्मान प्राप्त होते हैं। नवम भाव में होने पर गह-परिवार के सुख, धन-संपत्ति आदि लाभ प्राप्त होते हैं। दशम भाव में होने से धन-सम्मान और उच्चतम अधिकारों की प्राप्ति होती है। एकादश भाव में होने पर राजा का विरोध, वाहन, रोजगार तथा नौकरी आदि सुख प्राप्त होते हैं। द्वादश भाव में होने से स्थायी संपत्ति तथा शारीरिक कष्ट प्राप्त होते हैं।

शुक्र महादशा फल

यदि शुक्र पूर्णबली हो तो वाहन, स्त्री, रत्नाभूषण आदि का सुख मिलता है। क्रय-विक्रय में सम्मान व दक्षता का लाभ होता है। मध्यम बली होने से विदेश यात्रा, अपने पूर्वजों के धन का लाभ, धन, वाहन, पुत्र-पौत्रादि का लाभ तथा स्वजनों से कलह का भय रहता है। हीनबली होने से शारीरिक दुर्बलता, दुष्ट लोगों से मैत्री तथा देव-ब्राह्मणों की चिन्ता आदि रहती है।

मेष राशि में होने से धन हानि, स्त्री तथा सुख की हानि एवं उद्वेग आदि होता है। वृष में होने स धन, विद्या, स्थायी संपत्ति आदि का लाभ होता है। मिथुन में होने पर ग्रंथ का लेखन, कला-कुशलता तथा विद्या आदि लाभ मिलते हैं। कर्क में होने पर व्यापार-व्यवसाय में वृद्धि तथा स्त्रियों से प्रेम होता है। सिंह में होने से स्त्री द्वारा लाभ और सामान्य अर्थ कष्ट प्राप्त होता है। कन्या में हो पर आर्थिक कष्ट, स्त्री-पुत्र से हानि और व्यवसाय में वृद्धि होती है। तुला में होने पर आदर-सम्मान स्त्री, पुत्र, धन आदि लाभ प्राप्त होते हैं। वृश्चिक में होने पर यश, साहस, पराक्रम में वृद्धि, आय, ऋण-मुक्ति आदि प्राप्त होते हैं। धनु में होने से शत्रुओं की संख्या में वृद्धि, क्लेश, भय, चिन्ता आ में बढ़ोत्तरी होती है। मकर में होने पर रोग, चिन्ता, कष्ट परन्तु शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। कुं में होने पर रोग, कष्ट, धन-हानि तथा शुभ कार्यों को हानि पहुंचती है। मीन में होने पर ऐश्वर्य, सम्मान, वैभव, सुख आदि लाभ प्राप्त होते हैं।

प्रथम भाव में होने पर शारीरिक तथा मानसिक सुख, यश, प्रतिष्ठा आदि लाभ होते हैं। द्वितीय भाव में होने पर धन-संपत्ति का व्यय, स्त्री को कष्ट और सत्कर्मों में धन का व्यय होता है। तृतीय भाव में होने पर मातृ-सुख, प्रवास एवं स्थान परिवर्तन होता है। चतुर्थ भाव में होने से वाहन, पद, सुख, भूमि, कीर्ति आदि का लाभ प्राप्त होती है। पंचम भाव में होने पर बुद्धि, विद्या, पराक्रम तथ शुभ फलों का लाभ मिलता है। षष्ठ भाव में होने पर स्त्री-पुत्र सुख तथा हानि दोनों, शारीरिक कष्ट रोग आदि का भय रहता है। सप्तम भाव में होने पर व्यवसाय-व्यापार, धन, चिन्ता और उद्योग में अनिश्चितता आ जाती है। अष्टम भाव में होने पर मानसिक-शारीरिक कष्ट आदि सहने पड़ते हैं। नवम भाव में होने से ऐश्वर्य, स्त्री, वाहन आदि का सुख प्राप्त होता है। दशम भाव में होने पर व्याप व्यवसाय में उन्नति, यश और राज सम्मान की प्राप्ति होती है। एकादश भाव में होने पर सम्मान, सुख तथा अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। द्वादश भाव में होने पर शारीरिक-मानसिक व्याधि, चिन्ता, कष्ट आदि प्राप्त होते हैं।

शनि महादशा फल

यदि शनि पूर्ण बली की दशा में हो तो वाहन, घर, पराक्रम, यश, दान-धर्म, उच्चाधिकार, कला-कुशलता आदि अनेक प्रकार का लाभ प्राप्त होता है। मध्यम बली होने पर यश, देव भक्ति

तथा बुद्धि और कुल में प्रधानता का लाभ प्राप्त होता है। हीन बली होने पर चर्म-रोग, आलस, उदासी, निद्रा आदि अनेक अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

मेष राशि में होने से मित्र-वियोग और अनेक कष्टों को सहना पड़ता है। वृष में होने से साहस, पराक्रम, विजय तथा स्त्रियों से मित्रता होती है। मिथुन में होने पर कष्ट, चिन्ता और ऋणग्रस्तता प्राप्त होती है। कर्क में होने से मित्र-वियोग, सामान्य-सुख और दरिद्रता प्राप्त होती है। सिंह में होने से स्त्री एवं पुत्र के साथ कलह तथा आर्थिक कष्ट प्राप्त होते हैं। कन्या में होने से घर का सुख, भूमि लगान तथा आर्थिक दृढ़ता आदि प्राप्ति होती है। तुला में होने से भोग, सम्मान, धन-संपत्ति आदि का लाभ होता है। वृश्चिक राशि में होने पर भ्रमण-कार्य, आर्थिक कष्ट तथा देशान्तर प्रवास आदि लाभ होते हैं। धनु में होने से विजय, सुख, आनंद, धर्म आदि लाभ प्राप्त होते हैं। मकर में हो तो

हानि, विपत्ति, आर्थिक कष्ट, विषय लिप्सा आदि प्राप्त होते हैं। कुंभ में होने पर स्त्री-पुत्र सुख तथ धन-लाभ होता है। मीन में होने पर अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

प्रथम भाव में हो तो चिन्ता, आर्थिक हानि आदि अशुभ फल प्राप्त होते हैं। द्वितीय भाव में हो पर स्त्री कष्ट, राज-भय तथा कौटुम्बिक भय बना रहता है। तृतीय भाव में होने पर पराक्रम में वृद्धि और राज-भय होता है। चतुर्थ भाव में होने पर शत्रु तथा राज्याधिकारी से भ्रम प्राप्त होता है। पंच भाव में होने पर संतान कष्ट, बुद्धि का नाश तथा धन की कमी होती है। षष्ठ भाव में होने पर धन-लाभ परन्तु शारीरिक एवं मानसिक कष्ट होता है। सप्तम भाव में होने पर रोग नाश, धन-लाभ, सु तथा शत्रु नाश होता है। अष्टम भाव में होने पर अपमान, मृत्यु-तुल्य कष्ट और भयंकर रोग होते हैं। नवम भाव में होने पर रोग-नाश, शत्रु-नाश, सुख और धन लाभ होता है। दशम भाव में होने पर स्त्री, पुत्र और सेवक से त्रास तथा व्यवसाय में विघ्न आता है। एकादश भाव में होने पर उत्कर्ष, राज सम्मान तथा अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। द्वादश भाव में होने पर राज-दण्ड, अपयश ऋणग्रस्तता और दुख आदि प्राप्त होता है।

राहु महादशा फल

राहु की महादशा होने पर सामान्य तौर पर धन-नाश, रोग, कष्ट, प्रियजनों का वियोग, मृत्यु-तुल्य कष्ट, अनेक प्रकार के कष्ट तथा दुःख भोगने पड़ते हैं। उच्च राशिस्थ राहु शुभ फल प्रदान करता है तथा नीचस्थ राहु अशुभ फल देता है। शुभाशुभ ग्रहों की युति और दृष्टि का भी राहु के फल पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

मेष राशि में होने से मित्र-विरोध, धन लाभ तथा सामान्य सुख प्राप्त होते हैं। वृष में होने से राज्य से लाभ, अधिकार तथा सफलता मिलती है। मिथुन में हो तो आरंभ में कष्ट, मध्य में सुख तथा लाभ होता है। कर्क में होने पर धन-लाभ, पुत्र लाभ तथा नवीन कार्यारंभ होते हैं। सिंह में हो से कामों में सफलता किन्तु अनेक रोग होते हैं। कन्या में होने से मध्य वर्ग से लाभ और व्यसनों से हानि होती है। तुला में होने से यश-लाभ, आकस्मिक कष्ट तथा बन्धुद्वेष होते हैं। वृश्चिक में होने से शत्रुओं से हानि, आर्थिक कष्ट तथा अन्य अशुभ फल प्राप्त होते हैं। धनु में होने से सम्मान लाभ, उच्चपद तथा यश प्राप्त होता है। मकर में होने से रोग, कष्ट, आर्थिक कष्ट और अन्य स्थितियां सामान्य होती हैं। कुंभ में होने से शरीर स्वस्थ, सुख, व्यवसाय में सफलता और विजय प्राप्त होती है। मीन में होने से रोग, संकट, कलह एवं विरोध आदि होते हैं।

प्रथम भाव में होने से शत्रु-भय, अग्नि भय तथा मानसिक कष्ट होता है। द्वितीय भाव में होने र
गृह परिवार से पीड़ा, उद्योग-व्यवसाय में हानि होती है। तृतीय भाव में होने से परिवार सुख, उद्योग
सिद्धि एवं धन प्राप्त होता है। चतुर्थ भाव में होने से स्थावर संपत्ति के नष्ट होने तथा अन्य भय रह
हैं। पंचम भाव में होने से विद्या-ज्ञान के क्षेत्र में अपयश, ऋणग्रस्तता, धन की कमी होती है। षष्ठ
भाव में होने से धन लाभ, रोग, कष्ट, यश, शत्रु-नाश आदि होता है। सप्तम भाव में होने से पत्नी व
कष्ट, मृत्यु भय, धन की हानि आदि का भय होता है। अष्टम भाव में भाग्य-हानि, शारीरिक कष्ट,
धन की हानि आदि होती है। नवम भाव में होने से, तीर्थ स्थलों की यात्रा, मित्र-वियोग,
स्थानान्तरण आदि होता है। दशम भाव में होने से शुभ कर्मों में रुचि और व्यवसाय-व्यापार में ला
होता है। एकादश भाव में संतान सुख, धन, स्त्री-आनन्द आदि का लाभ होता है। द्वादश भाव में ध
की हानि तथा राज-कोष में भी हानि होती है।

केतु महादशा फल

केतु की महादशा में सामान्य रूप से विषाद, रोग, भय, संकट, अनर्थ, जीवन पर गहरा प्राण संकट आदि अशुभ फलों की प्राप्ति होती है। केतु के उच्च राशिस्थ अथवा शुभ ग्रह से दृष्ट होने पर वह शुभ फल प्रदान करता है तथा नीचस्थ अथवा पापी ग्रह से दृष्ट होने पर वह अशुभ फल प्रदान करता है। केतु पर अन्य ग्रहों की दृष्टि विशेष प्रभाव डालती है।

मेष राशि में होने पर धन, यश तथा आकस्मिक लाभ प्राप्त होता है। वृष में होने पर हानि, क
पीड़ा, चिन्ता तथा भय बना रहता है। मिथुन राशि में होने से रोग, पीड़ा, मित्र-विरोध तथा यश आदि फल मिलते हैं। कर्क में होने पर मित्र, स्त्री, पुत्र का सुख, अनेक प्रकार के सुख आदि लाभ प्राप्त होता है। सिंह में हो तो अल्प सुख एवं अल्प धन लाभ होता है। कन्या में होने से नवीनतम कार्यों में रुचि, सत्कर्मों में रुचि एवं प्रसिद्धि लाभ प्राप्त होता है। तुला में होने से आय लाभ, व्यसनों में रुचि, कार्य में हानि होती है। वृश्चिक में होने पर आदर, सम्मान, धन, स्त्री का लाभ, कफ-रोग, बन्धन, कष्ट आदि प्राप्त होते हैं। धनु में होने पर भय, कलह, आंखों का रोग, शिरोरोग आदि संकट का सामना करना पड़ता है। मकर में होने पर व्यापार-व्यवसाय में सफलता तथा नवीन कार्यों में हानि होती है। कुंभ में होने से आर्थिक कष्ट, मित्र विरोध, पीड़ा आदि कष्ट होते हैं। मीन में होने से अचानक धन लाभ, यश, कीर्ति तथा विद्या का लाभ प्राप्त होता है।

प्रथम भाव में होने पर शारीरिक अशक्तता तथा कई रोग हो जाते हैं। द्वितीय भाव में होने पर ऋणग्रस्तता, पराधीनता एवं मानसिक कष्ट बने रहते हैं। तृतीय भाव में होने से मित्र पर विरोध होता है परन्तु पराक्रम में वृद्धि होती है। चतुर्थ भाव में होने पर स्त्री, पुत्र से क्लेश, लोकापवाद

आदि होता है। पंचम भाव में होने पर बुद्धि का नाश, विद्या से अपयश तथा हानि होती है। षष्ठ भा
में होने पर मामा की मृत्यु, शारीरिक कष्ट तथा स्वपराक्रम से धन लाभ प्राप्त होता है। सप्तम भाव
में होने पर अनिष्ट फलों की प्राप्ति होती है, परंतु वृश्चिक राशि में हो तो शुभ होता है। अष्टम भाव
होने पर पिता की मृत्यु, आर्थिक कष्ट तथा प्रतिकूल स्थितियां होती हैं। नवम भाव में होने पर
परोपकार, धर्माचरण परंतु गृहस्थ संकट उत्पन्न होता है। दशम भाव में होने पर आरंभ में विघ्न,
रुकावट परंतु बाद में व्यापार-व्यवसाय में लाभ होता है। एकादश भाव में होने से भवन, भूमि, धन
मित्रता आदि का लाभ प्राप्त होता है। द्वादश भाव में होने से लोक-निन्दा, विदेश वास तथा धन क
नाश आदि अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

विशेष— विंशोत्तरी महादशान्तर्गत जिस ग्रह की दशा हो, उसका फल समस्त दशा काल में एक जैसा नहीं होता। जब दशा काल में अन्य ग्रहों की अंतर्दशाएं होती हैं तो वे भी शुभाशुभ प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। इसी प्रकार प्राणदशाएं भी प्रत्यन्तर तथा सूक्ष्मान्तर तक अपने प्रभाव को प्रकट करती हैं। किसी भी ग्रह के दशा काल फल पर विचार करते समय उसकी प्रत्यन्तर्दशा, अन्तर्दशा, सूक्ष्मान्तर्दशा तथा प्राणदशा पर भी अवश्य विचार करना चाहिए। इसके अलावा वर्तमान गोचर ग्रह स्थिति पर भी ध्यान देना चाहिए। तभी वास्तविक फलित का ज्ञान संभव हो सकता है। ज्योतिष ग्रंथों में ग्रहों की अन्तर्दशाओं के फल का प्रभाव-उल्लेख तो होता है, परन्तु प्रत्यन्तर्दशाओं का फल बहुत सूक्ष्म रूप में पाया जाता है। इसका किसी प्रकार से कोई लाभ नहीं होता। प्राण और सूक्ष्म दशाओं के फल का उल्लेख नहीं मिलता, अतः इनके संबंध में ज्योतिषी को स्वयं अपने विवेक के आधार पर निर्णय करना चाहिए।

विंशोत्तरी महादशा के फलादेश का उल्लेख यहां किया गया है। फलादेश तथा अन्य महादशाओं के संबंध में जानकारी शेष सभी ग्रहों के माध्यम से करनी चाहिए। इन दशाओं के काल पर विचार करने के बाद ही व्यक्ति के जीवन में घटने वाली घटनाओं का बिलकुल ठीक-ठीक समय निर्धारित किया जाता है।

विभिन्न ग्रहों के योग

जब जन्मकुण्डली के किसी भी भाव में जब एक से अधिक ग्रह होते हैं तो विभिन्न योगों का प्रस्फुरण होता है। इस अध्याय में हम ऐसे ही विशेष ग्रह योगों की चर्चा कुण्डलियों सहित कर रहे हैं—

❑ यदि सूर्य दशम भाव में अकेला अपनी राशि, उच्च राशि या मूल त्रिकोण राशि में हो तो यह योग कारक बन जाता है। इसका जातक अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अनुसार ग्राम-प्रधान, सरपंच, सभासद, विधायक, मंत्री, न्यायाधीश, कुलीन भद्र, चिकित्सक, स्वर्णकार, रसायनविद् या महाजन आदि बनता है।

❑ यदि कुण्डली के दसवें भाव में चंद्र और सूर्य साथ-साथ हों अथवा एक दूसरे पर सीधी दृष्टि रखते हों और इनमें से कोई एक उच्च का होकर या स्वराशि में होकर दसवें भाव में स्थित हो तो ऐसा जातक अच्छा पत्रकार और सृजनशील लेखक बनकर प्रसिद्धि पाता है। वह सेल्समैन, प्रचारक या विज्ञापन कार्यों में भी सफल रहता है। इस योग में दसवें भाव को लग्न मानकर उससे पांचवां और नौवां भाव भी देखना चाहिए।

❑ यदि दसवें भाव के कारक ग्रह सूर्य और बृहस्पति के बीच कुण्डली में किसी प्रकार का कोई संबंध हो तो जातक बहुमुखी प्रतिभा वाला होता है। वह जिस क्षेत्र में भी उतरता है, उसमें ही अपना प्रमुख स्थान बना लेता है। वह नाटक-लेखक, दार्शनिक; आध्यात्मिक विषयों का लेखक-प्रवक्ता, ज्योतिषी, मांत्रिक, तांत्रिक आदि कुछ भी बनकर सफल होता है। लेकिन वह पत्रकार, वकील, प्रवक्ता, शिक्षक आदि व्यवसायों में अधिक सफल होता है। वह महाधिवक्ता, चर्च का मुख्य पादरी, महंत, पुजारी, इमाम तथा उच्च पदस्थ व्यक्तियों का सलाहकार आदि बनकर भी समाज में प्रतिष्ठा पाता है।

❑ यदि कुण्डली में सूर्य व शुक्र साथ-साथ होकर या एक-दूसरे पर दृष्टि रखते हों और दसवें भाव से उनका स्थितिकारी या दृष्टिकारक संबंध हो तो ऐसा जातक अभिनय तथा खेल आदि क्षेत्रों में अत्यन्त सफल होने की संभावना रखता है। वह कलाकार, चित्रकार, मूर्ति शिल्पी, खिलाड़ी या अभिनेता का कैरियर अपनाकर सफलता प्राप्त करता है। वह नाटक अथवा फिल्म का निर्माता-निर्देशक भी हो सकता है।

❑ यदि शुक्र और चंद्र—दोनों दसवें भाव में साथ-साथ हों या एक-दूसरे की नजर में हों तथा इस संबंध में कोई अशुभ ग्रह या दु:स्थान दुष्प्रभावित न करता हो तो जातक कल्पनाशील लेखक, उपन्यासकार, पत्रकार, महिलाओं के वस्त्र सिलने वाला दर्जी, कूटनीतिज्ञ अथवा बुद्धिजीवी आदि बनता है।

❑ यदि बृहस्पति नवांश कुण्डली में आत्माकारक ग्रह के साथ बैठा हो तो जातक दार्शनिक, धार्मिक नेता और वेदान्तविद् बनता है।

❑ यदि शुक्र नवांश कुण्डली में आत्माकारक ग्रह के साथ बैठा हो अर्थात् कारकांश में हो, तो ऐसा जातक समुचित प्रयास करने पर महान राजनेता बनता है।

सामाजिक योग

जब सभी ग्रहों की स्थिति पहले, दूसरे और तीसरे भाव (कुण्डली संख्या-5) में हो तो यह 'सामाजिक योग' कहलाता है। इस लग्न कुण्डली वाला जातक सर्वगुण सम्पन्न, गांव का मुखिया, धनी, सुखी तथा पराक्रमी होता है। वह समाज सेवी, धार्मिक स्थानों का निर्माता, प्रियवादी नेता, धैर्यवान तथा प्रभावशाली व्यक्ति बनता है। उसका यश चारों ओर फैलता है। सभी उसका आदर-सत्कार करते हैं।
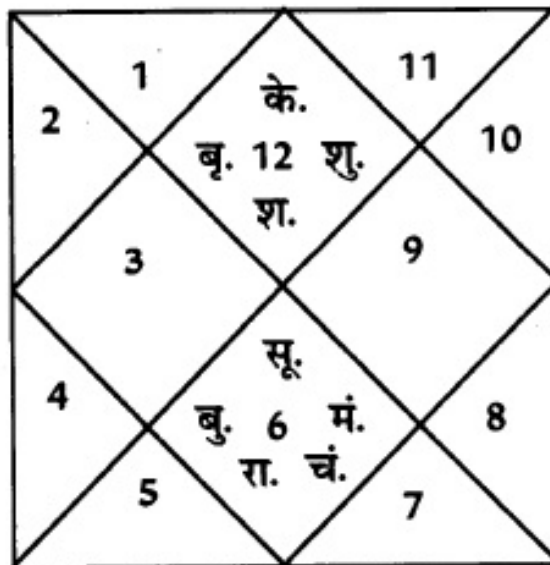
कुण्डली संख्या-5 कुण्डली संख्या-6

कर्म योग

जब जन्मकुण्डली में सभी ग्रह सातवें, दसवें तथा ग्यारहवें भाव (कुण्डली संख्या-6) में स्थित होते हैं तो यह 'कर्म योग' कहलाता है। ऐसे लग्न कुण्डली वाला जातक अत्यन्त गरीब घर में उत्पन्न होता है। लेकिन वह अपने सुकर्मों से प्रतिभाशाली व्यक्ति के रूप में प्रतिष्टित होता है। वह एक दिन कुशल प्रशासक अथवा राजा अवश्य बनता है।

चाप योग

बृहस्पति के धनु, शुक्र की तुला और मंगल के मेष लग्नों में ग्रह स्थिति का समान होना (कुण्डली संख्या-7) 'चाप योग' कहलाता है। ऐसे लग्न वाला जातक बड़ा होशियार, दबंग एवं चालाक नेता बनता है।
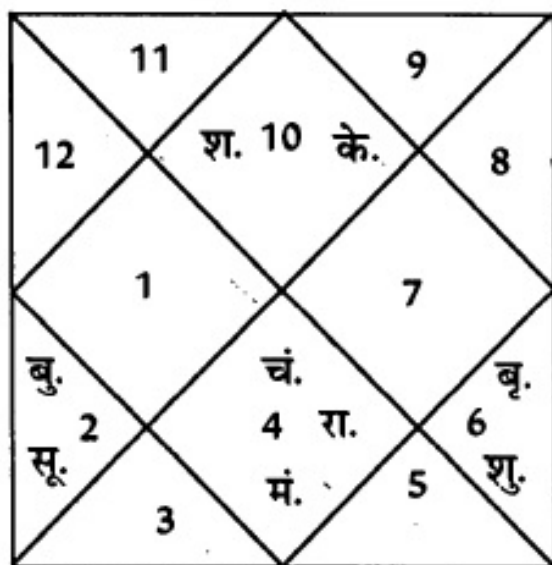
कुण्डली संख्या-7 कुण्डली संख्या-8

भाग्य योग

जब जन्मकुण्डली में सभी ग्रह पांचवें, सातवें तथा नौवें भाव (कुण्डली संख्या-8) में स्थित हों तो यह 'भाग्य योग' होता है। ऐसे लग्न कुण्डली वाला जातक अत्यन्त भाग्यशाली होता है। उसे अपने हर कार्य में सफलता मिलती है। वह अपने प्रभाव से गांव का मुखिया नियुक्त होता है।
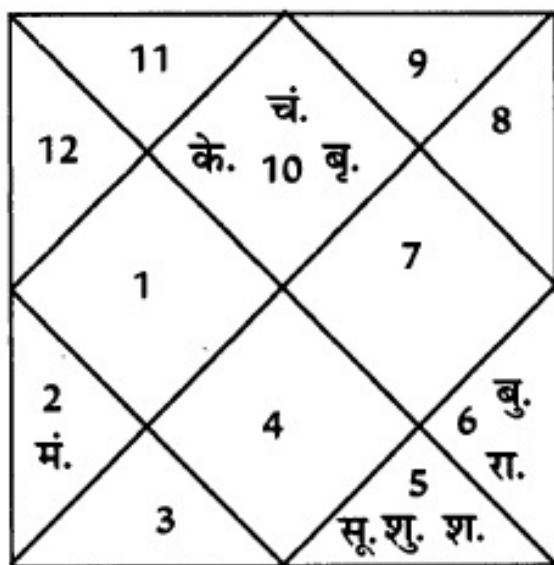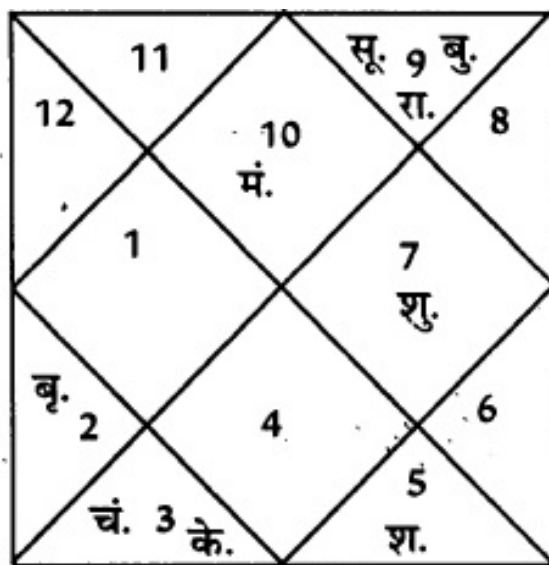
कुण्डली संख्या-9 कुण्डली संख्या-10

ध्वज योग

जब किसी जन्मकुण्डली के लग्न में सभी ग्रह मौजूद हों और आठवें भाव में शनि हो

(कुण्डली संख्या-9) तो ऐसा जातक कठिन परिश्रमी होता है। उसके पास धन-सम्पदा की कमी नहीं होती। वह सामाजिक कार्यों में अधिक रुचि लेता है। लोग उसे अपना नेता मान लेते हैं।

राज योग

जब जन्मकुण्डली के वृष लग्न में बृहस्पति हो, मिथुन में चन्द्रमा हो और मकर में मंगल, सिंह में शनि, कन्या में सूर्य-बुध तथा तुला में शुक्र (कुण्डली संख्या-10) हो तो यह 'राज योग' होता है। ऐसे ग्रह स्थिति वाला जातक दीर्घायु, सेनापति, धनी, प्रजा की भलाई करने वाला, प्रशासक या राजा बनता है।

कुण्डली संख्या-11 कुण्डली संख्या-12

❑ यदि किसी व्यक्ति की लग्न कुण्डली में तीन शुभाशुभ ग्रह अपनी राशि में, मूल त्रिकोण राशि में या अपनी उच्च की राशि में बैठे हों (कुण्डली संख्या-11) तो वे जातक को अच्छा राज योग देते हैं। वह राजा के समान प्रतिष्ठित और वैभवशाली बन जाता है।

❑ यदि कुण्डली में कोई ग्रह अपनी नीच की राशि में वक्री होकर किसी शुभ भाव—विशेषकर नौवें, दसवें व ग्यारहवें में बैठा हो तो वह राज योग कारक बन जाता है। ऐसा जातक लाखों का वारिस होता है।

❑ यदि अकेला चंद्र किसी केंद्रीय भाव—विशेषकर लग्न व दसवें—में, अपनी राशि या अपनी उच्च राशि में बैठा हो तो वह कुण्डली के तमाम दोषों को निष्प्रभावी करते हुए जातक को राजा के समान हैसियत, प्रसिद्धि एवं धन-दौलत दिलाता है।

❑ यदि लग्न कुण्डली में जो ग्रह अपनी नीच की राशि में बैठा हो, वही ग्रह नवांश कुण्डली में अपनी उच्च राशि में आ जाए तो जातक राज योग का भागी होता है।

❑ यदि बृहस्पति लग्न में हो, बुध किसी अन्य केंद्रीय भाव (4, 7, 10) में स्थित हो और इन

दोनों पर क्रमशः नौवें एवं ग्यारहवें भावों के स्वामियों की दृष्टि पड़ती हो तो जातक राज योग का भोग करता है।

विद्या-कला विशारद योग

यदि दूसरे, पांचवें, और ग्यारहवें भाव के स्वामी ग्रह नवांश कुण्डली के जिन भावों में स्थित हों, उन नवांश भावों के स्वामी ग्रह उच्च की राशियों, स्वराशियों में स्थित हों तथा उनके साथ ही नौवें भाव का स्वामी ग्रह भी बैठा हो (कुण्डली संख्या-12) तो जातक विश्व प्रसिद्ध विद्वान, कलाकार, संगीत-काव्य प्रेमी, रसिक प्रवृत्ति वाला, मोहक आंखों वाला, धर्म परायण एवं रूपवान होता है।

अध्यात्म योग

यदि किसी कुण्डली के तीसरे भाव (कुण्डली संख्या-13) में स्थित राशि का स्वामी कोई शुभ ग्रह हो, तीसरे भाव पर शुभ ग्रह की दृष्टि या संगति का प्रभाव हो और साथ ही साथ तीसरे भाव का स्वामी ग्रह शुभ ग्रहों के राशि अंशों में पड़ता हो तो ऐसा जातक आध्यात्मिक प्रवृत्ति का होता है। वह सद् आचरण करने वाला, सेवाभावी, साधु-संतों के प्रवचनों को सुनने का शौकीन, धार्मिक, उच्च श्रेणी का विद्वान तथा साहित्य के अध्ययन में रुचि रखने वाला होता है।
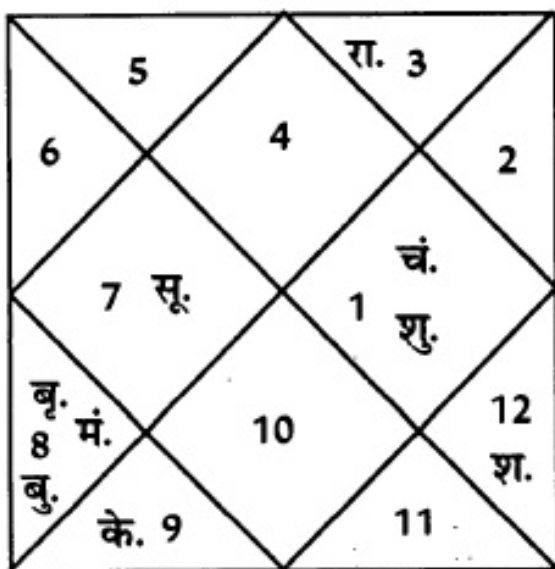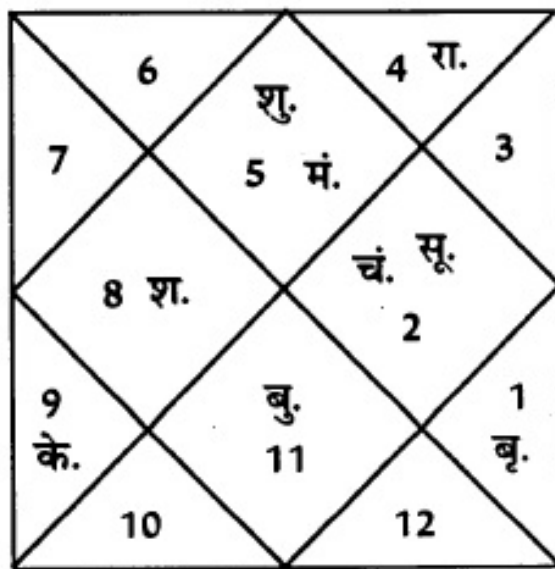
कुण्डली संख्या-13 कुण्डली संख्या-14

प्रेम विवाह योग

यदि किसी जातक की चंद्रकुण्डली में शुक्र त्रिकोण भावों (5, 9) में से किसी में बैठा हो, बृहस्पति की शुभ दृष्टि भी उस भाव पर पड़ती हो अथवा बृहस्पति स्वयं भी कुण्डली के त्रिकोण भावों में से किसी में स्थित हो तो ऐसा जातक प्रेम विवाह करता है और उस विवाह से उसका

भाग्य चमक उठता है।

❑ यदि किसी कुण्डली में बृहस्पति व शुक्र एक दूसरे से त्रिकोण भावों (5, 9) या केंद्र भावों (1, 4, 7, 10) में बैठे हों (कुण्डली संख्या-14) तो यह प्रेम विवाह का उत्तम योग होता है।

❑ यदि लग्नेश या सातवें भाव के स्वामी ग्रह के बीच संगति या दृष्टि का कोई संबंध हो और शुक्र या मंगल का भी इन दोनों में से किसी से कोई शुभ संबंध हो तो ऐसा जातक प्रेम विवाह करता है।

विरासत-समृद्धि योग

यदि कुण्डली में शुक्र, बृहस्पति और शनि मित्र राशियों, स्वराशियों या अपनी उच्च की राशियों में स्थित हों, वे दुःस्थानों में न बैठे हों, परस्पर एक-दूसरे पर शुभ दृष्टि डालते हों एवं दूसरा व ग्यारहवां तथा नौवां व दसवां भाव परस्पर सहयोगी का संबंध रखते हों (कुण्डली संख्या-15) तो जातक पिता के संस्कारों एवं शिक्षा के आधार पर उच्च पद वाला अधिकारी बनता है। वह करोड़ों में खेलता है। उसे विरासत में भी जायदाद एवं धन प्राप्त होता है।
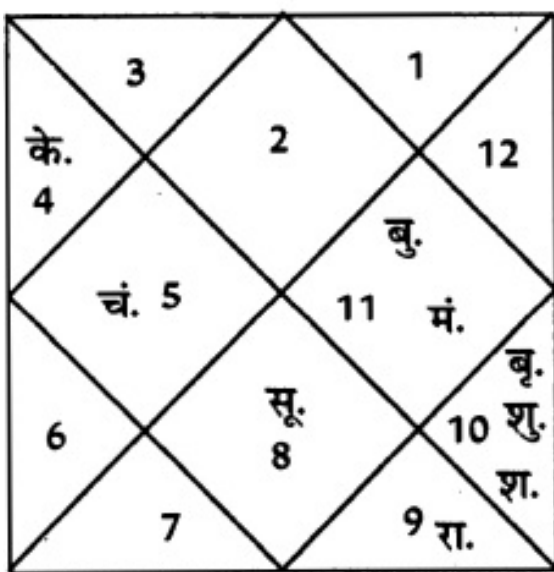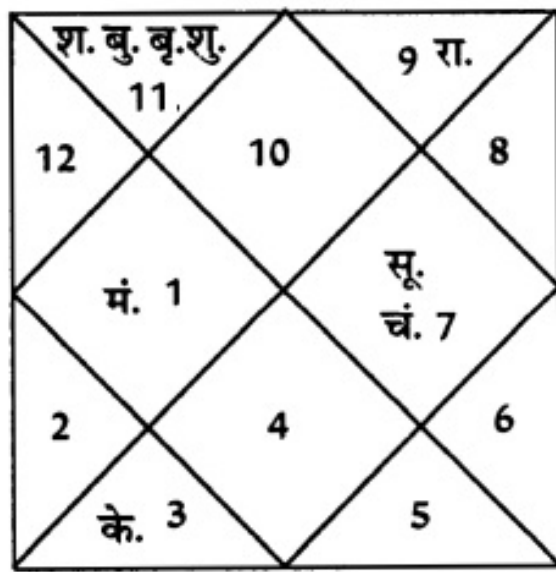
कुण्डली संख्या-15 कुण्डली संख्या-16

❑ यदि लग्न मेष या वृश्चिक हो, मंगल उसमें बैठा हो तथा चंद्र-शुक्र उसके साथ लग्न में ही स्थित हों या इनकी दृष्टि लग्न पर पड़ती हो तो ऐसा जातक करोड़ों में खेलता है। वह अपार धन-सम्पदा का मालिक होता है।

❑ यदि बुध स्वराशि में लग्न में बैठा हो और शनि व शुक्र उसके साथ स्थित हों या उनकी दृष्टि लग्न पर पड़ती हो तो ऐसे जातक के पास धन-सम्पत्ति का कोई अभाव नहीं होता।

❑ यदि तीसरे, छठे, आठवें और बारहवें भावों में चार शुभ ग्रह स्थित हों तो भी जातक अपार धन-सम्पत्ति का स्वामी एवं सौभाग्यशाली होता है।

❑ यदि लग्नेश जिस भाव में जन्मकुण्डली में स्थित हो, उस भाव का स्वामी नवांश कुण्डली में केंद्र या त्रिकोण अथवा ग्यारहवें भाव में अपनी राशि या अपनी उच्च राशि में शक्तिशाली होकर बैठा हो तो जातक अपार धन-सम्पदा का मालिक बनता है। वह स्वयं के प्रयासों से धन-दौलत अर्जित करता है।

बृहस्पति-शुक्र-चंद्र योग

यदि किसी कुण्डली में शुक्र, बुध, चंद्र एवं बृहस्पति आदि शुभ ग्रहों में से कोई एक या दो पांचवें अथवा नौवें भाव के स्वामी हों और पांचवें या नौवें भाव में ही स्थित हों (कुण्डली संख्या-16) तो वे जातक को राजा के समान हैसियत, प्रसिद्धि तथा सम्पन्नता प्रदान करते हैं।

❑ यदि शुक्र, बुध, बृहस्पति व चंद्र में से कोई एक तीसरे भाव का स्वामी होकर उसी भाव में स्थित हो तो वह जातक को साहस और वीरता में अद्वितीय सेनापति तथा शासक जैसी हैसियत प्रदान करता है। यदि ग्यारहवें भाव का स्वामी ग्रह इनमें से कोई एक हो और वह उसी में स्थित हो तो जातक अपार धन-सम्पदा का मालिक बनता है।

धनी बचपन योग

यदि दूसरे और दसवें भाव के स्वामी ग्रह केंद्र भाव में एक साथ स्थित हों तथा जन्मकुण्डली के लग्नेश का स्वामी ग्रह नवांश कुण्डली में उन पर दृष्टि रखता हो तो ऐसे जातक को अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही अपार धन-सम्पदा प्राप्त हो जाती है। इस योग में तीन दशाएं पूरी होनी आवश्यक हैं—दूसरे और दसवें भावों के स्वामी एक साथ हों, वे किसी केंद्रीय भाव में बैठे हों और उन पर उस ग्रह की दृष्टि हो जो नवांश कुण्डली में लग्नेश की स्थिति वाली भाव राशि का स्वामी हो।

न्यायाधीश योग

यदि चौथे भाव में कोई शुभ ग्रह बैठा हो या चौथे भाव का स्वामी शक्तिशाली होकर किसी शुभ स्थान में स्थित हो तो ऐसा जातक न्यायाधीश होता है।

मंगल योग

यदि किसी कुण्डली में मंगल अपनी उच्च राशि में या मूल त्रिकोण राशि अथवा अपनी राशि में सूर्य, चंद्र व बृहस्पति में से किसी एक-दो या सभी के साथ किसी भाव (कुण्डली संख्या-17) में बैठा हो अथवा इन तीनों में से किसी एक के सातवें घर में स्थित हो तो यह एक शक्तिशाली राज योग होता है। ऐसा जातक निम्न व निर्धन कुल में जन्म लेने के बावजूद अपने जीवनकाल में विश्व प्रसिद्ध व्यक्ति बन जाता है। वह अत्यन्त पराक्रमी योद्धा होता है।

❑ यदि पहले और दूसरे भाव में शुभ ग्रह—बुध, चंद्र, बृहस्पति एवं शुक्र में से कोई एक हो, तीसरे भाव में अशुभ ग्रह—सूर्य, मंगल, शनि, राहु या केतु हों तथा चौथे भाव में फिर शुभ ग्रह बैठे हों तो ऐसे योग वाला जातक राजा बनता है या राजा के समान उच्च पद एवं हैसियत वाला होता है।

कुण्डली संख्या-17

कुण्डली संख्या-18

❑ यदि पहले-दसवें, पांचवें-नौवें, तीसरे-चौथे, दूसरे-सातवें और दूसरे-ग्यारहवें—इन भावों में से किसी एक जोड़े के स्वामी ग्रह एक साथ बैठे हों या एक दूसरे से पांचवें, सातवें या नौवें स्थान पर स्थित हों तो ये एक उत्तम श्रेणी का राज-धन-सम्पदा योग बनाते हैं। ऐसा जातक सुखी-सम्पन्न जीवन बिताता है। वह कई वाहनों, भवनों और भूमि का मालिक बनता है।

राजनीतिक सफलता के योग

यदि किसी कुण्डली में बुध केंद्र स्थान (1, 4, 7, 10) या त्रिकोण स्थान (5, 9) में बैठा हो और नौवें भाव का स्वामी ग्रह उसे देखता हो (कुण्डली संख्या-18) तो ऐसा जातक एक प्रभावशाली राजनेता बनता है।

❑ यदि किसी जन्मकुण्डली में शनि अपनी कुंभ राशि में बैठा हो और साथ ही चार ग्रह अपनी उच्च राशि में स्थित हों तो ऐसा जातक सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करता है अर्थात् वह विश्व नेता बनता है।

❑ यदि सूर्य मेष या सिंह राशि में बैठा हो और बृहस्पति, शुक्र व बुध अपनी-अपनी राशियों में चंद्र से तीसरे, छठे एवं आठवें भावों में स्थित हों तो ऐसे जातक में भगवान् कृष्ण जैसा लोकप्रिय राजनेता व शासक बनने की क्षमता होती है।

❑ यदि सभी शुभ ग्रह केंद्रीय भावों (1, 4, 7, 10) में तथा अशुभ ग्रह तीसरे, छठे एवं ग्यारहवें भावों में स्थित हों तो कंगाल के घर में पैदा होने वाला जातक भी राजा बनता है।

❑ यदि लग्नेश और पांचवें भाव का स्वामी उस राशि को देखते हों, जहां बुध बैठा हो तो जातक शासक का सलाहकार व मंत्री बनता है।

❑ यदि मंगल, तीसरे भाव का स्वामी लग्नेश और बृहस्पति किसी कुण्डली में मजबूत स्थिति में हों तथा चौथे-दसवें भावों के स्वामी ग्रहों की उन पर दृष्टि पड़ती हो तो जातक सफल राजनेता

होता है।

चंद्र-केतु योग

यदि किसी कुण्डली में शुक्र के साथ चन्द्र स्थित हो तो वह जातक को महत्वाकांक्षी और राजसी आदतों वाला बनाता है। यदि वह बुध के साथ हो तो मेधावी एवं प्रसिद्ध विद्वान, शनि के साथ हो तो वैरागी तथा राहु के साथ हो तो हर कानून तोड़ने का शौकीन, आवारा व आक्रामक बनाता है।

हंस योग

यदि शुभ बृहस्पति किसी लग्न में अपनी मीन राशि, मूल त्रिकोण राशि धनु या अपनी उच्च राशि कर्क में स्थित होकर कुण्डली के किसी केंद्रीय भाव में हो (कुण्डली संख्या-19) तो यह 'हंस योग' कहलाता है।

आचार्य वराह मिहिर के अनुसार—अपनी लग्न कुण्डली में हंस योग रखने वाला व्यक्ति गुणवान, धनवान, समृद्ध, सुखी और राजपुरुषों या शासन द्वारा सम्मानित होता है। वह मोहक दृष्टि वाला, मृदुभाषी, सज्जन, उदार, प्रख्यात तथा देवताओं, ईश्वर, शिक्षकों और ब्राह्मणों की सेवा करने वाला होता है। वह जीवन में कफ रोगों से परेशान रहता है। वह दीर्घजीवी होता है और सौ वर्ष तक जीता है।

ज्योतिष मनीषियों ने हंस योग वाले व्यक्ति की पहचान के लिए कुछ शारीरिक चिह्न भी बताए हैं। उनके अनुसार जिस व्यक्ति की कुण्डली में यह योग हो, उसके पैरों के तलुओं में शंख, कमल, मछली और अंकुश के चिह्न होते हैं। ऐसा व्यक्ति छरहरा, लम्बा, शक्तिशाली, सुंदर और आध्यात्मिक अभिरुचि वाला होता है।

ससा योग

यदि शनि लग्न से केंद्र स्थान में अपनी मकर-कुंभ राशि, अपनी मूल त्रिकोण कुंभ राशि अथवा अपनी उच्च राशि तुला में बैठा हो (कुण्डली संख्या-20) तो यह 'ससा योग' कहलाता है। यह पंच-महापुरुष समूह का अंतिम योग है।
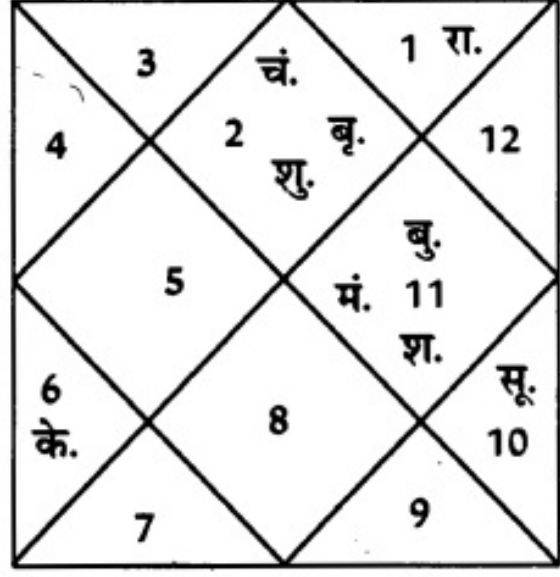
कुण्डली संख्या-19 कुण्डली संख्या-20

आचार्य वराह मिहिर के अनुसार—ससा योग वाला व्यक्ति राजा (शासक या राज्याध्यक्ष) का प्रिय होता है और स्वयं भी किसी देश का शासक बनता है। वह अपनी सामाजिक एवं वित्तीय हैसियत से ग्राम या नगर का प्रधान भी हो सकता है। वह किसान कुल से आता है और स्वयं भी अच्छा किसान होता है। वह माता का भक्त होता है। दूसरों के दिल में चल रही साजिशों को तुरंत भांप जाता है। उसका रंग सांवला और बदन छरहरा होता है। वह वात रोगों से पीड़ित होता है। ऐसे जातक के वैयक्तिक जीवन को संदिग्ध माना जाता है। वह दीर्घायु होता है और सौ वर्ष तक जीता है।

बुधादित्य योग

यदि सूर्य और बुध कुण्डली के किसी भाव या किसी राशि में मिलकर एक साथ बैठे हों (कुण्डली संख्या-21) तो उसे 'बुधादित्य योग' माना जाता है। यह सामान्य रूप से मिल जाने वाला एक चमत्कारी योग है। सूर्य और बुध कभी भी एक-दूसरे से 28 डिग्री आगे-पीछे से अधिक दूरी पर नहीं रहते। सूर्य की समीपता में ग्रह दग्ध हो जाते हैं, लेकिन बुध को इस विषय में अपवाद माना जाता है।

ज्योतिष मनीषी उसी बुधादित्य योग को प्रभावी मानते हैं जिसमें सूर्य एवं बुध की राशि में स्थिति के बीच कम से कम 6 डिग्री और अधिक से अधिक 10 डिग्री का अन्तर हो। इस योग वाला व्यक्ति अतीव बुद्धिमान, कार्य कुशल, विख्यात तथा प्रतिष्ठित माना जाता है। वह जीवन में सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं का उपभोग करता है। सदा खुशहाल बना रहता है।

गज-केसरी योग

यदि किसी कुण्डली में शुभ ग्रह बृहस्पति चंद्रमा से केंद्र स्थान में बैठा हो (कुण्डली

संख्या-22) तो इसे 'गज-केसरी' योग कहते हैं। यह एक अत्यन्त चर्चित योग है। प्राचीन ज्योतिर्विदों ने इस योग के फल निम्न प्रकार बताए हैं—

कुण्डली संख्या-21

कुण्डली संख्या-22

गज-केसरी योग का जातक विनम्र, उदार, मृदु व्यवहार रखने वाला, ग्राम और नगरों को बसाने वाला या उन पर शासन व न्याय चलाने वाला होता है। उसके निधन के बाद भी उसकी प्रतिष्ठा दीर्घकाल तक बनी रहती है।

अनफा योग

यदि किसी कुण्डली में चंद्रमा से बारहवें भाव में कोई ग्रह (सूर्य को छोड़कर) बैठा हो तो यह 'अनफा योग' कहलाता है। इस योग का जातक स्वस्थ, सुगठित देह वाला, विनम्र, व्यवहार कुशल और सुप्रतिष्ठित होता है। जीवन के प्रथम अर्द्धभाग में वह फैशनेबल वस्त्रों का दीवाना होता है, लेकिन बाद में 'सादा जीवन उच्च विचार' को अपना आदर्श बना लेता है।

वसि योग

यदि चंद्रमा को छोड़कर कोई शुभ या अशुभ ग्रह सूर्य की स्थिति वाले भाव से बारहवें भाव में बैठा हो तो इस स्थिति को 'वसि योग' कहा जाता है। ऐसा जातक सुखी, सम्पन्न, उदार और राजनेताओं में प्रिय होता है।

चंद्र-मंगल योग

यदि किसी कुण्डली में चंद्र और मंगल एक ही भाव में युत हों अथवा एक दूसरे से केंद्र या त्रिकोण भावों में स्थित हों (कुण्डली संख्या-23) तो यह 'चंद्र-मंगल योग' कहलाता है। यह उच्च श्रेणी का राज योग है जो जातक का आर्थिक आधार सुदृढ़ करता है।

कुण्डली संख्या-23 कुण्डली संख्या-24

यदि चंद्र-मंगल योग लग्न या नौवें भाव में होता है तो जातक पिता का द्रोही होता है। वह पिता के साथ-साथ पिता पक्ष के रिश्तेदारों से दुर्व्यवहार करता है। यदि यह योग चतुर्थ या पंचम भाव में हो तो जातक माता का द्रोही होता है और माता पक्ष के संबंधियों के साथ अशिष्टता से पेश आता है।

❑ यदि चंद्र-मंगल योग पर शुभकारी प्रभाव प्रबल न हो तो जातक जीविकोपार्जन, राजनीतिक या अन्य उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नीच से नीच कर्म करने लगता है। ऐसा व्यक्ति जिस्मफरोशी करने वाली स्त्रियों का दलाल भी हो सकता है। वह चरित्रहीन, आवारा तथा बदमाश भी होता है। राजनीति और जोड़-तोड़ में पारंगत होने के कारण काफी तरक्की कर लेता है।

सिंहासन योग

यदि लग्न से चौथे भाव का स्वामी ग्रह दसवें भाव में तथा दसवें भाव का स्वामी ग्रह चौथे भाव में बैठा हो (कुण्डली संख्या-24) तो यह 'सिंहासन योग' कहलाता है। यह एक अति दुर्लभ और अत्यन्त प्रभावशाली योग है, जो वास्तव में राजगद्दी दिलाने में समर्थ होता है।

निर्धन कुल के बालक के रूप में जन्म लेकर फ्रांस के सम्राट बनने वाले नेपोलियन बोनापार्ट की कुण्डली के चौथे भाव के मकर राशि (स्वामी शनि) में चंद्र बैठा है, जबकि दसवें भाव के कर्क राशि (स्वामी चंद्र) में शनि स्थित है। यहां सिंहासन योग अपने शुद्ध रूप में है। इस योग के समकक्ष मानी जाने वाली दो अन्य अवस्थाएं यहां दी जा रही हैं—

❑ यदि चौथे भाव का स्वामी ग्यारहवें भाव में और ग्यारहवें भाव का स्वामी चौथे भाव में बैठा हो तो व्यक्ति कला शिरोमणि बन जाता है।

❑ यदि चौथे भाव का स्वामी ग्रह ग्यारहवें भाव में स्वराशि या उच्च राशि में हो तो जातक

साहित्य, संस्कृति या समाज सेवा के क्षेत्र में प्रसिद्ध होता है।

अंशावतार योग

लग्न चर राशि हो, शनि केंद्र में उच्च राशि में बैठा हो तथा बृहस्पति-शुक्र भी केंद्र में स्थित हों (कुण्डली संख्या-25) तो यह 'अंशावतार योग' कहलाता है। यह एक दुर्लभ एवं चमत्कारी योग है। ऐसे जातक की ख्याति अक्षय और अमर होती है। वह कई विषयों का विद्वान होता है। काम-भाव का शौकीन होता है, लेकिन वह अपनी भावनाओं पर भली-भांति नियंत्रण रखता है। वह दर्शनशास्त्र का विशद् ज्ञाता और अपने क्षेत्र के राजा के समतुल्य होता है।
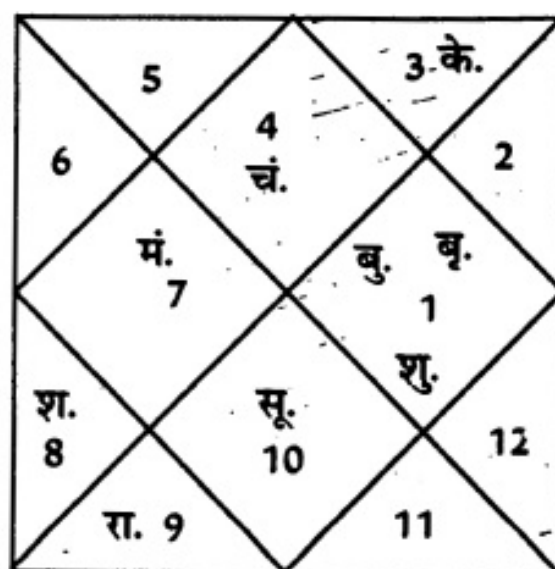
कुण्डली संख्या-25 *कुण्डली संख्या-26*

इस योग में तीन दशाएं दी गई हैं—लग्न चर राशि में हो, शनि अपनी उच्च की राशि (तुला) में केंद्र में बैठा हो और बृहस्पति व शुक्र भी केंद्र में हों। इन स्थितियों से स्पष्ट है कि कुण्डली में महापुरुष योगों में से एक 'ससा योग' अनिवार्य रूप से उपस्थित होगा तथा हंस एवं मालव्य योग के भी होने की प्रबल संभावना होगी। इसके साथ ही कुण्डली में पर्वत योग की संभावना भी काफी रहेगी।

हरि योग

यदि नौवें भाव के स्वामी ग्रह का नवांश स्वामी और दसवें भाव का स्वामी कुण्डली के दूसरे भाव में नौवें भाव के स्वामी के साथ स्थित हों (कुण्डली संख्या-26) तो भगवान् विष्णु के नाम से युक्त 'हरि योग' बनता है। इस योग में दो बिंदु हैं—पहला, नौवें (भाग्य) और दसवें (रोजगार) भावों के स्वामी एक साथ मिलकर दूसरे (धन) भाव में बैठे हों। दूसरा, नवांश कुण्डली में जन्मकुण्डली के नौवें भाव के स्वामी ग्रह की स्थिति जिस भाव राशि में हो, उसका स्वामी ग्रह भी जन्मकुण्डली के दूसरे भाव में नवमेश व दशमेश के साथ मिलकर बैठा हो।

यदि हरि योग पर दुष्प्रभाव होंगे तो यह कम शक्ति का होगा। यदि सुप्रभाव हुए तो अधिक शक्ति का होकर कार्य करेगा। यह भी एक दुर्लभ योग होता है। ऐसा जातक विष्णु का परम भक्त, सौ वर्ष पर्यन्त रोग मुक्त, स्वस्थ जीवन बिताने वाला, शासकों द्वारा सम्मानित, चतुर वक्ता और शास्त्रार्थ का महारथी होता है। वह कई देशों से धन प्राप्त करता है तथा करोड़ों की धन-सम्पदा का मालिक बन जाता है। ऐसा व्यक्ति जीवन का भरपूर आनंद उठाता है।

हर योग

यदि पांचवें भाव का स्वामी नौवें भाव में हो, नौवें भाव का स्वामी दसवें भाव में हो और दसवें भाव का स्वामी पांचवें भाव में बैठा हो (कुण्डली संख्या-27) तो यह भगवान् शिव के नाम से युक्त 'हर योग' कहलाता है।
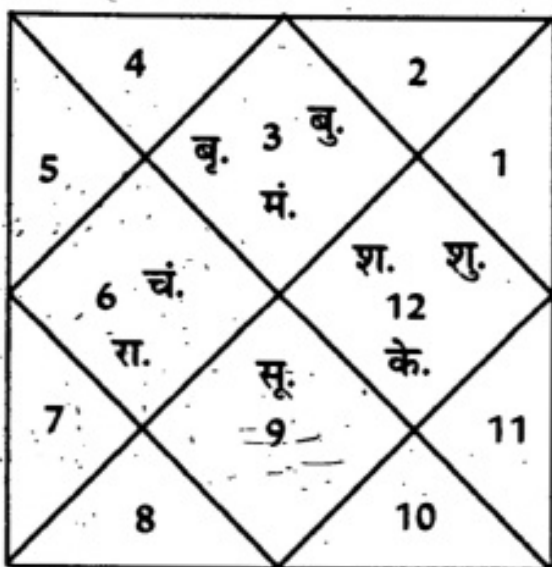
कुण्डली संख्या-27 कुण्डली संख्या-28

ऐसे दुर्लभ योग का जातक सेनापति, सदैव विजयी रहने वाला तथा दैवी शक्तियों से युक्त होता है। वह वरदानी जीवन जीता है। बहुत छोटे से शुरू करके विशाल व्यापार या औद्योगिक साम्राज्य खड़ा कर लेता है। वह परम शिव भक्त भी होता है। दशकों बाद ऐसा बालक जन्म लेता है, जिसकी जन्मकुण्डली में यह योग होता है। ज्योतिष मनीषियों का मत है कि ऐसे व्यक्ति पर विष असर नहीं करता, लेकिन उसकी मृत्यु अक्सर अस्वाभाविक ही होती है।

चंडिका योग

यदि छठे भाव के स्वामी की नवांश राशि का स्वामी तथा नौवें भाव के स्वामी की नवांश राशि का स्वामी जन्मकुण्डली में सूर्य के साथ किसी भाव-राशि में बैठे हों, लग्न एक स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक या कुंभ) राशि हो और छठे भाव का स्वामी लग्न पर दृष्टि डालता हो (कुण्डली संख्या-28) तो यह 'चंडिका योग' होता है।

यह भी एक दुर्लभ तथा अति प्रभावशाली योग है। ऐसा जातक आक्रामक, धर्मनिष्ठ, धनी, समृद्ध, दीर्घजीवी, प्रख्यात और सुखी जीवन गुजारने वाला होता है। यह राजनीतिक शक्ति से ओत-प्रोत योग है। इसके अंतर्गत पैदा होने वाला व्यक्ति मंत्री या उसके समतुल्य पद प्राप्त करता है।

सरस्वती योग

यदि किसी कुण्डली में बृहस्पति, शुक्र और बुध क्रमशः दूसरे, चौथे, पांचवें भावों में अथवा सातवें, नौवें, दसवें भावों में एक-एक करके या इनमें से किसी भाव में एक साथ स्थित हों तथा बृहस्पति स्वराशि, मित्र राशि या अपनी उच्च की राशि में बैठा हो तो यह 'सरस्वती योग' कहलाता है। शुद्ध रूप में यह योग मिलना दुष्कर है, अतः बृहस्पति और बुध या बृहस्पति एवं शुक्र की उक्त भावों में उपस्थिति से भी यह योग बनता है। यदि यह योग नौवें, दसवें और ग्यारहवें भावों में लगातार स्थित हो तो भी समान प्रभाव दर्शाता है।

दूसरे शब्दों में बृहस्पति, बुध और शुक्र नौवें, दसवें एवं ग्यारहवें भावों में स्थित हों, बृहस्पति अपनी राशि, उच्च की राशि या मित्र की राशि में हो, शुक्र अपनी राशि, मित्र राशि या उच्च राशि में स्थित हो तथा बुध योग कारक स्थिति में इनमें से किसी भाव में बैठा हो तो भी सरस्वती योग अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से लागू होता है। ऐसा जातक कई विषयों का अध्ययनकर्ता, उच्च शिक्षित, अतीव ज्ञानी, चतुर एवं कई कलाओं में निपुण होता है। वह काव्य, लेखन आदि के माध्यम से काफी प्रसिद्धि प्राप्त करता है।

❑ यदि चतुर्थ भाव का कारक ग्रह बुध और पंचम भाव का स्वामी ग्रह अथवा कारक ग्रह, धन भाव के स्वामी ग्रह के साथ नौवें, दसवें या ग्यारहवें भावों में से किसी एक में युत हों (विशेषकर दसवें भाव) तो जातक कई भाषाओं-विषयों का ज्ञाता, उच्चकोटि का विद्वान तथा ज्योतिर्विद होता है। यदि इस योग में नवम भाव भी शामिल हो तो व्यक्ति भूत, भविष्य, वर्तमान —तीनों का ज्ञाता एवं त्रिकालदर्शी बनता है।

गिरगिट योग

अगर किसी कुण्डली में चौथे भाव का स्वामी शनि, मंदी और राहु के साथ स्थित हो तथा उस पर अशुभ ग्रहों की ही दृष्टि हो तो जातक पल-पल रंग बदलने वाला, मित्र द्रोही एवं स्वामी द्रोही होता है। वह बहुत मीठा बोलता है, लेकिन उसके दिल में जहर भरा होता है।

यह योग अधिकांशतः वर्तमान समय में नेताओं एवं कूटनीतिज्ञों की कुण्डलियों में अधिक दिखाई पड़ते हैं। ऐसे व्यक्ति की आंखें तोते की तरह गोल होती हैं। वह दूसरों से मिलते या बात करते समय नजरें इधर-इधर घुमाता रहता है।

वृद्धावस्था समृद्धि योग

यदि लग्नेश और दूसरे भाव का स्वामी (धनेश) किसी शुभ ग्रह के साथ जिस भाव-राशि में स्थित हों, उस राशि का स्वामी ग्रह लग्न में मजबूत होकर बैठा हो तो जातक को अपनी आयु के अंतिम दिनों में विभिन्न उपायों से धन की प्राप्ति होती है। इस योग का व्यक्ति अपनी आयु के

अंतिम भाग में कठिनाई से जीवन निर्वाह कर रहा होता है कि उसे अचानक और अनापेक्षित रूप से भारी मात्रा में धन मिलता है। वह अकस्मात् अमीर बन जाता है।

❑ यदि लग्नेश और दूसरे भाव का स्वामी (धनेश) परस्पर भाव बदलकर कुण्डली में बैठे हों—अर्थात् लग्नेश धन भाव में और धनेश लग्न में बैठा हो तो जातक को बिना अधिक प्रयास किए धन-सम्पदा मिल जाती है। यह उसके पिछले जन्मों के सद्कर्मों का फल होता है।

आजीवन समृद्धि योग

यदि दूसरे भाव में कई ग्रह स्थित हों, सम्पदा व समृद्धि भावों के कारक ग्रह मजबूत होकर अथवा अपनी उच्च राशियों में बैठे हों तो ऐसे योग वाले जातक को अपार धन-सम्पत्ति और अक्षय समृद्धि आजीवन प्राप्त होती है।

दिवालिया योग

यदि ग्यारहवें भाव का स्वामी ग्रह (लाभेश) तीसरे, छठे, आठवें और बारहवें भावों में से किसी में स्थित हो तो जातक के दिवालिया होने की पूरी संभावना होती है।

❑ यदि बारहवें भाव का स्वामी ग्रह आठवें भाव में हो तो जातक दिवालिया, कंगाल एवं तंगहाल हो सकता है।

❑ यदि लाभेश आठवें भाव में बैठा हो और कोई शुभ प्रभाव उस पर न हो तो जातक के दिवालिया बनने की प्रबल संभावना होती है।

निर्धनता योग

यदि किसी कुण्डली के चौथे या नौवें भाव में से किसी एक या दोनों का स्वामी ग्रह आठवें भाव के स्वामी ग्रह के साथ किसी भाव में बैठा हो और दूसरे भाव का स्वामी (धनेश) अपनी नीच राशि में स्थित हो तो जातक के निर्धन होने की काफी संभावना होती है।

❑ यदि लग्नेश अपनी नीच राशि में बैठा हो तथा लग्न व दूसरे भाव में अशुभ ग्रह बैठे हों तो जातक काफी निर्धन होता है।

❑ यदि लग्नेश छठे भाव में हो और दूसरे, छठे या आठवें भावों के स्वामी अशुभ ग्रह हों तो ऐसे योग वाला व्यक्ति निर्धन होता है।

❑ यदि दूसरे भाव में अशुभ ग्रह बैठे हों और किसी भी शुभ ग्रह की दृष्टि उस पर न पड़ती हो तो भी जातक को गरीबी का सामना करना पड़ता है।

❑ यदि नौवें और दसवें भावों के स्वामी बारहवें भाव में बैठे हों या बारहवें भाव के स्वामी की दृष्टि उन पर पड़ती हो अथवा वे आठवें भाव के स्वामी के साथ हों तो जातक बहुत गरीब होता है।

विदेश यात्रा योग

यदि किसी कुण्डली में नीच की राशि में स्थित या दग्ध बुध की दशा, उच्च के बृहस्पति की

दशा, लग्न में या लग्न से बारहवें भाव में बृहस्पति बैठा हो तो उसकी दशा, शुक्र किसी अशुभ ग्रह के साथ हो या सातवें भाव में हो तो शुक्र की दशा, शनि लग्न से बारहवें भाव में हो अथवा नवांश कुण्डली में अपनी उच्च राशि में बैठा हो तो शनि की दशा तथा राहु तीसरे, सातवें, नौवें या ग्यारहवें भावों में से किसी में बैठा हो तो राहु की दशा जातक को विदेश यात्राओं अथवा विदेश प्रवास के प्रबल अवसर सुलभ कराती है।

❑ यदि सूर्य उच्च की राशि में हो तो सूर्य दशाकाल, चंद्र उच्च का हो तो चंद्र दशाकाल, मंगल उच्च का हो तो मंगल दशाकाल और मंगल सूर्य के साथ बैठा हो तो मंगल दशाकाल में जातक की विदेश यात्राओं की संभावना अधिक होती है।

❑ शनि की अन्तरदशा में राहु का प्रत्यन्तर, केतु की अन्तरदशा में केतु का ही प्रत्यन्तर, शुक्र की अन्तरदशा में केतु का प्रत्यन्तर आदि ऐसी कलावधियों से जातक को विदेश जाने का अवसर मिल सकता है।

❑ गोचर में बृहस्पति या शनि की बारहवें भाव या बारहवें भाव के स्वामी पर दृष्टि पड़ती हो तो उस काल में जातक विदेश यात्रा करता है।

रुचक योग

यदि मंगल लग्न से केंद्रीय भावों में से किसी एक में अपनी राशि, अपनी मूल त्रिकोण राशि अथवा उच्च राशि में बैठा हो (कुण्डली संख्या-29) तो उस कुण्डली में 'रुचक योग' विद्यमान होता है। वराह मिहिर के अनुसार—रुचक योग वाला व्यक्ति उत्साही, बहादुर, साहसी, सम्पन्न व समृद्ध, राजा का प्रिय, विजेता, शक्तिशाली, गठीले बदन वाला और रौद्र मुद्रा में रहने वाला होता है। उसकी आंखें रक्तिम वर्ण की, कमर पतली तथा सीना शेर की भांति विशाल होता है।

कुण्डली संख्या-29

कुण्डली संख्या-30

इस योग का बल दसवें स्थान पर मंगल के स्वराशि या उच्च राशि में बैठे होने पर सर्वाधिक होता है। यदि मंगल के साथ सूर्य भी बली होकर उसके साथ स्थित हो तो जातक को जीवन में कई संघर्षों और उतार-चढ़ावों का भी सामना करना पड़ता है। इसके साथ ही कुण्डली की मजबूती या कमजोरी और लग्न व लग्नेश के बल का भी इस योग के फल पर शुभाशुभ प्रभाव पड़ता है।

भद्रा योग

यदि किसी कुण्डली में बुध लग्न भाव से केंद्र स्थानों (1, 4, 7, 10) में स्वराशि, मूल त्रिकोण राशि अथवा उच्च राशि में बैठा हो (कुण्डली संख्या-30) तो यह 'भद्रा योग' कहलाता है। महापुरुष योगों में इसका स्थान क्रम में दूसरा है।

दसवें भाव में बुध मिथुन राशि में स्थित होकर भद्रा योग बनाता है। सूर्य और मंगल दोनों इस भाव में दिग्बली होते हैं। सूर्य द्वारा बुध के साथ स्थित होने से यद्यपि यहां बुधादित्य योग भी बनता है, तथापि जातक का जीवन अनेकानेक उतार-चढ़ाव से भरपूर होता है। वह शनि की साढ़ेसाती द्वारा पदच्युत होकर मुसीबतों और मुकदमों में फंसा रहता है।

मालव्य योग

यदि लग्न से केंद्र स्थान (1, 4, 7, 10) में शुक्र अपनी राशि (वृष, तुला), मूल त्रिकोण राशि (तुला) अथवा अपनी उच्च राशि (मीन) में स्थित हो तो यह 'मालव्य योग' कहलाता है।

ज्योतिर्विद् मंत्रेश्वर के अनुसार—यदि चंद्र लग्न में केंद्र स्थान में पांच ग्रहों में से कोई अपनी राशि, मूल त्रिकोण राशि या उच्च की राशि में बैठा हो तो भी महापुरुष योग हो सकते हैं। यह कथन पूर्णतः सत्य भले ही न हो, लेकिन मालव्य योग के लिए उसे व्यावहारिक रूप में लागू होते देखा गया है। इस योग के दो उदाहरण दिए जा रहे हैं—एक, लग्न से तथा दूसरा, चंद्र लग्न से मालव्य योग दर्शाता है।

कुण्डली संख्या-31 कुण्डली संख्या-32

पहली कुण्डली भारत के एक दिवंगत राजनेता की है जो विधुर थे। उनके प्रति महिलाओं में बहुत अधिक आकर्षण था। दूसरी कुण्डली वकालत पढ़ रहे एक छात्र की है जो गाढ़े काले रंग का होने के बावजूद महिलाओं में अत्यधिक प्रिय है। निर्धन कुल में जन्म लेने वाला यह जातक मित्रों के मोटर वाहनों का भरपूर उपयोग करता है। खान-पान और वस्त्रों से भी रईसी टपकती है। वह अभी कमाता नहीं है और न ही किसी अपराध में लिप्त है। उसकी महिला मित्र उसके ऊपर पैसा खर्च करती हैं और वह मजे में रहता है।

पहली कुण्डली में लग्न व चंद्र लग्न एक ही है और शुक्र अपनी राशि व मूल त्रिकोण राशि में चौथे भाव में स्थित है। शुभ ग्रह बुध शुक्र के साथ होने से और उस पर चंद्र की दृष्टि पड़ने से मालव्य योग अधिक प्रभावशाली हो गया है (कुण्डली संख्या-31)। दूसरी कुण्डली में केवल चंद्र लग्न से ही मालव्य और रुचक योग बनते हैं। शनि अपनी नीच राशि में वक्री होकर स्थित है जो उच्च की राशि में होने जैसा प्रभाव देता है। चंद्र की स्थिति से भी वह केंद्र में स्थित है, अतः ससा योग के प्रभाव भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं (कुण्डली संख्या-32)।

महाभाग्य योग

यदि किसी पुरुष जातक का जन्म दिन के समय हुआ हो; उसका लग्न, सूर्य व चंद्र विषम अंकों (1, 3, 5, 7, 9, 11) वाली राशियों में हों जबकि किसी स्त्री जातक की कुण्डली में लग्न, सूर्य व चंद्र सम राशियों (2, 4, 6, 8, 10, 12) में हों और उसका जन्म रात्रि के समय हुआ हो तो उस पुरुष एवं स्त्री की कुण्डली में 'महाभाग्य योग' होता है। यह योग पूर्वजन्मों के सुकर्मों का प्रतिफल माना जाता है, जो लिंग भेद कारक है।

ऐसा जातक आकस्मिक और अप्रत्याशित रूप से उन्नति करके प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण व्यक्ति बन जाता है। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चंद्रशेखर का जन्म 17 अप्रैल, 1927 को दिन के समय प्रातः 9.15 बजे हुआ था। बलिया में जन्मे जातक को इस योग ने अप्रत्याशित रूप से देश

के सर्वोच्च अधिशासी पद तक पहुंचाया।

जन्म दिन के समय का है और लग्न (मिथुन), सूर्य (मेष) व चंद्र (तुला)—तीनों विषम राशियों में स्थित हैं (कुण्डली संख्या-33)। यह योग पूर्वजन्म के पुण्यों के प्रतिफल स्वरूप ही किसी को मिलता है। इसके अतिरिक्त कई राज योग और भाग्य मालिका योग भी जातक को भारतीय राजनीति का एक विशिष्ट केंद्र बिंदु एवं कुशल वक्ता बनाए रहे हैं। चंद्र-मंगल योग, सूर्य-चंद्र योग, सूर्य उच्च की राशि में, स्वगृही शुक्र आदि योग उन्हें विशिष्ट राजनेता बनाए हुए हैं। यह योग पंच महापुरुष योगों से भी अधिक प्रभावशाली माना जाता है।
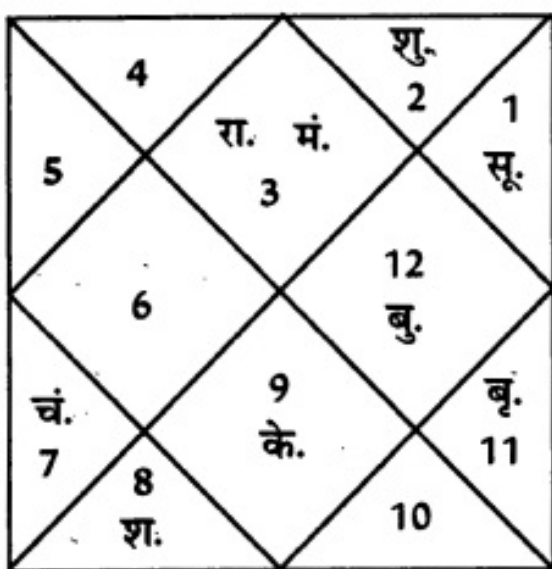
कुण्डली संख्या-33 कुण्डली संख्या-34

धरधरा योग

यदि किसी कुण्डली में चंद्र लग्न के बारहवें भाव में हो और दूसरे भाव में सूर्य को छोड़कर कोई ग्रह स्थित हो तो यह 'धरधरा योग' बनता है। इस योग को चल-अचल सम्पदा योग भी कहा जा सकता है। इसमें अनफा और सुनफा दोनों ही योग शामिल होते हैं। ऐसा जातक भूस्वामी, वाहनों का स्वामी, धनी और प्रतिष्ठित होता है। उसे जीवन में अन्न, वस्त्र तथा सभी जीवनोपयोगी वस्तुओं, विलासिता एवं प्रसाधन सामग्रियों की कमी का सामना नहीं करना पड़ता।

यदि कुण्डली में सुनफा या अनफा में से कोई योग उपस्थित न हो अर्थात् चंद्रमा की स्थिति से आगे-पीछे (बारहवें या दूसरे) के भावों में कोई ग्रह (सूर्य को छोड़कर) उपस्थित न हो तो जातक निर्धन होता है। उस स्थिति में बनने वाला योग 'कामद्रुम योग' कहलाता है।

कुण्डली के नौवें भाव में चंद्र बैठा है। उससे बारहवें भाव अर्थात् लग्न से आठवें भाव में राहु स्थित है जबकि उससे दूसरे भाव में बुध बैठा है (कुण्डली संख्या-34)। इसमें सुनफा, अनफा और धरधरा—तीनों योग पूर्ण रूप में उपस्थित हैं। जातक कम पढ़ी-लिखी महिला है, लेकिन विवाह के बाद उसका भाग्य खुल गया। अब वह कई भवनों-वाहनों की मालिक और पूर्ण रूप से

सुखी है। इस कुण्डली में गज-केसरी योग, चंद्र-मंगल योग और शुक्र-शनि योग भी विराजमान हैं।

लक्ष्मी योग

यदि किसी कुण्डली में लग्न-लग्नेश मजबूत होकर बैठे हों, नवम भाव और उसके स्वामी से लग्नेश का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संबंध जुड़ता हो तथा नौवें भाव का स्वामी ग्रह स्वराशि, मूल त्रिकोण राशि या उच्च राशि का होकर लग्न या लग्नेश से केंद्र (1, 4, 7, 10) या त्रिकोण (5, 9) भावों में से किसी में स्थित हो तो यह 'लक्ष्मी योग' कहलाता है।

❑ यदि नौवें भाव का स्वामी और शुक्र—दोनों अपनी-अपनी राशि, मूल त्रिकोण राशि या उच्च राशि में स्थित होकर एक-दूसरे से केंद्र भावों में से किसी में बैठे हों तो भी लक्ष्मी योग होता है।

लक्ष्मी योग का शुद्ध रूप में मिल पाना असंभव तो नहीं है, लेकिन मुश्किल अवश्य होता है। ऐसा जातक धनी, भद्र, सज्जन, आकर्षक, विश्वासपात्र, विद्वान और उच्च प्रतिष्ठा वाला होता है। जीवन की सुख-सुविधाओं का भरपूर उपयोग करता है। वह अच्छा व सफल प्रशासक भी सिद्ध होता है।

सुनफा योग

यदि किसी कुण्डली में चंद्र से दूसरे भाव में कोई भी शुभाशुभ ग्रह (सूर्य को छोड़कर) बैठा हो तो यह 'सुनफा योग' कहलाता है। ऐसा जातक अपने काम और मेहनत के बल पर धन-सम्पदा अर्जित करता है। वह अपनी हैसियत के अनुसार ग्राम, नगर अथवा समाज का प्रमुख बनने या उसके समकक्ष होने की क्षमता रखता है। वह सुप्रतिष्ठित माना जाता है।

पंचानन योग

यदि किसी कुण्डली में सभी नौ ग्रह पांच भावों में स्थित होकर बैठे हों (कुण्डली संख्या-35) तो यह 'पंचानन योग' होता है। प्राचीन ज्योतिष मनीषियों ने इस योग का उल्लेख 'पाश योग' के रूप में किया है। वे इसमें छाया ग्रहों राहु-केतु को सम्मिलित न करके केवल सात ग्रहों के पांच भावों में स्थित होने को योग कारक मानते हैं। ऐसा जातक सम्पन्न-समृद्ध, नौकर-चाकर, वाहनों और भवनों का स्वामी होता है।
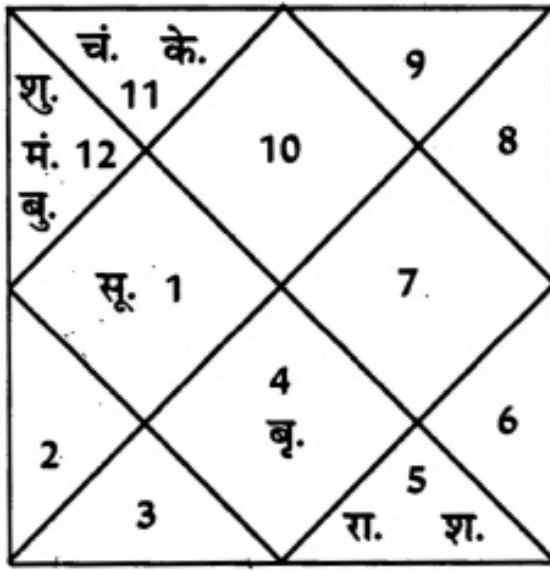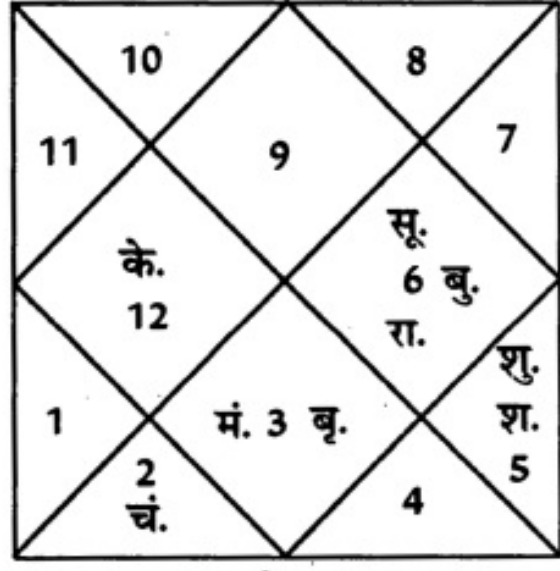
कुण्डली संख्या-35 *कुण्डली संख्या-36*

कुछ प्राचीन मनीषियों ने जातक को कुमार्ग पर चलकर धनवान बनने वाला बताया है, लेकिन कुछ अन्य ने उसे सन्मार्ग पर चलकर धनार्जन करने वाला और राजपुरुषों की संगति में बैठने वाला कहा है।

सभी नौ ग्रह दूसरे, तीसरे, चौथे, सातवें और आठवें (पांच) भावों में स्थित हैं। धन भाव से जातक की कुण्डली में धन माला योग भी देखा जा सकता है। इसमें हंस योग (महापुरुष) सप्तम भाव में, बुध-शुक्र योग, चंद्र-केतु योग और शनि-राहु योग भी स्थित हैं।

पारिजात योग

यदि किसी कुण्डली में लग्नेश की स्थिति वाली भाव-राशि का स्वामी ग्रह केंद्र या त्रिकोण भावों में से किसी में स्वराशि या उच्च राशि में बैठा हो (कुण्डली संख्या-36) तो यह 'पारिजात योग' कहलाता है। यदि लग्नेश की स्थिति वाली राशि का स्वामी जिस नवांश राशि में बैठा हो, उसका स्वामी केंद्र या त्रिकोण भाव में अपनी राशि अथवा अपनी उच्च राशि में स्थित हो तो भी 'पारिजात योग' होता है। यह एक शक्तिशाली राज योग माना जाता है।

ऐसा जातक अपने जीवन का मध्य भाग और अंतिम भाग सुखपूर्वक गुजारता है। उसे राजनेताओं की संगति प्राप्त होती है। वह युद्ध का शौकीन एवं प्रसिद्ध व्यक्ति होता है। कई वाहनों तथा भवनों का मालिक बनता है।

कुसुम योग

यदि बृहस्पति लग्न में बैठा हो, चंद्र उससे सातवें भाव में हो और सूर्य चंद्र से आठवें अर्थात् दूसरे भाव में स्थित हो तो यह 'कुसुम योग' कहलाता है। ऐसा जातक अपने क्षेत्र का शिरोमणि होता है। वह नगर या राज्य प्रमुख भी हो सकता है। उसकी कीर्ति अमर रहती है।

इस योग में गज-केसरी योग स्वतः ही बन जाता है। इसी प्रकार वसि योग भी उपस्थित होगा, क्योंकि बृहस्पति सूर्य से बारहवें भाव में कुसुम योग की शर्त के अनुसार होगा। यदि यह योग दुष्प्रभावों से मुक्त और पूर्णतः शुद्ध रूप में हो तो जातक न्यायाधीश, महापौर, नगरायुक्त आदि उच्च पदों पर भी पहुंच सकता है।

कुण्डली संख्या-37 कुण्डली संख्या-38

बृहस्पति कन्या राशि में लग्न में, चंद्र मीन राशि में सातवें भाव में और सूर्य चंद्र से आठवें (लग्न से दूसरे) भाव में तुला राशि में बैठा है (कुण्डली संख्या-37)। इस कुण्डली की जातिका प्रशासनिक अधिकारी एवं सांसद रहने के बाद केन्द्रीय मंत्री भी बन चुकी हैं।

ब्रह्मा योग

यदि बृहस्पति और शुक्र क्रमशः नौवें एवं ग्यारहवें भावों के स्वामियों के साथ केंद्र में स्थित हों तथा बुध लग्नेश या ग्यारहवें भाव के स्वामी के साथ केंद्र में स्थित हो (कुण्डली संख्या-38) तो यह 'ब्रह्मा योग' कहलाता है।

कुछ ज्योतिष मनीषियों का कहना है कि मेष, कर्क और कन्या लग्न के जातकों में यह योग नहीं हो सकता, क्योंकि सभी शर्तें पूरी नहीं होतीं। उदाहरण स्वरूप दी गई कर्क लग्न की कुण्डली में ब्रह्मा योग की सभी शर्तें पूरी होती हैं।

गरुड़ योग

यदि जन्म शुक्ल पक्ष में दिन के समय हुआ हो और नवांश कुण्डली में चंद्रमा की स्थिति वाली भाव राशि का स्वामी ग्रह अपनी उच्च राशि में बैठा हो तो 'गरुड़ योग' बनता है। इस योग में जन्म लेने वाला जातक संतों का आदरणीय, मंजा हुआ वक्ता, अजातशत्रु और अतीव बलशाली होता है।

यदि अष्टम भाव मजबूत हो तथा दुष्प्रभावित न हो तो जातक दीर्घजीवी होगा, अन्यथा अल्पायु में विष देकर उसकी हत्या कर दी जाएगी।

भास्कर योग

यदि दसवें भाव का स्वामी ग्रह तीसरे भाव में शनि के साथ बैठा हो और सूर्य दिग्बली होकर दसवें भाव में हो तो यह 'भास्कर योग' कहलाता है। यह प्रथम श्रेणी का राज योग होता है।

ऐसे योग वाला जातक किशोरावस्था में ही ख्याति प्राप्त कर लेता है। वह विशिष्ट वैज्ञानिक, धीर-गंभीर, सादा भोजन पसंद करने वाला, कमल समान नेत्रों तथा चौड़ा सीने वाला होता है।

इंद्र योग

अगर पांचवें और ग्यारहवें भावों के स्वामी परस्पर भाव बदलकर स्थित हों अर्थात् पंचमेश ग्यारहवें भाव में एवं एकादशेश पांचवें भाव में बैठा हो तथा चंद्र भी पांचवें भाव में स्थित हो तो 'इंद्र योग' बनता है।

प्राचीन मनीषियों ने ऐसे जातक को 36 वर्ष की अल्पायु तक ही जीने वाला, अमर कीर्ति वाला, परम साहसी और राज-राजेश्वर बताया है। इस व्याख्या को आधुनिक संदर्भों में ही देखा जाना चाहिए। जब तक सप्तम और अष्टम भाव दुष्प्रभावित न हों, आयु संबंधी संकेत इस योग द्वारा नहीं लिया जाना चाहिए।

देवेंद्र योग

यदि लग्न स्थिर राशि अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक या कुंभ हो, लग्नेश व ग्यारहवें भाव का स्वामी आपस में भाव बदलकर स्थित हों तथा दूसरे एवं दसवें भावों के स्वामी भी परस्पर घर बदलकर बैठे हों तो यह 'देवेंद्र योग' कहलाता है।

ऐसी कुण्डली वाला जातक सुंदर-आकर्षक शक्ल-सूरत तथा रसिक प्रवृत्ति का होता है। वह कई बड़े भवन और विशाल व्यावसायिक परिसरों का निर्माता होता है। वह सेनापति होता है और दीर्घायु प्राप्त करता है। उसके यश-कीर्ति में कोई दाग-धब्बा नहीं लगता। यह योग भी दुर्लभ एवं चमत्कारी माना जाता है।

त्रिदेव योग

यदि किसी कुण्डली में दूसरे भाव के स्वामी की स्थिति से आठवें एवं बारहवें भावों में शुभ ग्रह बैठे हों; बृहस्पति, चंद्र व बुध सातवें भाव के स्वामी की कुण्डली में स्थिति वाली राशि से क्रमशः चौथे, आठवें और नौवें भाव में हों तथा लग्नेश की स्थिति से सूर्य, शुक्र व मंगल क्रमशः चौथे, दसवें एवं ग्यारहवें भावों में बैठे हों, तो यह 'त्रिदेव योग' बनता है।

ऐसे जातक में ब्रह्मा का रचयिता गुण, विष्णु का संरक्षण गुण तथा महेश का संहारक गुण—तीनों पाए जाते हैं। यह योग पूरा मिलना अति दुर्लभ है, अतएव ज्योतिर्विदों ने इसमें शामिल होने वाले तीनों घटकों को अलग-अलग करके उन्हें पूर्ण योग बना दिया है। हालांकि यह त्रिदेव के मुख्य कार्यों में से किसी एक का ही योग बनता है, फिर भी तीनों मुख्य घटकों की पूर्ति होने पर

ही इस योग की उपस्थिति माननी चाहिए।

भारती योग

यदि दूसरे, पांचवें और ग्यारहवें भावों के स्वामी ग्रहों की नवांश कुण्डली में स्थितियों वाली भाव-राशियों के स्वामी ग्रह अपनी उच्च राशियों में बैठे हों और उनमें जन्मकुण्डली के नौवें भाव का स्वामी ग्रह भी शामिल हो या उन ग्रहों के साथ बैठा हो तो यह 'भारती योग' होता है।

इस योग में जन्म लेने वाला जातक विश्वविख्यात विद्वान, संगीत का शौकीन, सुंदर, आकर्षक, धर्म में आस्था रखने वाला और सम्मोहक आंखों का स्वामी होता है। वह विपरीत लिंगों में बहुत प्रिय और उनका रसिया होता है।

असली प्राचीन
रावण संहिता

पं. किसन लाल शर्मा

ऋषिपुत्र होने के बावजूद रावण देवताओं का विरोधी क्यों बना ? कौन सी साधनाएं की थीं उसने, जिन्होंने उसे बना दिया अपराजेय ? भगवान विष्णु को देवताओं से क्यों कहना पड़ा कि अभी वे रावण से आमने-सामने युद्ध नहीं कर सकते ? ऐसे ही अनेक प्रश्नों की जानकारी तथा भगवान सदाशिव की उपासना के रहस्य इस संहिता ग्रंथ में प्रस्तुत हैं। इसके अलावा दिव्यास्त्रों के ज्ञाता दशानन के चमत्कारिक एवं गुह्य तंत्रशास्त्र तथा औषध विज्ञान का भी समुचित समावेश है इस ग्रंथ में।

शस्त्र-शास्त्र मर्मज्ञ दशकंधर के जीवन के रहस्य भरे विभिन्न अनछुए पहलुओं का संस्पर्श करता एक दुर्लभ ग्रंथ! इसे आपके समक्ष प्रस्तुत किया है 'ज्योतिषजगत्' के शिखर पुरुष पंडित किसन लाल शर्मा ने।

मनोज पब्लिकेशन्स